* ओम् धर्मात्मने नमः *

अष्टादश-स्मृतयः

ब्राह्मणसर्वस्व मासिकपत्रसम्पादकेन
भीमसेनशर्म्मणा लोकोपकारमत्या
सम्पादितेन देवनागरीभाषानु-
वादेन समलङ्कृताः

ताश्च

इटावा

* इटावानगरे स्वीयब्रह्मयन्त्रालये *
* मुद्रापयित्वा प्राकाश्यं नीताः *

---

18 SMRITIES DHARMA SHASHTRA

bay

Pandit Bhimsan Sharma with Hindi tarnslatian.

Printed at the Brahma Press Etawah.

प्रथमवार १५०० } वि० संवत् १९६३ । सन् १९०७ ई० { मूल्य ३)

अथाष्टादशस्मृति प्रस्तावः ॥

यद्यपि स्मृतियों के विषय में जो २ विचार वा संशोधन जिस २ प्रकार का अपेक्षित है वह ठीक २ हम ने अभी तक नहीं कर पाया है। क्योंकि ठीक२ शुद्ध पुस्तकादि साधन प्राप्त नहीं हुए। तथापि न होने से फिर भी बहुत कुछ अच्छा हुआ है। हम इस प्रस्तावना में संक्षेप से कुछ विचार दिखाते हैं जिन को पुस्तकों के अवलोकन से पहिले पाठक लोग बड़ी सावधानी से पढ़ के ध्यान में रख लेवें तब स्मृतियों को देखने से अवश्य कुछ लाभ होगा कल्याण का मार्ग भी दीख पड़ेगा। याज्ञवल्क्य० अ० १ । ३ ।

पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाःस्थानानिविद्यानां धर्मस्यचचतुर्दश ॥ ३ ॥

अ०-(१-पुराण) ब्रह्मवैवर्त्तादि अठारह पुराण जिन के (सृष्टि रचना, प्रलय, वंश, मन्वन्तर, और वंशों के चरित वर्णन ये) पांच विषय हैं। (२-न्याय) न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, ये चारो एक २ प्रकार से अपने २ उद्दिष्ट विषय का न्याय नाम निर्णय (फैसला) करने वाले होने से न्याय पद वाच्य हो सकते हैं। (३-मीमांसा) धर्म का विचार करने के लिये पूर्व मीमांसा, और साक्षात सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मतत्व का निश्चय करने के लिये उत्तर मीमांसा (वेदान्त दर्शन) ये दोनों मीमांसा पद वाच्य हैं। (४-धर्म शास्त्र) मनुआदि बीसस्मृति (धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः) इस मनुजी के कथनानुसार स्मृति और धर्मशास्त्र एक ही हैं। (५-अङ्ग) वेद के छः अङ्ग हैं (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष,) ये छः (६-चार वेद) ऋग्यजुः साम अथर्व ये सब चौदह, विद्या और धर्म के स्थान हैं। इन चतुर्दश प्रकार की विद्या से धर्म जाना जाता है। चार वेद, छः वेदाङ्ग, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र ये सब चौदह होते हैं। ये ही चौदह विद्या हैं। महाभारतादि इतिहास का विषय वही है कि जो पुराणों का है इस कारण पुराणके अन्तर्गत इतिहास भी आजाते हैं। वाल्मीकीय रामायण और महाभारत ये दो इतिहास मुख्य हैं। तुलसीदास की रामायण वाल्मीकीय की

छाया रूप होने से उसी के अन्तर्गत जानो ॥

चार वेदों की ११३१ शाखा, प्रत्येक शाखा के साथ ११३१ ब्राह्मण ग्रन्थ, कल्पवेदाङ्ग के ११३१ श्रौत सूत्र, तथा ११३१ गृह्यसूत्र, ४ वेदों की चार शिक्षा, एक व्याकरण, एक निरुक्त, एक छन्दः, एक ज्योतिष, बीश २० धर्म शास्त्र, २ मीमांसा, चार ४ न्याय, बीश २० इतिहास पुराण, ये सब कम से कम सनातन धर्म तथा विद्या के भण्डार ४५१८ चार हजार पांच सौ अठहत्तर विद्या धर्म के पुस्तक पूर्वकाल में विद्यमान थे। इन से भिन्न उपपुराणादि अन्य भी ग्रन्थ बाकी रहते हैं। उपपुराणादि का पुराणों में अन्तर्भाव हो सकेगा। परन्तु मुख्य कर यही चौदह प्रकार की विद्या प्राणी को संसार समुद्र से पार करने वाली है। उपनिषद् पुस्तक, शाखा तथा ब्राह्मणों के अन्तर्गत आजाने से पृथक् नहीं गिनाये गये हैं। तथा उस २ वेद के उपनिषद् भी उसी २ वेद के अन्तर्गत माने जाते हैं। उपवेद पुस्तकों का धर्म के साथ विशेष सम्बन्ध न होने पर भी विद्या पुस्तक अवश्य माने जावेंगे। पर उन का अपने २ वेद के साथ अन्तर्भाव हो जाने से चार वेदों में आ सकते हैं इस से पृथक् नहीं गिनाये गये हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति अ० १।

मन्वत्रिविष्णुहारीत याज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः।
यमापस्तम्बसंवर्त्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥ ४ ॥
पराशरव्यासशंख लिखितादक्षगौतमौ।
शातातपोवसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रवर्त्तकाः ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप, और वसिष्ठ, ये बीश महर्षि वा आचार्य धर्मशास्त्रों के प्रवर्त्तक वा बनाने वाले हैं। अर्थात् मनुआदि के नाम से बीश धर्मशास्त्र प्रधान वा मुख्य हैं। इन में से कई ऋषियों के नाम से लघु बृहत् दो २ पुस्तक बने हुए मिलते हैं। सो अनुमान होता है कि काल क्रम से एक ही महर्षि के उपदेश को उन २ के शिष्यादि लोगों ने धर्म शास्त्र पढ़ने वालों का थोड़ा पढ़ने से काम चल सके इत्यादि प्रयोजन से समय २ पर भिन्न २ आवश्यकता देख समझ कर दो २ भाग किये होंगे। परन्तु इन धर्मशास्त्रों में कोई २ (वृद्धहारीत) पुस्तक इतना नाम से ऐसा भी है कि जिसको स्मृति वा धर्मशास्त्र ही नहीं कह सकते। क्योंकि लोकव्यवहार की व्यवस्था करना धर्मशास्त्रों का विषय है। और स्मृतियों के जो २ विषय लोक व्यवहार के नियमार्थ महर्षियों ने रक्खे हैं वे सब पाठक महाशयों को अष्टादशस्मृतियों के सूचीपत्र से ज्ञात

हो ही जायंगे। अर्थात् संप्रदायी कृत्यों का आग्रह करना वीश में से किसी भी स्मृति में अब नहीं आया तो वृद्धहारीतादि में केवल वैष्णव संप्रदाय के शंख चक्रादि संस्कारों का सब के लिये आग्रह करना स्मृति का विषय कैसे होगा ? । अर्थात् कदापि नहीं। हमारा अनुमान है कि ऐसी स्मृति महर्षि हारीत की कही हुई नहीं है किन्तु किसी वैष्णव सम्प्रदायी विद्वान् ने अपने मत के प्रचारार्थ महर्षि हारीत के नाम से बना दी है। इससे हमारा प्रयोजन किसी सम्प्रदाय को बुरा कहने वा खण्डन करने का नहीं है। किन्तु प्रयोजन इतना ही है कि सम्प्रदाय के चिन्हादि का आग्रह करना स्मृति का विषय कदापि सिद्ध नहीं होता। इससे उनको स्मृति नहीं कह सकते क्योंकि उनमें लोक व्यवहार की कुछ भी व्यवस्था नहीं होती है। तथा शंख चक्रादि चिन्ह धारण किये बिना पूर्ण भक्ति से पूजा उपासना करनेवाले पर विष्णु भगवान् प्रसन्न न हों यह भी समझ में नहीं आता। इस से हम इतना ही कहना उचित समझते हैं कि जिनके यहां कुल परम्परा से जो सम्प्रदाय चला आता है उन्हीं के लिये वह अच्छा है। उसी सम्प्रदाय के नियमानुसार वे लोग श्रद्धाभक्ति से देवाराधन करें, यही सनातन धर्म का मत है। किन्तु यह न कहें वा मानें कि जो ऊर्ध्व पुण्ड्र वा शंख चक्रादि धारण न करें वे चाण्डाल वा नीच हैं।

अब एक बात यह भी विचारणीय है कि याज्ञवल्क्य स्मृति के ऊपर लिखे दो श्लोकों में स्मृतियों के २० ही होनेका कोई नियम नहीं कियागया किन्तु ऊपर लिखे याज्ञवल्क्य के दो श्लोकों में मुख्यकर धर्मशास्त्र कर्त्ताओं के नाम दिखाये हैं कि ये स्मृतिकारों में प्रधान हैं। यह अभिप्राय नहीं है कि ये ही स्मृतिकार हैं इनसे भिन्न कोई भी धर्मशास्त्र कर्त्ता नहीं है। इस से पुलस्त्य, बौधायन, देवलादि की स्मृतियों को भी धर्मशास्त्र मानना चाहिये।

इन ऊपर लिखी २० स्मृतियों में भी मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति विशेष मान्य तथा प्रतिष्ठित हैं। इसी कारण इस अष्टादशस्मृतियों के संग्रह में उक्त दोनों स्मृति नहीं रक्खी गयी हैं। हम इन स्मृतियों के बाद में ही मनु, याज्ञवल्क्य, बौधायनादि कई उपयोगी स्मृतियां शीघ्र छपाने की इच्छा रखते हैं। जिसको श्रीकृष्ण भगवान् पूरी करेंगे ऐसी आशा है।

इन अठारह स्मृतियों में एक से ही कई विषय आये हैं। जिनको वार२ आये देखकर पाठक महाशय पुनरुक्त दोष ग्रस्त न समझें क्योंकि एक ऋषि के कथन में एक विषय वार२ होने से पुनरुक्त कह सकते थे। पूर्वकाल में जब छापेखानों

का प्रचार नहीं था तब अपने२ कुल गोत्र के महर्षि ने कहे अपने२ धर्मशास्त्र को भिन्न२ प्रान्तों में रहने वाले ब्राह्मणादि लोग पढ़ते पढ़ाते थे। अब जैसे२ छापे खाने बढ़े वैसे२ सब पुस्तक सर्वत्र फैलने लगे हैं। परन्तु पूर्वकाल के तुल्य सामयिक ब्राह्मणादि द्विज लोग धर्मशास्त्रों के जानकार अब नहीं हैं। हम अपने पाठकों से सानुनय प्रार्थना करते हैं कि आप लोग कई बार इन धर्मशास्त्रों को ध्यान देकर अवश्य पढ़ जाइये। तो आप को बड़ा लाभ होगा सो आप स्वयमेव पीछे जान लोगे।

परन्तु धर्मशास्त्रों का पाठ करने से पहिले निम्न लिखित विचारों को अवश्य ध्यान में रख लेना।

१—जहां लिखा हो कि ऐसा काम करने से अमुक २ उत्तम अद्भुत फल होता है। तब आपको समयानुसार यदि सन्देह हो कि ऐसा फल होगा इस में प्रमाण (सबूत) क्या है? तब शोच लेना कि—किसी ने कहा कि नदी के किनारे फल हैं जाकर लेआओ। इस शब्दप्रमाण पर अन्य प्रमाण की हुज्जत करने वाला न तो नदी तक जायगा और न उस को वे फल मिलेंगे। कर्म का फल उस के अन्त में होता है।

२—यह भी ध्यान रहे कि धर्मशास्त्रादि पुस्तक अधिक वा अपरिमित देशकालों में होने वाले असंख्य प्राणियों के लिये हैं। इन में लिखे विचार प्रत्येक देश वा काल में प्रत्येक प्राणी के लिये उपकारी नहीं हो सकते हैं। जैसे पसारी की दुकान में तिक्त, कटु, मिष्ट और विष आदि भी रहते हैं। उनमें से कभी किसी को विष भी अमृत का सा काम देता और कभी औषध का आधार अन्न भी विष के तुल्य मनुष्य को मार डालता है (अजीर्णे भोजनं विषम्) इस लिये जो अंश आप को अपने उपयोगी न जान पड़ें उन के लिये हुज्जत न मचाइये। पसारी की दुकान पर कुछ प्रयोजनीय वस्तु लेने को गया हुआ मनुष्य विषादि के लिये झगड़ा करने लगे कि तुम ने यह दूकान में रक्खा ही क्यों?। तो उस का समय झगड़े में ही चला जायगा किन्तु प्रयोजनीय वस्तु लेने से भी वंचित रहेगा। इसी के अनुसार, मांसादि प्रतिकूल विषयों पर झगड़ा छोड़ के अपने कल्याणार्थ किन्हीं उत्तम अंशों पर चित्त लगा के तदनुसार आचार विचार सुधार के अपना कल्याण कीजिये। अन्यथा यही कहावत सिद्ध होगी कि (आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास)

३—धर्मशास्त्रों में बार २ लिखी विशेष उपयोगी बातें को बार २ देखिये तो कण्ठस्थ हो जाने से विशेष लाभ होगा।

४–इन धर्मशास्त्रों में अनेक विचार आप को ऐसे मिलेंगे कि जिन को न जानने के कारण ही आप उन कामों को विरुद्ध करते होंगे। और जब जान लोगे तो ठीक २ करने लगोगे। तब उस से आप का कुछ कल्याण भी अवश्य होगा। जैसे शिर बांध के भोजन न करना, शिर खोल के मल मूत्र त्याग न करना, पूर्व को पग करके कदापि न सोना, इत्यादि कामों के करने में जो कुछ समय वा श्रम आप करते हैं वही आगे भी लगेगा पर यदि शास्त्र की आज्ञानुकूल उन २ कामों को करोगे तो सहज में ही कुछ धर्म कर लोगे।

५–यद्यपि सभी धर्मशास्त्र अनेक प्रकार से मनुष्य को कल्याण का मार्ग दिखाने वाले होने से उत्तम हैं तथापि कात्यायन, व्यास, पराशर, शंख, दक्ष, गौतम और वसिष्ठादि कई स्मृतियां उन में और भी अत्यन्त उपकारी हैं। कात्यायन में कर्मकाण्ड, व्यास में पतिव्रताधर्म, दानधर्मादि, पराशर में ब्रह्मकूर्च व्रतादि, शंख में वर्णाश्रम धर्मादि, दक्ष में दिनचर्या वा रात्रिचर्या–योगाभ्यासादि, गौतम में ४८ अड़तालीश संस्कारादि, वसिष्ठ में संन्यासादि विषय अधिक प्रशंसनीय हैं।

६–इन स्मृतियों में, शिक्षा, विद्या, सामान्यनीति, राजनीति, स्त्रीशिक्षा, योग, ज्ञान, उपासना, देवपूजा और धर्मादि का विचार ऐसा भी है जो सभी के लिये उपयोगी होगा।

७–विशेष कर स्मृतियों के संक्षिप्त विषय–१–प्रायश्चित्त, २–वर्णधर्म, ३–आश्रम धर्म, ४–मृतक शुद्धि, ५–द्रव्यशुद्धि, ६–गर्भाधानादि संस्कार, ७–सन्ध्या, ८–श्राद्ध तर्पण, ९–पञ्चमहायज्ञ, १०–पातिव्रतधर्म, ११–भक्ष्याभक्ष्य, १२–आपद्धर्म, १३–वेद का अभ्यास तथा महत्त्व, १४–आचार, इत्यादि संक्षेप से धर्मशास्त्रों का विषय जानो॥

८–हमारी राय जाति निर्णय के विषय में यह है कि जो कायस्थ, रथकार, स्वर्णकार, आदि जाति हैं वे लोग धर्मशास्त्रों में लिखे निर्विवाद उत्तमाचरणों के द्वारा श्रेष्ठ बनने का उद्योग करें तो उन के लिये भविष्यत् में कल्याण की संभावना है।

९–दक्षस्मृति में नौ २ की संख्या वाले नौनवें इक्यासी उपदेश देखने योग्य सब के लिये विशेष उपकारी हैं।

१०–इन स्मृतियों के जो २ पारिभाषिक शब्द (ब्रह्मकूर्च, कृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, कृच्छ्रातिकृच्छ्र, कृच्छ्रसान्तपन, प्राजापत्य, पराककृच्छ्र, चान्द्रा-

यथा) इत्यादि के लक्षण वा अर्थ गौतमस्मृति के २७। २८ अध्यायादि में वा अन्यस्मृतियों में जहां २ कहे हैं वहीं से पाठक महाशय जानकर सर्वत्र वही लक्षण जान लेवें। इसीसे जहां २ कृच्छ्रादि शब्द आये हैं वहां २ सर्वत्र उनके लक्षण हमने नहीं दिखाये हैं। ब्रह्मकूर्च व्रत की प्रशंसा धर्मशास्त्रों में बहुत बढ के की गयी है। इस ब्रह्मकूर्च का लक्षण व्याख्यान वा विधान पराशर स्मृति के ११ वें अध्याय में देखिये।

११-कृच्छ्रादि सभी व्रतों के लिये सामान्य विचार ये हैं कि-ब्राह्मणादि द्विज शिखा को छोड़ के अन्य सब मूंछों सहित बाल मुड़ा के अपने २ वर्ण के दण्ड, कमण्डलु, मेखला, श्वेत लाल पीले वस्त्र तथा मृग चर्मादि ब्रह्मचर्य के चिह्न धारण कर के बाग, देवस्थान, वा जलाशय के तट पर शुद्ध एकान्त स्थान में रहें, संसारी काम अथवा बात चीत कुछ न करें, शूद्रादिनीचों से कुछ भी न बोलें, प्रयोजन मात्र द्विजों से बोलें, प्रायः मौनरहें, तीन वार स्नान करें वा छः वार स्नान करें अपने २ गुरु मन्त्र सावित्री का जप करें, व्याहृतियों से होम करें इत्यादि नियम भी पाठकों को इन्हीं धर्म शास्त्रों के देखने से ज्ञात होंगे।

१२-अब अन्तिम निवेदन यह है कि इन १८ स्मृतियों के छपाने वा अर्थ करने में यथासम्भव हम ने सावधानी से शुद्ध करने का उद्योग किया है। तथापि कई कारणों से जो २ त्रुटि हमारे पाठकों को ज्ञात हों उन को पण्डितों की राय से सम्हाल लें और हमारे गुण वा परिश्रम को सादर स्वीकार करते हुए तथा दोषों पर ध्यान न देते हुए उनसे उपेक्षा वृत्ति करें। क्योंकि मनुष्यको गुण ग्राही होने में जो लाभ तथा सुख होता है वह दोष दर्शी को कदापि नहीं होता। परन्तु जो२ अशुद्धि तथा अर्थ करने में कहीं२ भल जान पड़ें उनको विचार पूर्वक शुद्ध करने का उद्योग अवश्य करें

ह० भीमसेन शर्मा

सम्पादक ब्राह्मण सर्वस्व इटावा

अथाष्टादशस्मृतीनां सूचीपत्रम् ॥

इत्यष्टादशस्मृतिविषयसूचीपत्रं समाप्तम् ॥
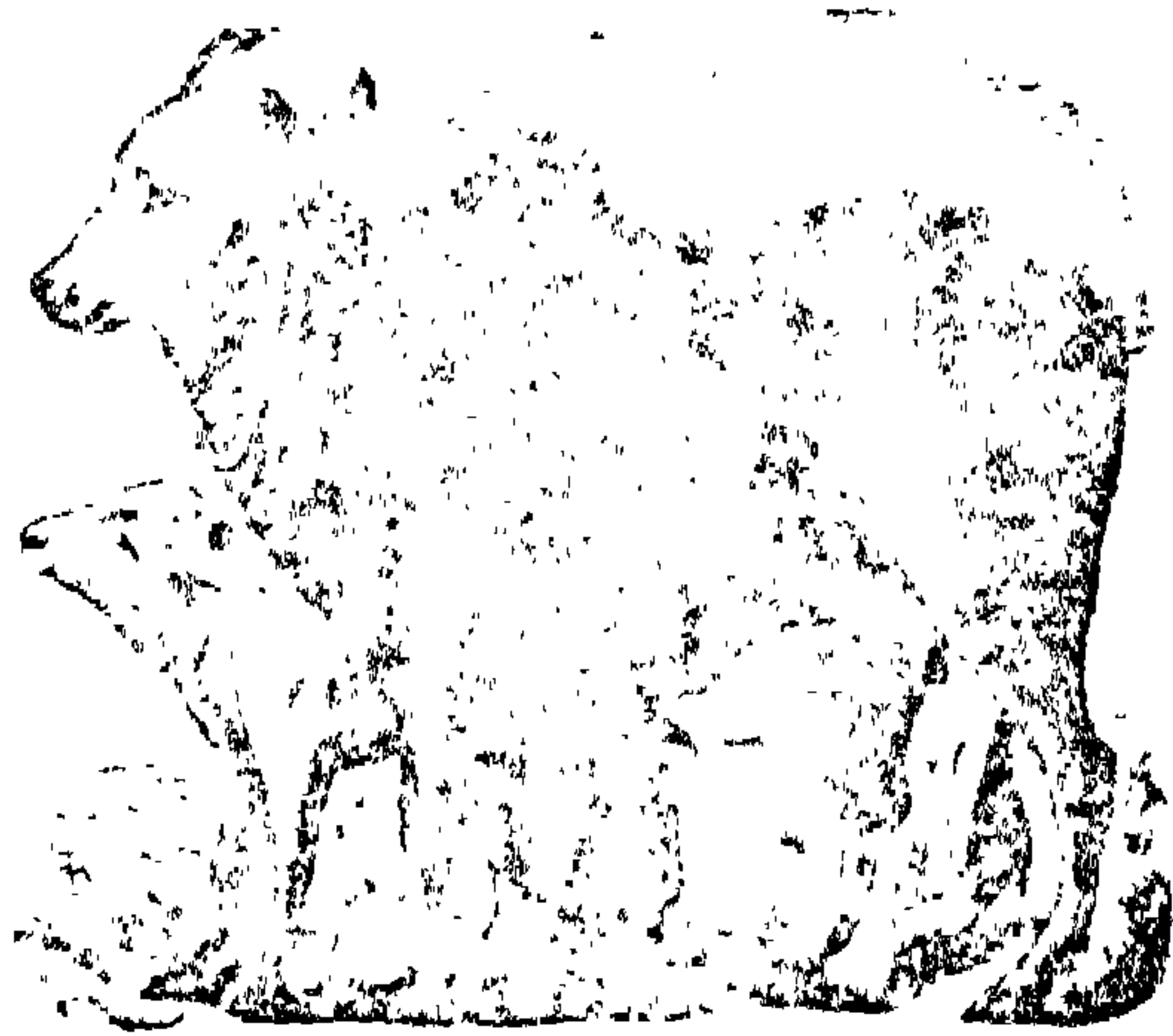
॥ अत्रिस्मृतिः ॥

हुताग्निहोत्रमासीन-मत्रिंवेदविदांवरम् ।
सर्वशास्त्रविधिज्ञंत-मृषिभिश्चनमस्कृतम् ॥ १ ॥
नमस्कृत्यचतेसर्वे-इदंवचनमब्रुवन् ।
हितार्थंसर्वलोकानां भगवन्कथयस्वनः ॥ २ ॥

अत्रिरुवाच ॥

वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञा यन्मेपृच्छथसंशयम् ।
तत्सर्वंसंप्रवक्ष्यामि यथादृष्टंयथाश्रुतम् ॥ ३ ॥

भावार्थ—अग्निहोत्र करने वाले वेदज्ञों में उत्तम संपूर्ण शास्त्रों की विधि के ज्ञाता, और ऋषियों से पूज्य बैठे हुए अत्रिजी को ॥१॥ वे संपूर्ण ऋषि नमस्कार करके यह वचन बोले कि हे भगवन् ! संपूर्ण मनुष्यों के हित के लिये आप हम को उपदेश करें ॥ २ ॥ अत्रि जी बोले कि—हे वेद और शास्त्र के तत्त्व (अर्थ) के यथार्थ जानने वाले ऋषि लोगो—जो संशय मुझ से तुम पूछते हो उस संपूर्ण को अपने देखे और सुने के अनुसार मैं वर्णन करूंगा ॥ ३ ॥

विशेष—(१ । २ । ३) अग्निहोत्र करने तथा वेद को जानने वाले अत्रि जी ने यह धर्मशास्त्र कहा इस कथन से इस की वेदमूलकता दिखायी है। अध्यात्म में (वागत्रिः—इति श्रुतिः) वाणी अत्रि है। वाणी में आने पर ही वह विषय उपदेश वा धर्मशास्त्र कहा जा सकता है। मन में रहे तब तक वह उपदेश नहीं यह जताने के लिये अत्रि जी का उपदेश अठारहों में पहिले रक्खा गया है। उपदेशकी परम्परा दिखाने के लिये प्रश्नोत्तर द्वारा शास्त्र की प्रवृत्ति दिखाई है ॥

सर्वतीर्थान्युपस्पृश्य सर्वान्देवान्प्रणम्यच ।
जप्त्वातुसर्वसूक्तानि सर्वशास्त्रानुसारतः ॥ ४ ॥
सर्वपापहरंदिव्यं सर्वसंशयनाशनम् ।
चतुर्णामपिवर्णाना-मत्रिःशास्त्रमकल्पयत् ॥ ५ ॥
येचपापकृतोलोके येचान्येधर्मदूषकाः ।
सर्वपापैःप्रमुच्यन्ते श्रुत्वेदंशास्त्रमुत्तमम् ॥ ६ ॥
तस्मादिदंवेदविद्भि-रध्येतव्यंप्रयत्नतः ।
शिष्येभ्यश्चप्रवक्तव्यं सद्वृत्तेभ्यश्चधर्मतः ॥ ७ ॥
अकुलीनेह्यसद्वृत्ते जडेशूद्रेशठेद्विजे ।
एतेष्वेवनदातव्य-मिदंशास्त्रंद्विजोत्तमैः ॥ ८ ॥

भा०-संपूर्ण तीर्थों के जल से अभिषेक सब देवताओं को नमस्कार और सम्पूर्ण वेद सूक्तों का जप करके सर्वशास्त्रों के अनुसार ॥४॥ सब पापों का नाशक उत्तम सब संशयों का दूर करने वाला और चारों वर्णों का हितकारी शास्त्र अत्रि ऋषि ने रचा ॥५॥ जो जगत् में पापों के करने वाले हैं, और जो धर्म में दूषण लगाने वाले हैं वे संपूर्ण इस उत्तम शास्त्र को श्रवण कर सब पापों से छूट जाते हैं ॥ ६ ॥ इस लिये वेदज्ञ पुरुष इस शास्त्र को बड़े प्रयत्न से पढ़ें और सदाचारी शिष्यों को धर्मानुकूल पढ़ावें ॥७॥ श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणों को चाहिये कि-अकुलीन दुराचारी-मूर्ख-शूद्र-और शठ ब्राह्मण, इन को न पढ़ावें ॥८॥

विशेष-(४) तीर्थ स्नान देवताओं का पूजन तथा विधिपूर्वक वेद मन्त्रों का जप इन कामों को जब तक श्रद्धा के साथ निरन्तर बहुत काल तक न किया जाय तब तक किसी का अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता और शुद्धान्तःकरण हुए विना उस के हृदय से निकला उपदेश भी ठीक शुद्ध सब हितकारी वेदानुकूल नहीं होता इसी से अत्रि जी ने तीर्थस्नानादि किया (६) यदि पापी लोग उत्तम उपदेश को ठीक ध्यान देकर सुनें तो अवश्य अपने धर्म विरुद्ध दुराचारों से ग्लानि हो तब सब पापों से छूटना सम्भव ही है (८) जैसे सांप को पिलाया अमृत भी विष होजाता वैसे अकुलीनादि निकृष्ट को किया उत्तमोपदेश भी हानिकारक परिणाम जनक होता है ॥

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुःशिष्यंनिवेदयेत् ।
पृथिव्यांनास्तितद्‌ द्रव्यंयद्दत्वाह्यनृणीभवेत् ॥ ९ ॥
एकाक्षरप्रदातारं योगुरुंनाभिमन्यते ।
शुनांयोनिशतंगत्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥ १० ॥
वेदंगृहीत्वायःकश्चित् शास्त्रंचैवावमन्यते ।
ससद्यःपशुतांयाति संभवानेकविंशतिम् ॥ ११ ॥
स्वानिकर्माणिकुर्वाणा दूरे संतोपिमानवाः ।
प्रियाभवन्तिलोकस्य स्वेस्वेकर्मण्युपस्थिताः ॥ १२ ॥
कर्मविप्रस्ययजनं दानमध्ययनंतपः ।
प्रतिग्रहोऽध्यापनंच याजनंचेतिवृत्तयः ॥ १३ ॥

भा०--जो गुरु एक भी अक्षर शिष्य को देता है पृथिवी भर में वह कोई ऐसा द्रव्य नहीं है जिस को देकर शिष्य गुरु का अनृणी हो सके (अर्थात् बदला देसके) ॥ एक अक्षर देने वाले को जो गुरु नहीं मानता वह सौ जन्म तक कुत्तों की योनि में जाकर चांडालों में जन्मता है १० जो कोई कुतर्की वेद और शास्त्र को जानकर अपमान करता है वह शीघ्र ही पशु योनि को पाता और पश्चात् इक्कीश प्रकार के नरकों को प्राप्त होता है ॥११॥ अपने २ कर्मों को करने वाले और दूर रहने पर भी मनुष्य अपने कर्म पर स्थिर रहने से जगत् के प्यारे होते हैं ॥ १२ ॥ केवल धर्म संचयार्थ ब्राह्मण के कर्म ये हैं कि यज्ञ करना, दान देना, साङ्गवेद पढ़ना और तप करना, और दानलेना पढ़ाना और यज्ञ कराना ये तीन ब्राह्मण की वृत्ति धर्मानुकूल आजीविका हैं ॥१३॥

(९ । १०) एकाक्षर से अभिप्राय यह है कि जो विधि पूर्वक थोड़ा भी पढ़ावे अथवा एकाक्षर नाम प्रणव को ठीक २ सार्थ पढ़ावे उस को भी गुरुअवश्य माने। न माने तो निन्दार्थवाद है यह उत्सर्ग जानो॥ किसी कारण गुरु पतित वा नास्तिकादि हो जाय तो उसे गुरु न माने ऐसा लेख जहां मिले वह इस का अपवाद होगा (१२) इस का मतलब यह है कि विदेश में जाने पर भी अपने देशाचारानुकूल अपने २ वर्ण के कामों को कदापि न छोड़े अर्थात् ऐसा न करें कि विलायत जांय तो साहब बन के ही लौटें ॥

क्षत्रियस्यापियजनं दानमध्ययनंतपः ।
शस्त्रोपजीवनंभूतरक्षणंचेतिवृत्तयः ॥ १४ ॥
दानमध्ययनंवार्ता यजनंचेतिवैविशः * ।
शूद्रस्यवार्ताशुश्रूषा द्विजानांकारुकर्मच ॥ १५ ॥
तदेतत्कर्माभिहितं संस्थितायत्रवर्णिनः ।
बहुमानमिहप्राप्य प्रयान्तिपरमांगतिम ॥ १६ ॥
येव्यपेताःस्वधर्मात्ते परधर्मेव्यवस्थिताः ।
तेषांशास्तिकरोराजा स्वर्गलोकेमहीयते ॥ १७ ॥
आत्मीयेसंस्थितोधर्मे शूद्रोपिस्वर्गमश्नुते ।
परधर्मोभवेत्त्याज्यः सुरूपपरदारवत् ॥ १८ ॥

भा०–यज्ञ करना, दान देना, साङ्गवेद पढ़ना और तप करना, ये क्षत्री के कर्म हैं और शस्त्रसे आजीविका और भूतों की रक्षा ये दो धर्मानुकूल क्षत्रियकीजीविका हैं ॥१४॥ दान देना, साङ्गवेद पढ़ना, खेती गौओं की रक्षा, व्यवहार, यज्ञ करना, ये वैश्यके कर्म हैं खेती, गौओंकीरक्षा, व्यवहार, तीनों वर्णों की सेवा, और कारीगरी, ये शूद्र के कर्म हैं॥१५॥ जिस कर्म में तत्पर रहने से चारों वर्ण इसलोक में बड़े मान को प्राप्त होकर परलोक में परमगति को प्राप्त होते हैं सो यह वर्णकर्म हमने कहा ॥१६॥ जो अपने धर्म को छोड़ के दूसरे के धर्म में तत्पर होते हैं उन को शिक्षा देने वाला राजा स्वर्गलोक में पूजा को प्राप्त होता है ॥१७॥ अपने धर्म में तत्पर हुआ शूद्र भी स्वर्ग को भोगता है और पराया धर्म इस प्रकार त्यागने योग्य है कि जैसे अच्छेरूप वाली पराई स्त्री ॥ १८ ॥

(१८) जैसे विष में पैदा हुआ कीड़ा विषसे मरता नहीं किन्तु विष ही उस का रक्षक होता है । इसी के अनुसार अपने २ बाप दादाओं की परम्परा से जो २ धर्म जिस वर्ण के अनुसार चला आता है उसी को अपना प्राकृत धर्म [illegible] मानकर मनुष्यों को सेवन करना चाहिये । प्रत्येक मनुष्य का प्रयोजन [illegible] सुख स्वर्ग प्राप्त करने का है सो जब शूद्रादि को स्वधर्म के सेवन से [illegible] पराये उत्तम धर्म से भी नरक होना सिद्ध है तब किसी को भी अपदायक परधर्म का सेवन न करना चाहिये ॥ * विचार्यमत्र ॥

वध्योराज्ञासवैशूद्रो जपहोमपरश्चयः।
ततोराष्ट्रस्यहन्तासौ यथावन्हेश्चवैजलम् ॥१९॥
प्रतिग्रहोऽध्यापनंच तथाऽविक्रेयविक्रयः।
याज्यंचतुर्भिरप्येतैः क्षत्रविट्पतनंस्मृतम् ॥२०॥
सद्यःपततिमांसेन लाक्षयालवणेनच।
त्र्यहेणशूद्रोभवति ब्राह्मणःक्षीरविक्रयी ॥२१॥
अव्रताश्चानधीयाना यत्रभैक्ष्यचराद्विजाः।
तंग्रामंदण्डयेद्राजा चौरभुक्तप्रदण्डवत् ॥२२॥
विद्वद्भोज्यमविद्वांसो येषुराष्ट्रेषुभुञ्जते।

भा०—जो शूद्र वेदोक्त जप और होम में तत्पर है वह राजा से कठोर दण्ड पाने के योग्य है क्योंकि वह जप होम में तत्पर होने के कारण राजा के देश का नाश करने वाला है जैसे अग्नि का जल नाशक है ॥ १९ ॥ दान लेना वेदादि का पढ़ाना, निषिद्ध वस्तु का बेचना, और यज्ञ कराना इन चारों कर्मों के करने से क्षत्रिय और वैश्य का पतित होना कहा गया है ॥२०॥ मांस लाख और लवण इन के बेचने से ब्राह्मण शीघ्र ही पतित होजाता है दूध के बेचने से तीन दिन में शूद्र तुल्य होजाता है ॥२१॥ व्रतों के न करने वाले और विना पढ़े ब्राह्मण जिस ग्राम में निवास करते हुए भिक्षा मांगते हैं उस ग्राम के लोगों को राजा वह दण्ड दे जो चोरी की वस्तु के भोगने वाले को होता है ॥ २२ ॥ जिन देशों में विद्वानों के भोगने योग्य पदार्थों को मूर्ख भोगते हैं वे

(१९) यदि राजदण्ड का भय न होता तो अब तक पाखाना कमाने के लिये एक भी भंगी न मिलता। क्योंकि मिहतरों को यदि अपने से उत्तम काम मिल सके तो वे कदापि अपने अतिनिकृष्ट काम को नहीं करेंगे (२०) दान लेना वेदादि का पढ़ाना यज्ञ कराना ये ख़ास ब्राह्मण के ही काम हैं अन्यके लिये निषेध है (२३) विद्वानों को उत्तम भोग मिलने से विद्या का आदर है विपरीत करने से अविद्या का आदर होता इस लिये अनावृष्टि आदि अ-निष्ट फल कहते हैं ॥

तेप्यनावृष्टिमिच्छन्ति महद्वाजायतेभयम् ॥२३॥
ब्राह्मणान्वेदविदुषः सर्वशास्त्रविशारदान् ।
तत्रवर्षतिपर्जन्यो यत्रैतान्पूजयेन्नृपः ॥२४॥
त्रयोलोकास्त्रयोवेदा आश्रमाश्चत्रयोऽग्नयः ।
एतेषांरक्षणार्थाय संसृष्टाब्राह्मणाःपुरा ॥२५॥
उभेसंध्येसमाधाय मौनंकुर्वन्तियेद्विजाः ।
दिव्यवर्षसहस्राणि स्वर्गलोकेमहीयते ॥२६॥
यएवंकुरुतेराजा गुणदोषपरीक्षणम् ।
यशःस्वर्गंनृपत्वंच पुनःकोशंसअर्जयेत् ॥२७॥
दुष्टस्यदण्डःसुजनस्यपूजा न्यायेनकोशस्यचसंप्रवृद्धिः ।
अपक्षपातोर्थिषुराष्ट्ररक्षा पंचैवयज्ञाःकथितानृपाणाम् ॥२८॥

देश भी वृष्टि के अभाव की इच्छा करते हैं अथवा उन में महान् भय उत्पन्न होता है ॥ २३ ॥

भा०—साङ्गोपाङ्ग वेद को जानने वाले और संपूर्ण शास्त्रों में कुशल ब्राह्मणोंकी पूजा जिस देश में राजा करता है वहां मेघ ठीक २ वर्षता है ॥ २४ ॥ तीनों लोक तीनों वेद आश्रम और तीनों अग्नि इन की रक्षा के लिये सृष्टि के आरम्भ में ब्राह्मण रचे गये हैं ॥ २५॥ जो दोनों सन्ध्याओं के समय एकाग्रचित्त होके मौन हुए जप करते हैं वे द्विज देवताओं के हजार वर्ष तक स्वर्गलोकमें पूजा को प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ जो राजा इस प्रकार गुण दोष की परीक्षा करता है वह यश स्वर्ग, राज्य और कोश का (क्षीण वा नष्ट होने पर भी) फिर संचय करता है ॥ २७ ॥ ये पांच यज्ञ राजाओं के लिये कहे हैं कि दुष्ट को दण्ड—श्रेष्ठ जन की पूजा, न्याय से कोश का बढ़ाना—मांगने वालों के लिये पक्षपात का न करना. और अपने देश की रक्षा ॥ २८ ॥

(२४) विद्वान् ब्राह्मणों का ठीक आदर से सत्कार किया जाय तो वे लोग अग्निहोत्रादि वेदोक्त कर्म ठीक २ करें जिस से देवता लोग प्रसन्न होकर ठीक २ समय पर वर्षा करें इसी रीति से त्रिलोकी की रक्षादि हो सकती है ॥

यत्प्रजापालनेपुण्यं प्राप्नुवंतीहपार्थिवाः ।
नतुक्रतुसहस्त्रेण प्राप्नुवंतिद्विजोत्तमाः ॥ २९ ॥
अलाभेदेवखातानाम् हृदेषुसरसीषुच ।
उद्धृत्यचतुरःपिण्डान् पारक्येस्नानमाचरेत् ॥३०॥
वसाशुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रंविट्कर्णविण्नखाः ।
श्लेष्मास्थिदूषिकास्वेदोद्वादशैतेनृणांमलाः ॥३१॥
षण्णांषण्णांक्रमेणैव शुद्धिरुक्तामनीषिभिः ।
मृद्वारिभिश्चपूर्वेषा-मुत्तरेषांतुवारिणा ॥ ३२ ॥
शौचंमंगलमायास * अनसूयास्पृहादमः ।

भा०—प्रजा के ठीक पालन करने से इस संसार में जिस पुण्यसुख को राजा प्राप्त होते हैं—उस पुण्य को हजार यज्ञ करने से भी ब्राह्मण लोग नहीं प्राप्त हो सके ॥ २९ ॥ देवताओं के खोदे तीर्थों (गंगा आदि) के अभाव में दूसरे कुंड अथवा तालाबों में से मिट्टी के चार पिंड (ढेले) निकाल कर स्नान करे ॥ ३० ॥ वसा—वीर्य—रुधिर—मज्जा—मूत्र—विष्ठा—कानकामैल—नख, कफ—हाड—नेत्रों का मल और पसीना ये बारह मनुष्यों के मल हैं ॥ ३१ ॥ विद्वान् लोगों ने पहिले वसादि छओं की शुद्धि मिट्टी और जल से तथा पिछले छओं की शुद्धि केवल जल से क्रमशः वर्णन की है ॥ ३२ ॥ शुद्ध रहना—मंगलकाम—परिश्रम करना—दूसरे के गुणों में दोषों को न देखना—तृष्णालोभ

(२९) राजा में यदि १८ प्रकार के दोष न हों और ठीक धर्मानुकूल प्रजा की रक्षा करे तो अवश्य वैसा पुण्य होगा परन्तु ब्राह्मण विरक्त जितेन्द्रिय होके योगाभ्यास सहित तप करे तो उसका पुण्य राजा से भी बहुत बड़ा अवश्य होगा (३३) जैसे अग्नि का लक्षण गर्मी जलका लक्षण शीतलता दीपक का लक्षण प्रकाश द्वारा अन्धकार की निवृत्ति होती है । दीप ज्योति न दीखने पर भी प्रकाश के देखने मात्र से दीपक का होना मानने पड़ता है वैसे उत्तम कक्षा के शौचादि को देख कर जाति से ब्राह्मण होना प्रत्यक्ष न होने पर भी उस को ब्राह्मण ही मानना चाहिये । क्यों कि उक्त गुण कर्म ब्राह्मण पन को सिद्ध करते हैं ॥ * चिन्त्यमेतत् ।

लक्षणानिचविप्रस्य तथादानंदयापिच ॥ ३३ ॥
नगुणान्गुणिनोहन्ति स्तौतिचान्यान्गुणानपि ।
नहसेच्चान्यदोषांश्च सानसूयाप्रकीर्तिता ॥३४॥
अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः ।
आचारेषुव्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते ॥ ३५ ॥
प्रशस्ताचरणंनित्यमप्रशस्तविवर्जनम् ।
एतद्धिमंगलंप्रोक्त मृषिभिर्धर्मवादिभिः ॥ ३६ ॥
शरीरंपीड्यतेयेन शुभेनह्यशुभेनवा ।
अत्यन्तंतन्नकुर्वीत अनायासःसउच्यते ॥ ३७ ॥
यथोत्पन्नेनकर्तव्यः संतोषःसर्ववस्तुषु ।
नस्पृहेत्परदारेषु साऽस्पृहापरिकीर्तिता ॥ ३८ ॥

न करना—इन्द्रियों को विषयों से रोकना—दानदेना—और दयाकरना ये ब्राह्मणों के लक्षण हैं इन का विशेष व्याख्यान ग्रन्थकार नेआगे स्वयं किया है॥३३॥

भा०—गुण वाले के उत्तम गुणों को न छिपावे किन्तुअन्य के गुणोंकी स्तुति करे और अन्य के दोषों की हँसी न करे उसे अनसूया कहते हैं ॥ ३४ ॥ अभक्ष्य वस्तु का त्याग और सज्जनों का संग—और उत्तम आचरणों से न विचलना इसे शौच कहते हैं ॥३५॥ प्रतिदिन उत्तम आचरण का करना और निंदित आचरण को त्याग देना धर्म को कहने वाले ऋषियों ने इसे मंगल कहा है ॥ ३६ ॥ जिस शुभ वा अशुभ कर्म से शरीर विशेष पीड़ित हो उस को अधिक न करना उसे अनायास कहते हैं ॥ ३७ ॥ धर्मानुकूल परिश्रम से जो कुछ अन्न धनादि प्राप्त हो उसी में संतोष करना और पराई स्त्रियों में भोग की इच्छा न करना उस को अस्पृहा कहते हैं ॥ ३८ ॥

(३७) शरीर पीड़ा से मतलब यह है कि शरीर को ऐसी बाधा न पहुंचे जिस से नष्ट हो सके अर्थात्अच्छे काम में भी अधिक श्रम न करे । शरीर बना रहा तो इसी जन्म में अधिक पुण्य कर सकेगा । इस से तपादि में भी उतना कष्ट सहे जिस से शरीर को धक्का न लगे । अर्थात् क्रमशः जप तपादि को बढ़ावे (आत्मानं सततं रक्षेत्)-अपने जीवन की रक्षा निरन्तर करे ॥

बाह्यमाध्यात्मिकंवापि दुःखमुत्पाद्यतेपरैः ।
नकुप्यतिनचाहन्ति दमइत्यभिधीयते ॥ ३९ ॥
अहन्यहनिदातव्य-मदीनेनान्तरात्मना ।
स्तोकादपिप्रयत्नेन दानमित्यभिधीयते ॥ ४० ॥
परस्मिन्बन्धुवर्गेवा मित्रेद्वेष्येरिपौतथा ।
आत्मवद्वर्तितव्यंहि दयैषापरिकीर्तिता ॥ ४१ ॥
यश्चैतैर्लक्षणैर्युक्तो गृहस्थोपिभवेद्द्विजः ।
सगच्छतिपरंस्थानं जायतेनेहवैपुनः ॥ ४२ ॥
इष्टापूर्तंचकर्तव्यं ब्राह्मणेनैवयत्नतः ।
इष्टेनलभतेस्वर्गं पूर्तेमोक्षोविधीयते ॥ ४३ ॥
अग्निहोत्रंतपःसत्यं वेदानांचैवपालनम् ।
आतिथ्यंवैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥ ४४ ॥
वापीकूपतडागादि देवतायतनानिच ।
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते ॥ ४५ ॥

भा०—अन्य लोग भीतरी वा बाहिरी कैसा ही दुःख पहुंचावें तौभी उन पर न क्रोध करे और न उन को तंग करे इस को दम कहते हैं ॥ ३९ ॥ यदि अपने पास थोड़ा ही निर्वाह मात्र अन्न धनादि हो तौभी उसी में से कुछ प्रसन्न चित्त से नित्य २ किसी को दिया करे इस को दान कहते हैं ॥४०॥ कुटुंबी में-मित्र में द्वेष करने योग्य और शत्रु इन सब में अपने आत्मा के समान जो वर्ताव करना है उसे दया कहते हैं ॥ ४१ ॥ जो गृहस्थी भी द्विज इन लक्षणों से युक्त होता है वह उत्तम स्थान ब्रह्मलोक वा मोक्ष को प्राप्त हो जाता है और फिर इस लोक में उत्पन्न नहीं होता ॥४२॥ इष्ट और पूर्त कर्म के करने में ब्राह्मण ही को यत्न करना उचित है इष्ट से स्वर्ग मिलता है और पूर्त से मोक्ष होता है ॥ ४३ ॥ अग्निहोत्र-तप--सत्यभाषण-वेदों की रक्षा—अतिथिका सत्कार और बलिवैश्वदेव करना इन्हें इष्ट कहते हैं ॥४४॥ बावरी कूप, तालाव—देवताओं के मंदिर बनवाना-अन्न का दान करना आराम (बाग) लगवाना इन्हें पूर्त कहते हैं ॥ ४५ ॥

इष्टापूर्तेद्विजातीनां सामान्यैधर्मसाधने ।
अधिकारीभवेच्छूद्रः पूर्तधर्मैनवैदिके ॥ ४६ ॥
यमान्सेवेतसततं ननित्यंनियमान्बुधः ।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥४७॥
आनृशंस्यंक्षमासत्य-महिंसादानमार्जवम् ।
प्रीतिःप्रसादोमाधुर्य्य-मार्दवंचयमादश ॥ ४८ ॥
शौचमिज्यातपोदानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहौ ।
व्रतमौनोपवासञ्च स्नानंचनियमादश ॥ ४९ ॥
प्रतिनिधिंकुशमयं तीर्थवारिषुमज्जति ।
यमुद्दिश्यनिमज्जेत अष्टभागंलभेतसः ॥ ५० ॥
मातरंपितरंवापि भ्रातरंसुहृदंगुरुम् ।

भावार्थ—इष्ट औरपूर्त ये दोनों द्विजाति (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों के सामान्य धर्म हैं और शूद्र पूर्त धर्म का अधिकारी है परन्तु वेदोक्त धर्म का अधिकारी नहीं है ॥ ४६ ॥ बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि यमों का निरंतर सेवन करे और केवल नियमों का नित्य सेवन न करे क्योंकि केवल नियमों का सेवन करता और यमों को न करता हुआ पतित होता है । तात्पर्य यहहै कि यमोंके साथ नियमों का भी सेवन करनेके तब तो बहुत ही अच्छा है । पर ऐसा न होतो केवल यमों का सेवन नित्य नियम से करे क्यों कि केवल नियमों के सेवन करने और यमों का सेवन न करने इन दोनों द-शा में मनुष्य पतित हो जाता है ॥ ४७ ॥ अक्रूरता-क्षमा-सत्य-अहिंसा-दान-नम्रता- प्रीति, प्रसन्नता-मधुरवाणी-कोमलस्वभाव ये दश यम हैं ॥४८॥ शौच-यज्ञ-तप-दान-वेद का पढ़ना-उपस्थ इन्द्रिय को रोकना व्रत-मौन-उपवास-स्नान ये दश नियम हैं ॥ ४९ ॥ जिस मनुष्य की कुशाकी प्रतिनिधि (प्रतिमा) को तनी का उद्देश लेकर तीर्थ के जलों में स्नान करावे तो उस मनुष्य को स्नान के फल का आठवां भाग प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ माता-पिता-भ्राता मित्र और गुरु इन में से जिस के उद्देश (नाम) से पुत्रादि

यमुद्दिश्यनिमज्जेत द्वादशांशफलंभवेत् ॥ ५१ ॥
अपुत्रेणैवकर्तव्यः पुत्रप्रतिनिधिस्सदा ।
पिण्डोदकक्रियाहेतो—र्यस्मात्तस्मात्प्रयत्नतः ॥५२॥
पितापुत्रस्यजातस्य पश्येच्चेज्जीवतोमुखम् ।
ऋणमस्मिन्संनयति अमृतत्वंचगच्छति ॥ ५३ ॥
जातमात्रेणपुत्रेण पितृणामनृणीपिता ।
तदह्निशुद्धिमाप्नोति नरकात्त्रायतेहिसः ॥ ५४ ॥
जायन्तेबहवःपुत्रा यद्येकोपिगयांव्रजेत् ।
यजतेचाश्वमेधंच नीलंवावृषमुत्सृजेत् ॥ ५५ ॥

गोता लगावे उसको स्नान के फल का बारहवां भाग मिलता है ॥ ५१ ॥ पुत्र हीन पुरुष को पिण्ड और जलदान के लिये बड़े यत्न से जिस किसी के पुत्र को प्रतिनिधि (दत्तक पुत्र) करना चाहिये ॥ ५२ ॥ जो पैदा हुये जीवित पुत्र के मुख को पिता देख लेवे तो पुत्र को ऋण सौंप कर पिता पितृ-ऋण से छूट जाता है और मोक्ष को प्राप्त हो जाता है ॥ ५३ ॥ पुत्र के उत्पन्न होने मात्र से ही पिता पितरों का अनृणी हो जाता है और उसी दिन शुद्ध हो जाता है क्योंकि वह पुत्र पिता को नरक से रक्षा करता है ॥ ५४ ॥ उत्पन्न हुये बहुत पुत्रों में से यदि एक पुत्र भी गया जी को जाय अथवा नीले बैल से वृषोत्सर्ग करै वह मानों अश्वमेध यज्ञ करता है ॥ ५५ ॥

वि०:—(५२) श्राद्ध तर्पण का भिन्न भिन्न चला जाना शास्त्रकारों के सिद्धान्तानुसार ऐसा ही आवश्यक है जैसा कि मनुष्य के लिये नित्य २ अन्न जल अपेक्षित है (५३ : ५४) पुत् नाम नरक से पिता की त्राण (रक्षा) करने वाला होने से ही मनु जी ने उस का सार्थक नाम पुत्र रक्खा है। जैसे राजकुमार के उत्पन्न होते ही भविष्यत् में राजकार्य चलाने की आशा सब को हो जाती राज कार्यों का भार रूप ऋण उसी दिन से उस पर आजाता है वैसा यहां भी जानो। (५५) अच्छे काम भी किसी खास स्थान मे जैसे उत्तम होते हैं वैसे सर्वत्र नहीं हो सक्ते जैसे संस्कृत के सार्वभौम पण्डित काशी में ही होते अन्यत्र पढ़ने से नहीं। बेरिस्टरी आदि पास लंदन में ही होता अन्यत्र नहीं। वैसे ही श्राद्ध का सबसे उत्तम स्थान गया क्षेत्र ही है यह सर्वस्मृति सम्मत जानो।

काङ्क्षन्तिपितरःसर्वे नरकान्तरभीरवः ।
गयांयास्यतियःपुत्र-स्सनस्त्राताभविष्यति ॥ ५६ ॥
फल्गुतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वादेवंगदाधरम् ।
गयाशीर्षंपदाक्रम्य मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ५७ ॥
महानदीमुपस्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः ।
अक्षयान्लभतेलोकान् कुलंचैवसमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥
शंकास्थानेसमुत्पन्ने भक्ष्यभोज्यविवर्जिते ।
आहारशुद्धिंवक्ष्यामि तन्मेनिगदतःशृणु ॥ ५९ ॥
अक्षारंलवणंरौक्षं पिबेद्ब्राह्मींसुवर्चलाम् ।
त्रिरात्रंशंखपुष्पींवा ब्राह्मणःपयसासह ॥ ६० ॥
मद्यभांडेद्विजःकश्चि-दज्ञानात्पिबतेजलम् ।
प्रायश्चित्तंकथंतस्य मुच्यतेकेनकर्मणा ॥ ६१ ॥
पालाशबिल्वपत्राणि कुशान्पद्मान्युदुम्बरम् ।

भा०—अन्य २ नरकों से डरते हुये पितर यह चाहते हैं कि जो पुत्र गया को जायगा वह हमारा रक्षक होगा ॥ ५६ ॥ फल्गुतीर्थ में स्नान और गदाधर (जोगया में है) देवता के दर्शन करके और गयासुर के शिर पर चरण रख कर ब्रह्महत्या से भी मनुष्य छूट जाता है ॥५७॥ जो पुरुष महानदी में स्नान करके पितर और देवताओं का तर्पण करताहै वह अक्षय लोकों को प्राप्त होता और अपने कुल का उद्धार करता है ॥५८॥ जहां भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं ऐसे देश में शंका उत्पन्न हो सकती है इस से भोजन की शुद्धि कहते हैं उसको कहते हुए हम से सुनो ॥५९॥ अभक्ष्य भक्षण कर लेनेकी शंका हो गई हो तो खार जिस में न हो ऐसे अन्न, लवण, रूखा अन्न, कांति बढ़ाने वाली ब्राह्मी ओषधि अथवा शंख पुष्पी ओषधि को दूध के संग तीन दिन तक पीवे ॥ ६० ॥ मदिरा के पात्र में यदि कोई द्विज अज्ञान से जलपान करले तो उस का कैसे प्रायश्चित्त हो और वह किस कर्म के करने से दोष से छूटे ? ॥६१॥ उ०:—ढांक तथा बेल के पत्त कुशा, कमल और गूलर, इन के क्वाथ के जल को तीन दिन तक पीने से शुद्ध

क्षाययित्वापिवेदाप—स्त्रिरात्रेणैवशुद्ध्यति ॥ ६२ ॥
सायंप्रातस्तुयःसन्ध्यां प्रमादाद्विक्रमेत्सकृत् ।
गायत्र्यास्तुसहस्रंहि जपेत्स्नात्वासमाहितः ॥ ६३ ॥
रोगाक्रांताथवाऽस्नातः स्थितःस्नानजपाद्बहिः ॥
ब्रह्मकूर्चंचरेद्भक्त्या दानंदत्वाविशुद्ध्यति ॥ ६४ ॥
गवांशृंगोदकेस्नात्वा महानद्युपसंगमे ।
समुद्रदर्शनेवापि व्यालदष्टःशुचिर्भवेत् ॥ ६५ ॥
वृकश्वानशृगालैस्तु यदिदष्टस्तुब्राह्मणः ।
हिरण्योदकसंमिश्रं घृतंप्राश्यविशुद्ध्यति ॥ ६६ ॥
ब्राह्मणीतुशुनीदष्टा जंबुकेनवृकेणवा ।
उदितंग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वासद्यःशुचिर्भवेत् ॥ ६७ ॥
सव्रतस्तुशुनादष्ट—स्त्रिरात्रमुपवासयेत् ।
सघृतंपावकंप्राश्य व्रतशेषंसमापयेत् ॥ ६८ ॥

हो जाता है॥६२॥ सायं वा प्रातःकाल यदि प्रमाद से संध्योपासनको जो त्याग दे तो स्नान कर सावधान होके एक सहस्र गायत्री का जपकरे ॥६३॥ किसी रोग के कारण रोग जो स्नान न करसके और स्नान करके जो जप न कर सके वह मनुष्य भक्ति से ब्रह्मकूर्चव्रत कर और दान देकर शुद्ध होता है ॥ ६४ ॥ जिस मनुष्य को सांपने काटा हो वह गौओंके सींगों के जल से अथवा बड़ी नदी गंगा यमुना आदि के संगम में स्नान करके अथवा समुद्र के दर्शन से शुद्ध होता है ॥ ६५ ॥ भेड़िया—कुत्ता और गीदड़ ने जिस ब्राह्मण को काटा हो वह सोने के जल से मिले घीको खाकर शुद्ध होता है ॥ ६६ ॥ जिस ब्राह्मणी को कुत्ती, गीदड़ी अथवा भिड़िया काटे तो वह उदय हुए ग्रह नक्षत्रों के दर्शन करने से शीघ्र ही शुद्ध हो जाती है ॥ ६७ ॥ चान्द्रायणादि व्रतवाला ब्राह्मण कुत्ते के काटने से तीन दिन तक उपवास करे फिर घृत सहित चीते की छाल के चूर्ण को खाकर शेष व्रत को समाप्त करे ॥ ६८ ॥

मोहात्प्रमादात्संलोभा-द्व्रतभंगंतुकारयेत् ।
त्रिरात्रेणैवशुद्ध्येत पुनरेवव्रतीभवेत ॥ ६९ ॥
ब्राह्मणानांयदुच्छिष्ट-मश्नात्यज्ञानतोद्विजः ।
दिनद्वयंतुगायत्र्या जपंकृत्वाविशुद्ध्यति ॥ ७० ॥
क्षत्रियान्नंयदुच्छिष्ट-मश्नात्यज्ञानतोद्विजः ।
त्रिरात्रेणभवेच्छुद्धि-र्यथाक्षत्रेतथाविशि ॥ ७१ ॥
अभोज्यान्नंतुभुक्त्वान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेववा ।
जग्ध्वामांसंसमक्षंच सप्तरात्रंयवान्पिबेत् ॥ ७२ ॥
असंस्पृष्टेनसंस्पृष्टः स्नानंतेनविधीयते ।
तस्यचोच्छिष्टमश्नीया-त्षण्मासान्कृच्छ्रमाचरेत् ॥७३॥
अज्ञानात्प्राश्यविण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेववा ।
पुनःसंस्कारमर्हंति त्रयोवर्णाद्विजातयः ॥ ७४ ॥

भा०:—मोह प्रमाद अथवा लोभ से जो व्रत को बिगाड़ दे तो वह तीन दिन उपवास कर शुद्ध होता है और फिर व्रत वाला हो जाता है ॥ ६९ ॥ जो ब्राह्मण अज्ञान से ब्राह्मणों के उच्छिष्ट को खाले तो दो दिन तक गायत्री का जप कर के शुद्ध होता है ॥ ७० ॥ क्षत्रिय अथवा वैश्य के उच्छिष्ट को जो ब्राह्मण अज्ञान से भक्षण करले तो तीन दिन गायत्री के जप से शुद्ध होता है ॥ ७१ ॥ भक्षण के अयोग्य अन्न को अथवा स्त्री और शूद्र के उच्छिष्ट अन्न को अथवा प्रत्यक्ष में मांस को खाकर ब्राह्मण सात दिन तक एक बार जौ के सत्तू पीवे ॥७२॥ स्पर्श करने के अयोग्य चाण्डालादि का जो मनुष्य स्पर्श करे तो वह स्नान करने से ही शुद्ध होजाता है और उस के झूठे अन्न को खाकर छः महीने तक कृच्छ्र व्रत करे ॥७३॥ अज्ञान से विष्ठा मूत्र अथवा मदिरा जिस में मिली हो ऐसी वस्तु के खाने से तीनों (द्विजाति) वर्ण फिर संस्कार के योग्य होते हैं ॥ ७४ ॥

विशे:—(७४) उन २ प्रायश्चित्तों से उस २ अनिष्ट की शुद्धि ऐसे ही जानो कि जैसे कि उस २ औषधि से उस २ रोग की निवृत्ति होती है ॥

वपनंमेखलादंडं भैक्षचर्याव्रतानिच ।
निवर्ततेद्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥ ७५ ॥
गृहशुद्धिंप्रवक्ष्यामि अंतःस्थशवदूषिताम् ।
प्रयोज्यंमृन्मयंभांडं सिद्धमन्नंतथैवच ॥ ७६ ॥
गृहान्निष्क्रम्यतत्सर्वं गोमयेनोपलेपयेत् ।
गोमयेनोपलिप्याथ छागेनाघ्रापयेत्पुनः ॥ ७७ ॥
ब्राह्मैमंत्रैश्चपूतंतु हिरण्यकुशवारिभिः ।
तेनैवाभ्युक्ष्यतद्वेश्म शुद्ध्यतेनात्रसंशयः ॥७८॥
राज्ञाऽन्यैःश्वपचैर्वापि बलाद्विचलितोद्विजः ।
पुनःकुर्वीतसंस्कारं पश्चात्कृच्छ्रत्रयंचरेत् ॥ ७९ ॥
शुनाचैवतुसंस्पृष्ट-स्तस्यस्नानंविधीयते ।
तदुच्छिष्टंतुसंप्राश्य यत्नेनकृच्छ्रमाचरेत् ॥ ८० ॥
अतःपरंप्रवक्ष्यामि सूतकस्यविनिर्णयम् ।

मुंडन-मेखला तथा-दंड का धारण-भिक्षा का मांगना-और व्रत ये सब काम (जो यज्ञोपवीत के समय होते हैं) पुनः संस्कार में नहीं होते किन्तु निवृत्त होजाते हैं ॥ ७५ ॥ भीतर पड़ा है शव (मुर्दा) जिस में ऐसे घर की शुद्धि कहते हैं मिट्टी के पात्रों को वर्ते और सिद्ध (अन्य ने बनाये) अन्न को भक्षण करे ॥७६॥ घर से बाहर मुर्दे को निकाल कर गोबर से घर को लिपावे और गोबर से लिपा कर बकरा से सुंघावे (बकरे का मुख शुद्ध होता है) ॥ ७७ ॥ जिनका देवता ब्रह्मा है ऐसे वेद मंत्रों के पाठ से पवित्र किये घर को सोने और कुशाओं के जल द्वारा वेद मन्त्रों से छिड़कने से शुद्ध होता है इस में संशय नहीं है ॥ ७८ ॥ राजा वा अन्य चांडालादि ने यदि द्विज को बलात्कार धर्म से चलायमान किया हो तो वह द्विज फिर संस्कार करे और पीछे तीन कृच्छ्रव्रत करै ॥ ७९ ॥ जिस को कुत्ते ने छूलिया हो वह स्नान करे और कुत्ते के झूठ को खाकर यत्न से कृच्छ्र व्रत करे ॥ ८० ॥ इस से आगे सूतक का निर्णय

प्रायश्चित्तंपुनश्चैव कथयिष्याम्यतःपरम् ॥ ८१ ॥
एकाहाच्छुद्ध्यतेविप्रो योग्निवेदसमन्वितः ।
त्र्यहात्केवलवेदस्तु निर्गुणोदशभिर्दिनैः ॥ ८२ ॥
व्रतिनःशास्त्रपूतस्य आहिताग्नेस्तथैवच ।
राज्ञांतुसूतकंनास्ति यस्यचेच्छंतिब्राह्मणाः ॥ ८३ ॥
ब्राह्मणोदशरात्रेण द्वादशाहेनभूमिपः ।
वैश्यःपञ्चदशाहेन शूद्रोमासेनशुद्ध्यति ॥ ८४ ॥
सपिंडानांतुसर्वेषां गोत्रजःसप्तपौरुषः ।
पिंडांश्चोदकदानंच शावाशौचंतथानुगम् ॥ ८५ ॥
चतुर्थेदशरात्रंस्यात्षडहःपंचमेतथा ।
षष्ठेचैवत्रिरात्रंस्यात् सप्तमेत्र्यहमेववा ॥ ८६ ॥
मृतसूतकेतुदासीनां पत्नीनांचानुलोमिनाम् ।
स्वामितुल्यंभवेच्छौचं मृतेभर्तरियौनिकम् ॥ ८७ ॥

कहते हैं और उस के आगे प्रायश्चित्त (पाप की शुद्धि) कहेंगे ॥ ८१ ॥ जो ब्राह्मण अग्निहोत्री और वेदपाठी भी हो वह एक दिन में शुद्ध होता है जो केवल वेदपाठी ही हो वह तीन दिन में और (निर्गुण) जो न अग्निहोत्री हो और न वेदपाठी हो वह ब्राह्मण दश दिन में शुद्ध होता है ॥ ८२ ॥ व्रतवाला हो वा शास्त्र के अनुसार पवित्र हो अथवा जो अग्निहोत्र करता हो और राजा को सूतक नहीं लगता और जिस के सूतक को ब्राह्मण न चाहैं उस को भी सूतक नहीं लगता ॥८३॥ ब्राह्मण दश दिन में क्षत्रिय बारह दिन में वैश्य पंद्रह दिन में और शूद्र एक महीने में शुद्ध हो जाता है ॥ ८४ ॥ सब सपिंडों में सात पीढ़ी पर्यन्त गोत्रज होता है उस को पिंडों के दान का जल दान का और सब के आशौच का अधिकार है ॥ ८५ ॥ चौथी पीढ़ी तक दश दिन और पांचवीं पीढ़ी में छदिन, और छठी पीढ़ी में तीन दिन और सातवीं में तीन दिन का आशौच होता है ॥८६॥ मरे के सूतक में दासी और अनुलोम (पति से नीचे वर्ण की) पत्नियोंको पतिके तुल्य शौच होताहै और पति के मरने पर अपनी योनि (जाति के अनुसार) का शौच होता है ॥८७॥

शवस्पृष्टस्तृतीयेन सचैलस्नानमाचरेत् ।
चतुर्थेसप्तभिक्षंस्या-देषशावविधिःस्मृतः ॥ ८८ ॥
एकत्रसंस्कृतानांतु मातृणामेकभोजिनाम् ।
स्वामितुल्यंभवेच्छौचं विभक्तानांपृथक्पृथक् ॥८९॥
उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरं पक्वान्नंमृतसूतके ।
पावकान्नंनवश्राद्धं भुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत् ॥ ९० ॥
सूतकान्नमधर्माय यस्तुप्राश्नातिमानवः ।
त्रिरात्रमुपवासःस्या-देकरात्रंजलेवसेत् ॥ ९१ ॥
महायज्ञविधानंतु नकुर्यान्मृतजन्मनि ।
होमंतत्रप्रकुर्वीत शुष्कान्नेनफलेनवा ॥ ९२ ॥
बालस्त्वन्तर्दशाहेतु पंचत्वंयदिगच्छति ।

जिस तीसरी पीढ़ी के मनुष्य ने मुर्दे का स्पर्श किया हो वह सचैल स्नान करे और चौथी पीढ़ी का मनुष्य सात घर की भिक्षा का भक्षण करे-यह शव (मुर्दे) के सूतक की विधि शास्त्र में कही है ॥ ८८ ॥ एक पुरुष के साथ जिन का विवाह संस्कार हुआ और जो एक चौके में नित्य भोजन करती हों ऐसी माताओं को पति की जाति के समान शौच होता है और जो पृथक् २ रहती हों तो अपनी २ जाति का शौच होता है ॥ ८९ ॥ ऊँटनी और भेड़ का दूध तथा मृतसूतक में पक्वान्न और रसोइया का अन्न और नवक श्राद्ध जो मृतक के निमित्त ग्यारहवें दिन होता है इन को खाकर चान्द्रायण व्रत करे ॥९०॥ जो मनुष्य सूतक का अन्न खाता है वह तीन दिन उपवास करे और एक दिन रात जल में रहे क्योंकि मरण या जन्म सम्बन्धी दोनों प्रकार के सूतक वालों का अन्न शुद्धि से पहिले अधर्म का निमित्त होता है ॥ ९१ ॥ मृतक और जन्म के सूतक में पञ्चमहायज्ञ न करे किन्तु उस समय शुष्क अन्न अथवा फल से होम मात्र करे ॥ ९२ ॥ जो जन्मा बालक दश दिन के अन्तर्गत ही मृत्यु को प्राप्त हो जावे तो शीघ्र ही शुद्ध होजाती है मरण

सद्यएवविशुद्धिःस्या-न्नप्रेतंनैवसूतकम् ॥९३॥
कृतचूडेप्रकुर्वीत उदकंपिंडमेवच ।
स्वधाकारंप्रकुर्वीत नामोच्चारणमेवच ॥ ९४ ॥
ब्रह्मचारीयतिश्चैव मन्त्रेपूर्वंकृतेतथा ।
यज्ञेविवाहकालेच सद्यःशौचंविधीयते ॥९५॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरामृतसूतके ।
पूर्वसंकल्पितार्थस्य नदोषश्चात्रिरब्रवीत् ॥९६॥
मृतसंजननोर्द्धं तु सूतकादौविधीयते ।
स्पर्शनाचमनाच्छुद्धिः सूतिकाञ्चेन्नसंस्पृशेत् ॥९७॥
पंचमेहनिविज्ञेयं संस्पर्शंक्षत्रियस्यतु ।
सप्तमेहनिवैश्यस्य विज्ञेयंस्पर्शनंबुधैः ॥९८॥
दशमेहनिशूद्रस्य कर्तव्यंस्पर्शनंबुधैः ।

और जन्म के दोनों सूतक नहीं लगते अर्थात् दश आदि दिन में शुद्धि का नियम वहां नहीं रहेगा ॥ ९३ ॥ जो मुंडन करने के पीछे बालक का मृत्यु होवे तो पिंड और जल का दान तथा स्वधाकार एवं नाम का उच्चारण करें ॥ ९४ ॥ ब्रह्मचारी-संन्यासी और सूतक से पूर्व मंत्र के जप का अनुष्ठान प्रारंभ करने वाले को तथा यज्ञ और विवाह के समय में, उसी समय शुद्धि होजाती है ॥ ९५ ॥ विवाह-उत्सव और यज्ञ में जो मरण का या जन्म का सूतक होजाय तो पूर्व से संकल्प वस्तु के लेने वा खाने आदि में दोष नहीं यह अत्रि जी ने कहा है ॥९६॥ यदि मरा हुआ बालक जन्मे तो सूतक के आरंभ में ही जल का स्पर्श तथा आचमन करने से शुद्धि हो जाती है परन्तु सूतिका का स्पर्श न करे तो ॥ ९७ ॥ दोनों प्रकार के सूतक में पांचवें दिन क्षत्रिय का और सातवें दिन वैश्य का स्पर्श करना बुद्धिमानों को मानना चाहिये ॥ ९८ ॥ दशवें दिन शूद्र का स्पर्श बुद्धिमान् करे । परन्तु मरण

मासेनैवात्मशुद्धिःस्यात् सूतकेमृतकेतथा ॥९९॥
व्याधितस्यकदर्यस्य ऋणग्रस्तस्यसर्वदा ।
क्रियाहीनस्यमूर्खस्य स्त्रीजितस्यविशेषतः ॥१००॥
व्यसनासक्तवित्तस्य पराधीनस्यनित्यशः ।
श्राद्धत्यागविहीनस्य भस्मान्तंसूतकंभवेत् ॥१०१॥
द्वेकृच्छ्रे परिवित्तेस्तु कन्यायाःकृच्छ्रमेवच ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रंमातुःस्यात्पितुःसांतपनंकृतम् ॥१०२॥
कुब्जवामनषण्ढेषु गद्गदेषुजडेषुच ।
जात्यन्धेवधिरेमूके नदोषःपरिवेदने ॥१०३॥
क्लीबेदेशान्तरस्थेच पतितेव्रजितेऽपिवा ।
योगशास्त्राभियुक्तेच नदोषःपरिवेदने ॥१०४॥

और जन्म दोनों प्रकार के सूतक में एक महीने में अपनी (शूद्र की) शुद्धि होती है ॥ ९९ ॥ रोगी—कृपण, जो सदा ऋणी रहै—क्रिया से हीन—मूर्ख विशेष कर स्त्री ने जिसे जीता हो अर्थात् सदा स्त्री के आधीन जो रहे ॥१००॥ जुआ आदि व्यसनों में जिस का धनादि लगा हो और जो नित्य पराधीन हो—जो कभी भी श्राद्ध के भोजन को न त्यागता हो, इतने मनुष्यों को मृतक के भस्म करने तक सूतक रहता है अर्थात् उन को जीवन पर्यन्त सदा ही सूतक लगा रहता है ॥ १०१ ॥ परिवित्ति (जिस ने बड़े भाई के विवाह से पहले अपना विवाह किया हो) को दो कृच्छ्र व्रत कन्या को एक कृच्छ्र, और कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्र कन्या की माता को, और पिता को सांतपन कृच्छ्र करना चाहिये ॥ १०२ ॥ कुबड़ा वामन (बौना) षंढ (नपुंसक) तोतला, बावला—जन्म से अंधा, बहरा—गूंगा—ऐसे बड़े भाइयों से पहिले छोटा भाई विवाह करे तो कुछ दोष नहीं है ॥ १०३ ॥ नपुंसक, दूर परदेश में रहता हो, पतित, संन्यासी—योगशास्त्र में तत्पर इनके भी परिवेदन में दोष नहीं है १०४

पितापितामहोयस्य अग्रजोवापिकस्यचित् ।
अग्निहोत्राधिकार्यस्ति नदोषःपरिवेदने ॥१०५॥
भार्यामरणपक्षेवा देशान्तरगतेपिवा ।
अधिकारीभवेत्पुत्र-स्तथापातकसंयुगे ॥ १०६ ॥
ज्येष्ठोभ्रातायदानष्टो नित्यंरोगसमन्वितः ।
अनुज्ञातस्तुकुर्वीत शंखस्यवचनंयथा ॥ १०७ ॥
नाग्नयःपरिविन्दन्ति नवेदानतपांसिच ।
नचश्राद्धंकनिष्ठोवै विनाचैवाभ्यनुज्ञया ॥ १०८ ॥
तस्माद्धर्मंसदाकुर्यात्-श्रुतिस्मृत्युदितंचयत् ।
नित्यंनैमित्तिकंकाम्यं यच्चस्वर्गस्यसाधनम् ॥१०९॥
एकैकंवर्द्धयेन्नित्यं शुक्लेकृष्णेचह्रासयेत् ।
अमावास्यांनभुञ्जीतएपचांद्रायणोविधिः ॥ ११० ॥

जिस का पिता, पितामह या बड़ा भाई अग्निहोत्र का अधिकारी हो उस को बड़े भाई से पूर्व विवाह करने में दोष नहीं है ॥ १०५ ॥ पिता की स्त्री या पुत्र की माता के मरने पर, पिता के परदेश में जाने पर अथवा पिता को पातक लगने पर पिता के स्थान पर पुत्र अग्निहोत्र आदि कर्मों का अधिकारी होता है ॥१०६॥ यदि बड़ा भाई खोगया हो यद्वा सदा रोगी रहता हो तो उस की आज्ञा से छोटा भाई शंख ऋषि के वचनके अनुसार विवाहकरके अग्निहोत्रलेलेवे ॥१०७॥ छोटे भाई ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा के विना न अग्निहोत्र कर सकते, न वेद पढ़ सकते, न तप करसकते, और न श्राद्ध कर सकते हैं ॥ १०८ ॥ अतएव वेद और स्मृतियों में कहे हुए नित्य (सन्ध्या आदि) नैमित्तिक (जात कर्म आदि) काम्य (पुत्रेष्टि आदि) कर्म जो स्वर्ग का साधन (दान आदि) रूप धर्म है उसे सदा करे ॥ १०९ ॥ शुक्ल पक्ष में एकर ग्रास बढ़ावे और कृष्णपक्ष में एक २ ग्रास घटावे एवं अमावास्या को भोजन सर्वथा न करे यह चांद्रायण व्रत की विधि है ॥ ११० ॥

एकैकंग्रासमश्नीयात् त्र्यहाणित्रीणिपूर्ववत् ।
त्र्यहंपरंचनाश्नीया-दतिकृच्छ्रं तदुच्यते ॥ १११ ॥
इत्येतत्कथितंपूर्वै-र्महापातकनाशनम् ।
वेदाभ्यासरतंक्षान्तं महायज्ञक्रियापरम् ॥ ११२ ॥
नस्पृशन्तीहपापानि महापातकजान्यपि ।
वायुभक्षोदिवातिष्ठे द्रात्रींनीत्वाप्सुसूर्यदृक् ॥११३॥
जप्त्वासहस्रंगायत्र्याः शुद्धिर्ब्रह्मवधादृते ।
पद्मोदुंबरविल्वाश्च कुशाश्वत्थपलाशकाः ॥ ११४ ॥
एतेषामुदकंपीत्वा पर्णकृच्छ्रं तदुच्यते ।
पंचगव्यंचगोक्षीरंदधिमूत्रंशकृद्घृतम् । ११५ ॥
जग्ध्वापरेन्ह्युपवसे-त्कृच्छ्रं सांतपनंस्मृतम् ।
पृथक्सांतपनैर्द्रव्यैः पडहःसोपवासकः ॥११६॥

प्रथम तीन दिन तक एक २ ग्रास का भोजन करै और अगले तीन दिन में सर्वथा भोजन न करै इस को अतिकृच्छ्र व्रत कहते हैं ॥ १११ ॥ वेदों के अभ्यास में तत्पर तथा क्षमा और पांच महायज्ञों के करने में रत के लिये पूर्वज ऋषियों ने महापातक के नाश करने वाला यह प्रायश्चित्त कहा है ॥११२॥ जो दिन में सूर्य को देखता हुआ वायु को खाकर रहै और रात्रि को जलों में खड़ा हो व्यतीत करै उस को इस लोक में महापातक से उत्पन्न हुए पाप भी स्पर्श नहीं करते ॥ ११३ ॥ एक हजार गायत्री का जप करके ब्रह्महत्या से भिन्न सब पापों से शुद्धि होती है—कमल—गूलर—बेल—कुशा पीपल और ढाक ॥११४॥ इन के जल को पीकर दिन को व्यतीत करै उसे पर्णकृच्छ्र व्रत कहते हैं पंच गव्य ये हैं कि गौका दूध दही, मूत्र, गोबर—घी ॥ ११५ ॥ इन को प्रथम दिन खाकर अगले एक दिन उपवास करे इसे सांतपनकृच्छ्र कहते हैं—सांतपनकृच्छ्र के पञ्चगव्य तथा कुशोदक इन छः पदार्थों को क्रमशः एक २ दिन खाकर छः दिन व्यतीत करे और एक सातवें दिन उपवास करे ॥ ११६ ॥

सप्ताहेनतुकृच्छ्रोयं महासांतपनंस्मृतम् ।
त्र्यहंसायंत्र्यहंप्रातस्त्र्यहंभुङ्क्तेत्वयाचितम् ॥११७॥
त्र्यहंपरंचनाश्नीयात्प्राजापत्योविधिःस्मृतः ।
सायंतुद्वादशग्रासाः प्रातःपंचदशस्मृताः ॥११८॥
अयाचितैश्चतुर्विंश परैस्त्वनशनंस्मृतम् ।
कुक्कुटाण्डप्रमाणंस्याद् यावद्वास्याविशेन्मुखे ॥११९॥
एतद्ग्रासंविजानीया-च्छुद्ध्यर्थंकायशोधनम् ।
त्र्यहमुष्णंपिबेदाप-स्त्र्यहमुष्णंपिबेत्पयः ॥ १२० ॥
त्र्यहमुष्णंघृतंपीत्वा वायुभक्षोदिनत्रये ।
षट्पलानिपिबेदाप-स्त्रिपलंतुपयःपिबेत्* ॥१२१॥
पलमेकंतुवैसर्पि-स्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ।
त्र्यहंतुदधिनाभुङ्क्ते त्र्यहंभुङ्क्तेचसर्पिषा ॥१२२॥

यह सात दिन में महासांतपनकृच्छ्र कहा है तीन दिन सायंकाल में तीन दिन प्रातःकाल में भोजन करे तथा तीन दिन बिना मांगे जो मिले उसे भोजन करे ॥ ११७ ॥ और अन्त के तीन दिनों में सर्वथा भोजन न करे यह प्राजापत्य की विधि कही है--सायंकाल को बारह ग्रास और प्रातः काल को पन्द्रह कहे हैं ॥११८॥ बिना याचना के तीन दिनों में चौबीस ग्रास खाने से श्रेष्ठ ऋषियों ने अनशन व्रत कहा है मुरगे के अण्डे के समान एक ग्रास का प्रमाण होवे अथवा जितना प्रति के मुख में समाके वही उस का एक ग्रास है ॥ ११९ ॥ शुद्धि के अर्थ इसे ग्रास जाने और यही देह की शुद्धि करने वाला है-तीन दिन गर्म जल पीवे और तीन दिन गर्म दूध पीवे ॥ १२० ॥ तीन दिन गरम घी पीकर अन्त के-तीन दिन वायु का भक्षण करे, छः पल जल पीवे और तीन पल दूध पीवे ॥ १२१ ॥ एक पल घी पीवे इसे तप्त-कृच्छ्रव्रत कहते हैं-तीन दिन दही भोजन करे और तीन दिन घी ॥ १२२ ॥

* चार तोला का एक पल कहाता है ॥

क्षीरेणतुत्र्यहंभुङ्क्ते वायुभक्षोदिनत्रयम् ।
त्रिपलंदधिक्षीरेण पलमेकंतुसर्पिषा ॥१२३॥
एतदेवव्रतंपुण्यं वैदिकंकृच्छ्रमुच्यते ।
एकभुक्तेननक्तेन तथैवायाचितेनच ॥१२४॥
उपवासेनचैकेन पादकृच्छ्रंप्रकीर्तितम् ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रःपयसा दिवसानेकविंशतिः ॥१२५॥
द्वादशाहोपवासेन पराकःपरिकीर्तितः ।
पिण्याकश्चामतक्रांबु सक्तूनांप्रतिवासरम् ॥ १२६ ॥
एकैकमुपवासःस्या- त्सौम्यकृच्छ्रःप्रकीर्तितः ।
एषांत्रिरात्रमभ्यासा-देकैकस्ययथाक्रमम् ॥ १२७ ॥
तुलापुरुषइत्येष ज्ञेयःपंचदशाह्निकः ।
कपिलायास्तुदुग्धाया धारोष्णंयत्पयःपिबेत् ॥ १२८ ॥
एषव्यासकृतःकृच्छ्रः श्वपाकमपिशोधयेत् ।
निशायांभोजनंचैव तज्ज्ञेयंनक्तमेवतु ॥ १२९ ॥

तीन दिन दूध को और तीन दिन वायु को भक्षण करे, दही और दूध तीन २ पल और घी एक पल भोजन करे ॥१२३॥ यही पवित्र और वेदोक्त कृच्छ्रव्रत कहा है-एक दिन हविष्य वस्तु का भोजन करे द्वितीयदिनबिना मांगे जो पदार्थ मिलैउसीकाभोजन करे ॥१२४॥ और एक तीसरे दिन अन्त में उपवास करने से यह तीन दिन का पादकृच्छ्र कहाहै-दूध को ही पीकर इक्कीसदिन बिताने से कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत कहा है १२५॥ बारह दिन के उपवास से पराक व्रत कहा है। खली-कच्चा मठा जल और सत्तू इनको क्रम से एक २ दिन खावे॥१२६॥ और एक उपवास करै इसे सौम्यकृच्छ्र कहते हैं। इन पांचों में से एक २ के तीन दिन क्रम से अभ्यास करने से ॥१२७॥ यह पंद्रह दिन का तुला पुरुषव्रत है दुही हुई कपिला गौ के धारोष्ण दूध को जो पीवे ॥१२८॥ यह व्यास जी कृत (किया) कृच्छ्रव्रत चांडाल को भी शुद्ध करता है रात्रि में ही जो भोजन हो उसे नक्त कहते हैं ॥ १२९ ॥

अनादिष्टेषुपापेषु चान्द्रायणमथोदितम् ।
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टैर्द्विगुणदक्षिणैः ॥ १३० ॥
यत्फलंसमवाप्नोति तथाकृच्छ्रैस्तपोधनाः ।
वेदाभ्यासरतःक्षान्तो नित्यंशास्त्राण्यवेक्षयेत् ॥ १३१ ॥
शौचमृद्वार्यभिरतो गृहस्थोपिहिमुच्यते ।
उक्तमेतद्द्विजातीनां महर्षेश्रूयतामिति ॥ १३२ ॥
अतःपरंप्रवक्ष्यामि स्त्रीशूद्रपतनानिच ।
जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्यामन्त्रसाधनम् ॥ १३३ ॥
देवताराधनंचैव स्त्रीशूद्रपतनानिषट् ।
जीवद्भर्तरियानारी उपोष्यव्रतचारिणी ॥ १३४ ॥
आयुष्यंहरतेभर्तुः सानारीनरकंव्रजेत् ।
तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकंपिबेत् ॥ १३५ ॥

अनादिष्टपापों (जिन का शास्त्र में प्रायश्चित नहीं है) की शुद्धि में चान्द्रायण कहा है—दुगुण दक्षिणा वाले अग्निष्टोम आदि यज्ञों के करने से ॥ १३० ॥ जिन फलों को प्राप्त होना है उन्हीं फलों को कृच्छ्रों के करने से हे तपस्वियो ! मनुष्य प्राप्त होता है और वेद के पढ़ने में तत्पर दुर्धर्ष और नित्य शास्त्र के देखने वाले को भी यही फल मिलता है ॥ १३१ ॥ जो गृहस्थी पुरुष मिट्टी और जल से शौच करता है वह पापों से मुक्त हो जाता है हे महर्षियो ! तुम सुनो यह द्विजातियों का धर्म कहा है ॥ १३२ ॥ इस से आगे स्त्री और शूद्रों के पतित होने के कारणों को कहेंगे जप—तप—तीर्थों की यात्रा—संन्यास मन्त्र को सिद्ध करना ॥ १३३ ॥ और देवताओं की आराधना ये छः कर्म स्त्री और शूद्रों के पतन के हेतु हैं जो स्त्री पति के जीते हुए उपवास व्रत करती है ॥ १३४ ॥ वह अपने पति की अवस्था को न्यून करती है और स्वयं नरक को जाती है यदि स्त्री को तीर्थ के स्नान की इच्छा हो तो अपने पति के चरणों को धोकर पीवे ॥ १३५ ॥

शंकरस्यापिविष्णोर्वा प्रयातिपरमंपदम् ।
जीवद्भर्तरिवामाङ्गी मृतेवापिसुदक्षिणे ॥ १३६ ॥
श्राद्धे यज्ञेविवाहेच पत्नीदक्षिणतःसदा ।
सोमःशौचंददौतासां गंधर्वाश्चतथाङ्गिराः ॥ १३७ ॥
पावकःसर्वमेध्यंच मेध्यंवैयोषितांसदा ।
जन्मनाब्राह्मणोज्ञेयः संस्कारैर्द्विजउच्यते ॥१३८॥
विद्ययायातिविप्रत्वं श्रोत्रियस्त्रिभिरेवच ।
वेदशास्त्राण्यधीतेयः शास्त्रार्थंचनिबोधयेत् ॥१३९॥
तदासौवेदविद्प्रोक्तो वचनंतस्यपावनम् ।
एकोपिवेदविद्धर्मं यंव्यवस्येद्द्विजोत्तमः ॥१४०॥
सज्ञेयःपरमोधर्मो नाज्ञानामयुतायुतैः ।
पावकाइवदीप्यन्ते जपहोमैर्द्विजोत्तमाः ॥१४१॥

भावार्थ—तथा शिव विष्णु की प्रतिमा के चरणोदक को श्रद्धा से पीवे तोभी वह परम पद नाम मोक्ष को प्राप्त होती है—पतिके जीते हुए स्त्री वाम अंग में स्थित होती है और पति के मरे पीछे दक्षिण अंग में ॥ १३६ ॥ श्राद्ध—यज्ञ और विवाह में सदा पत्नी दक्षिण की ओर बैठती है चन्द्रमा गन्धर्व और अंगिरा (बृहस्पति) ने उन स्त्रियों को शौच (शुद्धता) दियी है ॥१३७॥ और अग्नि ने सब अंगों को पवित्रता दी है इसी से स्त्रियों को सदा पवित्रता है—जन्मसे ब्राह्मण संज्ञा होतीहै—औरसंस्कारों से द्विज कहाताहै ॥१३८॥ विद्या के पढ़ने से विप्रत्व को प्राप्त होता तथा जन्म, यज्ञोपवीत, और वेद विद्या से श्रोत्रिय संज्ञा होती है जो वेद और शास्त्र को पढ़े और शास्त्र के अर्थ को बतावे ॥ १३९ ॥ उस ब्राह्मण को वेदवित् कहते हैं उस का वचन पवित्र करने वाला है एक भी वेद का जानने वाला ब्राह्मण जिस धर्म का निर्णय करदे ॥ १४० ॥ वही परम धर्म जानना चाहिये तथा मूर्खों के दश सहस्रों के दश सहस्र भी जिसे कहैं वह धर्म नहीं जानना चाहिये—जप और होम करने से ब्राह्मण लोग अग्नि के समान तेजस्वी होते हैं ॥१४१॥

प्रतिग्रहेणनश्यन्ति वारिणाइवपावकः ।
तान्प्रतिग्रहजान्दोषान्-प्राणायामैर्द्विजोत्तमाः ॥१४२॥
नाशयन्तिहिविद्वांसो वायुर्मेघानिवाम्बरे ।
भुक्तमात्रोयदाविप्र आर्द्रपाणिस्तुतिष्ठति ॥१४३॥
लक्ष्मीर्बलंयशस्तेज आयुश्चैवप्रहीयते ।
यस्तुभोजनशालाया-मासनस्थउपस्पृशेत् ॥१४४॥
तस्यान्ननैवभोक्तव्यं भुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत् ।
पात्रोपरिस्थितेपात्रे यस्तुस्थाप्यउपस्पृशेत् ॥१४५॥
तस्यान्ननैवभोक्तव्यं भुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत् ।
नदेवास्तृप्तिमायान्ति दातुर्भवतिनिष्फलम् ॥१४६॥
हस्तंप्रक्षालयित्वायः पिबेद्भुक्त्वाद्विजोत्तमः ।
तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाःपितरोगताः ॥ १४७ ॥

भा० प्रतिग्रह लेने से ब्राह्मण ऐसे नष्ट हो जाते हैं जैसे जल से अग्नि, उन प्रतिग्रह से उत्पन्न हुए दोषों को ब्राह्मण लोग प्राणायामों से ॥१४२॥ ऐसे नष्ट करते हैं जैसे आकाश में मेघों को वायु-जो ब्राह्मण भोजन करने के अनन्तर आर्द्र (गीले) हाथ रक्खे ॥१४३॥ तो लक्ष्मी-बल-यश-तेज-और अवस्था ये पांचों उस के नष्ट हो जाते हैं। जो भोजन के स्थान में आसन पर स्थित हुआ भोजन करते समय अन्न को छूले ॥१४४॥ तो उस अन्न को फिर स्वयं वा अन्य न खावे और खाय तो चान्द्रायण व्रत करे-पात्र के ऊपर रक्खे हुए पात्र का जो स्पर्श करले ॥१४५॥ तो उस पात्र के अन्न को भी भक्षण न करे और भक्षण करले तो चान्द्रायण व्रत करे, न तो उस के देवता तृप्त होते और दाता का दिया दान भी निष्फल होता है ॥१४६॥ हे ऋषि लोगो ! जो पुरुष भोजन करके पश्चात् हाथों को धोकर उसी जल को पीता है उस के श्राद्ध के अन्न को मानो राक्षसों ने खाया और पितर निराश गये ॥ १४७ ॥

नास्तिवेदात्परंशास्त्रं नास्तिमातुःपरोगुरुः ।
नास्तिदानात्परंमित्र-मिहलोकेपरत्रच ॥ १४८ ॥
अपात्रेष्वपियद्दत्तं दहत्यासप्तमंकुलम् ।
हव्यंदेवानगृह्णन्ति कव्यंचपितरस्तथा ॥ १४९ ॥
आयसेनतुपात्रेण यदन्नमुपदीयते ।
श्वानविष्ठासमंभुङ्क्ते दाताचनरकंव्रजेत् ॥१५०॥
पित्तलेनतुपात्रेण दीयमानंविचक्षणः ।
नदद्याद्वामहस्तेन आयसेनकदाचन ॥ १५१ ॥
मृन्मयेषुचपात्रेषु यःश्राद्धेभोजयेत्पितॄन् ।
अन्नदाताचभोक्ताच तावेवनरकंव्रजेत् ॥ १५२ ॥
अभावेमृन्मयेदद्या-दनुज्ञातस्तुतैर्द्विजैः ।
तेषांवचःप्रमाणंस्याद् यदन्नंचातिरिक्तकम् ॥१५३॥

इस लोक तथा परलोक में वेद से परे शास्त्र नहीं और माता से परे माननीय गुरु नहीं है तथा इस जन्म वा जन्मान्तर में दान से परे कोई मित्र नहीं है ॥ १४८ ॥ जो दान कुपात्र को दिया है वह दान सात पीढ़ी तक कुल को दग्ध (नष्ट) करता है तथा कुपात्र को दिये हव्य को देवता, और कव्य को पितर ग्रहण नहीं करते हैं ॥ १४९ ॥ लोहे के पात्र से जो अन्न परसा जाता है उस अन्न को भोजन करने वाला कुत्ते की विष्ठा के तुल्य खाता है और उस अन्न का दाता नरक को जाता है ॥१५०॥ बुद्धिमान् पुरुष पीतल और लोहे के पात्र में रखकर तथा बायें हाथ से, कदाचित् भी न देवे ॥ १५१ ॥

जो पुरुष श्राद्ध के समय मिट्टी के पात्रों में पितृ ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह अन्न का दाता और भोक्ता दोनों नरक में जाते हैं ॥ १५२ ॥ शास्त्रोक्त पात्र के अभाव में उन ब्राह्मणों की आज्ञा से मिट्टी के पात्र में ही अन्न को परसदे और जो अन्न ब्राह्मणों के भोजन से बचे उस के लिये पितृ ब्राह्मण लोग जैसी आज्ञा दें वैसा करे क्योंकि उन का ही वचन प्रमाण है ॥ १५३ ॥

सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषुच ।
भिक्षादातुर्नधर्मोस्ति भिक्षुर्भुङ्क्तेतुकिल्विषम् ॥१५४॥
नचकांस्येषुभुञ्जीया–दापद्यपिकदाचन ।
मलाशाःसर्वएवैते यतयःकांस्यभोजनाः ॥ १५५ ॥
कांस्यकस्यचयत्पात्रं गृहस्थस्यतथैवच ।
कांस्यभोजीयतिश्चैव प्राप्नुयात्किल्विषंतयोः ॥१५६॥

अत्राप्युदाहरन्ति

सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषुच ।
भुञ्जन्भिक्षुर्नदुःष्येत दुष्येच्चैवपरिग्रहे ॥ १५७ ॥
यतिहस्तेजलंदद्या-द्भिक्षांदद्यात्पुनर्जलम् ॥
तद्भैक्षंमेरुणातुल्यं तज्जलंसागरोपमम् ॥ १५८ ॥
चरेन्माधुकरींवृत्ति मपिम्लेच्छकुलादपि ।

उस बचे अन्नको यदि सोने–लोहे–तांबे वा चांदीके पात्रमें भिखारी को देय तो भिक्षा के दाता का कुछ धर्म नहींहै और भिखारी पाप का भोक्ता होता है॥१५४॥ संन्यासी पुरुष आपत्ति कालमेंभी कांसेके पात्र में भोजन कदापि न करे क्योंकि जो संन्यासी कांसे के पात्र में भोजन करने वाले हैं वे संपूर्ण मल के खाने वाले हैं ॥१५५॥ जो कांसे वालेका पात्र हो और गृहस्थी का पात्र किसी धातु का हो उस में यदि संन्यासी भोजन करै तो उनदोनों के दोष को प्राप्त होताहै ॥१५६॥ इस विषय में और ऋषि भी कहते हैं कि–सोने–लोहे–तांबे कांसे और चांदी के पात्रों में भोजन करता हुआ संन्यासी दूषित होता और भोग के पदार्थों का संचयऔर रक्षा करने से भी संन्यासी दूषित हो जाता है ॥ १५७ ॥ संन्यासी के हाथमें पहिले कुल्लादि के लिये जल दे फिर भिक्षा दे और फिर जल दे [अर्थात् किसी पात्रमें जल वा भिक्षा न देवे] वह अन्न मेरु तुल्य और जल समुद्र के तुल्य अनन्त फल देनेवाला होताहै ॥१५८॥ संन्यासी पुरुष भले ही बृहस्पति के तुल्य बड़ा विद्वान् प्रसिद्ध ज्ञानी हो तोभी अनेक उत्तम कुलीन ब्राह्मणादि

एकान्नं नैवभोक्तव्यं बृहस्पतिसमोयदि ॥ १५९ ॥
अनापदिचरेद्यस्तु सिद्धंभैक्षंगृहेवसन् ।
दशरात्रंपिबेद्वज्र-मापस्तुत्र्यहमेवच ॥ १६० ॥
गोमूत्रेणतुसंमिश्रं यावकंघृतपाचितम् ।
एतद्वज्रमितिप्रोक्तं भगवानत्रिरब्रवीत् ॥ १६१ ॥
ब्रह्मचारीयतिश्चैव विद्यार्थीगुरुपोषकः ।
अध्वगःक्षीणवृत्तिश्च षडेतेभिक्षुकाःस्मृताः ॥ १६२ ॥
षण्मासान्कामयेन्मर्त्यो गुर्विणीमेववैस्त्रियम् ।
आदन्तजननादूर्ध्वं एवंधर्मोनहीयते ॥ १६३ ॥
ब्रह्महाप्रथमंचैव द्वितीयंगुरुतल्पगः ।
तृतीयंतुसुरापेयं चतुर्थंस्तेयमेवच ॥ १६४ ॥
आमावस्त्रंतिलान्भूमिं गन्धंवासयतेतथा ।

के घर न मिलने पर भले ही नीच म्लेच्छों के घर से भी मधूकरी एक २ (रोटी) मांग कर खावे परन्तु किसी एक घर का भोजन कदापि न करे ॥ १५९ ॥ जो संन्यासी आपत्काल के बिना घर में बसता हुआ सिद्ध (बनी बनाई) भिक्षा को खाता है वह दश रात्र तक वज्र को पीवे और तीन दिन केवल जल पीवे (तब शुद्ध होता है) ॥१६०॥ गो मूत्र जिसमें मिला हो ऐसे घीमें पकाये जौके चून को वज्र कहते हैं यह भगवान् अत्रि ने कहा है ॥१६१॥ ब्रह्मचारी,-संन्यासी,-विद्यार्थी,-भिक्षान्न से गुरु का रक्षक, मार्ग में चलने वाला-और जिसकी कोई जीविका न हो ये छःई भिक्षुक कहाते हैं ॥ १६२ ॥ गर्भवती स्त्री के संग छ महीने तक मनुष्य विषय करे और बालक के होने पर बालक के दांत उपजने के पश्चात् विषय करै इस प्रकार धर्म नष्ट नहीं होता है ॥ १६३ ॥ बालक के जन्म के पश्चात् प्रथम मास में ब्रह्महत्या का-दूसरे मास में गुरु की शय्या में गमन करने का, तृतीय मास में मदिरा पान का -चतुर्थ मास में चोरी करने का-दोष लगता है ॥ १६४ ॥ बिना रंगावस्त्र-तिलकं भूमि का

पापानांचैवसंसर्गः पञ्चकंपातकंमहत् ॥ १६५ ॥
एषामेवविशुद्ध्यर्थं चरेत्कृच्छ्राण्यनुक्रमात् ।
त्रीणिवर्षाण्यकामश्चेद् ब्रह्महत्यापृथक् पृथक् ॥१६६॥
अर्द्धंतुब्रह्महत्यायाः क्षत्रियेषुविधीयते ।
षड्भागोद्वादशश्चैव तथाविट्शूद्रयोर्भवेत् ॥ १६७ ॥
त्रीन्मासान्नक्तमश्नीया-द्भूमौशयनमेवच ।
स्त्रीघातीशुध्यतेऽप्येवं चरेत्कृच्छ्राब्दमेववा ॥ १६८ ॥
रजकःशैलुषश्चैववेणुकर्मोपजीविनः ।
एतेषांयस्तुभुङ्क्ते वै द्विजश्चान्द्रायणंचरेत् ॥ १६९ ॥
सर्वान्त्यजानांगमने भोजनेसंप्रवेशने ।
पराकेणविशुद्धिःस्याद् भगवानत्रिरब्रवीत् ॥ १७० ॥
चाण्डालभाण्डेयत्तोयं पीत्वाचैवद्विजोत्तमः ।
गोमूत्रयावकाहारः सप्तषट्त्रिंशाहान्यपि ॥ १७१ ॥

संग्रह —सुगन्ध का लगाना पापियों का मेल ये पांच बड़े पातक संन्यासी के हैं ॥ १६५ ॥ इन की ही शुद्धि के अर्थ क्रम से तीन वर्ष तक कृच्छ्रव्रत करे—और यदि कृच्छ्र करने की इच्छा न हो तो पृथक् २ ब्रह्महत्या लगती है ॥१६६॥ क्षत्री को आधी ब्रह्महत्या, और वैश्य को छठा भाग, और शूद्र को बारहवां भाग ब्रह्महत्या का लगता है ॥ १६७ ॥ जिस ने स्त्री की हत्या की हो वह मनुष्य तीन मास तक रात्रि में ही भोजन करै, पृथवी पर सोवे अथवा एक वर्ष तक कृच्छ्रव्रत करै इस प्रकार करने से शुद्ध होता है ॥१६८॥ धोबी—नट और बांसों से जीविका करने वाले, इन के अन्न को जो द्विज भक्षण करता है वह चान्द्रायणव्रत करे ॥ १६९ ॥ सब अंत्यज स्त्रियों के साथ गमन करने उन के साथ भोजन करने और संग बैठने से पराक व्रत से शुद्धि होती है यह भगवान् अत्रि ने कहा है ॥ १७० ॥ जो ब्राह्मण चाण्डाल के पात्र में जल पीलेवे तो ४३ दिन तक गोमूत्र और जौ को खाकर शुद्ध होता है ॥ १७१ ॥

संस्पृष्टंयस्तुपक्वान्न–मन्त्यजैर्वाप्युदक्यया ।
अज्ञानाद्ब्राह्मणोऽश्नीयात् प्राजापत्यार्द्धमाचरेत् ॥१७२॥
चाण्डालान्नंयदाभुङ्क्ते चातुर्वर्ण्यस्यनिष्कृतिः।
चान्द्रायणंचरेद्विप्रः क्षत्रःसांतपनंचरेत् ॥ १७३ ॥
षड्रात्रमाचरेद्वैश्यः पंचगव्यंतथैवच ।
त्रिरात्रमाचरेच्छूद्रो दानंदत्वाविशुध्यति ॥ १७४ ॥
ब्राह्मणोवृक्षमारूढ–श्चाण्डालोमूलसंस्पृशः ।
फलान्यत्तिस्थितस्तत्र प्रायश्चित्तंकथंभवेत् ॥ १७५ ॥
ब्राह्मणान्समनुप्राप्य सवासाःस्नानमाचरेत् ।
नक्तभोजीभवेद्विप्रो घृतंप्राश्यविशुद्ध्यति ॥१७६॥
एकवृक्षसमारूढ–श्चाण्डालोब्राह्मणस्तथा ।
फलान्यत्तिस्थितस्तत्र प्रायश्चित्तंकथंभवेत् ॥ १७७ ॥
ब्राह्मणान्समनुज्ञाप्य सवासाःस्नानमाचरेत् ।

चाण्डालादि नीच व रजस्वला स्त्री के स्पर्श किये हुए पक्वान्न को यदि अज्ञानसे ब्राह्मण खालेतो ६ दिन अर्थे प्राजापत्य व्रत को करे ॥१७२॥ यदि चांडाल के अन्न को चारों वर्ण खालें तो उन का क्रम से यह प्रायश्चित्त है कि ब्राह्मण चांद्रायण व्रत करे क्षत्रिय सांतपन करै ॥१७३॥ छः दिन तक वैश्य पंचगव्य को भक्षण करै, और शूद्र तीन दिन व्रत करे व्रत की समाप्ति में ब्राह्मणादि सब लोग यथाशक्ति दान देकर शुद्ध होजाते हैं ॥ १७४ ॥ जो ब्राह्मण वृक्ष के ऊपर चढ़ा हो और चांडाल उस वृक्ष की जड़ को छूरहा हो तथा ब्राह्मण उस वृक्ष के फलों को खारहा हो तो ऐसी अवस्था में प्रायश्चित्त कैसे हो ॥ १७५ ॥ ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर वस्त्रों सहित स्नान करे और दिन में उपवास करके रात्रि को भोजन करे पश्चात् घृत को खाकर ब्राह्मण शुद्ध होता है ॥१७६॥ यदि चांडाल और ब्राह्मण दोनों एक वृक्षपर चढ़े हुए वृक्ष के फलों को खा रहे हों तो वहां प्रायश्चित्त कैसे हो ? ॥ १७७ ॥ ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणों की आज्ञा से सचैलस्नान करके एक दिन रात उपवास करे फिर पंच-

अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति ॥ १७८ ॥
एकशाखासमारूढ – श्चाण्डालोब्राह्मणोयदा ।
फलान्यत्तिस्थितस्तत्र प्रायश्चित्तंकथंभवेत् ॥ १७९ ॥
त्रिरात्रोपोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति ।
स्त्रियोम्लेच्छस्यसंपर्कात् शुद्धिःसांतपनेतथा ॥१८०॥
तप्तकृच्छ्रं पुनःकृत्वा शुद्धिरेषाविधीयते ।
संवर्तैतयथाभार्यां गत्वाम्लेच्छस्यसंगताम् ॥१८१॥
सचैलंस्नानमादाय घृतस्यप्राशनेनच ।
केशकीटनखस्नायु अस्थिकंटकमेवच ॥ १८२ ॥
स्पृष्टोनद्युदकेस्नात्वा घृतंप्राश्यविशुद्ध्यति ।
संगृहीतामपत्यार्थ – मन्यैरपितथापुनः ॥ १८३ ॥
चाण्डालम्लेच्छश्वपच कपालव्रतधारिणः ।
अकामतःस्त्रियोग वा पराकेणविशुद्ध्यति ॥१८४॥

गव्य पीने से शुद्ध होता है ॥ १७८ ॥ यदि एक ही शाखा पर चढ़े हुए ब्राह्मण और चांडाल फलों को खाते हों तो ऐसी दशा में प्रायश्चित्त कैसे हो ॥ १७९॥ ब्राह्मण तीन दिन तक उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है और म्लेच्छ की स्त्री के साथ संग करने पर सांतपन कृच्छ्र व्रत करने से शुद्धि होती है ॥१८०॥ फिर तप्त कृच्छ्र करे यह शुद्धि शास्त्रमें कही है–यदि किसी की स्त्री को कोई म्लेच्छ ले गया मात्र हो किन्तु दूषित न किया हो तो उस स्त्री के पास जाके उसे लाकर ऐसा वर्ताव करे कि ॥ १८१ ॥ वस्त्रों सहित स्नान कराके केवल घृत खिलावे तथा केश कीट–नख–स्नायु–अस्थि (हाड) कांटे ॥ १८२ ॥ इन का स्पर्श कराके तथा नदी के जलमें स्नान और घृत को भक्षण करानेसे शुद्ध होती है–तथा सन्तानोत्पत्ति के लिये अन्य किसी मनुष्य ने पकड़ी मात्र स्त्री का भी यही उक्त प्रायश्चित्त कराना चाहिये ॥ १८३ ॥ चांडाल–म्लेच्छ–श्वपच कपाल व्रत के धारण करने वाले (अघोरी) इनकी स्त्रियों के साथ इच्छा के बिना संग करके पराक व्रत से विशेष कर शुद्धि होती है ॥ १८४ ॥

कामतस्तुप्रसूतोवा तत्समोनात्रसंशयः ।
सएवपुरुषस्तत्र गर्भोभूत्वाप्रजायते ॥ १८५ ॥
तैलाभ्यक्तोघृताभ्यक्तो विण्मूत्रंकुरुतेद्विजः ।
तैलाभ्यक्तोघृताभ्यक्त-श्चाण्डालंस्पृशतेद्विजः ॥१८६॥
अहोरात्रोषितोभूत्वा पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ।
मत्स्यास्थिजंबूकास्थीनि नखशुक्तिकपर्द्दिकाः ॥१८७॥
होमतप्तघृतंपीत्वा तत्क्षणादेवनश्यति ।
गोकुलेकन्दुशालायां तैलचक्रेक्षुयंत्रयोः ॥१८८॥
अमीमांस्यानिशौचानि स्त्रीषुचव्याधितस्यच ।
नस्त्रीदुष्यतिजारेण ब्राह्मणोवेदकर्मणा ॥ १८९ ॥
नापोमूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहतिकर्मणा ।

से पूर्वोक्त स्त्रियों के साथ संग करे तो अथवा संतान के उत्पन्न होने पर उन स्त्रियों की ही समान जाति होजाते हैं इस में संशय नहीं है क्योंकि वह पुरुष ही गर्भ रूप होकर उत्पन्न होता है ॥ १८५ ॥ जो द्विज तेल अथवा घृत से उबटना करके शौच को जाता अथवा लघुशंका करता है वा चांडाल का स्पर्श करता है ॥१८६॥ वह एक दिन रात उपवास कर के पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होता है मछली और—गीदड़ की हड्डी नख,गोली सीपी—और कौड़ी इनके स्पर्शसे जो दोष लगता है । १८७ । वह होम के उष्ण घी के पीने से उसी क्षण नष्ट हो जाता है । गौओं के कुंड-कंदुशाला (भाड़) में—तेल निकालने के (कोल्हू) में और गन्ने के यंत्र (कोल्हू) में । १८८ । स्त्रियां और रोग की अवस्था में शुद्धता का विचार नहीं करना अर्थात ये सब सर्वदा शुद्ध ही हैं स्त्री जार से [अर्थात् मन के चलायमान होने मात्र से स्त्री ऐसी दूषित नहीं होती जो त्याग दी जावे । जो मनु जीने लिखा है कि—(रजसास्त्रीमनोदुष्टा) [illegible] हो भी जावे] और ब्राह्मण वेदोक्त कर्म [लोक विरुद्ध] करने पर भी दू-षित नहीं होते ॥ १८९ ॥ मूत्र और विष्ठा के पड़ने से जल (नदी आदि न-

(१८९ । १९०) यदि स्त्री को दोष न लगे तो पतिव्रता की महिमा वा प्रशंसा भी व्यर्थ हो जावे। इस कारण इन श्लोकों का अभिप्राय यह है कि

पूर्वंस्त्रियः सुरैर्भुक्ता सोमगन्धर्ववन्हिभिः ॥ १९० ॥
भुञ्जतेमानवाःपश्चान्नवादुष्यंतिकर्हिचित् ।
असवर्णस्तुयोगर्भः स्त्रीणांयोनौ निषिच्यते ॥१९१॥
अशुद्धासाभवेन्नारी यावद्गर्भंनमुंचति ।
विमुक्ते तुततःशल्येर जश्चापिप्रदृश्यते ॥ १९२ ॥
तदासाशुद्ध्यतेनारी विमलंकांचनंयथा ।
स्वयंविप्रतिपन्नायाः यदिवाविप्रतारिता ॥ १९३ ॥
बलान्नारीप्रभुक्तावा चौरभुक्तातथापिवा ।
नत्याज्यादूषितानारी नकामोस्याविधीयते ॥१९४॥

हाग आदि) और दुर्गन्धादि को जलाने से भी अग्नि दूषित नहीं होते प्रथम कन्या की दशा कुमारीपन में चन्द्रमा गंधर्व-और अग्नि देवता स्त्रियों के पति हो चुकते हैं ॥ १९० पीछे से मनुष्य के साथ विवाह होता पर वे स्त्री दूषित नहीं होतीं-जो असवर्ण (भिन्न जाति का) गर्भ स्त्री की योनि में सींचा जाता है ॥ १९१ ॥ वह स्त्री इतने दिन तक अशुद्ध होती है कि जब तक गर्भ को न त्यागे और गर्भत्याग के पश्चात् जो रज दीखे (मासिकधर्म हो) ॥ १९२ ॥ तब वह स्त्री इस प्रकार शुद्ध होजाती है जैसा कि निर्मल सोना । अपने आप किसी मनुष्य के समीप जाने से संग दोष लगा हो वा कोई छल से ले गया हो ॥ १९३ ॥ अथवा बल पूर्वक वा चोरने भोगी हो ऐसी दूषित स्त्री का त्याग न करे क्योंकि स्त्री की कामना से यह काम नहीं हुआ है ॥ १९४ ॥

स्त्रियां प्रायः मूर्ख अज्ञान होती हैं इस से अल्पबालक के समान उन को साधारण अपराधों में त्याग नहीं देना चाहिये । (सोमः प्रथमो विविदे०) ऋग्वेदमन्त्र का आशय यहां दिखाया गया है ।

(१९१-१९४) धर्मशास्त्रों की सब बातें सब काल के लिये नहीं होतीं इस के अनुसार प्राचीन काल में काम क्रोध लोभ स्त्री पुरुषों में बहुत कम थे और धर्म अधिक था । तथा राज प्रबन्ध भी ऐसा अब का सा नहीं था । शुद्धान्तः करण वालों को कमल के पत्ते पर जल न लगने के तुल्य दोष नहीं लगते । पर अब वैसे शुद्ध धर्मनिष्ठ स्त्री पुरुष नहीं रहे इस कारण अब अन्य जाति के गर्भ तथा व्यभिचार से स्त्री पतित हो जाती है ।

ऋतुकालउपासीत पुष्पकालेनशुद्ध्यति ।
रजकश्चर्मकारश्च नटोबुरुडएवच ॥ १९५ ॥
कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैतेअंत्यजाःस्मृताः ।
एषांगत्वास्त्रियोमोहा-द्भुक्त्वाचप्रतिगृह्यच ॥१९६॥
कृच्छ्राब्दमाचरेद्ज्ञाना-दज्ञानादेवतद्द्वयम् ।
सकृद्भुक्तातुयानारी म्लेच्छैःसापापकर्मभिः ॥१९७॥
प्राजापत्येनशुद्ध्येत ऋतुप्रस्त्रवणेनतु ।
बलोद्धृतास्वयंवापि परप्रेरितयायदि ॥१९८॥
सकृद्भुक्तातुयानारी प्राजापत्येनशुद्ध्यति ।
प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणांयद्रजोभवेत् ॥१९९॥

ऋतु के समय (रज के दीखने) बाद १६ सोलह दिन के भीतर स्त्री का संग करे और फिर रजकेसमय शुद्ध हो जाती है धोबी चमार नट बुरट(जो बांस की डलियां बनाते हैं)॥१९५॥धीमर मेदे,कलाल भील ये सात अंत्यज कहे हैं इन जातियों की स्त्री को भोगकर और इन जातियों में भोजन करके और इन से प्रतिग्रह (दान) को लेकर ॥ १९६ ॥ यदि जान बूझ कर पूर्वोक्त तीनों कर्म किये हों तो एक वर्ष तक कृच्छ्र और अज्ञान से दो कृच्छ्र व्रत करे–जो स्त्री म्लेच्छ पापकर्मियों ने एक बार भोगी हो ॥ १९७ ॥ वह प्राजापत्यव्रत से और ऋतु (मासिक धर्म) के होने से शुद्ध होती है, यदि बल से पकड़ली हो अथवा स्वयं चली गई हो अथवा किसी के कहने से गई हो ॥१९८॥

वि० (१९९) यहां से सिद्ध है कि पूर्वकाल में स्त्रियां तपस्विनी भी होती थीं वे ही ब्रह्मवादिनी कहाती थीं । इस कारण प्राचीन स्त्री पुरुषों की बराबरी वर्त्तमान के स्त्री पुरुष नहीं कर सकते । सुवर्ण मणि आदि में मैला लगजाय तो वह फेंकने लायक नहीं होता । परन्तु रोटी आदि पकाया अन्न मैले के संसर्ग से अति दूषित हो जाता है वैसे ही पहिले स्त्री पुरुष जिन दोषों से पतित नहीं होते थे । उन्हीं दोषों से अब के नर नारी पतित होजाते हैं ॥

नतेनतद्व्रतंतासां विनश्यतिकदाचन ।
मद्यसंस्पृष्टकुम्भेषु यत्तोयंपिबतिद्विजः ॥२००॥
कृच्छ्रपादेनशुद्ध्येत पुनःसंस्कारमर्हति ।
अन्त्यजस्यतुयेवृक्षा-बहुपुष्पफलोपगाः ॥२०१॥
उपभोग्यास्तुतेसर्वे पुष्पेषुचफलेषुच ।
चाण्डालेनतुसंस्पृष्टं यत्तोयंपिबतिद्विजः ॥२०२॥
कृच्छ्रपादेनशुद्ध्येत आपस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ।
श्लेष्मौपानहविण्मूत्र स्त्रीरजोमद्यमेवच ॥२०३॥
एभिःसंदूषितेकूपे तोयंपीत्वाकथंविधिः ।
एकंद्व्यहंत्र्यहंचैव द्विजातीनांविशोधनम् ॥२०४॥
प्रायश्चित्तंपुनश्चैव नक्तंशूद्रस्यदापयेत् ।
सद्योवांतेसचैलंतु विप्रस्तुस्नानमाचरेत् ॥२०५॥

और एक वार ही भोगी हो तो प्राजापत्य व्रत करने से शुद्ध होती है-जिन स्त्रियों ने बहुत दिनों तक तप (व्रत) प्रारम्भ किया हो और उसी बीच में जो मासिक धर्म हो ॥१९९॥ तो उस से उन स्त्रियों का वह व्रत कदाचित् भी नष्ट नहीं होता-मदिरा का स्पर्श जिस में हुआ हो ऐसे घड़े के जल को जो द्विज पीले ॥२००॥ तो चौथाई कृच्छ्र करने से शुद्ध होता है और फिर उपनयन के योग्य होता है-अन्त्यजों के जो वृक्ष हों और उन पर बहुत फल पुष्प आते हों ॥२०१॥ उन वृक्षों के पुष्प और फलों के भोगने में दोष नहीं है-चांडाल के स्पर्श किये हुए जल को जो द्विज पीता है ॥२०२॥ वह चौथाई कृच्छ्र से शुद्ध होता है यह आपस्तम्ब मुनि ने कहा है । थूके हुए कफ-जूता-विष्ठा-मूत्र--स्त्री-का रज-और मदिरा ॥२०३॥ इन से भ्रष्ट हुए कूप के जल को पीके कैसे विधि करे, ब्राह्मण एक दिन क्षत्री दो दिन, वैश्य तीन दिन व्रत करने से शुद्ध होते हैं ॥२०४॥ और फिर प्रायश्चित्त यह है कि शूद्र नक्त (रात्रि ही को भोजन) करे और उसी समय वमन कर दिया हो तो ब्राह्मण सचैल स्नान करे॥२०५॥

पर्युषितेत्वहोरात्र-मतिरिक्तेदिनत्रयम् ।
शिरःकंठोरुपादांश्च सुरयायस्तुलिप्यते ॥२०६॥
दशषट्त्रतयैकाहं चरेदेवमनुक्रमात् ।

अत्राप्युदाहरन्ति ॥

प्रमादान्मद्यपसुरां सकृत्पीत्वाद्विजोत्तमः ॥ २०७ ॥
गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेणशुद्ध्यति ।
मद्यपस्यनिषादस्य यस्तुभुङ्क्तेद्विजोत्तमः ॥ २०८ ॥
गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेणशुद्ध्यति ।
मद्यपस्यनिषादस्य यस्तुभुंक्तेद्विजोत्तमः ॥ २०९ ॥
नदेवाभुञ्जतेतत्र नपिबन्तिहविर्जलम् ।
चितिभ्रष्टातुयानारी ऋतुभ्रष्टाचव्याधितः ॥२१०॥
प्राजापत्येनशुद्ध्येत ब्राह्मणानांतुभोजनात् ।

उक्त कूप का जल पीकर वासी होगया पच गया होय तो एक रातदिन उपवास करे और अधिक समय बीत गया हो तो तीन उपवास करे। शिर कण्ठ जांघ पेर इन को जो मदिरा से लीपले तो ॥ २०६ ॥ वह क्रम से दश–छः-तीन एक–दिन के व्रत को करे इस विषय में और ऋषिभी कहते हैं–कि प्रमाद से मदिरा के पीनेवाले की मदिरा को ब्राह्मण एक वार भी पी लेतो ॥२०७॥ गोमूत्र और जौको खाता हुआ दश दिन में शुद्ध होता है और जो ब्राह्मण मदिरा पीने वाले और निषाद (वधिक बहेलिया) के यहां भोजन करता है ॥ २०८ ॥ वह भी गोमूत्र और जौ को खाता हुआ दश दिन में शुद्ध होता है जो ब्राह्मण मदिरा पीने वाले और निषाद का भोजन खाता है ॥२०९॥ उस के यहां देवता हवि (साकल्प) को नहीं खाते और न जल पीते हैं। जो स्त्री चिति (ज्ञान) से भ्रष्ट (बावली) हो और व्याधि के द्वारा मासिक धर्म भ्रष्ट होगई हो ॥२१०॥ वह प्राजापत्यव्रत और ब्राह्मणों के जिमाने से शुद्ध होती है–जो ब्राह्मण सं-

येचप्रव्रजिताविप्राः प्रव्रज्याग्निजलावहाः ॥२११॥
अनाशकान्निवर्तन्ते चिकीर्षन्तिगृहस्थितिम् ।
धारयेत्त्रीणिकृच्छ्राणि चान्द्रायणमथापिवा ॥२१२ ॥
जातकर्मादिकंप्रोक्तं पुनःसंस्कारमर्हति ।
नशौचंनोदकंनाशु नापवादानुकम्पने ॥ २१३ ॥
ब्रह्मदण्डहतानांतु नकार्यंकटधारणम् ।
स्नेहंकृत्वाभयादिभ्यो यस्त्वेतानिसमाचरेत् ॥२१४॥
गोमूत्रयावकाहारः कृच्छ्रमेकंविशोधनम् ।
वृद्धःशौचस्मृतेर्लुप्तः प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः ॥२१५॥
आत्मानंघातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनाम्बुभिः ।
तस्यत्रिरात्रमाशौचं द्वितीयेत्वस्थिसंचयः ॥ २१६ ॥

न्यास की अग्नि और जल में बहते हुए अर्थात् सन्यासियों के धर्म में आरूढ़ हुए संन्यासी होगए हैं ॥ २११ ॥ फिर अशक्ति (असामर्थ्य) से संन्यासी के धर्म से निवृत्त होते हैं और घर में रहना चाहते हों तो वे तीन कृच्छ्र अथवा एक चांद्रायण व्रत का अनुष्ठान करें ॥२१२॥ और जात कर्मादि उपनयनतकसंस्कार उनसंन्यास से लौटने वालों के फिर करने होते हैं-शौच, और जल का दान-शीघ्र श्राद्धादि निंदा-दया ॥ २१३ ॥ और मृतक की पिंजरी का उठाना ये काम उन के मरने पर न करै जिन को ब्राह्मणों ने शाप दिया हो,औरजो प्रीति के कारण वा किसीभयादिकारण से पूर्वोक्तशौच आदि को करता है॥२१४॥ तो गोमूत्र और जौ को खाते हुए उस की एक कृच्छ्र से शुद्धि होती है-जो पुरुष वृद्ध हो और अशुद्ध हो और जिसे कुछ ज्ञान न हो, और वैद्यों की चिकित्सा भी जिसने त्याग दी हो ॥२१५॥ और वह सींग वाले पशु(बैल आदि) अग्नि, भोजन का त्याग-और जल में डूबना इन से अपने आत्मा का घात करै तो उस मनुष्य का आशौच (सूतक) तीन दिन का होता है और दूसरे दिन अस्थि संचय होता है ॥ २१६ ॥

तृतीयेतूदकंकृत्वा चतुर्थेश्राद्धमाचरेत् ।
यस्यैकापिगृहेनास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी ॥२१७॥
मंगलानिकुतस्तस्य कुतस्तस्यतमःक्षयः ।
अतिदोहातिवाहाभ्यां नासिकाभेदनेनवा ॥२१८॥
नदीपर्वतसंरोधे मृतेपादोनमाचरेत् ।
अष्टागवंधर्महलं षड्गवंव्यावहारिकम् ॥ २१९ ॥
चतुर्गवंनृशंसानां द्विगवंगववध्यकृत् ।
द्विगवंवाहयेत्पादं मध्यान्हेतुचतुर्गवम् ॥२२०॥
षड्गवंतुत्रिपादोक्तं पूर्णाहस्त्वष्टभिःस्मृतः ।
काष्ठलोष्टशिलागोघ्नः कृच्छ्रंसांतनंचरेत् ॥ २२१ ॥
प्राजापत्यंचरेन्मुष्टा अतिकृच्छ्रंतुआयसैः ।

तीसरे दिन जलदान करके चौथे दिन श्राद्ध करे-जिस के घरमें एक भी गौ बछ-ड़े वाली अर्थात् दूध देती न हो ॥२१७॥ उस के घर में मंगल कहां और अन्धकार का नाश कहां अर्थात गृहस्थ के यहां गौका रखना और उस की ठीक २ सेवा करना अत्यावश्यक धर्म है ।-बहुत दूध निकालने बछड़े को न छोड़ने या बहुत कम छोड़ने से बहुत जोतने और नाक के छेदने से ॥ २१८ ॥ नदी अथवा पर्वत में रोकने से जो पशु की मृत्यु हो जाय तो जितना उस पशु मारने का प्रायश्चित्त कहा है उस को चौथाई प्रायश्चित्त करे-आठ हैं बैल जिस पर ऐसा हल, धर्मानुकूल है । छः बैल का व्यवहार में मध्यम हल है ॥२१९॥ चार जिस पर बैल हों वह हल नृशंसों (हत्यारों) का है और दो बैल का हल तो बैलों का मारने वाला है-दो बैल के हल को प्रातःकाल चौथाई दिन में और चार बैल के को मध्यान्ह तक, (आधे दिन) चलावे २२० छे बैल के को तीनपाद (तीन पहर) चलावे और आठ बैलके को संपूर्ण दिन चलाना धर्म शास्त्र में कहा है- लकड़ी ढेला-पत्थर इन से जो बैल वा गौकी हत्या करै वह सांतपन कृच्छ्र करै २२१ मुष्टि (मुक्का) से जो गोहत्या करै वह

प्रायश्चित्तेनतच्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ २२२ ॥
अनुडुत्सहितांगांच दद्याद्विप्रायदक्षिणाम् ।
शरभोष्ट्रहयान्नागान् सिंहशार्दूलगर्दभान् ॥ २२३ ॥
हत्वाचशूद्रहत्यायाः प्रायश्चित्तंविधीयते ।
मार्जारगोधानकुल मण्डूकांश्चपतत्रिणः ॥२२४॥
हत्वाच्यहंपिबेत्क्षीरं कृच्छ्रव्यापादिकंचरेत् ।
चाण्डालस्यचसंस्पृष्टं विण्मूत्रोच्छिष्टमेववा ॥ २२५॥
त्रिरात्रेणविशुद्धंहि भुक्तोच्छिष्टंसमाचरेत् ।
वापीकूपतडागानां दूषितानांचशोधनम् ॥२२६॥
उद्धरेत्घटशतंपूर्ण पंचगव्येनशुध्यति ।
अस्थिचर्मावसिक्तेषु खरश्वानादिदूषिते ॥ २२७॥
उद्धरेदुदकंसर्वं शोधनंपरिमार्जनम ।

प्राजापत्यव्रत करे और लोहे के कुंड से जो करे वह अनिकृच्छ्रव्रत करे और प्रायश्चित्त करने के अनन्तर ब्राह्मणों को जिमावे ॥२२२॥ और बैल सहित एक गौ ब्राह्मणों को दक्षिणा दे–शरभ नामक मृग, ऊंट–घोड़ा–हाथी–सिंह–शार्दूल–और–गधा ॥२२३॥ इन को हत्या करने पर शूद्र की हत्या का जो प्रायश्चित है उसे करे बिलाव–गोह–नौला मेंडक–पक्षी ॥२२४॥ इन को मारकर तीन दिन तक दूध पीवे और मारने में जो कछू कहा है उसे करे–चांडाल के स्पर्श किये और विष्ठा तथा मूत्र से छुए हुए उच्छिष्ट को खाकर ॥२२५॥ तीन दिन से विशुद्ध होकर उच्छिष्ट के भक्षण में जो प्रायश्चित्त है उसे करे–अशुद्ध पदार्थ से दूषणा को प्राप्त हुए बावरी कूप और ताल इन का शोधन यह है कि ॥ २२६ ॥ भरे हुए कलशी १०० घड़े भर २ जल निकाले फिर पञ्चगव्य गेरने से शुद्ध होते हैं हड्डी चाम जिनमें पड़गये हों और गधा–कुत्तादि से जो दूषित होगए हों ॥२२७॥ तो उस बावरी आदि का सब जल निकाले और स्वच्छ करे–गौओं जिस पात्र में दुहते

गोदोहनेचर्मपुटेचतोयं यंत्राकरेकारुकशिल्पहस्ते ॥२२८॥
स्त्रीबालवृद्धाचरितानियान्यप्रत्यक्षदृष्टानिशुचीनितानि ।
प्राकाररोधेविषमप्रदेशे सेवानिवेशेभवनस्यदाहे ॥२२९ ॥
अवास्ययज्ञेषुमहोत्सवेषु तेष्वेवदोषानविकल्पनीयाः ।
प्रपास्वरण्येघटकस्यकूपे द्रोण्यांजलंकोशविनिर्गतंच ॥२३० ॥
श्वपाकचाण्डालपरिग्रहेतु पीत्वाजलंपंचगव्येनशुद्धिः।

रेतोविण्मूत्रसंस्पृष्टं कौपंयदिजलंपिबेत् ॥ २३१ ॥
त्रिरात्रेणैवशुद्धिःस्यात् कुंभेसांतपनंतथा ।
क्लिन्नेभिन्नेशवंयत्स्या-दज्ञानाच्चतथोदकम् ॥२३२॥
प्रायश्चित्तंचरेत्पीत्वा तप्तकृच्छ्रंद्विजोत्तमः ।
उष्ट्रीक्षीरंखरीक्षीरं मानुषीक्षीरमेवच ॥२३३ ॥
प्रायश्चित्तंचरेत्पीत्वा तप्तकृच्छ्रंद्विजोत्तमः ॥

हों उसका और चाम के पात्र का जो जल है--यंत्र में का, खान का कारीगर और चित्र काढ़ने वाला इन के हाथ का जो जल है ॥२२८॥ स्त्री बालक और वृद्ध इन के आचरित (छुए हुए) जो जल हैं और प्रत्यक्ष देखे न हों वे संपूर्ण शुद्ध हैं परन्तु परकोटाओं रोक में विषम (संकटके) देश में सेना के स्थान में भवन में अग्नि लगने के समय ॥ २२९ ॥ असंपूर्ण यज्ञ में बड़े उत्सवों में इन में दोषों की शंका नहीं करनी । प्याउओं में वन में रहट के कूप में द्रोणी (एक जल का बड़ा पात्र जो कुये के पास रक्खा रहता है) में और कोश (हौद)से निकला जल शुद्ध हैं ॥२३०॥ श्वपाक (जो कुत्ते को खाते हैं) और चाण्डाल इन के घर पर जल पीकर पंचगव्य पीने से शुद्धि होतीहै वीर्य विष्ठा मूत्र इन का जिस में मेल हो ऐसे कूप के जल को यदि पीले ॥ २३१ ॥ तो तीन दिन में शुद्धि होती है और वीर्य विष्ठा मूत्र जिस में रक्खे गये हों ऐसे घड़े के जल को जो पीवे वह सांतपन व्रत से शुद्ध होता है । शव (मुर्दा) से जो जल मलिन हो जाय अज्ञान से उस जल को ॥ २३२ ॥ पीकर ब्राह्मण तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त करै । ऊंटनी गधी और किसी मनुष्य की स्त्री के दूध को ॥ २३३ ॥ पीकर ब्राह्मण तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त करै यदि

वर्णबाह्येनसंस्पृष्ट उच्छिष्टस्तुद्विजोत्तमः ॥ २३४ ॥
पंचरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति ।
शुचिगोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थंमहीगतम् ॥ २३५ ॥
चर्मभाण्डंतुधाराभिस्तथायंत्रोद्धृतंजलम् ।
चाण्डालेनतुसंस्पृष्टः स्नानमेवविधीयते ॥ २३६ ॥
उच्छिष्टस्तुचसंस्पृष्ट स्त्रिरात्रेणैवशुद्ध्यति ।
आकराद्गतवस्तूनि नाशुचीनिकदाचन ॥ २३७ ॥
आकराःशुचयःसर्वे वर्जयित्वासुरालयम् ।
भ्रष्टाभ्रष्टयवांश्चैव तथैवचणकाःस्मृताः ॥ २३८ ॥
खर्जूरंचैवकर्पूर मन्यद्भ्रष्टतरंशुचिः ।
अमीमांस्यानिशौचानि स्त्रीभिराचरितानिच ॥२३९॥
गोकुलेकंदुशालायां तैलयंत्रेक्षुयंत्रयोः ।
अदुष्टाःसततंधारा वातोद्धूताश्चरेणवः ॥ २४० ॥

उच्छिष्ट ब्राह्मण को वर्णवाह्य (यवन आदि) नीच स्पर्श करलें ॥ २३४ ॥ सो पांच दिन तक उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है जिस जल से गौतृप्त हो सके ऐसा पृथ्वी पर टिका निर्मल जल शुद्ध है ॥२३५॥ चाम के पात्र का जल, निरन्तरधारा पड़ने से, और यंत्र से निकाला जल शुद्ध है-चाण्डाल के छू लेने पर स्नान मात्र करै ॥ २३६ ॥ जो उच्छिष्ट को चांडाल छूले तो तीन दिन में शुद्ध होता है । किसी खान से निकली वस्तु कभी भी अशुद्ध नहीं होती ॥ २३७ ॥ मदिरा के स्थान को छोड़ कर अन्य सब खाने वा कारखाने शुद्ध हैं और भुने जौ और चने भी शुद्ध कहे हैं ॥ २३८ ॥ खजूर और कपूर ये दोनों और जो २ भुना पदार्थ हो वह सब शुद्ध है । स्त्रियों ने आचरण किये शौच विचारने योग्य नहीं हैं ॥ २३९ ॥ गौओं के झुण्ड में कन्दुशाला (भाड़) में तेल और ईख के कोल्हू में शुद्धि का विचार नहीं भाड़ आदि का भुना अन्नादि सदा शुद्ध मानो—निरन्तर पड़ती हुई जल धारा जो दूषित न हो और वायु से उड़ी रेणु (धूल) ये भी पवित्र हैं ॥ २४० ॥

बहूनामेकलग्नाना–मेकश्चेदशुचिर्भवेत् ।
अशौचमेकमात्रस्य नेतरेषांकथंचन ॥ २४१ ॥
एकपंक्त्युपविष्टानां भोजनेषुपृथक्पृथक् ।
यद्येकोलभतेनीलीं सर्वेतेऽशुचयःस्मृताः ॥ २४२ ॥
यस्यपट्टंपट्टसूत्रे नीलीरक्तोहिदृश्यते ।
त्रिरात्रंतस्यदातव्यंशेषाश्चैकोपवासिनः ॥ २४३ ॥
आदित्येऽस्तमितेरात्रा–वस्पृश्यंस्पृशतेयदि ।
भगवन्केनशुद्धिःस्या–त्तोब्रूहितपोधन ! ॥ २४४ ॥
आदित्येऽस्तमितेरात्रौ स्पर्शादीनंदिवाजलम् ।
तेनैवसर्वशुद्धिःस्यात् शवस्पृष्टंतुवर्जयेत् ॥ २४५ ॥
देशंकालंवयःशक्तिं पापंचावेक्ष्ययत्नतः ।
प्रायश्चित्तंप्रकल्प्यंस्याद्यस्यचोक्तानानिष्कृतिः ॥२४६॥

एक फर्श आदि पर बैठे हुए मनुष्यों में से जो एक अशुद्ध होजाय तो वही अशुद्ध होता है अन्य मनुष्य कदाचित् भी अशुद्ध नहीं होते ॥ २४१ ॥ भोजन करने के समय एक पंक्ति में अलग २ बैठे मनुष्यों में जो एक मनुष्य के देह में नील का वस्त्रादि छूजाय तो वे सब अशुद्ध हो जाते हैं ॥ २४२ ॥ और पूर्वोक्त एक पङ्क्ति में बैठे हुओं के बीच में जिस के वस्त्र अथवा पट्ट वस्त्र (दुपट्टा) पर नील का रंग दीख पड़े तो उसे तीन दिन का उपवास और शेष मनुष्यों को एक २ उपवास करना चाहिये ॥ २४३ ॥ हे भगवन् अत्रिजी ! सूर्य के छिप जाने पर रात्रि में यदि स्पर्श करने के अयोग्य वस्तु का स्पर्श करले तो किस से शुद्धि हो उस शुद्धि को कहो ॥ २४४ ॥ सूर्य के छिप जाने पर रात्रि में किसी का न छुआ निर्मल जो दिन का जल उसी से सब की शुद्धि होती है किन्तु जिसने मुर्दे का स्पर्श किया हो उसकी शुद्धि जल मात्र से नहीं होती ॥ २४५ ॥ और देश–समय–सामर्थ्य और पाप को भी यथार्थ देखकर उस पाप के प्रायश्चित की कल्पना विद्वान् करले जिस पाप का प्रायश्चित्त शास्त्र में नहीं कहा हो ॥ २४६ ॥

देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषुच ।
उत्सवेषुचसर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टंनविद्यते ॥२४७॥
आलनालंतथाक्षीरं कन्दुकन्दधिसक्तवः ।
स्नेहपक्वंचतक्रंच शूद्रस्यापिनदुष्यति ॥२४८॥
आर्द्रमांसंघृतंतैलं स्नेहाश्चफलसम्भवाः ।
अन्त्यभांडस्थितास्त्वेते निष्क्रान्ताःशुद्धिमाप्नुयुः॥२४९॥
अज्ञानात्पिबतेतोयं ब्राह्मणःशूद्रजातिषु ।
अहोरात्रोषितःस्नात्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति ॥२५०॥
आहिताग्निस्तुयोविप्रो महापातकवान्भवेत् ।
अप्सुप्रक्षिप्यपात्राणि पश्चादग्निंविनिर्दिशेत् ॥२५१॥
योगृहीत्वाविवाहाग्निं गृहस्थइतिमन्यते ।
अन्नंतस्यनभोक्तव्यं वृथापाकोहिसःस्मृतः ॥२५२॥

तीर्थादि पर देवताओं की यात्रा–विवाह–यज्ञ का प्रकरण और संपूर्ण उत्सवों में स्पर्श करने के योग्य और अयोग्य का दोष नहीं होता है ॥२४७॥ आल का नाल (चने आदि की खटाई) दूध–कन्दुक (भाड़) दही सत्तू–स्नेह (घी तेल) से पका हुआ पदार्थ–और मठा ये वस्तु शूद्र के भी दूषित नहीं हैं किन्तु खा लेने योग्य होते हैं ॥ २४८ ॥ गीला मांस–घृत–तेल–फल से उत्पन्न हुए तैलादि अन्त्यज के पात्र में रक्खे भी हों पर निकाल लेने पर शुद्ध हो जाते हैं ॥२४९॥ जो ब्राह्मण शूद्र जातियों का जल अज्ञान से पीले तो दिन रात का उपवास और पंचगव्य पीकर शुद्ध होता है ॥ २५० ॥ जो अग्निहोत्री ब्राह्मण महापातकी हो जाय तो होम के पात्रों को जल में फेंककर फिर विधिपूर्वक अग्नि को स्थापित करे ॥२५१॥ जो विवाह की अग्नि को ग्रहण करके अर्थात् स्मार्त्त अग्निहोत्र को लेकर अपने को गृहस्थी मानता है अर्थात् उस अग्नि में पक्षयाग तथा पंचमहायज्ञादि नित्य २ नहीं करता इस से उस का अन्न नहीं खाना जिस से ऋषियों ने उसे वृथापाक कहा है ॥२५२॥

वृथापाकस्यभुञ्जानः प्रायश्चित्तंचरेद्द्विजः ।
प्राणानप्सुत्रिरायम्य घृतंप्राश्यविशुद्ध्यति ॥२५३॥
वैदिकेलौकिकेवापि हुतोच्छिष्टेजलेक्षितौ ।
वैश्वदेवंप्रकुर्वीत पंचसूनापनुत्तये ॥ २५४ ॥
कनीयान्गुणवांश्चैव ज्येष्ठश्चेन्निर्गुणोभवेत् ।
पूर्वं पाणिंगृहीत्वाच गृह्याग्निंधारयेद्बुधः ॥२५५॥
ज्येष्ठश्चेद्यदिनिर्दोषो गृह्णात्यग्निंयवीयकः ।
नित्यंनित्यंभवेत्तस्य ब्रह्महत्यानसंशयः ॥२५६॥
महापातकिसंस्पृष्टः स्नानमेवविधीयते ।
संस्पृष्टस्ययदाभुंक्ते स्नानमेवविधीयते ॥२५७॥
पतितैःसहसंसर्गं–मासाद्र्धंमासमेवच ।
गोमूत्रयावकाहारोमासार्द्धेनविशुद्ध्यति ॥ २५८ ॥

वृथापाक के अन्न को जो द्विजखाले वह इस प्रायश्चित्त को करे कि जलके मध्य में तीन वार प्राणायाम करके घृत को खाकर शुद्ध होता है ॥२५३॥ विधिपूर्वक स्थापित किये वा चूल्हे आदि के वा जिस में होम हो चुका हो ऐसे अग्नि में वा जल में अथवा भूमि पर बलि वैश्वदेव को पांच हत्या के दूर करने के निमित्त अवश्य करे ॥२५४॥ यदि जेठा भाई मूर्ख हो और छोटा विद्वान् हो तो ज्ञानी छोटा भाई जेठे से पहिले विवाह करके गृह्य अग्नि को धारण करे ॥२५५॥ यदि जेठा भाई निर्दोष हो और छोटा भाई अग्निहोत्र को ग्रहण कर ले तो प्रतिदिन उसे ब्रह्महत्या लगती है इस में संशय नहीं है ॥२५६॥ महापातकी ने जिस को छू लिया हो वह, और महापातकी से स्पर्श किये हुए के भोजन को जिस ने किया हो वह इन दोनों की स्नान मात्र से शुद्धि होती है ॥२५७॥ पतित केसाथजिसने पन्द्रह दिन अथवा एक मास तक मेल मिलाप किया हो वह पन्द्रह दिन तक गोमूत्र और जौ को खाकर शुद्ध होता है ॥ २५८ ॥

कृच्छ्रार्द्धंपतितस्यैवसकृद्भुक्त्वाद्विजोत्तमः ।
अविज्ञानाच्चतद्भुक्त्वा कृच्छ्रंसांतपनंचरेत् ॥ २५९ ॥
पतितानांयदाभुक्तंभुक्तंचाण्डालवेश्मनि ।
मासार्द्धंतुपिबेद्वारि इतिशातातपोऽब्रवीत् ॥ २६० ॥
गोब्राह्मणहतानांच पतितानांतथैवच ।
अग्निनानचसंस्कारःशंखस्यवचनंयथा ॥ २६१ ॥
यश्चाण्डालींद्विजोगच्छे-त्कथंचित्काममोहितः ।
त्रिभिःकृच्छ्रैर्विशुद्ध्येत प्राजापत्यानुपूर्वशः ॥२६२॥
पतिताच्चान्नमादाय भुक्त्वावाब्राह्मणोयदि ।
कृत्वातस्यसमुत्सर्गमतिकृच्छ्रंविनिर्दिशेत् ॥ २६३ ॥
अन्त्यहस्तात्तुविक्षिप्तं काष्ठंलोष्ठंतृणानिच ।
नस्पृशेत्तुतथोच्छिष्ट-महोरात्रंसमाचरेत् ॥२६४॥
चाण्डालपतितंम्लेच्छंमद्यभाण्डंरजस्वलाम् ।

पतितके अन्न को जानबूझ एक वारखालेतो सांतपन कृच्छ्र व्रत करे तथा अज्ञान से पतित का अन्न खाले तो कृच्छ्रसान्तपनव्रत करे ॥ २५९ ॥ यदि पतितों का भोजन किया हो अथवा चाण्डालके घर में भोजन किया हो तो पन्द्रह दिन तक जल ही पीकर रहे उपवासकरे यह शातातप ऋषि ने कहा है ॥२६०॥शंख के वचनानुसार गौ और ब्राह्मणों से मारे गये और पतितों का अग्नि से दाह नहीं करना चाहिये ॥२६१॥यदि कामदेव से मोहित द्विज किसी प्रकार से चांडाली के संग गमन करे तोप्राजापत्य व्रत के पश्चात् तीन कृच्छ्र व्रत करके शुद्ध होता है ॥२६२॥ पतितके अन्न को लेकर वा खाकर ब्राह्मण उस अन्न के त्यागने पर-अतिकृच्छ्रव्रतकरे ॥ २६३ अन्त्यज के हाथ से फैंके हुए काठ–ढेला और तृणों को और अन्त्यज के उच्छिष्ट को स्पर्श करके एक दिन रात का व्रत करे ॥२६४॥यदि भोजन करता हुआ द्विज चांडाल–पतित–म्लेछ–मदिरा का पात्र और रजस्व-

द्विजःस्पृष्ट्वानभुञ्जीत भुञ्जानोयदिसंस्पृशेत् ॥२६५॥
अतःपरंतुभुञ्जीत त्यक्त्वान्नंस्नानमाचरेत् ।
ब्राह्मणैःसमनुज्ञातस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥२६६॥
सघृतंयावकंप्राश्य व्रतशेषंसमापयेत् ।
भुञ्जानः संस्पृशेद्यस्तु वायसंकुक्कुटंतथा ॥ २६७ ॥
त्रिरात्रेणैवशुद्धिःस्या-दथोच्छिष्टस्त्वहेनतु ।
आरूढोनैष्ठिकेधर्मे यस्तुप्रच्यवतेपुनः ॥ २६८ ॥
चान्द्रायणंचरेन्मास-मितिशातातपोब्रवीत् ।
पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यंविधीयते ॥ २६९ ॥
गवांगमनेमनुप्रोक्तं व्रतंचान्द्रायणंचरेत् ।
अमानुषीषुगोवर्जं मुदक्यायामयोनिषु ॥ २७० ॥
रेतःसिक्त्वाजलेचैव कृच्छ्रंसांतपनंचरेत् ।
उदक्यांसूतिकांवापि अंत्यजांस्पृशतेयदि ॥२७१॥

ला इन का स्पर्श करे तो भोजन न करै–अर्थात् उपवास करे ॥ २६५ ॥ स्पर्श करने के पश्चात् भोजन न करे किन्तु उस अन्न को त्याग कर स्नान करे और ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर तीन उपवास करे ॥२६६॥ और घीमे मिले जौ को खाकर बाकी व्रत को पूरा करे—यदि भोजन करता हुआ काक और मुरगे को छूले ॥२६७॥ तो तीन दिन में शुद्धि होती है यदि उच्छिष्ट हुआ पूर्वोक्तोंका स्पर्श करले तो एक दिन में शुद्ध होता है-जो नैष्ठिक धर्म जन्मभर ब्रह्मचारी रहता हुआ गुरु सेवाकी प्रतिज्ञा करके उसको त्यागता है ॥२६८॥ वह एक मासभर चांद्रायण व्रत करै यह शातातप ऋषिने कहा है । पशु और वेश्या के संग गमन करने से प्राजापत्य व्रत कहा है ॥२६९॥ गौओंके संग गमन (मैथुन) कर के मनु के कहे हुए चांद्रायण व्रतको करे–गौसे भिन्न पशु की योनि और रजस्वला और योनि से भिन्न (भूमि आदि) में ॥२७०॥ और जल में वीर्य को सींच कर सांतपन कृच्छ्र करै । चांडाली-सूतिका–और अंत्यज की स्त्री इनका यदि स्पर्श करे तो ॥२७१॥

त्रिरात्रेणैवशुद्धिःस्या-द्विधिरेषपुरातनः ।
संसर्गंयदिगच्छेच्चे-दुदक्यावातथांत्यजैः ॥ २७२ ॥
प्रायश्चित्तीसविज्ञेयः पूर्वंस्नानंसमाचरेत् ।
एकरात्रंचरेन्मूत्रं पुरीषंतुदिनत्रयम् ॥ २७३ ॥
दिनत्रयंतथापानं मैथुनेपंचसप्तवा ।

स्मृत्यन्तरे

अंगीकारेणज्ञातीनां ब्राह्मणानुग्रहेणच ॥ २७४ ॥
पूयन्तेतत्रपापिष्ठा महापातकिनोऽपिये ।
भोजनेतुप्रसक्तानां प्राजापत्यंविधीयते ॥ २७५ ॥
दंतकाष्ठेत्वहोरात्र-मेषशौचविधिःस्मृतः ।
रजस्वलायदास्पृष्टा श्वानचांडालवायसैः ॥ २७६ ॥
निराहाराभवेत्तावत् स्नात्वाकालेनशुद्ध्यति ।

तीन दिन में शुद्धि होती है,यह पुरानी विधिहै-रजस्वला और अन्त्यज स्त्री इनके संग जो मेल होजाय ॥२७२॥ तो वह इस प्रायश्चित्त के योग्य है कि पहिले स्नान करे फिर एक दिन गोमूत्र और तीन दिन गोबर को भक्षण करे ॥ २७३ ॥ रजस्वला तथा अंत्यजा स्त्री इनके जलपान और मैथुन करने में पांच अथवा सात दिन पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करे-यह अन्यस्मृतियों में लिखा है कि कुटुम्बी पुरुषों के स्वीकार करने और ब्राह्मणों के अनुग्रह से ॥ २७४ ॥ जो महापातकी भी पापी हैं वे भी पवित्र हो जाते हैं और निषिद्ध नीच लोगों के भोजन में जो आसक्त हैं वे प्राजापत्यव्रत करैं ॥२७५॥ नीच मनुष्यकी दी दातौन करने में जो प्रसक्त हैं वे एक दिनरात प्रायश्चित्त करैं यह शौच की विधि कही=जिस रजस्वला स्त्री को कुत्ता चांडाल काक ये स्पर्श करलें ॥२७६॥ वह रजकी शुद्धितक निराहार रहै और शुद्ध होनेके समय (चौथेदिन) स्नान करके शुद्ध हो जाती है-यदि रजस्वला स्त्री को ऊंट-

रजस्वलायदास्पृष्टा उष्ट्रजंबुकशंबरैः ॥ २७७ ॥
पञ्चरात्रंनिराहारा पंचगव्येनशुद्ध्यति ।
स्पृष्टारजस्वलान्यो न्यंऽब्राह्मण्याब्राह्मणीचया २७८
एकरात्रंनिराहारा पंचगव्येनशुद्ध्यति ।
स्पृष्टारजस्वलान्योन्यं ब्राम्हण्याक्षत्रियाचया ॥२७९ ॥
त्रिरात्रेणविशुद्धिःस्याद् व्यासस्यवचनंयथा ।
स्पृष्टारजस्वलान्योऽन्यं ब्राह्मण्याशूद्रसंभवा ॥ २८० ॥
षड्रात्रेणविशुद्धिःस्याद् ब्राह्मणीकामकारतः ।
स्पृष्टारजस्वलान्योऽन्यंब्राह्मण्यावैश्यसंभवा ॥ २८१ ॥
चतूरात्रंनिराहारा पंचगव्येनशुद्ध्यति ।
अकामतश्चरेदूर्ध्वं ब्राह्मणीसर्वतःस्पृशेत् ॥ २८२ ॥
चतुर्णामपिवर्णानां शुद्धिरेषाप्रकीर्तिता ।
उच्छिष्टेनतुसंस्पृष्टो ब्राह्मणो ब्राह्मणेनयः ॥ २८२ ॥

जम्बुक–शंबर (बारहसिंगा) कालें ॥२७७॥ तो पांच दिन तक निराहार रहै और फिर पंचगव्य से शुद्धि होती है—यदि ब्राह्मणी रजस्वला ने ब्राह्मणी रजस्वला का स्पर्श कर लिया हो ॥२७८॥ तो एक दिन निराहार रह कर पंचगव्य सेशुद्धि होती है—यदि ब्राह्मणी रजस्वला ने क्षत्रिया रजस्वला का स्पर्श कर लिया होय ॥ २७९॥ तो व्यास के कथन के अनुसार क्षत्रिया तीन दिन में शुद्ध होती है-यदि ब्राह्मणी रजस्वला शूद्राणी रजस्वला का स्पर्श करले॥२८०॥ तोशूद्र स्त्री छः दिन में शुद्ध होती है और पूर्वोक्त रजस्वला ब्राह्मणी अपनी इच्छा के अनुसार कुछ व्रत आदि कर के शुद्ध हो जाती है—यदि ब्राह्मणी रजस्वला ने वैश्य जाति की रजस्वला का स्पर्श कर लिया होय ॥२८१॥ तो वैश्य स्त्री चार दिन निराहार रह कर पंचगव्य से शुद्ध होती है औरों की ॥ इच्छा के अनुसार ब्राह्मणी प्रायश्चित्त करै और फिर सब का स्पर्श करै ॥२८२॥ चारों वर्णों की यह शुद्धि कही है-यदि उच्छिष्ट ब्राह्मण ने उच्छिष्ट ब्राह्मण का स्पर्शकर लिया हो तो ॥ २८२ ॥

भोजनेमूत्रचारेच शंखस्यवचनंयथा ।
स्नानंब्राह्मणसंस्पर्शे जपहोमौतुक्षत्रिये ॥ २८३ ॥
वैश्येनक्तंचकुर्वीत शूद्रेचैवउपोषणम् ।
चर्मकेरजकेवैश्ये धीवरेनटकेतथा ॥ २८४ ॥
एतान्स्पृष्ट्वाद्विजोमोहा-दाचमेत्प्रयतोपिसन् ।
एतैःस्पृष्टोद्विजोनित्य-मेकरात्रंपयःपिबेत् ॥ २८५ ॥
उच्छिष्टैस्तैस्त्रिरात्रंस्याद् घृतंप्राश्यविशुद्ध्यति ।
यस्तुछायांश्वपाकस्य ब्राह्मणस्त्वधिगच्छति ॥ २८६ ॥
तत्रस्नानंप्रकुर्वीत घृतंप्राश्यविशुद्ध्यति ।
अभिशस्तोद्विजोऽरण्ये ब्रह्महत्याव्रतंचरेत् ॥२८७॥
मासोपवासंकुर्वीत चान्द्रायणमथापिवा ।
वृथामिथ्योपयोगेन भ्रूणहत्याव्रतंचरेत् ॥ २८८ ॥
अभक्षोद्वादशाहेन पराकेणैवशुद्ध्यति ।

भोजन के उच्छिष्ट में अथवा मूत्र के त्याग के उच्छिष्ट में शंखऋषि के वचनानुसार ब्राह्मण के स्पर्श में स्नान और क्षत्रिय के स्पर्श में जप होम कहे हैं ॥ २८३ ॥ और वैश्य के स्पर्श में रात भर व्रत करै और शूद्र के स्पर्श में एक उपवास करै—और चमार धोबी—वैश्य (वेश्या का पुत्र) धीवर— और नट॥२८४॥इन का अज्ञान से ब्राह्मण स्पर्श करके सावधान होकर आचमन करै यदि ये ब्राह्मण का स्पर्श करलें तो एक दिन दुग्धपान करै॥२८५। और यदि पूर्वोक्त चमार आदि उच्छिष्ट हुए ब्राह्मण का स्पर्श करलें तो ब्राह्मण तीन दिन का व्रत करके घृत को खाकर शुद्ध होता है—यदि ब्राह्मण श्वपाक की छाया में चले बैठे वा खड़ा रहे २८६ ॥ तो स्नान करै और घृत खाकर शुद्ध होता है । जो ब्राह्मण अभिशस्त (कलंकित) हो वह वन में जाकर ब्रह्महत्या का व्रत करै कि ॥२८७ ॥ एक मास तक उपवास करै अथवा चान्द्रायण करे । यदि वृथा ही (झूटा) हिंसा का दोष लगा हो तो भ्रूणहत्या का व्रत करै कि ॥२८८। बारह दिन अनशन हो भक्षण करके पराक व्रत से शुद्ध

शठंचब्राह्मणंहत्वा शूद्रहत्याव्रतंचरेत् ॥ २८९ ॥
निर्गुणंचगुणीहत्वा पराकंव्रतमाचरेत् ।
उपपातकसंयुक्तो मानवोम्रियतेयदि ॥ २९० ॥
तस्यसंस्कारकर्ताच प्राजापत्यद्वयंचरेत् ।
प्रभुञ्जानोतिसस्नेहं कदाचित्स्पृश्यतेद्विजः ॥ २९१ ॥
त्रिरात्रमाचरेन्नक्तं-निःस्नेहमथवाचरेत् ।
विडालकाद्युच्छिष्ट जग्ध्वाश्वनकुलस्यच ॥२९२॥
केशकीटावपन्नंच पिबेद्ब्राह्मीसुवर्चसम् ।
उष्ट्रयानंसमारुह्य खरयानंचकामतः ॥ २९३ ॥
स्नात्वाविप्रोजितप्राणः प्राणायामेनशुद्ध्यति
सव्याहृतींसप्रणवां गायत्रींशिरसासह ॥ २९४ ॥
त्रिःपठेदायतप्राणः प्राणायामःसउच्यते ।

होता है । शठ ब्राह्मण को मार कर शूद्र की हत्या का व्रत करै ॥ १८९ ॥ विद्वान् ब्राह्मण मूर्ख को मार डाले तो पराक व्रत करे यदि जिस को उपपातक लगा हो वह मनुष्य मरजाय तो ॥ २९० ॥ उस का मृतक कर्म करने वाला दो प्राजापत्यव्रत करे । अत्यंत स्नेह सहित पदार्थ को भक्षण करते हुए ब्राह्मण को कदाचित् कोई छूले तो ॥ २९१ ॥ तीन दिन तक नक्त व्रत करै अथवा घृत के विना रूखा भोजन करै । विलाव काक–कुत्ता–नौला इन के उच्छिष्ट को भक्षण करके॥२९२॥ और जिस में वाल या कीड़े, पड़े हों उसे खाकर ब्राह्मी ओषधि को पीवे। अपनी इच्छा से ऊंट–गधा इन के यान (सवारी) पर वैठे तो ॥२९३॥ ब्राह्मण स्नान और सूक्ष्म भोजन करके प्राणायाम से शुद्ध होता है । भूआदि सातव्याहृती और (ओम्‌ · आपोज्योती०) यह गायत्री शिर इससहित गायत्री को॥२९४॥तीन वार श्वासरोककर जो पढ़े उसे प्राणायाम कह-

शकृद्द्विगुणगोमूत्रं सर्पिर्दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ २९५ ॥
क्षीरमष्टगुणंदेयं पंचगव्यंतथादधि ।
पंचगव्यंपिबेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तुसुरांपिबेत् ॥ २९६ ॥
उभौतौतुल्यदोषौचवसतोनरकेचिरम् ।
अजागावोमहिष्यश्च अमेध्यंभक्षयन्तियाः ॥ २९७ ॥
दुग्धंहव्येचकव्येच गोमयंनविलेपयेत् ।
ऊनस्तनीमधोकांवा याचस्वस्तनपायिनी ॥ २९८ ॥
तासांदुग्धंनहोतव्यं हुतंचैवाहुतंभवेत् ।
ब्राह्मौदनेचसोमेच सीमन्तोन्नयनेतथा ॥ २९९ ॥
जातश्राद्धेनवश्राद्धे भुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत् ।
राजान्नंहरतेतेजः शूद्रान्नंब्रह्मवर्चसम् ॥ ३०० ॥
स्वसुतान्नंचयोभुङ्क्ते सभुङ्क्तेपृथिवीमलम् ।
स्वसुताअप्रजाताच नाश्नीयात्तद्गृहेपिता ॥ ३०१ ॥

ते हैं। गोबर से दूना गोमूत्र चौगुना घी-॥२९५॥ आठ गुना दूध और आठ गुना दही डाले यह पंचगव्य कहाता है। यदि शूद्र उक्त पंचगव्य को पीवे और ब्राह्मण मदिरा को पीवे ॥ २९६ ॥ तो वे दोनों तुल्य दोष के भागी हैं और चिरकाल तक नरक में वसते हैं। जो बकरी गौ और भैंस विष्ठादि अशुद्ध वस्तु को खातीहों॥२९७॥ तो हव्य और कव्य में उन का दूध न ले और उन के गोबर से लीपे भी नहीं। जिस के थन छोटे हों अथवा ४ से अधिक हों-जो रोगिन हो और जो अपने थन को स्वयं पीती हो ॥२९८॥ ऐसी गौ आदि के दूधसे होम न करे क्योंकि वह किया हुआ होम विन किए के समान हो जाता है। ब्राह्मौदन (अग्न्याधानादि के समय चांवल वनते हैं) सोम यज्ञ -सीमंतउन्नयन में॥२९९॥ और जातकर्म के श्राद्ध और नवक श्राद्ध में भोजन करके चांद्रायण व्रत करे। राजा का अन्न तेज को और शूद्र का अन्न तेज को हरता है ॥३००॥ अपनी लड़की के अन्न को जो खाता है वह जानो पृथिवी के मल को खाता है और जिस लड़की के संतान न हुई हो उसके घरमें भी पिता न खावे॥३०१॥

भुङ्क्तेत्वस्यामाययान्नं पूयसंनरकंव्रजेत् ।
अधीत्यचतुरोवेदान्सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ ३०२ ॥
नरेन्द्रभवनेभुक्त्वा विष्ठायांजायतेकृमिः ।
नवश्राद्धेत्रिपक्षेच षण्मासेमासिकेब्दिके ॥३०३॥
पतन्तिपितरस्तस्य योभुङ्क्तेनापदिद्विजः ।
चान्द्रायणंनवश्राद्धे पराकोमासिकेतथा ॥३०४॥
त्रिपक्षेचातिकृच्छ्रंस्यात् षण्मासेकृच्छ्रमेवच ।
आब्दिकेपादकृच्छ्रंस्या-देकाहःपुनराब्दिके ॥३०५॥
ब्रह्मचर्यमनाधाय मासश्राद्धेषुपर्वसु ।
द्वादशाहेत्रिपक्षेब्दे यस्तुपक्षेद्विजोत्तमः ॥३०६॥
पतन्तिपितरस्तस्य ब्रह्मलोकेगताअपि ।
पक्षेवायदिवामासे यस्यनाश्नन्तिवैद्विजाः ॥३०७॥

और जो प्रजा हीन लड़की के अन्न को छल से खाता है वह पूयस नामक नरक में जाता है—चार वेदों को पढ़कर सब शास्त्रों के तत्त्व को जानने वाला पुरुष ३०२॥ राजा के घर में भोजन करके विष्ठा में कीड़ा होता है। नवक श्राद्ध [मनुष्य के मरने पर ग्यारहवें दिन के श्राद्ध को नव वा नवक श्राद्ध कहते हैं] त्रिपक्ष का, छमाही का मासिक और वार्षिक इन श्राद्धों में ॥ ३०३॥ आपत्ति के बिना जो ब्राह्मण भोजन करता है उस के पितर नरक में पड़ते हैं। नवक श्राद्ध में चांद्रायण, मासिकश्राद्ध में पराक, ॥३०४॥ त्रिपक्ष (१॥ मास) के श्राद्ध में अति कृच्छ्र छमाही के श्राद्ध में कृच्छ्र पहिले वार्षिक वर्षी में पाद कृच्छ्र, और दूसरे वार्षिक में एक दिन उपवास करै ॥३०५॥ विना ब्रह्मचर्य से किए मासिक श्राद्ध में पर्व (पूर्णमासी आदि) में मृतक के द्वादशाह में—त्रिपक्ष में—और वार्षिक श्राद्ध में जो ब्राह्मण भोजन करता है ॥ ३०६ ॥ ब्रह्मलोक में गये भी उस के पितर नरक में जाते हैं। जिस गृहस्थी के घर में पक्ष अथवा महीने में ब्राह्मण भोजन न करते हों ॥ ३०७ ॥

भुक्त्वादुरात्मनस्तस्य द्विजश्चान्द्रायणंचरेत् ।
एकादशाहेऽहोरात्रं भुक्त्वासंचयनेत्र्यहम् ॥ ३०८ ॥
उपोष्यविधिवद्विप्रः कूष्मांडींजुहुयाद्घृतम्
यन्नवेदध्वनिस्नातं नचगोभिरलंकृतम् ॥३०९॥
यन्नवालैःपरिवृतं श्मशानमिवतद्गृहम् ।
हास्येपिबहवोयत्र विनाधर्मंवदन्तिहि ॥३१०॥
विनापिधर्मशास्त्रेण सधर्मोपावनःस्मृतः ।
हीनवर्णेचयःकुर्यात अज्ञानादभिवादनम् ॥ ३११ ॥
तत्रस्नानंप्रकुर्वीत घृतंप्राश्यविशुद्ध्यति ।
समुत्पन्नेयदास्नाने भुङ्क्ते वापिपिबेद्यदि ॥३१२॥
गायत्र्यष्टसहस्रंतु जपेत्स्नात्वासमाहितः ।
अंगुल्यादन्तकाष्ठंच प्रत्यक्षंलवणंतथा ॥ ३१३ ॥

उस दुष्टचित्त वाले के अन्न को खाकर द्विज चांद्रायण व्रत करै। मृतक के ग्यारहवें दिन भोजन करके एक रात दिन और अस्थि संचयन के दिन भोजन करे तो तीन दिन तक ॥३०८॥ विधि से उपवास करके बैठे और घी से हवन करैं। जो घर वेद के उच्चारण से पवित्र नहीं—और जो गौओं से शोभायमान नहीं है ॥ ३०९ ॥ और जो बालकों से भराहुआ नहीं है वह घर मरघट भूमि के तुल्य है। हंसी में भी जहां बहुत मनुष्य अधर्म से भिन्न जो कुछ कर्त्तव्य कहते हों ३१० ॥ और चाहै वह उन बहुत मनुष्यों का कथन धर्म शास्त्र के विरुद्ध भी होतौ वह उनका कथन परम धर्म कहा है— जो अपने से नीचे वर्ण को अज्ञान से अभिवादन करता है ॥ ३११ ॥ वह मनुष्य स्नान कर के घी को चाटे तो शुद्ध होता है—जो स्नान के योग्य मनुष्य विना स्नान किये भोजन करले अथवा जलपान करले तो ॥३१२॥ स्नान करके सावधानता से आठ हजार गायत्री जपे। अंगुली सहित दातौन प्रत्यक्ष (केवल)लवण का भक्षण ॥ ३१३ ॥

मृत्तिकाभक्षणंचैव तुल्यंगोमांसभक्षणम् ।
दिवाकपित्थछायायां रात्रौदधिशमीषुच ॥३१४॥
कर्पासन्दन्तकाष्ठंच विष्णोरपिश्रियंहरेत् ।
शूर्पवातोनखाग्रांबु स्नानवस्त्रंघटोदकम् ॥ ३१५ ॥
मार्जनीरजकेशांबु देवतायतनोद्भवम् ।
येनावलुण्ठतंतेषु गङ्गांभःप्लुतएवसः ॥ ३१६ ॥
मार्जनीरेणुकेशांबु हन्तिपुण्यंदिवाकृतम् ।
मृत्तिकाःसप्तनग्राह्या वल्मीकेऊषरस्थले ॥ ३१७ ॥
अंतर्जलेश्मशानांते वृक्षमूलेसुरालये ।
वृषभैश्चतयोत्खाते श्रेयस्कामैःसदाबुधैः ॥ ३१८ ॥
शुचौदेशेसुसंग्राह्या शर्कराश्मादिवर्जिता ।

और मिट्टी का भक्षण करने के समान दूषित है दिन में कैथ की छाया रात्रि में दधि का भक्षण शमी (छोंकर) की छाया ॥ ३१४ ॥ और कपास की दातौन ये विष्णु की भी लक्ष्मी को हरते हैं अर्थात् ये विशेष कर चिकित्सा शास्त्रके अनुसार भी अधिक हानिकारक हैं। —सूप की पवन—नखों के अग्रभाग का जल—स्नान का वस्त्र—और घटका जल ॥३१५॥ और मार्जनी (झाड़) की धूल—और केशों का जल यदि ये पूर्वोक्त छःओं देवता के स्थान के हों और इनमें जो लोटै तो वह पुरुष मानो गंगाजी के जल में लोटा ॥३१६॥ मार्जनी की धूल और केशों का जल ये दोनों दिन भर में किये पुण्य को नष्ट करते हैं—सात जगह की मिट्टी ग्रहण न करे बमी की मूसों के स्थान की ॥३१७॥ जल के भीतर की—श्मशान की—वृक्ष की जड़ की—देवता के स्थान की—और जो बैलों ने खोदी हो इन सातों को कल्याण चाहने वाला ब्राह्मण शुभ काम के लिये ग्रहण न करे ॥३१८॥ कङ्कर और पत्थर जिस में न हों ऐसी शुद्ध स्थान की मिट्टी ग्रहण करे। शौच फिराते, मैथुन, होम, लघुशङ्का, औ दन्त-

पुरीषेमैथुनेहोमे प्रस्त्रावेदंतधावने ॥ ३१९ ॥
स्नानभोजनजाप्येषु सदामौनंसमाचरेत् ।
यस्तुसंवत्सरपूर्णं भुङ्क्ते मौनेनसर्वदा ॥ ३२० ॥
युगकोटिसहस्रेषु स्वर्गलोकेमहीयते ।
स्नानंदानंजपंहोमं भोजनंदेवतार्चनम् ॥ ३२१ ॥
व्यूढपादोनकुर्वीत स्वाध्यायःपितृतर्पणम् ।
सर्वस्वमपियोदद्यात् पातयित्वाद्विजोत्तमम् ॥ ३२२ ॥
नाशयित्वातुतत्सर्वं भ्रूणहत्याफलंभवेत् ।
ग्रहणोद्वाहसंक्रांतौ स्त्रीणांचप्रसवेतथा ॥ ३२३ ॥
दानंनैमित्तकंज्ञेयं रात्रावपिप्रशस्यते ।
क्षौमजंवाथकार्पासं पट्टसूत्रमथापिवा ॥ ३२४ ॥
यज्ञोपवीतंयोदद्या-द्वस्त्रदानफलंलभेत् ।
कांस्यस्यभोजनंदद्याद् घृतपूर्णंसुशोभनम् ॥ ३२५ ॥

धावन करते समय तथा ॥३१९॥ स्नान, भोजन, और जप करते समय में मौन धारण करे । जो मनुष्य एक वर्ष भर सदा मौन होकर भोजन करता है ॥३२०॥ वह एक हजार किरोड़ युग तक स्वर्ग लोक में पूजा को प्राप्त होता है । स्नान दान, जप, होम, भोजन, और देवता का पूजन ॥३२१॥ वेद का पढ़ना और पितरों का तर्पण इन आठ कामों को पांव पसार कर न करे । जो मनुष्य गिराकर अर्थात् ब्राह्मण मार कर अपने सर्व धनादि को भी दान देता है ॥३२२॥ तो भी वह उस सब को नष्ट कराकर भ्रूण (गर्भ) हत्या के फल को प्राप्त होता है । ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति, और स्त्रियों का प्रसव—इन मौकों पर दिया दान नैमित्तिक जानो वह दान रात्रि में भी ॥३२३॥ करना ठीक कहा है—रेशम—सूत—पाट का सूत्र इन के ॥ ३२४ ॥ यज्ञोपवीत को जो देता है वह वस्त्र दान के फलको प्राप्तहोता है-जो घी से भरे कांसे के पात्र को देता है ॥३२५॥

तश्राभक्तथाविधानेन अग्निष्टोमफलंलभेत् ।
श्राद्धकालेतुयोदद्यात् शोभनेचउपानहौ ॥ ३२६ ॥
सगच्छत्यन्नमार्गेपि अश्वदानफलंलभेत् ।
तैलपात्रंतुयोदद्यात्संपूर्णंसुसमाहितः ॥ ३२७ ॥
सगच्छतिध्रुवंस्वर्गं नरोनास्त्यत्रसंशयः ।
दुर्भिक्षेअन्नदाताच सुभिक्षेचहिरण्यदः ॥ ३२८ ॥
पानप्रदस्त्वरण्येतु स्वर्गलोकेमहीयते ।
यावदर्धप्रसूतागौस्तावत्सापृथिवीस्मृता ॥३२९॥
पृथिवीतेनदत्तास्या–दीदृशींगांददातियः ।
तेनाग्नयोहुताःसम्यक् पितरस्तेनतर्पिताः ॥३३०॥
देवाश्चपूजिताःसर्वे योददातिगवान्हिकम् ।
जन्मप्रभृतियत्पापं–मातृकंपैतृकंतथा ॥ ३३१ ॥
तत्सर्वंनश्यतिक्षिप्रं वस्त्रदानान्नसंशयः ।

भक्ति और विधि से देने वाला पुरुष अग्निष्टोम यज्ञ के फल को प्राप्त होता है । जो श्राद्ध के समय सुन्दर उपानह दान में देता है ॥३२६॥ वह जिस में अन्न मिले ऐसे मार्ग में गमन करता हुआ अश्व के दान के फल को प्राप्त होता है–जो सावधान होकर भरा हुआ तेल का पात्र देता है ॥ ३२७ ॥ वह मनुष्य निश्चय से स्वर्ग में जाता है इस में सन्देह नहीं है–दुर्भिक्ष में अन्न का दाता सुभिक्ष में सुवर्ण का देने वाला ॥ ३२८ ॥ और वन जंगल में प्याऊ द्वारा जल का दान करने वाला स्वर्ग लोक में पूजा को प्राप्त होता है । जब तक गौ अधब्यानी (आधा बच्चा भीतर और आधा बाहर) हो तब तक वह पृथिवी के तुल्य है ॥ ३२९ ॥ जिसने ऐसी गौ दी उसने मानो पृथिवी का दान किया । उसने मानो अग्निहोत्र किया और उसीने पितर तृप्त किये॥३३०॥ तथा उसीने संपूर्ण देवता पूजे कि जो गौ को प्रति दिन खाने को देता है । जन्म से लेकर जो पाप किया तथा माता या पिता का जो अपराध कियाहो ॥३३१॥ वह संपूर्ण वस्त्र के देने से उसी समय नष्ट हो जाता है । शृङ्गआदि सहित का

कृष्णाजिनंतुयोदद्या-त्सर्वोपरकरसंयुतम् ॥ ३३२ ॥
उद्धरेन्नरकस्थाना-त्कुलान्येकोत्तरंशतम् ।
आदित्योवरुणोविष्णुर्ब्रह्मासोमोहुताशनः ॥ ३३३ ॥
शूलपाणिस्तुभगवान् अभिनन्दतिभूमिदम् ।
वालुकानांकृताराशि-र्यावत्सप्तर्षिमण्डलम् ॥ ३३५ ॥
गतेवर्षशतेचैव पलमेकंविशीर्यति ।
क्षयंचदृश्यतेतस्य कन्यादानेनचैवहि ॥३३६॥
आतुरेप्राणदाताच त्रीणिदानफलानिच ।
सर्वेषामेवदानानां विद्यादानंततोधिकम् ॥ ३३७ ॥
पुत्रादिस्वजनेदद्या-द्विप्रायचनकैतवे ।
सकामःस्वर्गमाप्नोति निष्कामोमोक्षमाप्नुयात् ॥३३८॥
ब्राह्मणेवेदविदुषि सर्वशास्त्रविशारदे ।
मातृपितृपरेचैव ऋतुकालाभिगामिनि ॥ ३३९ ॥

सी मृगछाला को जो देता है ॥ ३३२ ॥ वह नरक में पड़े एक सौ एक कुलों का उद्धार करता है । सूर्य—वरुण—विष्णु—ब्रह्मा—चन्द्रमा—अग्नि ॥ ३३३ ॥ और भगवान् शिव जो भूमि के देने वाले की प्रशंसा करते हैं । सात ऋषियों के मंडल पर्यन्त किया जो वालू (रेत) का ढेर है॥३३५॥ वह सौ वर्ष पीछे एक पल २ भी कमती होने से नष्ट हो जाता है परन्तु कन्या के दान में जो धर्म होता है वह नष्ट नहीं होता ॥३३६॥ आतुर (दुःखी) को प्राण का दान जो देता है उसको दान के तीन फल (धर्म अर्थ काम) होते हैं । सब दानों के बीच में सब से अधिक विद्या का दान है ॥३३७॥ पुत्र आदि स्वजन को—और सुपात्र ब्राह्मण को विद्या दे और कपटी को न दे—कुछ कामना रखने वाला—स्वर्ग को तथा किसी द्रव्य आदि की इच्छा न करने वाला मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ३३८ ॥ जो ब्राह्मण वेद का जानता हो, शास्त्रों में जो चतुर हो माता पिता का भक्त हो—और जो ऋतु के समय में ही स्त्री से संग करता हो ॥ ३३९ ॥

शीलचारित्रसंपूर्णे प्रातःस्नानपरायणे ।
तस्यैवदीयतेदानं यदीच्छेच्छ्रेयआत्मनः ॥ ३४० ॥
संपूज्यविदुषोविप्रान् अन्येभ्योपिप्रदीयते ।
तत्कार्यंनैवकर्तव्यं नदृष्टंनश्रुतंमया ॥ ३४१ ॥
अतःपरंप्रवक्ष्यामि श्राद्धकर्मणियेद्विजाः ।
पितृणामक्षयंदानं दत्तंयेषांतुनिष्फलम् ॥ ३४२ ॥
नहीनांगोनरोगीच श्रुतिस्मृतिविवर्जितः ।
नित्यंचानृतवादीच वणिक्श्राद्धेनभोजयेत् ॥३४३॥
हिंसारतंचकपटमुपगुह्यश्रुतंचयः ।
किंकरंकपिलंकाणं श्वित्रिणंरोगिणंतथा ॥ ३४४ ॥
दुश्चर्माणंशीर्णकेशं पाण्डुरोगंजटाधरम् ।
भारवाहितरौद्रंच द्विभार्यंवृषलीपतिम् ॥ ३४५ ॥

शील तथा उत्तम आचरण में लगा हो और प्रातःकाल स्नान में जो तत्पर हो ऐसे सुपात्र ब्राह्मण को अपना कल्याण चाहने वाला दाता दान दे ॥३४०॥ विद्वान् ब्राह्मण का प्रथम पूजन करके अन्य (मूर्ख) ब्राह्मणों को दान देवे । और उस कार्य को नहीं करना जिस को स्वयं न देखा और न सुना हो ॥३४१॥ इस से आगे यह कहते हैं कि श्राद्ध कर्म में कैसे ब्राह्मण हों कि पितरों के निमित्त जिन को दिया दान अक्षय फल दायक होता और जिन को दिया निष्फल होता है ॥ ३४२ ॥ लूला लंगड़ा आदि (रोगी) श्रुति स्मृति को न पढ़ा न जानता हो—जो नित्य झूठ बोलता हो जो व्यापारी हो इन ब्राह्मणों को श्राद्ध में न जिमावे ॥ ३४३ ॥ हिंसा में तत्पर—कपटी—और जो अपने वेद को छिपा कर किंकर बन जाय—पीला—काणा—श्वेतकुष्ठ वा अन्य रोग जिसे घेरे हो ॥ ३४४ ॥ जिस के देह की त्वचा बिगड़ी फटी हो—जिस के केश गिर पड़े हों—पाण्डुरोगी—जटाधारी—भार (बोझ) का ढोने वाला—भयानक—जिस के दो स्त्री हों—शूद्र स्त्री से जिस ने विवाह किया हो ॥ ३४५ ॥

भेदकारीभवेच्चैव बहुपीडाकरोपिवा ।
हीनातिरिक्तगात्रोवा तमप्यपनयेत्तथा ॥ ३४६ ॥
बहुभोक्तादीनमुखो मत्सरीक्रूरबुद्धिमान् ।
एतेषांनैवदातव्यः कदाचित्तुप्रतिग्रहः ॥ ३४७ ॥
अथचेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैःपंक्तिदूषणैः ।
अदुष्यंतंयमःप्राह पंक्तिपावनएवसः ॥ ३४८ ॥
श्रुतिःस्मृतिश्चविप्राणां नयनेद्वेप्रकीर्तिते ।
काणःस्यादेकहीनोपि द्वाभ्यामन्धःप्रकीर्तितः ॥३४९॥
नश्रुतिर्नस्मृतिर्यस्य नशीलंनकुलंयतः ।
तस्यश्राद्धंनदातव्यं त्वन्धकस्यात्रिरब्रवीत् ॥३५०॥
तस्माद्वेदेनशास्त्रेण ब्राह्मण्यंब्राह्मणस्यतु ।
नचैकेनैववेदेन भगवानत्रिरब्रवीत् ॥ ३५१ ॥

भेद का कर्ता (मन फटाने वाला) बहुतों को पीड़ा करने वाला जिस के अङ्ग हीन (कम) अथवा अधिक हों—इन को श्राद्ध में से दूरकरदे ॥ ३४६॥ बहुत खाने वाला—जिसके मुखपर दीनताझलकती हो—जो दूसरेके गुणोंमें दोषोंको देखता हो—कठोर जिस की बुद्धि हो—ऐसे को कदाचित भी दान नहीं देवे ॥ ३४७ ॥ जो ब्राह्मण वेद को पढ़ा हो तथा जानता हो और चाहै वह शरीर में जो दोष कहे हैं उन वाला भी हो—तो भी उस को यम ने शुद्ध कहा है क्योंकि वह पङ्क्ति को पवित्र करने वाला है ॥ ३४८ ॥ वेद और स्मृति ये दोनों ब्राह्मणों के नेत्र कहे हैं—इन के मध्य में एक को जो नहीं जानता वह काणा और जो दोनों को न जानता हो वह अंधा शास्त्र में कहा है ॥ ३४९ ॥ जो न वेद को और न स्मृति को जानता हो—न शील वान्हो—न कुलीन हो उस अंधे को श्राद्ध में निमन्त्रण नहीं देना यह अत्रि ऋषि ने कहा है ॥ ३५० ॥ जिस से ब्राह्मण का ब्राह्मणपन वेद और शास्त्र से होता है किन्तु केवल वेद से नहीं है यह भगवान् अत्रि ने कहा है ॥ ३५१ ॥

योगस्थैर्लोचनैर्युक्तः पादाग्रंचप्रपश्यति ।
लौकिकज्ञश्चशास्त्रोक्तं पश्येच्चैवोधरोत्तरम् ॥३५२॥
वेदैश्चऋषिभिर्गीतं दृष्टिमान्शास्त्रवेदवित् ।
व्रतिनंचकुलीनंच श्रुतिस्मृतिरतंसदा ॥३५३ ॥
तादृशंभोजयेच्छ्राद्धे पितॄणामक्षयंभवेत् ।
यावतोग्रसतेग्रासान् पितॄणांदीप्ततेजसाम् ॥३५४॥
पितापितामहश्चैव तथैवप्रपितामहः ।
नरकस्थाविमुच्यंते ध्रुवंयांतित्रिविष्टपम् ॥ ३५५ ॥
तस्माद्विप्रंपरीक्षेत श्राद्धकालेप्रयत्नतः ।
ननिर्वपतियःश्राद्धंप्रमीतपितृकोद्विजः ॥३५६ ॥
इन्दुक्षयेमासिमासि प्रायश्चित्तीभवेत्तुसः ।
सर्येकन्यागतेकुर्या–च्छ्राद्धंयोनगृहाश्रमी ॥३५७ ॥

योग शास्त्र में कहे अनुसार जिस के नेत्र हों–और अपने चरणों के अग्रभाग को ही जो देखता है अर्थात् कहीं भी कुदृष्टि न करता हो लौकिक व्यवहार जानता हो और शास्त्र में कहे ऊंच नीच को जो देखता हो ।३५२॥ और ज्ञानवान् हो–शास्त्र और वेद का ज्ञाता हो–व्रत करने वाला हो–कुलीन हो–वेद और स्मृतियों के पठन और पाठन में जो तत्पर हो ॥३५३॥ ऐसे ब्राह्मण को श्राद्ध में जिमावे तो पितरों को अक्षय तृप्ति होती है। प्रदीप्त तेज वाले पितरों सम्बन्धी जितने ग्रासों को पूर्वोक्त ब्राह्मण खाता है उतने ही शीघ्र २ ॥ ३५४ ॥ पिता–पितामह–और प्रपितामह ये सब नरक में पड़े हुए भी मुक्त हो जाते हैं और निश्चय कर स्वर्ग को प्राप्त हो जाते हैं ॥३५५॥ तिस से श्राद्ध के समय बड़े यत्न से ब्राह्मण की परीक्षा करै । जिस द्विज का पिता मरगया हो यदि वह ॥३५६॥ महीने २ में अमावस के दिन श्राद्ध नहीं करता तो प्रायश्चित्त के योग्य होता है । कन्या के सूर्य कन्यागत कहाते उसी का बिगड़ा शब्द (कनागत) होगया है उस काल में जो गृहस्थी श्राद्ध न करै ॥ ३५७ ॥

धनंपुत्रान्कुलंतस्य पितृनिश्वासपीडया ।
कन्यागतेसवितरि पितरोयान्तिसत्सुतान् ॥ ३५८ ॥
शून्याप्रेतपुरीसर्वा यावद्वृश्चिकदर्शनम् ।
ततोवृश्चिकसंप्राप्ते निराशाःपितरोगताः ॥३५९ ॥
पुनःस्वभवनंयान्ति शापंदत्वासुदारुणम् ।
पुत्रंवाभ्रातरंवापि दौहित्रंपौत्रकंतथा ॥ ३६० ॥
पितृकार्येप्रसक्तायेतेयान्तिपरमांगतिम् ।
यथानिर्मथनादग्निः सर्वकाष्ठेप्रतिष्ठति ॥ ३६१ ॥
तथासंदृश्यतेधर्मः श्राद्धदानान्नसंशयः ।
यःप्राप्नोतितदासर्वं कन्यागतेचगंगया ॥ ३६२ ॥
सर्वशास्त्रार्थगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ।
सर्वयज्ञफलंविद्या=च्छ्राद्धदानान्नसंशयः ॥ ३६३ ॥
महापातकसंयुक्तो योयुक्तश्चोपपातकैः ॥

तो पितरों की लंबीश्वास द्वारा उस का धन पुत्र और कुल नष्ट होता है । कन्या राशि पर जब सूर्य आते हैं तब पितर अपने उत्तम पुत्रों के समीप आते हैं ॥ ३५८ ॥ जब तक वृश्चिक की संक्रांति नहीं लगती तब तक यमराज की पुरी शून्य रहती है फिर वृश्चिक संक्राति के आते ही निराश होकर पितर लौट जाते हैं ॥ ३५९ ॥ फिर वे बड़ा भयानक शाप देकर अपने लोक को चले जाते हैं पुत्र–भाई–लड़की का लड़का–और पोता ॥ ३६० ॥ जो ये सब पितरों के श्राद्ध में तत्पर हों तो वे भी परम गति को प्राप्त होते हैं–जैसे मथने से सब काठों में अग्नि की स्थिति दीखती है ॥३६१॥ वैसे ही श्राद्ध के देने से धर्म का विस्तार प्रत्यक्ष दीखता है' इस में संशय नहीं है। और जो कनागतों में गंगा पर श्राद्ध करता है उसे सब फल प्राप्त होता है ॥ ३६२ ॥ सब शास्त्रों के अर्थों को जानना–सब तीर्थों में स्नान–और सब यज्ञों का

घनैर्मुक्तोयथाभानू राहुमुक्तश्चचन्द्रमाः ॥ ३६४ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वपापंविलङ्घयेत् ।
सर्वसौख्यमयंप्राप्तः श्राद्धदानान्नसंशयः ॥ ३६५ ॥
सर्वेषामेवदानानां श्राद्धदानंविशिष्यते ।
मेरुतुल्यंकृतंपापं श्राद्धदानंविशोधनम् ॥३६६॥
श्राद्धंकृत्वातुमर्त्योवै स्वर्गलोकेमहीयते ।
अमृतंब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नंपयःस्मृतम् ॥ ३६७ ॥
वैश्यस्यचान्नमेवाज्यं शूद्रान्नंरुधिरंभवेत् ।
एतत्सर्वंमयाख्यातं श्राद्धकालेसमुत्थिते॥ ३६८ ॥
वैश्वदेवेचहोमेच देवताभ्यर्चनेजपेत् ।
अमृतंतेनविप्रान्नं ऋग्यजुःसामसंस्कृतम् ॥ ३६९ ॥
व्यवहारानुपूर्व्येण धर्मेणावलिभिर्जितम् ।

फल श्राद्ध के दान से जानो इस में संदेह नहीं है ॥ ३६३ ॥ जो महापातकी वा उपपातकी हो वह पुरुष भी श्राद्ध के दान से मेघों में से निकले सूर्य और राहु से छूटे चन्द्रमा के समान शुद्ध निर्दोष होता है ॥ ३६४ ॥ और वह सब पापों से छूटा हुआ सब पापों के पार हो जाता तथा श्राद्ध के देने से सब सुखों को प्राप्त होता है इस में सन्देह नहीं है ॥ ३६५ ॥ सब दानों में श्राद्ध का दान अधिक फल देने वाला है मेरु पहाड़ के तुल्य जो पाप किया हो तो उस से भी शुद्ध करने वाला श्राद्ध का दान है ॥ ३६६ ॥ मनुष्य श्राद्ध कर के स्वर्गलोक में पूजा जाता है ब्राह्मण का अन्न श्राद्ध में अमृत रूप क्षत्रिय का अन्न दूध रूप ॥ ३६७ ॥ वैश्य का अन्न घृत रूप और शूद्र का अन्न रुधिर रूप होता है-यह जो सब हम ने कहा है इस को श्राद्ध के समय, बलि वैश्वदेव, होम, देवताओं का पूजन, इन कामों में जपै ॥ ३६८ ॥ ऋग्वेद-यजुर्वेद सामवेद-के मन्त्रों से ब्राह्मण का अन्न निर्मल होने से अमृत रूप है ॥ ३६९ ॥ व्यवहार के क्रम से और धर्म से बलवानों को जीत कर संचय किया है इस में सूत्री

क्षत्रियान्नंपयस्तेन घृतान्नंयज्ञपालने ॥३७०॥
देवोमुनिर्द्विजोराजा वैश्यःशूद्रोनिषादकः ।
पशुर्म्लेच्छोऽपिचांडालो विप्रादशविधाःस्मृताः ॥३७१॥
संध्यांस्नानंजपंहोमंदेवतानित्यपूजनम् ॥
अतिथिंवैश्वदेवंच देवब्राह्मणउच्यते ॥३७२॥
शाकेपत्रेफलेमूले वनवासेसदारतः ।
निरतोऽहरहःश्राद्धे सविप्रोमुनिरुच्यते ॥ ३७३ ॥
वेदान्तंपठतेनित्यंसर्वसंगंपरित्यजेत् ।
सांख्ययोगविचारस्थः सविप्रोद्विजउच्यते ॥३७४ ॥
अस्त्राहताश्चधन्वानः संग्रामेसर्वसंमुखे ।
आरंभेनिर्जितायेन सविप्रःक्षत्रउच्यते ॥ ३७५ ॥
कृषिकर्मरतोयश्च गवांचप्रतिपालकः ।
वाणिज्यव्यवसायश्च सविप्रोवैश्यउच्यते ॥ ३७६ ॥

का अन्न दूध रूप है और यज्ञ की रक्षा करने से वैश्य का अन्नघृत रूप है ।३७०। देव, मुनि, द्विज, राजा, वैश्य, शूद्र, निषाद, पशु, म्लेच्छ, चांडाल ये दश प्रकार के (जिन को आगे कहते हैं) ब्राह्मण कहे हैं ॥ ३७१ ॥ संध्या, स्नान,+जप,+होम, देवपूजा, अतिथि सत्कार और बलिवैश्वदेव इन कामों को नित्य नियम से जो करै—उस ब्राह्मण को देव कहते हैं ॥ ३७२ ॥ जो शाक पत्ते, फल, मूल इन को भक्षण करै सदा ही एकान्त रहने में प्रसन्न हो तथा प्रति दिन श्राद्ध करने में जो तत्पर हो उस ब्राह्मण को मुनि कहते हैं ॥३७३॥ जो वेदान्तको नित्य पढ़े और सब के संग को त्यागे सांख्य और योग शास्त्र के विचार में जो स्थिरहो उस ब्राह्मण को द्विज कहते हैं॥३७४॥ जिसने सब के सन्मुख संग्राम में धनुषधारियों को शस्त्रास्त्रों से माराहो और जिसने आरंभ मेंही सब को जीता हो उस ब्राह्मण को क्षत्री कहते हैं ॥३७५॥ जो खेती के काम में मग्न हो और गौओं के पालने में तत्पर हो—जो लेन देन करता हो उस ब्राह्मण को वैश्य कहते हैं ॥ ३७६ ॥

लाक्षालवणसंमिश्रं कुसुंभक्षीरसर्पिषः ।
विक्रेतामधुमांसानां सविप्रःशूद्रउच्यते ॥ ३७७ ॥
चौरश्चतस्करश्चैव सूचकोदंशकस्तथा ।
मत्स्यमांसेसदालुब्धो विप्रोनिषादउच्यते ॥ ३७८ ॥
ब्रह्मतत्वंनजानाति ब्रह्मसूत्रेणगर्वितः ।
तेनैवसचपापेन विप्रःपशुरुदाहृतः ॥ ३७९ ॥
वापीकूपतडागाना-मारामस्यसरस्सुच ।
निश्शंकंरोधकश्चैव सविप्रोम्लेच्छउच्यते ॥ ३८० ॥
क्रियाहीनश्चमूर्खश्च सर्वधर्मविवर्जितः ।
निर्दयःसर्वभूतेषु विप्रश्चांडालउच्यते ॥ ३८१ ॥
वेदैर्विहीनाश्चपठन्तिशास्त्रं
शास्त्रेणहीनाश्चपुराणपाठाः ।

लाख, लवण कुसुम दूध घी मिठाई शहद मांस इन को जो बेचे उस ब्राह्मण को शूद्र कहते हैं ॥ ३७७ ॥ जो चोरी, ठगई लूट निन्दा कठोर आक्षेप करने वाला तथा मछली के मांस का लोभी हो ऐसे ब्राह्मण को निषाद बधिक हिंसक कहते हैं ॥३७८॥ जो ब्रह्म (वेद) के तत्व को न जाने और यज्ञोपवीत का जिसे अभिमान हो उसी पाप से उस ब्राह्मण को पशु कहते हैं ॥३७९॥ बावरी, कूप, ताल बाग, छोटा तालाब इनको जो निश्शंक होकर रोके उस ब्राह्मण को म्लेच्छ कहते हैं ॥३८०॥ जो ब्राह्मण के सब कर्मों से हीन हो—मूर्ख हो—सर्वधर्मों से रहित हो किसी भी प्राणी पर जिस को दया न हो ऐसे ब्राह्मण को चांडाल कहते हैं ॥३८१॥ वेद जिन्हें नहीं आता वे दर्शन शास्त्रों को पढ़ते हैं और शास्त्र जिन्हें नहीं आते वे पुराणों को पढ़ते हैं—पुराण भी जिन्हें नहीं आते वे खेती करते हैं और जिनपै खेती भी नहीं हो सकती वे भागवत नाम चिमटा ले बाल रखा के

पुराणहीनाःकृषिणोभवन्ति
भ्रष्टास्ततोभागवताभवन्ति ॥ ३८२ ॥
ज्योतिर्विदोह्यथर्वाणः कीराःपौराणपाठकाः ।
श्राद्धेयज्ञेमहादाने वरणीयाःकदाचन ॥३८३॥
श्राद्धेचपितरोघोरं दानंचैवतुनिष्फलम् ।
यज्ञेचफलहानिःस्यात् तस्मात्तान्परिवर्जयेत् ॥३८४॥
आविकश्चित्रकारश्च वैद्योनक्षत्रपाठकः ।
चतुर्विप्रानपूज्यन्ते बृहस्पतिसमायदि ॥३८५॥
मागधोमाथुरश्चैव कापटःकीटकानजौ ।
पञ्चविप्रानपूज्यन्ते बृहस्पतिसमायदि ॥३८६॥
क्रयक्रीताचयाकन्या पत्नीसानविधीयते ।

(वैरागी) हो जाते हैं ॥ ३८२ ॥ ज्योतिषी - अथर्ववेदी - कीर (जहां तहां कह के जो तोते की तरह उपदेश करें) पुराण के पढ़ने वाले - इन ब्राह्मणों को श्राद्ध यज्ञ और महान् दान में कदाचित् ही वरे अर्थात् औरों के अभाव में ही इन को अधिकार है ॥३८३॥ श्राद्ध में पूर्वोक्त ब्राह्मणों के जिमाने से पितर घोर नरक में जाते दान निष्फल होता और यज्ञ में फल की हानि होती है इससे पूर्वोक्त ब्राह्मणों को वर्ज दे ॥३८४॥ भेड़ों का पालने वाला - चित्र काढ़ने वाला वैद्य - और नक्षत्र पाठक (घर २ नक्षत्र तिथि जो बताता फिरै) ये चार ब्राह्मण बृहस्पति के समान बड़े विद्वान् भी हों तो भी श्राद्ध में पूजने योग्य नहीं हैं ॥३८५॥ मगध देश का वासी - माथुर (चौबे) - कपट देश का वासी कीट और कान देश में जो पैदा हुए हों - ये पांच चाहे बृहस्पति के समान भी हों तो भी श्राद्ध में पूजने योग्य नहीं ॥३८६॥ मोल ली हुई कन्या पत्नी (भार्या) नहीं

वि० (३८२) वेद पढ़ के धर्मानुकूल उत्तम जीविका से निर्वाह करने वाले ब्राह्मण सब से उत्तम, नैयायिकादि धर्म विषय में उन से नीचे हैं। तथा पुराण पढ़ देख कथा बांच २ जीविका करने वाले उन से भी नीचे हैं। उन से भी मांग खेती आदि करने वाले और वास्तव में साधु न होने पर भी जटाधारी तपस्वी आदि का वेष बनाकर पुजाने वाले सब से नीच अधर्मी हैं। जीविका परक यहां ऊंच नीच का विचार दिखाया जानो।

तस्यांजाताःसुतास्तेषां पितृपिण्डंनविद्यते ॥३८७॥
अष्टशल्यागतंनीरं पाणिनापिबतेद्विजः ।
सुरापानेनतत्तुल्यं तुल्यंगोमांसभक्षणम् ॥३८८॥
ऊर्ध्वजङ्घेषुविप्रेषु प्रक्षाल्यचरणद्वयम् ।
तावच्चाण्डालरूपेण यावद्गंगांनमज्जति ॥३८९॥
दीपशय्यासनच्छाया-कार्पासंदन्तधावनम् ।
अजारेणुस्पर्शंचैव शक्रस्यापिश्रियंहरेत् ॥३९०॥
गृहाद्दशगुणंकूपं कूपाद्दशगुणंतटम् ।
तटाद्दशगुणंनद्यां गंगासंख्यानविद्यते ॥ ३९१ ॥
स्रवद्ब्राह्मणंतोयं रहस्यंक्षत्रियंतथा ।
वापीकूपेतुवैश्यंस्या-च्छूद्रंभाण्डोदकंतथा ॥ ३९२ ॥
तीर्थस्नानंमहादानं यच्चान्यत्तिलतर्पणम् ।

होता और इस से पैदा हुए पुत्र को श्राद्ध करने पिंड देने का अधिकार नहीं है ॥३८७॥ अनुशल्या (पुर) के जल को जो द्विज हाथ से पीता है वह जल मदिरा के पीने और गोमांस भक्षण के समान दूषित है इस से पुर वा चर्स आदि नामक चाम के पात्र में जल नहीं पीना चाहिये ॥ ३८८ ॥ जो खड़े हुए ब्राह्मण के दोनों चरण धोते हैं वे तब तक चांडालरूप रहते हैं जब तक गंगा स्नान न कर लें इस से बैठा कर ब्राह्मण के पग धोना उचित है ॥ ३८९ ॥ दीपक शय्या और आसन इन तीनों की छाया (जो ऊपर पड़े)—कपास के वृक्ष की दतौन बकरी की धूल का स्पर्श ये तीनों इन्द्र की भी लक्ष्मी को हरते हैं अर्थात् दीपकादि की छायादि से मनुष्यों को बचना चाहिये ॥३९०॥ घर से दश गुणा पुण्य कूपपर कूप से दश गुणा तट पर—तट से दश गुणा नदी में स्नान से होता है—और गंगास्नान के पुण्य की संख्या (गिनती) नहीं है ॥ ३९१ ॥ बहते हुये जल की ब्राह्मण संज्ञा है-एकान्त के जल की क्षत्री और बावरी तथा कूप के जल की वैश्य संज्ञा है – भांड (बरतन) में धरे जल की शूद्र संज्ञा है ॥ ३९२ पिता के मरने के अनंतर एक वर्ष तक तीर्थ स्नान और

अब्दमेकंनकुर्वीत महागुरुनिपातत: ॥३९३॥
गंगागयात्वमावास्या वृद्धिश्राद्धेक्षयेहनि ।
मघाणिपडप्रदानंस्या–दन्यत्रपरिवर्जयेत् ॥ ३९४॥
घृतंवायदिवातैलं पयोवायदिवादधि ।
चत्वारोह्याज्यसंस्थाना हुतंनैवतुवर्जयेत् ॥ ३९५॥
श्रुत्वैतान्नृषयोधर्मान् भाषितानत्रिणास्वयम् ।
इदमूचुर्महात्मानं सर्वेतेधर्म्मनिष्ठिता: ॥ ३९६ ॥
यइदंधारयिष्यन्ति धर्मशास्त्रमतन्द्रिता: ।
इहलोकेयश:प्राप्य तेयास्यन्तित्रिविष्टपम् ॥ ३९७॥
विद्यार्थीलभतेविद्यां धनकामोधनानिच ।
आयुष्कामस्तथैवायु: श्रीकामोमहतीं श्रियम् ॥३९८॥

इति श्रीअत्रिमहर्षिनिर्मिता स्मृति: समाप्ता ॥

महादान और तिलों से तर्पण न करै ॥ ३९३॥ गंगा–गया–अमावस–वृद्धि श्राद्ध (नांदी मुख) क्षयी श्राद्ध कनागत का और मघा नक्षत्र में पिंडदान इन को तो पिता के मरणे के अनंतर वर्ष के मध्य में भी करै और इन से अन्य कर्मों को त्याग दे ॥३९४ ॥ घी–तिलका तेल––दूध–दही–ये चारों घी के स्थानी हैं अर्थात् घी के अभाव में इन से ही होम करे होम का त्याग कदापि न करे ॥३९५॥अत्रि ऋषि ने स्वयं कहे इन धर्मों को सब ऋषि सुनकर धर्म में भली प्रकार स्थित हुये वे सब ऋषि, महात्मा अत्रि ऋषि के प्रति यह बोले कि ॥३९६॥ जो पुरुष आलस्य को त्याग कर इस धर्म शास्त्र को जानेंगे वे इस लोक में यश को प्राप्त होकर स्वर्ग को प्राप्त होंगे ॥ ३९७ ॥ इस शास्त्र के पढ़ने से विद्यार्थी विद्या को धनार्थी धन को——अवस्था की जिसे इच्छा हो वह अवस्था को तथा लक्ष्मी की जिसे इच्छा हो वह लक्ष्मी को–प्राप्त होता है ॥ ३९८ ॥

इत्यत्रिमहर्षिस्मृतिभाषा समाप्ता ॥

श्रीगणेशायनमः

अथ विष्णुस्मृतिः

अर्थात् विष्णुप्रोक्तधर्मशास्त्रप्रारम्भः ॥

विष्णुमेकाग्रमासीनं श्रुतिस्मृतिविशारदम् ।
पप्रच्छुर्मुनयःसर्वे कलापग्रामवासिनः ॥१॥
कृतेयुगेह्यपक्षीणे लुप्तोधर्म्मस्सनातनः ।
तत्रवैशोध्यमाणेच धर्मानप्रतिमार्गितः ॥ २ ॥
त्रेतायुगेऽथसंप्राप्ते कर्तव्यश्चास्यसंग्रहः ।
यथासंप्राप्यतेस्माभिस्तत्त्वन्नोवक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥
वर्णाश्रमाणांयोधर्मो विशेषश्चैवयः कृतः ।
भेदस्तथैवचैषांयस्तन्नोब्रूहिद्विजोत्तम ॥ ४ ॥
ऋषीणांसमवेतानां त्वमेवपरमोमतः ।

भावार्थः—श्रुति और स्मृतियों के जानने में चतुर एकाग्र बैठे हुए विष्णु नामक ऋषि से कलाप ग्राम के वासी सब मुनियों ने यह पूछा ॥१॥ कि कृतयुग बीतने पर सनातनधर्म लुप्त होगया और कृतयुग के बीतने पर किसी ने भी धर्म का शोधन नहीं किया ॥२॥ अब त्रेतायुग वर्त्तमान है इस में धर्म का संग्रह अवश्य करना चाहिये वह धर्म जिस रीतिसे हमको प्राप्त हो वह रीति आप हम से कहिये ॥३॥ वर्णों और आश्रमों का जो धर्म और इन धर्मों की विशेषता ऋषियों ने की है और परस्पर के धर्म का भेद—यह सब हे द्विजों में श्रेष्ठ हम से कहो ॥ ४ ॥ यहां इकट्ठे हुए ऋषियों ने तुम ही श्रेष्ठ माने हो इस से हे सुव्रत संपूर्ण धर्म का वक्ता तुम से अन्य नहीं है ॥ ५ ॥

(१) ये विष्णु जो धर्मशास्त्र के वक्ता हैं साक्षात् भगवान् नहीं हैं किन्तु यद्यपि सब ऋषि विष्णु के ही नाम रूप भेद है तथापि अन्य ऋषियों के समान विष्णु नामक भी एक ऋषि थे जिन ने इस धर्मशास्त्र को वेद का गूढाशय लेकर सक्षेप से प्रकट किया है ऐसा अनुमान है ।

धर्मस्येहसमस्तस्य नान्योवक्तास्तिसुव्रत ॥ ५ ॥
श्रुत्वाधर्मं चरिष्यामो यथावत्परिभाषितम् ।
तस्माद्ब्रूहिद्विजश्रेष्ठ धर्मकामाइमेद्विजाः ॥६॥
इत्युक्तोमुनिभिस्तैस्तु विष्णुःप्रोवाचतांस्तदा ।
अनघाःश्रूयतांधर्मो वक्ष्यमाणोमयाक्रमात् ॥ ७ ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियोवैश्यः शूद्रश्चैवतथापरे ।
एतेषांधर्मसारंयद्ब्रुवमाणंनिबोधत ॥ ८ ॥
ऋतावृतौतुसंयोगाद्ब्राह्मणोजायतेस्वयम् ।
तस्माद्ब्राह्मणसंस्कारं गर्भादौतुप्रयोजयेत् ॥ ९ ॥
सीमन्तोन्नयनंकर्म नस्त्रीसंस्कारइष्यते ।
गर्भस्यैवतुसंस्कारो गर्भेगर्भेप्रयोजयेत् ॥ १० ॥

भा०:-धर्म को सुनकर आपके कहने के अनुसार आचरण करेंगे इससे हे द्विजों में उत्तम तुम धर्म का वर्णन करो और ये द्विज धर्म की अभिलाषा वाले हैं ॥६॥ इस प्रकार जब उन मुनियों ने कहा उस समय तब से विष्णु ऋषि बोले कि हे शुद्ध निष्पाप मुनियो ! जिस धर्म को हम क्रम से कहेंगे उस को तुम सुनो ॥७॥ ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और किन्हीं के मत से (शूद्र) के लिये भी धर्म का सारांश हम कहेंगे उसे तुम लोग सुनो । अर्थात् किन्हीं ऋषि आचार्यों का मत है कि शूद्र के लिये कोई भी धर्मोपदेश नहीं है । अन्यों के मत से स्मार्त्त धर्म में शूद्र को अधिकार है ॥८॥ ऋतु (रजो दर्शन से १६ दिन के भीतर) में स्त्री और पुरुष के संयोग से आप ब्राह्मण पैदा होता है इस से ब्राह्मण का संस्कार गर्भ से लेकर करे ॥९॥ सीमन्त (अठमासा) कर्म स्त्री का संस्कार नहीं है किन्तु गर्भ का है इस से प्रतिगर्भ में सीमन्त करे ॥ १० ॥

(१०) गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन ये तीनों संस्कार किन्हीं ऋषियों के मत में गर्भवती स्त्री के होते हैं और मनुष्य की पैदाइश के खेत रूप स्त्री के शुद्ध होने से सन्तान भी शुद्ध होते हैं । इस कारण गर्भाधानादि तीनों संस्कार प्रथम गर्भ में एक ही वार करे प्रतिगर्भ में नहीं । परन्तु विष्णु ऋषि का मत है कि सीमन्त संस्कार गर्भिणी का नहीं किन्तु गर्भ का ही संस्कार है इस से प्रत्येक गर्भ में कर्त्तव्य है ।

जातकर्मतथाकुर्यात्-पुत्रेजातेयथोदितम् ।
बहिर्निष्क्रमणंचैव तस्यकुर्याच्छिशोःशुभम् ॥११॥
षष्ठेमासेचसंप्राप्ते अन्नप्राशनमाचरेत् ।
ततोऽब्देचसम्प्राप्ते केशकर्मसमाचरेत् ॥१२॥
गर्भाष्टमेतथाकर्म ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
द्विजत्वेत्वथसम्प्राप्ते सावित्र्यामधिकारभाक् ॥१३॥
गर्भादेकादशेसैके कुर्यात्क्षत्रियवैश्ययोः ।
कारयेद्द्विजकर्माणि ब्राह्मणेनयथाक्रमम् ॥१४॥
शूद्रश्चतुर्थोवर्णस्तु सर्वसंस्कारवर्जितः ।
उक्तस्तस्यतुसंस्कारो द्विजेष्वात्मनिवेदनम् ॥१५॥
योयस्यविहितोदण्डो मेखलाजिनधारणम् ।
सूत्रंवस्त्रंचगृह्णीया-द्ब्रह्मचर्येणयन्त्रितः ॥१६॥
ब्राह्मेमुहूर्तउत्थाय चोपस्पृश्यपयस्तथा ।

भा०-पुत्र के पैदा होते ही शास्त्र के अनुसार जातकर्म करे और उस बालक का मंगल सहित बहिर्निष्क्रमण (घर से बाहर ले जाना) करे अर्थात् चौथे महिने में मन्त्रपूर्वक सूर्यनारायण का दर्शन करावे ॥ ११ ॥ जब छः महीने का बालक हो तब उस का अन्न प्राशन संस्कार करे और जब तीन वर्ष का हो तब केशकर्म (मुण्डन) करे ॥ १२ ॥ गर्भ से आठवें वर्ष ब्राह्मण का यज्ञोपवीत करे क्योंकि द्विज होने पर ही गायत्री का अधिकारी होता है ॥ १३ ॥ गर्भ से ग्यारवें वर्ष क्षत्रिय का और बारवें वर्ष वैश्य का यज्ञोपवीत ब्राह्मण से करवावे ॥१ ॥ और चौथा जो शूद्र वर्ण है वह सब संस्कारों से हीन है उस का संस्कार यही कहा है कि उक्त तीनों वर्णों को अपने आत्मा को निवेदन (आधीन) कर दे ॥ १५ ॥ ब्रह्मचर्य (यज्ञोपवीत के समय) में जिस वर्ण का जो २ दण्ड मेखला, मृगछाला-सूत्र-वस्त्र गृह्यसूत्रकारों ने कहा है उस २ को वह २ ब्राह्मणादि धारण करे ॥ १६ ॥ ब्राह्म मुहूर्त में उठ कर स्नान-करके तीन

त्रिराचम्यततःप्राणां–स्तिष्ठेन्मौनीसमाहितः ।१७॥
अद्दैवतैःपवित्रैस्तु कृत्वात्मपरिमार्जनम् ।
सावित्रींचजपंस्तिष्ठे–दासूर्योदयनात्पुरा ॥१८॥
अग्निकार्यंततःकुर्यात्–प्रातरेवव्रतंचरेत् ।
गुरवेतुततःकुर्यात् पादयोरभिवादनम् ॥१९॥
समित्कुशांश्चोदकुम्भ माहृत्यगुरवेव्रती ।
प्राञ्जलिःसम्यगासीन उपस्थाययतःसदा ॥२०॥
यंयंग्रन्थमधीयीत तस्यतस्यव्रतंचरेत् ।
सावित्र्युपक्रमात्सर्व–मावेदग्रहणोत्तरम् ॥२१॥
द्विजालिषुचरेद्भैक्ष्यं भिक्षाकालसमागते ।
निवेद्यगुरवेश्नीयात्संमतोगुरुणाव्रती ॥ २२ ॥
सायंसन्ध्यामुपासीनो गायत्र्यष्टशतंजपेत् ।
द्विकालभोजनार्थंच तथैवपुनराहरेत् ॥ २३ ॥

आचमन तथा तीन बार प्राणायाम कर के सावधान होकर मौन होके खड़ा रहे ॥ १७ ॥ जल देवता (आपोहिष्ठा॰) इत्यादि तथा पवित्र मन्त्रों से देह का मार्जन कर के सूर्योदय पर्यन्त खड़े होके गायत्री का जप करे ॥ १८ ॥ उस के बाद अग्निहोत्र करे और प्रातःकाल के समय ही व्रत (महानाम्न्यादि) करे तत्पश्चात् गुरु के पगों में अभिवादन करे ॥ १९ ॥ फिर वह शिष्य समिधा कुशा–और जल का घट गुरु के लिये लाकर हाथ जोड़ और भले प्रकार सदा गुरु के समीप बैठ कर ॥ २० ॥ जिस २ ग्रन्थ को पढ़े उस २ का व्रत करे और गायत्री के उपदेश से लेकर सब वेद के पठन पर्यन्त ॥ २१ ॥ भिक्षा के समय ब्राह्मणादि तीनों द्विजों के घरों से भिक्षा मांगकर लावे उस भिक्षा को गुरु जी को निवेदन करके गुरु की आज्ञा होने पर ब्रह्मचारी नियमबद्ध हुआ भोजन करै ॥२२॥ सायंकाल की सन्ध्या में बैठा हुआ एक सौ आठवार गायत्री जपे और सायंकालको भोजन चाहे तो उसी प्रकार भिक्षा मांगलावे॥२३॥

वेदग्रर्वे करणेहृष्टो गुर्वधीनोगुरोर्हितः ।
निधांतत्रैवयोगच्छेन्नैष्ठिकःसउदाहृतः ॥ २४ ॥
अनेनविधिनासम्यक्कृत्वावेदमधीत्यच ।
गृहस्थधर्ममाकांक्षन्गुरुगेहादुपागतः ॥ २५ ॥
अनेनैवविधानेन कुर्याद्दारपरिग्रहम् ।
कुलेमहतिसंभूतां सवर्णांलक्षणान्विताम् ॥ २६ ॥
परिणीयतुषण्मासान्वत्सरंवानसंविशेत् ।
औदुंबरायणोनाम ब्रह्मचारीगृहेगृहे ॥ २७ ॥
ऋतुकालेतुसंप्राप्ते पुत्रार्थीसंविशेत्तदा ।
जातेपुत्रेतथाकुर्यादग्न्याधेयंगृहेवसन् ॥ २८ ॥
पुत्रेजातेऽनृतौगच्छन्संप्रदुष्येत्सदागृही ।
चतुर्थेब्रह्मचारीचगृहेतिष्ठेन्नविस्मृतः ॥ २९ ॥
इति वैष्णवधर्मशास्त्र प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

भा०-जो ब्रह्मचारी वेद पढने में प्रसन्न, गुरु के आधीन तथा गुरु का हितकारी होकर मरण पर्यंत गुरु की सेवा में ही रहे उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं ॥ २४ ॥ इस विधि से ब्रह्मचर्य धर्म को कर और वेद को पढ़के गृहस्थ धर्म की इच्छा करता हुआ गुरु के घर से आया ॥२५॥ बड़े प्रतिष्ठित कुल में पैदा हुई शुभ चिह्नोंवाली अपने वर्ण की स्त्री के साथ शास्त्रोक्त विधिसे विवाह करे ॥२६॥ विवाह करके जो छःमहीने अथवा एक वर्ष पर्यंत स्त्री से संग नहीं करता ब्रह्मचारी रहता है घर में रहते हुए भी उस ब्रह्मचारी को औदुंबरायण कहते हैं ॥ २७ ॥ जब स्त्री को रजोदर्शन हो तब पुत्र की इच्छा से स्त्री का संग करे पुत्र के होने पर घर में रहता हुआ ही विधि पूर्वक अग्नि स्थापन करे ॥ २८ ॥ पुत्र के होने पर ऋतुकाल के विना स्त्री संग करने से गृहस्थी सदा दोषी होता है और चौथे पुत्र के होने पर गृहस्थी पुरुष ब्रह्मचारी रहता हुआ भी भूल कर घर में न ठहरे किन्तु वन में जाकर तप करे॥२९॥

इति विष्णुस्मृतौ प्रथमोऽध्यायः ॥

अतःपरंप्रवक्ष्यामि गृहीणांधर्ममुत्तमम् ।
प्राजापत्यपदस्थानं सम्यक्कुर्य्यान्निबोधत ॥ ३० ॥
सर्वःकल्येसमुत्थाय कृतशौचः समाहितः ।
स्नात्वासंध्यामुपासीत सर्वकालमतन्द्रितः ॥ ३१ ॥
अज्ञानाद्यदिवामोहाद्रात्रौयद्दुरितंकृतम् ।
प्रातःस्नानेनतत्सर्वं शोधयन्तिद्विजोत्तमाः ॥ ३२ ॥
प्रविश्याथाग्निहोत्रंतु हुत्वाग्निंविधिवत्ततः ।
शुचौदेशेसमासीनः स्वाध्यायंशक्तितोऽभ्यसेत् ॥३३॥
स्वाध्यायान्तेसमुत्थाय स्नानंकृत्वातुमंत्रवित् ।
देवानृषीन्पितृंश्चापि तर्पयेत्तिलवारिणा ॥ ३४ ॥
मध्यान्हेत्वथसंप्राप्ते शिष्टंभुञ्जीतवाग्यतः ।
भुक्त्वोपविश्यविश्रान्तो ब्रह्मकिंचिद्विचारयेत् ॥३५॥
इतिहासंप्रयुंजीत त्रिकालसमयेगृही ।

भा०-इस से आगे गृहस्थियों के उत्तम धर्म को कहते हैं ब्रह्मलोक प्राप्ति फल के दाता उस कर्म को भली प्रकार सुनिये ॥३०॥ सब ब्राह्मणादि द्विज गृहस्थ प्रभात समय उठ सावधानी से शौचादि करके सदैव आलस को छोड़ कर स्नान करके संध्योपासन करें ॥३१॥ अज्ञान से वा मोह से रात्रि में जो पाप किया हो उन सब को नित्य प्रातःकाल के स्नान से ब्राह्मण लोग दूर कर देते हैं ॥३२॥ फिर अग्निशाला में जाकर कल्प सूत्रोक्त विधान से अग्निहोत्र करके शुद्ध स्थान में बैठा हुआ शक्ति के अनुसार वेद का पाठ करै ॥ ३३॥ वेद पाठ के अंत में उठकर मन्त्र विधि जानने वाला द्विज फिर मन्त्र पूर्वक स्नान करके तिल और जल से देवता, ऋषि, और पितर, इनका तर्पण करै ॥ ३४ ॥ फिर मध्यान्ह काल आने पर शिष्ट (पंच महायज्ञों से बचे हुए) अन्न को मौन होकर भोजन विधि करके भोग लगावे । भोजन के पीछे बैठ, और कुछ विश्राम करके कुछ वेद का विचार करै ॥ ३५ ॥ गृहस्थ पुरुष दिन के तृतीय भाग में इतिहास

कालेचतुर्थेसंप्राप्ते गृहेवायदिवाबहिः ॥ ३६ ॥
आसीनःपश्चिमांसन्ध्यां गायत्रींशक्तितोजपेत् ।
हुत्वाचाथाग्निहोत्रंतु कृत्वाचाग्निपरिक्रियाम् ॥३७॥
बलिंचविधिवद्दत्वा भुञ्जीतविधिपूर्वकम् ।
दिवावायदिवारात्रौ अतिथिस्त्वाव्रजेद्यदि ॥३८॥
तृणभूवारिवाग्भिस्तु पूजयेत्तंयथाविधि ।
कथाभिःप्रीतिमाहृत्य विद्यादीन्विचारयेत् ॥३९॥
संनिवेश्याथविश्रान्तुसंविशेत्तदनुज्ञया ।
यदियोगीतुसंप्राप्तो भिक्षार्थीसमुपस्थितः ॥ ४० ॥
योगिनंपूजयेन्नित्य--मन्यथाकिल्बिषीभवेत् ।
पुरेवायदिवाग्रामे योगीसन्निहितोभवेत् ॥ ४१ ॥
पूज्यानित्यंभवन्त्येव सर्वेतत्रनिवासिनः ।

(महाभारत आदि) का भी कुछ पाठ वा विचार करै और सायंकाल होने पर घर में वा बाहर ॥ ३६ ॥ पश्चिम दिशा के सम्मुख बैठा हुआ सन्ध्योपासन करै और यथाशक्ति गायत्री का जप करै फिर सायंकाल का अग्निहोत्र अग्नि की सेवा ॥३७॥ और गृह्योक्त विधि से केवल बलि कर्म नामक भूतयज्ञ करके विधि पूर्वक भोजन करै। अर्थात् रात में देवयज्ञ रूप होम का निषेध है। जो दिन में वा रात्रि में कोई अभ्यागत आजाय तो ॥ ३८ ॥ तृण (आसन) भूमि बैठने का जगह, जल, और आदर सूचक वाणी से उस का सत्कार करै आने जाने की कथा (यहां कृपा की कि आप आये इत्यादि) से उस को संतुष्ट करके विद्या आदि का विचार करे ॥ ३९ ॥ अतिथि को प्रथम बिठा कर उस की आज्ञा लेकर आप बैठे। यदि भिक्षा के लिये योगी आजावे तो उस के समीप जाकर ॥ ४० ॥ योगी का नित्य पूजन करै अन्यथा पाप लगता है। नगर में वा ग्राम में यदि योगी प्राप्त हो ॥ ४१ ॥ तो उस योगी के आने से-वहां के निवासी सब पूजने योग्य होते हैं क्यों कि स्थान और वहां के

तस्मात्पूजयेन्नित्यं योगिनंगृहमागतम् ॥ ४२ ॥
तस्मिन्प्रयुक्तायापूजा साक्षयायोपकल्पते ।
गृहमेधिनांयत्प्रोक्तं स्वर्गसाधनमुत्तमम् ॥४३॥
ब्राह्ममुहूर्तउत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत् ।
चतुःप्रकारंभिद्यन्ते गृहिणोधर्मसाधकाः ॥४४॥
वृत्तिभेदेनसततं ज्यायांस्तेषांपरःपरः ।
कुसूलधान्यकोवास्यात्कुंभीधान्यकएववा ॥ ४५ ॥
त्र्यहैहिकोवापिभवे-त्सद्यःप्रक्षालकोपिवा ।
श्रौतंस्मार्तंचयत्किंचिद्विधानंधर्मसाधनम् ॥४६॥
गृहेतद्वसताकार्य—मन्यथादोषभाग्भवेत् ।
एवंविप्रोगृहस्थस्तु शान्तःशुक्लांबरःशुचिः ॥ ४७ ॥

मनुष्य पवित्र होजाते हैं तिस से घर में आये योगी का नित्य पूजन करे॥४२॥ उस योगी अभ्यागत की जो पूजा की जाती है वह अविनाशी सुख देने वाली होती है। गृहस्थियों के लिये स्वर्ग का साधन जो उत्तम कर्म है वह यही है कि ॥४३॥ ब्राह्म मुहूर्त (३ अथवा ४ घड़ी रात रहे पर) में उठ कर उस (पूर्वोक्त) कर्म का भली प्रकार सेवन करै-धर्म के सिद्ध करने वाले गृहस्थी अपनी जीविका के भेद से चार प्रकार से भिन्न २ होते हैं ॥४४॥ उन में अगले-२ श्रेष्ठ हैं १ कुसूलधान्यक (कोठे में इतने अन्न को जो रक्खे जिस से ३ वर्ष निर्वाह हो) २ कुंभी धान्यक (कुंडो में इतने अन्न को जो रक्खे जिस से १ वर्ष निर्वाह हो) ॥ ४५ ॥ ३ त्र्यहैहिक (तीन दिनका जो अन्न रक्खै) सद्य प्रक्षालक (प्रति दिन खाने को लाने वाला) श्रुति वा स्मृतियों में कहा जो धर्म का साधन कर्म है ॥ ४६ ॥ घर में वसते हुये मनुष्य को यह सब करना चाहिये क्योंकि न करने से दोष का भागी होता है इस प्रकार शांत स्वभाव-शुक्ल वस्त्रों वाला-शुद्ध-गृहस्थी ब्राह्मण ॥ ४७ ॥

प्रजापतेःपरंस्थानं सम्प्राप्नोतिनसंशयः ।

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

गृहस्थोब्रह्मचारीवा वनवासंयदाचरेत् ॥ ४८ ॥
चीरवल्कलधारीस्यादकृष्टान्नाशनोमुनिः ।
गत्वाचविजनंस्थानं पञ्चयज्ञान्नहापयेत् ॥४९॥
अग्निहोत्रंचजुहुयादन्नैर्नीवारकादिभिः ।
श्रावणेनाग्निमादाय ब्रह्मचारीवनेस्थितः ॥५०॥
पञ्चयज्ञविधानेन यज्ञंकुर्यादतन्द्रितः ।
संचितंतुयदारण्यं भक्तार्थंविधिवद्वने ॥ ५१ ॥
त्यजेदाश्वयुजेमासि वन्यमन्यत्समाहरेत् ।
आकाशशायीवर्षासु हेमन्तेचजलाशयः ॥ ५२ ॥
ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्थो भवेन्नित्यंवनेवसन् ।

ब्रह्मा उत्तम स्थान को प्राप्त होता है इस में सन्देह नहीं है ॥

इति विष्णुस्मृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥

गृहस्थी वा ब्रह्मचारी जब वन में निवास करना चाहे ॥ ४८ ॥ तब चीर (चीथड़े) वा वृक्षों के वक्कल को वस्त्रों की जगह धारण करें और अकृष्टान्न (जो विना जोते बोए पैदा हो) वन के मुन्यन्न को भक्षण करे और मौन रहे और निर्जन स्थान में जाकर भी पञ्चयज्ञों का परित्याग न करे ॥ ४९ ॥ नीवार आदि अन्न से अग्निहोत्र भी करे और श्रावण मास में अग्नि को लेकर वन में जावे और ब्रह्मचर्य धारण कर वहां रहे ॥ ५० ॥ निरालस होकर पञ्चयज्ञके विधानसे यज्ञ करे।जो भोजन के लिये वनका अन्न इकट्ठा कियाहो॥५१॥ उस को आश्विन के मास में त्याग दे और वन में पैदा हुए नये अन्न को संग्रह करे और वर्षा काल में आकाश (खुले ऊंचे स्थान) में जाड़ों में जल में ॥ ५२ ॥ तथा ग्रीष्म ऋतु (गरमी) में पंचाग्नि [चारों दिशामें अग्नि जलता होतो उसके बीच में बैठे ऊपर से सूर्य तपते हों इसको पञ्चाग्नि तप कहते हैं]

कृच्छ्रंचांद्रायणंचैव तुलापुरुषमेवच ॥ ५३ ॥
अतिकृच्छ्रंप्रकुर्वीत त्यक्त्वाकामानशुचिस्ततः ।
त्रिसन्ध्यंस्नानमातिष्ठे-त्सहिष्णुर्भूतजान्गुणान् ॥ ५४ ॥
पूजयेदतिथींश्चैव ब्रह्मचारीवनंगतः ।
प्रतिग्रहंनगृह्णीया-त्परेषांकिंचिदात्मवान् ॥५५ ॥
दाताचैवभवेन्नित्यं श्रद्धधानःप्रियंवदः ।
रात्रौस्थण्डिलशायीस्या-त्प्रपदैस्तुदिनंक्षिपेत् ॥ ५६ ॥
वीरासनेनतिष्ठेद्वा क्लेशमात्मन्यचिंतयन् ।
केशरोमनखश्मश्रून्नछिन्द्यान्नापिकर्तयेत् ॥ ५७ ॥
त्यजन्शरीरसौहार्द्दं वनवासरतःशुचिः ।
चतुःप्रकारंभिद्यन्ते मुनयःशंसितव्रताः ॥ ५८ ॥
अनुष्ठानविशेषेण श्रेयांस्तेपापरःपरः ।

के मध्य में वन में बसता हुआ मनुष्य नित्य रहै और तिसके अनन्तर कृच्छ्र, चांद्रायण-तुला पुरुष॥५३॥ अतिकृच्छ्र इन व्रतों को निष्काम होकर शुद्धता से करै और पांचो भूतों के गुणों (शब्द, स्पर्श, रूप-रस-गन्ध-) को सहता हुआ त्रिकाल स्नान करै ॥ ५४ ॥ वन में प्राप्त हुआ ब्रह्मचारी वानप्रस्थ अतिथियों का पूजन करैऔर अपने आपमें नियम बद्ध रहता हुआ किसी,से प्रतिग्रह (दान) न ले ॥ ५५ ॥ प्रियभाषी और श्रद्धावान् होकर जो अपने पास फल मूलादि हों उनका प्रतिदिन दान दिया करै स्वयं बनाये मंच (चबूतरे) पर रातमें सोवै और पैरों की अंगुलियोंसे खड़ा जप करता हुआ दिनकोबिता दे ॥५६॥अथवा अपने मनमें क्लेश मानता हुआ वीरासन से दिन में बैठा रहै और शिरके केश-रोम-नख-डाढ़ी-इनको न कैंची से कतरावे और न छुरे से हटावे ॥ ५७॥ वन वास में तत्पर शुद्ध अपने शरीर की प्रीति को छोड़ता हुआ अपने पूर्वोक्त कर्म को करे इस उत्तम प्रशस्त व्रतवाले मुनि अनुष्ठान के भेद से चारप्रकार के होतेहैं॥५८॥ उनमें अगलाश्रेष्ठ है-१ वर्ष भरके लिये विधि पूर्वक

वार्षिकंवन्यमाहार-माहृत्यविधिपूर्वकम् ॥ ५९ ॥
वनस्थधर्ममातिष्ठन्नयेत्कालंजितेन्द्रियः ।
भूरिसंवार्षिकश्चायं वनस्थःसर्वकर्मकृत् ॥ ६० ॥
आदेहपतनंतिष्ठेन्मृत्युं चैवनकांक्षति ।
षण्मासांस्तुततश्चान्यः पंचयज्ञक्रियापरः ॥ ६१ ॥
कालेचतुर्थंभुञ्जानो देहंत्यजतिधर्मतः ।
त्रिंशद्दिनार्थमाहृत्य वन्यान्नानिशुचिव्रतः ॥६२॥
निर्वर्त्यसर्वकार्याणि स्याच्चषष्ठान्नभोजनः ।
दिनार्थमन्नमादाय पञ्चयज्ञक्रियारतः ॥६३॥
सद्यःप्रक्षालकोनाम चतुर्थःपरिकीर्तितः ।
एवमेतेहिचैमान्या मुनयःशंसितव्रताः ॥६४॥

इति० वैष्ण० धर्म० तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

वन के आहार (नीवारादि) को संचय करके वानप्रस्थों के धर्म में ठहरा हुआ इन्द्रियोंको जीत और आलस्य को छोड़कर ॥ ५९ ॥ काल को जो व्यतीत करै इन सब कर्मों के कर्ता वानप्रस्थ को भूरिसंवार्षिक कहते हैं ॥ ६० ॥ २ दूसरा—मरण तक वन में रहै और मृत्यु की भी इच्छा न करै पंचमहायज्ञ करने में तत्पर हुआ छः महीने तक के अन्नका संचय करके ॥ ६१ ॥ चौथे काल (सन्ध्या) में भोजन करता हुआ धर्म से देह को त्यागता है । ३ तीसरा तीस दिन के लिये वन के अन्न का संचय करके और शुद्ध व्रत हो कर ॥ ६२ ॥ सब कर्मों को करके छठे प्रहर में रात को दश बजे भोजन करै । ४ चौथा एक दिन के लिये अन्न का संग्रह करके पञ्चमहायज्ञ कर्म में तत्पर रहै ॥६३॥ यह सद्यः प्रक्षालक नाम चौथा कहा है इस प्रकार ये चारों प्रशस्त व्रतवाले मुनि पूजनीय होते हैं ॥६४॥

इति विष्णुस्मृतौ ३ अध्यायः ।

यथोत्तमानिस्थानानि प्राप्नुवन्तिदृढव्रताः ।
ब्रह्मचारीगृहस्थोवा वानप्रस्थोयतिस्तथा ॥६५॥
विरक्तःसर्वकामेषु पारिव्रज्यंसमाश्रयेत् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्यदत्वाचाभयदक्षिणाम् ॥६६॥
चतुर्थमाश्रमंगच्छेद्ब्राह्मणःप्रव्रजन्गृहात् ॥
आचार्येणसमादिष्टं लिङ्गंयत्नात्समाश्रयेत् ॥६७॥
शौचमाश्रमसम्बद्धं यतिधर्मांश्चशिक्षयेत् ।
अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमफल्गुता ॥६८॥
दयांचसर्वभूतेषु नित्यमेतद्यतिश्चरेत् ।
ग्रामान्तेवृक्षमूलेच नित्यकालनिकेतनः ॥६९॥
पर्यटेत्कीटवद्भूमिं वर्षास्वेकत्रसंविशेत् ।
वृद्धानामातुराणांच भीरूणांसंगवर्जितः ॥७०॥

भा॰जिस प्रकार ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और यति ये चारों दृढ़ व्रत हुए उत्तम स्थान (ब्रह्म लोक) को प्राप्त होते हैं वह यह है कि ॥ ६५ ॥ सब कामनाओं से विरक्त हो संन्यास का सम्यक् आश्रय लेवे कि यही सब इष्ट का साधक है अपने शरीर ही में अग्नियों का समारोप मन्त्रपूर्वक करके और स्त्री आदिकों को अभय दक्षिणा दे (ठीक २ समझा कर) ॥ ६६ ॥ घर से चलकर ब्राह्मण चौथे आश्रम में पग धरे आचार्य के कहे हुए चिह्न (दंड आदि) को यत्न से धारण करे ॥ ६७ ॥ संन्यास के (यतीनांतुचतुर्णाम्) शौच और संन्यासियों के धर्मों को सीखे अहिंसा-सत्य-चोरी का त्याग-ब्रह्मचर्य-अफल्गुता (निरर्थक बोलने आदि का त्याग) ॥६८॥ सब प्राणियों पर दया इतने कर्म नित्य नियम से करे-ग्राम के समीप किसी वृक्ष के नीचे सदैव स्थान रक्खे ॥ ६९ ॥ कीड़े के समान पृथ्वी पर विचरे । वर्षा काल में एक जगह बैठे विचरे नहीं और वृद्ध-रोगी-डरपोक इन का संग न करे ॥ ७० ॥

ग्रामेवापिपुरेवापि वासेनैकत्रदुष्यति ।
कौपीनाच्छादनंवासः कन्थांशीतापहारिणीम् ॥७१॥
पादुकेचापिगृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्यसंग्रहम् ।
संभाषणंसहस्त्रीभि-रालम्भप्रेक्षणेतथा ॥ ७२॥
नृत्यंगानंसभांसेवां परिवादांश्चवर्जयेत् ।
वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां प्रीतिंयत्नेनवर्जयेत् ॥ ७३ ॥
एकाकीविचरेन्नित्यं त्यक्त्वासर्वपरिग्रहम् ।
याचितायाचिताभ्यांतु भिक्षयाकल्पयेत्स्थितिम् ॥७४॥
साधुकारंयाचितंस्यात्प्राक्प्रणीतमयाचितम् ।
चतुर्विधाभिक्षुकास्यु कुटीचकबहूदकौ ॥ ७५ ॥
हंसःपरमहंसश्च पश्चाद्योयःसउत्तमः ।
एकदण्डीभवेद्वापि त्रिदण्डीवापिवाभवेत् ॥ ७६ ॥
त्यक्त्वासर्वसुखास्वादं पुत्रैश्वर्यसुखंत्यजेत् ।

ग्राम वा नगर में एक स्थान में बसने से संन्यासी को दोष लगता है। कौपीन (लंगोटी) ओढ़ने का वस्त्र, जिस में शीत न लगे ऐसी कन्था (गुदड़ी) ॥७१॥ और खड़ाऊं इन को ग्रहण करे। इन से भिन्न वस्तुओं का संग्रह न करै। स्त्रियों के संग बोलना—स्पर्श—देखना ॥ ७२ ॥ नाचना, गाना, सभा करना सेवा (नौकरी) निन्दा—इन को त्याग दे वानप्रस्थ और गृहस्थ के संग यत्न से प्रीति को त्याग दे ॥ ७२ ॥ सब प्रकार के परिग्रह (अर्जनरक्षणादियोगक्षेमों) को त्यागकर अकेला विचरै—मांगने और बिना मांगने से जो भोजन मिले उस से अपना निर्वाह करै ॥ ७४ ॥ अच्छा कह कर लेने को याचित बिना मांगे जो मिले उसे अयाचित कहते हैं ये संन्यासी चार प्रकार के होते हैं—१ कुटीचक—२ बहूदक ॥ ७५ ॥ ३ हंस—४ परमहंस—इन में जो २ पिछला २ है वह २ उत्तम है एक दंड को धारण करै वा तीन दंड को ॥ ७६ ॥ सब सुखों के स्वाद को त्याग पुत्र के ऐश्वर्य (प्रताप) के सुख को त्यागे अथवा

अपत्येपुत्रसेन्नित्यं ममत्वंयत्नतस्त्यजेत् ॥ ७७ ॥
नान्यस्यगेहेभुञ्जीत भुञ्जानोदोषभाग्भवेत् ।
कामंक्रोधंचलोभंच तथेर्ष्यांसत्यमेवच ॥ ७८ ॥
कुटीचकस्त्यजेत्सर्वं पुत्रार्थंचैवसर्वतः ।
भिक्षाटनादिकेऽशक्तो यतिःपुत्रेषुसंन्यसेत् ॥ ७९ ॥
कुटीचकइतिज्ञेयः परिव्राट्त्यक्तबान्धवः ।
त्रिदण्डंकुण्डिकांचैव भिक्षाधारंतथैवच ॥ ८० ॥
सूत्रंतथैवग्रहणीयान्नित्यमेवबहूदकः ।
प्राणायामेष्वभिरतो गायत्रींसततंजपेत् ॥ ८१ ॥
विश्वरूपंहृदिध्यायन्नयेत्कालंजितेन्द्रियः ।
ईपत्कृतकषायस्य लिंगमाश्रित्यतिष्ठतः ॥ ८२ ॥
अन्नार्थंलिङ्गमुद्दिष्टं नमोक्षार्थमितिस्थितिः ।

अपने लड़कों ही में नित्य बसे और यत्न से ममता को त्याग दे ॥ ७७ ॥ अन्य के घर में भोजन न करै क्योंकि दोष का भागी होता है और कामक्रोध लोभ ईर्ष्या, झूठ इन को छोड़ देवे ॥ ७८ ॥ पुत्र के लिये १ कुटीचक सब प्रकार से सब अन्नधनादि त्याग दे-भिक्षा मांगने आदि में असमर्थ हो तो संन्यासी अपने पुत्रों को ही अपना देह सौंपदे ॥ ७९ ॥ इस को कुटीचक कहते हैं-२ दूसरा त्याग दिये हैं बंधु जिसने ऐसा संन्यासी त्रिदंड-कुंडी और भिक्षा का पात्र ॥ ८० ॥ यज्ञोपवीत इन को बहूदक नित्य ग्रहण करै । प्राणायाम में तत्पर हुआ निरंतर गायत्री को जपे ॥ ८१ ॥ विश्व रूप भगवान् का हृदय में ध्यान करता हुआ इन्द्रियों को जीतकर काल को व्यतीत करै-कुछेक गेरुआ वस्त्रों को करके एक चिह्न (संन्यासकीपहचान) बनाकर अपने आश्रम में ठहरते हुए संन्यासी के ॥ ८२ ॥ चिन्ह अन्न भिक्षा मिलने के लिये नियत किये हैं मोक्ष के लिये कोई चिन्ह नहीं है ।

त्यक्त्वापुत्रादिकंसर्वं योगमार्गव्यवस्थितः ॥८३॥
इन्द्रियाणिमनश्चैव कर्षन्हंसोभिधीयते ।
कृच्छ्रैश्चान्द्रायणैश्चैव तुलापुरुषसंज्ञकैः ॥ ८४ ॥
अन्यैश्चशोषयेद्देहमाकाङ्क्षन्ब्रह्मणःपदम् ।
यज्ञोपवीतंदंडंच वस्त्रंजंतुनिवारणम् ॥ ८५ ॥
अयंपरिग्रहोनान्यो हंसस्यश्रुतिवेदिनः ।
आध्यात्मिकंब्रह्मजपन्प्राणायामांस्तथाचरन् ॥८६॥
वियुक्तःसर्वसंगेभ्यो योगी नित्यंचरेन्महीम् ।
आत्मनिष्ठःस्वयंयुक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ ८७ ॥
चतुर्थोयंमहानेषांध्यानभिक्षुरुदाहृतः ।
त्रिदण्डंकुण्डिकांचैव सूत्रंचाथकपालिकाम् ॥८८ ॥
जन्तूनांवारणंवस्त्रं सर्वंभिक्षुरिदंत्यजेत् ।

भा०-इस से सब पुत्रादि को त्याग और योगमार्ग में ठहर कर ॥८३॥ इन्द्रियां और मन को वश में करता हुआ संन्यासी हंस कहाता है। कृच्छ्र, चान्द्रायण, तुला पुरुष ॥८४॥ तथा अन्य व्रतों द्वारा ब्रह्मपद की इच्छा करता हुआ संन्यासी अपने देह को सुखादे-यज्ञोपवीत, दंड और जिस से जीव देह पर न गिरें ऐसा वस्त्र ॥ ८५ ॥ वेद के ज्ञाता हंस नामक संन्यासी को यही परिग्रह नाम वस्तुस्वीकार है अन्य नहीं। ४ चौथा अध्यात्म नाम व्यापक प्रणव ब्रह्म को जपता और प्राणायामों को करता हुआ ॥ ८६ ॥ सब संगों से वियुक्त (रहित) अपने आपे में स्थित स्वयं युक्त हो कर सब स्वीकारों को त्यागने वाला योगी होकर पृथिवी पर नित्य विचरे ॥ ८७ ॥ यह चौथा इन चारों में बड़ा और ध्यान भिक्षु (परम हंस) कहा है। त्रिदंड-कुंडी-यज्ञोपवीत-(कपालिका) बड़े नारियल का आधा टुकड़ा वा खप्पर भिक्षा का पात्र ॥ ८८ ॥ जन्तुओं के निवारणार्थ वस्त्र इन सब को भी यह भिक्षु त्यागदे-कौपीन ओढने

कौपीनाच्छादनार्थंच वासोप्यपरिग्रहेत् ॥ ८९ ॥
कुर्यात्परमहंसस्तु दण्डमेकंचधारयेत् ।
आत्मन्येवात्मनाबुद्ध्या परित्यक्तशुभाशुभः ॥९०॥
अव्यक्तलिङ्गोऽव्यक्तश्च चरेद्भिक्षुःसमाहितः ।
प्राप्तपूजोनसंतुष्येदलाभेत्यक्तमत्सरः ॥ ९१ ॥
त्यक्ततृष्णःसदाविद्वान्मूकवत्पृथिवींचरेत् ।
देहसंरक्षणार्थंतु भिक्षामीहेद्द्विजातिषु ॥ ९२ ॥
पात्रमस्यभवेत्पाणिस्तेननित्यंगृहानटेत् ।
अतैजसानिपात्राणि भिक्षार्थंक्लृप्तवान्मनुः ॥९३॥
सर्वेषामेवभिक्षूणां दार्वलाबुमयानिच ।
कांस्यपात्रेनभुञ्जीत आपद्यपिकथंचन ॥९४॥
मलाशाःसर्वउच्यन्ते यतयःकांस्यभोजनाः ।

का वस्त्र इन का ही केवल धारण ॥ ८९ ॥ परम हंस करे और एक दंड का धारण करे और अपने मन में ही अपनी बुद्धि से त्याग दिया है शुभ और अशुभ कर्म जिसने ॥९०॥ ऐसा अपने चिन्ह को छिपा कर अप्रकट होकर सावधान हुआ विचरे पूजा (बड़ाई) की प्राप्ति से प्रसन्न न हो और आदर सत्कार न होने पर क्रोध न करे ॥ ९१ ॥ त्यागी है तृष्णा जिसने ऐसा ज्ञानी गूंगे के समान पृथिवी पर विचरे और देह की रक्षा के अर्थ द्विजातियों से भिक्षा मांगे ॥९२॥ भिक्षुक का पात्र हाथ है उसीसे नित्य गृहों में विचरे अर्थात् भिक्षा मांगे और मनु जी ने भिक्षा के लिये धातु से भिन्न काष्ठ तुंबा आदि के पात्र ॥ ९३ ॥ सब संन्यासियों को कहे हैं । और कांसे के पात्र में विपत्ति के समय भी संन्यासी लोग भोजन न करें ॥९४॥ कांसे के पात्र में खाने वाले सब संन्यासी मल (विष्ठा) के खाने वाले कहे हैं । कांसी के पात्र बनाने वाले को और

कांस्यकस्यतुयत्पापं गृहस्थस्यतथैवच ॥९५॥
कांस्यभोजीयतिःसर्वं तयोःप्राप्नोतिकिल्विषम् ।
ब्रह्मचारीगृहस्थश्च वानप्रस्थोयतिस्तथा ॥९६॥
उत्तमांवृत्तिमाश्रित्य पुनरावर्त्तयेद्यदि ।
आरूढपतितोज्ञेयः सर्वधर्म्मबहिष्कृतः ॥९७॥
निन्द्यश्चसर्वदेवानां पितृणांचतथोच्यते ।
त्रिदण्डंलिङ्गमाश्रित्य जीवन्तिबहवोद्विजाः ॥९८॥
नतेषामपवर्गोस्ति लिङ्गमात्रोपजीविनाम् ।
त्यक्त्वालोकांश्चवेदांश्च विषयानिन्द्रियाणिच ॥९९॥
आत्मन्येवस्थितोयस्तु प्राप्नोतिपरमंपदम् ।

इति॰ वैष्णा॰ धर्म्म॰ चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

राज्ञांतुपुण्यवृत्तानां त्रिवर्गपरिकाङ्क्षिणाम् ॥१००॥

उस में भोजन कराने वाले गृहस्थ को जो पाप होता है ॥९५॥ उन दोनों के उस पाप को कांसे के पात्र में भोजन करने वाला संन्यासी प्राप्त होता है । जो ब्रह्मचारी-गृहस्थ-वानप्रस्थ और संन्यासी इन में से कोई भी ॥९६॥ उत्तम आचरण नियम व्रत को स्वीकार कर फिर उसका त्याग करता है उसे आरूढ पतित कहते वह सब धर्मों से बहिष्कृत (बाह्य) ॥९७॥ वह सब देवता और पितरों में निन्दित कहा है । संन्यास वेष का आश्रय लेकर बहुत से ब्राह्मण संसार में जीविका करते पुजाते हैं ॥ ९८ ॥ वेषमात्र से जीविका करने वाले उन का मोक्ष नहीं होता-और जो लोक-वेद, विषय, इन्द्रिय, इन सम्बन्धी सब भोगों वा विषयों को त्याग कर ॥९९॥ अपने आत्मा में ही स्थित रहताहै वह परमपद को प्राप्त होता है ॥

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे ४ अध्यायः ॥

पवित्र है आचार जिन का ऐसे धर्म अर्थ काम के अभिलाषी राजाओंका॥१००॥

वक्ष्यमाणस्तुयोधर्मस्तं स्वतस्तन्निबोधत ।
तेजःसत्यंधृतिर्दाक्ष्यं संग्रामेष्वनिवर्तिता ॥१०१॥
दानमीश्वरभावश्च क्षत्रधर्मःप्रकीर्तितः ।
क्षत्रियस्यपरोधर्मः प्रजानांपरिपालनम् ॥१०२॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षयेन्नृपतिःप्रजाः ।
त्रीणिकर्माणिकुर्वीत राजन्यस्तुप्रयत्नतः ॥१०३॥
दानमध्ययनंयज्ञं ततोयोगनिषेवणम् ।
ब्राह्मणानांचसन्तुष्टिमाचरेत्सततंतथा ॥१०४॥
तेषुतुष्टेषुनियतं राज्यंकोशश्चवर्द्धते ।
वाणिज्यंकर्षणंचैव गवांचपरिपालनम् ॥ १०५ ॥
ब्राह्मणक्षत्रसेवाच वैश्यकर्मप्रकीर्तितम् ।
खलयज्ञंकृषीणांच गोयज्ञंचैवयत्नतः ॥ १०६ ॥
कुर्याद्वैश्यश्चसततं गवांचशरणंतथा ।

जो धर्म, उस को हम कहते हैं तुम सुनो । तेज, सत्य, धैर्य दक्षता (चतुराई) संग्राम से न भागना ॥१०१॥ दानदेना, ईश्वरता (यथार्थ हुकूमत करना) यह क्षत्रिय का धर्म कहा है । प्रजाओं को पालना करना क्षत्रियों का परमधर्म है ॥१०२॥ इस से सब यत्न से राजा प्रजाओं की रक्षा करे और क्षत्रिय बड़े यत्न से तीन कामों को करे कि ॥१०३॥ दान-पढ़ना-यज्ञ और फिर योगमार्ग का सेवन और ब्राह्मणों को निरन्तर सदा प्रसन्न सन्तुष्ट करने का उद्योग करता रहे ॥१०४॥ उनके प्रसन्न हुये पर राजा का राज्य और कोश (खज़ाना) बढ़ता है । व्यवहार (लेन देन) कृषि गौओं की पालना ॥१०५॥ ब्राह्मण और क्षत्रिय की सेवा ये कर्म वैश्य के कहे हैं । और कृषि (खेती) के खलियान के यज्ञ और गौओं के रक्षार्थ यज्ञ को ॥ १०६ ॥ और गौओं के शरण (घर) इन को वैश्य निरन्तर करे और शूद्र ईर्ष्या को त्याग कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इन की

ब्राह्मणक्षत्रवैश्यांश्च चरेन्नित्यममत्सरः ॥ १०७ ॥
कुर्वंस्तुशूद्रःशुश्रूषां लोकान्जयतिधर्मतः ।
पंचयज्ञविधानंतु शूद्रस्यापिविधीयते ॥ १०८ ॥
तस्यप्रोक्तोनमस्कारः कुर्वन्नित्यंनहीयते ।
शूद्रोपिद्विविधोज्ञेयः श्राद्धीचैवेतरस्तथा ॥ १०९ ॥
श्राद्धीभोज्यस्तयोरुक्तो ह्यभोज्यस्त्वितरोमतः ।
प्राणानर्थांस्तथादारा-न्ब्राह्मणार्थेन्निवेदयेत् ॥ ११० ॥
सशूद्रजातिर्भोज्यः स्या-द्भोज्यःशेषउच्यते ।
कुर्याच्छूद्रस्तुशुश्रूषां ब्रह्मक्षत्रविशांक्रमात् ॥ १११ ॥
कुर्यादुत्तरयोर्वैश्यः क्षत्रियोब्राह्मणस्यतु ।
आश्रमास्तुत्रयःप्रोक्ता वैश्यराजन्ययोस्तथा ॥ ११२ ॥
पारिव्राज्याश्रमप्राप्ति-र्ब्राह्मणस्यैवचोदिता ।

नित्य सेवा करे ॥१०७॥ क्योंकि इन की शुश्रूषा को धर्म से करता हुआ शूद्र लोक (स्वर्गादि) को जीतता (प्राप्त होता) है और पंचयज्ञ का करना शूद्र को भी कहा है ॥ १०८ ॥ उस शूद्र को देवता के नामान्त में नमः लगा कर नाम मन्त्रों से पञ्च यज्ञ करने चाहिये जैसे (अग्नयेनमः) इत्यादि इस प्रकार नित्य २ करता हुआ शूद्र पतित नहीं होता-शूद्र भी दो प्रकार का है एक श्राद्ध का अधिकारी और दूसरा अनधिकारी ॥ १०९ ॥ उन दोनों में से श्राद्धके अधिकारी का भोजन करना चाहिये--और अनधिकारी का नहीं जो शूद्र अपने प्राण-धन, स्त्री इत्यादि सब ब्राह्मण को समर्पण करदे ॥ ११० ॥ वह शूद्र भोजन करने योग्य है और शेष शूद्र का अन्न अभोज्य है। और शूद्र क्रम से ब्राह्मण--क्षत्रिय-वैश्य--इन की सेवा करे ॥१११॥ वैश्य ब्राह्मण क्षत्रिय की सेवा करे और क्षत्रिय, ब्राह्मण की ही सेवा करे। वैश्य और क्षत्रिय इन के तीन आश्रम कहे हैं। अर्थात् ब्रह्मचर्य-गृहस्थ, वानप्रस्थ ॥ ११२ ॥ और संन्यास

आश्रमाणामयंप्रोक्तो मयाधर्मःसनातनः ॥ ११३ ॥
यदत्राविदितंकिंचित्तदन्येभ्योगमिष्यथ ॥

इति विष्णुप्रोक्तं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥

आश्रम की प्राप्ति केवल ब्राह्मण को ही कही है—यह चारों आश्रमों का सनातन धर्म हमने कहा ॥ ११३ ॥ जो कुछ इस ग्रन्थ में तुमने नहीं जाना उस को अन्य धर्म शास्त्र ग्रन्थों से जान जाओगे ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रभाषासमाप्ता ॥

अथ हारीतस्मृतिः

येवर्णाश्रमधर्म्मस्थास्तेभक्ताःकेशवंप्रति ।
इतिपूर्वंत्वयाप्रोक्तं भूर्भुवःस्वर्द्विजोत्तमाः ॥ १ ॥
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मान्नोब्रूहिसत्तम ।
येनसन्तुष्यतेदेवो नारसिंहःसनातनः ॥ २ ॥
अत्राहंकथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम् ।
ऋषिभिःसहसंवादं हारीतस्यमहात्मनः ॥ ३ ॥
हारीतंसर्वधर्म्मज्ञमासीनमिवपावकम् ।
प्रणिपत्याऽब्रुवन्सर्वे मुनयोधर्मकाङ्क्षिणः ॥ ४ ॥
भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वधर्मप्रवर्त्तक ।
वर्णानामाश्रमाणांच धर्मान्नोब्रूहिभार्गव ॥ ५ ॥
समासाद्योगशास्त्रंच विष्णुभक्तिकरंपरम् ।

भा०:-जो वर्ण तथा आश्रम के धर्ममें स्थित तीनों लोक के ब्राह्मण हैं वे केशव भगवान् के भक्त होते हैं यह प्रथम तुमने कहा था- ॥ १ ॥ अब हे पुरुषों में श्रेष्ठ जिस से सनातन नरसिंह देव प्रसन्न हों उन वर्ण आश्रम के धर्मों को कहो ॥ २ ॥ इस विषय में उत्तम पुरातन वृत्तान्त हम कहेंगे कि जो हारीत महात्मा के संग ऋषियों का संवाद हुआ है ॥ ३ ॥ तपोबल से अग्नि के समान तेजस्वी-बैठे हुए सब धर्मों के मर्म ज्ञाता-हारीत से धर्म के अभिलाषी सम्पूर्ण मुनि नमस्कार करके बोले कि ॥ ४ ॥ हे भगवन् हे सब धर्मों के जानने वाले-हे सब धर्मों के प्रवर्त्तक और हे भृगुवंश में उत्पन्न! वर्ण और आश्रमों के धर्मों को हम से कहिये ॥ ५ ॥ जो विष्णु भगवान् में उत्तम भक्ति प्रकट करने

एतच्चान्यच्चभगवन् ब्रूहिनःपरमोगुरुः ॥ ६ ॥
हारीतस्तानुवाचाथ तैरेवंचोदितोमुनिः ।
शृण्वन्तुमुनयःसर्वे धर्म्मान्वक्ष्यामिशाश्वतान् ॥७॥
वर्णानामाश्रमाणांच योगशास्त्रंचसत्तमाः ।
सन्धार्यमुच्यतेमर्त्यो जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ८ ॥
पुरादेवोजगत्स्रष्टा परमात्माजलोपरि ।
सुष्वापभोगिपर्यंके शयनेतुश्रियासह ॥ ९ ॥
तस्यसुप्तस्यनाभौतु महत्पद्ममभून्किल ।
पद्ममध्येऽभवद्ब्रह्मा वेदवेदांगभूषणः ॥ १० ॥
सचोक्तोदेवदेवेन जगत्सृजपुनःपुनः ।

वाला योगशास्त्र है उस को और हे भगवन् अन्य उत्तम उपदेश को संक्षेप से कहो क्यों कि तुम हमारे परम गुरु हो ॥ ६ ॥ उन मुनियों के इस प्रकार प्रेरणा करने पर हारीत मुनि उन से बोले कि हे सम्पूर्ण मुनियो ! सुनो मैं सनातन धर्मों को कहता हूं ॥ ७ ॥ वर्ण तथा आश्रमों के धर्म और योगशास्त्र को भली प्रकार जान कर मनुष्य संसार के बन्धन से छूट जाता है ॥ ८ ॥ पूर्व प्रलय समय में जगत् के रचने वाले देव परमात्मा जलों के ऊपर शेष शय्या पर लक्ष्मी सहित सोये ॥ ९ ॥ सोते हुये उन की नाभि से महान् (बड़ा) कमल हुआ उस पद्म के बीच वेद और वेदांगों के भूषण ब्रह्मा जी प्रकट हुए ॥ १० ॥ उन को देवों के देव परब्रह्म ने वारंवार यह कहा कि तुम जगत् को रचो ।

वि० (९ । १०) आकाश मण्डल में निराधार रहने वाला जल यहां लेना [illegible]क्षित है उसी जल पर नौका स्थानी वा आधार भूत जो सामान था वही [illegible]या है प्रलय के समय भगवान् लक्ष्मी वा स्त्री शक्ति रूप प्रकृति को [illegible]न में लीन कर विश्राम करते हैं । जब संसार रचने का समय आता है तब स्वयमेव भगवान् के नाभि नाम मध्य भाग में कमलाकार अण्ड पैदा होता उसी के बीच ब्रह्मा जी होते हैं जो आगे सब सृष्टि को बनाते हैं ।

सोपिसृष्ट्वाजगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ११ ॥
यज्ञसिद्ध्यर्थमनघान् ब्राह्मणान्मुखतोऽजसन् ।
असृजत्क्षत्रियान्बाह्वोर्वैश्यानप्यूरुदेशतः ॥ १२ ॥
शूद्रांश्चपादयोःसृष्ट्वा तेषांचैवानुपूर्वशः ।
यथाप्रोवाचभगवान् ब्रह्मयोनिःपितामहः ॥ १३ ॥
तद्वचःसंप्रवक्ष्यामि शृणुतद्विजसत्तमाः ।
धन्यंयशस्यमायुष्यंस्वर्ग्यंमोक्षफलप्रदम् ॥ १४ ॥
ब्राह्मण्यांब्राह्मणेनैव ह्युत्पन्नोब्राह्मणःस्मृतः ।
तस्यधर्म्मंप्रवक्ष्यामि तद्योग्यंदेशमेवच ॥ १५ ॥
कृष्णसारोमृगोयत्र स्वभावेनप्रवर्त्तते ।
तस्मिन्देशेवसेद्धर्माः सिद्ध्यन्तिद्विजसत्तमाः ॥ १५॥
षट्कर्माणिनिजान्याहुर्ब्राह्मणस्यमहात्मनः ।
तैरेवसततंयस्तु वर्तयेत्सुखमेधते ॥ १६ ॥
अध्यापनंचाध्ययनं याजनंयजनंतथा ।

उन ब्रह्माजी ने भी देवता, असुर, मनुष्य, इन सहित संपूर्ण जगत् को रचकर ॥ ११ ॥ यज्ञ की सिद्धि के लिये पाप रहित तपस्वी ऋषि/ब्राह्मणों को मुख से क्षत्रियों को भुजाओं से/वैश्यों को जंघाओं से/१२ और शूद्रों को चरणों से उत्पन्न किया॥ इस क्रम से उन चारों को रच कर भगवान् ब्रह्मयोनि (ब्रह्मा) जी ने यह वचन कहा कि॥ १३॥ हे ब्रह्मर्षि लोगो ! उस वचन को मैं कहता हूं तुम सुनो और वह वचन धन, यश, अवस्था, स्वर्ग तथा मोक्षफल को देनेवाला है॥१४॥ब्राह्मण पिता से जो ब्राह्मणी माता में पैदा हो उसे ब्राह्मण कहते हैं उसका धर्म और उस के निवास के योग्य देश को हम कहेंगे ॥ १५ ॥ काला मृग जिस में स्वभाव से विचरता हो उस देश में ब्राह्मण बसे और उसी देश में किया धर्म, हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! सिद्ध नाम सुफल होता है॥१६॥ महात्मा ब्राह्मणों के छः कर्म निज के हैं उन्हीं कर्मों सहित जो निरंतर व-

दानंप्रतिग्रहश्चेति षट्कर्माणीतिचोच्यते ॥ १७ ॥
अध्यापनञ्चत्रिविधं धर्म्मार्थमृकूथकारणात् ।
शुश्रूषाकरणंचेति त्रिविधंपरिकीर्तितम् ॥ १८ ॥
एषामन्यतमाभावे वृथाचारोभवेद्द्विजः ।
तत्रविद्यानदातव्या पुरुषेणहितैषिणा ॥ १९ ॥
योग्यानध्यापयेच्छिष्या=नयोग्यानपिवर्जयेत् ।
विदितात्प्रतिगृह्णीयाद्ग् गृहेधर्मप्रसिद्धये ॥ २० ॥
वेदञ्चैवाभ्यसेन्नित्यं शुचौदेशेसमाहितः ।
धर्म्मशास्त्रंतथापाठ्यं ब्राह्मणैःशुद्धमानसैः ॥ २१ ॥
वेदवत्पठितव्यंच श्रोतव्यंचदिवानिशि ।
स्मृतिहीनायविप्राय श्रुतिहीनेतथैवच ॥ २२ ॥
दानंभोजनमन्यच्च दत्तंकुलविनाशनम् ।

तैनाम रहे वह सुख से बढ़ता है अर्थात् धन पुत्रवान् होता है ॥१६॥वेदकापढ़ाना पढ़ना—द्विजों को यज्ञ कराना और स्वयं यज्ञ करना—सुपात्र को दान देना और प्रतिग्रह(दान) लेना ये छः कर्म कहे हैं ॥१७॥ वेदादिशास्त्र का पढ़ाना भी तीन प्रकार का है १ धर्म के अर्थ २ धन को लेकर और ३ सेवा के लिये ॥ १८ ॥ इन तीनों में से जिस शिष्य में धर्मादि एक भी न हो उस के पढ़ाने से ब्राह्मण वृथाचारी होता है ऐसे शिष्य को अपने हित का अभिलाषी पुरुष विद्या न दे ॥ १९ ॥ योग्य शिष्यों को पढ़ावे और अयोग्यों को वर्जदे और गृहस्थ धर्म के निर्वाहार्थ प्रसिद्ध पुरुष (धनी) से प्रतिग्रह ले ॥२०॥ शुद्ध देश में सावधान होकर वेदका अभ्यास करै और शुद्ध मनवाले ब्राह्मणों को धर्म शास्त्र भी पढ़ना चाहिये ॥२१॥वेद के समान धर्म शास्त्र को भी प्रतिदिन पढ़ना और सुनना चाहिये. स्मृति नाम धर्मशास्त्र श्रुति वेद इन दोनों से हीन ब्राह्मण को॥२२॥ दान-भोजन-और अन्य जो दिया जाय वह कुलको नष्टकरताहै।इस से

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेद्द्विजः ॥ २३॥
श्रुतिस्मृतीचविप्राणां चक्षुषीदेवनिर्म्मिते ।
काणस्तत्रैकयाहीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः ॥२४॥
गुरुशुश्रूषणञ्चैव यथान्यायमतन्द्रितः ।
सायंप्रातरुपासीत विवाहाग्निंर्द्विजोत्तमः ॥२५॥
सुस्नातस्तुप्रकुर्वीत वैश्वदेवंदिनेदिने ।
अतिथीनागतांश्छक्त्यापूजयेदविचारतः ॥ २६ ॥
अन्यानभ्यागतान्विप्रान्पूजयेच्छक्तितोगृही ।
स्वदारनिरतोनित्यं परदारविवर्जितः ॥ २७ ॥
कृतहोमस्तुभुञ्जीत सायंप्रातरुदारधीः ।
सत्यवादीजितक्रोधो नाधर्मेवर्त्तयेन्मतिम् ॥२८॥
स्वकर्मणिचसंप्राप्ते प्रमादान्ननिवर्त्तते ।

सब यत्न से ब्राह्मण धर्म शास्त्र को अवश्य पढ़े ॥२३॥ श्रुति स्मृति ये दोनों परमेश्वर के रचे हुये ब्राह्मणों के नेत्र हैं इन दोनों में से जो एक से हीन है वह काणा, और दोनों से हीन को अंधा कहा है ॥ २४ ॥ आलस्य को त्याग कर गुरु की सेवा करे और ब्राह्मण सायं प्रातः काल विवाहाग्नि (जिस में विवाह का होम हो फिर अपने घर लाकर जीवन पर्यन्त बनाये रक्खे) की उपासना (उसी में स्मार्त्त होम) करै ॥ २५ ॥ भले प्रकार स्नान करके प्रति दिन बलिवैश्व देव करै तथा आये हुए विरक्त अतिथियों को बिना विचारे शक्ति के अनुसार पूजे ॥२६॥ और अन्य गृहस्थ ब्राह्मणादि अभ्यागतों को भी गृहस्थी ब्राह्मण शक्ति के अनुसार पूजे तथा अपनी स्त्री से ही सदा प्रेम रक्खे पर स्त्री को वर्ज दे ॥ २७ ॥ उदार बुद्धि वाला ब्राह्मण साय प्रातःकाल के समय अग्निहोत्र करके भोजन करै। सत्य बोले, क्रोध को जीते तथा अ-धर्म में बुद्धि को कभी न लगावे ॥ २८ ॥ अपने सन्ध्यादि कर्म के समय में प्रमाद से कर्म को न छोड़े । सत्य सब की हितकारिणी और परलोक में अ-

सत्यांहितांवदेद्वाचं परलोकहितैषिणीम् ॥ २९ ॥
एषधर्म्मःसमुद्दिष्टो ब्राह्मणस्यसमासतः ।
धर्ममेवहियःकुर्यात्सयातिब्रह्मणःपदम् ॥ ३० ॥
इत्येषधर्मःकथितोमयायं पृष्टोभवद्भिस्त्वखिलाघहारी ।
वदामिराज्ञामपिचैवधर्मान्पृथक्पृथग्बोधतविप्रवर्याः ॥३१॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

क्षत्रादीनांप्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।
येषुप्रवृत्ताविधिना सर्वेयान्तिपरांगतिम् ॥१॥
राज्यस्थःक्षत्रियश्चापि प्रजाधर्मेणपालयन् ।
कुर्यादध्ययनंसम्यग् यजेद्यज्ञान्यथाविधि ॥२॥
दद्याद्दानंद्विजातिभ्यो धर्मबुद्धिसमन्वितः ।
स्वभार्यानिरतोनित्यं षड्भागार्हःसदान्पः ॥३॥
नीतिशास्त्रार्थकुशलः सन्धिविग्रहतत्त्ववित् ।

पना हित करने वाली वाणी को बोला करे ॥ २९ ॥ यह धर्म ब्राह्मण का संक्षेप से कहा जो ब्राह्मण धर्म को किया करता है वह ब्रह्मपद को प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! जो धर्म तुमने मुझ से पूछा था संपूर्ण पापों का नाशक वह यह धर्म हमने कहा और राजाओं के भी पृथक् २ धर्मों को कहते हैं तुम सुनो ॥ ३१ ॥

इति हारीते धर्म शास्त्रे १ अध्याय भाषा समाप्त

अब क्षत्रियादि के धर्म को यथार्थ क्रम से हम कहते हैं कि जिन धर्मों को विधि से करते हुए (क्षत्रियादि) परमगति को प्राप्त होते हैं ॥१॥ राज्य पदवी पर स्थित धर्म से प्रजा की रक्षा करता हुआ क्षत्रिय भी वेद पढ़े और विधिपूर्वक यज्ञ करे ॥२॥ जो राजा धर्मानुकूल बुद्धि करके ब्राह्मणों को दान दे और अपनी स्त्री में ही प्रेम रक्खे वेश्यादि से सदा बचे ऐसा राजा प्रदेश प्रजा से षष्ठांश कर लेने योग्य होता है ॥३॥ नीतिशास्त्र में कुशल और सन्धि

देवब्राह्मणभक्तश्च-पितृकार्यपरस्तथा ॥४॥
धर्मेणयजनंकार्यं मधर्मपरिवर्जनम् ।
उत्तमाङ्गतिमाप्नोति क्षत्रियोऽप्येवमाचरन् ॥५॥
गोरक्षांकृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्योयथाविधि ।
दानंदेयंयथाशक्त्या ब्राह्मणानांचभोजनम् ॥६॥
दम्भमोहविनिर्मुक्तः सत्यवागनसूयकः ।
स्वदारनिरतोदान्तः परदारविवर्जितः ॥७॥
धनैर्विप्रान्भोजयित्वा यज्ञकालेतुयाजकान् ।
अनमुत्वेचवर्तेत धर्मेवादेहपातनात् ॥८॥
यज्ञाध्ययनदानानि कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ।
पितृकार्यपरश्चैव नरसिंहार्चनापरः ॥९॥
एतद्वैश्यस्यधर्मोयं स्वधर्ममनुतिष्ठति ।

(मेल) विग्रह (फूट) इन के भी तत्त्व को राजा जाने देवता और ब्राह्मणों में भक्ति रक्खे और पितरों के कार्य (श्राद्ध आदि) में भी तत्पर रहे ॥ ४ ॥ धर्म से यज्ञ करना और अधर्म को त्यागना इस प्रकार आचरण करता हुआ क्षत्रिय भी उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥५॥ वैश्य के धर्म–गौओं की रक्षा खेती–व्यापार (लेन देन) इन कामों को वैश्य विधि से करे। यथाशक्ति दान देना और ब्राह्मणों को भोजन कराना ॥ ६ ॥ अविद्यारूप दम्भ तथा मोह का त्यागी और वाणी से सत्य बोले ईर्ष्या को न करे अपनी स्त्री में रत रहे और पराई स्त्री का सदा परित्याग करे ॥ ७ ॥ धन से ब्राह्मणों को और यज्ञ के समय ऋत्विजों को जिमा (तृप्त) करके मरण पर्यन्त धर्म के कार्यों में अपनी हुकूमत किसी को न दिखलावे ॥ ८ ॥ प्रतिदिन आलस्य को छोड़कर यज्ञ, वेदाध्ययन, तथा दान करे। पितरों के कार्य (श्राद्ध आदि) और नरसिंह भगवान् के पूजन में तत्पर रहे ॥ ९ ॥ यह वैश्य का धर्म है इस को जो करता है और इस के अनुसार चलता है वह स्वर्ग में जाता है इस में संशय

एतदाचरतेयोहि सस्वर्गीनात्रसंशयः ॥१०॥
वर्णत्रयस्यशुश्रूषां कुर्याच्छूद्रःप्रयत्नतः ।
दासवद्ब्राह्मणानाञ्च विशेषेणसमाचरेत् ॥११॥
अयाचितप्रदाताच कष्टंवृत्त्यर्थमाचरेत् ।
पाकयज्ञविधानेन यजेद्देवमतन्द्रितः ॥१२॥
शूद्राणामधिकंकुर्यादर्च्चनंन्यायवर्त्तिनाम् ।
धारणंजीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम् ॥ १३ ॥
स्वदारेषुरतिश्चैव परदारविवर्जनम् ।
इत्थंकुर्यात्सदाशूद्रो मनोवाक्कायकर्म्मभिः ।
स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापःसुपुण्यकृत् ॥ १४ ॥
वर्णेषुधर्म्माविविधामयोक्ता यथातथाब्रह्ममुखेरिताः पुरा ।
शृणुध्वमत्राश्रमधर्म्ममाद्यं मयोच्यमानंक्रमशोमुनीद्राः ॥१५॥
इति हारीते धर्म्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

नहीं ॥ १० ॥ शूद्र के धर्म—तीनों वर्णों की सेवा को शूद्र यत्न से करे और ब्राह्मणों की तो दास बन कर सेवा करे ॥ ११ ॥ बिना मांगे दे और अपने निर्वाहके लिये कष्ट सहे और आलस्य को छोड़कर पाक यज्ञ से देवताओं का पूजन करे ॥१२॥और न्याय में तत्पर जो शूद्र उनकाभी पूजन अधिकता से करे ।पुराने वस्त्रका धारण करै और ब्राह्मण के खाने से शेष बचे भोजन शूद्र करे॥१३॥ अपनी स्त्रियों में रमे और पराई स्त्रियोंको वर्जे—मन, वाणी, देह के कर्म से शूद्र इसी प्रकार सदा करे ॥१४॥ नष्ट हुआहै पाप जिसका ऐसा उत्तम पुण्यात्मा शूद्र इंद्र के स्थान को प्राप्त होता है ये ब्रह्मा जीके मुखसे निकले हुए वर्णों के यथार्थ धर्म हमने कहे ॥ १५॥ हे श्रेष्ठ मुनियो अब हमारे कहे आश्रमों के सनातन धर्म को क्रम से सुनो ॥१६॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे २ अध्यायः भाषासमाप्ता ॥

उपनीतोमाणवको वसेद्गुरुकुलेषुच ।
गुरोःकुलेप्रियंकुर्य्यात्कर्म्मणामनसागिरा ॥१॥
ब्रह्मचर्य्यमधःशय्या तथावह्नेरुपासना ।
उदकुंभान्गुरोर्दद्यात् गोग्रासञ्चेन्धनानिच ॥२॥
कुर्यादध्ययनञ्चैव ब्रह्मचारीयथाविधि ।
विधिंत्यक्त्वाप्रकुर्व्वाणो नस्वाध्यायफलंलभेत् ॥३॥
यःकश्चित्कुरुतेधर्म्मं विधिंहित्वादुरात्मवान् ।
नतत्फलमवाप्नोति कुर्व्वाणोऽपिविधिच्युतः ॥४॥
तस्माद्वेदव्रतानीह चरेत्स्वाध्यायसिद्धये ।
शौचाचारमशेषन्तु शिक्षयेद्गुरुसन्निधौ ॥५॥
अजिनंदण्डकाष्ठंच मेखलाञ्चोपवीतकम् ।
धारयेदप्रमत्तश्च ब्रह्मचारीसमाहितः ॥६॥
सायंप्रातश्चरेद्भैक्षं भोज्यार्थंसंयतेन्द्रियः ।
आचम्यप्रयतोनित्यं नकुर्याद्दन्तधावनम् ॥७॥

यज्ञोपवीत के पीछे बालक गुरु के कुलों में बसे और कर्म, मन, वाणी, से गुरु के कुल में प्रीति रक्खे ॥ १ ब्रह्मचर्य से रहै पृथ्वीपर सोवे अग्निहोत्र करे और गुरु के लिये जलका घट इंधन और गौओं को चारा दे ॥ २ ॥ और ब्रह्मचारी शास्त्रोक्त विधि से वेद वेदाङ्ग का अध्ययन करे क्योंकि विधिसे हीन रीति से पढ़ता हुआ पढ़ने के फलको प्राप्त नहीं होता ॥३॥ जोकोई दुरात्मा विधिको छोड़कर धर्म करता है, विधिपतित वह ब्रह्मचारी आदि पुरुष उस कर्म के फल को प्राप्त नहीं होता ॥ ४ ॥ इससे अपने स्वाध्याय की सिद्धि के अर्थ गुरुकुल में वेद के व्रतों को करे और गुरु के समीप सम्पूर्ण शौच आचरण सीखे ॥५॥ मृगछाला–दंड–मेखला कंधनी यज्ञोपवीत– इनको सावधान और अप्रमत्त होकर धारण करे ॥ ६ ॥ इन्द्रियों को जीतकर भोजनके अर्थ सायं प्रातः काल भिक्षा मांगकर नित्य सावधानी से आचमन करके खावे । तथा दंतधावन न करे ॥ ७ ॥

छत्रंचोपानहंचैव गन्धमाल्यादिवर्जयेत् ।
नृत्यगीतमथालापं मैथुनंचविवर्जयेत् ॥८॥
हस्त्यश्वारोहणंचैव सन्त्यजेत्संयतेन्द्रियः ।
सन्ध्योपास्तिंप्रकुर्वीत ब्रह्मचारीव्रतेस्थितः ॥९॥
अभिवाद्यगुरोःपादौ संध्याकर्मावसानतः ।
तथायोगंप्रकुर्वीत मातापित्रोश्चभक्तितः ॥१०॥
एतेषुत्रिषुनष्टेषु नष्टाःस्युःसर्वदेवताः ।
एतेषांशासनेतिष्ठेद् ब्रह्मचारीविमत्सरः ॥११॥
अधीत्यचगुरोर्वेदान् वेदौवावेदमेववा ।
गुरवेदक्षिणांदद्यात्संयमीग्राममावसेत् ॥१२॥
यस्यैतानिसुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरंकरः ।
संन्याससमयंकृत्वा ब्राह्मणोब्रह्मचर्य्यया ॥१३॥
तस्मिन्नेवनयेत्कालमाचार्य्ययावदायुषम् ।
तदभावेचतत्पुत्रे तच्छिष्येवाथवाकुले ॥१४॥

छाता जूता गंध (इतर फुलेलादि) माला नाचना गाना बहुत बोलना मैथुन इनको सर्वथा त्याग देवे हाथी घोड़े पर न चढ़े और इन्द्रियों को वशमें करके नियम में स्थित ब्रह्मचारी संध्योपासन किया करे॥९॥संध्या कर्म को समाप्त कर गुरु के चरणों कोअभिवादन करके भक्ति से माता और पिता की भी सेवा करै॥१०॥जो ब्रह्मचारीगुरुआदि तीनों की सेवा शुश्रूषा को सर्वथा भुला देतोउस पर सब देवता नष्ट (अप्रसन्न) होजाते हैं इससे ईर्ष्या को छोड़कर ब्रह्मचारी इनकी शिक्षा (उपदेश में) स्थित रहे ॥११॥ गुरुसे सब (४ वेद) अथवा दो वेद अथवा एक वेद को पढ़करजितेंद्रिय ब्रह्मचारी गुरुको दक्षिणा दे के समावर्त्तन करकेग्राममें बसे॥१२॥ जिह्वा-उपस्थ इन्द्रिय-उदर(पेट)-हाथ-जिसके ये भलेप्रकार वश में होगये हैं। वह ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से ही संन्यास लेने का समय नियत कर लेवे ॥१३॥और वह नैष्ठिकब्रह्मचारी रहनापसन्दकरेतोउसी आचार्य केयहां मरण पर्यन्त विरक्त होकर गुरुसेवा करे यदि आचार्य का स्वर्गवास होजाय तो गुरु शिष्यके समीप, गुरु के कुलमें तपकरता हुआ जन्म को बितावे ॥ १४ ॥

नविवाहोनसंन्यासो नैष्ठिकस्यविधीयते ।
इमंयोविधिमास्थाय त्यजेद्देहमतन्द्रितः ।
नेहभूयोऽपिजायेत ब्रह्मचारीदृढव्रतः ॥१५॥
योब्रह्मचारीविधिनासमाहितश्चरेत्पृथिव्यांगुरुसेवनेरतः ।
संप्राप्यविद्यामतिदुर्लभांशिवांफलञ्चतस्या सुलभंतुविन्दति ॥१६

इति हारीते धर्म्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
असमानर्षिगोत्रां हि कन्यांसभ्रातृकांशुभाम् ॥ १॥
सर्वावयवसम्पूर्णां सुवृत्तामुद्वहेन्नरः ।
ब्राह्मेणविधिनाकुर्यात्प्रशस्तेनद्विजोत्तमः ॥ २ ॥
तथान्येबहवःप्रोक्ता विवाहावर्णधर्मतः ।
उपासनंचविधिवदाहृत्यद्विजपुंगवाः ॥ ३ ॥
सायंप्रातश्चजुहुयात सर्वकालमतन्द्रितः ।

इस नैष्ठिक ब्रह्मचारी के लिये विवाह और संन्यास नहीं कहे हैं। जो आश्रम को छोड़कर इस विधि से देह को त्यागदे ॥१५॥ वह दृढ़व्रत ब्रह्मचारी इस भूलोक में फिर पैदा नहीं होता—विधि और सावधानी से गुरु की सेवा में तल्लीन जो ब्रह्मचारी पृथ्वी पर विचरता है ॥१६॥ वह अत्यन्त दुर्लभ और कल्याण रूप विद्या को पाकर उसके सुलभ फल (मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे ३ अध्यायभाषासमाप्ता ॥

वेद को जो पढ़ चुका है, और वेदशास्त्र के तात्पर्य को ठीक २ जानता है ऐसा ब्रह्मचारी समावर्त्तन संस्कार करके जिसके प्रवर और गोत्र अपने से भिन्न हों और कोई भाई जिस का हो ऐसी ॥१॥ देह के सब अंग जिस के पूरे २ हों और सुंदर जिसका आचरण हो ऐसी कन्या से विवाह करे। और ब्राह्मण आठ विवाहों में उत्तम ब्राह्मविवाह विधि से विवाह करै ॥ २ ॥ ब्राह्म से भिन्न विवाह अन्य क्षत्रियादि वर्णों के लिये कहे हैं ॥ ३ ॥ आलस को छोड़ सायं प्रातःकाल नित्य २ होम करै और नित्य दन्तधावन करके स्नान

स्नानंकार्य्यंततोनित्यं दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ४ ॥
उषःकालेसमुत्थाय कृतशौचोयथाविधि ।
मुखेपर्य्युषितेनित्यं भवत्यप्रयतोनरः ॥ ५ ॥
तस्माच्छुष्कमथार्द्रंवा भक्षयेद्दन्तकाष्ठकम् ।
करंजंखादिरंवापि कदंबंकुरवंतथा ॥ ६ ॥
सप्तपर्णपृश्निपर्णी जंबूनिंबंतथैवच ।
अपामार्गंचबिल्वंचार्कंचोदुम्बरमेवच ॥ ७ ॥
एतेप्रशस्ताःकथिता दंतधावनकर्म्मणि ।
दंतकाष्ठस्यभक्षश्च समासेनप्रकीर्तितः ॥ ८ ॥
सर्वेकंटकिनःपुण्याः क्षीरिणश्चयशस्विनः ।
अष्टांगुलेनमानेन दन्तकाष्ठमिहोच्यते ॥ ९ ॥
प्रादेशमात्रमथवा तेनदन्तान्विशोधयेत् ।
प्रतिपत्पर्वषष्ठीषु नवम्यांचैवसत्तमाः ॥ १० ॥
दन्तानांकाष्ठसंयोगो दहत्यासप्तमंकुलम् ॥

करै ॥ ४ ॥ अरुणोदय में उठके विधिपूर्वक शुद्धि मुखादिकी करै क्योंकि मुख के पर्य्युषित (बासी) होने से मनुष्य का मन मलिन अपवित्र होता है॥५॥ इस से सूखी वा गीली दातौन अवश्य करै वह दातौन करंज, खैर, कदंब, मौलसिरी की हो ॥ ६ ॥ सप्तपर्ण, पृश्निपर्णी, जामन नीब ओंगा बेल, आक गूलर ॥ ७ ॥ इतने वृक्ष दातौन के लिये उत्तम कहे हैं और दातौन करने का विचार भी संक्षेप में कह दिया है ॥ ८ ॥ कांटे वाले सब वृक्ष पवित्र और दूध वाले सब वृक्ष यश के हेतु हैं। आठ अंगुल लंबी दातौन होनी चाहिये अथवा प्रादेशमात्र (बिलस्तभर) लम्बी हो उन से दांतों को शुद्ध करै। हेसज्जनो! पडवा, पर्व (अमावस आदि) छठ और नवमी तिथि को ॥ १० ॥ दातौन करने से सात पीढ़ी तक के पुरुषाओं को दग्ध करता है।

अभावेदन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेषुच ॥ ११ ॥
अपांद्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिंसमाचरेत् ।
स्नात्वामन्त्रवदाचम्य पुनराचमनंचरेत् ॥ १२ ॥
मन्त्रवत्प्रोक्ष्यचात्मानं प्रक्षिपेदुदकाञ्जलिम् ।
आदित्येनसहप्रातर्मन्देहानामराक्षसाः ॥ १३ ॥
युद्ध्यन्तिवरदानेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
उदकाञ्जलिनिःक्षेपा गायत्र्याचाभिमंत्रिताः ॥ १४ ॥
निघ्नन्तिराक्षसान्सर्वान्मन्देहाख्यान्द्विजेरिताः ।
ततःप्रयातिसविता ब्राह्मणैरभिरक्षितः ॥ १५ ॥
मरीच्याद्यैर्महाभागैः सनकाद्यैश्चयोगिभिः ।
तस्मान्नलंघयेत्सन्ध्यां सायंप्रातःसमाहितः ॥ १६ ॥
उल्लंघयतियोमोहात् सयातिनरकंध्रुवम् ।
सायंमंत्रवदाचम्य प्रोक्ष्यसूर्यस्यचांजलिम् ॥ १७ ॥

दातौन के न मिलने पर तथा प्रतिपदादि निषिद्ध दिनों में ॥ ११ ॥ जलों के बारह कुल्ले करके तथा मञ्जन द्वारा मुख की शुद्धि करे। मन्त्रों से आचमन करके स्नान करे और स्नान के पीछे फिर आचमन करे ॥१२॥ (आपोहिष्ठादि०) मन्त्रों से देह पर मार्जन करके सूर्य को जल की अंजली देवे। सूर्य नारायण के संग प्रातःकाल में मंदेह नाम वाले राक्षस ॥ १३ ॥ अव्यक्त ब्रह्म से प्रकट हुये ब्रह्मा जी के वरदान से युद्ध करते हैं। गायत्री मन्त्र पढ़ कर सूर्यनारायण के सम्मुख द्विजों से फेंकी जल की अंजली ॥ १४ ॥ उन सब मंदेह नामक राक्षसों को नष्ट करती हैं। इस कारण ब्राह्मणों से ॥ १५ ॥ तथा बड़े भाग्यशाली मरीचि आदि ऋषियों से तथा सनकादिक योगियों से भी रक्षित हुये सूर्यनारायण आकाश में निर्विघ्न गमन करते हैं। इस से समावधान हुआ द्विज सायं प्रातःकाल की संध्या का उल्लंघन त्याग न करे॥१६॥ जो पुरुष अज्ञान से सन्ध्या को छोड़ता है वह निश्चय कर नरक में जाता है। सायंकाल को मन्त्रों से आचमन और शरीर पर मार्जन कर के सूर्य को अंजली ॥१७॥

दत्त्वाप्रदक्षिणंकुर्य्याज्जलंस्पृष्ट्वाविशुद्ध्यति ।
पूर्वांसंध्यांसनक्षत्रा-मुपासीतयथाविधि ॥ १८ ॥
गायत्रीमभ्यसेत्तावद् यावदादित्यदर्शनम् ।
उपास्यपश्चिमांसंध्यां सादित्यांचयथाविधि ॥ १९ ॥
गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावत्ताराणिपश्यति ।
ततश्चावसथंप्राप्य कृत्वाहोमंस्वयंबुधः ॥ २० ॥
सञ्चिन्त्यपोष्यवर्गस्य भरणार्थंविचक्षणः ।
ततःशिष्यहितार्थाय स्वाध्यायंकिञ्चिदाचरेत् ॥२१॥
ईश्वरंचैवकार्यार्थ-मभिगच्छेद्द्विजोत्तमः ।
कुशपुष्पेन्धनादीनि गत्वादूरंसमाहरेत् ॥२२॥
ततोमाध्यान्हिकंकुर्याच्छुचौदेशेमनोरमे ।
विधिंतस्यप्रवक्ष्यामि समासात्पापनाशनम् ॥२३॥
स्नात्वायेनविधानेन मुच्यतेसर्वकिल्बिषात् ।

देकर प्रदक्षिणा करै फिर जल का स्पर्श कर के शुद्ध होता है । प्रातःकाल की संध्या का उस समय विधि से आरम्भ करे जब आकाश में नक्षत्र दीखते हों ॥१८॥ फिर सूर्य का दर्शन होने समय तक खड़े हो के गायत्री का जपकरे।सायं काल की संध्या को सूर्य के अस्त से पूर्व ही विधि से आरम्भ करके ॥१९॥ तारा गण दीखने समय तक बैठ के गायत्री का जप करे—फिर गृह्याग्नि के पास जाकर शास्त्रोक्त विधि से ज्ञानवान् द्विज स्वयं होम करै ॥ २० ॥ विचारशील पुरुष पुत्र भृत्य आदि के खान पान के अर्थ चिन्ता करके फिर शिष्य के हित के लिये कुछ वेद पाठ करे ॥२१॥ और ब्राह्मण संसारी कार्य के लिये ईश्वर नाम राजा के यहां जाय । तथा दूर जाकर कुशा, फल, इन्धन समिधा आदि को लाया करे ॥ २२ ॥ फिर शुद्ध एकान्त देश में जाकर मध्याह्न दोपहर का सन्ध्यादि कर्म करे । उसके पाप नाशक विधान को संक्षेप से कहेंगे ॥ २३ ॥ जिस विधि से स्नान करके सब पापों से छूटता है-स्नान के लिये

स्नानार्थं मृदमानीय शुद्धाक्षततिलैःसह ॥२४॥
सुमनाश्चततोगच्छेन्नदींशुद्धजलाधिकाम् ।
नद्यान्तुविद्यमानायां नस्नायादन्यवारिणि ॥२५॥
नस्नायादल्पतोयेषु विद्यमानेबहूदके ।
सरिद्वरंनदीस्नानं प्रतिस्रोतस्थितश्चरेत् ॥२६॥
तडागादिषुतोयेषु स्नायाच्चतदभावतः ।
शुचिंदेशंसमभ्युक्ष्य स्थापयेत्सकलांबरम् ॥२७॥
मृत्तोयेनस्वकंदेहं लिम्पेत्प्रक्षाल्ययत्नतः ।
स्नानादिकंचसंप्राप्य कुर्यादाचमनंबुधः ॥२८॥
सोऽन्तर्जलंप्रविश्याथ वाग्यतोनियमेनहि ।
हरिंसंस्मृत्यमनसामज्जयेच्चोरुमज्जले ॥२९॥
ततस्तीरंसमासाद्यआचम्यापःसमन्त्रतः ।
प्रोक्षयेद्वारुणैर्मन्त्रैः पावमानीभिरेवच ॥३०॥
कुशाग्रकृततोयेन प्रोक्ष्यात्मानंप्रयत्नतः ।

शुद्ध अक्षत और तिलों सहित मट्टी को लाकर ॥ २४ ॥ उदार चित्त होके शुद्ध अधिक, जल वाली नदी पर जावे । नदी के होते अन्य जल में स्नान न करे ॥२५॥ और अधिक जल वाले जलाशय के होते अल्प जल वाले में स्नान न करे। उत्तम नदी में स्रोत (प्रवाह) के सन्मुख खड़ा होकर स्नान करे ॥ २६ ॥ और नदी के अभाव में तालाब आदि के जल में पूर्व वा उत्तराभिमुख खड़ा होके स्नान करे शुद्ध स्थान को जल से छिड़क कर सब वस्त्र रख दे ॥ २७ ॥ पहिले शरीर पर जल छोड़ के सब देह में मुख से लेकर जल में घोर के मट्टी लगावे फिर स्नान करके आचमन करे । २८ ॥ फिर वह पुरुष जल के भीतर घुस के मौन होकर नियम से हरि भगवान् का स्मरण करके जंघा तक जल में गोता लगावे ॥२९॥ फिर किनारे पर आकर मन्त्रों पूर्वक जल का आचमन करके व रुण देवता के मन्त्रों तथा पावमानी सूक्त से शरीर का मार्जन कुशा ले के करे ॥ ३० ॥ कुशा के अग्र भाग के जल से यत्न से देह का मार्जन करके (स्योना

स्योनापृथ्वीतिमृद्गात्रे इदंविष्णुरितिद्विजाः ॥ ३१ ॥
ततोनारायणंदेवं संस्मरेत्प्रतिमज्जनम् ।
निमज्ज्यांतर्जलेसम्यक् क्रियतेचाघमर्षणम् ॥ ३२ ॥
स्नात्वाक्षततिलैस्तद्वद्देवर्षिपितृभिःसह ।
तर्पयित्वाजलंतस्मा न्निष्पीड्यचसमाहितः ॥ ३३ ॥
जलतीरंसमासाद्य तत्रशुक्लेनवाससी ।
परिधायोत्तरीयंच कुर्य्यात्केशान्नधूनयेत् ॥ ३४ ॥
नरक्तमुल्बणंवासो ननीलंचप्रशस्यते ।
मलाक्तंगंधहीनंच वर्जयेदंबरंबुधः ॥ ३५ ॥
ततःप्रक्षालयेत्पादौ मृत्तोयेनविचक्षणः ।
दक्षिणंतुकरंकृत्वा गोकर्णाकृतिवत्पुनः ॥ ३६ ॥
त्रिःपिबेदीक्षितंतोयमास्यंद्विःपरिमार्जयेत् ।
पादौशिरस्ततोऽभ्युक्ष्य त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत् ॥३७॥
अंगुष्ठानामिकाभ्यांच चक्षुषीसमुपस्पृशेत् ।
तथैवपंचभिर्मूर्ध्नि स्पृशेदेवंसमाहितः ॥ ३८ ॥

पृथिवी०) इस मंत्र से अथवा (इदंविष्णु०) इस मंत्र से देह में मट्टी लगावे ॥३१॥ हर एक गोता लगाने में नारायण देव का स्मरण करै और जल के भीतर गोता लगाये हुए अघमर्षण मंत्र (ऋतंचसत्यंचा०) को जपै ॥ ३२ ॥ स्नान करके और वस्त्र को निचोड़ कर ॥३३॥ जल के किनारे पर आके सफेद वस्त्र (धोती) को पहन कर अंगोछा कन्धे पर डाल के केशों को न कंपावे ॥ ३४ ॥ अधिक लाल, नील वस्त्र श्रेष्ठ नहीं कहा है तथा मैले और गंधहीन वस्त्र को वर्जदे ३५ फिर विचारशील पुरुष मट्टी और जल से पग धोके दहिने हाथ को गौके कान के समान करके ॥३६॥ देखे हुए जल में तीन वार आचमन करे फिर दोवार मुख का मार्जन करे फिर पग और शिर पर जल का मार्जन कर बीच की तीन अंगुलियों से मुख का स्पर्श करे ॥ ३७ ॥ अंगूठा और अनामिका से दोनों नेत्रों का स्पर्श करे इसी प्रकार सावधान होकर पांचों अंगुलियों से मस्तक का स्पर्श करे ॥ ३८ ॥

अनेनविधिनाचम्य ब्राह्मणःशुद्धमानसः ।
कुर्वीतदर्भपाणिस्तूदङ्मुखःप्राङ्मुखोऽपिवा ॥३९॥
प्राणायामत्रयंधीमान्यथान्यायमतंद्रितः ।
जपयज्ञंततःकुर्याद् गायत्रींवेदमातरम् ॥ ४० ॥
त्रिविधोजपयज्ञःस्यात्तस्यतत्त्वंनिबोधत ।
वाचिकश्चउपांशुश्च मानसश्चत्रिधाकृतिः ॥ ४१ ॥
त्रयाणामपियज्ञानां श्रेष्ठःस्यादुत्तरोत्तरः ।
यदुच्चनीचोच्चरितैः शब्दैःस्पष्टपदाक्षरैः ॥४२॥
मंत्रमुच्चारयन्वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः ।
शनैरुच्चारयन्मंत्रं किंचिदोष्ठौप्रचालयेत् ॥४३॥
किंचिच्छ्रवणयोग्यःस्यात् सउपांशुर्जपःस्मृतः ।
धियापदाक्षरश्रेण्या अवर्णमपदाक्षरम् ॥४४॥
शब्दार्थचिन्तनाभ्यांतु तदुक्तंमानसंस्मृतम् ।

शुद्ध मन वाला ब्राह्मण इस विधि से आचमन करके कुशा हाथ में लेकर उत्तर वा पूर्व को मुख करके ॥३९॥ आलस्य को छोड़ के विधि पूर्वक तीन प्राणायाम करे फिर वेद माता गायत्री का जपयज्ञ करै ॥४०॥ तीन प्रकार का जपयज्ञ होता है उस के स्वरूप को तुम सुनो वाणी से साफ २ बोले उपांशु धीमी वाणी से बोले और मन से ये तीन उस के भेद हैं ॥४१॥ इन तीनों यज्ञों में पिछला २ श्रेष्ठ है। जो उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों सहित स्पष्ट पद और अक्षरों सहित ॥४२॥ वाणी से मंत्र का स्पष्ट उच्चारण करते हुए जप किया जाता है वह वाचिक जप यज्ञ कहाता है और कुछ २ होठों को चला कर अति समीप के मनुष्य को सुनने योग्य धीरे २ मंत्र का उच्चारण कर के ॥४३॥ जो जप किया जाय उसे उपांशु जप कहते हैं——और जिस में वर्ण (पदों के अक्षर) प्रतीत न हों केवल बुद्धि से ही पदों के अक्षरों के सिलसिले से ॥४४॥ शब्द अर्थ का विचार जिस में हो उस जप यज्ञ को मानस कहते हैं। जप यज्ञ से स्तुति किया

जपेनदेवतानित्यं स्तूयमानाप्रसीदति ॥४५॥
प्रसन्नेविपुलान्गोत्रान्प्राप्नुवन्तिमनीषिणः ।
राक्षसाःश्चपिशाचाश्च महासर्पाश्चभीषणाः ॥४६॥
जपितान्नोपसर्पन्ति दूरादेवप्रयांतिते ।
छंदऋष्यादिविज्ञाय जपेन्मन्त्रमतंद्रितः ॥४७॥
जपेदहरहर्ज्ञात्वा गायत्रींमनसाद्विजः ।
सहस्रपरमांदेवीं शतमध्यांदशावराम् ॥४८ ॥
गायत्रींयोजपेन्नित्यं सनपापेनलिप्यते ॥
अथपुष्पांजलिंकृत्वा भानवेचोर्ध्वबाहुकः ॥४९॥
उदुत्यंचजपेत्सूक्तं तच्चक्षुरितिचापरम्
प्रदक्षिणमुपावृत्य नमस्कुर्यादिवाकरम् ॥५०॥
ततस्तीर्थेनदेवादीनद्भिः संतर्पयेद् द्विजः॥
स्नानवस्त्रंतुनिष्पीड्य पुनराचमनंचरेत् ॥५१॥
तद्वद्भक्तजनस्येह स्नानंदानंप्रकीर्तितम् ॥

हुआ देवता प्रसन्न होता है ॥ ४५ ॥ देवता के प्रसन्न होने पर बुद्धिमान् मनुष्य बहुत सी वंश की वृद्धि को प्राप्त होते हैं। राक्षस, पिशाच, और भयानक बड़े२ सर्प ॥ ४६ ॥ जप करने से समीप नहीं आते किन्तु वे दूर से ही भाग जाते हैं। मन्त्रों के छंद और ऋषि आदि को जान कर आलस्य को त्याग के मंत्र को जपै ॥४७॥ ब्राह्मण छंद आदि को जानकर प्रति दिन मन से गायत्री को जपै १००० हजार गायत्रीका जप श्रेष्ठ है १०० का जपमध्यम और दश का जप अधम है ॥४८॥ जो नित्य गायत्री को जपता है वह पापसे लिप्त नहीं होता। फिर ऊपर को भुजा उठाकर अर्थात् पुष्पों सहित अर्घ्य देके सूर्य की ओर हाथ जोड़ के ॥४९॥ (उदुत्यं०) और (तच्चक्षु०) इन सूक्तों को जपे फिर प्रदक्षिणा करके सूर्य को नमस्कार करै ॥ ५० ॥ फिर ब्राह्मण तीर्थ के जल से देव आदि का तर्पण करे। पीछे स्नान के वस्त्र (धोती) को निचोड़ कर आचमन करै ॥ ५१ ॥ इसी प्रकार यहां भक्त जन का स्नान और दान कहा।

दर्भासीनोदर्भपाणि-र्ब्रह्मयज्ञविधानतः ॥ ५२॥
प्राङ्मुखोब्रह्मयज्ञं तु कुर्य्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥
ततोर्घ्यंभानवेदद्यात्तिलपुष्पाक्षतान्वितम् ॥ ५३ ॥
उत्थायमूर्द्धपर्य्यंतं हंसःशुचिषदित्यृचा ।
ततोदेवंनमस्कृत्य गृहंगच्छेत्ततःपुनः ॥ ५४ ॥
विधिनापुरुषसूक्तस्य गत्वाविष्णुंसमर्च्चयेत् ।
वैश्वदेवंततःकुर्याद्बलिकर्मविधानतः ॥ ५५ ॥
गोदोहमात्रमाकांक्षेदतिथिंप्रतिवैगृही ।
अदृष्टपूर्वमज्ञातमतिथिंप्राप्तमर्चयेत् ॥ ५६ ॥
स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेनचांबुना ।
स्वागतेनाग्नयस्तुष्टा भवन्तिगृहमेधिनः ॥ ५७ ॥
आसनेनतुदत्तेन प्रीतोभवतिदेवराट् ।
पादशौचेनपितरः प्रीतिमायान्तिदुर्लभाम् ॥ ५८ ॥
अन्नदानेनयुक्तेन तृप्यतेहिप्रजापतिः ।

कुशाओं पर बैठ कर और कुशाओं को हाथ में लेकर ॥५२॥ और पूर्वाभिमुख हो के श्रद्धा से ब्रह्म यज्ञ करे फिर तिल पुष्प तथा अक्षतों से युक्त अर्घ सूर्यनारायण को देवे॥५३॥अंजुली में भरे अर्घ जल को मस्तक पर्यन्त उठाकर(हंसःशुचिषत्०-)इत्यादि ऋचा से सूर्य के सन्मुख छोड़े तदन्तर सूर्यदेव को नमस्कार करके घरको जावे ॥५४॥ घर जाकर विधि से पुरुष सूक्त (सहस्रशीर्षा०) से विष्णु का पूजन करे पश्चात गृह्यसूत्रोक्त विधान से देवयज्ञादि चारो महायज्ञ करे॥५५॥ जितने समय में गौ दुही जाय उतने समय तक गृहस्थी अतिथि की प्रतीक्षा करे। जिस को प्रथम नहीं देखा हो ऐसे अज्ञात (बेजाने) आये अतिथि को पूजे ॥ ५६ ॥ स्वागत करना-आसन देना-देख कर उठना-जल देना-इस प्रकार अतिथि का आदर करने से गृहस्थी के आवसथ्य गार्हपत्यादि अग्नि प्रसन्न होते हैं ॥ ५७ ॥ आसन देने से इन्द्रदेव प्रसन्न होते चरणों के धोने से दुर्लभ प्रीति को पितर प्राप्त होते ॥ ५८ ॥ और श्रेष्ठ अन्न के देने से ब्रह्मा प्र-

तस्मादतिथयेकार्य्यं पूजनंगृहमेधिना ॥ ५९ ॥
भक्त्याचशक्तितोनित्यं पूजयेद्विष्णुमन्वहम् ।
भिक्षांचभिक्षवेदद्यात्परिव्राड्ब्रह्मचारिणे ॥ ६० ॥
अकल्पितान्नादुद्धृत्य सव्यंजनसमन्विताम् ।
अकृतेवैश्वदेवेपि भिक्षौचगृहमागते ॥ ६१ ॥
उद्धृत्यवैश्वदेवार्थं भिक्षांदत्वाविसर्जयेत् ।
वैश्वदेवाकृतान्दोषांश्छक्तोभिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥ ६२ ॥
नहिभिक्षुकृतान्दोषान्वैश्वदेवोव्यपोहति ।
तस्मात्प्राप्तायतये भिक्षांदद्यात्समाहितः ॥ ६३ ॥
विष्णोरेवयतिश्छाया इतिनिश्चित्यभावयेत् ।
सुवासिनींकुमारींच भोजयित्वानरानपि ॥ ६४ ॥
बालवृद्धांस्ततःशेषं स्वयंभुञ्जीतवागृही ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखोवापि मौनीचमितभाषणः ॥६५॥

वक होते हैं इस से सद्गृहस्थों को अतिथि का पूजन अवश्य करना चाहिये ॥ ५९ ॥ भक्ति और अपनी शक्ति से नित्य विष्णु भगवान् का पूजन करे अनन्तर संन्यासी ब्रह्मचारी भिक्षु को भिक्षा देवे ॥ ६० ॥ वैश्वदेव के लिये अन्न निकालने से पहिले ही यदि कोई अभ्यागत संन्यासी घर पर आजाय तो वैश्वदेव किये बिना भी वैश्वदेव के लिये पृथक् पात्र में अन्न निकाल कर अतिथि को शाक भाजी सहित भिक्षा देके विसर्जन करे क्यों कि वैश्वदेव न करने से जो दोष लगता उस को अतिथि दूर करने को समर्थ है ॥ ६१ । ६२ ॥ परन्तु अतिथि को भिक्षा न देने से जो अपराध गृहस्थ को लगता है उसे वैश्वदेव दूर नहीं कर सकता है । इस से प्राप्त हुये अतिथि को सावधानी से भिक्षा देवे ॥ ६३ ॥ विष्णु का रूप ही संन्यासी है निश्चय से ऐसी भावना करे। सुवासिन (सुहागिन) और कुमारी और अन्य आये पुरुष आदि को भोजन कराकर ॥ ६४ ॥ तथा घर के बालक वृद्धों को जिमा कर फिर बाकी बचे अन्न को पूर्व वा उत्तर को मुख कर मौन हो वा परिमित बोलता हुआ गृहस्थ पुरुष इस प्रकार भोजन करै कि ॥ ६५ ॥

अन्नमादौनमस्कृत्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
एवंप्राणाहुतिंकुर्यान्मन्त्रेणचपृथक्पृथक् ॥६६॥
ततःस्वादुकरान्नंच भुञ्जीतसुसमाहितः ।
आचम्यदेवतामिष्टां संस्मरन्तूदरंस्पृशेत् ॥६७॥
इतिहासपुराणाभ्यां किंचित्कालंनयेद्बुधः ।
ततःसंध्यामुपासीत बहिर्गत्वाविधानतः ॥६८॥
कृतहोमस्तुभुञ्जीत रात्रौचातिथिभोजनम् ।
सायंप्रातर्द्विजातीनामशनंश्रुतिचोदितम् ॥६९॥
नांतराभोजनंकुर्यादग्निहोत्रसमोविधि ।
शिष्यानध्यापयेच्चापि अनध्यायेविसर्जयेत् ॥७०॥
स्मृत्युक्तानखिलांश्चापि पुराणोक्तानपिद्विजः ।
महानवम्यांद्वादश्यां भरण्यामपिपर्वसु ॥७१॥

प्रसन्न चित्त से प्रथम अन्न को नमस्कार करके प्राणाहुति (प्राणायस्वाहा) इत्यादि मन्त्र पढ़ २ छोटे २ पांच ग्रास पृथक् २ मुख में देवै ॥ ६६ ॥ फिर भले प्रकार सावधान हुआ अन्न का स्वाद ले २ कर भोजन करै पश्चात् आचमन करके इष्ट देवता का स्मरण करता हुआ उदर का स्पर्श करै ॥ ६७ ॥ इस के अनन्तर कुछेक समय इतिहास (भारतादि) और पुराणों के कहने सुनने में वितावे फिर ग्राम से बाहर जाकर विधि से संध्य वंदन करै ॥ ६८ ॥ सन्ध्या का होम कर कोई अभ्यागत मिले तो उसे भोजन कराके रात्रि को स्वयं भोजन करै साय प्रातःकाल भोजन करना द्विजातियों को वेद में कहा है ॥६९॥ बीच में (दिन में दुबारा' भोजन न करे क्यों कि अग्निहोत्र के पश्चात् प्राणाग्निहोत्र भोजन का विधान भी दो ही वार है । शिष्यों को वेदादि पढ़ावे और अनध्याय में पढ़ाने की छुट्टी कर देवे ॥ ७० ॥ जो सब अनध्याय धर्मशास्त्र और पुराणों में कहे हैं कि महानवमी (कार्त्तिक शुदी) द्वादशी, भरणी नक्षत्र, पर्व, (अमावस पौर्णमासी आदि) ॥ ७१ ॥

तथाक्षयतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्द्विजः ।
माघमासेतुसप्तम्यां रथाख्यायांतुवर्जयेत् ॥७२॥
अध्यापनंसमभ्यस्यन्स्नानकालेचवर्जयेत् ।
नीयमानंशवंदृष्ट्वा महीस्थंवाद्विजोत्तमाः ॥७३॥
नपठेद्रुदितंश्रुत्वा संध्यायांतुद्विजोत्तमाः ।
दानानिचप्रदेयानि गृहस्थेनद्विजोत्तमाः ॥७४॥
हिरण्यदानंगोदानं पृथिवीदानमेवच ।
एवंधर्मोगृहस्थस्य सारभूतउदाहृतः ॥ ७५ ॥
यएवंश्रद्धयाकुर्यात्सयातिब्रह्मणःपदम् ।
ज्ञानोत्कर्षश्चतस्यस्यान्नारसिंहप्रसादतः ॥ ७६ ॥
तस्मान्मुक्तिमवाप्नोति ब्राह्मणोद्विजसत्तमाः ।
एवंहिविप्राःकथितोमयावः समासतःशाश्वतधर्मराशिः॥७७॥
गृहीगृहस्थस्यसतोहिधर्म्मंकुर्वन्प्रयत्नाद्धरिमेतियुक्तम् ॥७८॥
इति हारीते धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अक्षय तृतीया (वैशाख सुदी ३) इन में भी ब्राह्मण शिष्यों को न पढ़ावे माघ महीने की रथ सप्तमी को भी वर्जदे ॥ ७२ ॥ उबटना करने के और स्नान के समय न पढ़ावे हे ऋषियो ! लेजाते हुए वा पृथ्वी पर पड़े मुर्दों को देख कर ॥ ७३ ॥ अथवा रोने को सुन कर और संध्या के समय वेद वेदाङ्गों को न पढ़े और हे ब्राह्मणो निम्न लिखित दान गृहस्थ को देने चाहिये कि ॥७४॥ सुवर्ण गौ, पृथ्वी ये उत्तम दान हैं।यह गृहस्थ का सारभूत धर्म कहाहै ॥ ७५ ॥ जो श्रद्धा से इस धर्मको करता है वह ब्रह्मपद को प्राप्त होताहै और नरसिंह भगवान् की कृपा से उसको ज्ञानकी अधिकता होतीहै ॥७६॥ हेऋषि ब्राह्मणो ! इस ज्ञानसे ब्राह्मण मुक्तिको प्राप्त होता है हेब्राह्मणो! इस प्रकार हमने सनातन धर्मका समूह तुमसे कहा ॥७७॥ गृहस्थी इस गृहस्थ के धर्म को यत्न से करता हुआ विष्णु को अवश्य प्राप्त होता है ॥७८ ॥

इतिहारीते धर्मशास्त्रे ४ अध्याय भाषा समाप्ता ॥

अतःपरंप्रवक्ष्यामि वानप्रस्थस्यसत्तमाः ।
धर्माश्रमंमहाभागाः कथ्यमानंनिबोधत ॥ १ ॥
गृहस्थःपुत्रपौत्रादीन्दृष्ट्वापलितमात्मनः ।
भार्यांपुत्रेषुनिःक्षिप्य सहवाप्रविशेद्वनम् ॥ २ ॥
नखरोमाणिचतथा सितगात्रत्वगादिच ।
धारयन्जुहुयादग्निं वनस्थोविधिमाश्रितः ॥ ३ ॥
धान्यैश्चवनसंभूतैर्नीवाराद्यैरनिन्दितैः ।
शाकमूलफलैर्वापि कुर्यान्नित्यंप्रयत्नतः ॥४॥
त्रिकालस्नानयुक्तस्तु कुर्यात्तीव्रंतपस्तदा ।
पक्षांतेवासमश्नीयान्मासान्तेवास्वपक्वभुक् ॥ ५ ॥
तथाचतुर्थकालेतु भुञ्जीयादष्टमेऽथवा ।
षष्ठेचकालेऽप्यथवा वायुभक्षोऽथवाभवेत् ॥६॥
घर्मेपंचाग्निमध्यस्थस्तथावर्षेनिराश्रयः ।
हेमन्तेचजलेस्थित्वा नयेत्कालंतपश्चरन् ॥७॥

इससे आगे वानप्रस्थ के धर्म कहते हैं-हे श्रेष्ठो हे महाभाग्यशालीलोगो हमारे कहे वानप्रस्थ आश्रम के धर्म को तुम सुनो ॥ १ ॥ गृहस्थी पुरुष पुत्र पौत्र आदिको और अपनी वृद्ध अवस्था को देखकर स्त्री को पुत्रोंके आधीन करके वा संग लेकर वन में चला जावे ॥ २ ॥ नख केश और सफेद गात्र वाले वृक्ष की त्वचा का वस्त्र धारण करता हुआ वन में ठहर कर शास्त्रोक्त विधि से अग्निहोत्र करै ॥३॥ वन में पैदा हुए शुद्ध नीवारादि अन्नसे वा शाक मूल फलोंसे यत्न के साथ अपना निर्वाह और सायंप्रातः होम करै ॥४॥ उस समय वनमें सायंप्रातः मध्याह्न में त्रिकाल स्नान करता हुआ तीव्र तप करै । पक्षके अंतमें वा महिने के अन्तमें एकदिन स्वयम्-लाया भोजन करै ॥५॥ चौथे काल (प्रहर) में अथवा आठवें प्रहर में अथवा छठे प्रहर में प्रतिदिन एकवार भोजन करै अथवा अन्न जल छोड़के केवल वायु का ही भक्षण करै ॥ ६ ॥ घाम ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि के मध्य में वर्षा ऋतु में निराश्रय (खुलीभूमि) में और शीतकालमें जलके मध्य में बैठकर तप करता हुआ कालको बितावे ॥ ७ ॥

एवंचकुर्वतायेन कृतबुद्धिर्यथाक्रमम्
अग्निंस्वात्मनिकृत्वातुप्रव्रजेदुत्तरांदिशम्॥८॥
आदेहपातंवनगो मौनमास्थायतापसः॥
स्मरन्नतींद्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोकेमहीयते ॥९॥
तपोहियःसेवतिवन्यवासःसमाधियुक्तःप्रयतांतरात्मा।
विमुक्तपापोविमलःप्रशांतः सयातिदिव्यंपुरुषंपुराणम्

इति हारीते धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः॥५॥

अतःपरंप्रवक्ष्यामि चतुर्थाश्रममुत्तमम्।
श्रद्धयातमनुष्ठाय तष्ठन्मुच्येतबन्धनात्॥१॥
एवंवनाश्रमेतिष्ठन्यातयंश्चैवकिल्विषम्॥
चतुर्थमाश्रमंगच्छेत्संन्यासविधिनाद्विजः॥२॥
दत्वापितृभ्योदेवेभ्यो मानुषेभ्यश्चयत्नतः।
दत्वाश्राद्धंपितृभ्यश्च मानुषेभ्यस्तथात्मनः॥३॥

क्रम २ से इस प्रकार करते हुए जिसने बुद्धि को स्थिर किया है वह तपस्वी अग्नि को अपने आत्मा में मन्त्रपूर्वक समारोप करके संन्यासी होकर ॥ ८ ॥ मौन धारण किये देह के पतनपर्यंत वनमें जिसको कोई इन्द्रियों से नहीं देख जान सकता ऐसे ब्रह्म को स्मरण करता हुआ उत्तर दिशा को चला जावे इस प्रकार शरीर त्याग देने से ब्रह्मलोक में आदर पाता है ॥९॥ जो वानप्रस्थ मन को वश में कर समाधि लगाके तप करता है—पापों से रहित, निर्मल और शांति रूप वह वानप्रस्थ सनातन दिव्य पुरुष को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे ५ अध्याय भाषासमाप्त ॥

अब आगे उत्तम चौथे आश्रम (संन्यास) को कहते हैं उस संन्यास के धर्म को श्रद्धा से सेवन करके टिकता हुआ पुरुष बन्धन से छूटजाता है ॥१॥ इस प्रकार वानप्रस्थ आश्रम में ठहरता और पापको दूर करता हुआ ब्राह्मण संन्यास की विधि से चौथे आश्रम में जाय संन्यासी हो जावे ॥२॥ पितर देवता मनुष्य इन के निमित्त दान दे के और दिव्य पितर मनुष्य पितर और अपने लिये जीवित ही श्राद्ध करके ॥ ३ ॥

इष्टिंवैश्वानरींकृत्वा प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपिवा ।
अग्निंस्वात्मनिसंरोप्य मन्त्रवित्प्रव्रजेत्पुनः ॥४॥
ततःप्रभृतिपुत्रादौ स्नेहालापादिवर्जयेत् ।
बन्धूनामभयंदद्यात्सर्वभूताभयंतथा ॥ ५ ॥
त्रिदंडंवैणवंसम्यक् संततंसमपर्व्वकम् ॥
वेष्टितंकृष्णगोवाल रज्जुमच्चतुरंगुलम् ॥ ६ ॥
शौचार्थमासनार्थंच मुनिभिःसमुदाहृतम् ।
कौपीनाच्छादनंवासः कंथांशीतनिवारिणीम् ॥७॥
पादुकेचापिगृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्यसंग्रहम् ।
एतानितस्यलिंगानि यतेःप्रोक्तानिसर्वदा ॥ ७ ॥
संगृह्यकृतसंन्यासो गत्वातीर्थमनुत्तमम् ।
स्नात्वाचम्यचविधिवद्वस्त्रपूतेनवारिणा ॥ ८ ॥
तर्पयित्वातुदेवांश्च मंत्रवत्भास्करंनमेत् ।

श्रौतविधि के अनुसार वैश्वानरी इष्टि करके पूर्व वा उत्तर को मुख कर मन्त्र पूर्वक गार्हपत्यादि अग्नियों को अपने शरीर में समारोप कर के [अग्नियों के समारोप की रीति यह है कि अग्निकुण्ड पर पेट करके (अयंते योनिर्ऋत्वियो०) मन्त्र पढ़ के कुण्डस्थ अग्नि अपने में आगये मान लेवे] संन्यासी होजावे ॥ ४ ॥ तब से लेकर पुत्रादि में प्रीति और वार्त्तालापादि व्यवहार को त्याग देवे और अपने भाई बंधों और सब प्राणियों को अभय दान देवे ॥ ५ ॥ ऐसा टांस का त्रिदण्ड ग्रहण करे जिस में चार अंगुल कपड़ा और काली गौ के बालों की रस्सी लगी हो जिस की ग्रंथि सम हों ॥६॥ शुद्धि के अर्थ और बिछाने के लिये मुनियों के कहे हुए कौपीन शीत को दूर करने वाली कंथा (गुदड़ी) और पादुका (खड़ाऊं) इन को ग्रहण करै इस से अधिक का संग्रह न करे। ये संन्यासी के सदैव काल के चिन्ह कहे हैं ॥ ७ ॥ संन्यासी हुआ इन कौपीनादि को ग्रहण कर उत्तम तीर्थ में जाके वस्त्र से छाने जल से विधिपूर्वक स्नान और आचमन करके ॥ ८ ॥ मन्त्रों से देवताओं का तर्पण करके परमात्मरूप सूर्यदेव को नम-

आत्मानंप्राङ्मुखोमौनी प्राणायामत्रयंचरेत् ॥ ९ ॥
गायत्रींचयथाशक्ति जप्त्वाध्यायेत्परपदम् ।
स्थित्यर्थमात्मनोनित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् ॥ १० ॥
सायंकालेतुविप्राणां गृहाण्यभ्यवपद्यतु ।
सम्यक्याचेच्चकवलं दक्षिणेनकरेणवै ॥ ११ ॥
पात्रंवामकरेस्थाप्य दक्षिणेनतुशोधयेत् ।
यावतान्नेनतृप्तिःस्या-त्तावद्भैक्षंसमाचरेत् ॥ १२ ॥
ततोनिवृत्यतत्पात्रं संस्थाप्यान्यत्रसंयमी ।
चतुर्भिरंगुलैश्छाद्य ग्रासमात्रंसमाहितः ॥ १३ ॥
सर्वव्यंजनसंयुक्तं पृथक्पात्रेनियोजयेत् ।
सूर्यादिभूतदेवेभ्यो दत्त्वासंप्रोक्ष्यवारिणा ॥ १४ ॥
भुञ्जीतपात्रपुटके पात्रेवावाग्यतोयतिः ।
वटकाश्वत्थपर्णेषु कुंभीतैन्दुकपात्रके ॥ १५ ॥
कोविदारकदंवेषु नभुञ्जीयात्कदाचन ।

स्कार करे । पूर्वाभिमुख और मौन होकर तीन प्राणायाम करे ॥ ९ ॥ यथाशक्ति गायत्री जप कर परंपद (ब्रह्म) का ध्यान करें देह की स्थिति के लिये नित्य भिक्षा मांगे ॥ १० ॥ सायंकाल के समय ब्राह्मणों के घरों में जाकर दहिने हाथ से भले प्रकार कवल(ग्रास) मांगे ॥११॥ बायें हाथमें पात्र को रख कर उसे दहिने हाथ से पोंछे फिर उसमें मांगी हुई भिक्षा रोटी आदि धरे जितने अन्न से तृप्ति हो उतनी ही भिक्षा नित्य मांगे कौवे कुत्ते आदिके लिये अधिक न मांगे ॥१२॥ फिर संयमी पुरुष ग्राम से लौट कर उस पात्र को दूसरी जगह रखकर और सावधानी से सब व्यंजनों सहित एक ग्रास अन्न लेके सूर्यादि भूत देवताओं के लिये किसी दोना पत्ता में पृथक् धर के चार अंगुलों से ढांप कर देवता को समर्पण करे फिर शेष अन्न को जल से छिड़क के ॥ १३ ॥ १४ ॥ पत्तों के दोने में अथवा पात्र में मौन होकर संन्यासी भोजन करै बड़, पीपल, कमण्डल, तेंदु ॥१५॥ कचनार कदंब—इनके पत्तों में वा इन से बने दोना पत्तलों

मलाक्ताःसर्वउच्यंते यतयःकांस्यभोजिनः ॥ १६ ॥
कांस्यभांडेषुयत्पाको गृहस्थस्यतथैवच ।
कांस्येभोजयतःसर्वं किल्विषंप्राप्नुयात्तयोः ॥ १७ ॥
भुक्त्वापात्रेयतिर्नित्यं क्षालयेन्मंत्रपूर्वकम् ।
नदुष्यतेचतत्पात्रं यज्ञेषुचमसाइव ॥ १८ ॥
अथाचम्यनिदिध्यास्य उपतिष्ठतभास्करम् ।
जपध्यानेतिहासैश्च दिनशेषंनयेद्बुधः ॥ १९ ॥
कृतसंध्यस्ततोरात्रीं नयेद्देवगृहादिषु ।
हृत्पुण्डरीकनिलये ध्यायेदात्मानमव्ययम् ॥ २० ॥
यदिधर्मरतिःशांतः सर्वभूतसमोवशी ।
प्राप्नोतिपरमंस्थानं यत्प्राप्यननिवर्तते ॥ २१ ॥
त्रिदंडभृद्योहिपृथक्समाचरेच्छनैःशनैर्यस्तुवहिर्मुखाक्षः।

में कभी भी भोजन न करै–और कांसे के पात्र में भोजन करने वाले संन्यासी मलिन कहे हैं ॥१६॥ कांसे के पात्रमें पकाने वाले और जिमाने वाले गृहस्थी को जो पाप है उन दोनों के पाप को कांसे के पात्रमें भोजन करने वाला संन्यासी प्राप्त होता है ॥१७॥ संन्यासी जिस पात्र में भोजन करे उस को मंत्रों से धो डाले। यज्ञों में सोम पीने के चमसों के तुल्य संन्यासी का वह पात्र दूषित (अशुद्ध) नहीं होता ॥ १८ ॥ इस के अनन्तर आचमन और ध्यान कर के सूर्य देव की स्तुति करें और शेष दिन को जप ध्यान तथा उत्तम इतिहासों के कहने सुनने में बितावे॥ ॥१९ ॥ फिर संध्या करके इसी प्रकार घर आदि में रात्रि को बितावे–अपने कमल रूपी हृदय में अविनाशी आत्मा का ध्यान करै ॥ २० ॥ जो संन्यासी धर्म में तत्पर, शांत, सब भूतों में सम, वशी (इन्द्रिय जिस के वश में हों ऐसा) हो तो वह उस उत्तम स्थान को प्राप्त होता है जहां आ-कर फिर नहीं लौटते ॥ २१ ॥ जो त्रिदण्डी हो सब से पृथक् विचरे और धीरे २ जिस के इन्द्रिय संसार के विषयों से विरक्त हुए हों वह संसार के सब

संमुच्यसंसारसमस्तबंधनात्सयातिविष्णोरमृतात्मनः पद

इति हारीतेधर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

वर्णानामाश्रमाणांच कथितंधर्मलक्षणम् ।
येनस्वर्गापवर्गौच प्राप्नुवंतिद्विजातयः ॥ १ ॥
योगशास्त्रंप्रवक्षामि संक्षेपात्सारमुत्तमम्
यस्यचश्रवणाद्यान्ति मोक्षंचैवमुमुक्षवः ॥ २ ॥
योगाभ्यासबलेनैव नश्येयुःपातकानितु ।
तस्माद्योगपरोभूत्वा ध्यायेन्नित्यंक्रियापरः ॥ ३ ॥
प्राणायामेनवचनंप्रत्याहारेणचेन्द्रियम् ।
धारणाभिर्वशेकृत्वा पूर्वंदुर्धर्षणंमनः ॥ ४ ॥
एकाकारमनामंदबुधैरूपमलाचयम् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरंध्यायेज्जगदाधारमुच्यते ॥ ५ ॥
आत्मनोबहिरन्तस्थं शुद्धचामीकरप्रभम् ।
रहस्येकान्तमासीनो ध्यायेदामरणान्तिकम् ॥६॥

बंधनों को तोड़ कर अमृत रूपी विष्णु के पद को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे ६ अध्याय भाषा समाप्त ॥

वर्ण और आश्रम के धर्मों का स्वरूप कहा द्विज लोग जिस धर्म से स्वर्ग या मोक्ष को पाते हैं ॥ १ ॥ अब संक्षेप से योग शास्त्र का उत्तम सार कहते हैं कि जिस के सुनने से मोक्ष चाहने वाले मुक्त होते हैं ॥ २ ॥ योगाभ्यास के बल से ही पाप नष्ट होते हैं इस से योग में तत्पर होकर उत्तम आचरण से नित्य ध्यान करे ॥ ३ ॥ प्रथम प्राणायाम से वाणी को प्रत्याहार (विषयों से इन्द्रियों को हटाने) द्वारा उपस्थेन्द्रिय को धारणा (किसी ख़ास वस्तु में मन को बांधने) से वश करने अयोग्य मन को वश में करके ॥ ४ ॥ एकाग्र चित्त होकर देवताओं को भी अगम्य (प्राप्ति के अयोग्य) और सूक्ष्म जो जगत् का आश्रय भगवान् तिस का ध्यान करै ॥ ५ ॥ जो ब्रह्म अपने स्वरूप से बाहर और भीतर स्थित है और शुद्ध सोने के समान जिस की कांति है ऐसे ब्रह्म का मरण पर्यन्त एकान्त में एकाग्र बैठ कर ध्यान करें ॥ ६ ॥

यत्सर्वप्राणिहृदयं सर्वेषांचहृदिस्थितम् ।
यच्चसर्वजनैर्ज्ञेयं सोऽहमस्मीतिचिंतयेत् ॥ ७ ॥
आत्मलाभसुखंयाव-त्तपोध्यानमुदीरितम् ।
श्रुतिस्मृत्यादिकंधर्मं तद्विरुद्धंनचाचरेत् ॥८॥
यथारथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वोरथिहीनकः ।
एवंतपश्चविद्याच संयुतेभेषजंभवेत् ॥ ९ ॥
यथान्नंमधुसंयुक्तं मधुवान्नेनसंयुतम् ।
उभाभ्यामपिपक्षाभ्यां यथाखेपक्षिणांगतिः ॥ १० ॥
तथैवज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यतेब्रह्मशाश्वतम् ।
विद्यातपोभ्यांसंपन्नो ब्राह्मणोयोगतत्परः ॥ ११ ॥
देहद्वयंविहायाशु मुक्तोभवतिबंधनात् ।
नतथाक्षीणदेहस्य विनाशोविद्यते क्वचित् ॥ १२ ॥
मयातुकथितःसर्वो वर्णाश्रमविभागशः ।

जो सब प्राणियों का हृदय है और जो सब के हृदय में स्थित है और जो सब जनों के जानने योग्य है वही मैं हूं ऐसा चिंतन (स्मरण) करे ॥ ७ ॥ जब तक आत्मप्राप्ति का सुख न हो तब तक ध्यान करे यह शास्त्रकारों ने कहा है । आत्मलाभ का अविरोधी जो श्रुति और स्मृति का धर्म उस को करे किन्तु ग्रहस्थादि का धर्म न करे ॥ ८॥ जैसे घोड़े के विना रथ और सारथि के विना घोड़ा नहीं चल सकते और दोनों परस्पर सहायक हैं—इसी प्रकार तप नाम कर्मकाण्ड विद्या (ज्ञान) दोनों मिलकर संसार रोग की औषध हैं ॥ ९॥ जैसे मीठे से मिला अन्न तथा मीठा और जैसे दोनों ही पंखों से आकाश में पक्षियों की गति (उड़ना) होती है ॥ १० ॥ तैसे ही ज्ञान और तप से युक्त और योग में तत्पर ब्राह्मण ॥ ११ ॥ दोनों (स्थूल—सूक्ष्म) देहों को शीघ्र छोड़कर बन्धनों से छूट जाता है । इस प्रकार जिस का देह नष्ट होगया हो उस का कभी भी नाश (कुगति) नहीं होता ॥ १२ ॥ हे ऋषि मुनियो ! हमने वर्ण और आश्रम के भेद और संक्षेप

संक्षेपेणद्विजश्रेष्ठा धर्मस्तेषांसनातनः ॥ १३ ॥
श्रुत्वैवंमुनयोधर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ।
प्रणम्यतमृषिं जग्मुर्मुदिताःस्वंस्वमाश्रमम् ॥ १४ ॥
धर्मशास्त्रमिदंसर्वं हारीतमुखनिःसृतम् ।
अधीत्यकुरुतेधर्मं सयातिपरमांगतिम् ॥ १५ ॥
ब्राह्मणस्यतुयत्कर्म कथितंबाहुजस्यच ।
ऊरुजस्यापियत्कर्म कथितंपादजस्यच ॥ १६ ॥
अन्यथावर्तमानस्तु सद्यःपततिजातितः ।
योयस्याभिहितोधर्मः सतुतस्यतथैवच ॥ १७ ॥
तस्मात्स्वधर्मंकुर्वीत द्विजोनित्यमनापदि ।
राजेन्द्रवर्णाश्चत्वारश्चत्वाश्चापिचाश्रमाः ॥१८॥
स्वधर्मंयेनुतिष्ठंति तेयांतिपरमांगतिम् ।
स्वधर्मेणयथानृणां नारसिंहःप्रसीदति ॥१९॥

से उन का सनातन सब धर्म तुम से कहा ॥ १३ ॥ स्वर्ग और मोक्षफलदाता धर्म को इस प्रकार सुन कर उन हारीत मुनि को नमस्कार करके प्रसन्न हुए सब मुनि अपने २ आश्रम को चलेगये ॥ १४ ॥ हारीत मुनि के मुख से निकले हुए सब धर्मशास्त्र को पढ़कर जो धर्म करता है वह परम गति (मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ ब्राह्मण–क्षत्रिय वैश्य और शूद्र को जो कर्म इस में कहा है ॥ १६ ॥ उस के विरुद्ध जो बर्ताव करता है वह शीघ्र जाति से पतित होता है । जोजिस वर्ण का धर्म कहा है वह वैसा ही उस वर्ण का धर्म है उस में लौट पौट कुछ में की जाय तो वह उस का धर्म न होगा ॥ १७ ॥ आपत्काल को छोड़ कर प्रति दिन द्विज लोग अपने २ धर्म को करें राजा है मुख्य जिन में ऐसे–चार वर्ण और चार ही आश्रम हैं ॥ १८ ॥ अपने धर्म को जो करते हैं वे परम गति को प्राप्त होते हैं जैसे अपने धर्म से मनुष्यों पर नरसिंह भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १९ ॥

नतुष्यतितथान्येन कर्मणामधुसूदनः
अतःकुर्वन्निजंकर्म यथाकालमतन्द्रितः ॥२०॥
सहस्रानीकदेवेशं नारसिंहंचसालयम् ।
उत्पन्नवैराग्यबलेनयोगी ध्यायेत्परंब्रह्मसदाक्रियावान् ।
सत्यंसुखंरूपमनंतमाद्यं विहायदेहंपदमेतिविष्णोः ॥२२॥
इतिहारीते धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

वैसे अन्य वर्णो के धर्म से प्रसन्न नहीं होते इससे नित्य आलस्य को छोड़ कर समयपर अपना धर्म करता हुआ मनुष्य ॥२०॥ सहस्रों देवोंके स्वामी भगवान् को प्राप्त होता है ॥२१॥ उत्पन्न हुए वैराग्य के बल से जो सदाचारीधर्म कर्म निष्ठ योगी परब्रह्म का ध्यान करता है वह देह को त्याग कर सत्य सुखरूप अनन्त (अविनाशी) आद्य जो विष्णु का पद उस को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

इति हारीते धर्म–शास्त्रे ७ अध्याय भाषा समाप्त ।

समाप्तं चेदं धर्मशास्त्रम् ॥

अथऔशनसस्मृतिः ॥

अतःपरंप्रवक्ष्यामि जातिवृत्तिविधानकम् ।
अनुलोमविधानंच प्रतिलोमविधिंतथा ॥१॥
सांतरालकसंयुक्तं सर्वंसंक्षिप्यचोच्यते ।
नृपाद्ब्राह्मणकन्यायां विवाहेषुसमन्वयात् ॥२॥
जातःसूतोऽत्रनिर्दिष्टः प्रतिलोमविधिर्द्विजः ।
वेदानर्हस्तथाचैषां धर्माणामनुबोधकः ॥३॥
सूताद्विप्रप्रसूतायां सुतोवेणुकउच्यते ।
नृपायामेवतस्यैव जातोयश्चर्मकारकः ॥४॥
ब्राह्मण्यांक्षत्रियाच्चौर्याद्रथकारःप्रजायते ।
वृत्तंचशूद्रवत्तस्य द्विजत्वंप्रतिषिध्यते ॥५॥
यानानांयेचवोढारस्तेषांचपरिचारकः ।

अब जाति उन २ जातियों की और जीविका विधान कहेंगे तथा अनुलोम (नीच वर्णा की कन्या में ऊंचे वर्ण से उत्पन्न) की और प्रतिलोम (ऊंचे वर्ण की कन्या में नीच वर्ण से उत्पन्न हुए) की विधि कहते हैं ॥१॥ अन्तरालक (जो इन के बीच में पैदा हुए हैं पुलिंद आदि) उन सहित सब संक्षेप से कहा जाता है। ब्राह्मण की कन्या में विवाह होने पर जो सन्तान क्षत्रिय से ॥ २ ॥ उत्पन्न होता है वह सूत कहा है वह प्रतिलोम विधि का द्विज है। यह सूत वेदका अधिकारी नहीं यह केवल वेद के धर्मों को इतिहासादि द्वारा उपदेष्टा (बतलानेवाला) होता है ॥ ३ ॥ सूत से ब्राह्मण की कन्या में जो हो उसे वेणुक (बरड़) कहते हैं क्षत्रिय कन्या में जो सूत से पैदा हो वह चमार कहाता है ॥ ४ ॥ ब्राह्मण की कन्या में जो क्षत्रिय से गुप्त व्यभिचार द्वारा पैदा हो वह रथकार (बढ़ई) कहाता है इनका धर्म वही है जो शूद्र का और यह द्विज नहीं होता ॥ ५ ॥ जो यान (सवारी) के चलाने वाले हैं अथवा जो गाड़ी चलाने वालों के

शूद्रवृत्त्यानुजीवन्ति नक्षात्रंधर्ममाचरेत् ॥ ६ ॥
ब्राह्मण्यांवैश्यसंसर्गाज्जातोमागधउच्यते ।
वंदित्वंब्राह्मणानां च क्षत्रियाणांविशेषतः ॥ ७ ॥
प्रशंसावृत्तिकोजीवेद्वैश्यप्रेष्यकरस्तथा ।
ब्राह्मण्यांशूद्रसंसर्गाज्जातश्चांडालउच्यते ॥ ८ ॥
सीसमाभरणंतस्य कार्ष्णायसमथापिवा ।
वध्रींकण्ठेसमाबध्य मल्लरींकक्षतोपिवा ॥ ९ ॥
मलापकर्षणंग्रामे पूर्वाह्णेपरिशुद्धिकम् ।
नपराह्णे प्रविष्टोपि बहिर्ग्रामाच्चनैर्ऋते ॥ १० ॥
पिण्डीभूताभवंत्यत्र नोचेद्वध्याविशेषतः ।
चांडालाद्वैश्यकन्यायां जातःश्वपचउच्यते ॥ ११ ॥
श्वमांसभक्षणंतेषां श्वानएवचतद्बलम् ।
नृपायांवैश्यसंसर्गादायोगवइतिस्मृतः ॥ ११ ॥
तंतुवायाभवंत्येव वसुकांस्योपजीविनः ।
शौलिकाःकेचिदत्रैव जीवनंवस्त्रनिर्मिते ॥ १३ ॥

---

६ बक होकर शूद्र की वृत्ति से जीते हैं वेभी क्षत्रिय धर्म का आचारण न करें ॥ ६ ॥ ब्राह्मणी में जो वैश्य के संसर्ग (मेल) से उत्पन्न हो उसे मागध (भाट) कहते हैं ये ब्राह्मणों का तथा विशेष कर क्षत्रियों का वंदी (स्तुति करने वाला) होताहै ॥७॥ प्रशंसा वृत्ति (अन्यों की स्तुति प्रशंसा कर धन प्राप्त करना) उसकी जीविकाहै अथवा वैश्य की सेवा करे ब्राह्मणी में जो शूद्र के संसर्ग (मेल) से उत्पन्न हो उसे चांडाल कहते हैं ॥८॥ इस के सीसे अथवा लोहे के आभरण (गहने) होतेहैं और कंठ में बध्री (चमड़े का पट्टा) और कोख में झालरी बांध कर ॥९॥ दोपहर से पूर्व गांवमें शुद्धता के अर्थ मल को उठावे और मध्यान्हके पश्चात् ग्राममें न घुसे किन्तु गांव से बाहर नैर्ऋतदिशा में रहा करे ॥१०॥ और वे सब एक ही जगह रहैं और जो एकत्र न रहैं तो अवश्य वध के योग्य हैं चांडाल से जो वैश्य की कन्या में पुत्र उत्पन्न हो उसे श्वपच कहते हैं ॥११॥ कुत्ते का मांस ही उनका भोजन है और कुत्ता ही उन का बल है क्षत्रिय की कन्या में जो वैश्य से पुत्र उत्पन्न हो वह आयोगव (कोरी) कहाता है ॥१२॥

आयोगवेनविप्रायां जातास्ताम्रोपजीविनः ।
तस्यैवनृपकन्यायां जातःसूनिकउच्यते ॥ १४ ॥
सूनिकस्यनृपायांतु जाताउद्बंधकाःस्मृताः ।
निर्णेजयेयुर्वस्त्राणि अस्पृश्याश्चभवन्त्यतः ॥ १५ ॥
नृपायांवैश्यतश्चौर्यात् पुलिंदःपरिकीर्तितः ।
पशुवृत्तिर्भवेत्तस्य हन्युस्तान्दुष्टसत्त्वकान् ॥ १६ ॥
नृपायांशूद्रसंसर्गाज्जातः पुल्कसउच्यते ।
सुरावृत्तिंसमारुह्य मधुविक्रयकर्म्मणा ॥ १७ ॥
कृतकानांसुराणांच विक्रेतायाचको भवेत् ।
पुल्कसाद्वैश्यकन्यायां जातोरजकउच्यते ॥ १८ ॥
नृपायांशूद्रतश्चौर्याज्जातोरंजक उच्यते ।

ये वस्त्र बिनने और कांसे के व्यापार से जीविका करें तथा इन में जो वस्त्र पर रचे सूत रेशम आदि के कसीदे से जीते हैं वे शौलिक कहाते हैं ॥ १३ ॥ आयोगव (कोरी) से जो ब्राह्मण की कन्या में उत्पन्न होते हैं वे ताम्रोपजीवी (तांबें आदि से जीविका करने वाले) होते हैं और आयोगव (कोरी) व क्षत्रिय कन्या में जो उत्पन्न हो उसे सूनिक (सोनी) कहते हैं ॥ १४ ॥ सूनिक से जो क्षत्रिय की कन्या में उत्पन्न हों उन्हें उद्बंधक कहते हैं ये वस्त्रों को धोवें और स्पर्श करने के योग्य नहीं होते ॥ १५ ॥ क्षत्रिय की कन्या में जो छिप कर व्यभिचार द्वारा वैश्य से पैदा हो उस को पुलिंद कहते हैं और वे दुष्ट जीवों को मारपशुवृत्ति (मांसवृत्ति) होते हैं ॥१६॥ क्षत्रिय की कन्या में जो शूद्र से उत्पन्न हो उसे पुल्कस (कलाल) कहते हैं वह सुरा (मदिरा) की जीवका के निमित्त मधुर मीठा को बेचता है ॥ १७ ॥ और बनी हुई मदिरा को बेचता और पकाता भी है और पुल्कस से वैश्य की कन्या में जो पैदा हो उसे रजक कहते हैं ॥ १८ ॥ क्षत्रिय की कन्या में शूद्र से चोरी (व्यभिचार) से जो पैदा हो उसे रंजक (रंगरेज) कहते हैं तथा रंजक से जो वैश्य की कन्या में पैदा हो उसे नर्तक (नट)वा गायक

वैश्यायांरंजकाज्जातो नर्त्तकोगायकोभवेत् ॥ १९ ॥
वैश्यायांशूद्रसंसर्गाज्जातोवैदेहकःस्मृत ।
अजानांपालनंकुर्य्यान्महिषीणांगवामपि ॥ २० ॥
दधिक्षीराज्यतक्राणां विक्रयाज्जीवनभवेत् ।
वैदेहिकात्तुविप्रायां जातश्चर्मोपजीविनः ॥ २१ ॥
नृपायामेवतस्यैव सूचिकःपाचिकःस्मृतः
वैश्यायांशूद्रतश्चौर्य्याज्जातश्चक्रीचउच्यते ॥ २२ ॥
तैलपिष्टकजीवीतु लवणंभावयन्पुनः ।
विधिनाब्राह्मणःप्राप्य नृपायांतुसमन्त्रकम् ॥ २३ ॥
जातःसुवर्णइत्युक्तः सानुलोमद्विजःस्मृतः ।
अथवर्णक्रियांकुर्वन्नित्यनैमित्तिकींक्रियाम् ॥ २४ ॥
अश्वंरथंहस्तिनंच वाहयेद्वानृपाज्ञया ।
सैनापत्यंचभैषज्यं कुर्याज्जीवेत्तुवृत्तिषु । २५ ॥
नृपायांविप्रतश्चौर्य्यात्संजातोयोभिषक्स्मृतः ।

कत्थक) कहते हैं ॥१९॥ वैश्य की कन्या में शूद्र के संसर्ग से जो पैदा हो उसे वैदेहिक (गड़रिया) कहते हैं वह बकरी-भैंस-गौ इन को पाले ॥२०॥ और दही दूध-घी-मठा इनका बेचना उस की जीविका है-वैदेहिक से ब्राह्मणी में जो पुत्र उत्पन्न होवे चर्मोपजीवी होते हैं अर्थात चाम बेच कर जीते हैं ॥२१॥ वैदेहिक से क्षत्रिय की कन्यामें जो पैदा हो उसे सूचिक (दरजी) अथवा पाचक (रसोइया) कहते हैं शूद्र से जो वैश्य की कन्यामें चोरी से पैदा हो उसे चक्री (तेली) कहते हैं ॥२२॥ यह तिल वा खल अथवा लवण से जीता है-विधि से ब्राह्मण ने विवाही जो क्षत्रिय की कन्या उस से जो उत्पन्न होता है ॥ २३ ॥ वह अनुलोम सुवर्ण द्विज कहाता है वह नित्य (संध्यादि) नैमित्तिक (जात कर्मादि) क्रिया को करता हुआ ॥ २४ ॥ राजा की आज्ञा से घोड़ा-रथ हाथी इन को चलाता है और सेनापति बनकर अथवा औषधों से अपना निर्वाह करे ॥२५॥ क्षत्रिय की कन्या में चोरी से जो ब्राह्मण से पुत्र उत्पन्न होता है उसे भिषक्

अभिषिक्तनृपस्याज्ञां परिपालयेत्तुवैद्यकम् ॥२६॥
आयुर्वेदमथाष्टांगं तन्त्रोक्तं धर्ममाचरेत् ।
ज्योतिषंगणितंवापि कायिकींवृत्तिमाचरेत् ॥ २७ ॥
नृपायांविधिनाविप्राज्जातोनृपइतिस्मृतः ।
नृपायांनृपसंसर्गात्प्रमादाद्गूढजातकः ॥ २८ ॥
सोऽपिक्षत्रियएवस्या-दभिषेकेचवर्जितः ।
अभिषेकंविनाप्राप्य गोजइत्यभिधायकः ॥ २९ ॥
सर्वतुराजवृत्तस्य शस्यतेपदवंदनम् ।
पुनर्भूकरणेराज्ञानृपकालीनएवच ॥ ३० ॥
वैश्यायांविधिनाविप्राज्जातोह्यंवष्ठउच्यते ।
कृष्यजीवीभवेत्तस्य तथैवाग्नेयवृत्तिकः ॥ ३१ ॥
ध्वजिनीजीविकावापि अंवष्ठाःशस्त्रजीविनः ।
वैश्यायांविप्रतश्चौर्यात्कुंभकारसउच्यते ॥ ३२ ॥
कुलालवृत्त्याजीवेत्तु नापितावाभवन्त्यतः ।

कहते हैं वह राजा की आज्ञा से वैद्यक करता है ॥ २६ ॥ वह अष्टांग आयुर्वेद अथवा तंत्र के कहे धर्मों को करै ज्योतिष वा गणित विद्या से अपना निर्वाह करै ॥ २७ ॥ क्षत्रिय की कन्या में जो ब्राह्मण से पैदा हो वह नृप और इस नृप से क्षत्रिय कन्या में जो पुत्र पैदा हो वह गूढ़ कहाता है ॥ २८ ॥ और वह भी क्षत्रिय होता परन्तु अभिषेक (राज तिलक) के योग्य नहीं होता अभिषेक की अयोग्यता से इसे गोज (गोल) कहते हैं ॥ २९ ॥ सब प्रकार से राजा के चरणों की वंदना (नमस्कार) श्रेष्ठ है और यह गोज राजाओं के पुनर्भू करण (द्वितीय विवाह करने) में राजा के समान है अर्थात् इस के यहां राजा द्वितीय विवाह करले ॥ ३० ॥ विधि से विवाही वैश्य कन्या में जो ब्राह्मण से हो वह अंवष्ठ कहाता है खेती अथवा आग्नेय (लकड़ी) उस की जीविका होती है ॥ ३१ ॥ सेना की अथवा शस्त्र की जीविका अंवष्ठों की है— और वैश्य की कन्या में जो चोरी से ब्राह्मण से पैदा हो उसे कुंभकार (कुम्हार) कहते हैं ॥ ३२ ॥ यह कुलाल की वृत्ति (मट्टी के पात्र बनाने) से जीवे

सूतकेप्रेतकेवापि दीक्षाकालेऽथवापनम् ॥ ३३ ॥
नाभेरूर्ध्वंतुवपनं तस्मान्नापितउच्यते ।
कायस्थइतिजीवेत्तु विचरेच्चइतस्ततः ॥ ३४ ॥
काकाल्लौल्यंयमात्क्रौर्यंस्थपतेरथकृंतनम् ।
आद्यक्षराणिसंगृह्य कायस्थइतिकीर्तितः ॥ ३५ ॥
शूद्रायांविधिनाविप्राज्जातः पारशवोमतः ।
भद्रकादीन्समाश्रित्य जीवेयुःपूतकाःस्मृताः ॥ ३६ ॥
शिवाद्यागमविद्याद्यैस्तथामंडलवृत्तिभिः ।
तस्यांवैचौरसोवृत्तो निषादोजातउच्यते ॥ ३७ ॥
वनेदुष्टमृगान्हत्वा जीवनंमांसविक्रयः ।
नृपाज्जातोथवैश्यायां गृह्यायांविधिनास्मृतः ।
वैश्यवृत्यातुजीवेत क्षत्रधर्मंनचारयेत् ॥ ३८ ॥
तस्यांतस्यैवचौरेण मणिकारःप्रजायते ।

इन्हीं से नापित (नाई) होते हैं जन्मसूतक अथवा मरणसूतक में अथवा दीक्षा (मंत्र का उपदेश) काल में ये केशों का छेदन करते हैं ॥ ३३ ॥ नाभी के ऊपर के केश काटने से नापित कहाता है और यह कायस्थ नाम से इधर उधर विचरता हुआ जीविका करता है ॥ ३४ ॥ काक (कौआ) से चंचलता-यमराज से क्रूरता-स्थपति (कारीगर) से काटना इन तीनों अर्थ के जताने के लिये इन तीनों शब्दों के पहिले२ अक्षर लेकर इनको कायस्थ कहा है३५॥ विधि से विवाही शूद्र की कन्या में जो ब्राह्मण से पैदा हो वह पारशव (पारधी) माना है ये भद्रक (अच्छे) आदि पहाड़ों पर रह कर जीवें और पूतक कहाते हैं ॥ ३६ ॥ शिवादि आगम विद्या (पंचरात्र आदि) ओं से अथवा मंडलवृत्ति से ये जीवें उसी जाति में (स्त्री पुरुष दोनों पारशवहों)जो औरस पुत्र है उसे निषाद कहते हैं ॥३७॥ वन में दुष्ट मृगों को मार कर मांस बेचना उन की जीविका है विधि से विवाही वैश्य कन्या में जो पुत्र क्षत्रिय से पैदा हो वह वैश्यवृत्ति से जीवे और क्षत्रिय के धर्म को न करे॥३८॥ वैश्य की कन्या में क्षत्रिय से चोरी करके जो पैदा हो वह मणिकार (मीनाकार)

मणीनांराजतांकुर्य्यान्मुक्तानांवेधनक्रियाम् ॥ ३९ ॥
प्रवालानांचसूत्रित्वं शाखानांवलयक्रियाम् ।
शूद्रस्यविप्रसंसर्गाज्जातउग्रइतिस्मृतः ॥ ४० ॥
नृपस्यदंडधारःस्याद्दंडंदंड्येषुसंचरेत् ।
तस्यैवचौर्यसंवृत्या जातःशुण्डिकउच्यते ॥ ४१ ॥
जातदुष्टान्समारोप्य शुंडाकर्मणियोजयेत् ।
शूद्रायांवैश्यसंसर्गाद्विधिनासूचिकःस्मृतः ॥ ४२ ॥
सूचकाद्विप्रकन्यायां जातस्तक्षकउच्यते ।
शिल्पकर्माणिचान्यानिप्रासादलक्षणंतथा ॥ ४३ ॥
नृपायामेवतस्यैव जातोयोमत्स्यबंधकः ।
शूद्रायांवैश्यतश्चौर्य्यात्कटकारइतिस्मृतः ॥ ४४ ॥
वशिष्ठशापात्त्रेतायां केचित्पारशवास्तथा ।

होता है मणियों का रंगना वा मोतियों का बींधना इस का काम है ॥३९॥ अथवा मूंगों की माला वा कड़े बनाना इसका काम है शूद्र के घर ब्राह्मण के संसर्ग से जो पैदा हो वह उग्र कहाता है ॥४०॥ यह राजा का दंडधार होता है और दंड के योग्यों को दंड देता है और जो ब्राह्मण से शूद्री में चोरी से हो उसे शुंडिक कहते हैं ॥ ४१ ॥ जन्मते ही दुष्टों के ऊपर अधिपति बनाकर उस शुंडी को शुंडा कर्म (सूली देना) में राजा नियुक्त करे विधि से विवाही शूद्र कन्या में जो वैश्य से पैदा हो उसे सूचिक (दरजी) कहते हैं॥४२ सूचिक से ब्राह्मण की कन्या में जो पैदा हो उसे तक्षक (बढ़ई) कहते हैं शिल्प कर्म (कारीगरी) वा प्रासाद लक्षण (मकान बनाने का प्रकार) काम को करता है ॥ ४३ ॥ क्षत्रिय की कन्या में जो सूचिक से पैदा हो वह मत्स्यबंधक (धीवर) होता है शूद्र की कन्या में चोरी से जो वैश्य से पैदा हो वह कटकार कहाता है ॥ ४४ ॥ त्रेतायुग में वशिष्ठजी के शाप से भी कोई एक पार-

वैखानसेनकेचित्तु केचिद्भागवतेनच ॥ ४५ ॥
वेदशास्त्रावलम्बास्ते भविष्यंतिकलौयुगे ॥
कटकारास्ततःपश्चान्नारायणगणाः स्मृताः ॥ ४६ ॥
शाखावैखानसेनोक्तातंत्रमार्गविधिक्रियाः ।
निषेकाद्याःश्मशानांताः क्रियाःपूजांगसूचिकाः ॥४७॥
पंचरात्रेणवाप्राप्तं प्रोक्तंधर्मं समाचरेत् ।
शूद्रादेवतुशूद्रायां जातः शूद्रइतिस्मृतः ॥४८॥
द्विजशुश्रूषणपरः पाकयज्ञपरान्वितः ।
सच्छूद्रंतंविजानीयादसच्छूद्रस्ततोऽन्यथा ॥४९॥
चौर्यात्काकवचोज्ञेयश्चाश्वानांतृणवाहकः ।
एतत्संक्षेपतःप्रोक्तं जातिवृत्तिविभागशः ॥५०॥
जात्यन्तराणिदृश्यन्ते सङ्कल्पादितएवतु ॥ ५१ ॥

इत्यौशनसं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥

श्य होते हैं वे वैखानस (हरिकागाना) से अथवा परमेश्वर की भक्ति से॥४५॥ वे भागवताले पारशव कलियुग में वेदशास्त्र के जानने वाले होंगे तिन के पीछे वे कटकार नाम के नारायण के गण कहावेंगे ॥४६॥ तंत्रमार्गके विधान से कर्म जिनमें है ऐसी शाखा वैखानस ऋषि ने कही है और गर्भ से लेकर श्मशान तक १६ संस्कार भी इन के होते हैं इसीसे ये सूचिक पूज्य (श्रेठ) हैं ॥ ४७ ॥ नारद पंचरात्र में कहे हुए धर्म को ये करें—शूद्र की कन्या में शूद्रसे शूद्रही होता है ॥४८॥ जोशूद्र द्विज (तीनवर्ण) की सेवा में पाकयज्ञ के कर्म में सावधानरहै उस शूद्र को उत्तम शूद्र जानो और जो न रहै उसे असत् (निंदाकेयोग्य) जानना ॥४९॥ शूद्रकी कन्या में चोरी से जो शूद्रसे पैदा हो वह घोड़ोंका घास लानेहारा तृणवाहक काकवच कहाता है-यह संक्षेप से जाति और जीविका के अनुसार भिन्न २ हमने कहा ॥ ५०॥ मनुके संकल्प से इनमें से ही और २ जातिभी होजाती हैं ॥ ५१ ॥

इत्यौशनसं धर्मशास्त्रं समाप्तम्

श्रीगणेशायनमः

अंगिरःस्मृतिप्रारंभः

गृहाश्रमेषुधर्मेषु वर्णानामनुपूर्वशः ।
प्रायश्चित्तविधिंदृष्ट्वाअंगिरामुनिरब्रवीत् ॥१॥
अन्त्यानामपिसिद्धान्नं भक्षयित्वाद्विजातयः ।
चान्द्रंकृच्छ्रंतदर्धंतु ब्रह्मक्षत्रविशांविदुः ॥२॥
रजकश्चर्मकश्चैव नटोबुरुडएवच ।
कैवर्त्तमेदभिल्लाश्च सप्तैतेचान्त्यजाः स्मृताः ॥३॥
अन्त्यजानांगृहेतोयं भांडेपर्युषितंचयत् ।
तद्द्विजेनयदापोतं तदैवहिसमाचरेत् ॥४॥
चांडालकूपेभाण्डेषु त्वज्ञानात्पिबतेयदि ।
प्रायश्चित्तंकथंतेषां वर्णेवर्णेविधीयते ॥५॥
चरेत्सांतपनंविप्रः प्राजापत्यंतुभूमिपः ।
तदर्धंतुचरेद्वैश्यः पादंशूद्रेषुदापयेत् ॥६ ॥
अज्ञानात्पिबतेतोयं ब्राह्मणस्त्वंत्यजातिषु ।
अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति ॥७॥

गृहस्थाश्रम केधर्मोंमेंयथाक्रम चारांवर्णों के प्रायश्चित्त विधि को देख अंगिरा मुनि बोले॥१॥अंत्यजों के पकाये हुए अन्नको भक्षण कर ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य क्रमशः चांद्रायण—कृच्छ्र—और आधाकृच्छ्र करैं ॥ २॥ रजक (धोबी)—चमार—नट—बरुड़—कैवर्त—मेद—भील ये सात अंत्यज कहाते हैं ॥३॥ अंत्यजों के घर में जल और उनकेपात्र में रक्खा हुआ बासा जल—उसको द्विज पीलेतो उसी समय शास्त्र विहित प्रायश्चित्त को करे ॥ ४ ॥ यदि चांडाल के कुए अथवा पात्रके जल को अज्ञान से द्विजाति पीले तो उन २ वर्णों का प्रायश्चित्त कैसे हो ! ॥ ५ ॥ ब्राह्मण सांतपन—क्षत्रिय प्राजापत्य—वैश्य आधा प्राजापत्य—और शूद्र चौथाई प्राजापत्यव्रत कोक्रम से करे ॥६॥ जो ब्राह्मण अज्ञानसे अंत्यज जातियों के जल को पीले तो एक दिन उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है ॥७ ॥

विप्रोविप्रेणसंस्पृष्ट उच्छिष्टेनकदाचन ।
आचांतएवशुद्धयेत अंगिरामुनिरब्रवीत् ॥८॥
क्षत्रियेणयदास्पृष्ट उच्छिष्टेनकदाचन ।
स्नानंजप्यंतुकुर्वीत दिनस्यार्द्धेनशुद्ध्यति ॥९ ॥
वैश्येनतुयदास्पृष्टः शुनाशूद्रेणवाद्विजः ।
उपोष्यरजनीमेकां पंचगव्येनशुद्ध्यति ॥१० ॥
अनुच्छिष्टेनसंस्पृष्टः स्नानंयेनविधीयते ।
तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यंसमाचरेत् ॥११॥
अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामि नीलीशौचस्यवैविधिम् ।
स्त्रीणांक्रीडार्थसंभोगे शयनीयेनदुष्यति॥ १२ ॥
पालनंविक्रयश्चैव तद्वृत्त्याउपजीवनम् ।
पतितस्तुभवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ १३ ॥
स्नानंदानजपोहोमः स्वाध्यायःपितृतर्पणम् ।
स्पृष्टातस्यमहापापं नीलीवस्त्रस्यधारणम् ॥ १४ ॥

जो कभी उच्छिष्ट ब्राह्मण—ब्राह्मण का स्पर्श करले तो आचमन कर के शुद्ध होता है यह अंगिरा मुनि ने कहा है ॥ ८ ॥ जो कभी उच्छिष्ट क्षत्रिय ब्राह्मण को स्पर्श करले तो स्नान और जप करता हुआ आधे दिनमें शुद्ध होताहै ॥९॥ जो उच्छिष्ट वैश्य शूद्र और कुत्ता, ये तीनों ब्राह्मण को स्पर्श करलें तो एक रात्री भर उपवास करके पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै ॥१०॥ जिस अनुच्छिष्ट (झूठे मुखनहो)के स्पर्श करनेसे स्नान कहाहै उसी उच्छिष्टके स्पर्श करने पर प्राजापत्य व्रतको करै ॥११॥ इससे आगे नीली (नील) के शौच की विधि कहतेहैं—स्त्रियों की क्रीड़ाके अर्थ भोग करने की शय्या पर नीला कपड़ा दूषित नहीं है ॥१२॥ नील का पालना—बेचना और नीलके व्यापार से जीविका करने से ब्राह्मण पतित होताहै पुनः तीनकृच्छ्रव्रत करके उस पाप से शुद्ध होताहै ॥१३॥ नीलेवस्त्र धारण करने वाले पुरुष का स्पर्श करके जो स्नान दान जप—होम=वेदपाठ—और पितरों का तर्पण करता है उसको महान् (बड़ा) पाप होता है ॥१४॥

नीलीरक्तंयदावस्त्र-मज्ञानेनतुधारयेत् ।
अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुद्धयति ॥ १५ ॥
नीलीदारुयदाभिंद्याद् ब्राह्मणंवैप्रमादतः ।
शोणितंदृश्यतेयत्र द्विजश्चांद्रायणंचरेत् ॥ १६ ॥
नीलीवृक्षेणपक्वंतु अन्नमश्नातिचेद्द्विजः ।
आहारवमनंकृत्वा पंचगव्येनशुद्धयति ॥ १७ ॥
भक्षेत्प्रमादतोनीलीं द्विजातिस्त्वसमाहितः ।
त्रिषुवर्णेषुसामान्यं चांद्रायणमितिस्थितम् ॥ १८ ॥
नीलीरक्तेनवस्त्रेण यदन्नमुपदीयते ।
नोपतिष्ठतिदातारं भोक्ताभुंक्तेतुकिल्बिषम् ॥ १९ ॥
नीलीरक्तेनवस्त्रेण यत्पाकंश्रपितंभवेत् ।
तेनभुक्तेनविप्राणां दिनमेकमभोजनम् ॥ २० ॥
मृतेभर्तरियानारी नीलीवस्त्रंप्रधारयेत् ।
भर्तातुनरकंयाति सानारीतदनन्तरम् ॥ २१ ॥

नीलके रंगे वस्त्र को जो अज्ञानसे धारण करताहै वह एक रात दिन उपवास कर और पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है ॥ १५ ॥ जो नील की लकड़ी से ब्राह्मण के शरीर में प्रमाद से घाव हो जाय और रुधिर दिखलाई दे तो ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत करे॥१६॥ यदि ब्राह्मण नील की लकड़ियों से पके हुए अन्न को खावे तो उस अन्न को वमन कर पुनः पंचगव्य के पीने से शुद्ध होता है १७॥ द्विजाति प्रमाद और असावधानी से नील को खाले तो तीनों वर्णों को सामान्य चान्द्रायण व्रत का प्रायश्चित्त होता है ॥१८॥ नील के वस्त्र को धारण कर जो अन्न दिया जाता है उस का फल दाता को नहीं मिलता और भोजन करने वाला भी पापी होता है ॥ १९ ॥ नीले वस्त्र को धारण कर जो भोजन बनाया जाता है उस को खाकर ब्राह्मण एक दिन (उपवास) करै ॥ २० ॥ पति के मरने के पश्चात् जो स्त्री नीले कपड़े धारण करती है उस का पति नरक में जाता और पीछे से वह स्त्री भी नरक में जाती है ॥ २१ ॥

नीलयाचोपहतेक्षेत्रे सस्यंयत्तुप्ररोहति ।
अभोज्यंतद्द्विजातीनां भुक्त्वाचांद्रायणंचरेत् ॥ २२ ॥
देवद्रोणेवृषोत्सर्गे यज्ञेदानेतथैवच ।
अत्रस्नानंनकर्तव्यं दूषिताचवसुंधरा ॥ २३ ॥
वापितायत्रनीलीस्या-त्तावद्भूरशुचिर्भवेत् ।
यावद्द्वादशवर्षाणि अतऊर्ध्वंशुचिर्भवेत् ॥ २४ ॥
भोजनेचैवपानेच तथाचौषधभेषजैः ।
एवंम्रियन्तेयागावः पादमेकंसमाचरेत् ॥ २५ ॥
घंटाभरणदोषेण यत्रगौर्विनिपीड्यते ।
चरेदूर्ध्वंव्रतंतेषां भूषणार्थंतुयत्कृतम् ॥ २६ ॥
दमनेदामनेरोधे अवघातेचवैकृते ।
गवांप्रभवताघातैः पादोनंव्रतमाचरेत् ॥ २७ ॥
अंगुष्ठपर्वमात्रस्तु बाहुमात्रप्रमाणतः ।

पूर्व नील जिस खेत में बोया हो उस खेत में जो अन्न पैदा होता है वह द्विजातियों को अभक्ष्य है और उस को भक्षण करके चांद्रायण करे ॥ २२ ॥ देवद्रोण (तीर्थ) में वृषोत्सर्ग-यज्ञ-और दान-इन में नील के वस्त्र को धारण कर स्नान नहीं करना चाहिये क्योंकि इतने स्थानों में नील के प्रभाव से पृथिवी दूषित होती है ॥ २३ ॥ जिस खेत में नील बोया हो उस खेत की भूमि तब तक अशुद्ध रहती है जब तक बारह वर्ष न बीतें इस के पश्चात् शुद्ध होती है ॥ २४ ॥ भोजन कराने से जल पिलाने से अथवा औषध देने से यदि गौ का मरण होजाय तो गोहत्या का चतुर्थांश प्रायश्चित्त करे ॥ २५ ॥ घंटा बांधने के दोष से जहां गौ मर जाय वहां वही व्रत करे यदि उस के भूषण के लिये घंटा बांधा हो तो ॥२६॥ दमन करने और कराने रोकने तथा मारने पर गौओं के जन्म समय के आघातों से-चौथाई व्रत करे ॥ २७ ॥अंगुल २ पर जिस में गांठें हों दो हाथ का जिस का प्रमाण हो और पत्ते तथा अग्रभाग भी जिस में हों उसे दंड कहते हैं ॥ २८ ॥

सपल्लवश्चसाग्रश्च दंडइत्यभिधीयते ॥ २८ ॥
दंडादुक्तादयदान्येन पुरुषाःप्रहरन्तिगाम् ।
द्विगुणंगोव्रतंतेषांप्रायश्चित्तंविशोधनम् ॥ २९ ॥
शृंगभंगेत्वस्थिभंगे चर्मनिर्मोचनेतथा ।
दशरात्रंचरेत्कृच्छ्रं यावत्स्वस्थोभवेत्तदा ॥ ३० ॥
गोमूत्रेणतुसंमिश्रं यावकंचोपजायते ।
एतदेवहितंकृच्छ्र-मित्यमंगिरसास्मृतम् ॥ ३१ ॥
असमर्थस्यवालस्य पितावायदिवागुरुः ।
यमुद्दिश्यचरेद्धर्मं पापंतस्यनविद्यते ॥ ३२ ॥
अशीतिर्यस्यवर्षाणि वालोवाप्यूनषोडशः ।
प्रायश्चित्तार्द्धमर्हंति स्त्रियोरोगिणएवच ॥ ३३ ॥
मूर्छितेपतितेचापि गवियष्टिप्रहारिते ।
गायत्र्यष्टसहस्त्रंतु प्रायश्चित्तंविशोधनम् ॥ ३४ ॥
स्नात्वारजस्वलाचैव चतुर्थेन्हिविशुद्धयति ।
कुर्याद्रजसिनिर्वृत्ते निवृत्तेनकथंचन ॥ ३५ ॥

उस दंडसे अथवा अन्य दंडसे जब पुरुषगौको ताड़ना देनेपर गौहत्या होजानेसे उन कोद्विगुणगोव्रत से शुद्धि होती है॥२९॥यदि ताड़नासे गौकासींग और हाड़ टूटजाय अथवाचमड़ा उखड़जाय तो दशरात्र तक कृच्छ्रव्रत करै वाजब तक वे सींग आदि अच्छे हों ॥३०॥ गोमूत्र से मिले जो जौ होते हैं यही कृच्छ्र है यह अंगिराऋषिने कहा है ॥३१॥ जिस असमर्थ बालकके बदले पिता अथवा गुरु जिसको उद्देश में रखकर धर्म का आचरण करें उस लड़के को वह पाप नहीं होता ॥३२॥ अस्सी वर्षका पुरुष अथवा सोलह वर्ष की अवस्था से न्यून का बालक और स्त्री वा रोगी ये आधे प्रा-श्चित्तके योग्य हैं ॥३३॥ जो लाठी के प्रहार से गौ को मूर्छा हो जाय अथवा गौ गिरपड़े तो आठ हजार गायत्री का जपरूप जो प्रायश्चित्त उससेशुद्धि होती है ॥३४॥ रजस्वला स्त्री चतुर्थ दिन स्नान करके शुद्ध होती है और वह स्त्री रजोदर्शन की निवृत्ति पर ही स्नान करें निवृत्ति के बिना स्नान न करे ॥ ३ ॥

रोगेणयद्रजःस्त्रीणा-मत्यर्थंहिप्रवर्त्तते ।
अशुद्धास्तानतेनस्यु-स्तासांवैकारिकंहितत् ॥ ३६ ॥
साध्वाचारानताबत्स्या-द्रजोयावत्प्रवर्तते ।
वृत्तेरजसिगम्यास्त्री-गृहकर्मणिचेंद्रिये ॥ ३७ ॥
प्रथमेहनिचांडाली द्वितीयेब्रह्मघातिनी ।
तृतीयेरजकीप्रोक्ता चतुर्थेहनिशुध्यति ॥ ३८ ॥
रजस्वलायदास्पृष्टा शुनाशूद्रेणचैवहि ।
उपोष्यरजनीमेकां पंचगव्येनशुद्ध्यति ॥ ३९ ॥
द्वावेतावशुचीस्यातां दंपतीशयनंगतौ ।
शयनादुत्थितानारी शुचिःस्यादशुचिःपुमान् ॥४०॥
गंडूषंपादशौचंच नकुर्यात्कांस्यभाजने ।
भस्मनाशुद्ध्यतेकांस्यं ताम्रमम्लेनशुद्ध्यति ॥४१॥
रजसाशुद्ध्यतेनारी नदीवेगेनशुद्ध्यति ।

रोग से जो स्त्रियों के अत्यंत रज निकलता है उससे वे अशुद्ध नहीं होतीं क्योंकि वह उनका विकारी रज है ॥ ३६ ॥ जब तक रज की प्रवृत्ति रहे तब तक उत्तम आचरण न करै और रज की निवृत्ति होने पर पुरुष का संग और घरका कार्य करे ॥ ३७ ॥ रजस्वला स्त्री प्रथम दिन चांडाली द्वितीय दिन ब्रह्महत्यारी-तृतीय दिन रजकी (धोबिन) होतीहै पुनः चौथेदिन शुद्ध होती है ॥ ३८ ॥ यदि रजस्वला स्त्रीको श्वान अथवा शूद्र स्पर्श करलें तो एकरात्रि उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होती है ॥ ३९ ॥ शय्या पर सोते समय स्त्री और पुरुष दोनों अशुद्ध होते हैं शय्या से उठ कर स्त्री शुद्ध होजाती है और पुरुष अशुद्ध होता है ॥ ४० ॥ कांसे के पात्र से न तो कुल्ले करे और न पैर धोवे यदि करे तो वह अशुद्ध कांसे का पात्र भस्म से और तांबे का पात्र खटाई से शुद्ध होता है ॥ ४१ ॥ स्त्री रजोदर्शन से और नदी वेग से-तथा अत्यंत बिगड़ा वस्तु (पात्र आदि) भूमि में छः महीने र-

भूमौनिःक्षिप्यषण्मास-मत्यंतोपहतंशुचि ॥ ४२ ॥
गवाघ्रातानिकांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानियानितु ।
भस्मनादशभिःशुद्ध्ये-त्काकेनोपहतेतथा ॥ ४३ ॥
शौचंसौवर्णरौप्याणां वायुनार्केंदुरश्मिभिः ।
रजस्पृष्टंशवस्पृष्ट-माविकंचनशुद्ध्यति ॥ ४४ ॥
अद्भिर्मृदोचतन्मात्रं प्रक्षाल्यचविशुद्ध्यति ।
शुष्कमन्नमविप्रस्य भुक्त्वासप्ताहमृच्छति ॥ ४५ ॥
अन्नंव्यंजनसंयुक्त-मर्द्धमासेनशुद्ध्यति ।
पयोदधिचमासेन षण्मासेनघृतंतथा ॥ ४६ ॥
तैलंसंवत्सरेणैव कोष्ठेजीर्यतिमानवे ।
योभुंक्तेहिचशूद्रान्नं मासमेकंनिरंतरम् ॥ ४७ ॥
इहजन्मनिशूद्रत्वं मृतःश्वाचाभिजायते ।
शूद्रान्नंशूद्रसंपर्कः शूद्रेणचसहासनम् ॥ ४८ ॥
शूद्राद्ज्ञानागमःकश्चि-ज्ज्वलंतमपिपातयेत् ।

खने से शुद्ध होते हैं ॥ ४२ ॥ गौने जिन को सूंघलिया हो अथवा जिन में शूद्र ने खाया हो अथवा जिनको काक ने छूलिया हो ऐसे कांसे के पात्र दश दिन पर्यन्त भस्म से माजने से शुद्ध होते हैं ॥ ४३ ॥ सोना और चांदी के पात्र वायु और सूर्य-तथा चन्द्रमा की किरणों से शुद्ध होते हैं-और स्त्री का रज तथा शव (मुर्दा) का स्पर्श जिस में हुआ हो ऐसा ऊन का वस्त्र शुद्ध नहीं होता ४४॥ मृत्तिका और जल से जितने ऊन के वस्त्र में युक्त अशुद्धि हुई हो उतने को ही धोने से शुद्ध होता है-ब्राह्मण से भिन्न के सूखे अन्न को भक्षण कर सात दिन व्रत करै ॥ ४५ ॥ व्यंजन (भाजी) संयुक्त अन्न खाकर पन्द्रह दिन के व्रत से और दूध या दही खाकर एक मास के व्रत से और घी खाकर छः मास के व्रत से शुद्धि होती है ॥ ४६ ॥ मनुष्य के उदर में तेल एक वर्ष में पचता है जो निरन्तर एकमास पर्यन्त शूद्र के अन्न को खाता है ॥ ४७ ॥ वह इसी जन्म में शूद्र होता है तथा मर कर कुत्ता होता है-शूद्र का अन्न शूद्र का संग और शूद्र के संग एक आसन पर बैठना ॥ ४८ ॥ तथा शूद्र से किसी विद्या

अप्रणामंगतेशूद्रेस्वस्तिकुर्वन्तियेद्विजाः ॥ ४९ ॥
शूद्रोपिनरकंयाति ब्राह्मणोपितथैवच ।
दशाहाच्छुद्ध्यतेविप्रो द्वादशाहेनभूमिपः ॥५०॥
पाक्षिकंवैश्यएवाहुः शूद्रोमासेनशुद्ध्यति ।
अग्निहोत्रीतुयोविप्रः शूद्रान्नंचैवभोजयेत् ॥५१॥
पंचतस्यप्रणश्यन्ति चात्मावेदास्त्रयोग्नयः ।
शूद्रान्नेनतुभुक्तेन योद्विजोजनयेत्सुतान् ॥५२॥
यस्यान्नंतस्यतेपुत्रा अन्नाच्छुक्रंप्रवर्तते ।
शूद्रेणस्पृष्टमुच्छिष्टं प्रमादादथपाणिना ॥५३॥
तद्द्विजेभ्योनदातव्य-मापस्तम्बोब्रवीन्मुनिः ।
ब्राह्मणस्यसदाभुङ्क्ते क्षत्रियस्यचपर्वसु ॥५४॥
वैश्येष्वापत्सुभुञ्जीत नशूद्रेपिकदाचन ।
ब्राह्मणान्नेदरिद्रत्वं क्षत्रियान्नेपशुस्तथा ॥५५॥

को ग्रहण करना ये तेजस्वी मनुष्य को भी पतित करते हैं शूद्र को प्रणाम किये बिना ही जो द्विज आशीर्वाद देते हैं ॥ ४९ ॥ वह शूद्र और ब्राह्मण दोनों नरकमें जाते हैं—दशदिन में ब्राह्मण बारह दिन में क्षत्री ॥५०॥ पन्द्रह दिन में वैश्य और एक मास में शूद्र जन्म और मृतक सम्बन्धी अशुद्धि से शुद्ध होते हैं—जो अग्निहोत्री ब्राह्मण शूद्र के अन्न को भक्षण करे ॥ ५१ ॥ उस का आत्मा-वेद और तीनों अग्नि--ये पांचों नष्ट होते हैं शूद्र के अन्नको खाकर जो द्विज पुत्रों को उत्पन्न करता है ॥५२॥ तो वे पुत्र उस के हो हैं जिस का अन्न था क्योंकि अन्न से ही वीर्य उत्पन्न होता है, शूद्र ने प्रमाद से अपने हाथ से जिस अन्न का स्पर्श कर लिया हो उस छुये हुये को ॥५३॥ ब्राह्मणों को न दे यह आपस्तम्ब मुनि ने कहा है—ब्राह्मण के अन्न को सदा खाले—और क्षत्रिय के अन्न को पर्व में ॥ ५४ ॥ आपत्तिकाल में वैश्य के अन्न को परन्तु शूद्र के अन्न को कदापि न खावे ब्राह्मण के अन्न भक्षण करने से दरिद्री और क्षत्रिय के अन्न खाने से पशु ॥५५॥

वैश्यान्नेनतुशूद्रत्वं शूद्रान्नेनरकंध्रुवम् ।
अमृतंब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नंपयःस्मृतम् ॥५६॥
वैश्यस्यचान्नमेवान्नं शूद्रान्नंरुधिरंध्रुवम् ।
दुष्कृतंहिमनुष्याणा-मन्नमाश्रित्यतिष्ठति ॥५७॥
योयस्यान्नंसमश्नाति सतस्याश्नातिकिल्विषम् ।
सूतकेषुयदाविप्रो ब्रह्मचारीजितेन्द्रियः ॥५८॥
पिबेत्पानीयमज्ञानाद्‌- भुङ्क्तेभक्तमथापिवा ।
उत्तार्याचम्यउदक-मवतीर्यउपस्पृशेत् ॥५९॥
एवंहिसमुदाचारो वरुणेनाभिमन्त्रितः ।
अग्न्यागारेगवांगोष्ठे देवब्राह्मणसन्निधौ ॥६०॥
आहारेजपकालेच पादुकानांविसर्जनम् ।
पादुकासनमारूढो गेहात्पंचगृहंव्रजेत् ॥ ६१ ॥
छेदयेत्तस्यपादौतु धार्मिकःपृथिवीपतिः ।
अग्निहोत्रीतपस्वीच श्रोत्रियोवेदपारगः ॥ ६२ ॥

वैश्य के अन्नखानेसे शूद्र और शूद्र के अन्नखाने से निश्चय नरक होता है-ब्राह्मण का अन्न अमृतकेतुल्यहै और क्षत्रिय का अन्न दूध के सदृशहै ॥५६॥ वैश्य का अन्न अन्न के तुल्यहैऔर शूद्र का अन्न निश्चयकरके रुधिर के तुल्य है मनुष्य का किया हुआ पाप अन्न में रहता है ॥५७॥ जो जिस के अन्न को भक्षण करता है वह उस के पाप को खाता है-यदि जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी ब्राह्मण सूतकों में ॥५८॥ अज्ञान से जल पीले अथवा भात खाले तो जल निकाल (वमन) कर आचमन करे पुनः प्राणायाम करके आचमन करे ॥५९॥ इस प्रकार सम्यक् वरुण के मन्त्रों से देह को अभिमन्त्रित करके अग्निकी शाला, गोशाला, देव तथा ब्राह्मणोंके समीप ॥६०॥ भोजन करने और जप करने के समय खड़ाउंओं को त्याग दे। यदि खड़ाउं पर चढ़कर सामान्य गृहस्थी पुरुष स्वगृह से अन्यपांचगृहों तक जावे ॥६१॥ तो धर्मिष्ठ राजा उसके पैरों को छेदन करै क्योंकि अग्निहोत्री, तपस्वी, वेदोक्तकर्मों का कर्त्ता और वेद का ज्ञाता ॥ ६२ ॥

एतेवैपादुकैर्यान्ति शेषान्दण्डेनताडयेत् ।
जन्मप्रभृतिसंस्कारे चूडांतेभोजनंनवम् ॥ ६३ ॥
असपिंडेनभोक्तव्यं चूडस्यांतेविशेषतः ।
याचकान्नंनवश्राद्ध-मपिसूतकभोजनम् ॥ ६४ ॥
नारीप्रथमगर्भेषु भुक्त्वाचांद्रायणंचरेत् ।
अन्यदत्तातुयाकन्या पुनरन्यस्यदीयते ॥ ६५ ॥
तस्याश्चान्नंनभोक्तव्यं पुनर्भूःसाप्रगीयते ।
पूर्वंस्रावितोयश्च गर्भोयश्चाप्यसंस्कृतः ॥ ६६ ॥
द्वितीयेगर्भसंस्कार-स्तेनशुद्धिर्विधीयते ।
राजाद्यैर्दशभिर्मासैर्यावत्तिष्ठतिगुर्विणी ॥ ६७ ॥
तावद्रक्षाविधातव्या पुनरन्योविधीयते ।
भर्तुःशासनमुल्लंघ्य याचस्त्रीविप्रवर्तते ॥ ६८ ॥
तस्याश्चैवनभोक्तव्यं विज्ञेयाकामचारिणी ।

ये ही खड़ाऊं पर चलें इतर मनुष्यों को राजा दंड से ताड़ना करै—जन्म आदि जातकर्मादि संस्कार में चूड़ा कर्म में तथा अन्नप्राशन में ॥ ६३ ॥ अपने असपिंड के घर भोजन न खावे और चूड़ाकर्म में तो विशेष कर न करै—भिखारी का अन्न—नवश्राद्ध और सूतकका अन्न ॥ ६४ ॥ तथा स्त्री के पहिले गर्भाधान में भोजन कर चान्द्रायण प्रायश्चित करै—जो कन्या अन्य को देकर पुनः अन्य को दी जाती है ॥ ६५॥ उस का अन्न भी नहीं खाना चाहिये क्योंकि उसको पुनर्भू कहतेहैं यदि पहिला गर्भ वा गर्भ गिरा दिया हो जिस का संस्कार न हुआ होवह पात होजाय ॥ ६६॥ तो द्वितीय गर्भ के संस्कार से शुद्धि विहित है जब तक वह स्त्री गर्भवती रहे तब तक राजा आदि दश मासों तक ॥ ६७ ॥ रक्षा करनी चाहिये पुनः अन्य गर्भ होता है—पति की आज्ञा का उल्लंघन करके जो स्त्री वर्ताव करती ॥ ६८॥ और उस को कामचारिणी जानना

अनपत्यातुयानारी नाश्नीयात्तद्गृहेपिवै ॥ ६९ ॥
अथभुंक्तेतुयोमोहा-त्पूयसंनरकंव्रजेत् ।
स्त्रियाधनंतुयेमोहा-दुपजीवंतिमानवाः ॥ ७० ॥
स्त्रियायानानिवासांसि तेपापायांत्यधोगतिम् ।
राजान्नंहरतेतेजः शूद्रान्नंब्रह्मवर्चसम् ॥ ७१ ॥
सूतकेषुचयोभुंक्ते सभुंक्तेपृथिवीमलम् ॥
सूतकेषुचयोभुंक्ते सभुंक्तेपृथिवीमलम् ॥७२॥

इत्यंगिरसाप्रणीतंधर्मशास्त्रंसंपूर्णम् ॥

चाहिये तथा जो स्त्री बंध्या हो उसके घर भी नहीं खावे ॥ ६९ ॥ तथा मोह से भोजन करता है तो वह पूय (पीव) नरक में जाता है स्त्री के धन से जो मनुष्य मोह से जीते (खाते) हैं ॥ ७० ॥ जो स्त्री का यान (सवारी) वस्त्रों को वर्तते हैं वे पापी अधोगति को प्राप्त होते हैं राजा का अन्न तेज को हरता है और शूद्र का अन्न ब्रह्मतेजको ॥ ७१ ॥ और जो सूतकों में किसी घर भोजन करता है वह पृथिवी के मल को खाता है ॥

इत्यंगिरसाप्रोक्तंधर्मशास्त्रं समाप्तम्

अथयमस्मृतिप्रारंभः

श्रुतिस्मृत्युदितंधर्मं वर्णानामनुपूर्वशः ।
प्राब्रवीदृषिभिःपृष्टो मुनीनामग्रणीर्यमः ॥ १ ॥
योभुंजानोऽशुचिर्वापि चांडालपतितंस्पृशेत् ।
क्रोधादज्ञानतोवापि तस्यवक्ष्यामिनिष्कृतिम् ॥ २ ॥
षड्रात्रंवात्रिरात्रंवा यथासंख्यंसमाचरेत् ।
स्नात्वात्रिषवणंविप्रः पंचगव्येनशुद्ध्यति ॥ ३ ॥
भुंजानस्यतुविप्रस्य कदाचित्स्रवतेगुदम् ।
उच्छिष्टत्वेऽशुचित्वेच तस्यशौचंविनिर्दिशेत् ॥४॥
पूर्वंकृत्वाद्विजःशौचं पश्चादापउपस्पृशेत् ।
अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति ॥५॥
निगिरन्यदिमेहेत भुक्त्वावामेहनेकृते ।
अहोरात्रोषितोभूत्वा जुहुयात्सर्पिषाहुतिम् ॥ ६ ॥
यदाभोजनकालेस्या-दशुचिर्ब्राह्मणःक्वचित् ।

चारों वर्णों के श्रुति और स्मृति में कहे धर्म को ऋषियों के पूछने पर मुनियों में मुख्य यम ने क्रम से कहा ॥१॥ जो भोजन करता हुआ अथवा अशुद्ध दशा में पतित चांडाल को क्रोध अथवा अज्ञान से स्पर्श करले उसका प्रायश्चित्त कहते हैं ॥२॥ छः दिन अथवा तीन दिन क्रमशः प्रायश्चित्त करे तीन बार स्नान करके पंचगव्य पीने से ब्राह्मण की शुद्धि होती है ॥३॥ भोजन करते हुए ब्राह्मण की गुदा से मल निकल जाय तो उच्छिष्ट और अशुद्धि के निवारण के लिये शुद्धि करे ॥४॥ प्रथम ब्राह्मण गुद शुद्धि करके जल से स्नान करे और पुनः एक दिन और रात उपवास करके पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होता है ॥५॥ भोजन करते हुये अथवा भोजन करके शुद्धि से यदि पेशाब करे तो एक रात्रि दिन उपवास कर घी की आहुति से होम करे ॥६॥ जो ब्राह्मण भोजन के समय कभी अशुद्ध

भूमौनिधायतद्ग्रासं स्नात्वाशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥
भक्षयित्वातुतद्ग्रास-मुपवासेनशुद्ध्यति ।
अशित्वाचैवतत्सर्वं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ८ ॥
अश्नतश्चेद्विरेकःस्या-दस्वस्थस्त्रिशतंजपेत् ।
स्वस्थस्त्रीणिसहस्राणि गायत्र्याःशोधनंपरम् ॥९॥
चांडालैःश्वपचैःस्पृष्टो विण्मूत्रेचकृतेद्विजः ।
त्रिरात्रंतुप्रकुर्वीत भुक्त्वोच्छिष्टःषडाचरेत् ॥ १० ॥
उदक्यांसूतिकांवापि संस्पृशेदंत्यजोयदि ।
त्रिरात्रेणविशुद्धिःस्या-दितिशातातपोऽब्रवीत् ॥११॥
रजस्वलातुसंस्पृष्टा श्वमातंगादिवायसैः ।
निराहाराशुचिस्तिष्ठे त्कालस्नानेनशुद्ध्यति ॥१२॥
रजस्वलेयदानार्या-वन्योन्यस्पृशतःक्वचित् ।
शुद्ध्यतःपंचगव्येन ब्रह्मकूर्चेनचोपरि ॥१३॥

होजावे तो उस कौर को पृथ्वी पर रखकर स्नान कर शुद्धि को प्राप्त होता है ॥७॥ जो उस ग्रास को भी खाले तो एक उपवास कर शुद्ध होता है और सब अन्न को खाले तो तीन दिन तक अशुद्ध रहता है ॥८॥ जो भोजन करते हुए वमन हो जाय तो अस्वस्थ (रोगी) तीन सौ गायत्री और स्वस्थ (नीरोग) तीन हजार गायत्री जपै यह गायत्री से परम शुद्धि होती है ॥९॥ जो विष्ठा और मूत्र त्यागने के पश्चात् चांडाल अथवा श्वपच द्विज का स्पर्श करलें तो तीन दिन और स्पर्श के अनन्तर भोजन करले तो छः दिन उपवास करे ॥१०॥ रजस्वला अथवा सूतिका स्त्रीको यदि अन्त्यज स्पर्श करले तो तीन दिन व्रत करने से शुद्धि होती है यह शातातप ऋषि ने कहा है ॥ ११॥ यदि रजस्वला स्त्री को कुत्ता हाथी वा कौआ स्पर्श करले तो अशुद्ध अवस्था में निराहार रहे और ४ थे दिन के स्नान से शुद्ध होती है ॥ १२ ॥ जो दो रजस्वला स्त्री परस्पर एकदूसरी का स्पर्श करले तो पंचगव्य के पीने तथा ब्रह्मकूर्च (कुशाओं के मोटक) से पंचगव्य को अपने शरीर पर छिड़कने से शुद्ध होती हैं ॥ १३ ॥

उच्छिष्टेनचसंस्पृष्टा कदाचित्स्त्रीरजस्वला ।
कृच्छ्रेणशुद्धिमाप्नोति शूद्रादानोपवासतः ॥१४॥
अनुच्छिष्टेनसंस्पृष्टे दानंयेनविधीयते ।
तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यंसमाचरेत् ॥१५॥
ऋतौतुगर्भंशंकित्वा स्नानमैथुनिनःस्मृतम् ।
अनृतौतुस्त्रियंगत्वा शौचंमूत्रपुरीषवत् ॥१६॥
उभावप्यशुचीस्यातां दंपतीशयनेगतौ ।
शयनादुत्थितानारी शुचिःस्यादशुचिःपुमान् ॥१७॥
भर्तुःशरीरशुश्रूषां दौरात्म्यादप्रकुर्वती ।
दंड्याद्वादशकंनारी वर्षंत्याज्याधनंविना ॥१८॥
त्यजन्तोऽपतितान्बंधू-न्दंड्याउत्तमसाहसम् ।
पिताहिपतित कामं नतुमाताकदाचन ॥१९॥

कदाचित् जो रजस्वला स्त्री को उच्छिष्ट पुरुष स्पर्श करले तो द्विजों की स्त्री कृच्छ्र व्रत करने से और शूद्र की स्त्री दान तथा उपवास से शुद्धि को प्राप्त होती है ॥ १४ ॥ जिस अनुच्छिष्ट के स्पर्श करने से स्नान करना विधान किया है यदि वही उच्छिष्ट होकर स्पर्श करले तो प्राजापत्य व्रत प्रायश्चित्त करे ॥ १५ ॥ ऋतुकाल में गर्भ की इच्छा से जो मैथुन करता है उसे स्नान करना कहा है और ऋतु से भिन्न समय में स्त्री का संग करने से मल मूत्र के सदृश शुद्धि होती है। शय्या पर सोते हुए दोनों स्त्री और पुरुष अशुद्ध होते हैं शय्या से पृथक् होने पर स्त्री शुद्ध, और पुरुष अशुद्ध रहता है ॥१७॥ पति के शरीर की सेवा जो स्त्री कुबुद्धि से नहीं करती वह स्त्री बारह वर्ष तक धन के विना त्याग देनी चाहिये ॥ १८ ॥ जो पतित हुये विना ही बन्धुओं को त्याग देते हैं उन को राजा १ सहस्त्रपणकादंड दे और पतित पिता भी यथेच्छ त्यागने योग्य है परन्तु माता कभी भी त्यागने योग्य नहीं ॥१९॥

आत्मानंघातयेद्यस्तु रज्ज्वादिभिरुपक्रमैः ।
मृतोमेध्येनलेप्तव्यो जीवतोद्विशतंदमः ॥२०॥
दण्ड्यास्तत्पुत्रमित्राणि प्रत्येकंपणिकंदमम् ।
प्रायश्चित्तंततःकुर्यु-र्यथाशास्त्रप्रचोदितम् ॥२१॥
जलाद्युद्बंधनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशनच्युताः ।
विषात्प्रपतनंप्रायः शस्त्रघातहताश्चये ॥ २२ ॥
नचैतेप्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः ।
चांद्रायणेनशुद्ध्यंति तप्तकृच्छ्रद्वयेनवा ॥ २३ ॥
उभयावसितःपापः श्यामाच्छबलकाच्युतः ।
चांद्रायणाभ्यांशुद्ध्येत दत्वाधेनुंतथावृषम् ॥ २४ ॥
श्वशृगालप्लवंगाद्यै-र्मानुषैश्चरतिंविना ।
दृष्टःस्नात्वाशुचिःसद्यो दिवासन्ध्यासुरात्रिषु ॥ २५ ॥
अज्ञानाद्ब्राह्मणोभुक्त्वा चांडालान्नंकदाचन ।

जो पुरुष गले में फांसी लगाकर अथवा किसी अन्य प्रकार से आत्मघात करै और वह मरजाय तो उसे मलिन स्थल में गाड़ दे और न मरे तो उस पर दोसौ रुपये दंड करना चाहिये २०॥ तथा उस के पुत्र और मित्रों को भी एक २ पणिक (मुद्रा) दंड दे फिर वे सब शास्त्रविहित प्रायश्चित्त करें॥२१॥ जलमेंडूबनेसे अथवा फांसी से जो बचगये और संन्यास धर्म के नाशक तथा उस के जो त्यागी हैं अथवाविष भक्षण से ऊंचे से गिरने से और शस्त्र के लगने से जो मरतेर बच गयेहैं ॥२२॥ येपुरुष सर्व लोकों से बहिष्कृत और भोजन के योग्य नहीं रहते पुनः चां. द्रायणअथवा तप्तकृच्छ्र व्रत से शुद्ध होते हैं ॥२३॥ उक्त पापियों के घर में भोजन करने वाला वा रहने वाला पापी पुरुष दो चान्द्रायण करै अथवा श्याम और शबल (कबरा) से भिन्न गौ वा बैल का दान करै ॥ २४ ॥ कुत्ता—सियार—वा॰ नर आदि जो मनुष्यों के संग क्रीड़ा के बिना काटैं तो उसी समय दिन संध्या अथवा रात्रि में स्नान ही से शुद्ध होता है ॥ २५ ॥ कदाचित् अज्ञान से

गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेनविशुद्ध्यति ॥ २६ ॥
गोब्राह्मणगृहंदग्ध्वा मृतंचोद्बन्धनादिना ।
पाशंछित्वातथातस्य कृच्छ्रमेकंचरेद्द्विजः ॥ २७ ॥
चांडालपुल्कसानांच भुक्त्वागत्वाचयोषितम् ।
कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञाना-दज्ञानादैंदवद्वयम् ॥ २८ ॥
कपालिकान्नभोक्तॄणां तन्नारीगामिनांतथा ।
कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञाना-दज्ञानादैंदवद्वयम् ॥ २९ ॥
अगम्यागमनेविप्रोमद्यगोमांसभक्षणे ।
तप्तकृच्छ्रपरिक्षिप्तो मौर्वीहोमेनशुद्ध्यति ॥ ३० ॥
महापातककर्तार-श्चत्वारोप्यविशेषतः ।
अग्निंप्रविश्यशुद्ध्यंति स्थित्वावामहतिक्रतौ ॥ ३१ ॥
रहस्यकरणेप्येवं मासमभ्यस्यपूरुषः ।

नापहाल के अन्न को ब्राह्मण खालेतो गोमूत्र और जौ को खाने से पंद्रह दिन में शुद्ध होता है ॥ २६ ॥ गौशाला और ब्राह्मण के घर को जो जला दे तथा फांसी लगाकर जो मरा हो उस को जो जलावे अथवा उसकी फांसी का छेदन करे तो वह द्विज एक कृच्छ्रव्रत करे ॥ २७ ॥ चांडाल वा पुल्कस (चांडालका भेद) के यहां जानकर भोजन करले अथवा इन की स्त्रियों का संग करे तो एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करे और अज्ञान से भोजन करै तो दो चान्द्रा- यण व्रत करे ॥ २८ ॥ ज्ञान से कापालिकों का अन्न खाले अथवा उनकी स्त्रियों को भोगे तो एक वर्ष तक कृच्छ्र करे औ अज्ञान से दो चान्द्रायणव्रत करै ॥२९॥ भगिनी आदि अगम्या स्त्री के संग गमन करने और मदिरा तथा गो मांस के खाने पर तप्तकृच्छ्र करके मौर्वी (सूत्र) के होम से ब्राह्मण शुद्ध होता है॥३०॥ ब्रह्महत्यादि चारों महापातक करने वाले विशेष कर तो अग्नि में प्रवेश करके अथवा बड़े यज्ञ (अश्वमेध आदि) करके शुद्ध होते हैं ॥ ३१ ॥ छिप कर भी इस प्रकार का महापात की पुरुष अघमर्षण सूक्त का एक मास

अघमर्षणसूक्तंवा शुद्ध्येदंतर्जलेस्थितः ॥ ३२ ॥
रजकश्चर्मकश्चैव नटोबुरुडएवच ।
कैवर्त्तमेदभिल्लाश्च सप्तैतेअन्त्यजाःस्मृताः ॥३३॥
भुक्त्वाचैषांस्त्रियोगत्वा पीत्वापःप्रतिगृह्यच ।
कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञाना-दज्ञानादैंदवद्वयम् ॥ ३४ ॥
मातरंगुरुपत्नींच स्वसृंदुहितरंस्नुषाम् ।
गत्वैताःप्रविशेदग्निं नान्याशुद्धिर्विधीयते ॥ ३५ ॥
राज्ञींप्रव्रजितांधात्रीं तथावर्णोत्तमामपि ।
कृच्छ्रद्वयंप्रकुर्वीत सगोत्रामभिगम्यच ॥ ३६ ॥
अन्यासुपितृगोत्रासु मातृगोत्रगतास्वपि ।
परदारेषुसर्वेषु कृच्छ्रंसांतपनंचरेत् ॥ ३७ ॥
वेश्याभिगमनेपापं व्यपोहंतिद्विजातयः ।
पीत्वासकृत्सुतप्तंच पंचरात्रंकुशोदकम् ॥ ३८ ॥
गुरुतल्पव्रतंकेचि-त्केचिद्ब्रह्महणोव्रतम् ।

पर्यन्त जल में बैठ कर जप करै तो शुद्ध होता है ॥ ३२ ॥ धोबी-चमार-नट बरुड़-कैवर्त-मेद-भील-ये सात अंत्यज कहाते हैं ॥ ३३ ॥ इन के यहां भोजन-इनकी स्त्रियों के संग गमन-इन के घर का जल पान-ज्ञान से करके अथवा इन से दान लेकर एक वर्ष भर कृच्छ्र व्रत करै और अज्ञान से दो चान्द्रायण व्रत करै ॥ ३४ ॥ माता-गुरु की स्त्री-भगिनी पुत्री लड़के की स्त्री इनके संग गमन करके अग्नि में प्रवेश करे (मर जाय) अन्य शुद्धि नहीं है ॥३५॥ राणी-संन्यासिनी-धाय-और उत्तम वर्ण की स्त्री तथा अपने गोत्र की स्त्री इन के संग गमन करके दो कृच्छ्र करै ॥ ३६ ॥ अन्य जो माता और पिता के गोत्र की स्त्री है अथवा अन्य की स्त्री, इन सब के संग गमन करके सांतपन कृच्छ्र करै ॥३७॥ वेश्या के संग गमन करने के पाप को तीनों द्विजाति अत्यन्त तपे हुए कुशा के जल को पांच दिन तक प्रतिदिन एक बार पीकर व्रत करते हुए दूर करते हैं ॥ ३८ ॥ कोई ऋषि लोग गुरुपत्नी के गमन का कोई ब्रह्म

गोघ्नस्यकेचिदिच्छंति केचिच्चैवावकीर्णिनः ॥३९॥
दंडादूर्ध्वंप्रहारेण यस्तुगांविनिपातयेत् ।
द्विगुणंगोव्रतंतस्य प्रायश्चित्तंविनिर्दिशेत् ॥ ४० ॥
अंगुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रप्रमाणकः ।
सार्द्रश्चसपलाशश्च गोदंडःपरिकीर्तितः ॥ ४१ ॥
गवांनिपातनेचैव गर्भोपिसंपतेद्यदि ।
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं यथापूर्वंतथापुनः ॥ ४२ ॥
पादमुत्पन्नमात्रेतु द्वौपादौगात्रसंभवे ।
पादोनंकृच्छ्रमाचष्टे हत्वागर्भमचेतनम् ॥ ४३ ॥
अंगप्रत्यंगसंपूर्णे गर्भेचेतःसमन्विते ।
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्र-मेषागोघ्नस्यनिष्कृतिः ॥ ४४ ॥
बंधनेरोधनेचैव पोषणेवागवांरुजा ।
संपद्यतेचेन्मरणं निमित्तीनैवलिप्यते ॥ ४५ ॥
मूर्छितःपतितोवापि दंडेनाभिहतस्तथा ।

हत्या का–कोई गोहत्या के व्रत का, और कोई अवकीर्णी (जो ब्रह्मचर्य से पतित हो) के व्रत का प्रायश्चित्त वेश्यागामी पुरुष के लिये मानते हैं ॥३९॥ दंड के प्रहार से जो गौ को मारे उसे गोहत्या का दूना प्रायश्चित्त बतावे॥४०॥ अंगूठे के समान मोटा और दो हाथ का जिस का प्रमाण हो ऐसा जो गीला और पत्तों समेत दंड उसे गोदंड कहते हैं ॥ ४१ ॥ गौओं के मारने से जो गौ-का गर्भ गिरजाय तो तीनों द्विजाति क्रम से एक २ कृच्छ्र करें ॥ ४२ ॥ गर्भ रहते ही जो गर्भपात होजाय तो चौथाईकृच्छ्र और गर्भ की देह बने पर जो पात होय तो आधाकृच्छ्र और अचेतन गर्भ का पात होजाय तो पौन कृच्छ्र करै ॥ ४३ ॥ तथा यदि गौ को मारने से अंग (हाथ आदि)–प्रत्यंग (नखरोम आदि) से पूरा सचेत गर्भ गिर जाय तो तीनों वर्ण एक २ कृच्छ्र करें, यह गोहत्या का प्रायश्चित्त कहा ॥ ४४ ॥ यदि गौओं के बांधने, रोकने, पालन पोषण करने, से रोग हो कर यदि गौ मरजाय तो बांधना आदि करने वाले को पाप नहीं लगता ॥४५॥ मूर्छाको प्राप्त अथवा गिरा हुआ–क्रोध के

उत्थायषट्पदंगच्छे-त्सप्तपंचदशापिवा ॥ ४६ ॥
ग्रासंवायदिगृह्णीया-त्तोयंवापिपिबेद्यदि ।
पूर्वव्याधिप्रणष्टानां प्रायश्चित्तनविद्यते ॥ ४७ ॥
काष्ठलोष्टाश्मभिर्गावः शस्त्रैर्वानिहतायदि ।
प्रायश्चित्तंकथंतत्र शस्त्रेशस्त्रेनिगद्यते ॥ ४८ ॥
काष्ठेसांतपनंकुर्यात् प्राजापत्यंतुलोष्टके ।
तप्तकृच्छ्रंतुपाषाण शस्त्रेचाप्यतिकृच्छ्रकम् ॥ ४९ ॥
औषधंस्नेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणेषुच ।
दीयमानेविपत्तिःस्यात्प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ ५० ॥
तैलभैषजपानेच भेषजानांचभक्षणे ।
निःशल्यकरणेचैव प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ ५१ ॥
वत्सानांकंठबंधेन क्रियया भेषजेनतु ।
सायंसंगोपनार्थंच नदोषोरोधबन्धयोः ॥ ५२ ॥

विनाही चलानेके अर्थ दंडसे धमकाने पर गिरा कोई पशु यदि उठकर छः सात-पांच अथवा दश पग चलदे । ४६। अथवा ग्रास को खाले वा जल पीले, और पूर्व व्याधि से मर जाय तो उस का प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ४७ ॥ काठ-डेला-पत्थर-वा-शस्त्रोंसे यदि गौ को मारे तो वहां शस्त्र२ के प्रति प्रायश्चित्त कहते हैं ॥४८॥ काठ से मारने पर सांतपन-डेले से प्राजापत्य-पत्थर से तप्तकृच्छ्र करै ।४९॥ गौ और ब्राह्मण को औषध- स्नेह (घी आदि) पिलाते समय वा भोजन देते समय-यदि विपत्ति (मरण वा कष्ट) होजाय तो-प्रायश्चित्त नहीं है ॥५०॥ तैल अथवा औषध पिलाने-और औषध खिलाने- अथवा कांटा आदि निकालने के समय गौ को जो कष्ट होता है उसका भी प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ५१ ॥ बछड़ों के गला बांधने में औषध के देनेमें और रक्षा के लिये संध्या को रोकने और बांधने में भी दोष नहीं है ॥ ५२ ॥

पादेचैवास्यरोमाणि द्विपादेश्मश्रुकेवलम् ।
त्रिपादेतुशिखावर्जं मूलेसर्वंसमाचरेत॥ ५३ ॥
सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदंगुलद्वयम् ।
एवमेवतुनारीणां मुंडमुंडायनंस्मृतम् ॥५४॥
नस्त्रियावपनंकार्यंनचवीरासनंस्मृतम् ।
नचगोष्ठेनिवासोस्ति नगच्छंतीमनुव्रजेत् ॥५५॥
राजावाराजपुत्रोवा ब्राह्मणोवाबहुश्रुतः ।
अकृत्वावपनंतेषां प्रायश्चित्तंविनिर्दिशेत् ॥५६॥
केशानांरक्षणार्थंच द्विगुणंव्रतमादिशेत् ।
द्विगुणेतुव्रतेचीर्णे द्विगुणैवतुदक्षिणा॥ ५७॥
द्विगुणंचेन्नदत्तंहि केशांश्चपरिरक्षयेत् ।
पापंनक्षीयतेहंतुर्दाताचनरकंव्रजेत् ॥५८ ॥
अश्रौतस्मार्तविहितं प्रायश्चित्तंवदंतिये ।
तान्धर्मविघ्नकर्तॄंश्च राजादंडेनपीडयेत् ॥५९॥

चौथाई कृच्छ्र करने में केवल रोमों का, और अर्द्धकृच्छ्र में केवल डाढी का और पौन कृच्छ्र में चोटी के विना सब तथा पूरा कृच्छ्र करने में चोटी सहित सब केशों का मुंडन पुरुष करावे ॥ ५३॥ स्त्रियां का मुंडन और मुंडवाना यह कहा है कि सब केशों को ऊपरको उभार कर दो २ अंगुल काट दे ॥५४ क्योंकि स्त्रियों का मुंडन और वीरासन से बैठना—और गोशालामें वास नहीं है और चलती गौके पीछे भी स्त्री न चलैं ॥ ५५॥ राजा का पुत्र अथवा बहुश्रुत ब्राह्मण इन का मुंडन नहीं करा कर प्रायश्चित्त बता देवे ॥५६॥ केशों को न मुंडाने की दशा में दूना व्रत करावे और दूना व्रत पूरा करने पर दूनी ही दक्षिणा देवे ॥५७॥ दूनी दक्षिणा दिये बिना यदि केशों की रक्षा करै तो मारने वाले का पाप नष्ट नहीं होता और प्रायश्चित्त देने वाला नरकमें जाता है ५८॥ वेद और धर्मशास्त्र में जो प्रायश्चित्त नहीं कहा है उस को जो पुरुष बतावें धर्म में विघ्न करने वाले उन पुरुषों को राजा दंड देवे ॥ ५९ ॥

नचेत्तान्पीडयेद्राजा कथंचित्काममोहितः ।
तत्पापंशतधाभूत्वा तमेवपरिसर्पति॥६०॥
प्रायश्चित्तेततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
विंशतिंगांवृषंचैकं दद्यात्तेषांचदक्षिणाम् ॥६१॥
कृमिभिर्व्रणसंभूतैर्मक्षिकाभिश्चपातितैः ।
कृच्छ्रार्द्धंसंप्रकुर्वीत शक्त्यादद्याच्चदक्षिणाम् ॥६२॥
प्रायश्चित्तंचकृत्वावै भोजयित्वाद्विजोत्तमान् ।
सुवर्णमाषकंदद्यात्ततःशुद्धिर्विधीयते ॥६३॥
चंडालश्वपचैःस्पृष्टे निशिस्नानंविधीयते ।
नवसेत्तत्ररात्रौतु सद्यःस्नानेनशुद्ध्यति ॥ ६४ ॥
अथवसेद्यदारात्रौ अज्ञानादविचक्षणः ।
तदातस्यतुतत्पापं शतधापरिवर्त्तते ॥ ६५ ॥
उद्गच्छंतिहिनक्षत्राण्युपरिष्टाच्चयेग्रहाः ।
संस्पृष्टेरश्मिभिस्तेषामुदकेस्नानमाचरेत् ॥ ६६ ॥

यदि राजा अपने मोहवश होकर उनको दण्ड न दे तो वह पाप सौगुना होकर उस राजा को लगताहै ॥६०॥ फिर प्रायश्चित्त पूरा होने पर ब्राह्मणों को जिमावे और बीसगौ और एक बैल उन ब्राह्मणों को दक्षिणा दे ॥६१॥ यदि किसी मनुष्य के शरीर में मक्खी बैठने से घाव में कीड़े पड़जांय तो अर्द्ध कृच्छ्र प्रायश्चित्तक- रै और यथाशक्ति दक्षिणा भी दे ॥ ६२ ॥ प्रायश्चित्त करके और ब्राह्मणों को जिमा कर एकमासा सोना देने से शुद्धि होती है ॥६३॥ चांडाल अथवा श्व- पच रात में यदि छूलें तो स्नान करना चाहिये । वहां रात में न वसे और शीघ्र स्नानकरनेसे शुद्ध होताहै जो॥६४॥मूर्खरात्रि को अज्ञान से वसे तो उस स- मय वह पाप सौ गुना उसको लगता है ॥ ६५ ॥ जो तारे वा ग्रह टूटते हुए ऊपर को जाते हैं उन तारों अथवा ग्रहों की किरणों से स्पर्श हो जाय तो जल में स्नान करै ॥ ६६ ॥

कुड्यांतर्जलवल्मीक मूषिकोत्करवर्त्मसु
श्मशानेशौचशेषेच नग्राह्याःसप्तमृत्तिकाः ॥६७॥
इष्टापूर्तंतुकर्त्तव्यं ब्राह्मणेनप्रयत्नतः ।
इष्टेनलभतेस्वर्गं पूर्तेमोक्षंसमश्नुते ॥६८॥
वित्तापेक्षंभवेदिष्टं तडागंपूर्तमुच्यते ।
आरामश्चविशेषेण देवद्रोण्यस्तथैवच ॥ ६९ ॥
वापीकूपतडागानि देवतायतनानिच
पतितान्युद्धरेद्यस्तु सपूर्तफलमश्नुते ॥ ७० ॥
शुक्लायामूत्रंगृह्णीया-त्कृष्णायागोःशकृत्तथा ।
ताम्रायाश्चपयोग्राह्यं श्वेतायादधिचोच्यते ॥ ७१ ॥
कपिलायाघृतंग्राह्यं महापातकनाशनम् ।
सर्वतीर्थेनदीतोये कुशैर्द्रव्यंपृथक्पृथक् ॥ ७२ ॥
आहृत्यप्रणवेनैव उत्थाप्यप्रणवेनच ।
प्रणवेनसमालोड्य प्रणवेनतुसंपिबेत् ॥ ७३ ॥

दीवाल के भीतर की-जल के मध्यकी-बामीकी-मूषों की खोदी-मार्ग की-श्मशान की और शौच की बची हुई इन सात स्थानों की मट्टी शुद्धि के लिये ग्रहण नहीं करनी चाहिये ॥६७॥ इष्ट (यज्ञ आदि) और पूर्त (कूप आदि) ब्राह्मण को बड़े प्रयत्न से करने चाहिये। इष्ट से स्वर्ग और पूर्त से मोक्ष प्राप्त होता है ॥६८॥ जैसा धन हो वैसा ही यज्ञ होसकता है। और तालाब और विशेष कर बाग तथा देव द्रोणी (तीर्थ वा प्याऊ) इन्हें पूर्त कहते हैं ॥ ६९ ॥ बावड़ी-कूआ-तालाब और देवमंदिर-इनने यदि पतित (टूटे फूटे) हों तो इनका जो उद्धार (मरम्मत) कराने वाला है वह भी पूर्त के फल (मोक्ष) को भोगता है ॥ ७० ॥ सफेद गौका मूत्र-कालीका गोबर-लालका दूध-श्वेतका दही ॥७१। और कपिला का घी ले तो यह पंचगव्य महापातकों को नष्ट करता है-सब तीर्थों में वा नदीके जलमें इन गोमूत्र आदि द्रव्योंको पृथक् २ कुशाओं से ॥ ७२ ॥ प्रणव का जपकर इकट्ठा करै प्रणव पढ़ पढ़के उठावै और प्रणव का उच्चारण कर के ही पीवै ॥ ७३ ॥

पलाशेमध्यमेपर्णे भांडेताम्रमयेतथा ।
पिबेत्पुष्करपर्णेवा ताम्रेवामृन्मयेशुभे ॥ ७४ ॥
सूतकेतुसमुत्पन्ने द्वितीयेसमुपस्थिते ।
द्वितीयेनास्तिदोषस्तु प्रथमेनैवशुद्ध्यति ॥ ७५ ॥
जातेनशुद्ध्यतेजातं मृतेनमृतकंतथा ।
गर्भसंस्रवणेमासे त्रीण्यहानिविनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥
रात्रिभिर्मासतुल्याभि-र्गर्भस्रावेविशुद्ध्यति ।
रजस्युपरतेसाध्वी स्नानेनस्त्रीरजस्वला ॥ ७७ ॥
स्वगोत्राद्भ्रश्यतेनारी विवाहात्सप्तमेपदे ।
स्वामिगोत्रेणकर्तव्या-स्तस्याःपिंडोदकक्रियाः ॥ ७८ ॥
द्वौपितुःपिंडदानंस्या-त्पिंडेपिंडेद्विनामता ।
षण्णांदेयास्त्रयःपिंडा एवंदातानमुह्यति ॥ ७९ ॥
स्वेनभर्त्रासहश्राद्धं माताभुक्त्वासदैवतम् ।

ढाक के बीचके पत्ते में या तांबे के पात्र में या कमल के पत्ते में अथवा माम (मट्टी) के पात्रमें उस पंचगव्य को पीवै ॥७४॥ सूतक के होनेपर यदि दूसरा सूतक होजाय तो दूसरे सूतक का दोष नहीं होता प्रथम के साथ उस की भी शुद्धि होजाती है ॥७५॥ जन्म अशौच के संग जन्म अशौच की और मृतक अशौच के संग मृतक अशौच की शुद्धि होसकती है। एक महीने के गर्भपात में तीन दिन की अशुद्धि होती है ॥७६॥ जितने मास का गर्भपात हो उतनी ही रात्रियों में शुद्धि होती है—और रज की निवृत्ति हुये पर सुपात्रा रजस्वला स्त्री स्नान से शुद्ध होती है ॥७७॥ स्त्री विवाह के अनन्तर सप्तपदी होने पर अपने मा बाप के गोत्र से पृथक् होजाती है उस के बाद वह मर जावे तो पति के गोत्र से ही उस का पिंड और जलदान आदि कर्म करना चाहिये ॥७८॥ पिता को दो पिण्ड दे और प्रत्येक पिण्ड में दो नाम (सपत्नीक) आते हैं छः को तीन पिण्ड देने चाहिये ऐसे करने से पिण्डों का दाता मोहित नहीं होता ॥ ७९ ॥ माता और पितामही (दादी) और प्रपितामही (पड़दादी) ये तीनों अपने पतिओं के संग देवता (विश्वेदेवा) समेत

पितामह्यपिस्वेनैव स्वेनैवप्रपितामही ॥ ८० ॥
वर्षेवर्षेतुकुर्वीत मातापित्रोस्तुसत्कृतिम् ।
अदैवंभोजयेच्छ्राद्धं पिंडमेकंतुनिर्वपेत् ॥ ८१ ॥
नित्यंनैमित्तिककाम्यं वृद्धिश्राद्धमथापरम् ।
पार्वणंचेतिविज्ञेयं श्राद्धंपंचविधंबुधैः ॥ ८२ ॥
ग्रहोपरागेसंक्रांतौ पर्वोत्सवमहालये ।
निर्वपेत्त्रीन्नरःपिण्डा-नेकमेवमृतेहनि ॥ ८३ ॥
अनूढानपृथक्कन्या पिंडेगोत्रेचसूतके ।
पाणिग्रहणमंत्राभ्यां स्वगोत्राद्भ्रश्यतेततः ॥ ८४ ॥
येनयेनतुवर्णेन याकन्यापरिणीयते ।
तत्समंसूतकंयाति तथापिंडोदकेपिच ॥ ८५ ॥
विवाहेचैवसंवृत्ते चतुर्थेहनिरात्रिषु ।
एकत्वंसाभवेद्भर्तुः पिंडेगोत्रेचसूतके ॥ ८६ ॥
प्रथमेन्हिद्वितीयेवा तृतीयेवाचतुर्थके ।
अस्थिसंचयनंकार्यं बंधुभिर्हितबुद्धिभिः ॥ ८७ ॥

श्राद्ध को भोगती है ॥ ८० ॥ (प्रतिवर्ष) माता और पिता का सत्कार (श्राद्ध) करै देवता (विश्वेदेवा) के बिना श्राद्ध जिमावे और एक पिण्ड दे ॥ ८१ ॥ नित्य नैमित्तिक काम्य वृद्धि श्राद्ध, और पार्वण यह पांच प्रकार का श्राद्ध बुद्धिमान् जाने। ग्रहण–संक्रांति–पर्व–उत्सव–और महालय (कनागत) इन में मनुष्य तीन पिण्ड दे और जिस दिन माता पिता आदि मरे हों उस दिन एक ही पिण्ड देवे ८३। बिना विवाही कन्या पिण्ड गोत्र और सूतकों पृथक् नहीं है फिर विवाह के मन्त्रों से अपने गोत्र से पृथक् हो जाती है ॥ ८४॥ जिस २ वर्णों के पुरुष के संग जिस कन्या का विवाह हो उसी वर्णके समान सूतक और पिण्ड वा जलदान को प्राप्त होती है ८५ विवाह हुये पश्चात् वह कन्या चौथे दिन रात्रि में पिण्ड-गोत्र, और सूतक में पति की एकता को प्राप्त होती (अर्थात् चतुर्थी कर्म का होम होने पर कन्या पति के गोत्र में मिल जाती है) ॥ ८६ ॥ पहले दूसरे-तीसरे-अथवा चौथे दिन हितकारी बन्धु अस्थि संचयन करें ॥८७॥

चतुर्थेपंचमेचैव सप्तमेनवमेतथा ।
अस्थिसंचयनंप्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥ ८८ ॥
एकादशाहेप्रेतस्य यस्यचोत्सृज्यतेवृषः ।
मुच्यतेप्रेतलोकात्सः स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ८९ ॥
नाभिमात्रेजलेस्थित्वा हृदयेनानुचिंतयेत् ।
आगच्छंतुमेपितरो गृह्णंत्वेतान्जलाञ्जलीन् ॥ ९०
हस्तौकृत्वातुसंयुक्तौ पूरयित्वाजलेनच ।
गोशृंगमात्रमुद्धृत्य जलमध्येजलंक्षिपेत् ॥९१ ॥
आकाशेचक्षिपेद्वारि वारिस्थोदक्षिणामुखः ।
पितृणांस्थानमाकाशं दक्षिणादिक्तथैवच ॥९२॥
आपोदेवगणाःप्रोक्ता आपःपितृगणास्तथा ।
तस्मादप्सुजलंदेयं पितृणांहितमिच्छता ॥९३ ॥
दिवासूर्यांशुभिस्तप्तं रात्रौनक्षत्रमारुतैः ।

चौथे–पांचवें–सातवें–नवमें–दिन क्रम से ब्राह्मण४ क्षत्रिय ५–वैश्य७–शूद्र९–को अस्थि संचयन करना कहा है ॥८८॥ जिस मरे पुरुष के लिये ग्यारवें दिन वृषोत्सर्ग किया जाता है वह प्रेत, प्रेतलोक से छूट कर स्वर्ग लोक में पूजा को प्राप्त होता है ॥ ८९ ॥ नाभि (टूंडी) तक जल में घुसकर और मन से यह चिंता (स्मरण) करे कि मेरे पितर आवें और ये जल की अंजली ग्रहण करें ॥ ९० ॥ दोनों हाथ मिलाकर और जल से भरकर गौके सींग के प्रमाण हाथ ऊंचा उठा कर जल के बीच में जल को फेंक दे ॥ ९१ ॥ दक्षिणदिशा की ओर मुख कर जल में खड़ा हुआ पुरुष आकाश में जल को फेंके क्यों कि आकाश और दक्षिण दिशा ये दोनों पितरों का स्थान हैं ॥ ९२॥ देवता और पितरों के गण जल रूप ही हैं इस से जो पितरों के हित की इच्छा करै वह जल में ही जल दे (तर्पण करे) ॥ ९३ ॥ दिनमें सूर्य की किरणों से तप्त–और रात में नक्षत्र तथा पवन से और संध्या के समय इन दोनों से जल सदा

संध्ययोरण्युभाभ्यांच पवित्रंसर्वदाजलम् ॥९४ ॥
स्वभावयुक्तमव्याप्त ममेध्येनसदाशुचिः ।
भांडस्थंधरणीस्थंवा पवित्रंसर्वदाजलम् ॥९५॥
देवतानांपितृणांच जलेदद्याज्जलांजलीन् ।
असंस्कृतप्रमीतानां स्थलेदद्याज्जलांजलीन् ॥९६ ॥
श्राद्धेहवनकालेच दद्यादेकेनपाणिना ।
उभाभ्यांतर्पणेदद्या-दितिधर्मोव्यवस्थितः ॥ ९७ ॥

इतियमप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम्

पवित्र है ॥ ९४ ॥ अपवित्र वस्तु जिस में न मिली हो ऐसा स्वाभाविक जल सदा पवित्र है पात्र का हो अथवा भूमि पर का हो जल सदा पवित्र है॥९५॥ देवता और पितरों को तो जल में जल की अंजली दे और जो संस्कार (यज्ञोपवीत) से पूर्व ही मरगये हैं उन को स्थल में दे ॥९६ ॥
श्राद्ध और होम के समय एक हाथ से अंजली दे और तर्पण में दोनों हाथों से यह धर्म की व्यवस्था है ॥ ९७ ॥

इति यमप्रणीते धर्मशास्त्रे भावार्थः समाप्तः ॥

आपस्तंबस्मृतिप्रारंभः

आपस्तम्बंप्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविनिर्णयम् ।
दूषितानांहितार्थाय वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १ ॥
परेषांपरिवादेषु निवृत्तमृषिसत्तमम् ।
विविक्तदेशआसीन-मात्मविद्यापरायणम् ॥ २ ॥
अनन्यमनसंशांतं तत्वस्थंयोगवित्तमम् ।
आपस्तंबमृषिंसर्वे समेत्यमुनयोब्रुवन्
भगवन्मानवाःसर्वे असन्मार्गेस्थितायदा ।
चरेयुर्धर्मकार्याणि तेषांब्रूहिविनिष्कृतिम् ॥ ४ ॥
यतोऽवश्यंगृहस्थेन गवादिपरिपालनम् ।
कृषिकर्मादिचापत्सु द्विजामन्त्रणमेवच ॥ ५ ॥
बालानांस्तन्यपानादि कार्यंचपरिपालनम् ।
देयंचानाथकेवश्यं विप्रादीनांचभेषजम् ॥ ६ ॥

पापियों के हितके अर्थ आपस्तंब ऋषिके कहे प्रायश्चित्त के विशेष निर्णय को वर्णोंके लिये यथाक्रम कहते हैं ॥१॥ पराई निंदा से रहित और ऋषियों में उत्तम एकांत में बैठे हुये ब्रह्मज्ञान में तत्पर ॥ २ ॥ एकाग्र चित्त शांतरूप- और तत्वज्ञानी और अत्यंत योगके जानने वाले, आपस्तंब ऋषि से इकट्ठे हो कर संपूर्ण मुनि बोले ॥ ३ ॥ हे भगवन् ? जब सब मनुष्य अधर्म में स्थित हुये धर्मके काम करनाचाहते हों तो उन का प्रायश्चित्त कहिये ॥४॥ जिससे गृ- हस्थी को अवश्य गौ आदिका पालन आपत्काल में-कृषि आदि कर्म-ब्राह्मणों को भोजन कराना ॥५॥ बालकोंको स्तन्य (दूध) पिलाना आदि-बालकोंकी पा- लना करना-अनाथों को अवश्य देना-और ब्राह्मणादिकों को औषध देना-इतने कर्म अवश्यकरने चाहिये ॥ ६ ॥

एवंकृतेकथंचित्स्या-त्प्रमादोयद्यक'मतः ।
गवादीनांततोस्माकं भगवन्ब्रूहिनिष्कृतिम् ॥ ७ ॥
एवमुक्तःक्षणंध्यात्वा प्रणिपातादधोमुखः ।
दृष्ट्वाऋषीनुवाचेद-मापस्तंबःसुनिश्चितम् ॥ ८ ॥
बालानांस्तनपानादि-कार्येदोषोनविद्यते ।
विपत्तावपिविप्राणा-मामंत्रणचिकित्सने ॥ ९ ॥
गवादीनांप्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तंतृणादिषु ।
केचिदाहुर्नदोषोत्र स्नेहेलवणभेषजे ॥ १० ॥
औषधंलवणंचैव स्नेहंपुष्ट्यर्थभोजनम् ।
प्राणिनांप्राणवृत्यर्थं प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ ११ ॥
अतिरिक्तंनदातव्यं कालेस्वल्पंतुदापयेत् ।
अतिरिक्तेविपन्नानां कृच्छ्रमेवविधीयते ॥ १२ ॥
त्र्यहंनिरशनंपादः पादश्चायाचितंत्र्यहम् ।

इस प्रकार करते हुए यदि किसी प्रकार अज्ञान से गौ आदिकों का प्रमाद (अपराध) होजाय तो हे भगवन् ! उस से हमारा प्रायश्चित्त कैसे हो यह कहो ॥७॥ इस प्रकार पूछने पर नमस्कार से नीचे को मुखकर-क्षणभर ध्यान करके और ऋषियोंको देखकर आपस्तंब मुनि सम्यक्प्रकार निश्चित वचन बोले ॥८॥ बालकों को दूध पानकराने, और ब्राह्मणों के भोजन कराने, तथा औषध करने में यदि विपत्ति (मरण) भी हो जाय तो दोष नहीं है ॥ ९ ॥ गौ आदि के तृण आदि से मरने में प्रायश्चित्त की विधि कहते हैं कई आचार्य यह कहते हैं कि स्नेह (तेल आदि) लवण औषध में अर्थात् इन के देने से गौ मर· जाय तो दोष नहीं ॥ १० ॥ औषध-लवण-स्नेह-पुष्टि के लिये भोजन-ये यदि प्राणियों की वृत्ति (जीने) के लिये दिये जायं तो इन से मरने में प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ११ ॥ इस से भोजन प्रमाण से अधिक न दे किन्तु समय (क्षुधाकाल) पर थोड़ा दे यदि अधिक देने पर कोई प्राणी मरजाय तो कृच्छ्र करना कहा है ॥ १२ ॥ तीन दिन भोजन न करना यह प्रथम पाद-और तीन दिन तक

सायंत्र्यहंतथापादः पादःप्रातस्तथात्र्यहम् ।
प्रातःसायंदिनार्द्धंच पादोनंसायवर्जितम् ।
प्रातःपादंचरेच्छूद्रः सायंवैश्यस्यदापयेत् ॥ १४ ॥
अयाचितंतुराजन्ये त्रिरात्रंब्राह्मणस्यच ।
पादमेकंचरेद्रोधे द्वौपादौबंधनेचरेत् ॥ १५ ॥
योजनेपादहीनंच चरेत्सर्वंनिपातने ।
घंटाभरणदोषेण गोस्तुयत्रविपद्भवेत् ॥ १६ ॥
चरेदर्द्धव्रतंतत्र भूषणार्थंकृतंहितत् ।
दमनेवानिरोधेवा संघातेचैवयोजने ॥ १७ ॥
स्तंभशृंखलपाशैश्च मृतेपादोनमाचरेत् ।
पाषाणैर्लगुडैर्वापि शस्त्रेणान्येनवाबलात् ॥ १८ ॥
निपातयंतियेगास्तु-स्तेषांसर्वंविधीयते ।
प्राजापत्यंचरेद्विप्रः पादोनंक्षत्रियस्तथा ॥१९॥

बिना मांगे जो मिले वही खाना यह दूसरा पाद-तीन दिन तक सायंकाल में खाना यह तीसरा पाद तथा तीन दिन तक प्रात काल में खाना यह चौथा पाद-कृच्छ्र का होता है ॥१३॥ प्रातःकाल और सायंकाल में तीन २ दिन व्रत के नियम से खाना उसे दिनार्द्ध-और सायंकाल वाले तीन दिन के व्रत को छोड़ कर नौ दिन के व्रत पादोन-कहते हैं। प्रायश्चित्त के विषय में शूद्र तक प्रातःपाद-और वैश्य सायंपाद को करे ॥ १४ ॥ क्षत्रिय अयाचित-और ब्राह्मण तीन दिन निराहार उपवास करै-रोकने में जो गाय का मरण होय तो एक पादव्रत और बांधने में दो पादव्रत करावे ॥ १५ ॥ योजन (गाड़ी हलादि में जोड़ने) में पादोन व्रत और निपातन (गिराना या घायल करने) में संपूर्ण कृच्छ्र व्रत करावे। गौके गले में घंटा बांधने से यदि गौका मृत्यु हो जाय ॥१६॥ तो दिनार्धकृच्छ्र व्रत करावे क्योंकि वह भूषण के लिये है-और दमन--वश में करने या रोकने के लिये काष्ठ घटा (जो लकड़ी गौ के गले में लटका करे है) बांधने से ॥१७॥ और खूंटा-सांकल-रस्सी-से गौ मर जाय तो पादोन व्रत करै। पत्थर लट्ठ अथवा अन्य शस्त्रों से वा बल से ॥१८॥ जो पापी पुरुष गौ को मारें तो संपूर्ण कृच्छ्र करें ब्राह्मण प्राजापत्य-क्षत्रिय पादोन व्रत करै ॥१९॥

कृच्छ्रार्द्धंतुचरेद्वैश्यः पादंशूद्रस्यदापयेत् ।
द्वौमासौपाययेद्वत्सं द्वौमासौद्वौस्तनौदुहेत् ॥२० ॥
द्वौमासावेकवेलायां शेषकालंयथारुचि ।
दमतामर्द्धमासेन गौस्तुयत्र विपद्यते ॥२१ ॥
सशिखंवपनंकृत्वा प्राजापत्यंसमाचरेत् ।
हलमष्टगवंधर्म्यं षड्गवंजीवितार्थिनाम् ॥२२॥
चतुर्गवंनृशंसानां द्विगवंहिजिघांसिनाम् ।
अतिवाहातिदोहाभ्यां नासिकाभेदनेनवा ॥२३॥
नदीपर्वतसंरोहे मृतेपादोनमाचरेत् ।
ननारिकेलवालाभ्यां नमुंजेननचर्मणा ॥२४॥
एभिर्गास्तुनवध्नीया-द्वध्वापरवशोभवेत् ।
कुशैःकाशैश्चवध्नीया-द्वृषभंदक्षिणामुखम् ॥२५॥
पादलग्नाहिदाहेषु प्रायश्चित्तंनविद्यते ।

वैश्य कृच्छ्रार्द्ध व्रत और शूद्र पादकृच्छ्र करै-ढ़ाई गौका दूध दो महीने तक बछड़े को पिलावे पीछे दो महीने दो थन दुहै ॥ २० ॥ पीछे दो महीने एक समय में ही दुहै और शेष (बाकी) समय में अपनी रुचि के अनुसार दुहै वश में करने के लिये गोह बांधने आदि से दश वा पंद्रह दिन के भीतर यदि गौ मरजाय ॥ २१ ॥ तो शिखा समेत मुंडन करा कर प्राजापत्य व्रत करै=आठ बैल का हल धर्म का और छः बैल का हल अपने जीविका के लिये है ॥२२॥ चार बैल का हल कठोरों का…और दो बैलों का हत्यारों का है। अत्यंत बोझ रखने से अथवा अत्यंत दुहने से अथवा नासिका में नाथने से ॥ २३ ॥ नदी में अथवा पर्वत के चढ़ने पर यदि गौ मरजाय तो पादोन व्रत करै-नारीयल की रस्सी—बाल मूंज—और चाम ॥२४॥ इन से बैलों गौओं को न बांधे क्योंकि इन से बांधने से परवश होता है किन्तु कुशा और कांसों से दक्षिण दिशा के सन्मुख बैल को बांधे ॥ २५ ॥ पाद में कंकर आदि लगने से सांप के काटने से और जलने से गौके मरने में और बहुत गौओं के बांधने

व्यापन्नानांबहूनांतु रोधनेबंधनेपिच ॥२६ ॥
भिषङ्मिथ्योपचारैश्च द्विगुणंगोव्रतंचरेत् ।
शृंगभंगेस्थिभंगेच लांगूलस्यचकर्तने ॥२७ ॥
सप्तरात्रंपिबेद्व्रजं यावत्स्वस्थापुनर्भवेत् ।
गोमूत्रेणतुसंमिश्रं यावकंभक्षयेद्द्विजः॥२८॥
एतद्विमिश्रितंवज्रं मुक्तंचोशनसास्वयम् ।
देवद्रोण्यांविहारेषु कूपेष्वायतनेषुच ॥२९ ॥
एषुगोषुविपन्नासु प्रायश्चित्तंनविद्यते ।
एकायदातुबहुभि-र्दैवाद्व्यापादिताक्वचित् ॥ ३० ॥
पादंपादंतुहत्याया-श्चरेयुस्तेपृथक्पृथक् ।
यंत्रणेवाचिकित्सार्थे मूढगर्भविमोचने ॥३१ ॥
यत्ने कृतेविपत्तिश्चे-त्प्रायश्चित्तंनविद्यते ।
सरोमंप्रथमेपादे द्वितीयेश्मश्रुधारणम् ॥ ३२ ॥
तृतीयेतुशिखाधार्या सशिखंतुनिपातने ।

अथवा रोकने में भी प्रायश्चित्त नहीं है ॥२६। वैद्य की अन्यथा चिकित्सा (इलाज) से यदि गौ मर जाय तो गोहत्या का द्विगुण प्रायश्चित्त करे और सींग वा हाड टूट जाय अथवा गौकी पूंछ कटजावे ॥ २७ ॥ तो सात दिन तक वज्र (गोमूत्र मिले जौ के सत्तू वज्र कहाते हैं) पीवे और जब तक गौ स्वस्थ (अच्छी हो) तबतक द्विज गोमूत्र को मिला कर जौ भक्षण करे ॥ २८ ॥ यह मिश्रित वज्र उशना ऋषिने स्वयं कहा है। देवद्रोणी (तीर्थ) डोलने फिरने में- कूप में गिरने से ॥२९। इन स्थानों में यदि गौ मरजाय तो प्रायश्चित्त नहीं है। और यदि कभीएक गौ को बहुत मनुष्य मारदें ॥ ३० ॥ तो वे सब गोहत्या का चौथाई २ पृथक् २ प्रायश्चित्त करें। यंत्रण (बांधना) अथवा चिकित्सा के लिये मूढ (मरे) गर्भ के निकालने में ॥ ३१ ॥ यदि यत्न करने पर भी विपत्ति (दुःख वा मरण) हो जाय तो प्रायश्चित्त नहीं है। प्रथम पाद प्रायश्चित्त में रोमों का, और द्विपाद प्रायश्चित्त में श्मश्रु (डाढी) को छोड़ कर ॥ ३२ ॥ और गौके

सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदंगुलद्वयम् ॥ ३३ ॥
एवमेवतुनारीणां सिरसोमुंडनंस्मृतम् ।
इत्यापस्तम्बोये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
कारुहस्तगतंपण्यं यच्चपात्राद्विनिःसृतम् ।
स्त्रीबालवृद्धचरितं सर्वमेतच्छुचिस्मृतम् ॥ १ ॥
प्रपास्वरण्येषुजलेषुवैगिरौ द्रोण्यांजलंकेशविनिःसृतंच ।
श्वपाकचांडालपरिग्रहेषु पीत्वाजलंपञ्चगव्येनशुद्धिः ॥२॥
नदुष्येत्संतताधारा वातोद्धूताश्चरेणवः ।
स्त्रियोवृद्धाश्चबालाश्च नदुष्यन्तिकदाचन ॥ ३ ॥
आत्माशय्याचवस्त्रंच जायापत्यंकमण्डलुः ॥
आत्मनःशुचीन्येतानि परेषामशुचीनितु ॥ ४ ॥
अन्यैस्तुखानिताःकूपा–स्तडागानितथैवच ।
एषुस्नात्वाचपीत्वाच पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥ ५ ॥
उच्छिष्टमशुचित्वंवं यच्चविष्टानुलेपने ।

मारडालने में शिखा समेत पुरुष का मुण्डन कहा है–और सब केशों का ऊपर को उभार कर दो दो अंगुल कटादे ॥ ३३ ॥ यह स्त्रियों के केशों का मुण्डन कहा है ॥ इत्यापस्तम्बीये धर्म शास्त्रे प्रथमोऽध्यायभाषा ॥

कारीगर के हाथ का वस्तु–और वेचने योग्य–तथा जो वस्तु पात्र से बाहर निकाला हो–स्त्री, बाल वृद्ध इन का आचरण, यह सब शुद्ध कहा है ॥ १ ॥ प्रपा (प्याऊ) वन का जल पर्वत का–द्रोणी (डुंगी वा मशक) का केशों का निचुड़ा हुआ और श्वपाक तथा चांडाल के घर का जल पीकर पंचगव्य से शुद्धि होती है ॥ २ ॥ निरन्तर पड़ती जल की धारा और पवन की उड़ाई धूल तथा स्त्री वृद्ध और बालक इतने वस्तु कभी भी दूषित (अशुद्ध) नहीं होते ॥३॥ शरीर शय्या–वस्त्र स्त्री–संतान–पात्र–ये अपने ही शुद्ध होते हैं और अन्य मनुष्यों के अन्यके लिये कभी शुद्ध नहीं होते ॥४॥ अन्य निकृष्ट मनुष्योंके खुदवाये जो कूप अथवा तालाब हैं उनमें स्नान कर वा जल पीके पञ्चगव्य पीने सेशुद्धि होती है ॥५॥ उच्छिष्ट–अशुद्ध–और मल जिसमें लगा हो ये सब जल

सर्वंशुद्ध्यतितोयेन तोयमर्केणशुद्ध्यति ॥ ६ ॥
सूर्यरश्मिनिपातेन मारुतस्पर्शनेनच ।
गवांमूत्रपुरीषेण तत्तोयंतेनशुद्ध्यति ॥ ७ ॥
अस्थिचर्मादियुक्तंत खरश्वानोपदूषितम् ।
उद्धरेदुदकंसर्वं शोधनंपरिमार्जनम् ॥ ८ ॥
कूपोमूत्रपुरीषेण यवनेनापिदूषितः ।
श्वशृगालखरोष्ट्रैश्च क्रव्यादैश्चजुगुप्सितः ॥ ९ ॥
उद्धृत्यैवचतत्तोयं सप्तपिंडान्समुद्धरेत् ।
पंचगव्यंमृदापूतं कूपेतच्छोधनंस्मृतम् ॥ १० ॥
वापीकूपतडागानां दूषितानांचशोधनम् ।
कुंभानांशतमुद्धृत्य पंचगव्यंततःक्षिपेत् ॥ ११ ॥
यस्तुकूपात्पिबेत्तोयं ब्राह्मणःशवदूषितात् ।
कथंतत्रविशुद्धिःस्या-दितिमेसंशयोभवेत् ॥ १२ ॥
अक्लिन्नेनचभिन्नेन केवलंशवदूषिते ।

से शुद्ध होते हैं और वह जल किससे शुद्ध होता है ॥ ६ ॥ सूर्य की किरणों के पड़ने से और पवन के लगने से तथा गौओं के मूत्र और गोबर से वह जल शुद्ध होता है ॥ ७ ॥ जिस जलके पात्रमें हाड़—वा चाम पड़ा हो अथवा गधा कुत्ता इनसे अपवित्र हो उस कूपादि के सब जल को निकाल कर उस को अच्छे प्रकार साफ करे ॥ ८ ॥ मूत्र—विष्ठा इनके पड़ने से और यवन के जल भरने से—कुत्ता, गीदड़ गधा ऊंट और मांस के खाने वालों से कूप भी दूषित (अशुद्ध) होजाता है ॥ ९ ॥ उस कूपके जलको निकाल कर सात मिट्टीके पिंड (ढले) कूपमें से निकाले और पञ्चगव्य तथा पवित्र मिट्टी उसमें डालदे यह कुएका शोधन कहा है ॥ १० ॥ बावड़ी—कूप—तालाब ये यदि अपवित्र होजायं तो सौ १०० घड़ाजल निकाल कर पंचगव्य डालदे ॥ ११ ॥ जो ब्राह्मण शव (मुर्दा) से अशुद्ध कुए के जलको पीले तब शुद्धि कैसे हो यदि यह संदेह मुझे होय तो ॥ १२ ॥ जो मुर्दा (रुधिर से भीगा नहो) जिसका कोई

पीत्वाकूपादहोरात्रं पंचगव्येनशुद्ध्यति ॥ १३ ॥
क्लिन्नेभिन्नेशवेचैव तत्रस्थयदितत्पिबेत् ।
शुद्धिश्चांद्रायणंतस्य तप्तकृच्छ्रमथापिवा ॥ १४ ॥

इत्यापस्तम्बीये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अंत्यजातिरविज्ञातो निवसेद्यस्यवेश्मनि ।
तस्यज्ञात्वातुकालेन द्विजाःकुर्वन्त्यनुग्रहम् ॥ १ ॥
चान्द्रायणंपराकोवा द्विजातीनांविशोधनम् ।
प्राजापत्यंतुशूद्रस्य शेषतदनुसारतः ॥ २ ॥
यैर्भुक्तंतत्रपक्वान्नं कृच्छ्रंतेषांप्रदापयेत् ।
तेषामपिचयैर्भुक्तंकृच्छ्रपादंप्रदापयेत् ॥ ३ ॥
कूपैकपानैर्दुष्टानां स्पर्शसंसर्गदूषणात् ।
तेषामेकोपवासेन पंचगव्येनशोधनम् ॥ ४ ॥
बालोवृद्धस्तथारोगी गर्भिणीवायुपीडिता ।

अंग टूटा हो) ऐसे मुर्दों से कूप अशुद्ध होतो उस कुएके जल को पीकर दिन १ रात उपवास करके पंचगव्य से शुद्ध होता है ॥१३॥ यदि रुधिर से भीगा और टूटे अंग वाला मुर्दा जिस कूप में पड़ा हो और उसके जलको पीले तो चांद्रायण अथवा तप्त कृच्छ्र से शुद्धि होती है ॥१४॥ बिना जाना अन्त्यजाति चाण्डालादि जिस मनुष्य के घरमें बसे और फिर वह जान पड़े तो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य उस अंत्यज पर दया करें अर्थात् दंड न दें ॥१॥ और द्विजाति चांद्रायण अथवा पराक व्रत करें और शूद्र प्राजापत्य और शेष जाति (सूत आदि) अपनी २ जातिके अनुसार प्रायश्चित्त करें ॥२॥ और जिन्होंने वहां पक्वान्न खाया हो उनको कृच्छ्र व्रत देना चाहिये । और वहां पक्वान्न खाने वालों का जिन्होंने खाया हो उन को चौथाई कृच्छ्रव्रत करावें ॥३॥ नीचों के स्पर्श और समागम के दोष से तथा एक कुए का जल पीने से जो अशुद्ध हुयेहैं उन का एक उपवास और पंचगव्य शोधक है ॥४॥ बालक,वृद्ध,रोगी,और वायु की पीड़ा वाली गर्भवती स्त्री इन को रात्रि भर व्रत

तेषांनक्तंप्रदातव्यं बालानांप्रहरद्वयम् ॥ ५ ॥
अशीतीर्यस्यवर्षाणि बालोवाप्यूनषोडशः ।
प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियोव्याधितएवच ॥ ६ ॥
न्यूनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षाधिकस्यच ।
चरेद्गुरुःसुहृद्वापि प्रायश्चित्तंविशोधनम् ॥ ७ ॥
अथैतैःक्रियमाणेषु येषामार्तिःप्रदृश्यते ।
शेषसंपादनाच्छुद्धिः-विपत्तिर्नभवेद्यथा ॥ ८ ॥
क्षुधाव्याधितकायानां प्राणोयेषांविपद्यते ।
येनरक्षन्तिवक्तार-स्तेषांतत्किल्विषंभवेत् ॥ ९ ॥
पूर्णेपिकालनियमे नशुद्धिर्ब्राह्मणैर्विना ।
अपूर्णेष्वपिकालेषु शोधयन्तिद्विजोत्तमाः ॥ १० ॥
समाप्तमितिनोवाच्यं त्रिषुवर्णेषुकर्हिचित् ।

बतावे और बालकों को दो पहर का उपवास ॥ ५ ॥ अस्सी वर्ष का वृद्ध और सोलह वर्ष से न्यून अवस्था का बालक—स्त्री और रोगी—ये सब आधे प्रायश्चित्त के योग्य होते हैं ॥६॥ ग्यारह वर्ष से कम और पांच वर्ष से अधिक जिस की अवस्था हो ऐसे बालक की शुद्धि करने वाले प्रायश्चित्त को गुरु अथवा मित्र करै ॥७॥ यदि ये (बालक) ही अपना प्रायश्चित्त करें और बीच में इन को कष्ट प्रतीत होय तो शेष प्रायश्चित्त को गुरु आदि करें अथवा जैसे इन को विपत्ति दुःख विशेष न हो वैसे ही प्रायश्चित्त को वे करें ॥८॥ प्रायश्चित्त के करने से क्षुधा से पीड़ित होकर जिन का प्राण निकल जाय अर्थात् मर जावे तो जो लोग धर्म (प्रायश्चित्त आदि) के उपदेश करने वाले हैं जो उन के प्राणों की रक्षा नहीं करते अर्थात् शक्ति के अनुसार उन्हें प्रायश्चित्त नहीं बताते तो वह पाप उन उपदेश करने वालों को ही लगता है ॥९॥ यदि समय का नियम पूरा भी हो जाय तो भी ब्राह्मणों के कहे बिना शुद्धि नहीं होती और काल का नियम पूरा न भी हो तो ब्राह्मण शुद्ध कर देते हैं अर्थात् शुद्धि ब्राह्मणों के वचन में है ॥ १० ॥ क्योंकि प्राणों का संशय उत्पन्न होने पर कर्म का

विप्रसंपादनंकर्म उत्पन्ने प्राणसंशये ॥ ११ ॥
संपादयन्तियेविप्राः स्नानतीर्थफलप्रदम् ।
सम्यक्कर्त्तुरपापंस्याद् व्रतीचफलमाप्नुयात् ॥ १२ ॥

इत्यापस्तम्बीये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चांडालकूपभांडेषु योऽज्ञानात्पिबतेजलम् ।
प्रायश्चित्तंकथंतस्य वर्णेवर्णेविधीयते ॥ १ ॥
चरेत्सांतपनंविप्रः प्राजापत्यंतुभूमिपः ।
तदर्धंतुचरेद्वैश्यः पादंशूद्रस्यदापयेत् ॥ २ ॥
भुक्तोच्छिष्टस्त्वनाचान्त-श्चांडालैःश्वपचेनवा ।
प्रमादात्स्पर्शनंगच्छे-त्तत्रकुर्याद्विशोधनम् ॥ ३ ॥
गायत्र्यष्टसहस्रंतु द्रुपदांवाशतंजपेत् ।
जपंस्त्रिरात्रमनश्न-न्पंचगव्येनशुद्ध्यति ॥ ४ ॥

संपादन (पूर्णता) ब्राह्मण ही कर सकता है इस से तीनों वर्णों (क्षत्रिय वैश्य शूद्र) के विषय में कभी भी कोई पुरुष किसी के कर्म को समाप्त (पूरा) हो गया ऐसे न कहै ॥ ११ ॥ जो ब्राह्मण तीर्थ स्नान के फल को देने वाला स्नान किसी अन्य की शुद्धि के लिये किसी अन्य पुरुष से करवाते हैं वहां प्रायश्चित्त करने वाला सम्यक् शुद्ध होता और व्रती (जिस को प्रायश्चित्त करना था) वह उस के फल को पाता है ॥ १२ ॥

इत्यापस्तम्बीये तृतीयोध्यायः ॥

चांडाल के कुए अथवा पात्र में यदि अज्ञान से जल पीले तो उस पाप का प्रत्येक [illegible] कैसे प्रायश्चित्त करे ॥ १ ॥ ब्राह्मण सांतपन-क्षत्रिय प्राजापत्य, वैश्य [illegible] प्राजापत्य, और शूद्र चौथाई प्राजापत्य व्रत करे ॥ २ ॥ भोजन कर [illegible] उच्छिष्ट ब्राह्मण आचमन करने से पूर्व यदि चांडाल वा श्वपच से भूल कर छू जाय तो वहां विशोधन (प्रायश्चित्त) करै ॥ ३ ॥ आठ ८००० हज़ार गायत्री अथवा सौ १०० द्रुपदा मंत्र को जपै और जपता हुआ तीन दिन उपवास करके पंचगव्य से शुद्ध होता है ॥ ४ ॥ विष्ठा और मूत्र त्याग किये पश्चात्

चांडालेनयदास्पृष्टो विण्मूत्रेकुरुतेद्विजः ।
प्रायश्चित्तंत्रिरात्रंस्या-द्भुक्तोच्छिष्टःपडाचरेत् ॥ ५ ॥
पानेमैथुनसंपर्के तथामूत्रपुरीषयोः ।
संपर्कंयदिगच्छेत्तु उदक्याचांत्यजैस्तथा ॥ ६ ॥
एतैश्चैवयदास्पृष्टः प्रायश्चित्तंकथंभवेत् ।
भोजनेचत्रिरात्रंस्या-त्पानेतुत्र्यहमेवच ॥ ७ ॥
मैथुनेपादकृच्छ्रंस्या-त्तथामूत्रपुरीषयोः ।
दिनमेकंतथामूत्रे पुरीषेतुदिनत्रयम् ॥ ८ ॥
एकाहंतत्रनिर्दिष्टं-दंतधावनभक्षणे ।
वृक्षारूढेतुचांडाले द्विजस्तत्रैवतिष्ठति ॥ ९ ॥
फलानिभक्षयंस्तस्य कथंशुद्धिर्विनिर्दिशेत् ।
ब्राह्मणान्समनुज्ञाप्य सवासाःस्नानमाचरेत् ॥ १० ॥
एकरात्रोपितोभुक्त्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति ।
येनकेनचिदुच्छिष्टो ह्यमेध्यंस्पृशतिद्विजः ॥ ११ ॥

यदि द्विज को चांडाल स्पर्श करले तो तीन दिन का उपवास और भोजन के अनन्तर उच्छिष्ट को छूले तो छः दिन का उपवास करे ॥ ५ ॥ जलपान-मैथुन मूत्रविष्ठा करते हुये इन मौकों पर यदि रजस्वला चाण्डाल इनका स्पर्श होजाय ॥६॥ अथवा ये छूलें तो प्रायश्चित्त कैसे हो? रजस्वला आदि का स्पर्श भोजन के समय हो तो तीन दिन और जलपान में भी तीन दिन उपवास ॥७॥ मैथुन में पाद कृच्छ्र वैसेही मूत्र और विष्ठा करने में क्रम से एक दिन और तीन दिन उपवास ॥८॥ और दातौन करने में एक दिन उपवास करे। जिस वृक्ष पर चांडाल चढ़ा हो यदि उसी वृक्ष पर द्विज चढ़ा हुआ ॥ ९ ॥ फल खारहा हो तो उसकी कैसे शुद्धि होनी चाहिये? ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर सचैल स्नान करै॥१०॥और एक दिन उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होजाता है। जिस किसी वस्तु के खाने से उच्छिष्ट द्विज अपवित्र (मल आदि) वस्तु को यदि छूले ॥ ११ ॥

अहोरात्रोषितोभूत्वा पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥ १२ ॥

इत्यापस्तम्बीयेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

चांडालेनयदास्पृष्टो द्विजवर्णःकदाचन ।
अनभ्युक्ष्यपिबेत्तोयं प्रायश्चित्तंकथंभवेत् ॥ १ ॥
ब्राह्मणस्तुत्रिरात्रेण पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ।
क्षत्रियस्तुद्विरात्रेण पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥ २ ॥
अहोरात्रेणवैश्यस्तु पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ।
चतुर्थस्यतुवर्णस्य प्रायश्चित्तंकथंभवेत् ॥ ३ ॥
व्रतंनास्तितपोनास्ति होमोनैवचविद्यते ।
पञ्चगव्यंनदातव्यं तस्यमंत्रविवर्जनात् ॥ ४ ॥
ख्यापयित्वाद्विजानांतु शूद्रोदानेनशुद्ध्यति ।
ब्राह्मणस्ययदोच्छिष्ट-मश्नात्यज्ञानतोद्विजः ॥ ५ ॥
अहोरात्रंतुगायत्र्या जपंकृत्वाविशुद्ध्यति ।

तो एक दिन रात उपवास करके पञ्चगव्य पीने से शुद्ध होता है ॥ १२ ॥

॥ इत्यापस्तम्बीये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

यदि कदाचित् द्विज वर्ण को चांडाल स्पर्श करले और वह द्विज स्नान किये बिना ही जल पीले तो प्रायश्चित्त कैसे हो ? ॥१॥ ब्राह्मण तीन दिन में और क्षत्रिय दोदिन में क्रम से उपवास करके पञ्चगव्य पीने से शुद्ध होते हैं ॥२॥ और वैश्य एक दिनरात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होता है-चौथे वर्ण (शूद्र) का प्रायश्चित्त कैसे हो ? ॥३॥ शूद्र को व्रत नहीं तप नहीं होम नहीं और इसको वेदका अधिकार नहोने से पञ्चगव्य भी नहीं देना चाहिये ॥४॥ परन्तु शूद्र निज अपराध को ब्राह्मणोंको विदित कराकर दानदेने से शुद्ध होता है-यदि द्विज अज्ञान से ब्राह्मण के उच्छिष्ट (जूठा) को खाले ॥५॥ तो एक दिन रात गायत्री का जप करके अच्छे प्रकार शुद्ध होता है और यदि

उच्छिष्टं वैश्यजातीनां भुंक्ते ऽज्ञानाद्द्विजो यदि ॥ ६ ॥
शंखपुष्पीपयःपीत्वा त्रिरात्रेणैवशुद्ध्यति ।
ब्राह्मण्यासहयोऽश्नीया-दुच्छिष्टंवाकदाचन ॥ ७ ॥
नतत्रदोषंमन्यंते नित्यमेवमनीषिणः ।
उच्छिष्टमितरस्त्रीणा-मश्नीयात्स्पृशतेपिवा ॥८॥
प्राजापत्येनशुद्धिःस्या-द्भगवानङ्गिराब्रवीत् ।
अंत्यानांभुक्तशेषंतु भक्षयित्वाद्विजातयः॥९॥
चांद्रायणंतदर्धार्धं ब्रह्मक्षत्रविशांविधिः ।
विण्मूत्रभक्षणेविप्र-स्तप्तकृच्छ्रंसमाचरेत् ॥ १० ॥
श्वकाकोच्छिष्टगोभिश्च प्राजापत्यविधिःस्मृतः ।
उच्छिष्टःस्पृशतेविप्रो यदिकश्चिदकामतः ॥ ११ ॥
शुनःकुक्कुटशूद्रांश्च मद्यभांडंतथैवच ।
पक्षिणाधिष्ठितंयच्च यद्यमेध्यंकदाचन ॥ १२ ॥
अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति ।

वैश्यों के उच्छिष्ट को अज्ञान से द्विज खाले ॥ ६ ॥ तो शंखपुष्पी के जल को पीकर तीन दिन में शुद्ध होता है-जो कदाचित् ब्राह्मणी के संग उच्छिष्ट को ब्राह्मण खाले ॥ ७ ॥ उस में विद्वान् मनुष्य कभी भी दोष नहीं मानते-और यदि अन्य स्त्रियों के उच्छिष्ट को खाले अथवा छूले ॥८॥ तो प्राजापत्य व्रत से शुद्धि होती है यह भगवान् (ऐश्वर्य वाले) अंगिरा ऋषि ने कहा है-यदि अन्त्यजों के भोजन से बचे अन्न को द्विजाति खालें ॥९॥ तो चांद्रायण अर्द्धकृच्छ्र—पादकृच्छ्र—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य क्रमशः करें—और विष्ठा वा मूत्र वा दोनोंके भक्षण में ब्राह्मण तप्त कृच्छ्रव्रतकरै ।१०॥कुत्ता—काक और गौओं के उच्छिष्ट का भक्षण करले तो प्राजापत्य करना चाहिये—यदि कोई उच्छिष्ट ब्राह्मण अज्ञान से॥११॥कुत्ता मुरगा—शूद्र—मदिरा का पात्र—और जिस पर पक्षि बैठा हो ऐसे अपवित्र वस्तु इन का कदाचित्स्पर्शकरले॥१२॥ तो एकदिनरात उपवा

वैश्येनचयदास्पृष्ट उच्छिष्टेनकदाचन ॥ १३ ॥
स्नानंजप्यंचत्रैकाल्यं दिनस्यांतेविशुध्यति ।
विप्रोविप्रेणसंस्पृष्ट उच्छिष्टेनकदाचन ॥ १४ ॥
स्नानांतेचविशुद्धिःस्या–दापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ।

इत्यापस्तंबीये पंचमोऽध्यायः ॥

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामि नीलीवस्त्रस्ययोविधिः ।
स्त्रीणांक्रीडार्थसंभोगे शयनीयेनदुष्यति ॥ १ ॥
पालनेविक्रयेचैव तद्वृत्तेरुपजीवने ।
पतितस्तुभवेद्विप्र–स्त्रिभिःकृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥ २ ॥
स्नानंदानंजपोहोमः स्वाध्यायःपितृतर्पणम् ।
पंचयज्ञावृथास्तस्य नीलीवस्त्रस्यधारणात् ॥ ३ ॥
नीलीरक्तंयदावस्त्रं ब्राह्मणोंगेषुधारयेत् ।
अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति ॥ ४ ॥
रोमकूपैर्यदागच्छेद्रसो नील्यास्तुकर्हिचित् ।

स करके पंचगव्यपीने से शुद्ध होता है। यदि कदाचित् उच्छिष्ट वैश्य ब्राह्मणको छूले ॥१३॥ तो त्रिकाल स्नान और जप करके दिन के अंत में शुद्ध होता है। और जो कदाचित् ब्राह्मण को उच्छिष्ट ब्राह्मण ही छूले ॥१४॥ तो स्नान के अंत में शुद्ध होता है यह आपस्तंब मुनिनेकहा है ॥ ५ ॥

इत्यापस्तम्बीयधर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥

अब आगे नीले वस्त्र की विधि कहते हैं-स्त्रियों के संग क्रीडा के लिये भोग में और शय्या पर नीले वस्त्र का दोष नहीं ॥ १ ॥ नील के पालने, बेचने, और जीविका से ब्राह्मण पतित होता है और वह तीन व्रतकृच्छ्र करने से शुद्ध होता है ॥ २ ॥ जो नीले वस्त्र को धारण करे उस के-स्नान–दान–जप होम–वेद का पाठ–पितरोंका तर्पण और पंचमहायज्ञ करनेवृथा हैं॥३॥ नीले रंगे वस्त्र को यदि ब्राह्मण अंगमें धारण करेतो एकदिनरात उपवास करके पंचगव्य से शुद्ध होता है ॥४॥ यदि कदाचित् रोमकूपों के द्वारा नील का रस अंगमें च-

पतितस्तुभवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥ ५ ॥
नीलीदारुयदाभिंद्या-द्ब्राह्मणस्यशरीरकम् ।
शोणितंदृश्यतेतत्र द्विजश्चांद्रायणंचरेत् ॥ ६ ॥
नीलीमध्येयदागच्छे-त्प्रमादाद्ब्राह्मणःक्वचित् ।
अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति ॥ ७ ॥
नीलीरक्तेनवस्त्रेण यदन्नमुपनीयते ।
अभोज्यंतद्द्विजातीनां भुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत् ॥८॥
भक्षयेद्यश्चनीलींतु प्रमादाद्ब्राह्मणःक्वचित् ।
चांद्रायणेनशुद्धिःस्या-दापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ ९ ॥
यावत्यांवापितानीली तावतीवऽशुचिर्मही ।
प्रमाणंद्वादशाब्दानि अतऊर्ध्वंशुचिर्भवेत् ॥ १० ॥

इत्यापस्तंबीयेषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

स्नानंरजस्वलायास्तु चतुर्थेहनिशस्यते ।

सात्मा को ब्राह्मण पतित होजाता है और तीन कृच्छ्रव्रत करने से शुद्ध होता है ॥ ५ ॥ यदि नील की लकड़ी ब्राह्मण के शरीर में घाव करदे और उस घाव में रुधिर निकल आवे तो चांद्रायण व्रत करै ॥ ६ ॥ यदि अज्ञान से ब्राह्मण नील के खेत के बीच में गमन करै तो एक दिनरात उपवास करके पंचगव्य से शुद्ध होता है ॥ ७ ॥ नील से रंगे वस्त्र को पहन कर जो अन्न परसा जाता है वह अन्न द्विजातियों को अभोज्य है और उसे खालें तो चांद्रायणव्रत करैं ॥८॥ यदि अज्ञान से ब्राह्मण कदाचित् नील को खाले तो चांद्रायणव्रत से शुद्धि होती । है यह आपस्तम्ब मुनि ने कहा है ॥९॥ जितनी पृथ्वी में नील बोया हो उतनी पृथ्वी बारह १२ वर्ष तक अशुद्ध होजाती है बाद शुद्ध होती है ॥१०॥

इत्यापस्तम्बीये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

रजस्वला स्त्री का स्नान चौथे दिन श्रेष्ठ है रज के निवृत्त होने पर स्त्री संग

निवृत्ते रजसि गम्या स्त्री नानिवृत्ते कथंचन ।
रोगेण यद्रजः स्त्रीणा-मत्यर्थं हि प्रवर्तते ।
अशुद्धास्तास्तु नैवेह तासां वैकारिको मदः ॥ २ ॥
साध्वाचारा न तावत्स-रजो यावत्प्रवर्त्तते ।
वृत्ते रजसि साध्वी स्याद् गृहकर्मणि चेंद्रिये ॥ ३ ॥
प्रथमेहनि चांडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेहनि शुद्ध्यति ॥ ४ ॥
अंत्यजातिश्वपाकेन संस्पृष्टा वै रजस्वला ।
अहानि तान्यतिक्रम्य प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥ ५ ॥
त्रिरात्रमुपवासः स्या-त्पञ्चगव्यं विशोधनम् ।
निशां प्राप्य तु तां योनिं प्रजाकारां च कामयेत् ॥६॥
रजस्वलांत्यजैः स्पृष्टा शुना च श्वपचेन च ।

के योग्य होती है रज के निवृत्त न होने पर कभी नहीं होती ॥ १ ॥ जो किसी रोग से स्त्रियों के अत्यन्त रज (रुधिर) निकलता है वे स्त्री उस रज से अशुद्ध नहीं होतीं क्योंकि वह उन का मद विकार से है ॥ २ ॥ जब तक रजोदर्शन रहै तब तक उत्तम आचरण न करै क्योंकि रजोदर्शन की निवृत्ति होने पर ही घर के काम और संग करने योग्य होती है ॥ ३ ॥ प्रथम दिन चांडाली संज्ञा द्वितीय दिन ब्रह्महत्यारी तृतीय दिन रजकी (धोबिन) होती और चौथे दिन शुद्ध होती है ॥ ४ ॥ यदि रजस्वला स्त्री को अंत्यज और श्वपाक स्पर्श करलें तो रजोदर्शन के दिनों को बिताकर प्रायश्चित्त करें ५ तीन दिन उपवास और पंचगव्य का पीना उसका प्रायश्चित्त है । फिर उसी शुद्ध होने की रात्रि में पुरुष का संग करे ॥ ६ ॥ यदि रजस्वला स्त्री को अन्त्यज-कुत्ता-और श्वपच ये स्पर्श करलें तो तीन दिन उपवास के अनन्तर पंचगव्य

त्रिरात्रोपोषिताभूत्वा पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥७॥
प्रथमेऽहनिषड्रात्रं द्वितीयेतुत्र्यहंस्तथा ।
तृतीयेचोपवासस्तु-चतुर्थेवह्निदर्शनात् ॥८॥
विवाहेविततेयज्ञे संस्कारेचकृतेतथा ।
रजस्वलाभवेत्कन्या संस्कारस्तुकथंभवेत् ॥९॥
स्नापयित्वातदाकन्या-मन्यैर्वस्त्रैरलङ्कृताम् ।
पुनर्मेध्याहुतिंहुत्वा शेषंकर्मसमाचरेत् ॥१०॥
रजस्वलातुसंस्पृष्टा प्लवकुक्कुटवायसैः ।
सात्रिरात्रोपवासेन पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥११॥
रजस्वलातुयानारी अन्योन्यंस्पृशतेयदि ।
तावत्तिष्ठेन्निराहारा स्नात्वाकालेनशुद्ध्यति ॥१२॥
उच्छिष्टेनतुसंस्पृष्टा कदाचित्स्त्रीरजस्वला ।
कृच्छ्रेणशुद्ध्यतेविप्रा शूद्रादानेनशुद्ध्यति ॥१३॥

पीने से शुद्ध होती है ॥ ७ ॥ रजस्वला स्त्री रजोदर्शन के प्रथम दिन अन्त्यज आदि स्त्री का स्पर्श कर ले तो छः दिन, दूसरे दिन छूले तो तीन दिन, तीसरे दिन स्पर्श करले तो एक दिन, उपवास करे और यदि चौथे दिन छूले तो अग्नि के देखने से शुद्ध होती है ॥ ८ ॥ विवाह में यज्ञ हो रहा हो और कुछ संस्कार भी हो चुका हो बीच में ही यदि वह कन्या रजस्वला हो जाय तो शेष संस्कार कैसे हो ॥ ९ ॥ उस समय कन्या को स्नान कराकर अन्य वस्त्रों से शोभायमान करे और फिर पवित्र आहुति देकर शेष कर्म को करे ॥ १० ॥ जिस रजस्वला को वानर-मुरगा कौआ छूवें तो वह तीन, दिन उपवास करने और पंचगव्य पीने से शुद्ध होती है ॥११॥ यदि दो रजस्वला स्त्री परस्पर एक दूसरी को छूवें तो शुद्धि के दिन तक उपासी रह कर स्नान से शुद्ध होती है ॥ १२ ॥ यदि कदाचित् रजस्वला स्त्री को कोई उच्छिष्ट पुरुष स्पर्श करले तो ब्राह्मणी स्त्री कृच्छ्र व्रत करनेसे और शूद्र जाति की स्त्री दानसे शुद्ध होतीहै॥१३॥

एकशाखासमारूढाः चांडालावारजस्वला ।
ब्राह्मणेनसमंतत्र सवासाःस्नानमाचरेत् ॥१४॥
रजस्वलायाःसंस्पर्शः कथंचिज्जायतेशुना ।
रजोदिनानांयच्छेषं तत्रोप्यविशुद्ध्यति ॥१५॥
अशक्ताचोपवासेन स्नानंपश्चात्समाचरेत् ।
तथाप्यशक्ताचैकेन पंचगव्येनशुद्ध्यति॥ १६ ॥
उच्छिष्टस्तुयदाविप्रः स्पृशेन्मद्यंरजस्वलाम् ।
मद्यंस्पृष्ट्वाचरेत्कृच्छ्रं तदर्द्धंतुरजस्वलाम् ॥ १७ ॥
उदक्यांसूतिकांविप्र उच्छिष्टःस्पृशतेयदि ।
कृच्छ्रार्द्धं तुचरेद्विप्रः प्रायश्चित्तंविशोधनम् ॥१८॥
चांडालःश्वपचोवापि आत्रेयींस्पृशतेयदि ।
शेषान्हाफालकृष्टेन पंचगव्येनशुद्ध्यति॥ १९ ॥
उदक्याब्राह्मणीशूद्रा-मुदक्यांस्पृशतेयदि ॥

यदि एक वृक्ष की शाखा पर चांडाल-रजस्वला और ब्राह्मण बैठे हों तो ब्राह्मण एक बार सचैल स्नान करे तब शुद्ध होता है ॥ १४ ॥ यदि रजस्वला स्त्री का कुत्ते से किसी प्रकार स्पर्श होजाय तो रज के जो शेष दिन हों उन में उपवास करने से सम्यक् प्रकार शुद्ध होजाती है ॥१५॥ यदि उपवास करनेमें अशक्त हो तो एक उपवास करके स्नान करले और जो स्नान में भी असमर्थ हो तो एक उपवास और पंचगव्य पीने से शुद्ध होती है ॥ १६ ॥ यदि उच्छिष्ट ब्राह्मण मदिरा को अथवा रजस्वला स्त्री को स्पर्श-करले तो क्रमसे कृच्छ्र और अर्द्ध कृच्छ्र व्रत करे ॥ १७ ॥ यदि उच्छिष्ट ब्राह्मण ऐसी रजस्वला को छूले जो सूतिका (जिसके बालक जन्मा हो) हो तो ब्राह्मण कृच्छ्रार्द्ध व्रत करे क्योंकि प्रायश्चित्त ही शुद्ध करने वाला है ॥१८॥ यदि चांडाल अथवा श्वपच आत्रेयी (रजस्वला) का स्पर्श करलें तो वह रजस्वला स्त्री शेष रहे दिन के उपवास और पंचगव्य से शुद्ध होती है ॥ १९ ॥ यदि रजस्वला

अहोरात्रोषिताभूत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति॥ २० ॥
एवंतुक्षत्रियावैश्या ब्राह्मणीचेद्रजस्वला ।
सचैलंप्लवनंकृत्वा दिनस्यांतेघृतंपिबेत् ॥ २१ ॥
सवर्णेषुतुनारीणां सद्यःस्नानंविधीयते ॥
एवमेवविशुद्धिःस्या-दापस्तंबोब्रवीन्मुनिः ॥ २२ ॥

इत्यापस्तंबीयेसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

भस्मनाशुद्ध्यतेकांस्यं सुरयायन्नलिप्यते ।
सुराविण्मूत्रसंस्पृष्टं शुद्ध्यतेतापलेखनैः ॥ १ ॥
गवाघ्रातानिकांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानियानितु ।
दशभस्मभिःशुद्ध्यन्ति श्वकाकोपहतानिच ॥ २ ॥
शौचंसुवर्णनारीणां वायुसूर्येन्दुरश्मिभिः ।
रेतःस्पृष्टंशवस्पृष्टं माविकंतुप्रदुष्यति ॥ ३ ॥
अद्भिर्मृदाचतन्मात्रं प्रक्षाल्यचविशुद्ध्यति ।

ब्राह्मणी रजस्वला शूद्रा का स्पर्श करले तो एक दिन रात उपवास करके पंच-गव्य से शुद्ध होती है ॥ २० ॥ इसी प्रकार क्षत्रिया वैश्या ब्राह्मणीये रजस्वला भी परस्पर एक दूसरी का स्पर्श करले तो सचैल स्नान करके संध्या को घी पीवें ॥ २१ ॥ अपने वर्ण की रजस्वला के छूने में तत्काल ही स्नान कहा है इसी प्रकार शुद्धि होती है यह आपस्तम्ब मुनिने कहा है ॥ २२ ॥

इत्यापस्तम्बीये सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जिस कांसे के पात्र में मदिरा का स्पर्श न हुआ हो वह भस्म से और जिस से मदिरा विष्ठा मूत्र का स्पर्श हुआ हो वह तपाने और रितवाने से शुद्ध होता है ॥ १ ॥ गौके सूंघे-शूद्र के उच्छिष्ट तथा कुत्ता काक के छुये जो कांसे के पात्र हैं वे दशबार भस्म से मांजने से शुद्ध होते हैं ॥ २ ॥ सोना और स्त्रियों की शुद्धि वायु सूर्य और चन्द्रमा की किरणोंसेहोतीहै और वीर्य तथा मुर्दा का स्पर्श जिस में हुआ हो ऐसा ऊनका वस्त्र दूषित (अशुद्ध] है ॥ ३ ॥ परन्तु जल और मिट्टी से जितने में वीर्य आदि लगे हों उतने वस्त्र को धोकर सम्यक् प्रकार

शुष्कमन्नमवेद्यस्य पंचरात्रेणजीर्यति ॥४॥
अन्नंव्यंजनसंयुक्तं मर्द्धमासेमजीर्यति ।
पयस्तुदधिमासेन षण्मासेनघृतंतथा ॥५॥
संवत्सरेणतैलंतु कोष्ठेजीर्यतिवानवा ।
भुंजतेयेतुशूद्रान्नं मासमेकंनिरंतरम् ॥६॥
इहजन्मनिशूद्रत्वं जायंतेते मृताःशुनि ।
शूद्रान्नंशूद्रसम्पर्कः शूद्रेणैवसहासनम् ॥ ७ ॥
शूद्राज्ज्ञानागमःकश्चि ज्ज्वलंतमपिपातयेत् ।
आहिताग्निस्तुयोविप्र शूद्रान्नान्ननिवर्तते ॥ ८॥
तस्यात्मप्रणश्यन्ति आत्माब्रह्मत्रयोग्नयः ।
शूद्रान्नेनतुभुक्तेन मैथुनंयोधिगच्छति ॥ ९ ॥
यस्यान्नंतस्यतेपुत्रा अन्नाच्छुक्रस्यसंभवः ।
शूद्रान्नेनोदरस्थेन यःकश्चिन्म्रियतेद्विजः ॥ १० ॥
संभवेच्छूकरोग्राम्यस्तस्यवाजायतेकुले ।

शुष्क होती है। अवेद्य (शूद्र) का [illegible] अन्न पांच दिन में पचता है ॥४॥ जिसमें व्यंजन (भाजी नमक) मिला हो वह अन्न आधे महीने में—तथा दूध दही एक महीने में और घी छः महीने में ॥ ५ ॥ तैल एक वर्ष में पेट में पचता है अथवा नहीं भी और जो शूद्र के अन्न को एक मास पर्यन्त निरन्तर खाते हैं ॥ ६ ॥ वे इस संसार में शूद्र होते हैं और मरण के अनन्तर कुत्ते की योनि में उत्पन्न होते हैं—शूद्र का अन्न तथा संसर्ग शूद्र के संग एक आसन पर बैठना ॥ ७ ॥ शूद्र से किसी विद्या का ग्रहण करना ये प्रतापी पुरुष को भी पतित करदेते हैं। जो अग्निहोत्री ब्राह्मण शूद्र के अन्न को नहीं त्यागता ॥ ८ । उस के आत्मा (जीव) वेद तीनों अग्नि ये सब नष्ट होजाते हैं शूद्र के अन्नको खाकर जो मैथुन (स्त्री का संग) करता है ॥९ । जिसका वह अन्न है उसी के वे पुत्र हैं क्योंकि अन्नसे ही वीर्य होताहै—शूद्र के अन्न के पेट में रहते हुएजो द्विज मरता है ॥ १० ॥ वह गांव का सूकर होता वा शूद्र के ही कुल में पैदा होता

ब्राह्मणस्यसदाभुंक्ते क्षत्रियस्यतुपर्वणि ॥११॥
वैश्यस्ययज्ञदीक्षायां शूद्रस्यनकदाचन ।
अमृतंब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियस्यपयःस्मृतम् ॥ १२ ॥
वैश्यस्याप्यन्नमेवान्नं शूद्रस्यरुधिरंस्मृतम् ।
वैश्वदेवेनहोमेन देवताभ्यर्चनैर्जपैः ॥ १३ ॥
अमृतंतेनविप्रान्न-मृग्यजुःसामसंस्कृतम् ।
व्यवहारानुरूपेण धर्मेणछलवर्जितम् ॥ १४ ॥
क्षत्रियस्यपयस्तेन भूतानांयच्चपालनम् ।
स्वकर्मणाचवृषभै-रनुसत्याद्यशक्तितः ॥ १५ ॥
खलयज्ञातिथित्वेन वैश्यान्नंतेनसंस्कृतम् ।
अज्ञानतिमिरांधस्य मद्यपानरतस्यच ॥ १६ ॥
रुधिरंतेनशूद्रान्नं विधिमंत्रविवर्जितम् ।
आमंमांसंमधुघृतं धानाःक्षीरंतथैवच ॥ १७ ॥

है ब्राह्मण का अन्न सदा खाना क्षत्रिय का पर्व (अमावस आदि) में ॥ ११ ॥ वैश्य का अन्न यज्ञ की दीक्षा में और शूद्र का कभी न खावे-ब्राह्मण का अन्न अमृत रूप क्षत्रिय का अन्न दूध रूप ॥ १२ ॥ वैश्य का अन्न अन्नही है और शूद्र का अन्न रुधिर रूप है। बलिवैश्व देव होम देवताओं का पूजन जप इन से ॥१३॥ और ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद के मन्त्रों से संस्कृत (शुद्ध) हुआ ब्राह्मण का अन्न अमृत है। व्यवहार के अनुकूल धर्म करने से छल रहित ॥ १४ ॥ सर्व प्राणियों का पालक क्षत्रिय है इस से क्षत्रिय का अन्न दूध है। अपनी शक्ति के अनुसार अपने कर्म से, पशुओं की रक्षा से ॥१५॥ और खल (खरियान) सम्बन्धी यज्ञ से संस्कार(शुद्धि) को प्राप्त हुए वैश्य का अन्न अन्न ही है। अज्ञान के अंधकार से अन्धे और मदिरा के पीने में तत्पर ॥ १६ ॥ विधि और मन्त्र से वर्जित शूद्र का अन्न रुधिर होता है। कच्चा मांस मधु घी भुंजे जौ और दूध ॥१७॥

गुडस्तक्ररसाग्राह्या निवृत्तेनापिशूद्रतः ।
शाकंमांसंमृणालानि तुंवरुःसक्तवस्तिलाः ॥ १८ ॥
रसाःफलानिपिण्याकं प्रतिग्राह्याहिसर्वतः ।
आपत्कालेतुविप्रेण भुक्तंशूद्रगृहेयदि ॥ १९ ॥
मनस्तापेनशुध्येत द्रुपदांवाशतंजपेत् ।
द्रव्यपाणिश्चशूद्रेण स्पृष्टोच्छिष्टेनकर्हिचित् ॥ २० ॥
तद्द्विजेननभोक्तव्य-मापस्तंबोब्रवीन्मुनिः ॥ २१ ॥

इत्यापस्तंबीयेऽष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

भुंजानस्यतुविप्रस्य कदाचित्स्रवतेगुदम् ।
उच्छिष्टस्याशुचेस्तस्य प्रायश्चित्तंकथंभवेत् ॥ १ ॥
पूर्वंशौचंतुनिर्वर्त्य ततःपश्चादुपस्पृशेत् ।
अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुध्यति ॥ २ ॥
अशित्वासर्वमेवान्न-मकृत्वाशौचमात्मनः ।

गुड़ मठा रस इन को निवृत्त पुरुष भी शूद्र से लेले—शाक (भाजी) मांस, कमल की जड़-तुंबी-सत्तू-तिल ॥ १८ ॥ रस-फल-पिण्याक (खली) इन को सब से ले ले यदि आपत्काल में ब्राह्मण शूद्र के घर में भोजन करले ॥ १९ ॥ तो मन के पश्चात्ताप से शुद्ध होता है अथवा सौ १०० द्रुपदा मन्त्र जपे द्रव्य (अन्न आदि) है हाथ में जिस के ऐसे ब्राह्मण को यदि उच्छिष्ट शूद्र छूवे ॥ २०॥ तो उस अन्नको ब्राह्मण न खावे यह आपस्तंब मुनि ने कहा है ॥२१॥

इत्यापस्तंबीये अष्टमोऽध्यायः ॥

भोजन करते हुये ब्राह्मण का यदि मलत्याग होजाय तो उच्छिष्ट और अशुद्ध हुये उस ब्राह्मण का प्रायश्चित्त कैसे हो ॥ १ ॥ पहिले शौच करके आचमन करै पुनः एक दिनरात उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है ॥२॥ देह को शुद्ध किये विना अज्ञान से सर्व प्रकार के भोजन को खाकर तीन दिन

मोहाद्भुक्त्वात्रिरात्रंतु यवान्पीत्वाविशुद्ध्यति ॥३॥
प्रसृतयवसस्येन पलमेकंतुसर्पिषा ।
पलानिपंचगोमूत्रं नातिरिक्तवदाशयेत् ॥ ४ ॥
अलेह्यानामपेयाना-मभक्ष्याणांचभक्षणे ।
रेतोमूत्रपुरीषाणां प्रायश्चित्तंकथभवेत् ॥ ५ ॥
पद्मोदुंबरविल्वाश्च कुशाश्चसपलाशकाः ।
एतेषामुदकंपीत्वा षड्रात्रेणविशुद्ध्यति ॥ ६ ॥
येप्रत्यवसिताविप्रा प्रव्रज्याग्निजलादिषु ।
अनाशकनिवृत्ताश्च गृहस्थत्वंचिकीर्षिताः ॥ ७ ॥
चरेयुस्त्रीणिकृच्छ्राणि त्रीणिचांद्रायणानिवा ।
जातकर्मादिभिःसर्वं पुनःसंस्कारभागिनः ॥
तेषांसांतपनंकृच्छ्रं चांद्रायणमथापिवा ॥ ८ ॥
यद्वेष्टितंकाकबलाकयोर्वा अमेध्यलिप्तंचभवेच्छरीरम्
श्रोत्रेमुखेचप्रविशेच्चसम्यक् स्नानेनलेपोपहतस्यशुद्धिः ९
ऊर्ध्वंनाभेःकरौमुक्त्वा यदंगमुपहन्यते ।

जौ को पीकर सम्यक् प्रकार शुद्ध होता है ॥ ३ ॥ और वे जौ इतने तथा ऐसे पीवे कि एक पसा जौ एक पल भर घी और पांच पल गोमूत्र जिन में हो इस से अधिक न खावे ॥४॥ चाटने पीने और खाने के अयोग्य रेत (वीर्य) मूत्र विष्ठा इन के भक्षण में प्रायश्चित्त कैसे हो ॥ ५ ॥ कमल–गूलर–वेल कुश और ढांक–इन के जल को छः दिन तक पीकर सम्यक् प्रकार शुद्ध होता है ॥ ६ ॥ जो ब्राह्मण पतित हों अथवा संन्यास अग्निहोत्र और तर्पण से निवृत्त हों अर्थात् इन को जिन ने त्यागा हो तथा जो उपवास व्रत से निवृत्त हों परन्तु वे गृहस्थाश्रम में रहना चाहते हों ॥ ७ ॥ वे तो तीन कृच्छ्र अथवा तीन चांद्रायण करैं और जातकर्म से लेकर उन का पुनः संस्कार होना चाहिये। यद्वा सांतपन कृच्छ्र वा चांद्रायण करना ॥ ८ ॥ जो शरीर कौवा–बगुला से घेरा हो अथवा अमेध्य (विष्ठा) से लिप्त हो ॥ ९ ॥ अथवा कान वा मुख में अशुद्ध वस्तु प्रविष्ट हो जाय तो जिस में अपवित्र वस्तु लगा हो सम्यक्

ऊर्ध्वंस्नानमधःशौच मात्रेणैवविशुद्ध्यति ॥१०॥
उपानहावमेध्यंवा यस्यसंस्पृशतेमुखम् ।
मृत्तिकाशोधनंस्नानं पंचगव्यंविशोधनम् ॥ ११ ॥
दशाहाच्छुद्ध्यतेविप्रो जन्महानौस्वयोनिषु ।
षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ॥१२॥
उपनीतंयदात्वन्नं भोक्तारसमुपस्थितम् ॥१३॥
अपीतवत्समुत्सृष्टं नदद्यान्नैवहोमयेत् ।
अन्नेभोजनसम्पन्ने मक्षिकाकेशदूषिते ॥१४॥
अनन्तरंस्पृशेदाप-स्तच्चान्नंभस्मनास्पृशेत् ।
शुष्कमांसमथर्वान्नं शूद्रान्नंचाप्यकामतः ॥१५॥
भुक्त्वाकृच्छ्रंचरेद्विप्रो ज्ञानात्कृच्छ्रत्रयंचरेत् ।
अभुक्तोमुच्यतेयश्च भुक्तोयश्चापिमुच्यते ॥१६॥

प्रकार स्नान करने से उस शरीर की शुद्धि होती है । हाथों को छोड़ कर नाभी से ऊपर जिस अंग में अशुद्ध वस्तु स्पर्श हो जावे ॥ १० ॥ तो स्नान करने से—निचले भाग में होय तो शौच से ही शुद्धि होती है—जिस के मुख में उपानह (जूते, वा अपवित्र वस्तु का स्पर्श हो जाय ॥ ११ ॥ तो वह मिट्टी शरीर पर लगावे और स्नान तथा पंचगव्य से शुद्धि होती है। ब्राह्मण अपनी जाति के जन्म और मरण के सूतक से दश दिन में शुद्ध होता है ॥१२॥ क्षत्रिय वैश्य और शूद्र जातियों के सूतक में क्रम से छः ६ तीन३-एक दिन में शुद्ध होता है—भोजनार्थ भोक्ता के समीप जो अन्न लाया जाता है ॥१३॥ यदि उस अन्न को भोक्ता वैसे ही छोड़ दे तो वह अन्न मरे के अन्न के तुल्य है इस से उस अन्न को किसी को न दे और न उस से होम करे भोजन के लिये जो अन्न बनाया जाय वह अन्न यदि मक्षिका (मक्खी) वा केश से दूषित होजाय ॥१४ तो फिर जल का स्पर्श करे और अन्न में भस्म डाल के शुद्ध करे । सूखा मांस तथा अथर्वा (बढ़ई) और शूद्र का अन्न इन को अज्ञान से ॥ १५ ॥ खाकर ब्राह्मण एक कृच्छ्र और जान कर खावे तो तीन कृच्छ्र करे—अभुक्त (खाये बिना) अथवा भुक्त (खाने पर) जो भोजन से छुटाया जाय ॥१६॥

भोक्ताचमोचकश्चैवपश्चाद्रतिदुष्कृतम् ।
यस्तुभुंजतिभक्तंवा दुष्टंवापिविशेषतः ॥ १७ ॥
अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति ।
उदकेचोदकस्थस्तु स्थलस्थश्चस्थलेशुचिः ॥ १८ ॥
पादौस्थाप्योभयत्रैव आचम्योभयतःशुचिः ।
उत्तीर्याचामेदुदका-दवतीर्यउपस्पृशेत् ॥ १९ ॥
एवंतुश्रेयसायुक्तोवरुणेनाभिपूज्यते ।
अग्न्यागारेगवांगोष्ठे ब्राह्मणानांचसन्निधौ ॥ २० ॥
स्वाध्यायेभोजनेचैव पादुकानांविसर्जनम् ।
जन्मप्रभृतिसंस्कारे श्मशानांतेचभोजनम् ॥ २१ ॥
असपिंडैर्नकर्त्तव्यं चूडाकार्य्यंविशेषतः ।
याजकान्नंनवश्राद्धं संग्रहेचैवभोजनम् ॥ २२ ॥
स्त्रीणांप्रथमगर्भेच भुक्त्वाचांद्रायणंचरेत् ।

सो भोक्ता और छुटानेवाला दोनों पाप के भागी होते हैं—जो खाये हुए जूठे अथवा करयन्त दुष्ट वस्तु को खाता है ॥ १७ ॥ वह एकदिन उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है—जल में पैठा और स्थल में बैठा शुद्ध होता है ॥१८॥दोनों स्थानोंपर स्थित पुरुष दोनों स्थानोंपर पग रखकर आचमन करके शुद्ध होता है यदि जल में पग हों तो तटपर निकाल कर आचमन करै प्रयोजन यह कि आधा जल में आधा बाहर बैठ आचमनादि न करे ॥ १९॥ ऐसे कल्याण से युक्त पुरुष को वरुण भी पूजता है—अग्नि और गौओं की शाला—तथा ब्राह्मणों के समीप॥२०॥स्वाध्याय(वेदकापाठ)भोजन इतनेस्थानोंपर खड़ाऊं त्यागदे—जन्म आदि संस्कार—श्मशानांत (मरेकी क्रिया)का भोजन ॥२१॥ असपिंडों को नहीं करना चाहिये तथा चूडाकर्म (मुंडन) में तो विशेष कर नकरैं—यज्ञ कराने वाले का अन्न नवश्राद्ध (जो मरने से ११ वे दिन होताहै) संग्रह तथा (बहुत मनुष्यों के साथ) में भोजन ॥२२॥ तथा स्त्रियों के प्रथम गर्भाधान में भोजन करके चांद्रायण व्रत करै।ब्रह्मौदन (यज्ञादि जो विशेष भात

अन्नौदनेवसानेच सीमंतोन्नयनेतथा ॥ २३ ॥
अन्नश्राद्धेमृतश्राद्धे भुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत् ।
अप्रजातांतुनारींस्या–न्नाश्नीयादेवतद्गृहे ॥ २४ ॥
अथभुंजीतमोहाद्वा: पूयसंनरकंव्रजेत् ।
अल्पेनापिहिशुल्केन पिताकन्यांददातिय: ॥ २५ ॥
रौरवेबहुवर्षाणि पुरीषंमूत्रमश्नुते ।
स्त्रीधनानितुयेमोहा–दुपजीवन्तिबांधवा: ॥ २६ ॥
स्वर्णयानानिवस्त्राणि तेपापायांत्यधोगतिम् ।
राजान्नमोजआदत्ते शूद्रान्नंब्रह्मवर्चसम् ॥ २७ ॥
असंस्कृतन्तुयोभुंक्ते सभुंक्तेपृथिवीमलम् ।
मृतकेसूतकेचैव गृहीतेशशिभास्करे ॥ २८ ॥
हस्तिच्छायांतुयोभुंक्ते सपाप:पुरुषोभवेत् ।

होताहै) अवसान (जब ब्राह्मण जीम चुकेहों) और सीमन्तोन्नयन (गर्भाधान) ॥२३॥ अन्न के श्राद्ध—मरे के श्राद्ध—इन में भोजन करे तो चांद्रायण व्रत करना चाहिये। जिस स्त्री के संतान न हुआ हो उस के घर भोजन न करे ॥२४॥ जो अज्ञान से खालेवे तो वह पूयस [पीब] के नरक में जाता है—जो पिता कुछ भी शुल्क [मोल] लेकर कन्या को देता है ॥२५॥ वह बहुत वर्षों तक रौरव नरक में विष्ठा मूत्र खाता है—जो कन्या के भाई आदि अज्ञान से स्त्री के धनों से गुजारा करते हैं॥२६॥ तथा स्त्रियों के सोना यान [सवारी] वस्त्र आदि को वर्तते हैं। वे पापी अधोगति (नरक) में जाते हैं—राजा का अन्न बल को और शूद्र का अन्न ब्रह्मतेज को नष्ट करता है ॥ २७ ॥ जो मनुष्य असंस्कृत [अपवित्र] अन्न को खाता है वह पृथिवी के मल को खाता है। मरने पर वा जन्म के सूतक में तथा चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण में ॥२८॥ गजच्छाया * में जो पुरुष खाता है

* जब कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी हो और सूर्य हस्त नक्षत्र पर हों तथा चन्द्रमा मघा नक्षत्र पर हो उसे गजच्छाया योग कहते हैं।

पुनर्भूःपुनरेताच रेतोधाकामचारिणी ॥ २९ ॥
आसांप्रथमगर्भेषु भुक्त्वाचांद्रायणंचरेत् ।
मातृघ्नश्चपितृघ्नश्च ब्रह्मघ्नोगुरुतल्पगः ॥ ३० ॥
त्रिंशपादभुक्तमेतेषां भुक्त्वाचाद्रायणंचरेत् ।
रजकव्याधशैलूष वेणुचर्मोपजीविनः ॥ ३१ ॥
भुक्त्वैषांब्राह्मणश्चान्नं शुद्धिश्चांद्रायणेनतु ।
उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः कदाचिदुपजायते ॥ ३२ ॥
सवर्णेनतदोत्थाय उपस्पृश्यशुचिर्भवेत् ।
उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुनाशूद्रेणवाद्विजः ॥ ३३ ॥
उपोष्यरजनीमेकां पंचगव्येनशुद्ध्यति ।
ब्राह्मणस्यसदाकालं शूद्रप्रेषणकारिणः ॥ ३४ ॥
भूमावन्नंप्रदातव्यं यथैवश्वातथैवसः ।

वह पापी है। पुनर्भू (दूसरे को फेर बिवाही हो) पुनरेता (जो एक से वीर्य लेकर दूसरे से ले) और रेतोधा जो जहां तहां से वीर्य को धारे और व्यभिचारिणी हो॥२९। इन स्त्रियों के प्रथम गर्भाधान संस्कार में भोजन कर चांद्रायण व्रत करै। माता, पिता, ब्राह्मण इन को मारने वाला और गुरु की स्त्री के संग भोग करने वाला ॥३०॥ इनका अन्न त्रिंशपाद खानेसे चांद्रायण व्रत करै। रजक (धोबी) व्याध, (कसाई) नट बांस और चाम से जीविका करने वाले ३१ ॥ इन के अन्न को खाकर ब्राह्मण की शुद्धि चांद्रायण व्रत से होती है। यदि कदाचित् उच्छिष्ट को उसी जाति का उच्छिष्ट स्पर्श करले ॥३२॥ तो उसी समय उठ कर स्नान आचमन कर के शुद्ध होजाता है और उच्छिष्ट का जिस को स्पर्श हुआ हो उस द्विज को कुत्ता अथवा शूद्र स्पर्श करले ॥ ३३ ॥ तो एक दिन का उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है। ब्राह्मण की प्रेरणा से कार्य (चिट्ठी आदि पहुंचाना) करने वाला जो शूद्र है ॥ ३४ । उस शूद्र को पृथ्वी पर ही अन्न खाने को देना चाहिये क्योंकि जैसा कुत्ता वैसा ही वह है जहां जल न हो ऐसे

अनूदकेष्वरण्येषु चोरव्याघ्राकुलेपथि ॥ ३५ ॥
कृत्वामूत्रंपुरीषंच द्रव्यहस्तःकथंशुचिः ।
भूमावन्नंप्रतिष्ठाप्य कृत्वाशौचंयथार्थतः ॥ ३६॥
उत्संगेगृह्यपक्वान्न-मुपस्पृश्यततःशुचिः ।
मूत्रोच्चारंद्विजःकृत्वा अकृत्वाशौचमात्मनः ॥ ३७ ॥
मोहाद्भुक्त्वात्रिरात्रंतु गव्यंपीत्वाविशुद्ध्यति ।
उदक्यांयदिगच्छेत्तु ब्राह्मणोमदमोहितः ॥ ३८ ॥
चांद्रायणेनशुद्ध्येत ब्राह्मणानांचभोजनैः ।
भुक्त्वोच्छिष्टस्त्वनाचांत-श्चांडालैःश्वपचेनवा ॥३९॥
प्रमादाद्यदिसंस्पृष्टो ब्राह्मणोज्ञानदुर्बलः ।
स्नात्वात्रिषवणंनित्यं ब्रह्मचारीधराशयः ॥ ४० ॥
सत्रिरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति ।
चांडालेनतुसंस्पृष्टो यश्चापःपिबतिद्विजः ॥ ४१ ॥
अहोरात्रोषितोभूत्वा त्रिषवणेनशुद्ध्यति ।

वनों में चोर और बाघ सिंह जिस में हों ऐसे मार्ग में॥३५॥ मल और मूत्र कर के द्रव्य[भोजन आदि] जिस के हाथ मेंहों ऐसा पुरुष कैसे शुद्ध हो। पृथिवी पर अन्न को रखकर और यथार्थ शुद्धि करके ॥३६॥ उत्संग (गोदी) में पक्वान्नको लेकर आचमन करके शुद्ध होता है। जो द्विजमूत्रविष्ठा करके शरीरशुद्धि किये बिना ॥ ३७ ॥ अज्ञान से खाले वह तीन दिन पंचगव्य पीकर सम्यक्प्रकार शुद्ध होता है। यदि काम से मोह को प्राप्त हुआ ब्राह्मण रजस्वला स्त्री के संग गमन करे ॥३८॥ तो चांद्रायण व्रत और ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे शुद्ध होता है—भोजन से उच्छिष्ट तथा कुल्ला आचमनसे पूर्व चांडाल और श्वपच॥३९॥ यदि अज्ञानी ब्राह्मणको प्रमादसे स्पर्श करलें तो त्रिकालस्नान करे ब्रह्मचारी रहे पृथिवी पर सोवे ॥४०॥ तीन दिन उपवास करे तब पंचगव्य पीने से शुद्ध होताहै। चांडालके स्पर्श करने पर जो ब्राह्मण जल पीताहै ॥४१॥ वह एक दिन रात उपवास और

सायंप्रातस्त्वहोरात्रं पादंकृच्छस्यतंविदुः॥ ४२॥
सायंप्रातस्तथैवैकं दिनद्वयमयाचितम् ।
दिनद्वयंचनाश्नीया-त्कृच्छ्रार्द्धं तद्विधीयते ॥ ४३॥
प्रायश्चित्तंलघुष्वेत-त्पापेषुतुयथार्हतः ।
कृष्णाजिनतिलग्राही हस्त्यश्वानांचविक्रयी ॥ ४४ ॥
प्रेतनिर्यातकश्चैव नभूयःपुरुषोभवेत् ॥

इत्यापस्तम्बीये नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

आचांतोप्यशुचिस्ताव-द्यावन्नोद्ध्रियतेजलम् ।
उद्धृतेप्यशुचिस्ताव-द्यावद्भूमिर्नलिप्यते ॥१।
भूमावपिचलिप्तायां तावत्स्यादशुचिःपुमान् ।
आसनादुत्थितस्तस्मा-द्यावन्नाक्रमतेमहीम्॥२॥
नयमंयमित्याहु-रात्मावैयमउच्यते ।

त्रिकाल स्नान करने से शुद्ध होता है। एक दिनरात सायंकाल और प्रातःकाल भोजन करै इस को पादकृच्छ्र कहते हैं ॥ ४२ ॥ और एक दिन सायंकाल तथा एक दिन प्रातःकाल खावे और दो दिन विना मांगे जो मिले उसे भोजन करे तथा दो दिन उपवास करै इसे कृच्छ्रार्द्ध कहते हैं ॥४३ ॥ लघु [छोटे] पापों में यह प्रायश्चित उचित है-काली मृगछाला और तिल इन का जो दान ले और हाथी तथा घोड़े को जो बेचे ॥ ४४ ॥ और जो मुर्दों का निर्यातक [उठाने वाला] ये जन्मान्तर में पुरुष नहीं होते ॥ ४५ ॥

इत्यापस्तम्बीये नवमोऽध्यायः ॥९॥

आचमन करने पर भी तब तक (मनुष्य) अशुद्ध रहता है जब तक भूमिपर गिरा हुआ अशुद्ध जल न उठाया जावे और उस जल के उठाने पर भी तब तक अशुद्ध रहता है जब तक वह पृथिवी न लीपी जाय ॥१॥ तथा पृथ्वी के लीपने पर भी तब तक अशुद्ध रहता है जब तक आचमन के आसन से उठ कर उस लीपी हुई पृथ्वी पर न बैठे ॥ २ ॥ यमराज को यम नहीं कहते हैं किन्तु अपने शरीर

आत्मासंयमितोयेन तंयमःकिंकरिष्यति ॥३ ॥
नतथासिस्तथातीक्ष्णः सर्पोवादुरधिष्ठितः ।
यथाक्रोधोहिजंतूनां शरीरस्थोविनाशकः॥ ४ ॥
क्षमागुणोहिजंतूना मिहामुत्रसुखप्रदः ।
एकःक्षमावतांदोषो द्वितीयोनोपपद्यते ॥
यदेनंक्षमयायुक्त-मशक्तं मन्यतेजनः ॥५॥
नशब्दशास्त्राभिरतस्यमोक्षो, नचैवरम्यावसथप्रियस्य ।
नभोजनाच्छादनतत्परस्य, नलोकचित्तग्रहणेरतस्य ॥६ ॥
एकान्तशीलस्यदृढव्रतस्य, मोक्षोभवेत्प्रीतिनिवर्तकस्य ।
आध्यात्मयोगैकरतस्यसम्यक्, मोक्षाभवेन्नित्यमहिंसकस्य
स्वाध्याययोगागतमानसस्य ॥७॥
क्रोधयुक्तोयद्यजते यज्जुहोतियदर्चति

को ही यम कहते हैं जिस मनुष्य ने अपने को वश में कर लिया उस का यम-राज क्या करेगा ? ॥३॥ खड्ग भी ऐसा तीक्ष्ण [तीखा या पैना] नहीं और सर्प भी ऐसा (विकराल वा भयानक) नहीं जैसा मनुष्यों के शरीर में क्रोध नाश करने वाला है ॥ ४ ॥ क्षमा जो गुण है वह मनुष्य को इस लोक और परलोक में सुख देने वाला है। और क्षमा वालों में एक ही दोष है दूसरा नहीं वह यह कि क्षमा वाले पुरुष को मनुष्य असमर्थ मानते हैं ५ शब्द शास्त्र(व्याकरण) ही पढ़ने पढ़ाने वाले पुरुष का, घर के प्रेमी का तथा भोजन वस्त्र में तत्पर हुये का और जो जगत् के मन को वश करने में तत्पर हैं उनका मोक्ष नहीं हो सकता ॥६॥ किंतु एकान्त वासी, दृढ़व्रत वाले प्रीति से पृथक् रहने वाले का मोक्ष होता है । तथा अध्यात्मयोग में तत्पर हुये अहिंसक और स्वाध्याय रूप योग में प्रवृत्त हुये मनवाले का नित्य सम्यक् प्रकार मोक्ष होता है ॥ ७ ॥ क्रोध युक्त मनुष्य जो यज्ञ होम पूजा करता है वह सब उसका इस

सर्वंहरतितत्तस्यआमकुंभइवोदकम् ॥८॥
अपमानात्तपोवृद्धिः संमानात्तपसःक्षयः ।
अर्चितःपूजितोविप्रो दुग्धागौरिवसीदति ॥ ९ ॥
आप्यायतेयथाधेनुस्तृणैरमृतसंभवैः ।
एवंजपैश्चहोमैश्च पुनराप्ययतेद्विजः ॥ १० ॥
मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणिलोष्टवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतानि यःपश्यतिसपश्यति ॥ ११ ॥
रजकव्याधशैलूष-वेणुचर्मोपजीविनाम् ।
योभुंक्तेभक्तमेतेषां प्राजापत्यंविशोधनम् ॥ १२ ॥
अगम्यागमनंकृत्वा अभक्ष्यस्यचभक्षणम् ।
शुद्धिश्चांद्रायणंकृत्वा अथर्वान्नेतथैवच ॥ १३ ॥
अग्निहोत्रंत्यजेद्यस्तु सनरोदेवहाभवेत् ।

प्रकार नष्ट होता है जैसे कच्चे घड़े में जल (कच्चे घड़े में जल भरने से घड़ा नष्ट होजाता है) ॥८॥ अपमान से तप की वृद्धि और सत्कार से तप का नाश होता है अर्चित और पूजित ब्राह्मण दुही हुई गौके समान दुःखी होता है ॥९॥ फिर वही गौ जैसे अमृत (जल) से पैदा हुए तृणों से पुष्ट होती वैसे ही यह ब्राह्मण भी जप तथा होम से पुनः पुष्ट होता है ॥१०॥ जो पराई स्त्रियों को माता के समान और पराये धन को लोष्ट (ढेला) के समान तथा सब प्राणियों को अपने समान देखता है वही देखता है ॥ ११ ॥ धोबी-व्याध नट-तथा बांस और चमड़े से जो जीविका करते इन के अन्न को जो खाता है वह प्राजापत्य व्रत प्रायश्चित्त करे ॥ १२ ॥ गमन करने के अयोग्य स्त्री के संग गमन तथा अभक्ष्य का भक्षण कर और बढ़ई का अन्न खाकर चांद्रायण व्रत से शुद्ध होता है ॥ १३ ॥ जो अग्निहोत्र को त्याग देता है वह देवताओं की

तस्यशुद्धिर्विधातव्या नान्याचांद्रायणादृते ॥ १४ ॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु अंतरामृतसूतके ।
सद्यःशुद्धिर्विजानीया-त्पूर्वसंकल्पितंचतत् ॥ १५ ॥
देवद्रोण्यांविवाहेच यज्ञेषुप्रततेषुच ।
कल्पितंसिद्धमन्नाद्यं नाशौचंमृतसूतके ॥ १६ ॥
इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

समाप्तेयं स्मृतिः

हत्या वाला है उसकी शुद्धि चान्द्रायण व्रत के बिना नहीं होती ॥ १४ ॥ विवाह–उत्सव और यज्ञ में यदि मरण वा जन्म सूतक हो जावे तो तत्काल में शुद्धि होती है क्योंकि वह पूर्व संकल्प किया है ॥ १५ ॥ देव द्रोणी (तीर्थ वा प्याऊ) विवाह तथा बड़े यज्ञों में मरण और जन्म के सूतक में बनाहुआ सिद्ध अन्न (पक्वान्न आदि) अशुद्ध नहीं होता ॥ १६ ॥

इत्यापस्तम्बीये दशमोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ संवर्त्तस्मृतिप्रारम्भः॥

संवर्तमेकमासीनं सर्ववेदांगपारगम्।
ऋषयस्तमुपागम्य पप्रच्छुर्धर्मकांक्षिणः॥ १॥
भगवन्श्रोतुमिच्छामो द्विजानांधर्मसाधनम्।
यथावद्धर्ममाचक्ष्व शुभाशुभविवेचनम्॥ २॥
वामदेवादयःसर्वे तंपृच्छंतिमहौजसम्।
तानब्रवीन्मुनीन्सर्वा–न्प्रीतात्माश्रूयतामिति॥ ३॥
स्वभावाद्विचरेद्यत्र कृष्णसारःसदामृगः।
धर्म्यदेशःसविज्ञेयो द्विजानांधर्मसाधनम्॥ ४॥
उपनीतोद्विजोनित्यं गुरोर्हितमाचरेत्।
स्रग्गंधमधुमांसानि ब्रह्मचारीविवर्जयेत्॥ ५॥
संध्यांप्रातःसनक्षत्रा–मुपासीतयथाविधि।

एकाकी बैठे संपूर्ण वेद वेदाङ्गों के पारंगत वाले संवर्त ऋषि के समीप आकर धर्म की अभिलाषी ऋषियों ने पूछा॥ १॥ हे भगवन्! द्विजों के धर्मका साधन (हेतु) हम सुना चाहते हैं शुभ अशुभ का जिससे पृथक्कर ज्ञान हो ऐसे यथार्थ धर्म को कहो॥ २॥ ऐसे वामदेवादि ऋषियों ने उन बड़े तेजस्वी संवर्त से पूछा उन संपूर्ण मुनियों से प्रसन्न मन होकर यह बोले कि तुम सुनो॥३॥ जिस देश में काला मृग स्वभाव से सदा विचरे उसको ही धर्म का देश जानना चाहिये और वही द्विजों के धर्मका साधक है॥४॥ यज्ञोपवीत होने पर द्विज प्रति दिन गुरु के हितका आचरण करे और माला–गंध–सहत–मांस इनको ब्रह्मचारी त्याग दे॥ ५॥ प्रातःकाल की संध्या उस समय विधि से आरम्भ करे जिस समय आकाश में नक्षत्र (तारे) दीखते हों तथा सायंकाल की संध्या का उस समय आरम्भ करे जिस समय सूर्य नारायण आधे अस्त

सादित्यांपश्चिमांसंध्या–मर्द्धास्तमितभास्करे ॥ ६ ॥
तिष्ठन्पूर्वांजपंकुर्या–त्सावित्रीमार्कदर्शनात् ।
आसीनःपश्चिमांसंध्यां सम्यगृक्षविभावनात् ॥ ७ ॥
अग्निकार्यंचकुर्वीत मेधावीतदनन्तरम् ।
ततोऽधीयीतवेदंतु वीक्षमाणोगुरोर्मुखम् ॥ ८ ॥
प्रणवंप्राक्प्रयुंजीत व्याहृतीस्तदनंतरम् ।
गायत्रींचानुपूर्व्येण ततोवेदंसमारभेत् ॥ ९ ॥
हस्तौतुसंयतौधार्यौ जानुभ्यामुपरिस्थितौ
गुरोरनुमतंकुर्या–त्पठन्नान्यमतिर्भवेत् ॥ १० ॥
सायंप्रातस्तुभिक्षेत ब्रह्मचारीसदाव्रती ।
निवेद्यगुरवेऽश्नीया–त्प्राङ्मुखोवाग्यतःशुचिः ॥ ११ ॥
सायंप्रातर्द्विजातीना–मशनंश्रुतिनोदितम् ।
नांतराभोजनंकुर्या–दग्निहोत्रीसमाहितः ॥ १२ ॥

हो चुके हों ॥ ६ ॥ खड़ा होकर सूर्य के दर्शन पर्यन्त प्रातः काल में गायत्री का जपकरै और सायंकाल में बैठकर सम्यक् प्रकार नक्षत्रों के उदय पर्यंत गायत्री का जप करै ॥७॥ तदनन्तर ज्ञानी पुरुष कुछ नित्य होम करे। फिर पुनः गुरु के मुखको देखता हुआ वेद को पढ़ै ॥८॥ प्रथम प्रणव*को पढ़ै तत्पश्चात् तीन व्याहृति पढ़ै पुनः क्रम से गायत्री को पढ़ै तदनन्तर वेद पढ़ने का आरम्भ करै ॥ ९ ॥ सावधानतया दोनों घोंटू के ऊपर हाथ रख कर सदा गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिये और पढ़ते समय अन्यत्र बुद्धि को न लगावै ॥ १० ॥ व्रत करने वाला ब्रह्मचारी सदैव सायंकाल तथा प्रातःकाल को भिक्षा मांगे और उस भिक्षा को गुरु को निवेदन कर पूर्वाभिमुख होकर भोजन करै ॥ ११ ॥ सायंकाल और प्रातःकाल में द्विजातियों को भोजन करना वेद में कहा है–इस से सावधान हो अग्निहोत्री बीच में भोजन न करै ॥ १२ ॥

---

* ओंभूः । ओंभुवः । ओंस्वः । ओंतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहि । धियोयोनःप्रचोदयात् ॥

आचम्यैवतुभुंजीत भुक्त्वाचोपस्पृशेद्द्विजः ।
अनाचांतस्तुयोश्नीया–त्प्रायश्चित्तीयतेतुसः ॥ १३ ॥
अनाचांत पिबेद्यस्तु योपिवाभक्षयेद्द्विजः ।
गायत्र्यष्टसहस्रंतु जपंकुर्वन्विशुद्ध्यति ॥ १४ ॥
अकृत्वापादशौचंतु तिष्ठन्मुक्तशिखोपिवा ।
विनायज्ञोपवीतेन त्वाचांतोप्यशुचिर्भवेत् ॥ १५ ॥
आचामेद्ब्रह्मतीर्थेन चोपवीतीह्युदङ्मुखः ।
उपवीतीद्विजोनित्यं प्राङ्मुखोवाप्यतःशुचिः ।
वहिर्जानुतआचांत एवंशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १७ ॥
आमणिबंधाद्धस्तौच पादाबद्धिर्विशोधयेत् ।
परिमृज्यद्विरास्यंतु द्वादशांगानिचस्पृशेत् ॥ १८ ॥
स्नात्वापीत्वातथाक्षुत्वा भुक्त्वास्पृष्ट्वाद्विजोत्तमः ।

आचमन करने पश्चात् भोजन करे पुनः भोजन करके भी आचमन करे और जो आचमन किये बिना भोजन करता है वह प्रायश्चित्त का भागी होता है॥१३ जो द्विज आचमन किये बिना ही जल पीता है अथवा भोजन करता है वह आठ हजार गायत्री का जप करके सम्यक् प्रकार शुद्ध होता है॥१४॥ पगों केधोये बिना चोटीमें गांठ दिये बिना यज्ञोपवीत के बिनाओर खड़े हुए आच- मन करके भी अशुद्ध होता है ॥१५॥ यज्ञोपवीत को धारण करके उत्तराभि मुख होकर ब्रह्मतीर्थ से आचमन करे सदायज्ञोपवीतकोधारेहुये और पूर्वाभिमुख बैठाहुआ भीभी द्विज नित्य शुद्ध होताहै ॥१६॥ जल में बैठा जलमें और स्थल में बैठा स्थल में आचमन करे इस प्रकार बाहिर और अंतः (जल में) आचमन करके शुद्धि को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ मणि बंध (गट्टे) तक हाथों और पगों को जल से धोवे दो बार मुख को पूंछ कर बारह १२ (नेत्र आदि) अंगों का स्पर्श करे ॥ १८ ॥ स्नान–जलपान–छींक–भोजन–अ- पवित्र वस्तु का स्पर्श करके इस विधि से सम्यक् प्रकार आचमन करने से प्रा-

अनेनविधिनासम्य गाचांतःशुचितामियात् ॥ १९ ॥

शूद्रःशुद्ध्यतिहस्तेन वैश्योदंतेषुवारिभिः ।

कंठगतैःक्षत्रियस्तु आंचांतःशुचितामियात् ॥ २० ॥

आसनारूढपादस्तु कृतावसक्थिकस्तथा ।

आरूढपादुकोवापि नशुद्ध्यतिकदाचन ॥ २१ ॥

उपासीतनचेत्संध्या-मग्निकार्यं नवाकृतम् ।

गायत्र्यष्टसहस्रंतु जपेत्स्नात्वासमाहितः ॥ २२ ॥

सूतकान्नंनवश्राद्धं मासिकान्नंतथैवच ।

ब्रह्मचारीतुयोऽश्नीया-त्त्रिरात्रेणैवशुद्ध्यति ॥ २३ ॥

ब्रह्मचारीतुयोगच्छे-त्स्त्रियंकामप्रपीडितः ।

प्राजापत्यंचरेत्कृच्छ्र-मथत्वेकंसुयंत्रितः ॥ २४ ॥

ब्रह्मचारीतुयोऽश्नीया-न्मधुमांसंकथंचन ।

प्राजापत्यंतुकृत्वासौ मौञ्जीहोमेनशुद्ध्यति ॥ २५ ॥

करता शुद्ध होता है ॥१९॥ शूद्र होठों पर जल का स्पर्श करके वैश्य दांतोंतक जल के स्पर्श से क्षत्रिय कंठ तक जाने वाले आचमन से शुद्ध होता है ॥२०॥ आसन पर पग रखके और अवसक्थिक(गोड़ों को उठाये हुए) होकर तथा खड़ाऊं पर चढ़कर आचमन करने से कभी भी शुद्ध नहीं होता ॥ २१ ॥ जिसने संध्या और अग्निहोत्र न किया हो वह स्नान करके सावधानी से आठ हजार गायत्री का जप करे।२२॥ सूतक का अन्न नवश्राद्ध और मासिक श्राद्ध का अन्न जो ब्रह्मचारी खाता है वह तीन दिन रात व्रत करने से शुद्ध होता है ॥ २३ ॥ कामदेव से सताया हुआ जो ब्रह्मचारी स्त्री का भोग करता है वह सावधान होकर एक प्राजापत्यकृच्छ्र व्रत करै ॥२४॥ जो ब्रह्मचारी कदाचित् मद्य और मांस को खाता है वह प्राजापत्यव्रत करके मौंजी मेखला का होम करके शुद्ध होता है ॥ २५ ॥

निर्वपेत्तुपुरोडाशं ब्रह्मचारीतुपर्वणि ।
मन्त्रैःशाकलहोमांगै स्तनावाज्यंचहोमयेत् ॥२६॥
ब्रह्मचारीतुयःस्कन्दे-त्कामतःशुक्रमात्मनः ।
अवकीर्णीव्रतंकुर्यात्-स्नात्वाशुद्ध्येदकामतः ॥२७॥
भिक्षाटनमटित्वातु स्वस्थोह्येकान्नमश्नुते ।
अस्नात्वाचैवयोभुंक्ते गायत्र्यष्टशतंजपेत् ॥२८॥
शूद्रहस्तेनयोश्नीयात् पानीयंवापिवेत्क्वचित् ।
अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति ॥२९॥
भुक्त्वापर्युषितोच्छिष्टं भुक्त्वान्नंकेशदूषितम् ।
अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति ॥३०॥
शूद्राणांभाजनेभुक्त्वा भुक्त्वावाभिन्नभाजने ।
अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति ॥३१॥
दिवास्वपितिय:स्वस्थो ब्रह्मचारीकथंचन ।
स्नात्वासूर्यंसमीक्षेत गायत्र्यष्टशतंजपेत् ॥३२॥

ब्रह्मचारी पर्व के दिन पुरोडाश से होम करे और शाकल होम के (देवकृतस्यैनसो०) इत्यादि छः मन्त्रों से घृत का होम करे ॥ २६ ॥ यदि ब्रह्मचारी जान कर अपने वीर्य को निकाले तो अवकीर्णी के प्रायश्चित्त से, और अज्ञान से वीर्य निकल जाय तो स्नान करके शुद्ध होता है ॥ २७ ॥ जो भिक्षा मांग कर अपनी स्वस्थ अवस्था में एक का अन्न खाता है अथवा जो बिना स्नान किये खाता है वह आठ सौ ८०० गायत्री का जप करे ॥२८॥ जो शूद्र के हाथ का भोजन अथवा पानी पीता है वह एक दिन रात उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है ॥२९॥ बासा उच्छिष्ट और जिस में केश पड़े हों ऐसे अन्न को खाकर एक दिन रात उपवास कर पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है ॥ ३० ॥ शूद्रों के बरतनों में अथवा फूटे बरतन में भोजन कर एक दिन रात उपवास कर पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है ॥३१॥ जो ब्रह्मचारी स्वस्थ अवस्था में दिन में कदाचित् सोवे तो स्नान करके सूर्य का दर्शन करे और आठ सौ ८०० गायत्री का जप करे ॥ ३२ ॥ यह धर्म प्रथम आश्रमवासि

एषधर्मःसमाख्यातः प्रथमाश्रमवासिनाम् ।
एवंसंवर्तमानस्तु प्राप्नोतिपरमांगतिम् ॥३३॥
अतोद्विजःसमावृत्तः सवर्णांस्त्रियमुद्वहेत् ।
कुलेमहतिसम्भूतां लक्षणैस्तुसमन्विताम् ॥३४॥
ब्राह्मेणैवविवाहेन शीलरूपगुणान्विताम् ।
अतःपंचमहायज्ञा-न्कुर्यादहरहर्द्विजः ॥३५॥
नहापयेत्तुतान्शक्तः श्रेयस्कामःकदाचन ।
हानिंतेषांतुकुर्वीत सदामरणजन्मनोः ॥ ३६ ॥
विप्रोदशाहमासीत दानाध्ययनवर्जितः ।
क्षत्रियोद्वादशाहानि वैश्यःपंचदशैवतु ॥ ३७ ॥
शूद्रःशुद्ध्यतिमासेन संवर्त्तवचनंयथा ।
प्रेतायान्नंजलंदेयं स्नात्वातद्गोत्रजैःसह ॥ ३८ ॥

(ब्रह्मचारी) यों का कहा जो इस के अनुसार आचरण करता है वह परमगति को प्राप्त होता है ॥३३॥ इस ब्रह्मचर्य आश्रम से समावर्त्तन संस्कार किया द्विज ऐसी स्त्री के साथ विवाह करे जो अपने वर्ण की हो तथा अच्छे कुल में उत्पन्न हुई हो—और शुभ लक्षणों से युक्त हो ॥ ३४ ॥ तथा शीलरूप गुण इस से भी युक्त हो उस स्त्री के साथ ब्राह्म (१) विवाह करे और इस के अनन्तर प्रतिदिन द्विज पञ्चमहायज्ञ करे ॥ ३५ ॥ अपना कल्याण चाहने वाला द्विज इन पञ्च महायज्ञों को कदाचित् भी न त्यागे परन्तु जन्म और मरण सूतक में उनको कभी न करे ॥३६। उक्त सूतकों में दान और वेद पढ़ने से रहित दश दिन तक ब्राह्मण क्षत्रिय बारह दिन तक वैश्य पंद्रह दिन तक रहै ॥३७॥ और संवर्त ऋषि के वचन के अनुसार शूद्र एक महीने में शुद्ध होता है और संपूर्ण सगोत्री मिल कर प्रेत को अन्न और जल दें ॥ ३८ ॥

---

(१) उत्तम वस्त्र तथा भूषण पहनाकर विद्वान् और सुशील लड़के को बुलाकर कन्या को देना—यह ब्राह्म विवाह कहलाता है ॥

प्रथमेऽह्नितृतीयेच सप्तमेनवमेतथा ।
चतुर्थेऽहनिकर्तव्य-मस्थिसंचयनंद्विजैः ॥ ३९ ॥
ततःसंचयनादूर्ध्व-मंगस्पर्शोविधीयते ।
चतुर्थेऽहनिविप्रस्य षष्ठेवैक्षत्रियस्यच ॥ ४० ॥
अष्टमेदशमेचैव स्पर्शःस्याद्वैश्यशूद्रयोः ।
जातस्यापिविधिर्दृष्ट एषएवमहर्षिभिः ॥ ४१ ॥
दशरात्रेणशुद्ध्येत विप्रोवेदविवर्जितः ।
जातेपुत्रेपितुःस्नानं सचैलंतुविधीयते ॥ ४२ ॥
माताशुद्ध्येद्दशाहेन स्नानात्तुस्पर्शनंपितुः ।
होमंतत्रप्रकुर्वीत शुष्कान्नेनफलेनवा ॥ ४३ ॥
पंचयज्ञविधानंतु नकुर्यान्मृत्युजन्मनोः ।
दशाहात्तुपरंसम्य-ग्विप्रोधीयीतधर्मवित् ॥ ४४ ॥
दानंतुविविधंदेय-मशुभानांविनाशनम् ।
यद्यदिष्टतमंलोके यच्चास्यदयितंभवेत् ॥ ४५ ॥

प्रथम तृतीय चतुर्थ तथा नवये दिन द्विज अस्थि संचयन करै ॥ ३९ ॥ पुनः अस्थि संचयन के अनन्तर किसी के शरीर का स्पर्श करे चतुर्थ दिन ब्राह्मणका तथा छठें दिन क्षत्रिय का ॥४०॥ आठ वें दिन वैश्य का और दशवें दिनशूद्र का स्पर्शकहा है—और महर्षियों ने जन्मसूतक में यही विधि देखी है ॥४१॥ जिसने वेद न पढ़ा हो ऐसा ब्राह्मण दशदिन में शुद्ध होता है पुत्र के पैदा होने पर पिता को सचैल स्नान विहित है ॥४२॥ माता दश दिन में शुद्ध होती है और पिता का स्नान करने से भी स्पर्श करना उचित है और जन्म सूतक में सूखे अन्न वा फल से होम करै ॥ ४३ ॥ मरण—और जन्म सूतक में पांचयज्ञों की विधि न करै दशदिन के अनंतर धर्म का जानने वाला ब्राह्मण सम्यक् प्रकार वेदपढ़ै॥४४॥अशुभों (पापों) का नाश करने वाला अनेक प्रकार का दानदे और जो २ जगत् में इस मनुष्य को इष्ट और प्यारा हो ॥ ४५ ॥

तत्तद्गुणवतेदेयं तदेवाक्षयमिच्छता ।
नानाविधानिद्रव्याणि धान्यानिसुबहूनिच ॥ ४६ ॥
समुद्रेयानिरत्नानि नरोविगतकल्मषः ।
दत्वागुणाढ्यविप्राय महतींश्रियमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥
गंधमाभरणंमाल्यं यःप्रयच्छतिधर्मवित् ।
ससुगंधःसदाहृष्टो यत्रतत्रोपजायते ॥ ४८ ॥
श्रोत्रियायकुलीनाया-भ्यर्थिनेहिविशेषतः ।
यद्दानंदीयतेभक्त्या तद्भवेत्सुमहत्फलम् ॥ ४९ ॥
आहूयशीलसंपन्नं श्रुतेनाभिजनेनच ।
शुचिंविप्रंमहाप्राज्ञं हव्यकव्यैःसुपूजयेत् ॥ ५० ॥
नानाविधानिद्रव्याणि रसवंतीप्सितानिच ।
श्रेयस्कामेनदेयानि यदेवाक्षयमिच्छता ॥ ५१ ॥
वस्त्रदातासुवेषःस्या द्रूप्यदोरूपमेवच ।
हिरण्यदःसमृद्धिंच तेजश्चायुश्चविंदति ॥ ५२ ॥

अपने अक्षय पुण्य की इच्छा करने वाले पुरुष को वही २ वस्तु गुणवान् पुरुष को देनी चाहिये नाना प्रकार के द्रव्य और बहुत से अन्न ॥४६॥ मुद्रा और रत्न इन को पाप रहित मनुष्य गुणवाले ब्राह्मण को देकर बड़ी लक्ष्मी को प्राप्त होता है ॥४७॥ गंध-भूषण-फूल इन को धर्म का ज्ञाता पुरुष देकर सुगंध सहित और सदा प्रसन्न जहां तहां उत्पन्न होता है ॥ ४८ ॥ जो दान वेदपाठी तथा कुलीन और विशेष कर अभ्यागत को दिया जाता है वह बड़े फल को देता है ॥ ४९ ॥ सुशील वेद के ज्ञाता कुलीन तथा शुद्ध और अत्यंत बुद्धिमान् ब्राह्मण को बुलाकर हव्य (देवताओं के अन्न) से और कव्य (पितरों के अन्न से पूजे ॥५०॥ नाना प्रकार के द्रव्य जो रसवाले हों और लेने वाले को जो वांछित हों वेही कल्याण और अक्षय फल के चाहने वाले पुरुष को देने चाहिये ॥ ५१ ॥ वस्त्र के दाता का उत्तम वेष और चांदी के दाता का सुन्दर रूप होता है और सोने के दाता को धन की वृद्धि तथा आयुः (अवस्था) मिलती है ॥ ५२ ॥

भूताभयप्रदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
दीर्घमायुश्चलभते सुखीचैवसदाभवेत् ॥ ५३ ॥
धान्योदकप्रदायीच सर्पिर्दःसुखमेधते ।
अलंकृतस्त्वलंकारं दाताप्राप्नोतितत्फलम् ॥ ५४ ॥
फलमूलानिविप्राय शाकानिविविधानिच ।
सुरभीणिचपुष्पाणि दत्वाप्राज्ञस्तुजायते ॥ ५५ ॥
तांबूलंचैवयोदद्याद्-ब्राह्मणेभ्योविचक्षणः ।
मेधावीसुभगःप्राज्ञो दर्शनीयश्चजायते ॥५६॥
पादुकोपानहौछत्रं शयनान्यासनानिच ।
विविधानिचयानानि दत्वाद्रव्यपतिर्भवेत् ॥५७॥
दद्याद्यःशिशिरेवन्हिं बहुकाष्ठंप्रयत्नतः ।
कायाग्निदीप्तिप्राज्ञत्वं रूपंसौभाग्यमाप्नुयात् ॥५८॥
औषधंस्नेहमाहारं रोगिणोरोगशान्तये ।
दत्वास्याद्रोगरहितः सुखीदीर्घायुरेवच ॥५९॥

प्राणियों को अभयदान देने से संपूर्ण कामना प्राप्त होतीं बड़ी अवस्था और सदा सुख मिलते हैं ॥५३॥ अन्न जल और घी का दान देने वाला सुख भोगता है और जो भूषण वाला हो वह भूषण को देकर बड़े फल को प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥ फलमूल नाना प्रकार के शाक (भाजी) और सुगन्ध वाले फूल इन्हें ब्राह्मण को देकर पंडित होता है ॥५५॥ जो विद्वान् पुरुष ब्राह्मणों को पान देता है वह बुद्धिमान् पंडित तथा दर्शनीय और भाग्यशाली होता है॥५६॥ खड़ाउं–जूता–छाता–शय्या आसन और नाना प्रकारके यान (सवारी) इनको देकर द्रव्यपति (धनी) होता है ॥५७॥ जो शिशिर(जाड़े)में बहुत सी लकड़ी सहित अग्निप्रयत्न से देता है वह जठराग्नि की दीप्ति वाला, पंडित, रूपवान् और भाग्यवान् होता है ॥५८॥ औषध स्नेह [घी] मिला भोजन इन को रोगियों के रोग दूर करने के लिये देकर रोग रहित तथा सुखी और बड़ी अवस्था वाला होता है ॥ ५९ ॥ जो

इन्धनानिचयोदद्या-द्विप्रेभ्यःशिशिरागमे ।
नित्यंजयतिसंग्रामे श्रियायुक्तस्तुदीप्यते ॥६०॥
अलंकृत्यतुयःकन्यां वरायसदृशायवै ।
ब्राह्मेणतुविवाहेन दद्यात्तांतुसुपूजिताम् ॥६१॥
सकन्यायाःप्रदानेन श्रेयोविन्दतिपुष्कलम् ।
साधुवादंसर्वसद्भिः कीर्त्तिंप्राप्नोतिपुष्कलाम् ॥६२॥
ज्योतिष्टोमातिरात्राणां शतंशतगुणीकृतम् ।
प्राप्नोतिपुरुषोदत्वा होममन्त्रैश्चसंस्कृताम् ॥६३॥
तांदत्त्वातुपिताकन्यां भूषणाच्छादनाशनैः ।
पूजयन्स्वर्गमाप्नोति नित्यमुत्सववृद्धिषु ॥६४॥
रोमकालेतुसम्प्राप्ते सोमोभुंक्तेऽथकन्यकाम् ।
रजोदृष्ट्वातुगन्धर्वा कुचौदृष्ट्वातुपावकः ॥६५॥
अष्टवर्षाभवेद्गौरी नववर्षातुरोहिणी ।

पुरुष जाड़े के दिनों में ब्राह्मणों को इन्धन देता है वह युद्ध में शत्रुओं को जीतता और लक्ष्मी युक्त होकर देदीप्यमान होता है ॥६०॥ जो सम्यक् प्रकार कन्या को भूषण और वस्त्र पहना कर कन्या के समान वर को ब्राह्मविवाह-विधि से सत्कार करके देता है ॥ ६१॥ वह कन्याके देनेसे महान् श्रेय (कल्याण) को प्राप्त होता है और सज्जनों में साधुवाद [भलाई] तथा बड़ी कीर्त्ति को प्राप्त होता है ॥६२॥ होम के मन्त्रों से संस्कार को प्राप्त हुई कन्या को देकर दश सहस्र ज्योतिष्टोम और अतिरात्र यज्ञ के फल को प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ भूषण और वस्त्रों से कन्या को उत्सव तथा वृद्धि (पुत्र जन्म) में नित्य पूजा करता हुआ पिता स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥६४॥ रोम फूटने के समय कन्या को चन्द्रमा रजोदर्शनके समय गन्धर्व और कुचाओं को देखकर अग्नि भोगताहै (यहां रोम रज और कुच बाहर निकले लेने इष्ट नहीं किन्तु भीतर शरीर में पहिले अंकुरित हुए लेने हैं क्योंकि रजोदर्शन से पहिले विवाह न हो तो पाप होता यह सब धर्मशास्त्रोंकी एकसम्मति है) ॥६५॥ आठ वर्ष की कन्या गौरी नौ वर्ष

दशवर्षाभवेत्कन्या अतऊद्र्ध्वंरजस्वला ॥ ६६ ॥
मातावैचपिताचैव ज्येष्ठोभ्रातातथैवच ।
त्रयस्तेनरकंयान्ति दृष्ट्वाकन्यांरजस्वलाम् ॥६७॥
तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमतीभवेत् ।
विवाहोह्यष्टवर्षायाः कन्यायास्तुप्रशस्यते ॥ ६८ ॥
तैलामलकदाताच स्नानाभ्यंगप्रदायकः ।
नरःप्रहृष्टश्चासीत सुभगश्चोपजायते ॥ ६९ ॥
अनड्वाहौतुयोदद्याद्द्विजेसीरेणसंयुतौ ।
अलंकृत्ययथाशक्त्या धूर्वहौशुभलक्षणौ ॥ ७० ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वकामसमन्वितः ।
वर्षाणिवसतेस्वर्गे रोमसंख्याप्रमाणतः ॥ ७१ ॥
धेनुंचयोद्विजेदद्यादलंकृत्यपयस्विनीम् ।
कांस्यवस्त्रादिभिर्युक्तां स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ७२ ॥
भूमिंसस्यवतींश्रेष्ठां ब्राह्मणेवेदपारगे ।

को रोहिणी दश वर्ष की कन्या और इस के पश्चात् रजस्वला होती है ॥ ६६ ॥ माता पिता और जेठा भाई ये तीनों रजस्वला कन्या को देखकर नरक में जाते हैं ॥ ६७ ॥ इस लिये जब तक रजस्वला न हो तब तक ही कन्या का विवाह करदे और आठ वर्ष की कन्या का विवाह श्रेष्ठ कहा है ॥६८॥ तेल आंवले स्नान का जल और उबटना इनको जो देता है वह मनुष्य सदा आनंद में मग्न रहता है और भाग्यवान् होता है ॥ ६९ ॥ जो पुरुष जोतने के योग्य अच्छे लक्षण वाले दो बैल यथाशक्ति सजाकर हलसहित ब्राह्मण को देता है ॥ ७० ॥ सब पापों से शुद्ध होकर सर्व कामना सहित वह पुरुष उतने वर्ष तक स्वर्ग में बसता है जितने रोम बैलों के देहपर हों ॥ ७१ ॥ जो दूध देती तथा कांसे का पात्र (लोटा) और वस्त्र सहित गौ को भूषित (सजा करके) ब्राह्मण को देता है वह स्वर्गलोक में महत्त्व को प्राप्त होता है ॥ ७२॥ अन्न जिस में खड़ा हो ऐसी श्रेष्ठ पृथ्वी और आधी

गांदत्वाद्भुप्रसूतांच स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ७३ ॥
यावंतिसस्यमूलानि गोरोमाणिचसर्वशः ।
नरस्तावंतिवर्षाणि स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ७४॥
योददातिशफैरौप्यैर्हैमशृङ्गीमरोगिणीम् ।
सवत्सांवाससावीतां सुशीलांगांपयस्विनीम् ॥७५ ॥
तस्यांयावन्तिरोमाणि सवत्सायांदिवंगतः ।
तावंतिवत्सरांतानि सनरोब्रह्मणोंतिके ॥ ७६ ॥
योददातिबलीवर्दं मुक्तेनविधिनाशुभम् ।
अव्ययंगंगोप्रदानेन दत्तंदशगुणंफलम् ॥ ७७ ॥
अग्नेरपत्यंप्रथमंसुवर्णं भूर्वैष्णवीसूर्यसुताश्चगावः ॥
लोकास्त्रयस्तेनभवन्तिदत्ताः,यःकांचनंगांचमहींचदद्यात् ॥७८॥
सर्वेषामेवदानाना–मेकजन्मानुगंफलम् ।
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगंफलम् ॥ ७९ ॥

मानो गौ इन्हें वेदज्ञ ब्राह्मणको देकर स्वर्गलोकमें पूजाको प्राप्त होताहै॥७३॥ जितनी अन्न के पौदों की जड़ हैं और जितने गौ के रोम हैं उतने वर्ष पर्यन्तवह मनुष्य स्वर्ग में पूजित होता है ॥७४॥ चांदी के खुरों वाली सोने के सींग वाली हो जिस के बछड़ा अथवा बछिया हो, जिसे कोई रोग न हो जो वस्त्र से ढकी हो तथा जो सुशीला हो और दूध देती हो ऐसी गौ को जो देता है ॥ ७५ ॥ उस गौ और बछड़े के जितने रोम हैं उतने ही वर्षों के अन्त तक वह मनुष्य ब्रह्मा के समीप ब्रह्मलोक में रहताहै ॥७६॥ पूर्वोक्त विधि से जो सावधान मनुष्य बैलको देता है वह गौ के दान से दश गुणे फल को प्राप्त होता है ॥७७॥ सुवर्ण प्रथम पुत्र अग्नि का है पृथ्वी वैष्णवी (विष्णु की पुत्री) है गौ सूर्य की पुत्री हैं इस से जो मनुष्य सोना गौ–पृथ्वी इन को देता है वह त्रिलोकी को ही मानो देता है ॥ ७८ ॥ सम्पूर्ण दानों का फल अगले एक ही जन्म में मिलता और सुवर्णपृथ्वी गौ इन का फल सात जन्म तक मिलता है ॥ ७९ ॥

अन्नदस्तुभवेन्नित्यं सुतृप्तोनिभृतःसदा ।
अंबुदश्चसुखीनित्यं सर्वकर्मसमन्वितः ॥ ८० ॥
सर्वेषामेवदानाना-मन्नदानंपरंस्मृतम् ।
सर्वेषामेवजंतूनां यतस्तज्जीवितंपरम् ॥ ८१ ॥
यस्मादन्नात्प्रजाःसर्वाः कल्पेकल्पेसृजत्प्रभुः ।
तस्मादन्नात्परंदानं विद्यतेनहिकिंचन ॥ ८२ ॥
अन्नाद्भूतानिजायन्ते जीवन्तिचनसंशयः ।
मृत्तिकागोशकृद्दर्भा-नुपवीतंतथोत्तरम् ॥ ८३ ॥
दत्वागुणाढ्यविप्राय कुलेमहतिजायते ।
मुखवासन्तुयोदद्या-द्दन्तधावनमेवच ॥ ८४ ॥
शुचिगन्धसमायुक्तो अवाग्दुष्टस्सदाभवेत् ।
पादशौचंतुयोदद्या-त्तथाचगुदलिंगयोः ॥ ८५ ॥
यःप्रयच्छतिविप्राय शुद्धबुद्धिःसदाभवेत् ।
औषधंपथ्यमाहारं स्नेहाभ्यंगंप्रतिश्रयम् ॥ ८६ ॥

अन्नका दाता नित्य तृप्त तथा पुष्ट रहता है और जल का दाता सुखी तथा सब कर्मों से युक्त रहता है ॥८०॥ सब दानों में अन्न का दान उत्तम कहा है क्योंकि सब प्राणियों का अन्न ही जीवन है ॥ ८१ ॥ जिस अन्न से ही ब्रह्मा ने कल्प २ में संपूर्ण प्रजा रची इस लिये अन्नसे उत्तम और कोई दान नहीं है ॥८२॥ अन्न से प्राणी पैदा होते हैं तथा अन्न से ही जीते हैं इसमें संशय नहीं मिट्टी गोबर कुशा और उत्तम यज्ञोपवीत ॥ ८३ ॥ इनको अनेक गुण वाले ब्राह्मण को देकर बड़े कुल में उत्पन्न होता है। जो मनुष्य ब्राह्मण को मुख वास (पान या सुपारी या इलायची) अथवा दातौन देता है ॥ ८४ ॥ वह शुद्ध गंधवाला होता है और कभी भी वाग्दुष्ट (तोतला या गूंगा) नहीं होता जो पुरुष पैर गुदा लिंग इनके शौच के लिये जल ॥८५॥ ब्राह्मण को देता है वह सदा शुद्ध बुद्धि होता है। जो औषध-पथ्य भोजन तेल का उबटना और रहने को स्थान ॥ ८६ ॥

यःप्रयच्छतिरोगिभ्यः सभवेद्व्याधिवर्जितः ।
गुडमिक्षुरसंचैव लवणंव्यंजनानिच ॥ ८७ ॥
सुरभीणिचपानानि दत्वात्यंतसुखीभवेत् ।
दानैश्चविविधैःसम्यक् फलमेतदुदाहृतम् ॥ ८८ ॥
विद्यादानेनसुमति-र्ब्रह्मलोकेमहीयते ।
अन्योन्यान्नप्रदाविप्रा अन्योन्यप्रतिपूजकाः ॥ ८९ ॥
अन्योन्यंप्रतिगृह्णन्ति तारयंतितरंतिच ।
दानान्येतानिदेयानि तथान्यानिविशेषतः ॥ ९० ॥
दानार्द्धंकृपणार्थिभ्यः श्रेयस्कामेनधीमता ।
ब्रह्मचारियतिभ्यस्तु वपनंयस्तुकारयेत ॥ ९१ ॥
नखकर्मादिकंचैव चक्षुष्मान्जायतेनरः ।
देवागारेद्विजातीनां दीपंदद्याच्चतुष्पथे ॥ ९२ ॥
मेधावीज्ञानसंपन्न-श्चक्षुष्मान्ससदाभवेत् ।

ये वस्तु रोगियों को देता है वह व्याधिसे रहित होताहै । गुड़ गन्नाका रस लवण व्यंजन दही आदि ॥८७॥ औरसुगंध युक्त पीनेके वस्तु इन को देकर अत्यंत सुखी रहता है। यहनाना प्रकार के दानोंका फल कहा है ८८॥ विद्या के दानसे अच्छी बुद्धि वाला पुरुष ब्रह्मलोक में पूजा को प्राप्त होता है। परस्पर अन्न के दाता और परस्पर सत्कार करने वाले ॥८९॥ तथा परस्पर दान लेने वाले ब्राह्मण अन्य को पार करते और आप भी पार होते हैं। ये [पूर्वोक्त] दान और अन्य भी दान विशेष कर ॥ ९० ॥ दीन अभ्यागतों को कल्याण का अभिलाषी पुरुष दानार्द्ध [शास्त्रोक्त से आधा] दे-ब्रह्मचारी और संन्यासी का जो मुंडन कर-वाता है ॥९१॥ अथवा नख कटवाता है वह मनुष्य नेत्रों वाला होता है देव-ता और ब्राह्मणों के मंदिर में तथा चतुष्पथ [चौराहा] में जो दीपक देता है । ९२ ॥ वह सदा बुद्धिमान् तथा ज्ञानी और नेत्रों वाला होता है नित्य

नित्यनैमित्तिकेकाम्ये तिलान्दत्वास्वशक्तितः ॥९३॥
प्रजावान्पशुमांश्चैव धनवान्जायतेनरः ।
योयदाभ्यर्थितोविप्रै-र्यद्यत्संप्रतिपादयेत् ॥ ९४ ॥
तृणकाष्ठादिकंचैव गोप्रदानसमंभवेत् ।
नवैशयीततमसा नयज्ञेनानृतंवदेत् ॥ ९५ ॥
अपवदेन्नविप्रस्य नदानंपरिकीर्तयेत् ।
यज्ञोनृतेनक्षरति तपःक्षरतिविस्मयात् ॥ ९६ ॥
आयुर्विप्रापवादेन दानंचपरिकीर्तनात् ।
चत्वार्येतानिकर्माणि संध्यायांवर्जियेद्बुधः ॥ ९७ ॥
आहारंमैथुनंनिद्रां तथासंपाठमेवच ।
आहाराज्जायतेव्याधि-र्गर्भोवैरौद्रमैथुनात् ॥ ९८ ॥
निद्रातोजायतेऽलक्ष्मी संपाठादायुषःक्षयः ।
ऋतुमतींतुयोभार्यां संनिधौनोपगच्छति ॥ ९९ ॥
तस्यारजसितन्मासं पितरस्तस्यशेरते ।
कृत्वागृह्याणिकर्माणि स्वभार्यापोषणेरतः ॥ १०० ॥

नैमित्तिक और काम्य कर्म में शक्ति के अनुसार तिलों को देकर ॥ ९३ ॥ मनुष्य प्रजा–पशु और धनवाला होता है–जो पुरुष ब्राह्मणों के मांगने से जिस समय जो २ देदे ॥९४॥ तृण या काठ आदि वह सब गोदान के तुल्य है। अंधकार में न सोवे और यज्ञ में झूठ न बोले ॥९५॥ ब्राह्मण की निंदा न करे और न अपने दिये को प्रसिद्ध करे झूठसे यज्ञ और अभिमान से तप नष्ट होते हैं॥९६॥ ब्राह्मण की निन्दा से अवस्था और कथन से दान नष्ट होते हैं–चार कामों को ज्ञानवान् संध्यासमय न करै ॥९७॥ भोजन-मैथुन-सोना और पढ़ना भोजन से व्याधि मैथुन से रौद्र [भयंकर गर्भ] ॥९८॥ सोने से दरिद्रता और पढ़ने से अवस्था का नाश होता है। जो ऋतुमती स्त्री के समीप नहीं जाता ॥ ९९ ॥ उस मनुष्य के पितर उस महीने में उस स्त्री के रज में सोते हैं। जो मनुष्य गृहस्थ के कर्म करके अपनी स्त्री के पोषण में तत्पर हैं ॥ १०० ॥

ऋतुकालाभिगामीच प्राप्नोतिपरमांगतिम् ।
उषित्वैवंगृहेविप्रो द्वितीयादाश्रमात्परः ॥ १०१ ॥
वलीपलितसंयुक्त—स्तृतीयंतुसमाश्रयेत् ।
वनंगच्छेत्ततःप्राज्ञः सभार्यस्त्वेकएववा ॥ १०२ ॥
गृहीत्वाचाग्निहोत्रंच होमंतत्रनहापयेत् ।
कृत्वाचैवपुरोडाशं वन्यैर्मेध्यैर्यथाविधि ॥ १०३ ॥
भिक्षांचभिक्षवेदद्या—च्छाकमूलफलादिभिः ।
कुर्यादध्ययनंनित्य=मग्निहोत्रपरायणः ॥ १०४ ॥
इष्टिंपार्वायणीयांतु प्रकुर्यात्प्रतिपर्वसु ।
उषित्वैवंवनेविप्रो विधिज्ञःसर्वकर्मसु ॥ १०५ ॥
चतुर्थमाश्रमंगच्छे-ज्जितक्रोधोजितेन्द्रियः ।
अग्निमात्मनिसंस्थाप्य द्विजःप्रव्रजितोभवेत् ॥१०६॥
वेदाभ्यासरतोनित्य-मात्मविद्यापरायणः ।

और ऋतुकाल में स्त्री संग का कर्त्ता परमगति को प्राप्त होता है। इसप्रकार दूसरे आश्रम में तत्पर ब्राह्मण घर में रह कर॥१०१॥ वली और पलित (श्वेत केश) से युक्त होता हुआ तीसरे आश्रम (वानप्रस्थ) का आश्रय ले पुनः एकाकी अथवा स्त्री सहित वन में चला जाय ॥ १०२ ॥ पुनः वन में अग्निहोत्र को ग्रहण करके होम को न त्यागे तथा वन के कंद मूलों से पुरोडाश को विधि से बनाकर ॥१०३॥ शाक मूल फलादिक की भिक्षु को भिक्षा दे—और अग्निहोत्र में तत्पर हो कर नित्य वेदका अध्ययन करे ॥१०४॥ सब पर्वों में पर्व [अमावास्या आदि) में करने योग्य इष्टि करे संपूर्ण कर्मों की विधि जानने वाला ब्राह्मण इसप्रकार वन में स्थितहोकर ॥१०५॥ क्रोध और इन्द्रियों को जीत कर चौथे आश्रम (संन्यास) को ले और आत्मा में अग्नि को रखकर संन्यासी हो जाय ॥ १०६॥ वेद के अभ्यास में तथा आ-

अष्टौभिक्षाःसमादाय समुनिःसप्तपंचवा ॥१०७ ॥
अद्भिःप्रक्षालयताःसर्वा भुंजीतसुसमाहितः ।
अरण्येनिर्जनेतत्र पुनरासीतमुक्तवान् ॥ १०८ ॥
एकाकीचिंतयेन्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ।
मृत्युंचनाभिनंदेत जीवितंवाकथंचन ॥ १०९ ॥
कालमेवप्रतीक्षेत यावदायुः समाप्यते ।
संसेव्यचाश्रमान्सर्वान् जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥११०॥
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वेदशास्त्रार्थविद्द्विजः ।
आश्रमेषुचसर्वेषु प्रोक्तोयंप्राश्निकोविधिः ॥१११ ॥
अतःपरंप्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिंशुभम् ।
ब्रह्मघ्नश्चसुरापश्च स्तेयीचगुरुतल्पगः ॥ ११२ ॥
महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगीचपंचमः ।
ब्रह्मघ्नश्चवनंगच्छेत् वल्कवासाजटीध्वजी ॥११३॥

त्मविद्या में तत्पर और विचारवान् हो वह सन्यासी आठ वा सात वा पांच घरोंसेभिक्षा ग्रहण करके ॥ १०७ ॥ उन सब भिक्षाओं को जल से धोकर सावधानी से भोजन करै और फिर जहां कोई जन न हो ऐसे वन में मुक्ति का अभिलाषी सन्यासी बैठे ॥ १०८ ॥ मन वाणी देह और कर्म से एकाकी नित्य ब्रह्म का विचार करै मरने और जीने की कभी भी प्रशंसा न करै ॥ १०९॥ इस प्रकार जब तक अवस्था समाप्त हो काल की प्रतीक्षा करै क्रोध और इन्द्रियों को जीतकर चारों आश्रमों का सेवन करके ॥ ११० ॥वेद और शास्त्र के अर्थ का जानने वाला ब्राह्मण ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है— यह चारों आश्रमों के प्रश्न [जो तुमने पूछा था) की विधि कही ॥ १११ ॥ इससे आगे प्रायश्चित्त के उत्तम विधान को कहते हैं ब्रह्महत्यारा मदिरा पीने वाला और गुरु की शय्या पर गमन करने वाला ॥ ११२ ॥ ये चारों और पांचवां इनका संगी महापातकी होते हैं ब्रह्महत्यारा वन में चला जाय और वल्कल जटा तथा शिरकटे पुरुष की तस्वीर ध्वजा में छपीही इन को रक्खै ॥ ११३॥

वन्यान्येवफलान्यश्नन् सर्वकामविवर्जितः ।
भिक्षार्थीविचरेद्ग्रामं वन्यैर्यदिनजीवति ॥ ११४ ॥
चातुर्वर्ण्येचरेद्भैक्ष्यं बद्धांगीसंयतःसदा ।
भिक्षास्त्वेवंसमादाय वनंगच्छेत्ततःपुनः ॥ ११५ ॥
वनवासीसपापःस्या–त्सदाकालमतंद्रितः ।
ख्यापयन्मुच्यतेपापा–द्ब्रह्महापापकृत्तमः ॥ ११६ ॥
अनेनतुविधानेन द्वादशाब्दव्रतंचरेत् ।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वभूतहितेरतः ॥ ११७ ॥
ब्रह्महत्यापनोदाय ततोमुच्येतकिल्बिषात् ।
अतःपरंसुरापस्य निष्कृतिंश्रोतुमर्हथ ॥ ११८ ॥
गौडीमाध्वीचपैष्टीच विज्ञेयात्रिविधासुरा ।
यथैवैकातथासर्वा नपातव्याद्विजोत्तमैः ॥ ११९ ॥
सुरापस्तुसुरांतप्तां पिबेत्तत्पापमोक्षकः ।

संपूर्ण कामों को त्याग कर वन के ही फल मूल खावे यदि उनसे जीवन का निर्वाह न हो तो भिक्षा के अर्थ गांव में भ्रमण करे ॥ चारों वर्णों में भिक्षा मांगे तथा हत्या के चिन्ह को बांधे रहै और मन को सदा वश में रक्खे इस प्रकार भिक्षा लेकर फिर वन में चला जाय ॥ ११५ ॥ वह पापी (हत्यारा) आलस्य को छोड़ कर सदा वन में ही वास करे बड़ा भी पापी अपने पाप को प्रसिद्ध करता हुआ पाप से छूटता है ॥ ११६ ॥ इस रीति से बारह वर्ष का व्रत करै और सब इन्द्रियों को रोक कर सब भूतों के हित में तत्पर रहै ॥ ११७ ॥ ब्रह्महत्या के दूर करने के लिये पूर्वोक्त आचरण करे पुनः पाप से मुक्त होता है। अब मदिरा पीने वाले का प्रायश्चित्त सुनो ॥ १८॥ गौड़ी (गुड़ की) माध्वी[महुआ की] पैष्टी (पिसी दवा या चून आदि की) यह तीन प्रकार की मदिरा होतीहै इन में जैसी एक वैसी होसबहैं इस से ब्राह्मणादि उत्तम द्विज मदिरा को कदापि न पीवें ॥ ११९ ॥ मदिरा पीने वाला ब्राह्मण उस के पीने के पाप से छूटा चाहे तो तपाई हुई मदि-

गोमूत्रमग्निवर्णंवा गोमयंवातथाविधम् ॥ १२० ॥
घृतंवात्रीणिपेयानि सुरापोव्रतमाचरेत् ।
मुच्यतेतेनपापेन प्रायश्चित्तेकृतेसति ॥ १२१ ॥
अरण्येवावसत्सम्यक् सर्वकामविवर्जितः ।
चांद्रायणानिवात्रीणि सुरापोव्रतमादिशेत् ॥ १२२ ॥
एवंशुद्धिःसुरापस्य भवेदितिनसंशयः ।
मद्यभांडोदकंपीत्वा पुनःसंस्कारमर्हति ॥ १२३ ॥
स्तेयंकृत्वासुवर्णस्य स्तेयंराज्ञेनिवेदयेत् ।
ततोमुशलमादाय स्तेनंहन्यात्सकृन्नृपः ॥ १२४ ॥
यदिजीवतिसस्तेन-स्ततःस्तेयाद्विमुच्यते ।
अरण्येचीरवासावा चरेद्ब्रह्महणोव्रतम् ॥ १२५ ॥
एवंशुद्धिःकृतास्तेये संवर्तवचनंयथा ।
गुरुतल्पेशयानस्तु तप्तेस्वप्यादयोमये ॥१२६॥

रा अथवा अग्नि से तपाये गोमूत्र वा गोबर को पीवे ॥ १२० ॥ अथवा तपा घी ये गोमूत्रादि तीन ही पीने योग्य हैं अर्थात् तपायी हुई मदिरा पीना अच्छा नहीं । गोमूत्रादि किसी को पीकर मर जावे मद्य पीने वाला इस व्रत को करे इस प्रायश्चित्त के कर लेने पर मद्यपान के पाप से छूट जाता है ॥ १२१ ॥ अथवा सम्यक् प्रकार सर्वकामनाओं को छोड़ कर वन में वसे यद्वा मदिरा पीने वाला तीन चांद्रायण प्रायश्चित्त करे ॥ १२२ ॥ इस प्रकार मदिरा पीने वाले की शुद्धि होती है इस में संदेह नहीं है । मदिरा के पात्र का जल पीकर फिर उपनयन संस्कार के योग्य होता है ॥१२३॥ सोने की चोरी करके उस चोरी का अपराध राजा से निवेदन कर तब राजा मूशल लेकर एक बार उस चोर के मार दे ॥ १२४ ॥ यदि वह चोर जीवित हो जावे तो चोरी के पाप से मुक्त हो जाता है अथवा वन में जाकर पड़े हुये फटे वस्त्र पहन कर ब्रह्महत्या का व्रत करे ॥ १२५ ॥ संवर्तऋषि के वचनानुसार इस प्रकार सुवर्ण चोरी की शुद्धि विहित है गुरु की शय्या पर गमन करके तपाये हुए लोहे के पात्र [कड़ाही] में शयन करके शरीर को छोड़े ॥ १२६ ॥

समालिंगेत्स्त्रियंवापि दीप्तांकार्ष्णायसींकृताम् ।
चान्द्रायणानिकुर्याच्च चत्वारित्रीणिवाद्विजः ॥१२७॥
मुच्यतेचततःपापात् प्रायश्चित्तेकृतेसति ।
एभिःसम्पर्कमायाति यःकश्चित्पापमोहितः ॥१२८॥
तत्तत्पापविशुद्ध्यर्थं तस्यतस्यव्रतंचरेत् ।
क्षत्रियस्यवधंकृत्वा त्रिभिःकृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥१२९॥
कुर्याच्चैवानुरूपेण त्रीणिकृच्छ्राणिसंयतः ।
वैश्यहत्यान्तुसंप्राप्तः कथंचित्काममोहितः ॥१३०॥
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौकुर्वीत सनरोवैश्यघातकः ।
कुर्याच्छूद्रवधेविप्र–स्तप्तकृच्छ्रंयथाविधि ॥१३१॥
एवंशुद्धिमवाप्नोति संवर्त्तवचनंयथा ।
गोघ्नस्यातःप्रवक्ष्यामि निष्कृतिंतत्त्वतःशुभाम् ॥१३२॥

अथवा लोहे की स्त्री बना कर और उसे लाल तपा कर लिपट करके मरे अथवा द्विज चार वा तीन चान्द्रायण व्रत करे ॥१२७॥ पुनः प्रायश्चित्त करने के अनन्तर उस पापसे मुक्त होता है। जो कोई पाप से मोहित पुरुष इनसे सम्बन्ध करता है ॥१२८॥ वह भी उस पाप की शुद्धि के लिये उसी २ पाप का प्रायश्चित्त करे–क्षत्रिय को मार कर ब्राह्मण तीन कृच्छ्रों से सम्यक् प्रकार शुद्ध होता है ॥१२९॥ यथोचित तीन कृच्छ्र सावधान होकर करे । जो काम से मोहित मनुष्य कदाचित् वैश्य की हत्या करे ॥१३०॥ तो वैश्य का घातक वह मनुष्य कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रत करे और शूद्र के मारने में ब्राह्मण विधि से तप्तकृच्छ्र व्रत करे ॥१३१॥ संवर्त के वचनानुसार इस प्रकार शुद्धि को प्राप्त होता है अब गोहिंसा करने वाले का यथार्थ उत्तम प्रायश्चित्त कहते हैं ॥१३२॥ गौ को जो मारे वह गौशाला में और गौ के समीप अपना संस्कार करे और गौशाला में ही इन्द्रियों को वश में रख कर पन्द्रह दिन तक पृथिवी पर सोवे ॥ १३३ ॥

गोघ्नःकृतसंस्कारं गोष्ठेगोरूपसन्निधौ ।
तत्रैवक्षितिशायीस्या-न्मासार्द्धंसंयतेन्द्रियः ॥१३३॥
स्नानंत्रिषवणंकुर्या-न्नखलोमादि वर्जितः ।
सक्तुयावकभिक्षाशी पयोदधिशकृन्नरः ॥१३४॥
एतानिक्रमशोऽश्नीयाद् द्विजस्तत्पापमोक्षकः ।
गायत्रींचजपेन्नित्यं पवित्राणिचशक्तितः ॥१३५॥
पूर्णेचैवार्द्धमासेच सविप्रान्भोजयेद्द्विजः ॥
भुक्तवत्सुचविप्रेषु गांचदद्याद्विचक्षणः ॥ १३६ ॥
व्यापन्नानांबहूनांतु रोधनेबन्धनेपिवा ।
भिषङ्मिथ्योपचारेच द्विगुणंव्रतमाचरेत् ॥ १३७ ॥
एकाचेद्बहुभिःकाचि-द्दैवाद्व्यापादिताक्वचित् ।
पादंपादंतुहत्याया-श्चरेयुस्तेपृथक्पृथक् ॥ १३८ ॥
यंत्रणेगोश्चिकित्सार्थे गूढगर्भविमोचने ।
यदितत्रविपत्तिःस्या-न्नसपापेनलिप्यते ॥ १३९ ॥
औषधंस्नेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणेषुच ।

वह मनुष्य तीन काल स्नान करे और नख तथा लोम इन को न रक्खे-सत्तू जौ दूध-दही और गोबर ॥ १३४ ॥ इन को क्रम से गोहत्या के पाप से मुक्ति चाहने वाला द्विज भोजन करे-और यथाशक्ति गायत्री तथा अन्य पवित्र मंत्रों को नित्य जपे ॥ १३५ ॥ जब आधा महीना व्यतीत होजाय तब वह द्विज ब्राह्मणों को भोजन करावे जब ब्राह्मण भोजन कर चुकें उस समय गोदान भी करे ॥ १३६ ॥ रोकने अथवा बांधने में अथवा विरुद्ध चिकित्सा से बहुत गौ मर जांय तो गोहत्या का द्विगुण व्रत करे ॥ १३७ ॥ यदि कदाचित् कोई एक गौ बहुतों ने मारडाली हो तो वे पृथक् २ गोहत्या का चौथाई प्रायश्चित्त करें ॥ १३८ ॥ चिकित्सा के अर्थ वश करने में अथवा गूढ़ [मरे हुए] गर्भ के निकालने में यदि किसी से गौ मरजाय तो वह पाप का भागी नहीं होता ॥ १३९ ॥

दीयमानेविपत्तिःस्या – त्पुण्यमेवनपातकम् ॥१४०॥
प्रायश्चित्तस्यपादंतु रोधेषुव्रतमाचरेत् ।
द्वौपादौबंधनेचैव पादोनंयंत्रणेतथा ॥ १४१ ॥
पाषाणैर्लगुडैर्दण्डै–स्तथाशस्त्रादिभिर्नरः ।
निपातनेचरेत्सर्वं प्रायश्चित्तंदिनत्रयम् ॥ १४२ ॥
हस्तिनंतुरगंहत्वा महिषोष्ट्रंकपिन्तथा ।
एषांवधेद्विजःकुर्या–त्सप्तरात्रमभोजनम् ॥ १४३ ॥
व्याघ्रंश्वानंखरंसिंहं ऋक्षंसूकरमेवच ।
एतान्हत्वाद्विजोमोहाद् त्रिरात्रेणैवशुद्ध्यति ॥१४४।
सर्वासामेवजातीनां मृगाणांवनचारिणाम् ।
अहोरात्रोषितस्तिष्ठे – ज्जपन्वैजातवेदसम् ॥ १४५ ॥
हंसंकाकंबलाकाञ्च बर्हिकारंडवावपि ।
सारसंचाषभासौच हत्वात्रिदिवसंक्षिपेत् ॥१४६॥
चक्रवाकंतथाक्रौंचं सारिकाशुकतित्तिरीन् ।

औषध घी अथवा भोजन देने से यदि गौ वा ब्राह्मण मृत्यु को प्राप्त होजावे तो पुण्य ही होता है पाप नहीं ॥ १४० ॥ रोकने से यदि गौ मरे तो चौथाई प्रायश्चित्त और बांधने से आधा और वश में करनेसे मरे तो पादोन [पौन] करै ॥ १४१॥ पत्थर सोटा दण्डा और शस्त्र इन्‌से धमकानेपर गौ मर जाय तो तीन दिन तक पूरा प्रायश्चित्त करै ॥ १४२ ॥ हाथी–घोड़ा–भैंस ऊंट–और बानर–इनके मारने पर द्विज सात दिन तक भोजन न करै ॥ १४३ ॥ बाघ कुत्ता–गधा–सिंह–रीछ और सूकर इनको अज्ञान से मार कर तीन दिनकेव्रतसेराग्रमें शुद्ध होताहै ॥१४४॥ बनमें विचरते संपूर्ण जाति के मृगों के मारनेमें एक दिनरात उपवास करके अग्नि देवता वाले मन्त्रका जप करता हुआ खड़ा रहे॥१४५॥हंस कौआ बगला मोर कारंडव(हंसभेद)सारस और पपीहा इन पक्षियोंको मारकर तीन दिन उपवास करै ॥ १४६ ॥ चकवा–कूंच–मैना–

श्येनगृध्रानुलूकांश्च पारावतमथापिवा ॥ १४७ ॥
टिट्टिभंजालपादंच कोकिलंकुक्कुटंतथा ।
एषांवधेनरःकुर्या देकरात्रमभोजनम् ॥ १४८ ॥
पूर्वोक्तानांतुसर्वेषां हंसादीनामशेषतः ।
अहोरात्रोषितस्तिष्ठे-ज्जपन्वैजातवेदसम् ॥ १४९ ॥
मण्डूकंचैवहत्वाच सर्पमार्जारमूषकान् ।
त्रिरात्रोपोषितस्तिष्ठे-त्कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥१५०॥
अनस्थीन्ब्राह्मणोहत्वा प्राणायामेनशुद्ध्यति ।
अस्थिमतांवधेविप्रः किंचिद्दद्याद्विचक्षणः ॥१५१॥
यश्चांडालींद्विजोगच्छे-त्कथंचित्काममोहितः ।
त्रिभिःकृच्छ्रैस्तुशुद्ध्येत प्राजापत्यानुपूर्वकैः ॥१५२॥
पुंश्चलीगमनंकृत्वा कामतोकामतोपिवा ।
कृच्छ्रंचांद्रायणंतस्य पावनंपरमंस्मृतम् ॥ १५३ ॥

तोता-तीतर, श्येन-गीध-उल्लू-कबूतर ॥ १४७ ॥ टिट्टिभ (टटीरी) जालपाद (हंसभेद) कोयल और मुरगा इन के मारने में मनुष्य एक दिन उपवास करे ॥१४८॥ पूर्व कहे सर्व जीव तथा विशेष कर हंस आदि के मारने में एक दिन रात उपवास करके अग्निमंत्र का जप करता हुआ खड़ा रहे ॥ १४९ ॥ मेंडक-सांप-बिलाव और मूसा-इन को मार कर तीन उपवास करे तथा ब्राह्मणों को भोजन करावे॥१५०॥जिन में हड्डी न हो ऐसे मक्खी मच्छर आदि जीवों को हनन कर ब्राह्मण प्राणायाम से शुद्ध होता है और जिन में हड्डी हैं ऐसे क्षुद्र जीवों के मारने में कुछदान करे ॥१५१॥ जो काम से मोहित हुआ द्विज चांडाली के संग गमन करै वह क्रम से प्राजापत्य आदि तीन कृच्छ्रों से शुद्ध होता है ॥ १५२ ॥ ज्ञान से अथवा अज्ञानसे जो व्यभिचारिणी के संग गमन करै उसके कृच्छ्र तथा चांद्रायण ये दोनों व्रत परम संशोधक हैं ॥ १५३ ॥ नटिनी-धोबिन-बांस और चमड़े से जीने वाली इन के संग प्रमाद से गमन करके द्विज चांद्रायण व्रत करै ॥१५४॥

शैलूषोरजकीचैव वेणुचर्मोपजीविनो ।
एतागत्वाद्विजोमोहा–च्चरेच्चांद्रायणंव्रतम् ॥ १५४॥
क्षत्रियामथवैश्यांवा गच्छेद्यःकाममोहितः ।
तस्यसांतपनःकृच्छ्रो भवेत्पापापनोदनः ॥ १५५ ॥
शूद्रांतुब्राह्मणोगत्वा मासंमासार्द्धमेववा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेनविशुद्ध्यति ॥ १५६ ॥
विप्रामस्वजनांगत्वा प्रजापत्येनशुद्ध्यति ।
स्वजनांतुद्विजोगत्वा प्राजापत्यंसमाचरेत् ॥१५७॥
क्षत्रियांक्षत्रियोगत्वा तदेवव्रतमाचरेत् ।
नरोगोगमनंकृत्वा कुर्याच्चांद्रायणंव्रतम् ॥ १५८ ॥
मातुलानींतथाश्वश्रूं सुतांवैमातुलस्यच ।
एतागत्वास्त्रियोमोहा–त्पराकेणविशुद्ध्यति ॥ १५९ ॥
गुरोर्दुहितरंगत्वा स्वसारंपितुरेवच ।
तस्यदुहितरंचैव चरेच्चांद्रायणंव्रतम् ॥ १६० ॥

क्षत्रिया अथवा वैश्या के संग जो काम से मोहित हुआ ब्राह्मण गमन करता है उस के पाप का पृथक् करने वाला सांतपन कृच्छ्र व्रत है ॥१५५॥ एक मास अथवा पन्द्रह दिन तक शूद्रा के साथ गमन करके–पन्द्रह दिन तक गोमूत्र और जौको खाकर शुद्ध होता है॥१५६॥ जिसके कोई पुरुष न होऐसीब्राह्मणी केसंग गमन करके प्राजापत्य से शुद्ध होता है पुत्रादिवालीब्राह्मणीस्त्री के संग भी गमनसे द्विज प्राजापत्य व्रत से शुद्ध होता है॥१५७॥ क्षत्रिय क्षत्रिया के संग भोग करके प्राजापत्य व्रत ही करै । और मनुष्य गौके संग गमन करके चांद्रायण व्रत करै ॥१५८॥ मामा की स्त्री–सास और मामा की पुत्री इनके संग भूल से गमन करके पराक (बारह दिन का उपवास) व्रत करने से सम्यक् प्रकार शुद्ध होता है ॥१६०॥ गुरुकी पुत्री–पिताकी बहन और–फूफा की पुत्री इनके संग भोग करके चांद्रायण व्रत करै ॥ १६१ ॥

पितृव्यदारगमने भ्रातुर्भार्यागमेतथा ।
गुरुतल्पव्रतंकुर्या-न्निष्कृतिर्नान्यथाभवेत् ॥ १६२ ॥
पितृभार्यासमारुह्य मातृवर्जं नराधमः ।
भगिनींमातुलसुतां स्वसारंचान्यमातृजाम् ॥ १६३ ॥
एतास्तिस्त्र स्त्रियोगत्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ।
कुमारीगमनेचैव व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ १६४ ॥
पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यंविधीयते ।
सखिभार्यांकुमारींच श्वश्रूंश्याश्यालिकांतथा ॥१६५॥
मातरंयोधिगच्छेच्च स्वसारंपुरुषोधमः ।
नतस्यनिष्कृतिर्दृष्टा-स्स्वांचैवतनुजांतथा ॥ १६६ ॥
नियमस्थांव्रतस्थांवा योभिगच्छेत्स्त्रियंद्विजः ।
सकुर्यात्प्राकृतंकृच्छ्रं धेनुंदद्यात्पयस्विनीम् ॥ १६७ ॥
रजस्वलांतुयोगच्छेद् गर्भिणींपतितांतथा ।

चाचा की स्त्री चाची और भौजाई इनके संग भोग करने में गुरु की स्त्री के गमन का प्रायश्चित्त करै अन्यथा पाप की निवृत्ति नहीं होती ॥१६२॥ माता सेअन्य पिता की स्त्री-और मामा की पुत्री अपनी बहिन-तथा दूसरीमाता में उत्पन्न हुई अपनी भगिनी ॥ १६३ ॥ इन तीनों स्त्रियों के सग कोई नीच प्रकृति मनुष्य भोग करे तो तप्तकृच्छ्र व्रत करै और कुमारी (जिसका विवाह न हुआ हो) के गमन में भी यही कृच्छ्र करे ॥१६४॥ पशु और वेश्या के गमन में प्राजापत्य व्रत करै-मित्र की स्त्री-सासु और साले की स्त्री ॥ १६५ ॥ माता-बहिन-और अपनी लड़की इनके संग जो पुरुषों में नीच भोग करता है उसका प्रायश्चित्त नहीं है ॥१६६॥ नियम तथा व्रतमें स्थित स्त्रीके संग जो द्विज भोग करता है वह प्राकृत कृच्छ्र व्रत करे और दूध देनी हुई गौका दान करै ॥१६७।
रजस्वला-गर्भवती और पतित स्त्री के संग जो पुरुष भोग करता है उस को

तस्यपापविशुद्ध्यर्थ-मतिकृच्छ्रोविधीयते ॥ १६८ ॥
वैश्यजांब्राह्मणोगत्वा कृच्छ्रमेकंसमाचरेत् ।
एवंशुद्धिःसमाख्याता संवर्तस्यवचोयथा ॥१६९॥
कथंचिद्ब्राह्मणींगत्वा क्षत्रियोवैश्यएवच ।
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेनशुद्ध्यति ॥१७०॥
शूद्रस्तुब्राह्मणींगच्छे-त्कदाचित्काममोहितः
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेनशुद्ध्यति ॥१७१॥
ब्राह्मणीशूद्रसंपर्कं कदाचित्समुपागता ।
कृच्छ्रचांद्रायणंतस्याः पावनंपरमंस्मृम् ॥ १७२ ॥
चांडालंपुल्कसंचैव श्वपाकंपतितंतथा ।
एताःश्रेष्ठःस्त्रियोगत्वा कुर्याच्चान्द्रायणंत्रयम् ॥१७३॥
अतःपरंप्रदुष्टानां निष्कृतिंश्रोतुमर्हथ ।
संन्यस्यदुर्मतिःकश्चि-दपत्यार्थंस्त्रियंव्रजेत ॥१७४ ॥

पाप निवृत्ति के अर्थ अतिकृच्छ्र व्रत कहा है ॥ १६८ ॥ वैश्य की कन्या के संग भोग करके ब्राह्मण एक कृच्छ्र व्रत करे। संवर्त ऋषि के वचन के अनुसार इस प्रकार शुद्धि कही है ॥ ६९ ॥ क्षत्रिय और वैश्य कदाचित् ब्राह्मणी के संग भोग करें तो गोमूत्र और जौ को खाकर एक मास में शुद्ध होते हैं ॥ १७० ॥ यदि कदाचित् काम से मोहित हुआ शूद्र ब्राह्मणी के संग गमन करै तो गोमूत्र और जौं को खाकर एक महीने में शुद्ध होता है ॥ ७१ ॥ कदाचित् ब्राह्मणी स्त्री शूद्र के संग भोग करै तो उस ब्राह्मणी का पवित्र करने वाला कृच्छ्र चांद्रायण व्रत कहा है ॥ १७२ ॥ चांडाल पुल्कस श्वपाक और पतित इन की स्त्रियों के संग श्रेष्ठ (द्विजाति) पुरुष गमन करके तीन चांद्रायण व्रत करे ॥ १७३ ॥ इस से आगे अत्यंत दुष्टों का प्रायश्चित्त सुनो। यदि कोई दुष्ट बुद्धि पुरुष संन्यास लेकर संतान के लिये स्त्री का संग करता है ॥ १७४ ॥

कुर्यात्कृच्छ्रसमानं तत् षण्मासांस्तदनंतरम् ।
विषाग्निश्यामशबला स्तेषामपि विनिर्दिशेत् ॥ १७५ ॥
स्त्रीणां च तथाचरणे गर्हाभिगमनेषु ।
पतनेष्वप्ययंदृष्टः प्रायश्चित्तविधिः शुभः ॥ १७६ ॥
नृणां विप्रतिपत्तौ च पावनः प्रेत्य चेह च ।
गोविप्रप्रहते चैव तथा चैवात्मघातिनि ॥ १७७ ॥
नैवाश्रुपतनं कार्यं सद्भिः श्रेयोभिकांक्षिभिः ।
एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा ॥ १७८ ॥
कृत्वा चोदकदानं तु चरेच्चांद्रायणं व्रतम् ।
तच्छवं केवलं स्पृष्ट्वा अश्रुनोपातितं यदि ॥ १७९ ॥
पूर्वकेष्वपकारी चे- देकाहं क्षपणं तथा ।
महापातकिनां चैव तथा चैवात्मघातिनाम् ॥ १८० ॥
उदकं पिंडदानं च श्राद्धं चैव हि यत्कृतम् ।
नोपतिष्ठति तत्सर्वं राक्षसैर्विप्रलुप्यते ॥ १८१ ॥

तो वह निरंतर छः मास पर्यन्त कृच्छ्र व्रत करै और विष तथा अग्निसे जो काले और कबरे हों सांप वे भी पूर्वोक्त कृच्छ्रव्रत ही करें ॥ १७५ ॥ स्त्री को ब्रह्मचारिणी रहने व्रत करने का नियम करके संतान के लिये पुनः गृहस्थ की इच्छा हो तथा निन्दित लोगों के साथ व्यभिचार करनेपर स्त्रियोंको भी पूर्वोक्त ही प्रायश्चित्त कहा है। जाति से पतित होने के कामों में भी ऋषियों ने यही प्रायश्चित्त अच्छा कहा है ॥ १७६ ॥ मनुष्यों के परस्पर विरोध में पूर्वोक्त कृच्छ्र इस लोक और परलोक में पवित्र करने वाला है। गौ और ब्राह्मण से मरा तथा जो आत्मघात से मरा हो ॥ १७७ ॥ इनका मरण होने पर अपने हितके अभिलाषी सज्जन आंसू न गिरावें और इन में से किसी मुर्देको जो श्मशानमें लेजाय अथवा जलावे ॥ १७८ ॥ उसने यदि आंसू न गिराये हों तो जलदान तथा उस मुर्दे का केवल स्पर्श करके चान्द्रायण व्रत करे ॥ १७९ ॥ तथा पूर्वोक्त प्रायश्चित्त न कर सकता हो तो एक दिन उपवास करै महापातकी और आत्मघाती ॥ १८० ॥ इनको जल दान पिंडदान श्राद्ध जो किया हो वह सब नहीं मिलता उसे राक्षस नष्ट करदेते हैं ॥ १८१ ॥

चांडालैस्तुहतायेतु द्विजादंष्ट्रिसरीसृपैः ।
श्राद्धंतेषांनकर्त्तव्यं ब्रह्मदंडहताश्चये ॥ १८२ ॥
कृत्वामूत्रपुरीषेतु भुक्त्वोच्छिष्टस्तथाद्विजः ।
श्वादिस्पृष्टोजपेद्देव्याः सहस्रंस्नानपूर्वकम् ॥ १८३ ॥
चांडालंपतितंस्पृष्ट्वा शवमंत्यजमेवच ।
उदक्यांसूतिकांनारीं सवासाःस्नानमाचरेत् ॥ १८४ ॥
स्पृष्टेनसंस्पृशेद्यस्तु स्नानंतस्यविधीयते ।
ऊर्ध्वमाचमनंप्रोक्तं द्रव्याणांप्रोक्षणंतथा ॥ १८५ ॥
चांडालाद्यैस्तुसंस्पृष्ट उच्छिष्टश्चेद्द्विजोत्तमः ।
गोमूत्रयावकाहार स्त्रिरात्रेणविशुद्ध्यति॥ १८६ ॥
शुनापुष्पवतीस्पृष्टा पुष्पवत्यान्ययातथा ।
शेषाण्यहान्युपवसे-त्स्नात्वाशुद्ध्येद्घृताशना ॥१८७॥

जो चांडाल दाढ़वाले (कुत्ता आदि) सांप और ब्राह्मण का शाप इन से जो द्विज मरे हों उनके लिये श्राद्ध नहीं करना चाहिये॥१८२॥ भोजनसे उच्छिष्ट ब्राह्मण को तथा जिसने मूत्र और मल का त्याग किया हो उसको यदि कुत्ता आदि स्पर्श कर लें तोवह स्नान करके एक सहस्र गायत्री का जप करे ॥१८३॥ चांडाल–पतित, मुर्दा अंत्यज रजस्वला और दश दिन के भीतर सूतिका स्त्री इनका स्पर्श करके सचैल स्नान करे ॥ १८४ ॥ इनके स्पर्श करने वाले ने जिसका स्पर्श किया हो वह स्नान ही करै पुनः आचमन करे और द्रव्यों (वस्त्र आदि) को जल से छिड़क ले ॥ १८५ ॥ यदि उच्छिष्ट ब्राह्मण को चांडाल आदि स्पर्श करले तो गोमूत्र और जौंको खाकर तीनदिनमें शुद्ध होता है ॥१८६॥ यदि रजस्वला स्त्री को कुत्ता वा अन्य रजस्वला स्त्री स्पर्श करले तो शुद्धि के जो दिन बाकी हों उन में उपवास करे फिर स्नान करके घी के खाने से शुद्धि होती है ॥ १८७ ॥

चांडालभांडसंस्पृष्टं पिबेत्कूपगतंजलम् ।
गोमूत्रयावकाहार-स्त्रिरात्रेणविशुद्ध्यति ॥१८८॥
अन्त्यजैःस्वीकृतेतीर्थे तडागेषुनदीषुच ।
शुद्ध्यतेपञ्चगव्येन पीत्वातोयमकामतः ॥१८९॥
सुराघटप्रपातोयं पीत्वानासाजलंतथा ।
अहोरात्रोषितोभूत्वा पञ्चगव्यंपिबेद्द्विजः ॥१९०॥
कूपेविण्मूत्रसंस्पृष्टाः प्राश्यचापोद्विजातयः ।
त्रिरात्रेणैवशुद्ध्यन्ति कुम्भेसान्तपनंस्मृतम् ॥१९१॥
वापीकूपतडागाना-मुपहतानांविशोधनम् ।
अपांघटशतोद्धारः पञ्चगव्यंचनिक्षिपेत् ॥१९२॥
स्त्रीक्षीरमाविकंपीत्वा सन्धिन्याचैवगोःपयः ।
तस्यशुद्धिस्त्रिरात्रेण द्विजानांचैवभक्षणे ॥१९३॥
विण्मूत्रभक्षणेचैव प्राजापत्यंसमाचरेत् ।

चांडाल के पात्र का जिस में स्पर्श हुआ हो ऐसे कुये के जल को पीकर गोमूत्र और जौं को खाकर तीन दिन में शुद्ध होता है ॥ १८८ ॥ नदी तथा तालावों के जिस घाट पर भंगी आदि अन्त्यज स्नानादि सदा करते हों वहां के जल को भूल से पीकर पंचगव्य से शुद्ध होता है ॥ १८९ ॥ द्विज पुरुष मदिरा के घड़े तथा प्याऊ के और नासिका से जल को पीकर एक दिन उपवास करके पंचगव्य पीवे ॥१९०॥ द्विज लोग बिष्ठा मूत्र मिश्रित कूप के जल को पीकर तीन दिन के उपवास से शुद्ध होते और बिष्ठादि मिले घड़े के जल को पीने पर सांतपन कृच्छ्र व्रत से शुद्ध होते हैं ॥१९१॥ अपवित्र वस्तु जिन में पड़ा हो ऐसे बावड़ी-कूप और तालाब इन का संशोधन इस प्रकार होता है कि सौ घड़े जल के निकाल कर उसमें पंचगव्य डाल दे ॥१९२॥ मनुष्य स्त्री, भेड़ और संधिनी (जो गर्भवती हो परन्तु दूध भी देती हो ऐसी) गौ इन के दूध को जो पीवे उस की शुद्धि तीन दिन उपवास और ब्राह्मणों को भोजन कराने से होती है ॥ १९३ ॥ बिष्ठा और मूत्र के भक्षण में प्राजापत्य व्रत करे तथा कुत्ता

श्वकाकोच्छिष्टगोच्छिष्ट भक्षणेतुत्र्यहंद्विजः ॥१९४॥
विडालमूषिकोच्छिष्टे पञ्चगव्यंपिबेद्द्विजः ।
शूद्रोच्छिष्टंतथाभुक्त्वा त्रिरात्रेणैवशुद्ध्यति ॥१९५॥
पलाण्डुलशुनंजग्ध्वा तथैवग्रामकुक्कुटम् ।
छत्राकंविड्वराहञ्च चरेत्सान्तपनंद्विजः ॥१९६॥
श्वविडालखरोष्ट्राणां कपेर्गोमायुकाकयोः ।
प्राश्यमूत्रपुरीषेच चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥१९७॥
अन्नंपर्युषितंभुक्त्वा केशकीटैरुपद्रुतम् ।
पतितैःप्रेक्षितंवापि पंचगव्यंद्विजःपिबेत् ॥१९८॥
अन्त्यजाभाजनेभुक्त्वा ह्युदक्याभाजनेतथा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेनविशुद्ध्यति ॥१९९॥
गोमांसंमानुषंचैव शुनोहस्तात्समाहृतम् ।
अभक्ष्यंतद्भवेत्सर्वं भुक्त्वाचांद्रायणंचरेत् ॥२००॥

कौआ और गौ इन के उच्छिष्ट को भक्षण करके द्विज तीन दिन उपवास करे ॥१९४॥ बिलाव और मूसा इन के उच्छिष्ट को भक्षण कर द्विज पंचगव्य पीवे। तथा शूद्र के उच्छिष्ट को खाकर तीन दिन के उपवास करने से शुद्ध होता है ॥१९५॥ पलांडु (प्याज) लहसन और गांव के मुरगा का मांस-छत्राक (कठ फूल जिस के ऊपर छत्रीसी होती है वर्षा में पैदा होता है) और विष्ठा खाने वाले सूकर के मांस को खाकर द्विज सांतपन व्रत करे ॥१९६॥ कुत्ता-बिलाव-गधा-ऊंट-वानर गीदड़ और कौआ इन के मूत्र वा विष्ठा को खाकर चांद्रायण व्रत करे ॥१९७॥ जो अन्न बासा हो-अथवा जिस में केश वा कीड़े पड़े हों अथवा जिस को पतितों ने देखा हो उस अन्न को भक्षणकर द्विज एक दिन पञ्चगव्य पीवे ॥१९८॥ अंत्यजस्त्री के अथवा रजस्वला के पात्र में खाकर गोमूत्र और जौं को खाकर पंद्रह दिन में शुद्ध होता है ॥१९९॥ गौका वा मनुष्य का मांस जो वा कुत्ते के मुख से आया हो वह अभक्ष्य है उसे खाकर चांद्रायण व्रत करे ॥ २०० ॥

चांडालेसंकरेविप्रः श्वपाकेपुल्कसेपिवा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेनविशुद्ध्यति ॥२०१॥
पतितेनतुसंपर्कं मासंमासार्द्धमेववा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेनविशुद्ध्यति ॥२०२॥
पतिताद्द्रव्यमादत्ते भुंक्तेवाब्राह्मणोयदि ।
कृत्वातस्यसमुत्सर्ग-मतिकृच्छ्रंचरेद्द्विजः ॥ २०३ ॥
यत्रयत्रचसंकीर्ण मात्मानंमन्यतेद्विजः ।
तत्रतत्रतिलैर्होमो गायत्र्याप्रत्यहंद्विजः ॥ २०४ ॥
एषएवमयाप्रोक्तः प्रायश्चित्तविधिःशुभः
अनादिष्टेषुपापेषु प्रायश्चित्तंनचोच्यते ॥ २०५ ॥
दानैर्होमैर्जपैर्नित्यं प्राणायामैर्द्विजोत्तमः ।
पातकेभ्यःप्रमुच्येत वेदाभ्यासान्नसंशयः ॥२०६॥
सुवर्णदानंगोदानं भूमिदानंतथैवच ।
नाशयन्त्याशुपापानि ह्यन्यजन्मकृतान्यपि ॥२०७॥

चांडाल–वर्णसंकर–श्वपाक–और पुल्कस इन के भोजन को खाकर पन्द्रह दिन में शुद्ध होता है ॥ २०१ ॥ एक मास अथवा पन्द्रह दिन पतित का संसर्ग(मेल) करे तो गोमूत्र और जौं को खाकर पंद्रह दिन में शुद्ध होता है ॥ २०२ ॥ जो ब्राह्मण पतित के द्रव्य को ग्रहण करता है अथवा खाता है वह उस अन्न का त्याग (वमन) करके अतिकृच्छ्र व्रत करै ॥ २०३ ॥ जिस २ कर्म में द्विज अपने को संकीर्ण (पतित) समझे उसी २ कर्म में गायत्री मन्त्र से तिलों का प्रतिदिन होम करै ॥२०४॥ यह हमने प्रायश्चित्त का श्रेष्ठ विधान कहा और जो पाप अनादिष्ट (शास्त्रमें नहीं कहे) हैं उनका प्रायश्चित्त भी नहीं कहा है॥२०५॥ दान होम जप–प्राणायाम–और वेद पाठ–इनके करने से ब्राह्मण सदैव उन पाप से मुक्त होता है ॥२०६॥ सोना–गौ और पृथ्वी इनका दान अन्य जन्म के किये हुये पापों को भी शीघ्र नष्ट करदेता है ॥ २०७ ॥

तिलंधेनुंचयोदद्या-दसंयतायद्विजातये ।
ब्रह्महत्यादिभिःपापै-र्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ २०८ ॥
माघमासेतुसंप्राप्ते पौर्णमास्यामुपोषितः ।
ब्राह्मणेभ्यस्तिलान्दत्वा सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥२०९॥
उपवासीनरोभूत्वा पौर्णमास्यांतुकार्तिके ।
हिरण्यंवस्त्रमन्नंच दत्वातरतिदुष्कृतम् ॥२१०॥
अयनेविषुवेचैव व्यतीपातेदिनक्षये ।
चन्द्रसूर्यग्रहेचैव दत्तंभवतिचाक्षयम् ॥ २११ ॥
अमावास्याचद्वादश्यां संक्रांतौचविशेषतः ।
एताःप्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैवच ॥२१२॥
तत्रस्नानंजपोहोमो ब्राह्मणानांचभोजनम् ।
उपवासस्तथादान-मेकैकंपावयेन्नरम् ॥ २१३ ॥
स्नातःशुचिर्धौतवासाः शुद्धात्माविजितेंद्रियः ।

जो जितेन्द्रिय ब्राह्मण को तिल तथा गौ को देता है वह ब्रह्महत्या आदि पापों से निर्मुक्त हो जाता है इस में संशय नहीं है ॥२०८॥माघ महीने की पूर्णमासी को उपवास करके जो तिलों का दान ब्राह्मणों को देता है वह सब पापों से मुक्त होजाता है ॥ २०९ ॥ कार्तिक की पूर्णमासी को उपवास करके सोना–वस्त्र और अन्न इन का दान देकर पापसागर से तरजाता है॥२१०॥ दक्षिणायन,उत्तरायण–विषुव(तुल मेष)की संक्रान्ति,व्यतिपात योग–तिथि की हानि, चन्द्र और सूर्य के ग्रहण–में दिया हुआ दान अक्षय होता है ॥ २११ ॥ अमावस,द्वादशी,संक्रान्ति विशेष कर ये तिथी और रविवार ये दान के लिये बहुत श्रेष्ठ हैं॥ २१२॥इन में किये हुये स्नान,जप, होम और ब्राह्मणों को भोजन उपवास तथा दान प्रत्येक मनुष्य को पवित्र करते हैं ॥ २१३ ॥ स्नान करके तथा शुद्ध होकर धुले हुये श्वेत वस्त्र धारणकर शुद्ध मन हो इन्द्रियों को जीत कर और

सात्विकंभावमास्थाय दानंदद्याद्विचक्षणः ॥२१४ ॥
सप्तव्याहृतिभिःकार्यो द्विजैर्होमोजितात्मभिः ।
उपपातकशुद्ध्यर्थं सहस्रपरिसंख्यया ॥२१५॥
महापातकसंयुक्तो लक्षहोमंसदाद्विजः ।
मुच्यतेसर्वपापेभ्यो गायत्र्याचैवपावितः ॥ २१६ ॥
अभ्यसेच्चतथापुण्यां गायत्रींवेदमातरम् ।
गत्वारण्येनदीतीरे सर्वपापविशुद्धये ॥ २१७ ॥
स्नात्वाचविधिवत्तत्र प्राणायामत्रयंवाग्यतः ।
प्राणायामैस्त्रिभिःपूतो गायत्रींतु जपेद्द्विजः ॥२१८॥
अक्लिन्नवासाःस्थलगः शुचौदेशेसमाहितः ।
पवित्रपाणिराचान्तो गायत्र्याजपमारभेत् ॥२१९॥
ऐहिकामुष्मिकंपापं सर्वंनिरवशेषतः ।
पञ्चरात्रेणगायत्रीं जपमानोव्यपोहति ॥२२०॥
गायत्र्यास्तुपरंनास्ति शोधनंपापकर्मणाम् ।

सात्विकस्वभाव (सुशील) होकर ज्ञानवान् पुरुष दानदे ॥ २१४ ॥ मन को जीतने वाले द्विज लोग उपपातकों की शुद्धि के अर्थ सात व्याहृतियों से एक हज़ार आहुति होम करें ॥ २१५ ॥ तथा महापातकी गायत्री से लक्ष (लाख) आहुति होम करे क्योंकि गायत्री से पवित्र किया ब्राह्मण सब पापों से मुक्त होजाता है ॥२१६॥ सर्वपापों की शुद्धि के लिये वेदों की माता पवित्र गायत्री का वन में जाकर वा नदी के तट पर जप करे ।२१७॥ नदी तालाब आदि में विधिपूर्वक स्नान तथा आचमन करके तीन प्राणायामों से पवित्र हुआ द्विज गायत्री का जप करे॥२१८॥ क्लिन्न (गीले) वस्त्र न पहनकर शुद्ध स्थान पर स्थल में बैठ के सावधान होकर कुशाओं की पवित्री धारण कर आचमन के पश्चात् गायत्री के जप का आरम्भ करे॥२१९॥ पांच दिन तक गायत्री का जप करता हुआ, पुरुष इस जन्म और अन्य जन्म के संपूर्ण पापों को नष्ट करता है ॥२२०॥ पापियों को शुद्ध करने वाला गायत्री से परे अन्य उपाय नहीं है महाव्याहृति और

महाव्याहृतिसंयुक्तां प्रणवेनचसंजपेत् ॥२२१॥
ब्रह्मचारीनिराहारः सर्वभूतहितेरतः ।
गायत्र्यालक्षजप्येन सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥२२२॥
अयाज्ययाजनंकृत्वा भुक्त्वाचान्नंविगर्हितम् ।
गायत्र्यष्टसहस्रंतु जपंकृत्वाविशुद्ध्यति ॥२२३॥
अहन्यहनियोधीते गायत्रींवैद्विजोत्तमः ।
मासेनमुच्यतेपापा-दुरगःकंचुकाद्यथा ॥२२४॥
गायत्रींयस्तुविप्रोवै जपेतनियतःसदा ।
सयातिपरमंस्थानं वायुभूतःखमूर्त्तिमान् ॥२२५॥
प्रणवेनचसंयुक्ता व्याहृतीःसप्तनित्यशः ।
गायत्रींशिरसासार्द्धं मनसात्रिःपठेद्द्विजः ॥२२६॥
निगृह्यचात्मनःप्राणा-न्प्राणायामोविधीयते ।
प्राणायामत्रयंकुर्या-न्नित्यमेवसमाहितः ॥२२७॥
मानसंवाचिकंपापं कायेनैवचयत्कृतम् ।

ओंकार सहित गायत्री का जप करै ॥ २२१ ॥ ब्रह्मचारी भोजन को छोड़ कर सब के कल्याण में तत्पर हुआ एक लाख गायत्री का जप कर ने से सब पापों से मुक्त होता है ॥ २२२ ॥ यज्ञ कराने के अयोग्य पुरुष के यहां यज्ञ कराकर और निन्दित अन्न को खाकर आठ हजार गायत्री का जप करने से शुद्ध होता है ॥ २२३ ॥ जो ब्राह्मण प्रतिदिन गायत्री का जप करता है वह पाप से इस प्रकार छूटता है जैसे कांचली से सांप ॥२२४॥ जो ब्राह्मण इन्द्रियों को वश में करके सदा गायत्री का जप करता है वह वायु और आकाश रूप होकर उत्तम स्थान को प्राप्त होता है ॥२२५॥ ओंकार सहित सातव्याहृति और (आपोज्योती०) इस शीर्ष मन्त्र सहित गायत्री अर्थात् प्राणायाम को द्विज तीन बार नित्य करै ॥२२६॥ प्राणों को वश में करने को प्राणायाम कहते हैं सावधान हो कर प्रतिदिन तीन प्राणायाम करै ॥२२७॥ मन वाणी देह से किया जो पाप

तत्सर्वंनाशमायाति प्राणायामप्रभावतः ॥२२८॥
ऋग्वेदमभ्यसेद्यस्तु यजुःशाखामथापिवा ।
सामानिसरहस्यानि सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥२२९॥
पावमानींतथाकौत्सीं पूरुषसूक्तमेवच ।
जप्त्वापापैःप्रमुच्येत सपित्र्यंमाधुच्छंदसम् ॥२३०॥
मंडलंब्राह्मणंरुद्र सूक्तोक्ताश्चबृहत्कथाः ।
वामदेव्यंबृहत्साम जप्त्वापापैःप्रमुच्यते ॥ २३१ ॥
चांद्रायणंतुसर्वेषां पापानांपावनंपरम् ।
कृत्वाशुद्धिमवाप्नोति परमंस्थानमेवच ॥२३२॥
धर्मशास्त्रमिदंपुण्यं संवर्तेनतुभाषितम् ।
अधीत्यब्राह्मणोगच्छेद्ब्रह्मणःसद्मशाश्वतम् ॥२३३॥
इति संवर्त्तप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥

वह सब प्राणायाम के प्रभाव से नष्ट हो जाता है ॥ २२८ ॥ ऋग्वेद यजुर्वेद की शाखा और उपनिषद् भाग सहित सामवेद इन का अभ्यास (पाठ) करके मनुष्य सब पापों से मुक्त होता है ॥ २२९ ॥ ऋग्वेद के नवम मण्डल के आरम्भ से पवमान सूक्त हैं उन पावमानी, कुत्सऋषि वाले (अपनः शोशुचदघम्०) इत्यादि । ऋ० १।९५ सूक्त (सहस्र शीर्षा०) इत्यादि पुरुष सूक्त पितृ देवता तथा मधुच्छन्दा ऋषि वाले मंत्र इनको जप कर सब पापों से छूटता है ॥ २३० ॥ मण्डल ब्राह्मण (शतपथ कां० १०। अ ५। ब्रा० २ रुद्र सूक्त के विस्तृत कथन वामदेव्य साम और बृहत्साम वेद इनको जप के भी पापों से छूटता है ॥ २३१ ॥ परन्तु सब प्रायश्चित्तों में चान्द्रायण व्रत परम उत्तम है उसको करके शुद्ध हुआ उत्तम लोक को प्राप्त होता है ॥ २३२ ॥ संवर्त ऋषि के कहे इस पवित्र धर्म शास्त्र को ब्राह्मण पढ़ और जान तदनुसार चलकर सनातन ब्रह्मलोक में जाता है ॥ २३३ ॥

इति संवर्त प्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ८ ॥

श्रीगणेशायनमः

कात्यायनस्मृतिप्रारम्भः

अथातोगोभिलोक्तानामन्येषांचैवकर्मणाम् ।
अस्पष्टानांविधिंसम्य-ग्दर्शयिष्येप्रदीपवत् ॥ १ ॥
त्रिवृदूर्ध्ववृतंकार्यं तंतुत्रयमधोवृतम् ।
त्रिवृतंचोपवीतंस्या त्तस्यैकोग्रन्थिरिष्यते ॥ २ ॥
पृष्ठवंशेचनाभ्यांच धृतंयद्विन्दतेकटिम् ।
तद्धार्यमुपवीतंस्यान्नातोलंबंनचोच्छ्रितम् ॥ ३ ॥
सदोपवीतिनाभाव्यं सदाबद्धशिखेनच ।
विशिखोव्युपवीतश्च यत्करोतिनतत्कृतम् ॥ ४ ॥
त्रिःप्राश्यापोद्विरुन्मृज्य मुखमेतान्युपस्पृशेत् ।
आस्यनासाक्षिकर्णांश्च नाभिवक्षःशिरोंसकान् ॥५॥
संहताभिस्त्र्यंगुलिभि-रास्यमेवमुपस्पृशेत् ।
अंगुष्ठेनप्रदेशिन्या घ्राणंचैवमुपस्पृशेत् ॥६॥
अंगुष्ठानामिकाभ्यांच चक्षुःश्रोत्रंपुनःपुनः ।

इसके अनंतर गोभिल ऋषि के कहे तथा अन्य ऋषियों के कहे हुए कर्मों की विधि दीपक के समान भली प्रकार दिखाते हैं ॥ १ ॥ त्रिवृत् तीन तार एक सूत के ऊपर को बटे और फिर वे तीनों त्रिवृत [तिगुने] नीचे को बटे ऐसा त्रिवृत् उपवीत (जनेऊ) होता है उसकी एक ग्रन्थि (गांठ) कही है ॥ २ ॥ पीठ की हड्डी और नाभि पर से धारण किया जो कटि तक आजाय उस जनेऊ को धारे किन्तु न बहुत लंबा हो और न बहुत छोटा ॥३॥ सदैव जनेऊ पहने और शिखा में गांठ सदैव लगाये जिस के शिखा में गांठ और जनेऊ नहीं वह जो काम करता है वह न किये के समान है ॥ ४ ॥ सब कर्मों में प्रथम तीन बार जल पीके दो बार मुख पूंछ कर मुख नासिका नेत्र कान नाभि हृदय शिर और कंधे इन का स्पर्श करै ॥ ५ ॥

मिली हुई बीच की तीन अंगुलियों से मुख का, अंगूठा और प्रदेशिनी (तर्जनी) से प्राण नासिका का स्पर्श करै॥६॥ अंगूठा और अनामिका अंगुली

कनिष्ठांगुष्ठयोर्नाभिं हृदयन्तुतलेनवै ॥७॥
सर्वाभिस्तुशिरःपश्चा-द्बाहूचाग्रेणसंस्पृशेत् ।
यत्रोपदिश्यतेकर्म कर्तुरंगंनतूच्यते ॥८॥
दक्षिणस्तत्रविज्ञेयः कर्मणांपारगःकरः ।
यत्रदिङ्नियमोनस्या-ज्जपहोमादिकर्म्मसु ॥९॥
तिस्रस्तत्रदिशःप्रोक्ता ऐन्द्रीसौम्यापराजिताः ।
तिष्ठन्नासीनःप्रह्वोवा नियमोयत्रनेदृशः ॥१०॥
तदासीनेनकर्त्तव्यं नप्रह्वेणनतिष्ठता ।
गौरीपद्माशचीमेधा सावित्रीविजयाजया ॥११॥
देवसेनास्वधास्वाहा मातरोलोकमातरः ।
धृतिःपुष्टिस्तथातुष्टि-रात्मदेवतयासह ॥१२॥
गणेशेनाधिकाह्येता वृद्धौपूज्याश्चतुर्दश ।
कर्म्मादिषुतुसर्वेषु मातरःसगणाधिपाः ॥१३॥

से नेत्र और कानों का स्पर्श करे पहिले दहिने फिर बांयें का कनिष्ठा (छिगुनी) और अंगूठे से नाभि का. और हाथ तल से हृदय का स्पर्श करे ॥ ७ ॥ पीछे सब अंगुलियों से शिर का और हाथ के अग्रभाग से भुजाओं का स्पर्श करे । जहां शास्त्र में कर्म करना कहा हो और करने वाले का कोई अंग [अवयव] न कहा हो कि इस अंग से करे ॥८॥ तो वहां दहिना हाथ जो कर्मों को पूर्ण करता है जानना । जहां जप होम आदि कर्मों में दिशा का नियम न हो ॥९॥ तो वहां तीन दिशा कहीं जानो पूर्व. उत्तर. ईशान । जहां शास्त्र में यह नियम नहीं किया कि अमुक कर्म को खड़ा होके वा बैठ कर अथवा झुका हुआ करे ॥१०॥ तब कर्म को बैठकर करना चाहिये किन्तु खड़ा होकर वा झुक कर न करे । गौरी. पद्मा. शची. मेधा. सावित्री. विजया जया॥११॥ देवसेना. स्वधा. स्वाहा. धृति. पुष्टि. तुष्टि. और आत्म देवता ॥१२॥ गणेश है अधिक जिन में ऐसी ये सब लोगों की माता चौदह मातृ का कहाती हैं वृद्धि श्राद्ध (नांदीमुख जो पुत्र जन्मादि के समय किया जाता है) में इन १४ माताओं का पूजन करे अर्थात् गणेश जी सहित इन मातृकाओं का सब कर्मों की आदि में ॥१३॥

पूजनीयाःप्रयत्नेन पूजिताःपूजयन्तिताः ।
प्रतिमासुचशुभ्रासु लिखित्वावापटादिषु ॥१४॥
अपिवाक्षतपुंजेषु नैवेद्यैश्चपृथग्विधैः ।
कुड्यलग्नांवसोर्द्धारां सप्तधारांघृतेनतु ॥१५॥
कारयेत्पञ्चधारांवा नातिनीचांनचोच्छ्रिताम् ।
आयुष्याणिचशान्त्यर्थं जप्त्वातत्रसमाहितः ॥१६॥
षड्भ्यःपितृभ्यस्तदनुभक्त्याश्राद्धमुपक्रमेत् ।
अनिष्ट्वातुपितृञ्छ्राद्धे नकुर्यात्कर्मवैदिकम् ॥१७॥
तत्रापिमातरःपूर्वं पूजनीयाःप्रयत्नतः ।
वशिष्ठोक्तोविधिःकृत्स्नो द्रष्टव्योऽत्रनिरामिषः ॥१८॥
अतःपरंप्रवक्ष्यामिविशेषइहयोभवेत् ॥१८॥
इति श्रीकात्यायनस्मृतौ प्रथमखंडः समाप्तः ॥१॥
प्रातरामंत्रितान्विप्रान्युग्मानुभयतस्तथा ।
उपवेश्यकुशान्दद्यादृजुनैवहिपाणिना ॥१॥

यत्न से पूजन करे क्योंकि पूजा को प्राप्त हुई ये पूजनेवाले को पुजवाती हैं इन को सफेद मूर्त्तियों में अथवा पट्टे पर लिख कर ॥१४॥ अथवा अक्षतों के पुंजों की (ढेरी) में पृथक्२ नैवेद्यों से पूजे । और घी छोड़कर भीतमें सात वसोर्धारा बनावे ॥१५॥ वा पांच धारा करवावे और वे धारा न बहुत नीची हों न ऊंची और शांति के लिये अवस्था बढ़ने की प्रार्थना अर्थ वाले मंत्र सावधानी से जप कर ॥१६॥ तिस पीछे छः पितरों के नान्दी श्राद्ध का भक्ति से प्रारम्भ करे। श्राद्ध में पितरों के बिना पूजे वेदोक्त कर्म न करे ॥१७॥ वहां भी यत्न से—माता[षोडश मातृका] सब से पहिले पूजनी चाहिये और इस श्राद्ध में वशिष्ठ ऋषिका कहा सब विधान देखना चाहिये ॥ १८ ॥ इस से आगे श्राद्ध विषय में जो विशेष वक्तव्य है सो हम कहेंगे ॥

यह प्रथम खंड समाप्त हुआ ॥

प्रातःकाल दिया है निमन्त्रण जिन को ऐसे दो २ ब्राह्मण दोनों पक्ष (माता और पिता) के बैठाकर धीरज के साथ हाथ से कुशाओं को देवे ॥१॥

हरितायज्ञियादर्भाः पीतकापाकयज्ञियाः ।
समूलाःपितृदैवत्याः कल्माषावैश्वदेविकाः ॥२॥
हरितावैसपिञ्जल्याः शुष्काःस्निग्धाःसमाहिताः ।
रत्निमात्रप्रमाणेन पितृतीर्थेनसंस्तृताः ॥३॥
पिण्डार्थंयेस्तृतादर्भास्तर्पणार्थंतथैवच ।
धृतैःकृतेचविण्मूत्रे त्यागस्तेषांविधीयते ॥४॥
दक्षिणंपातयेज्जानुं देवान्परिचरन्सदा ।
पातयेदितरंजानुं पितॄन्परिचरन्नपि ॥५॥
निपातोनहिसव्यस्य जानुनोविद्यतेक्वचित् ।
सदापरिचरेद्भक्त्यापितॄनप्यत्रदेववत् ॥६॥
पितृभ्यइतिदत्तेषुउपवेश्यकुशेषुतान् ।
गोत्रनामभिरामंत्र्य पितॄनर्घ्यंप्रदापयेत् ॥७॥
नात्रापसव्यकरणं नपित्र्यंतीर्थमिष्यते ।

यज्ञ के दाभ हरे और पाकयज्ञ नाम वैश्वदेवादि के पीले पितृ देवताओं के लिये जड़ सहित—और विश्वे देवताओं के लिये चित कबरे रंग के ॥२॥ पितृ श्राद्ध में हरे कुश हों वा सूखे हों पर वे अन्तर्गर्भित (जिन के भीतर से न निकाले हों) ऐसे चिकने बराबर करके रक्खे हाथ भर लम्बे लेकर पितृ तीर्थ से पितृब्राह्मणों के बैठने को बिछावे ॥३॥ पिंड और तर्पण के लिये भी पूर्वोक्त प्रकार के दाभ बिछाने चाहिये। यदि दाभों को हाथ में लिये हुए मल मूत्र त्याग करे तो उन कुशाओं को त्याग देवे ॥४॥ देवताओं की पूजा करता हुआ मनुष्य दहिने गोड़े को और पितरों को पूजता हुआ बायें गोड़े को नवावे ॥५॥ बायें गोड़े का नवाना इस नान्दीमुख श्राद्ध में कहीं भी नहीं कहा है किन्तु दहिने गोड़े को नवा कर पितरों का देवताओं के समान पूजन करे ॥ ६ ॥ पितृभ्य इदं कुशासनंस्वधा—इस मन्त्र से बिछाये कुशाओं पर उन पितृ ब्राह्मणों को बैठा कर और नाम और गोत्र से बुलाकर पितरों को अर्घ देवे ॥७॥ पात्रों के पूरण आदि कर्म देवतीर्थ से ही करै इस से इस आभ्युदयिक श्राद्ध

पात्राणांपूरणादीनि दैवेनैवहिकारयेत् ॥ ८ ॥
ज्येष्ठोत्तरकरान्युग्मान्कराग्राग्रपवित्रकान् ।
कृत्वार्घ्यंसंप्रदातव्यं नैकैकस्यात्रदीयते ॥ ९ ॥
अनन्तर्गर्भिणंसाग्रं कौशंद्विदलमेवच ।
प्रादेशमात्रंविज्ञेयं पवित्रंयत्रकुत्रचित् ॥ १० ॥
एतदेवहिपिंजल्या लक्षणंसमुदाहृतम् ।
आज्यस्योत्पवनार्थंय-स्तदप्येतावदेवतु ॥ ११ ॥
एतत्प्रमाणामेवैके-कौशीमेवार्द्रमंजरीम् ।
शुष्कांवाशीर्णकुसुमां पिंजलींपरिचक्षते ॥ १२ ॥
पित्र्यमंत्रानुद्रवणआत्मालंभेऽधमेक्षणे ।
अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहासेऽनृतभाषणे ॥ १३ ॥
मार्जारमूषकस्पर्शे आक्रुष्टेक्रोधसंभवे ।

से अपसव्य करना और पितृतीर्थ से काम लेना इष्ट नहीं है ॥ ८ ॥ दहिना हाथ है आगे जिन के ऐसे दोनों हाथ और हाथों के आगे पवित्र कुशा करके पितरों को एक साथ अर्घ देवे किन्तु पृथक् २ पितरों के नाम से अर्घ नहीं देवे ॥ ९ ॥ जिस कुशा के भीतर अन्य कुश न हो और जिस का अग्रभाग बना हो ऐसा दो कुशा का बना हुआ प्रादेशमात्र (बिलस्त) भर का पवित्र सभी कर्मों में जानना चाहिये यह पवित्र की परिभाषा है ॥१०॥ यही सगर्भ कुशा का लक्षण कहा है और घी के पवित्र करने का कुशा भी इतना ही बड़ा होता है ॥११॥ और कितनेक ऋषि इतने ही प्रमाण की हरे कुशा की पवित्री कहते हैं। गीली हो अथवा सूखी परन्तु फल उस के गिरगये हों उस को पिंजली कहते हैं ॥१२॥ पितरों सम्बन्धी मन्त्रों का उच्चारण करने पर, हृदय स्पर्श करने पश्चात्, किसी नीच के देख लेने पर, अधोवायु निकल जाने पर, हंसी आजाने पर, झूठ बोलने पर. ॥ १३ ॥ बिलाव मूसा इन के छू लेने पर, गाली देने वा अपशब्द बोलने पर और क्रोध आजाने पर इन सब निमित्तों में कर्म करता हुआ

निमित्तेष्वेषुसर्वत्र कर्म्मकुर्वन्नपःस्पृशेत् ॥ १४ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ द्वितीयः खंडः ॥ २ ॥
अक्रियात्रिविधाप्रोक्ता विद्वद्भिःकर्म्मकारिणाम् ।
अक्रियाचपरोक्ताच तृतीयाचान्यथाक्रिया ॥ १ ॥
स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयंचयः ।
कर्तुमिच्छतिदुर्मेधा मोघंतत्तस्यचेष्टितम् ॥ २ ॥
यन्नाम्नातंस्वशाखायां परोक्तमविरोधिच ।
विद्वद्भिस्तदनुष्ठेय-मग्निहोत्रादिकर्म्मवत् ॥ ३ ॥
प्रवृत्तमन्यथाकुर्य्याद्यदिमोहात्कथंचन ।
यतस्तदन्यथाभूतं ततएवसमापयेत् ॥ ४ ॥
समाप्तेयदिजानीयान्मयैतदयथाकृतम् ।
तावदेवपुनःकुर्यान्नावृत्तिःसर्व्वकर्म्मणः ॥ ५ ॥
प्रधानस्याक्रियायत्र सांगंतत्क्रियतेपुनः ।

मनुष्य दहिने हाथ से जल का स्पर्श करे ॥१४॥ यह दूसरा खण्ड पूरा हुआ ॥

कर्म करने वालों का अकर्म (निन्दित कर्म) विद्वानों ने तीन प्रकारका कहा है ॥१॥ अक्रिया (कर्म को न करना) २ अपनी से भिन्न अन्य शाखा में कहे अनुसार कर्म करना ३ अन्यथा क्रिया जैसे चाहियें वैसे न करना विधान से विरुद्ध मन माना करे ॥१॥ जो कुबुद्धिपुरुष अपनी शाखा के कर्मों को छोड़ कर दूसरे की शाखा में कहे कर्म करने की इच्छा करता है वह उस का परिश्रम [करना] निष्फल है ॥२॥ जो कर्म वा कर्मांग अपनी शाखा में नहीं कहा और अपनी शाखा से विरुद्ध भी जो न हो समझदार मनुष्य दूसरी शाखा के कहे हुए उस कर्म को अग्निहोत्र के तुल्य स्वीकार करे ॥ ३ ॥ प्रारंभ किये कर्म को यदि किसी प्रकार अज्ञान से अन्यथा करे तो जहां से वह कर्म अन्यथा हुआ है वहां बीच में ही समाप्त करदे ॥ ४ ॥ यदि समाप्त होने पर यह प्रतीत हो कि मैंने यह काम अन्यथा किया तो जितना कर्म अन्यथा हुआ हो उतना ही फिर करदे—संपूर्ण कर्म को फिर न करै ॥ ५ ॥ जहां प्रधान (मुख्य) कर्म नहीं किया हो वा विपरीत किया हो तो वहां सब कर्म फिर से करना चाहिये—और उस कर्म का कोई अंग न किया हो तो ॥

तदंगस्याक्रियायांच नावृत्तिर्नैवतत्क्रिया ॥ ६ ॥

मधुमध्वितियस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम् ।
गायत्र्यनंतरंसोऽत्र मधुमन्त्रविवर्जितः ॥ ७ ॥
नचाश्नत्सुजपेदत्र कदाचित्पितृसंहिताम् ।
अन्यएवजपःकार्य्यः सोमसामादिकःशुभः ॥ ८ ॥
यस्तत्रप्रकरोऽन्नस्य तिलवद्यववत्तथा ।
उच्छिष्टसन्निधौसोऽत्र तृप्तेषुविपरीतकः ॥ ९ ॥
संपन्नमितितृप्ताःस्थ प्रश्नस्थानेविधीयते ॥
सुसंपन्नमितिप्रोक्ते शेषमन्नंनिवेदयेत् ॥ १० ॥
प्रागग्रेष्वथदर्भेषु आद्यमामंत्र्यपूर्ववत् ।
अपःक्षिपेन्मूलदेशेऽवनेनिक्ष्वेतिपात्रतः ॥ ११ ॥
द्वितीयंचतृतीयंच मध्यदेशाग्रदेशयोः ।
मातामहप्रभृतींस्त्रीनेतेषामेववामतः ॥ १२ ॥

वहां सब कर्म की आवृत्ति न करे किन्तु उस अंग को ही करे ॥ ६ ॥ मधु मधु मधु यह जो भोजन करने वालों का तीन बार जप है वह यहां (श्राद्ध में) गायत्री के पीछे मधुवाता इत्यादि मन्त्र के विना ही करना चाहिये ॥ ७ ॥ पितृ ब्राह्मणों के भोजन करते समय श्राद्ध में पितृसंहिता न जपै किन्तु अन्य ही सोम देवता वाले मन्त्रों और सामवेद आदि का शुभ पाठ करै ॥८॥ तिल और जौ के समान जो अन्न का प्रकर (विकिर पिण्ड) है वह उच्छिष्ट के समीप देना और ब्राह्मणों के तृप्त होने पर विपरीत (जहां उच्छिष्ट न हो) जगह देना चाहिये॥९॥ सम्पन्न (अच्छी तरह किया)तृप्त हुए यह तो यजमान प्रश्न (पूछने) के समय कहै—जब ब्राह्मण लोग [भले प्रकार तृप्त हुये] यह कहदें तब शेष अन्न को यजमान उन के सामने निवेदन करे और जैसी आज्ञा दें वैसा करे ॥ १० ॥ पूर्व को है अग्रभाग जिन का ऐसा कुशाओं पर आद्य (पिता) का पर्व के समान आमंत्रण करके पात्र में से अवनेनिक्ष्व इस मन्त्र से कुशाओं की जड़ में जल डाले ॥ ११ ॥ पितामह को कुशा के मध्य में और प्रपितामह को कुशा के अग्रभाग में जल छोड़ मातामह (नाना) आदि तीनों को भी इन की बांई ओर जल दे ॥ १२ ॥

सर्वस्मादन्नमुद्धृत्य व्यंजनैरुपसिच्यच ।
संयोज्ययवकर्कन्धूदधिभिः प्राङ्मुखस्ततः ॥ १३ ॥
अवनेजनवत्पिण्डान्दत्वाबिल्वप्रमाणकान् ।
तत्पात्रक्षालनेनाथ पुनरप्यवनेजयेत् ॥ १४ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥
उत्तरोत्तरदानेन पिंडानामुत्तरोत्तरः ।
भवेदधश्चाधराणा-मधरःश्राद्धकर्मणि ॥ १ ॥
तस्माच्छ्राद्धेषुसर्वेषुवृद्धिमत्स्वितरेषुच ।
मूलमध्याग्रदेशेषु ईषत्सक्तांश्चनिर्वपेत् ॥ २ ॥
गन्धादीन्निःक्षिपेत्तूष्णीं ततआचामयेद्द्विजान् ।
अन्यात्राप्येषएवस्याद्यवादिरहितोविधिः ॥ ३ ॥
दक्षिणाप्लवनेदेशे दक्षिणाभिमुखस्यच ।
दक्षिणाग्रेषुदर्भेषु एषोऽन्यत्रविधिःस्मृतः ॥ ४ ॥

सब अन्न में से भोजन का भाग निकाल कर और मट्ठा आदि सेचन करके त-था जौ,बेर दही मिलाकर-फिर पूर्वाभिमुख होकर ॥ १३ ॥ बेलके समान बड़े पिंडों को अवनेजन जहां २ दिया था वहां २ देकर अवनेजन के पात्रको धोकर प्रत्यवनेजन छोड़े ॥ १४ ॥

यह तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥३॥

उत्तर २ क्रमशः पिंडों के देने से पिछला २ अधः (नीचे) होता है इस से श्राद्ध कर्म में पिछले २ पिण्ड को नीचीं २ जगह में देना चाहिये ॥ १ ॥ तिससे वृद्धि के (आभ्युदयिक) श्राद्ध वा अन्य श्राद्धों में कुशा की जड़ मध्यभाग तथा अग्रभाग में कुछ लगे हुए पिंड देने चाहिये ॥ २ ॥ बिना मंत्र गंध आदि दे और फिर द्विजों को आचमन करावे अन्य श्राद्धों (पार्वणादि) में जौ को छोड़ अन्य यही विधि होता है ॥३॥ जो देश दक्षिण को नीचा हो उस में यजमान भी दक्षिणाभिमुख बैठे और दक्षिणाग्रही कुशों पर पिंड आदि देवे यह विधि अन्य पार्वणादि श्राद्धों में कही है ॥ ४ ॥ फिर यजमान

अथाग्रभूमिमासिंचेत् सुसंप्रोक्षितमस्त्विति ।
शिवाआपःसन्त्विति च युग्मानेवोदकेनच ॥ ५ ॥
सौमनस्यमस्त्विति च पुष्पदानमनन्तरम् ।
अक्षतञ्चारिष्टंचास्त्वित्यक्षतान्प्रतिपादयेत् ॥ ६ ॥
अक्षय्योदकदानंतु अर्घ्यदानवदिष्यते ।
षष्ठ्यैवनित्यंतत्कुर्यान्नचतुर्थ्याकदाचन ॥ ७ ॥
अर्घ्येऽक्षय्योदकेचैव पिण्डदानेऽवनेजने ।
तंत्रस्यतुनिवृत्तिःस्यात् स्वधावाचनएवच ॥ ८ ॥
प्रार्थनासुप्रतिप्रोक्ते सर्वास्वेवद्विजोत्तमैः ।
पवित्रांतर्हितान्पिंडान् सिंचेदुत्तानपात्रकृत् ॥ ९ ॥
युग्मानेवस्वस्तिवाच्यमङ्गुष्ठाग्रग्रहंसदा ।
कृत्वाधुर्यस्यविप्रस्य प्रणम्यानुव्रजेत्ततः ॥ १० ॥
एषश्राद्धविधिःकृत्स्न उक्तःसंक्षेपतोमया ।

जल से अपने आगे की पृथ्वी को—(सुसंप्रोक्षितमस्तु) ऐसा कहकर और (शिवा आपः सन्तु) इस मन्त्र से दो ब्राह्मणों को साथ ही जल से सींचे ॥५॥ (सौमनस्यमस्तु) इस मंत्र से ब्राह्मणों को पुष्प समर्पण करे और (अक्षतं-चारिष्टमस्तु) इस मंत्र से अक्षत निवेदन करे ॥ ६ ॥ अर्घ देने के समान अक्षय्य जल का देना कहा है और उस अक्षय्योदक को षष्ठी (पितुः) विभक्ति बोलकर देवे किन्तु चतुर्थी (पित्रे) बोल कर कभी न देवे ॥ ७ ॥ अर्घ्य अक्षय्योदक—पिंडदान—अवनेजन और स्वधा के वचन—इन कर्मों में तन्त्र (एक संकल्प से सब को अर्घ आदि न देवे किन्तु पृथक् २) से अर्घादि देने चाहिये ॥ ८ ॥ ब्राह्मणों ने दिया जो यजमान को प्रार्थ-ना का उत्तर उस के अनंतर अर्घ के पात्रों को सीधे करके पवित्रियों से ढके हुए पिंडों को सींचे ॥ ९ ॥ दो २ पिंडों को सींच के स्वस्तिवाचन और अंगूठों के अग्रभाग का ग्रहण प्रथम मुख्य ब्राह्मण का करै फिर नमस्का-र करके ब्राह्मणों के पीछे चले ॥ १० ॥ यह श्राद्ध की संपूर्ण विधि संक्षेप से हमने कही जो लोग इस विधि को जानते हैं वे कभी भी श्राद्ध कर्म में मूढ़-

येविदंतिनमुह्यन्ति श्राद्धकर्मसुतेक्वचित् ॥ ११ ॥
इदंशास्त्रंचगुह्यंच परिसंख्यानमेवच ।
वसिष्ठोक्तंचयोवेद सश्राद्धंवेदनेतरः ॥ १२ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्थः खंडः ॥ ४ ॥
असकृद्यानिकर्माणि क्रियरंकर्मकारिभिः ।
प्रतिप्रयोगंनैताःस्युर्मातरःश्राद्धमेवच ॥ १ ॥
आधानेहोमयोश्चैव वैश्वदेवेतथैवच ।
बलिकर्म्मणिदर्शेच पौर्णमासेतथैवच ॥ २ ॥
नवयज्ञेचयज्ञज्ञा वदन्त्येवंमनीषिणः ।
एकमेवभवेच्छ्राद्धमेतेषुनपृथक्पृथक् ॥ ३ ॥
नाष्टकासुभवेच्छ्राद्धं नश्राद्धेश्राद्धमिष्यते ।
नसोष्यन्तीजातकर्म्म प्रोषितागतकर्म्मसु ॥ ४ ॥
विवाहादिःकर्म्मगणोयउक्तो गर्भाधानंशुश्रुमयस्यचान्ते ।
विवाहादावेकमेवात्रकुर्यात्श्राद्धंनादौकर्म्मणःकर्म्मणःस्यात् ॥ ५ ॥

ता को प्राप्त नहीं होते ॥११॥ इस धर्मशास्त्र को वेदान्त को और वशिष्ठ जी के कहे धर्म शास्त्र को जो जानता है वही श्राद्ध को जानता है अन्य नहीं॥१२॥

यह चौथा खण्ड पूर्ण हुआ ।

बारंबार जिन कर्मों को कर्म करने वाले करते हों उन प्रत्येक कर्मों में से षोडशमातृका और श्राद्ध (नांदी मुख) नहीं होते ॥ १ ॥ अग्नि स्थापन के आरम्भ में सायं प्रातः काल के अग्निहोत्रके आरम्भमें, चातुर्मास्य यज्ञोंके वैश्वदेव पर्व में, बलिदान में श्रौतदर्शेष्टि तथा पौर्णमासेष्टि के आरम्भ में ॥ २ ॥ और नवान्नेष्टि के आरम्भ में यज्ञके जानने वाले विद्वान् याज्ञिक-लोग ऐसा कहते हैं कि इनमें से एक साथ सबन्ध होने वाले कामों में एकही श्राद्ध होता है पृथक् २ नहीं ॥ ३ ॥ अष्टकाओं में और एक श्राद्ध के समय में दूसरा (आभ्युदयिक) श्राद्ध नहीं होता—परदेश में गये हुये सोष्यंती (जिसके बालक हुआ हो) उसके लौट आनेपर जातकर्मादि में नान्दी श्राद्ध न करै—॥ ४ ॥ विवाह आदि कर्म का जो समूह कहा है कि जिसके अन्त में वेद से गर्भाधान सुनते हैं उस विवाह के आदि में एकही नान्दी श्राद्ध होता है प्रति कर्म की आदिमें नहीं करे ॥ ५ ॥

प्रदोषेश्राद्धमेकंस्याद् गोनिष्क्रामप्रवेशयोः ।
नश्राद्धंयुज्यतेकर्त्तुं प्रथमेपुष्टिकर्मणि ॥ ६ ॥
हलाभियोगादिषुतु षट्सुकुर्यात्पृथक्पृथक् ।
प्रतिप्रयोगमप्येषा मादावेकन्तुकारयेत् ॥ ७ ॥
बृहत्पत्रिक्षुद्रपशुस्वस्त्यर्थंपरिविष्यतोः ।
सूर्येन्द्वोःकर्मणोयेतु तयोःश्राद्धंनविद्यते ॥ ८ ॥
नदशाग्रन्थिकेचैव विषवद्दष्टकर्मणि ।
कृमिदष्टचिकित्सायां नैत्रशेषेपुविद्यते ॥ ९ ॥
गणशःक्रियमाणेषु मातृभ्यःपूजनंसकृत् ।
सकृदेवभवेच्छ्राद्ध-मादौनपृथगादिषु ॥ १० ॥
यत्रयत्रभवेच्छ्राद्धं तत्रतत्रचमातरः ।

रात में विवाह का मुहूर्त अथवा सायंप्रातः काल में सन्तान उत्पन्न हो तो वही एक नान्दीश्राद्ध सायंकाल प्रदोष के समय वा प्रातःकाल होता है वह यदि प्रातःकाल में करना पड़े तो गौओं के चरने को निकलने के समय और सायंकाल में करना हो तो गौओं के घर आने समय करे ॥६ ॥ हलका अभियोग (प्रथम जोतना) आदि गृह्यसूत्रोक्त छः कर्मों में पृथक् २ श्राद्ध होता है इस से प्रत्येक कर्म के आदि में एक नान्दीश्राद्ध करावे ॥ ७ ॥ बड़े २ पत्तों और छोटे २ पशु इन के कल्याण के लिये किये कर्म में सूर्य और चन्द्रमा के परिवेष [चारों ओर मण्डलाकार होने] के समय में किये कर्म में नान्दीश्राद्ध न करे ॥ ८ ॥ दशाग्रन्थि कर्म में—विषवाले जीव के काटलेने पर जो कर्म होता है उस में कीड़े के काटलेने की चिकित्सा में और जो कर्म बाकी रहजाने वाले हों उन में नान्दी श्राद्ध नहीं है ॥ ९ ॥ समूह से [एक बार] किये कर्मों में षोडश मातृकाओं का पूजन और कर्म की आदि में एक बार श्राद्ध करे पृथक् २ कर्म की आदि में नहीं ॥१० ॥ जहां २ नान्दी होता है वहां ५—१६ मातृकाओं का पूजन भी अवश्य करे यहां तक प्रासङ्गिक

प्रासङ्गिकमिदंप्रोक्त-मतःप्रकृतमुच्यते ॥ ११ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

आधानकालायेप्रोक्तास्तथायेचाग्निर्योनयः ।
तदाश्रयोग्निमादध्यादग्निमानग्रजोयदि ॥ १ ॥
दाराधिगमनाधाने यःकुर्यादग्रजाग्रिमः ।
परिवेत्तासविज्ञेयः परिवित्तिस्तुपूर्वजः ॥ २ ॥
परिवित्तिपरिवेत्तारौ नरकंगच्छतोध्रुवम् ।
अपिचीर्णप्रायश्चित्तौ पादोनफलभागिनौ ॥ ३ ॥
देशान्तरस्थक्लीबैकवृषणानसहोदरान् ।
वेश्यातिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः ॥ ४॥
जडमूकान्धबधिरकुब्जवामनकुण्ठकान् ।
अतिवृद्धानभार्यांश्च कृषिसक्तान्नृपस्यच ॥ ५ ॥

[प्रसङ्ग में आया] कहा अब प्रकृत (जिस का प्रकरण था) कहते हैं ॥ ११॥

यह पांचवां खंड पूरा हुआ ॥ ५ ॥

जो अग्नि के आधान के समय कहे हैं और जो अग्नि के कारण हैं उन्हीं में जेठा भाई अग्निहोत्र ले चुका हो तो छोटा अन्याधान पूर्वक अग्निहोत्र का ग्रहण करे॥१॥ जो छोटा भाई बड़े भाई से पहिले विवाह और अन्याधान करता है वह परिवेत्ता और जेठा भाई परिवित्ति कहाता है ॥२॥ परिवित्ति और परिवेत्ता दोनों निश्चय नरक में जाते हैं यदि वे दोनों प्रायश्चित्त करलें तो पादोन [तीन भाग] फल के भागी होते हैं॥३॥ यदि जेठा भाई परदेश में हो वा नपुंसक हो वा जिस के एक ही अंडकोश हो वा अपना सहोदर [सगा] भाई न हो वा वेश्यागामी हो वा पतित हो वा शूद्र के समान हो–वा अत्यन्त रोगी हो ॥४॥ जड़ महाअज्ञानी हो वा गूंगा हो वा अंधा हो वा बहरा कुबड़ा हो खिलन्दिया बौना हो वा पिता के जीते ही जार से पैदा हुआ हो वा अत्यन्त बुड्ढा हो या जिस के स्त्री न हो वा जो राजा की खेती कराता हो ॥५॥

धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतःकारिणस्तथा ।
कुलटोन्मत्तचोरांश्च परिविन्दन्नदुष्यति ॥ ६ ॥
धनवार्द्धुषिकंराजसेवकंकर्म्मकरस्तथा ।
प्रोषितञ्चप्रतीक्षेत वर्षत्रयमपित्वरन् ॥ ७ ॥
प्रोषितंयद्यशृण्वानमब्दादूर्ध्वंसमाचरेत् ।
आगतेतुपुनस्तस्मिन्पादंतच्छुद्धयेचरेत् ॥ ८ ॥
लक्षणंप्रागग्रतायास्तु प्रमाणंद्वादशाङ्गुलम् ।
तन्मूलान्नायतोदीची तस्याएतच्चोत्तरम् ॥ ९ ॥
उदग्गतायाःसंलग्नाः शेषाःप्रादेशमात्रिकाः ।
सप्तसप्ताङ्गुलान्युत्सृज्य कुशेनैवसमुल्लिखेत् ॥१०॥
मानक्रियायामुक्तायामनुक्तेमानकर्त्तरि ।

धन के बढ़ाने में आसक्त हो वा अपनी इच्छा के अनुसार जो कर्म करता हो वा घर २ में जो फिरे वा उन्मत्त वा चोर इनके जेठे भाइयों से पहिले विवाह करने वा अग्निहोत्र लेने में छोटा भाई दोषभागी नहीं होता ॥ ६ ॥ यदि जेठा भाई ब्याज से धन को बढ़ाने वाला हो वा राजा का सेवक हो वा परदेश में हो ऐसे की शीघ्रता करने वाला भी अग्निहोत्रादि कर्म करना चाहता हुआ छोटा भाई तीन वर्ष तक उस बड़े भाई की बाट देखे ॥ ७ ॥ यदि परदेश में रहने की खबर न हो कि कहां है तो एक वर्ष पीछे विवाह आदि करले यदि जेठा भाई फिर आजाय तो उस पाप की शुद्धि के के लिये चौथाई प्रायश्चित्त करे ॥ ८ ॥ अग्निकुण्ड बनाने के लिये जो चिह्न किया हो उस में जो रेखा पूर्व को खींचे वह बारह अंगुल की हो और उस रेखा के मूल से लगी उत्तर की रेखा दश अंगुल की खींचे ॥ ९ ॥ उत्तर को गई रेखा से मिली हुई शेष रेखा प्रादेश मात्र दश २ अंगुल की हों। उनको सात २ अंगुल छोड़ कर शेष भाग में उल्लेखन संस्कार कुशों से करे ॥ १० ॥ जहां माप करनो तो कहा हो पर माप का करने वाला न कहा हो वहां विद्वानों

मानकृद्यजमानःस्याद्विदुषामेषनिश्चयः ॥ ११ ॥
पुण्यवानादधीताग्निं सहिसर्वैःप्रशस्यते ।
अनवृर्धुकत्वंयत्तस्य काम्यैस्तन्नीयतेशमम् ॥ १२ ॥
यस्यदत्ताभवेत्कन्या वाचासत्येनकेनचित् ।
सोऽन्त्यांसमिधमाधास्यन्नादधीतैवनान्यया ॥ १३ ॥
अनूढैवतुसाकन्या पञ्चत्वंयदिगच्छति ।
नतथाव्रतलोपोऽस्य तेनैवान्यांसमुद्वहन् ॥ १४ ॥
अथचेन्नलभेतान्यां याचमानोऽपिकन्यकाम् ।
तमग्निमात्मसात्कृत्वाक्षिप्रंस्यादुत्तराश्रमी ॥ १५ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ षष्ठः खंडः ॥ ६ ॥
अश्वत्थोयःशमीगर्भः प्रशस्तोर्वीसमुद्भवः ।

का यह निश्चय है कि माप का कर्ता यजमान होता है अर्थात् यजमान की अंगुलियों से माप करना चाहिये ॥ ११ ॥ धनवान् न होने पर भी धर्मात्मा पुण्य शील पुरुष अग्नि को विधि पूर्वक स्थापन करे क्योंकि धर्मात्मा की ही सब प्रशंसा करते हैं । और जो उस की निर्धनता है वह काम्य कर्मों के अनुष्ठान से शान्त हो कर धनी हो जाता है ॥ १२ ॥ यदि किसी ने सत्यवाणी से किसी को कन्या दी हो अर्थात् सगाई करदी हो वह वर यदि उस कन्या के जीवन पर्यन्त अग्निहोत्र करना चाहता हो तो उसी के साथ विवाह करके अवश्य अग्न्याधान करे किन्तु अन्य स्त्री के साथ अग्निहोत्र न लेवे ॥ १३ ॥ यदि वह कन्या विना विवाही मरजाय तो तिस से इस पुरुष के व्रत (अग्निहोत्र लेने की प्रतिज्ञा) का नाश नहीं होता उसी अग्नि से दूसरी स्त्री को विवाह लेवे ॥ १४ ॥ यदि मांगने से भी अन्य कन्या न मिले तो विधिपूर्वक आत्मा में उस अग्नि का समारोप करके संन्यासी हो जावे ॥ १५ ॥

यह छठा खण्ड पूरा हुआ ॥६॥

शमीनाम छोंकर जिस में मिलकर जम गया हो ऐसा शुद्ध भूमि में उत्पन्न जो पीपल है उस की जो पूर्व को वा उत्तर को अथवा ऊपर को गई

तस्ययाप्राङ्मुखीशाखा योदीचीयोर्द्धगापिवा ॥ १ ॥
अरणिस्तन्मयीप्रोक्ता तन्मय्येवोत्तरारणिः ।
सारवद्दारवञ्चात्र मोविलीचप्रशस्यते ॥ २ ॥
संसक्तमूलोयःशम्याः सशमीगर्भउच्यते ।
अलाभेत्वशमीगर्भादुद्धरेदविलम्बितः ॥ ३ ॥
चतुर्विंशतिरंगुष्ठदैर्घ्यंषडपिपार्थिवम् ।
चत्वारउच्छ्रयेमानमरण्योःपरिकीर्त्तितम् ॥ ४ ॥
अष्टाङ्गुलःप्रमन्थःस्याच्चात्रंस्याद्द्वादशाङ्गुलम ॥
ओविलीद्वादशैवस्यादेतन्मंथनयंत्रकम् ॥ ५ ॥
अङ्गुष्ठाङ्गुलमानन्तु यत्रयत्रोपदिश्यते ।
तत्रतत्रबृहत्पर्वग्रंथिभिर्मिनुयात्सदा ॥ ६ ॥

हो वो शाखा है ॥ १ ॥ उस की नीचली और ऊपर की अधरारणी उत्तरारणी (जिस में वर्मे को दबाकर वर्मा फेरते हैं) बनानी चाहिये और दृढ़ काठ का चात्र और ओविली [जो वर्मे के नीचे ऊपर की छोटी २ लकड़ी होती हैं] श्रेष्ठ कहे हैं ॥ २ ॥ शमी—छ्यौंकरकी जड़ से जिस की जड़ मिली हो उस पीपल को शमीगर्भ कहते हैं । यदि शमीगर्भ पीपल न मिले तो जो शमीगर्भ नहीं उसी केवल पीपल से अरणी के लिये शीघ्र शाखा को काटलेवे ॥ ३ ॥ चौबीस अंगुल की लंबाई छः अंगुल की चौड़ाई चार अंगुल की मुटाई वा उंचाई का प्रमाण दोनों अरणियों का कहा है ॥ ४ ॥ आठ अंगुल का प्रमंथ (उत्तरारणी का टुकड़ा जिस को अधरारणी में लगाकर मन्थन करते हैं) होता है बारह अंगुल का चात्र (जिस लकड़ी में रस्सी लपेट कर खेंचते हैं वह चात्र कहाता है) और ओविली (जिस लकड़ी को ऊपर से तिरछी रखकर दोनों हाथ से दबाते वह ओविली कहाती है) होते हैं ये सब मिल कर अग्नि मथने का सामान है ॥ ५ ॥ जहां २ अंगूठे के अंगुल का प्रमाण कहा है वहां २ बीच की गांठ से सदैव नापे ॥ ६ ॥

गोबालैःशणसंमिश्रैस्त्रिवृत्तममलात्मकम् ।
व्याममप्रमाणंनेत्रंस्या-त्प्रमथ्यस्तेनपावकः ॥ ७ ॥
मूर्द्धाक्षिकर्णवक्त्राणि कन्धराचापिपञ्चमी ।
अङ्गुष्ठमात्राण्येतानि द्व्यंगुष्ठंवक्षउच्यते ॥ ८ ॥
अंगुष्ठमात्रंहृदयं त्र्यंगुष्ठमुदरंस्मृतम् ।
एकांगुष्ठाकटिर्ज्ञेयाद्वौवस्तिर्द्वौचगुह्यकम् ॥ ९ ॥
ऊरूजंघेचपादौचचतुस्त्र्येकैर्यथाक्रमम् ।
अरण्यवयवाह्येते याज्ञिकैःपरिकीर्तिताः ॥ १० ॥
यत्तद्गुह्यमितिप्रोक्तं देवयोनिस्तुसोच्यते ।
अस्यांयोजायतेवन्हिः सकल्याणकृदुच्यते ॥ ११ ॥
अन्येषुयेतुमथ्नन्ति तेरोगभयमाप्नुयुः ।
प्रथमेमन्थनेत्वेषा नियमोनोत्तरेषुच ॥१२ ॥

शण जिन में मिला हो ऐसे गौ के बालों से तिगुना गुंठा हुआ निर्मल साढ़े तीन हाथ लम्बा नेत्र नामक रस्सी बनावे उस से अग्नि को मथे ॥ ७ ॥ शिर–नेत्र–कान–मुख–गला ये पांचों एक २ अंगूठे के प्रमाण कल्पना करे दो अंगूठे प्रमाण छाती ॥ ८ ॥ एक अंगूठा हृदय –तीन अंगूठे प्रमाण उदर हो–एक अंगूठे नाभि से निचला भाग [पेंधन] और दो अंगुष्ठ प्रमाण उपस्थेन्द्रिय ॥ ९ ॥ ऊरू [घोंटूसे ऊपर का भाग] जं-घा [घोंटसे नीचेका भाग]और पग ये तीनों क्रमसे चार तीन एक अंगुल भर कल्पना कर वहां २ चिह्न कर देवे ये सब यज्ञ कर्ताओंने अरणी के अवयव कहे हैं ॥ १० ॥ जो पूर्व गुह्यस्थल–उपस्थ कहा है उसे देव (अग्नि) की योनि [कारण] कहते हैं इसमें जो अग्नि उत्पन्न होता है वह कल्याण करने वाला कहा है बीच में गुह्यस्थल जानने के लिये अरणी के सब अंगोंकी कल्पना की गई है । अग्न्याधानके समय प्रथम अवश्य ही गुह्यस्थल में मन्थन कर अ-ग्निको निकाले ॥ ११ ॥ अन्य जगह जो अग्नि को मथते हैं वे रोग और भय को प्राप्त होते हैं । पहिले पहिल मथने में ही यह नियम है आगे अग्नि मथनेमें गुह्यस्थल का नियम नहीं है ॥ १२ ॥

उत्तरारणिनिष्पन्नः प्रमंथःसर्वदाभवेत् ।
योनिसंकरदोषेण युज्यतेह्यन्यमन्थकृत् ॥ १३ ॥
आर्द्रासशुषिराचैव घूर्णाङ्गीपाटितातथा ।
नहितायजमानानामरणिश्चोत्तरारणिः ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ सप्तमः खंडः ॥ ७ ॥

परिधायाहतंवासः प्रावृत्यचयथाविधि ।
बिभृयात्प्राङ्मुखोयन्त्रमावृतावक्ष्यमाणया ॥ १ ॥
चात्रबुध्नंप्रमन्थाग्रं गाढंकृत्वाविचक्षणः ।
कृत्वोत्तराग्रामरणिं तद्बुध्नमुपरिन्यसेत् ॥२॥
चात्राधःकीलकाग्रस्थामोविलीमुदगग्रकाम् ।
विष्टम्भाद्धारयेद्यन्त्रं निष्कम्पंप्रयतःशुचिः ॥३॥
त्रिरुद्वेष्ट्यथनेत्रेण चात्रंपत्न्योहतांशुकाः ।

ऊपर की अरणी से निकाला हुआ हो सदा प्रमंथ हो यदि अन्य लकड़ी का प्रमंथ बनावेगा तो यजमानको योनि संकर दोष लगेगा ॥१३॥ गीली छिद्रों-वाली, घुनी, फटी ऐसी ये दोनों अरणी यजमान के लिये हित नहीं हैं ॥१४॥

यह सातवां खण्ड पूरा हुआ ॥७॥

जो किसी शानमें से फाड़ी न हो ऐसी चीरेदार नई धोती पहनकर और ऊपर से वैसीही एक धोती ओढ़के पूर्वाभिमुख हो आगे कहे अनुसार अग्नि मन्थन का सामान स्वीकार करे॥१॥ विचारशील पुरुष चात्र के छिद्र में प्रमन्थ के अग्रभाग को मजबूतीसे गाढ़के उत्तर को जिस का अग्रभाग हो ऐसी अधरारणी धरके उसके गुह्यस्थलमें प्रमन्थका छोर धरे ॥२॥ तब शुद्ध हुआ यजमान चात्रके नीचे की कीलके अग्रभाग में उत्तरको अग्रभाग जिस का हो ऐसी ओविली को रक्खे और बड़े जोरसे ऐसा सावधान होकर दोनों हाथसे ओविली को दबावे जिससे हिले नहीं ॥३॥ और चीरेदार नयी साड़ी पहन कर यजमान की पत्नी चात्र में नेत्र नामक रस्सी को तीन बार लपेट के स्त्रियां पहिले इस प्रकार अग्निको

पूर्वमन्थन्तयत्नयान्ता: प्राच्यग्नेःस्याद्यथाच्युतिः ॥४॥
नैकयापिविनाकार्यमाधानंभार्ययाद्विजैः ।
अकृतंतद्विजानीयात्सर्वान्वाचारमन्तियत् ॥५॥
वर्णज्यैष्ठ्येनबह्वीभिः सवर्णाभिश्चजन्मतः ।
कार्यमग्निच्युतेराभिः साध्वीभिर्मन्थनंपुनः ॥६॥
नात्रशूद्रींप्रयुञ्जीत नद्रोहद्वेषकारिणीम् ।
नचैवाव्रतस्थांनान्यपुंसाचसहसङ्गताम् ॥७॥
ततःशक्ततरापश्चादासामन्यतरापिवा ।
उपेतानांवान्यतमामन्थेदग्निंनिकामतः ॥८॥
जातस्यलक्षणंकृत्वा तंप्रणीयसमिध्यच ।
आधायसमिधंचैव ब्रह्माणंचोपवेशयेत् ॥९॥
ततःपूर्णाहुतिंहुत्वा सर्वमन्त्रसमन्विताम् ।
गांदद्याद्यज्ञवानन्ते ब्रह्मणेवाससीतथा ॥१०॥

मथें जिस से अरणी में से पूर्व दिशा में अग्नि निकल के गिरे ॥४॥ ब्राह्मणादि द्विज एक भी पत्नी न हो तो अग्नि का आधान न करे यदि करे तो उस को नहीं किया जाने, जिस से स्त्री सब मनुष्यों को वाणी से वश में करती हैं॥५॥ यदि बहुत स्त्री हों तो जो उत्तम वर्ण हो उस के साथ और यदि उत्तम वर्ण की ही बहुत हों तो जो अवस्था में बड़ी हो उसके साथ अग्नि का आधान करे यदि मथित अग्नि नष्ट होजाय तो सीधे स्वभाव वाली स्त्रियां फिर मथन करें ॥६॥ अग्नि के स्थापन में इन स्त्रियों को नियुक्त न करे—शूद्री, क्रोधिनी, लड़ाका, जो किसी नियम में स्थित न हो. और जिस ने अन्य पुरुष का संग किया हो ॥ ७ ॥ फिर उन दो प्रकार की सवर्णा असवर्णा स्त्रियों में जो अत्यन्त समर्थ बलवती हो अथवा एक वर्ण की प्राप्त हुई बहुत स्त्रियों में कोई अवस्था में छोटी भी हो तो वह इच्छापूर्वक अग्नि को मथे ॥८॥ पैदा हुए अग्नि के लक्षण प्रकाश कर अग्निशाला में लाके प्रज्वलित करके और समिधा ढांक की लकड़ी अग्नि में रख के अग्निकुण्ड से दक्षिण में विधिपूर्वक वरण करके ब्रह्मा को बैठावे ॥९॥ फिर पूर्णाहुति के सब मन्त्रों से पूर्णाहुति देकर अन्त में ब्रह्मा को दो वस्त्र और गौ दान देवे ॥१०॥

होमपात्रमनादेशे द्रवद्रव्ये स्रुवः स्मृतः ।
पाणिरेवेतरस्मिंस्तु स्रुचैवात्र तु हूयते ॥ ११ ॥
खादिरो वाथ पालाशो द्विवितस्तिः स्रुवः स्मृतः ।
स्रुग्बाहुमात्रा विज्ञेया वृत्तस्तु प्रग्रहस्तयोः ॥ १२ ॥
स्रुवाग्रे घ्राणवत्खातं द्व्यंगुष्ठपरिमंडलम् ।
जुह्वाः शरावत्खातं सनिर्वाहं षडङ्गुलम् ॥ १३ ॥
तेषां प्राक्शः कुशैः कार्य्यः संप्रमार्गो जुहूषता ।
प्रतापनञ्च लिप्तानां प्रक्षाल्योष्णेन वारिणा ॥ १४ ॥
प्राञ्चं प्राञ्चमुदगग्नेरुदगग्रं समीपतः ।
तत्तथासादयेद्द्रव्यं यद्यथा विनियुज्यते ॥ १५ ॥
आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते ।
मन्त्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः ॥१६॥

जहां गीले वस्तु का होम करना हो और कोई होमपात्र न कहा हो तो वहां स्रुवा को होम का पात्र समझना चाहिये अन्य सूखे शाकल्य में हाथ से होम और यहां अग्निहोत्र में स्रुक् से ही होम होता है ॥११॥ खैर अथवा ढाक का दो बित्ता लंबा स्रुव कहा है और एक भुजा भर लम्बा स्रुच् होती है इन दोनों का प्रग्रह [पकड़ने की जगह] वृत्त [गोल] होती है ॥ १२ ॥ स्रुव के अग्रभाग में नासिका के समान दो गर्त होते दो अंगूठे की बराबर गहरे गोलाकार बनावे और जुहू (होमपात्र) के अग्रभाग में शराव (सरवा) के समान सनिर्वाह (पनाले के समान) छः अंगुल का गर्त करना चाहिये ॥१३॥ उनके पहिले भागमें कुशाओंसे प्रमार्ग (अच्छी सफाई) हवन करना चाहता हुआ करे—यदि ये तीनों घी आदिसे लिपे हों तो उष्ण जलसे धोकर इनको तपाय ले ॥ १४ ॥ अग्नि से उत्तर में पूर्व २ को अग्नि के समीप ही उत्तर को अग्रभाग कर २ पात्रासादन कर्म करे जिस २ पात्रादि का जैसा २ आगे पीछे काम पड़े उस २ को वैसा २ क्रम से स्थापित करे ॥१५॥ सब होमों में जहां किसी होम के वस्तु का नाम नहीं कहा वहां गौ के घी को ही द्रव्य जानो जहां किसी मंत्र का देवता नहीं कहा वहां प्रजापति देवता समझो यही मर्यादा है ॥१६॥

नांगुष्ठादधिकाग्राह्या समित्स्थूलतयाक्वचित् ।
नवियुक्तात्वचाचैव नसकीटानपाटिता ॥१७॥
प्रादेशान्नाधिकानोना नतथास्याद्विशाखिका ।
नसपर्णानिर्वीर्या होमेषुचविजानता ॥१८॥
प्रादेशद्वयमिध्मस्य प्रमाणंपरिकीर्तितम् ।
एवंविधाःस्युरेवेह समिधःसर्वकर्मसु ॥१९॥
समिधोऽष्टादशेध्मस्य प्रवदन्तिमनीषिणः ।
दर्शेचपौर्णमासेच क्रियास्वन्यासुविंशतिः ॥ २० ॥
समिधादिषुहोमेषु मंत्रदैवतवर्जिता ।
पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च होन्धनार्थंसमिद्भवेत् ॥ २१ ॥
इध्मोऽप्येधार्थमाचार्यैर्हविराहुतिषुस्मृतः ।
यत्रचास्यनिवृत्तिःस्यात्तत्स्पष्टीकरवाण्यहम् ॥ २२ ॥

जो अंगूठे से अधिक मोटी हो जिस के त्वचा (वक्कल) न हो जिस में कीड़े हों–और जो फटी हो ऐसी समिधा किसी होम में नहीं लेनी चाहिये ॥१७॥ जो प्रादेश (अंगूठा और तर्जनी की लम्बाई प्रमाण) से अधिक लम्बी हो वा कम हो और जिसके शाखा(डाली)न हों– और जिसके पत्ते हों - और जो घु-नी हो–ज्ञानवान् पुरुष होम में ऐसी समिधा न लेवे ॥१८॥दो प्रादेश होम में जलाने के इन्धन का प्रमाण कहा है सब कर्मों में ऐसी ही समिधा होनी चाहिये ॥१९॥विद्वान् लोग दर्शपौर्णमास की इष्टियों में इध्मसंज्ञक अठारह १८ समिधा कहते हैं जिन में पञ्चदश सामिधेनी की दो परिधि परिधान के अन्त में चढ़ाने की और एक अनुयाजों की ये १८ हुईं और अन्य इष्टियों में सप्तदश सामिधेनी होने से बीस होती हैं ॥ २० ॥ जो होम समिधाओं से किये जाते हैं उन के पहिले अथवा पीछे इंधन के लिये जो समिधा होती है उन का मंत्र और देवता कोई भी नहीं होता ॥ २१ ॥ एध (इंधन) के लिये इध्म [अठारह समिध] को भी आचार्य कहते हैं कि यह भी पुरोडाशादि हविष् की आहुतियों में सन्निहित है । और जिस कर्म में यह इध्म नहीं उस का स्पष्ट करेंगे ॥ २२ ॥

अंगहोमसमित्तन्त्र सोष्यन्त्याख्यषुकर्म्मसु ।
येषांचैतदुपर्य्युक्तं तेषुतत्सदृशेषुच ॥ २३ ॥
अक्षभंगादिविपदि जलहोमादिकर्म्मणि ।
सोमाहुतिषुसर्वासुनैतेष्विध्मोविधीयते ॥ २४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

सूर्य्येऽस्तशैलमप्राप्ते षट्त्रिंशद्भिःसदांगुलैः ।
प्रादुष्करणमग्नीनां प्रातर्भासांचदर्शनात् ॥ १ ॥
हस्तादूर्ध्वंरविर्यावद् गिरिंहित्वानगच्छति ।
तावद्धोमविधिःपुण्यो नात्येत्युदितहोमिनाम् ॥ २ ॥
यावत्सम्यगनभाव्यंते नभस्यृक्षाणिसर्वतः ।
नचलौहित्यमापैति तावत्सायंचहूयते ॥ ३ ॥
रजोनीहारधूमाभ्रवृक्षाग्रान्तरितेरवौ ।

अंग होम (बड़े यज्ञ में कर्तव्य छोटे यज्ञ में जो होता है) समित्तन्त्र गर्भाधान आदि संस्कार–और जिन में पहिले कहा है उन में और उन के समान कर्मों में ॥ २३ ॥ गाड़ी की धुरी टूट जाने आदि विपत्ति में जल के निमित्त जो होम तिस में और संपूर्ण सोम की आहुतियों में इध्म नहीं कहा है ॥ २४ ॥

यह आठवां खंड पूरा हुआ ॥८॥

जिस समय सूर्य अस्ताचल पर्वत से छत्तीस अंगुल ऊपर हों उस समय संध्या को और प्रातःकाल किरणों के दीखने पर अग्नियों को प्रज्वलित करे॥१॥ सूर्योदय हो जाने पर होम करने वालों का होमविधि तब तक भ्रष्ट नहीं होता जब तक उदयाचल से एक हाथ से ऊपर सूर्य न पहुंचे अर्थात् एक हाथ सूर्य के चढ़ने तक उदय काल ही रहता है यह विचार उदित होम करने वालों के लिये है ॥ २ ॥ जब तक सब आकाश में भले प्रकार नक्षत्र न दीखें और आकाश की लाली दूर न हो तब तक संध्या को होम कर सकता है ॥३॥ यदि धूली कोहरा धुआं–मेघ और वृक्ष–वन की

संध्यामुद्दिश्यजुहुयाद्धुतमस्यनलुप्यते ॥ ४ ॥
नकुर्यात्क्षिप्रहोमेषु द्विजःपरिसमूहनम् ।
वैरूपाक्षंचनजपेत्प्रपदंचविवर्जयेत् ॥ ५ ॥
पर्युक्षणंचसर्वत्रकर्तव्यमुदितेन्विति ।
अंतेचवामदेव्यस्य गानंकुर्यादृचस्त्रिधा ॥ ६ ॥
अहोमकेष्वपिभवेद्यथोक्तंचंद्रदर्शनम् ।
वामदेव्यंगणेष्वन्ते वल्यन्तेवैश्वदेविके ॥ ७ ॥
यान्यधस्तरणान्तानि नतेषुस्तरणंभवेत् ।
एककार्यार्थसाध्यत्वात्परिधीनपिवर्जयेत् ॥ ८ ॥
बर्हिःपर्युक्षणंचैव वामदेव्यजपस्तथा ।
कृत्वाहुतिषुसर्वासु त्रिकमेतन्नविद्यते ॥ ९ ॥
हविर्ष्येषुयथामुख्यास्तदनुव्रीहयःस्मृतः ।

प्रातः में होने से सूर्य न दीखें तो संध्या समय समझ कर जो होम करै उसका होम नष्ट नहीं होता ॥४॥ द्विज पुरुष शीघ्रता के होमों में परिसमूहन न करे-और विरूपाक्ष मंत्र न जपे प्रपद नामक कर्म भी छोड़ देवे ॥ ५ ॥ सब होमों की आदि में पर्युक्षण (ईशान कोण से प्रदक्षिण अग्नि कुंड के सब ओर जल सेचन करना) और अंत में वामदेव्य साम का तीन प्रकार से गान करे ॥६॥ जिन कर्मों में होम नहीं होता उन में चन्द्रमा का दर्शन जैसे होता है ऐसे सब गणों (कर्मों के समूहों) के अंत में और बलिदान के अन्त में वैश्वदेव के अंत में वामदेव्य साम का गान करना चाहिये ॥ ७ ॥ नीचे स्थल में बिछाये कुशों तक जिन कर्मों की समाप्ति होती है उन में अलग २ कुश नहीं बिछाने चाहिये और एक ही कार्य की सिद्धि के लिये होने से पृथक् २ बने अग्निकुण्डों में अलग २ परिधि नामक लकड़ी भी स्थापित न करे ॥ ८ ॥ बर्हिः [चार मुट्ठी कुशों के बिछाने का विनियोग] पर्युक्षण वामदेव्य साम का गान ये तीन कर्म यज्ञों की आहुतियों में नहीं होते ॥ ९ ॥ सब हविष्यों में जो मुख्य धान बा जौ हैं वे न मिलें तो अन्य कोई अन्न ले लेवे परन्तु उड़द-कोदों-गेहूं

माषकोद्रवगौरादिसर्वालाभेऽपिवर्जयेत् ॥ १० ॥
पाण्याहुतिर्द्वादशपर्व्वपूरिका
कंसादिनाचेत्स्रुवमात्रपूरिका ।
दैवेनतीर्थेनचहूयतेहविः
स्वंगारिणिस्वर्चिर्चिषितच्चपावके ॥ ११ ॥
योऽनर्चिर्चिषिजुहोत्यग्नौ व्यंगारिणिचमानवः ।
मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्चसजायते ॥ १२ ॥
तस्मात्समिद्धेहोतव्यं नासमिद्धेकदाचन ।
आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यंतिकींपराम् ॥१३॥
होतव्येचहुतेचैव पाणिशूर्पस्फ्यदारुभिः ।
नकुर्यादग्निधमनं कुर्याद्वाव्यजनादिना ॥ १४ ॥
मुखेनैकेधमन्त्यग्निंमुखाद्ध्येषोऽध्यजायत ।

इन को सदा ही वर्ज दे और तिल आदि की आहुति दे देवे ॥१०॥ सूखे चांवल तिलादि से होम करने में हाथ से जो आहुति देनी हो तो इतने की देवे जिस से बारह पर्व (अंगुल) चारों अंगुलियों के भर जायं यदि पात्र से दे तो स्रुवे को भरके दे और साकल्य को दैवतीर्थ [अंगुलियों के अग्रभाग में होता है] से अंगारों वाले अच्छे प्रज्वलित अग्नि में आहुति देवे ॥ ११ ॥ जिस में ज्वाला और अंगार नहीं ऐसे अग्नि में जो मनुष्य होम करता है वह मंदाग्नि वाला रोगी और दरिद्री होता है ॥ १२ ॥ जिस से नीरोगता बड़ी अवस्था—और अत्यन्त श्रेष्ठ लक्ष्मी की इच्छा करने वाला पुरुष अच्छे जलते हुए अग्नि में होम करे—जो अग्नि न जलता हो उस में कभी न करै ॥ १३ ॥ जिस अग्नि में होम करना हो वा कर चुका हो उस को हाथ—सूप—स्फ्य [खड्ग के तुल्य बना] तथा लकड़ी से न धौंके किन्तु बीजने आदि से ही जलावे ॥ १४ ॥ कोई आचार्य मुख से अग्नि को जलाना कहते हैं क्योंकि यह अग्नि मुख से ही पैदा हुआ है यदि कोई यह कहे कि अग्नि

नाग्निंमुखेनेतिचयल्लौकिकेयोजयन्तितत् ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ नवमः खंडः ॥ ९ ॥

यथाहनितथाप्रातर्नित्यंस्नायादनातुरः ।
दन्तान्प्रक्षाल्यनद्यादौ गृहेचेत्तदमन्त्रवत् ॥ १ ॥
नारदाद्युक्तवार्क्षंयदष्टाङ्गुलमपाटितम् ।
सत्वचंदन्तकाष्ठंस्यात्तदग्रेणप्रधावयेत् ॥ २ ॥
उत्थायनेत्रेप्रक्षाल्य शुचिर्भूत्वासमाहितः ।
परिजप्यचमन्त्रेण भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ ३ ॥
आयुर्बलंयशोवर्च्चः प्रजाःपशून्वसूनिच ।
ब्रह्मप्रज्ञाञ्चमेधाञ्च तन्नोधेहिवनस्पते ॥ ४ ॥
मासद्वयंश्रावणादिसर्व्वानद्योरजस्वलाः ।
तासुस्नानंनकुर्वीत वर्जयित्वासमुद्रगाः ॥ ५ ॥

को मुख से न फूंके ऐसा मनु ने कहा है तो वह मनु जी का कथन लौकिक (साधारण) अग्नि के लिये है ॥ १५ ॥

यह नवां खंड पूरा हुआ ॥ ९ ॥

नीरोग मनुष्य जैसे दिन में स्नान करे तैसे ही प्रातःकाल भी करे-नदीआदि के समीप दातौन करके स्नान करे और घर में करे तो मन्त्रों के विनाहीकरे ॥१॥ नारद आदि ऋषियों ने कहे जो वृक्ष उन की आठ अंगुल लम्बी बिना फटी और वक्कल सहित-दांतौन होनी चाहिये उस के अग्रभाग से दांतों को अच्छी तरह शुद्ध करे ॥२॥ प्रातःकाल सोते से उठ कर नेत्रों को धोके सावधानी से शुद्ध होकर और (आयुर्बलंयशो०) इत्यादि मन्त्र को जप के दातौन करे॥३॥ और वनस्पति से प्रार्थना करे कि हे वृक्ष तू मुझे अवस्था-बल कीर्त्ति तेज,प्रजा, पशु, धन, वेद और उत्तम बुद्धि इन को दे ॥४॥ श्रावण आदि दो महीनों में सब नदी रजस्वला [मलिन जल वाली] होजाती हैं जो नदी समुद्र तक जाती हैं उन को छोड़ कर रजस्वला नदियों में स्नान न करे ॥ ५ ॥

धनुःसहस्राण्यष्टौतु गतिर्यासांनविद्यते ।
नतानदीशब्दवहा गर्तास्ताःपरिकीर्तिताः ॥ ६ ॥
उपाकर्मणिचोत्सर्गे प्रेतस्नानेतथैवच ।
चन्द्रसूर्यग्रहेचैव रजोदोषोनविद्यते ॥७॥
वेदाश्छन्दांसिसर्वाणि ब्रह्माद्याश्चदिवौकसः ।
जलार्थिनोऽथपितरो मरीच्याद्यास्तथर्षयः ॥८॥
उपाकर्मणिचोत्सर्गे स्नानार्थंब्रह्मवादिनः ।
पिपासूननुगच्छन्ति सन्तुष्टाःस्वशरीरिणः ॥९॥
समागमस्तुयत्रैषां तत्रहत्यादयोमलाः ।
नूनंसर्वेक्षयंयान्ति किमुतैकंनदीरजः ॥१०॥
ऋषीणांसिच्यमानाना-मन्तरालेसमास्थितः ।
सम्पिबेद्यःशरीरेण पर्षन्मुक्तजलच्छटाः ॥११॥
विद्यादीन्ब्राह्मणःकामान्वरादीन्कन्यकाभुवम् ।

आठ हजार धनुष तक जो नहीं जातीं उन को नदी नहीं कहते किन्तु उनका नाम गर्त्त है ॥६॥ उपाकर्म नाम श्रावणी के दिन होने वाला वेदारम्भ और उत्सर्ग नाम वेद समाप्ति का स्नान प्रेत के निमित्त स्नान चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण का स्नान इन में नदी के रजस्वला होने का दोष नहीं है ॥७॥ वेद, संपूर्ण छंद ब्रह्मादिक देवता और जल के अभिलाषी पितर और मरीचि आदि ऋषी ॥ ८ ॥ ये सब अपने २ सूक्ष्म शरीर धारण कर उस समय उन के पीछे चलते हैं जिस समय सन्तोषी वेद के ज्ञाता देहधारी उपाकर्म और उत्सर्ग के स्नान के निमित्त जाते हैं ॥ ९ ॥ जहां इन वेद आदिकों का समागम है वहां ब्रह्महत्या आदि बड़े २ सब पाप निश्चय से नष्ट होजाते हैं तब नदी का रज नष्ट क्यों न होगा ॥१०॥ सींचे जाते (हुए) ऋषियों के मध्य में ठहरा जो मनुष्य अपने शरीर के द्वारा शिष्य समुदाय से छुटीं जल की छटाओं (बूंदों) को पीता है अर्थात् ऋषि आदि के सर्वथा जल के छींटें अपने शरीर पर लेता है ॥ ११ ॥

आमुष्मिकान्यपिसुखान्याप्नुयात्सनसंशयः ॥१२॥

अशुचयशुचिनादत्त मामम्नतर्जलादिना ।

अनिर्गतदशाहास्तु प्रेतारक्षांसिभुञ्जते ॥१३॥

स्वर्धुन्यंभःसमानिस्युः सर्वाण्यम्भांसिभूतले ।

कूपस्थान्यपिसोमार्क ग्रहणेनात्रसंशयः ॥१४॥

इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्दशः खण्डः ॥ इतिकर्म्मप्रदीपे परिशिष्टे कात्यायनविरचिते प्रथमः प्रपाठकः १

अतऊर्द्धंप्रवक्ष्यामि संन्ध्योपासनकंविधिम् ।

अनर्हःकर्मणांविप्रः सन्ध्याहीनोयतःस्मृतः ॥१॥

सव्येपाणौकुशान्कृत्वाकुर्य्यादाचमनक्रियाम् ॥

ह्रस्वाःप्रचरणीयाःस्युः कुशादीर्घास्तुवर्हिषः ॥२॥

दर्भाःपवित्रमित्युक्तमतःसन्ध्यादिकर्मणि ।

सव्यःसोपग्रहःकार्यो दक्षिणःसपवित्रकः ॥३॥

वह यदि ब्राह्मण हो तो विद्या आदि मनोरथों को यदि कन्या हो तो उत्तम वर आदि को प्राप्त होती हैं और परलोक के सुखों को भी प्राप्त होते हैं इस में संशय नहीं ॥ १२ ॥ मरे के दश दिन के भीतर अशुद्ध पुरुष ने दिया जो निःसंग अन्न और जलादि है उस को प्रेत और राक्षस भोगते हैं इस से दश दिन के भीतर अन्न दानादि न करे ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण पृथ्वी पर के और कुये के जल चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण में गंगा जल के समान हैं इस में सन्देह नहीं ॥१४॥

यह चौदहवां खंड पूरा हुआ—

और कात्यायन के रचे परिशिष्ट कर्म प्रदीप में प्रथम प्रपाठक पूरा हुआ ।

इस से आगे संध्या वंदन की विधि कहते हैं जिस से संध्या हीन ब्राह्मण सब कर्मों के अयोग्य कहा ॥१॥ बांये हाथ में कुशा रख कर आचमन करै छोटे दाभ कुश कहाते हैं और बड़े कुश बर्हि कहाते हैं ॥२॥ इससे सन्ध्या आदि कर्म में दर्भही पवित्र कहे हैं बांये हाथ में उपग्रह (१६कुशा) ले और दहिने में पवित्री ॥३॥

रक्षयेद्वारिणात्मानं परिक्षिप्यसमंततः ।
शिरसोमार्जनंकुर्यात्कुशैः सोदकबिन्दुभिः ॥ ४ ॥
प्रणवोभूर्भुवःस्वश्च सावित्रीचतृतीयिका ।
अब्दैवत्यंत्र्यृचश्चैव चतुर्थमितिमार्जनम् ॥ ५ ॥
भूराद्यास्तिस्रएवैता महाव्याहृतयोऽव्ययाः ।
महर्जनस्तपःसत्यं गायत्रीचशिरस्तथा ॥ ६ ॥
आपोज्योतीरसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरितिशिरः ।
प्रतिप्रतीकंप्रणवमुच्चारयेदन्तेचशिरसः ॥ ७ ॥
एताएतांसहानेनतथैभिर्दशभिःसह ।
त्रिर्जपेदायतप्राणःप्राणायामःसउच्यते ॥ ८ ॥
करेणोद्धृत्यसलिलंघ्राणमासज्यतत्रच ।
जपेदनायतासुर्वात्रिःसकृद्वाघमर्षणम् ॥ ९ ॥
उत्थायार्कंप्रतिप्रोहेत्त्रिकेणाञ्जलिनाम्भसः ।

अपने शरीर के चारों ओर जल भ्रमा के अपनी रक्षा करै और जल को लेकर कुशाओं से शिर का मार्जन करै ॥४॥ ओंकार भूः, भुवः, स्वः, और तीसरी गायत्री, जल है देवता जिन का ऐसी तीन ऋचा (आपो हिष्ठा० आदि) यह चौथा मार्जन है ॥ ५ ॥ भूः भुवः स्वः ये तीन नित्य अविनाशी महाव्याहृती हैं महःजनः तपः सत्य और गायत्री और शिरः ॥ ६ ॥ (आपोज्योती रसोमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वः) यह शिर मंत्र है । भूः आदि प्रत्येक के साथ और शिरः मंत्र के पीछे ओंकार का उच्चारण करै ॥ ७ ॥ ये सात व्याहृति गायत्री यह शिरोमंत्र और ओंकार इन दशों का प्राणों को रोक कर तीन बार जो जपकरना है उसे प्राणायाम कहते हैं ॥ ८ ॥ हाथ में जल को उठा के और नासिका मे लगाकर तीन बार वा एकबार प्राणों को रोके हुए वा न रोके हुए अघमर्षण (ऋतंच सत्यंचा०) इत्यादि मंत्र को जपै ॥ ९ ॥ उठकर जल की अंजलि से सूर्य के सन्मुख हो अर्थात् गायत्री मन्त्र पढ़ के अंजली देवे फिर (उद्वयं

उदुत्यचित्रमृग्भ्यान्तेनाथचोपतिष्ठेदनन्तरम् ॥ १० ॥
संध्याद्वयेऽप्युपस्थानमेतदाहुर्मनीषिणः ।
मध्येत्वन्हउपांश्यस्यविभ्राडादीच्छयाजपेत् ॥ ११ ॥
तदसंसक्तपार्ष्णिर्वाएकपादर्द्धपादपि ।
कुर्यात्कृताञ्जलिर्वापि ऊर्ध्वबाहुरथापिवा ॥१२॥
यत्रस्यात्कृच्छ्रभूयस्त्वं श्रेयसोऽपिमनीषिणः ।
भूयस्त्वंब्रुवतेतत्रकृच्छ्राच्छ्रेयोह्यवाप्यते ॥ १३ ॥
तिष्ठेदुदयनात्पूर्वांमध्यमामपिशक्तितः ।
आसीनस्तूद्गमाच्चान्त्यां संध्यांपूर्वत्रिकंजपन् ॥ १४ ॥
एतत्संध्यात्रयंप्रोक्तं ब्राह्मण्यंयदधिष्ठितम् ।
यस्यनास्त्यादरस्तत्र नसब्राह्मणउच्यते ॥ १५ ॥
संध्यालोपाच्चचकितः स्नानशीलश्चयःसदा ।

भाष० (चित्रं देवानां०) इत्यादि दो ऋचाओं से सूर्य की स्तुति करे ॥ १० ॥ दोनों संध्याओं में यही सूर्य का उपस्थान है ऐसा मुनीश्वर लोग कहते हैं और मध्याह्न में स्तुति के पीछे अपनी इच्छा हो तो (विभ्राड्) इस अनुवाकादि को जपे ॥ ११ ॥ इस स्तुति के समय एड़ी धरती पर न लगें अथवा एक ही पैर से खड़ा रहै अथवा आधे पैर से फिर हाथ जोड़ कर अथवा ऊपर को भुजा करके सूर्य की स्तुति करे ॥ १२ ॥ एक पग से खड़े होने आदि जिस प्रकार करने में कष्ट बहुत हो उसी में कल्याण भी बहुत होता है यह बुद्धिमान् कहते हैं क्योंकि कष्ट से ही कल्याण प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ उदय से पूर्व प्रातःकाल और मध्याह्न की संध्या में यथाशक्ति यथावकाश पूर्वाभिमुख खड़े होके गायत्री जपे और सायंकाल में सूर्यास्त होने से पूर्व बैठ कर गायत्री जपे ॥ १४ ॥ ये जो तीन संध्या कही हैं इन्हीं से ब्राह्मण्य (ब्राह्मणपन) ठहरता है जिस को इन तीनों में आदर श्रद्धा नहीं वह ब्राह्मण भी नहीं है ॥ १५ ॥ जो सन्ध्या के न करने से पाप से भयभीत है और स्नान करने

तन्दोषानोपसर्पन्ति गरुत्मन्तमिवोरगाः ॥ १६ ॥
वेदमादितआरभ्यशक्तितोऽहरहर्जपेत् ।
उपतिष्ठेत्ततोरुद्रं सर्वाद्वावैदिकज्जपात् ॥ १७ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ एकादशः खंडः ॥ ११ ॥
अथाद्भिस्तर्पयेद्देवान्सतिलाभिःपितृनपि ।
नमोऽन्तेतर्पयामीति आदावोमितिचब्रुवन् ॥ १ ॥
ब्रह्माणंविष्णुंरुद्रंप्रजापतिंवेदान्देवाञ्छन्दांस्यृषीन् पुराणानाचार्यान्गंधर्वानितरान्मासंसंवत्सरंसावयवं देवीरप्सरसोदेवानुगान्नागान्सागरान्पर्वतान्सरितो दिव्यान्मनुष्यानितरान्मनुष्यान्यक्षान्रक्षांसिसुपर्णान्पिशाचान् भूतानि-पृथिवीमोषधीःपशून्वनस्पतीन्भूतग्रामंचतुर्विधमित्युपवी-त्यथप्राचीनावीतियमंयमपुरुषान्कव्यवाडनलंसोमंयमम-

---

का सदा स्वभाव वाला है उस से पाप ऐसे ही भागते हैं जैसे गरुड़ के डर से सांप भागते हैं ॥ १६ ॥ प्रति दिन प्रथम से आरम्भ करके शक्ति के अनुसार वेद का पाठ करे उस के पीछे व पहिले वेद के रुद्राध्याय महादेव जी की स्तुति करे अथवा सब वेद का पाठ न करके केवल रुद्री का ही पाठ करे॥१७॥

यह ग्यारहवां खंड पूरा हुआ ॥ ११ ॥

फिर आदि में ओं और नमस्के अन्त में तर्पयामि (ओं ब्रह्मणे नमो ब्रह्माणं तर्पयामि)इत्यादिनाम मन्त्र कहनाहुआमनुष्य जलोंसे देवताओं–और तिल सहित जलोंसेपितरों का तर्पण करै तर्पयामि बोलनाआश्वलायनादि गृह्यसूत्रकारों की रायहै।पर शुक्ल यजु के पारस्करगृह्यानुसार (ब्रह्मा तृप्यताम्)इत्यादिप्रकार पढ़ना चाहिये] ॥ १ ॥ उस का यह क्रम है -ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, वेद, देव, छन्द, ऋषि, पुराणाचार्य, गंधर्व, इतराचार्य, मास, संवत्सरसावयव, देवी, अप्सरा, देवानुग, नाग, सागर, पर्वत, सरित्, दिव्यमनुष्य, इतरमनुष्य, यक्षरक्षः, सुपर्ण,पिशाच भूत, पृथिवी,ओषधी, पशु,वनस्पति, भूतग्रामचतुर्विध– इन का तर्पण सव्य होकर करै फिर अपसव्य होकर यम, यम पुरुष, कव्यवा-

र्य्यमणमग्निष्वात्तान् सोमपीथान् बर्हिषदोऽथस्वान् पितॄन्सकृन्सकृन्मातामहांश्चेतिप्रतिपुरुषमभ्यस्येज्ज्येष्ठभ्रातृश्वशुरपितृव्यमातुलांश्च पितृवंशमातृवंशौयेचान्येमत्तउदकमर्हन्तितांस्तर्पयामीत्ययमवसानाञ्जलिरथ श्लोकाः ॥२॥

छायांयथेच्छेच्छरदातपार्त्तः पयःपिपासुःक्षुधितोऽलमन्नम् ।
बालोजनित्रींजननीचबालं योषित्पुमांसंपुरुषश्चयोषाम् ॥३॥

तथासर्व्वाणिभूतानि स्थावराणिचराणिच ।
विप्रादुदकमिच्छन्ति सर्व्वाभ्युदयकृद्धिसः ॥ ४॥
तस्मात्सदैवकर्त्तव्यमकुर्वन्महतैनसा ।
युज्यतेब्राह्मणःकुर्व्वन्विश्वमेतद्बिभर्त्तिहि ॥ ५ ॥
अल्पत्वाद्धोमकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्म्मणः ।
प्रातर्नतनुयात्स्नानं होमलोपोहिगर्हितः ॥ ६ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ द्वादशः खण्डः ॥१२ ॥

अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्ता, सोमपीथ, बर्हिषद्, इन के अनन्तर, अपने पितरों का और मातामहों का एक २ बार तर्पण करे और प्रत्येक पितरों का नाम ले ज्येष्ठ भ्राता श्वशुर चाचा, मामा फिर पिता माता के वंश में जो मरे हों अथवा और जो मेरे से जल की इच्छा करते हैं उन को तृप्त करता हूं यह सब से पीछे अञ्जलि दे ॥ २ ॥ अब श्लोक कहते हैं जैसे धूप से दुःखी हुआ मनुष्य छाया चाहता है प्यासा मनुष्य जल भूखा अन्न बालक माता को और माता बालक को स्त्री पुरुष को और पुरुष स्त्री को चाहता है ॥ ३ ॥ तिसी प्रकार स्थावर और जङ्गम सब प्राणी ब्राह्मण से जल चाहते हैं क्योंकि ब्राह्मण सब को सुख देने वाला है ॥ ४ ॥ इस से ब्राह्मण सदैव तर्पण करे जो नहीं करता वह बड़े पाप से युक्त होता है और जो ब्राह्मण नियम से तर्पण करता है वह मानो इस जगत् को पालता है ॥ ५ ॥ होम का समय थोड़ा है और स्नान का कृत्य बहुत इस से प्रातःकाल में स्ना विस्तार से न करे क्योंकि होम का लोप निन्दित है ॥ ६ ॥

यह बारह वां खंड पूरा हुआ ॥१२॥

पंचानामथसत्राणां महतामुच्यतेविधिः ।
यैरिष्ट्वासततंविप्रः प्राप्नुयात्सद्मशाश्वतम् ॥ १ ॥
देवभूतपितृब्रह्ममनुष्याणामनुक्रमात् ।
महासत्राणिजानीयात्तएवेहमहामखाः ॥ २ ॥
अध्यापनंब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तुतर्पणम् ।
होमोदैवोवलिर्भौतो नृयज्ञोतिथिपूजनम् ॥३॥
श्राद्धंवापितृयज्ञःस्यात्पित्र्योबलिरथापिवा ।
यश्चश्रुतिजपःप्रोक्तो ब्रह्मयज्ञःसवोच्यते ॥४॥
सचार्वाक्तर्पणात्कार्यः पश्चाद्वाप्रातराहुतेः ।
वैश्वदेवावसानेवा नान्यत्रैतोनिमित्तकात् ॥५॥
अप्येकमाशयेद्विप्रं पितृयज्ञार्थसिद्धये ।
अदैवंनास्तिचेदन्यो भोक्ताभोज्यमथापिवा ।
अप्युद्धृत्ययथाशक्त्या किंचिदन्नंयथाविधि ।

इस के अनन्तर उत्तम जो पांच महायज्ञ उन की विधि कहते हैं । जिन को ब्राह्मण निरन्तर अनुष्ठान करके सनातन स्थान[वैकुण्ठ]को प्राप्त होताहै।१। देवयज्ञ भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, इन पांचों को क्रम से महासत्र जानो और ये ही पांच महामख (बड़े यज्ञ) कहे हैं ॥२॥ विधिपूर्वक वेद का पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ है तर्पण पितृयज्ञ है होम दैवयज्ञ बलि रखना भूतयज्ञ है और अतिथि का पूजन मनुष्ययज्ञ है ॥ ३ ॥ अथवा नित्य श्राद्ध को वा पितरों के नाम से जो एक ग्रास (पितृभ्यः स्वधानमः) से दिया जाता है वह पितृयज्ञ है और श्रुति वेद मन्त्रादि का जो जप कहा है वह ब्रह्मयज्ञ है ॥४॥ उस ब्रह्मयज्ञ को तर्पण से पहिले अथवा प्रातःकाल के होम से पीछे अथवा वैश्वदेव के पीछे करे किसी निमित्त के विना अन्य समय में न करे ॥५॥ यदि भोजन करने वाला दूसरा कोई न मिले वा भोजन न मिले तो विश्वेदेवाओं के विना ही एक ब्राह्मण को पितृयज्ञ की सिद्धि के निमित्त जिमा देवे ॥६॥ यथाशक्ति थोड़ासा अन्न निकाल कर विधिसे पितरों

पितृभ्योऽथमनुष्येभ्यो दद्यादहरहर्द्विजे ॥७॥
पितृभ्यइदमित्युक्त्वा स्वधाकारमुदीरयेत् ।
हन्तकारंमनुष्येभ्यस्तदर्धेनिनयेदपः ॥८॥
मुनिभिर्द्विरशनमुक्तं विप्राणांमर्त्यवासिनांनित्यम् ।
अहनिचतथातमस्विन्यां सार्द्धप्रथमयामान्तः ॥९॥
सायंप्रातर्वैश्वदेवः कर्तव्योबलिकर्म्मच ।
अनश्नतापिसततमन्यथाकिल्विषीभवेत् ॥१०॥
अमुष्मैनमइत्येवं बलिदानंविधीयते ।
बलिदानप्रदानार्थं नमस्कारःकृतोयतः ॥११॥
(स्वाहाकारवषट्कारनमस्कारादिवौकसाम्)।
स्वधाकारःपितृणांच हन्तकारोनृणांकृतः ॥१२॥
स्वधाकारेणनिनयेत्पित्र्यंबलिमतःसदा ।
तदर्ध्येकेनमस्कारं कुर्वतेनेतिगौतमः ॥ १३ ॥

और मनुष्यों के निमित्त ब्राह्मण को प्रतिदिन दे देवे तो भी पितृयज्ञ मनुष्य यज्ञ पूरे होजाते हैं ॥७॥ पितृभ्यइदं ऐसा कह कर स्वधा कह दे मनुष्यों को भोजन देते समय (हन्ततइदमन्नम्) ऐसा कहे और पितरों को दिये अन्नपर पीछे से जल छोड़ देवे ॥८॥ भूलोक के वासी ब्राह्मणों को दो समय (एकवार दिन में एक वार रात्रि में) डेढ़ पहर दिन चढ़े वा रात गये तक मुनियों ने भोजन करना कहा है तीसरी वार नहीं ॥ ९ ॥ भोजन न करे तो भी सायंप्रातःकाल को बलि वैश्वदेव करे जो न करे तो पाप भागी होता है ॥१०॥ (इन्द्रायनमः) इत्यादि मन्त्रों से बलि देना कहा है क्योंकि बलि के लिये नमः शब्द बोलना ही मुख्य है ॥११॥ देवताओं को स्वाहा, वषट् , नमस्कार, पितरों को स्वधा और मनुष्यों को हन्तकार कहना चाहिये ॥ १२ ॥ इस से स्वधा कह कर पितरों को सदैव बलि देवे उस के पीछे नमस्कार करे यह कोई ऋषि कहते हैं और गौतम ऋषि कहते हैं कि न करे ॥ १३ ॥

नावराद्व्यावलयोभवन्ति महामार्गश्रवणप्रमाणात् ।
एकश्चेदविक्रष्टाभवंतीतरेतरसंसक्ताश्च ॥ १४ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ त्रयोदशः खंडः ॥ १३ ॥

अतस्तद्विन्यासोद्दिपिंडानिवोत्तरांश्चतुरोवलीन्निदध्यात्पृथिव्यैवायवेविश्वेभ्यादेवेभ्यःप्रजापतयइतिसव्यतएतेषामेकैकमद्भ्यओषधिवनस्पतिभ्यआकाशायकामायेत्येतेषामपिमन्यवइन्द्रायवासुकयेब्रह्मणइत्येतेषामपिरक्षोजनेभ्यइति सर्वेषांदक्षिणतःपितृभ्यइतिचतुर्द्दशनित्याआशस्यप्रभृतयःकाम्याःसर्वेषामुभयतोऽद्भिःपरिषेकःपिंडवच्चपश्चिमाप्रतिपत्तिः१।
नस्यातांकाम्यसामान्ये जुहोतिबलिकर्म्मणी ।
पूर्वन्नित्यविशेषोक्तंजुहोतिबलिकर्म्मणोः ॥ २ ॥
काममन्तेभवेयातां नतुमध्येकदाचन ।
नैकस्मिन्कर्म्मणितते कर्मान्यदापतेद्यतः ॥ ३ ॥

आपली आदि भन आदि) बलि देने से कम नहीं होता सनातन मार्ग (संप्रदाय) का भी अवण ही इस में प्रमाण है । यदि अवधान न हो अथवा परस्पर संबंध (से ।) हो तो एक ही जगह सब बलि दे देवे ॥ १४ ॥

यह तेरहवां खंड पूरा हुआ ॥१३॥

अब बलि देने का क्रम कहते हैं–नांदीमुख के पिंडों के समान चार बलि उत्तर दिशा में दे पृथिवी, वायु, विश्वेदेवा, प्रजापति ४ इन के दक्षिण में जल, औषधि, वनस्पति, आकाश, काम, और मन्यु, इन्द्र, वासुकी, ब्रह्मा, और रक्षोजन, और सबसे दक्षिण दिशा में पितरों को एक बलि देवे ये सब बलि नित्य हैं और आशस्य आदि बलि काम्य हैं जिन को कामना हो तो करे अन्यथा नहीं दोनों ओर को सब बलियां को जल से सींच और इन से पिछला कर्म पिंड के समान है ॥ १ सामान्य काम्य कर्म में होम और बलि कर्म नहीं होते क्यों कि होम और बलि कर्म का नित्य कर्म से विशेष कहा है ॥२॥ कर्म के अन्त में चाहे इन्हें करले परन्तु बीच में कभी नहीं क्योंकि एक कर्म का जहां प्रारंभ हो वहां दूसरा कर्म प्रारंभ करना नहीं कहा है ॥ ३ ॥

अग्न्यादिर्गौतमाद्युक्तो होमःशाकलएवच ।
अनाहिताग्नेरप्येष युज्यतेवलिभिःसह ॥ ४ ॥
स्पृष्ट्वापोवीक्ष्यमाणोऽग्निं कृतांजलिपुटस्ततः ।
वामदेव्यजपात्पूर्वंप्रार्थयेद्द्रविणोदयम् ॥ ५ ॥
आरोग्यमायुरैश्वर्यं धीर्धृतिःशंबलंयशः ।
ओजोवर्च्चःपशून्वीर्यंब्रह्मब्राह्मण्यमेवच ॥ ६ ॥
सौभाग्यंकर्मसिद्धिंच कुलज्यैष्ठ्यं सुकर्तृताम् ।
सर्वमेतत्सर्वसाक्षिन्द्रविणोदरिरीहितः ॥ ७ ॥
नब्रह्मयज्ञादधिकोस्तियज्ञो नतत्प्रदानात्परमस्तिदानम् ।
सर्वान्तवंताःक्रतवःसदानानान्तोदृष्टःकैश्चिदस्यद्विकस्य ॥८॥
ऋचःपठन्मधुपयःकुल्याभिस्तर्पयेत्सुरान् ।
घृतामृतौघकुल्याभिर्यजूंष्यपिपठन्सदा ॥ ९ ॥
सामान्यपिपठन्सोमघृतकुल्याभिरन्वहम् ।

गौतम आदि ऋषि का कहा अग्नि आदि के आज्यभाग और शाकल (देव कृतस्यैन०) इत्यादि छः मन्त्रों से होम और बलि कर्म भूत यज्ञ इन को वह ब्राह्मण भी करै जो अग्निहोत्री न हो ॥ ४ ॥ आचमन करके अग्नि को देखता हुआ हाथ जोड़कर और वामदेव्य सूक्त के जप से पहिले–धन वृद्धिकीप्रार्थना करै ॥ ५ ॥ आरोग्य, अवस्था, ऐश्वर्य, बुद्धि धैर्य, सुख, बल शुद्ध,यश, ओज, (पराक्रम) वर्च (तेज) पशु वेद, ब्राह्मणत्व ॥ ६ ॥ सौभाग्य, कर्मकी सिद्धि, उत्तम कुल, उत्तमकर्तृता, ये सब जो पदार्थ हैं सबके साक्षी द्रविणोद (कुबेर) इनको दीजिये । ७ ॥ ब्रह्मयज्ञ से अधिक यज्ञ और वेद के दान से अधिक दान नहीं है । दान सहित सब यज्ञ यहांतक ही कहे हैं इस से इन दोनों (ब्रह्मयज्ञ और वेद के दान) के फल का अंत किसी ने नहीं देखा ॥ ८ ॥ ऋग्वेद के पढ़ने से सहत और दूध की कुल्याओं (छोटीनदीनालूप) से देवताओं को और सदैव यजुर्वेद के पढ़ने से घृत और अमृत की कुल्याओं से ॥ ९ ॥ सामवेद के पढ़ने से सोम (अमृत की लता के रस) के

मेदःकुल्याभिरपिच अथर्वाङ्गिरसःपठन् ॥ १० ॥
मांसक्षीरौदनमधुकुल्याभिस्तर्पयेत्पठन् ।
वाकोवाक्यंपुराणानि इतिहासानिचान्वहम् ॥ ११ ॥
ऋगादीनामन्यतममेतेषांशक्तितोऽन्वहम् ।
पठन्मध्वाज्यकुल्याभिः पितॄनपिचतर्पयेत् ॥ १२ ॥
तेतृप्तास्तर्पयन्त्येनं जीवन्तंप्रेतमेवच ।
कामचारीचभवति सर्वेषुसुरसद्मसु ॥ १३ ॥
गुर्वप्येनोनतंस्पृशेत् पंक्तिञ्चैवपुनातिसः ।
यंयंक्रतुञ्चपठति फलभाक्तस्यतस्यच ॥ १४ ॥
वसुपूर्णावसुमती त्रिर्दानफलमाप्नुयात् ।
ब्रह्मयज्ञादपिब्रह्मदानमेवातिरिच्यते ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्दशः खंडः ॥

ब्रह्मणेदक्षिणादेया यत्रयापरिकीर्त्तिता ।
कर्मान्तेऽनुच्यमानापि पूर्णपात्रादिकाभवेत् ॥ १ ॥

और घृत की कुल्याओं से—और आंगिरस अथर्व वेद के पढ़ने से मेद की कुल्याओं से ॥ १० ॥ वाकोवाक्य पुराण और इतिहास इन को प्रति दिन पढ़ने से मांस दूध ओदन (भात) और मधु इन की कुल्याओं से पुरुष देवताओं को तृप्त करता है ॥११॥ इन ऋग्वेद आदि में से किसी एक को यथाशक्ति प्रति दिन पढ़ने से सहत और घी की कुल्याओं से पितरों को भी तृप्त करता है ॥ १२ ॥ तृप्त हुये वे पितर इस मनुष्य को जीते और मर जाने पर भी तृप्त करते हैं और वह पुरुष सब देवताओं के स्वर्गस्थ घरों में इच्छा पूर्वक जाने वाला होता है ॥१३॥ बड़ा भी पाप उस को नहीं लगता और जिस पंक्ति में वह बैठता उस को भी पवित्र कर देता है जिस २ यज्ञ को वह पढ़ता है उस २ के फल का भागी होता है ॥१४॥ और धन से भरी हुई पृथ्वी के तीनवार दान के फल को प्राप्त होता है। इस ब्रह्मयज्ञ से अधिक एक ब्रह्म (विद्या) का दान ही है ॥१५॥

यह १४ खण्ड पूरा हुआ ॥

जहां २ जो २ दक्षिणा कही है वही दक्षिणा ब्रह्मा को देनी चाहिये यदि किसी कर्म के अन्त में न कही हो तो वहां पूर्णपात्र दक्षिणा देवे ॥ १ ॥

यावताबहुभोक्तुस्तु तृप्तिःपूर्णेनविद्यते ।
नावरादूर्ध्यमतःकुर्यात् पूर्णपात्रमितिस्थितिः ॥२॥
विदध्याद्धौत्रमन्यश्चेद्दक्षिणार्द्धहरोभवेत् ।
स्वयंचेदुभयंकुर्य्यादन्यस्मैप्रतिपादयेत् ॥ ३ ॥
कुलर्त्विजमधीयानं सन्निकृष्टंतथागुरुम् ।
नातिक्रामेत्सदादित्सन्यइच्छेदात्मनोहितम् ॥ ४ ॥
अहमस्मैददामीति एवमाभाष्यदीयते ।
नैतावपृष्ट्वाददतः पात्रेऽपिफलमस्तिहि ॥ ५ ॥
दूरस्थाभ्यामपिद्वाभ्यां प्रदायमनसावरम् ।
इतरेभ्यस्ततोदेया देयदानविधिःपरः ॥ ६ ॥
सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणंयोव्यतिक्रमेत् ।
यद्ददातितमुल्लंघ्य ततःस्तेयेनयुज्यते ॥ ७ ॥
यस्यत्वेकगृहेमूर्खो दूरस्थश्चगुणान्वितः ।

बहुत खाने वाले मनुष्य की तृप्ति जिस भरे हुए पात्र से हो सके उस से कम पूर्णपात्र न करै यह मर्यादा है ॥ २ ॥ यदि ब्रह्मा से भिन्न होता का काम कोई अन्य ब्राह्मण करे तो आधी दक्षिणा उसको तथा आधी ब्रह्मा को देवे । यदि होता और ब्रह्मा का कर्म आप ही करै तो किसी और सुपात्र ब्राह्मण को पूर्ण पात्र दक्षिणा देदेवे ॥ ३ ॥ कुलका ऋत्विज यदि पठित हो अथवा गुरु समीप में होय तो अपने कल्याण को चाहता हुआ मनुष्य दान देने के समय इन दोनों का उलंघन न करे अर्थात् इन्ही को देवे ॥ ४ ॥ मैं इस को देता हूं यह कह कर दिया जाता है इन पुरोहित गुरु के विना पूछे सुपात्र को देने से भी दाता को फल नहीं होता ॥ ५ ॥ यदि ये दोनों दूरदेश में हों तो उत्तम वस्तु मन से इन दोनों को देकर अन्य मनुष्यों को देवे यह उत्तम दान की विधि है ॥ ६ ॥ समीप के पठित ब्राह्मण को छोड़कर जो दूरस्थ को जितना द्रव्य देता है उतने द्रव्य की चोरी के फल को वह भोगता है ॥ ७ ॥ जिस के घर में एक मूर्ख है और गुणी दूर है तो वहां गुणीको ही देवे क्योंकि वहां मूर्खका उलंघन नहीं

गुणान्वितायदातव्यं नास्तिमूर्खव्यतिक्रमः ॥ ८ ॥
ब्राह्मणातिक्रमोनास्ति विप्रेवेदविवर्जिते ।
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य नहिभस्मनिहूयते ॥ ९ ॥
आज्यस्थालीचकर्तव्या तैजसद्रव्यसंभवा ।
महीमयीवाकर्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषुच ॥ १० ॥
आज्यस्थाल्याःप्रमाणंतु यथाकामन्तुकारयेत् ।
सुदृढामव्रणांभद्रामाज्यस्थालींप्रचक्षते ॥ ११ ॥
तिर्यगूर्द्ध्वंसमिन्मात्रा दृढानातिबृहन्मुखी ।
मृन्मय्यौदुंबरीवापि चरुस्थालीप्रशस्यते ॥ १२ ॥
स्वशाखोक्तःप्रसुस्विन्नो ह्यदग्धोऽकठिनःशुभः ।
नचातिशिथिलःपाच्यो नचरुश्चारसस्तथा ॥ १३ ॥
इध्मजातीयमिध्मार्धप्रमाणंमेक्षणंभवेत् ।
वृत्तंचाङ्गुष्ठपृथ्वग्रमवदानक्रियाक्षमम् ॥ १४ ॥
एषैवदर्वीयस्तत्र विशेषस्तमहंब्रुवे ।

माना जायगा ॥ ८ ॥ वेद से रहित ब्राह्मण का उलंघन नहीं है क्योंकि जलते हुए अग्नि को छोड़कर भस्म में आहुति नहीं दी जाती है ॥ ९ ॥

घी की सब आहुतियों में सोने चांदी कांसा तांबादि की वा मिट्टी की आज्यस्थाली (घी का पात्र) बनाना चाहिये ॥ १० ॥ आज्यस्थाली का प्रमाण अपनी इच्छा के अनुसार रक्खे परन्तु छिद्र रहित दृढ दर्शनीय पात्र को ही विद्वान् लोग आज्यस्थाली कहते हैं ॥ ११ ॥ जो तिरछी और ऊंची समिधा की बराबर दृढ हो और अधिक चौड़ा जिसका मुख न हो ऐसी चरुस्थाली (भात पकाने का पात्र) श्रेष्ठ होता है ॥ १२ ॥ जो अपनी शाखा में कहा हो जिसमें जल न टपके जला न हो—कड़ा न हो— सुन्दर हो—बहुत गला न हो—रस वाला हो ऐसे चरु को पकावे ॥ १३ ॥ जिस काठ का इध्म हो उसी काठ का और इध्म का आधा प्रमाण लम्बा—और गोल—और अंगूठा के समान जिसका अग्रभाग मोटा हो और जो चरू के लेने में समर्थ हो ऐसा मेक्षण होता है ॥ १४ ॥ इसी को

दर्व्वीद्व्यङ्गुलपृथ्वग्रा तुरीयोनन्तुमेक्षणम् ॥ १५ ॥
मुसलोलूखलेवार्क्षे स्वायत्तेसुदृढेतथा ।
इच्छाप्रमाणेभवत: शूर्पंवैणवमेवच ॥ १६ ॥
दक्षिणंवामतोबाह्यमात्माभिमुखमेवच ।
करंकरस्यकुर्वीत करणेन्यङ्गकर्मण: ॥ १७ ॥
कृत्वाग्न्यभिमुखौपाणी स्वस्थानस्थौसुसंयतौ ।
प्रदक्षिणंतथासीन: कुर्यात्परिसमूहनम् ॥ १८ ॥
बाहुमात्रा:परिधय ऋजव:सत्वचोऽव्रणा: ।
त्रयोभवन्तिशीर्णाग्रा एकेषान्तुचतुर्दिशम् ॥ १९ ॥
प्रागग्रावभितःपश्चादुदगग्रमथापरम् ।
न्यसेत्परिधिमन्यंचेदुदगग्र:सपूर्वत: ॥ २० ॥
यथोक्तवस्त्वसंपत्तौग्राह्यंतदनुकारयेत् ।

दर्वि कहते हैं। इस में जो विशेषता है उसे हम कहते हैं दर्वि का दो अंगुल मोटा अग्रभाग होता है मेक्षण उसमे आधा अंगुल मुटाई में कम होता है ॥१५॥ मुसल और उखल काठ के होते हैं अच्छे चौड़े–और दृढ और अपनी इच्छानुसार प्रमाण वाले बनावे और सूप बांस का होता है ॥ १६ ॥ नीचे को कोई काम करना हो तो प्रथम दहिने हाथ को अपने सम्मुख औंधा रक्खे और वांयां हाथ उस से ऊपर औंधा रक्खे ॥ १७ ॥ अग्नि के सन्मुख दोनों हाथ आगे दहिना पीछे वांयां सम्यक् तत्पर करके प्रदक्षिण क्रम से परिसमूहन करै ॥ १८ ॥ भुजा की बराबर लम्बी–कोमल–वक्कल सहित–जो घुनी न हो आगे से फटी तीनपरिधि होती हैं किन्हीं ऋषियों के मत में चारो दिशाओं में चार होती हैं ॥ १९ ॥ तीन परिधि रखने के पक्ष में अग्नि कुण्ड की उत्तर दक्षिण मेखलाओं पर दो परिधि पूर्व को अग्रभाग करके धरे तथा पश्चिम मेखला पर उत्तराग्र धरे। यदि चौथी रक्खे तो पूर्वकी मेखला पर उत्तराग्र धरे। वा पूर्व में खाली रक्खे ॥२०॥ यदि शास्त्र में कही हुई वस्तु न मिले तो उस के सदृश को ग्रहण करे

यवानामिवगोधूमा व्रीहीणामिवशालयः ॥ २१ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ पञ्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥
पिण्डान्वाहार्य्यकंश्राद्धं क्षीणेराजनिशस्यते ।
वासरस्यतृतीयांशे नातिसन्ध्यासमीपतः ॥ १ ॥
यदाचतुर्द्दशीयामं तुरीयमनुपूरयेत् ।
अमावास्याक्षीयमाणा तदैवश्राद्धमिष्यते ॥ २ ॥
यदुक्तंयदहस्त्वेव दर्शनंनैतिचन्द्रमाः ।
अनयापेक्षयाज्ञेयं क्षीणेराजनिचेत्यपि ॥ ३ ॥
यच्चोक्तंदृश्यमानेपितच्चतुर्द्दश्यपेक्षया ।
अमावास्यांप्रतीक्षेत तदन्तेवापिनिर्वपेत् ॥ ४ ॥
अष्टमेंऽशेचतुर्द्दश्याः क्षीणोभवतिचन्द्रमाः ।
अमावास्याष्टमांशेच पुनःकिलभवेदणु ॥ ५ ॥
आग्रहायण्यमावस्या तथाज्यैष्ठस्ययाभवेत् ।
विशेषमाभ्यांब्रुवते चन्द्रचारविदोजनाः ॥ ६ ॥
अत्रेन्दुराद्यप्रहरेवातिष्ठते चतुर्थभागोनकलावशिष्टः ।

जौ के सदृश गेहूं हैं और व्रीहि (धान) के समान शालि (चावल सपेद) होते हैं ॥ २१ ॥ यह १५ वां खण्ड पूरा हुआ ॥

पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध (जो मावस को होता है) जिस दिन चन्द्रमा क्षीण हो तब करे तीसरे प्रहर में कुछ सन्ध्या काल के अति निकट न हो ऐसे अवसर में करना उत्तम होता है ॥१॥ जब अमावस्या की हानि हो तो चतुर्दशी के चौथे प्रहर में श्राद्ध करना कहा है ॥ २ ॥ जो यह कहा है कि जिस दिन चन्द्रमा न दीखे उसी अपेक्षा से अमावस की हानि होने पर चतुर्दशी को श्राद्ध करे ॥ ३ ॥ और जो श्रुति में कहा है कि चन्द्रमा के दीखने पर भी श्राद्ध करे सो चतुर्दशी के अनुरोध से है परन्तु मावस की प्रतीक्षा करे अथवा चतुर्दशी के अन्त में पिण्ड देदेवे ॥४॥ चौदश के आठवें भाग में ही चन्द्रमा क्षीण होजाता है और अमावस्या के आठवें भाग में अणु (सूक्ष्म) रूप होता है ॥५॥ अगहन और जेठकी जो मावस हैं इन दोनों में चन्द्रमा की गति के जानने वाले कुछ विशेषता कहते हैं ॥६॥ इन दोनों मावसों के पहिले प्रहर में सोलहवें भाग से चतुर्थांश कम चन्द्रमा

तदन्तएवक्षयमेतिकृत्स्नमेवंज्योतिश्चक्रविदोवदन्ति ॥ ७ ॥
यस्मिन्नब्देद्वादशैकश्चयव्यस्तस्मिंस्तृतीययापरिदृश्योनोपजायते।
एवंचारंचन्द्रमसोविदित्वाक्षीणेतस्मिन्नपराण्हेचदद्यात् ॥ ८ ॥
सम्मिश्रायाचतुर्द्दश्याअमावस्याभवेत्क्वचित् ।
खर्विकांतांविदुःकेचिद्गताध्वामितिचापरे ॥ ९ ॥
बर्द्धमानाममावस्यां लभेच्चेदपरेहनि ।
यामांस्त्रीनधिकान्वापि पितृयज्ञस्ततोभवेत् ॥ १० ॥
पक्षादावेवकुर्व्वीत सदापक्षादिकंचरुम् ।
पूर्वाण्हएवकुर्वन्ति विद्धेऽप्यन्येमनीषिणः ॥ ११ ॥
सपितुःपितृकृत्येषु ह्यधिकारोनविद्यते ।
नजीवन्तमतिक्रम्य किंचिद्दद्यादितिश्रुतिः ॥ १२ ॥
पितामहेजीवतिच पितुःप्रेतस्यनिर्वपेत् ।
पितुस्तस्यचवृत्तस्य जीवेच्चेत्प्रपितामहः ॥ १३ ॥
पितुःपितुःपितुश्चैव तस्यापिपितुरेवच ।

रहता है फिर एक प्रहर के वाद सब क्षय होजाता है ऐसे ज्योतिष के ज्ञाता कहते हैं ॥ ७ ॥ जिस संवत् में तेरह महीने होते हैं उस में तीसरे पहर से पीछे चौदस को चन्द्रमा नहीं दीखे इस प्रकार चन्द्रमा की गति जानकर क्षीण चन्द्रमा के समय मध्यान्ह के पीछे पिण्ड देवे ॥ ८ ॥ यदि कभी चौदशसे मिली मावस होय तो उसे कोई खर्विका और कोई गताध्वा कहते हैं ॥ ९ ॥ यदि अगले दिन तीन पहर वा अधिक मावस मिले तो उस दिन पितृ यज्ञ (श्राद्ध) होता है ॥ १० ॥ पक्ष याग का चरु पक्ष की आदि (१ में) तिथि के विद्ध होने भी मध्यान्ह से पूर्व ही करे यह कोई कहते हैं ॥ ११ ॥ (जिस का पिता जीवित हो उसको पितृ कर्म में श्राद्ध का अधिकार नहीं है क्योंकि जीते हुए का उलंघन करके अर्थात् जीवते पिता को छोड़ के पितामहादि को कुछ न देवे यह वेद में लिखा है)॥ १२ ॥ पिता–पितामह–प्रपिता मह इन तीनों को ३ पिण्ड देवे । यदि पिता मर गया हो और पितामह जीवित हो तो मरे पिताको पिण्ड देवे । यदि प्रपितामह जीवित हो तथा पिता पितामह दोनों मर गये हों ॥ १३ ॥ तो वृद्ध प्रपितामह (बूढा परबावा)

कुर्य्यात्पिण्डत्रयंयस्य संस्थितःप्रपितामहः ॥ १४ ॥
जीवन्तमतिदद्याद्वा प्रेतायान्नोदकेद्विजः ।
पितुःपितृभ्योवादद्यात्सपितेत्यपराश्रुतिः ॥ १५ ॥
पितामहःपितुःपश्चात्पञ्चत्वंयदिगच्छति ।
पौत्रेणैकादशाहादिकर्तव्यंश्राद्धषोडशम् ॥ १६ ॥
नैतत्पौत्रेणकर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः ।
पितुःसपिण्डनंकृत्वा कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥ १७ ॥
असंस्कृतौनसंस्कार्य्यौ पूर्वौपौत्रप्रपौत्रकैः ।
पितरंतत्रसंस्कुर्यादितिकात्यायनोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥
पापिष्ठमपिशुद्धेन शुद्धं पापकृतापिवा ।
पितामहेनपितरंसंस्कुर्यादितिनिश्चयः ॥ १९ ॥
ब्राह्मणादिहतेताते पतितेसंगवर्जिते ।
व्युत्क्रमाच्चमृतेदेयं येभ्यएवददात्यसौ ॥ २० ॥
मातुःसपिण्डीकरणं पितामह्यासहोदितम् ।

पितामह और अपना पिता इन के लिये तीन पिण्ड वह पुरुष करे ॥ १४ ॥ (जीवते हुए का उलंघन करके मरे हुए को भी द्विज अन्न और जल देवे अथवा जिस का पिता जीवित हो वह अपने पिता के पितरों को देवे यह दूसरी श्रुति है)॥ १५ ॥ यदि पिता से पीछे पितामह मरे तो पोता एकादश आदि सोलह श्राद्ध करै ॥१६॥ यदि पितामह के कोई अन्य पुत्र होय तो पोता श्राद्ध न करै किन्तु पुत्र पिता की सपिंडी करके महीने २ में मासिक श्राद्ध करै ॥१७॥ पितामह आदि यदि संस्कार हीन होंय तो पोते वा प्रपोते उनका संस्कार (दाह आदि) न करें यदि पिता संस्कार हीन होय तो उसका संस्कार पुत्र करै यह कात्यायन ऋषि ने कहा है ॥ १८ ॥ और यह निश्चय है कि पापी भी शुद्ध के संग शुद्ध हो जाता है पापी भी पितामह के संग पिता का संस्कार (श्राद्ध आदि) पुत्र करै ॥ १९ ॥ यदि पिता ब्राह्मण आदि से मरा हो वा पतित हो वा सत्संग से हीन हो अथवा फांसी से मरा हो तो भी उसे और जिनको यह देता है सब को पिण्ड देवे ॥ २० ॥ माता की सपिंडी दादी के

यथोक्तेनैवकल्पेन पुत्रिकायानचेत्सुतः ॥ २१ ॥
नयोषिद्भ्यःपृथग्दद्यादवसानदिनादृते ।
स्वभर्तृपिण्डमात्राभ्यस्तृप्तिरासांयतःस्मृता ॥ २२ ॥
मातुःप्रथमतःपिण्डं निर्व्वपेत्पुत्रिकासुतः ।
द्वितीयंतुपितुस्तस्यास्तृतीयन्तुपितुःपितुः ॥ २३ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥
पुरतोयात्मनःकुर्युःसापूर्वापरिकीर्त्यते ।
मध्यमादृक्षिणेनास्यास्तद्दक्षिणतउत्तमा ॥ १ ॥
वाय्वग्निदिङ्मुखान्तास्ताः कार्य्याःसार्द्धांगुलान्तराः ।
तीक्ष्णान्तायवमध्याश्च मध्यंनावड्वोत्किरेत् ॥ २ ॥
शंकुश्चखादिरःकार्य्यो रजतेनविभूषितः ।
शंकुश्चैवोपवेषश्च द्वादशाङ्गुलइष्यते ॥ ३ ॥
अग्न्याशाग्रैः कुशैःकार्य्यं कर्षूणांस्तरणंघनैः ।

संग शास्त्रोक्त विधि से करै यदि पुत्रिका (जो इस प्रतिज्ञा से विवाही जाती है कि जो इस के लड़का हो तो मैं लूंगा) का पुत्र न हो ॥ २१ ॥ मरणे के दिन से बिना स्त्रियों को पति से पृथक् (पिण्डादि) न देवे क्योंकि स्त्रियों की तृप्ति पति के पिंड के लेश से ही कही है ॥ २२ ॥ जो पुत्रिका का पुत्र है वह पहिला पिण्ड माता को दूसरा नाना को तीसरा परनाना को देवे ॥ २३ ॥

यह १६ खण्ड पूरा हुआ ॥

जो रेखा अपने सामने की जाती है उसे पूर्वा और पूर्वा से जो दक्षिण की तरफ़ की जाती है उसे मध्यमा—और मध्यमा से दक्षिण की तरफ हो उसे उत्तमा कहते हैं ॥ १ ॥ इन तीनों को ऐसे क्रम से करे जैसे वायव्य दिशा से आरम्भ करके आग्नेय दिशा में अग्र भाग हो और डेढ़ अंगुल का बीच रहै और इन तीनों का अग्रभाग पैना और बीच का भाग जौ के समान मोटा हो जैसा कि नाव का आकार होता है ॥ २ ॥ चांदी जिसमें लगी हो और खैर का हो ऐसा शंकु नाम (नाप करने को गाढ़ने की खूंटी) करना यह शंकु और उपवेष नाम हाथ के तुल्य पांच अंगुलि वाला यज्ञ पात्र ये दोनों बारह २ अंगुल के बनावे ॥ ३ ॥ अग्नि की दिशा में है अग्रभाग जिनका ऐसे

दक्षिणान्तंतदग्रैस्तु पितृयज्ञेपरिस्तरेत् ॥ ४ ॥
स्थगरंसुरभिज्ञेयं चन्दनादिविलेपनम् ।
सौवीराञ्जनमित्युक्तं पिञ्जलीनांयदञ्जनम् ॥ ५ ॥
स्वस्तरेसर्वमासाद्य यथावदुपयुज्यते ।
देवपूर्व्वंततःश्राद्धमत्वरःशुचिरारभेत् ॥ ६ ॥
आसनाद्यर्घपर्यन्तं वसिष्ठेनयथेरितम् ।
कृत्वाकर्माथपात्रेषु उक्तंदद्यात्तिलोदकम् ॥ ७ ॥
तूष्णींपृथगपोदत्वा मन्त्रेणतुतिलोदकम् ।
गन्धोदकंचदातव्यं सन्निकर्षक्रमेणतु ॥ ८ ॥
आसुरेणतुपात्रेण यस्तुदद्यात्तिलोदकम् ।
पितरस्तस्यनाश्नन्ति दशवर्षाणिपञ्च च ॥ ९ ॥
कुलालचक्रनिष्पन्नमासुरंमृन्मयंस्मृतम् ।
तदेवहस्तघटितं स्थाल्यादिदैविकंभवेत् ॥ १० ॥
गन्धान्ब्राह्मणसात्कृत्वा पुष्पाण्यृतुभवानिच ।

कुशों से कर्षू नाम उक्त तीनों रेखाओं का आच्छादन करे । और पितरों के श्राद्ध में दक्षिण को है अग्रभाग जिनका ऐसे कुशों का परिस्तरण करे ॥ ४ ॥
सुगन्ध वाले चन्दन आदि के लेपन को स्थगर और पिञ्जलियों के अञ्जन को सौवीराञ्जन कहते हैं ॥ ५ ॥ अच्छे कुशों के आसन पर सब वस्तुओं को यथोचित रख कर शीघ्रता न करके देवताओं का पूजन आदि पूर्वक शुद्ध होकर श्राद्ध का प्रारम्भ करे ॥ ६ ॥ आसन से लेकर अर्घ पर्यन्त कर्म वशिष्ठ जी ने जैसा कहा है उस प्रकार करके पात्र में पूर्वोक्त तिलोदक देवे ॥ ७ ॥ प्रथम मन्त्र के विना पृथक् २ जल देकर मन्त्र द्वारा तिल जल देवे और समीप के क्रम से फिर गन्धोदक देवे ॥ ८ ॥ आसुर पात्र से जो पुरुष तिलोदक देता है पन्द्रह वर्ष तक उसके यहां पितर नहीं खाते ॥ ९ ॥ कुलाल के चाक से जो मिट्टी का पात्र बनता है उसे आसुर (राक्षसों का) पात्र कहते हैं और वही मट्टी का पात्र स्थाली आदि हाथ से बनता है उसे दैविक (देवताओं का) पात्र कहते हैं ॥ १० ॥ गन्ध और ऋतु में पैदा हुये फूल और दूध ब्राह्मणों को क्रम से

धूपंचैवानुपूर्व्येण ह्यग्नौकुर्यादनन्तरम् ॥ ११ ॥
अग्नौकरणहोमश्च कर्तव्य उपवीतिना ।
प्राङ्मुखेनैवदेवेभ्यो जुहोतीतिश्रुतिःश्रुता ॥ १२ ॥
अपसव्येनवाकार्यो दक्षिणाभिमुखेनच ।
निरूप्यहविरन्यस्मा अन्यस्मैनहिहूयते ॥ १३ ॥
स्वाहाकुर्यान्नचात्रान्ते नचैवजुहुयाद्धविः ।
(स्वाहाकारेणहुत्वाग्नौ पश्चान्मन्त्रंसमापयेत्)॥ १४ ॥
पित्र्येयःपङ्क्तिमूर्द्धन्यस्तस्यपाणावनग्निमान् ।
हुत्वामन्त्रवदन्येषां तूष्णींपात्रेषुनिःक्षिपेत् ॥ १५ ॥
नोंकुर्याद्धोममन्त्राणां पृथगादिषुकुत्रचित् ।
अन्येषांचाविकृष्टानां कालेनाचमनादिना ॥ १६ ॥
सव्येनपाणिनेत्येवं यदत्रसमुदीरितम् ।
परिग्रहणमात्रंतत् सव्यस्यादिशतिव्रतम् ॥१७ ॥
पिञ्जल्याद्यभिसंगृह्य दक्षिणेनेतरात्करात् ।

देकर क्रम से सब को धूप देवे ॥११॥ अग्नौकरण नामक श्राद्ध सम्बधी होम सव्य होकर करे और पूर्व को मुख करके ही देवताओं के लिये होम करे यह वेद में लिखा है ॥ १२ ॥ अथवा दक्षिण को मुख करके अपसव्य होकर करे और अन्य देवता के नाम से हविष् ग्रहण करके किसी अन्य के नाम से होम न करे॥१३॥ और इस अग्नौकरण होम में मन्त्र के अन्त में स्वाहा न कहै न हविष् का होम करे किन्तु पहिले केवल स्वाहा कह कर होम करके पीछे पूरा मन्त्र पढ़े ॥१४॥ पितृ कर्म में जो ब्राह्मण पंक्ति में मुख्य हो उसके हाथ में विधि पूर्वक अग्नि स्थापन न करने वाला ब्राह्मण मन्त्र पढ़कर आहुति देवे और शेष ब्राह्मणों के पात्रमें विना मन्त्र हविष्को वह रक्खै जो अग्निहोत्री न हो ॥१५॥ होम के मन्त्रोंकी आदि में कहीं भी पृथक् २ ओं न कहै–और आचमनादि काल के समीप के अन्य मन्त्रों में भी आदि में प्रणव का उच्चारण न करे ॥ १६ ॥ जो यहां श्राद्ध में वाम हाथ से कर्म करना कहा है सो दहिने हाथ को वाम से सब ओर से ग्रहण करके वह कर्म करे किन्तु केवल वाम से नहीं ॥१७॥ पिञ्जली आदि कुशों को दहिने हाथ से ग्रहण करके वांएं हाथ से दहिने हाथ को बान्ध कर

अन्वारभ्यचसव्येन कुर्यादुल्लेखनादिकम् ॥ १८ ॥
यावदर्थमुपादाय हविषोऽर्भकमर्भकम् ।
चरुणासहसन्नीय पिण्डान्दातुमुपक्रमेत् ॥ १९ ॥
पितुरुत्तरकर्ष्वंशे मध्यमेमध्यमस्यतु ।
दक्षिणेतत्पितुश्चैव पिण्डान्पर्वणिनिर्वपेत् ॥ २० ॥
वाममावर्तनंकेचिदुदगन्तंप्रचक्षते ।
सर्वंगौतमशाण्डिल्यौ शाण्डिल्यायनएवच ॥ २१ ॥
आवृत्यप्राणमायम्य पितॄन्ध्यायन्यथार्थतः ।
जपंस्तेनैवचावृत्य ततःप्राणंप्रमोचयेत् ॥ २२ ॥
शाकंचफाल्गुनाष्टम्यां स्वयंपत्न्यपिवापचेत् ।
यस्तुशाकादिकोहोमः कार्योऽपूपाष्टकावृतः ॥ २३ ॥
आन्वष्टक्यांमध्यमायामितिगोभिलगौतमौ ।
वार्कखंडिश्चसर्वासु कौत्सोमेनेष्टकासुच ॥ २४ ॥
स्थालीपाकंपशुस्थाने कुर्याद्यद्यनुकल्पितम् ।

श्राद्ध में उल्लेखन आदि कर्म करे॥१८॥ थोड़ा २ प्रयोजनमात्र हविष् लेकर चरु के संग मिला के पिण्ड देने का प्रारम्भ करे ॥ १९ ॥ पिण्ड देने के लिये दक्षिण को विछाये कुशों के उत्तर भाग में पिता के नाम से, उस से दक्षिण मध्य कुशों पर पितामह के नाम से और उस से भी दक्षिण में प्रपितामह के नाम से पिण्ड देवे ॥ २० ॥ वामावर्तन (दक्षिण दिशा से प्राणों को रोक कर उत्तरतक ले जाना) को उत्तर दिशा तक करना यह गौतम शांडिल्य और शांडिल्यायन सब ऋषि कहते हैं ॥ २१ ॥ प्राणों को रोक कर ठीक २ पितरों का ध्यान करता तथा प्राणायाम के मन्त्र को जपता हुआ उत्तर को जाकर लौट आके श्वास को छोड़े ॥ २२ ॥ फाल्गुन की अष्टमी के दिन स्वयं पुरुष अथवा पत्नी शाक को पकावे और जो शाक आदि का होम है वह आठ अपूपों सहित श्राद्ध में करे ॥ २३ ॥ और अन्वष्टका (नवमी) का श्राद्ध मध्यमा (बीच की) अष्टका पर करे यह गोभिल और गौतम ऋषि कहते हैं । वार्कखण्डि और कौत्स ऋषि यह कहते हैं कि सब तीनों अष्टकाओं में अन्वष्टका श्राद्ध करे ॥२४॥ और जहां अष्टकादि श्राद्ध में पशु का

स्नपयेत्त सवत्सायास्तरुण्यागोपयस्यनु ॥ २५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ सप्तदशः खण्डः ॥ १७ ॥

सायमादिप्रातरन्तमेकंकर्मप्रचक्षते ।
दर्शान्तंपौर्णमास्याद्यमेकमेवमनीषिणः ॥ १ ॥
ऊर्ध्वंपूर्णाहुतेर्दर्शः पौर्णमासोऽपिवाग्रिमः ।
यआयातिसहोतव्यः सएवादिरितिश्रुतिः ॥ २ ॥
ऊर्ध्वंपूर्णाहुतेःकुर्यात् सायंहोमादनन्तरम् ।
वैश्वदेवंतुपाकान्ते बलिकर्मसमन्वितम् ॥ ३ ॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादभिरूपान्स्वशक्तितः ।
यजमानस्ततोऽश्नीयादितिकात्यायनोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥
वैवाहिकाग्नौकुर्वीत सायंप्रातस्त्वतन्द्रितः ।
चतुर्थीकर्मकृत्वैतदेतच्छाट्यायनेर्मतम् ॥ ५ ॥
ऊर्ध्वंपूर्णाहुतेःप्रातर्हुत्वातांसायमाहुतिम् ।

लेख हो वहां पशु के स्थान में स्थालीपाक बना के श्राद्ध करे और उसे बछड़े वाली तरुण गौके दूध में पकावे ॥ २५ ॥

यह १७ सत्रहवां खण्ड पूरा हुआ ॥

सायंकाल से लेकर प्रातःकाल तक दो भाग में विभक्त एक ही कर्म गिना जाता है और पौर्णमासेष्टि से लेकर दर्शेष्टि तक दो भाग में विभक्त एक ही कर्म कहाता है ॥ १ ॥ श्रौत अग्न्याधान में कही पूर्णाहुति के पश्चात् दर्श वा पौर्णमास जिस इष्टि का समय आवे उसी को पहिले करे वही प्रथम इष्टि होगी—ऐसा श्रुति में कहा है ॥ २ ॥ अग्निस्थापन की पूर्णाहुति हो जाने पर जब तक स्थापित अग्नि में सायंकाल का अग्निहोत्र न हो चुके तब तक अन्य वैश्वदेवादि न करे किन्तु सायं होम के बाद पाक बनने पर वैश्वदेव होम तथा बलिकर्म करे ॥३॥ फिर अपनी शक्ति के अनुसार जो पण्डित हों ऐसे ब्राह्मणों को जिमा के यजमान भोजन करे यह कात्यायन ऋषि कहते हैं ॥ ४ ॥ चतुर्थीकर्म होजाने पर गृहस्थ पुरुष निरालस्य होके सायं प्रातःकाल विवाह के अग्नि में अग्निहोत्र करे यह शाट्यायन ऋषि का मत है ॥ ५ ॥ पूर्णाहुति के उपरान्त उस सायंकाल की आहुति को एक बार प्रातःकालीन होम के साथ

प्रातर्होमस्तदैवस्यादेषएवोत्तरोविधिः ॥ ६ ॥
पौर्णमासात्ययेहव्यं होतावायदहर्भवेत् ।
तदहर्जुहुयादेवममावास्यात्ययेपिच ॥ ७ ॥
अहूयमानेनश्नंश्चेन्नयेत्कालंसमाहितः ।
सम्पन्नेतुयथातत्र हूयतेतदिहोच्यते ॥ ८ ॥
अहुताःपरिसंख्याय पात्रेकृत्वाहुतीःसकृत् ।
मन्त्रेणविधिवद्धुत्वाधिकमेवापराअपि ॥ ९ ॥
यत्रव्याहृतिभिर्होमः प्रायश्चित्तात्मकोभवेत् ।
चतस्रस्तत्रविज्ञेयाः स्त्रीपाणिग्रहणेयथा ॥ १० ॥
अपिवाज्ञातमित्येषा प्राजापत्यापिवाहुतिः ।
होतव्यात्रिविकल्पोऽयं प्रायश्चित्तविधिःस्मृतः ॥ ११ ॥
यद्यग्निरग्निनान्येन संभवेदाहितःक्वचित् ।
अग्नयेविविचयइति जुहुयाद्वाघृताहुतिम् ॥ १२ ॥

प्रथम करके आगे सायं प्रातःकाल की आहुति अपने २ समय में किया करे यही विधान जानो ॥ ६ ॥ पौर्णमासेष्टि और दर्शेष्टि का नियत समय किसी कारण निकल जाय तो जिस दिन पुरोडाशादि हविष् वा होता मिले उसीदिन उन इष्टियों को विधि पूर्वक करे ॥ ७ ॥ यह कब करे जब जितने दिन होम न भया हो उतने दिन विना भोजन किये विताये हों—और सम्पन्न (यदि भोजन किया हो) हो तो जैसे होम करे वह रीति यहां कहते हैं ॥ ८ ॥ जितनी आहुति न दी हों उतनी गिन कर एक पात्र में रक्खे वा कुछ अधिक रख के उन सब को मन्त्र से विधि पूर्वक अग्नि में होम करके पश्चात् उस दिन की आहुति देवे ॥ ९ ॥ जहां प्रायश्चित्त के निमित्त व्याहृतियों से होम कहा हो वहां विवाह के तुल्य चार आहुति जाने अर्थात् तीन पृथक् २ और एक तीनों व्याहृति मिला के देवे ॥ १० ॥ अथवा (अज्ञातं०) इस मन्त्र से वा प्रजापति के मन्त्र से आहुति देवे इस प्रकार यह प्रायश्चित्त विधि तीन विकल्प युक्त कहा है ॥ ११ ॥ यदि स्थापित किया अग्नि दूसरे लौकिक अग्नि से कभी मिल जाय तो (अग्नये विविचये०) इस मन्त्र से चावल आदि नियत किये हविष् की आहुति अथवा प्रायश्चित्तार्थ घी से ही आहुति देवे ॥ १२ ॥

अग्नयेऽप्सुमतेचैव जुहुयाद्द्वैघृतेनचेत् ।
अग्नयेशुचयेचैव जुहुयाच्चदुरग्निना ॥ १३ ॥
गृहदाहाग्निनाग्निस्तु यष्टव्यःक्ष्मामवांद्विजैः ।
दावाग्निनाचसंसर्गे हृदयंयदितप्यते ॥ १४ ॥
द्विर्भूतोयदिसंसृज्येत् संसृष्टमुपशामयेत् ।
असंसृष्टंजागरयेद्गिरिशर्मैवमुक्तवान् ॥ १५ ॥
नस्वेऽग्नावन्यहोमःस्यान् मुक्त्वैकांसमिदाहुतिम् ।
स्वर्गवासक्रियार्थांश्च यावन्नासौप्रजायते ॥ १६ ॥
अग्निस्तुनामधेयादौ होमेसर्वत्रलौकिकः ।
नहिपित्रासमानीतः पुत्रस्यभवतिक्वचित् ॥ १७ ॥
यस्याग्नावन्यहोमःस्यात् सवैश्वानरदैवतम् ।
चरुंनिरुप्यजुहुयात् प्रायश्चित्तंतुतस्यतत् ॥ १८ ॥
परेणाग्नौहुतेस्वार्थं परस्याग्नौहुतेस्वयम् ।

किसी निकृष्ट अग्नि के साथ स्थापित अग्नि के मिल जाने पर यदि घी से ही आहुति देवे तो (अग्नयेऽप्सुमते०) इस मन्त्र से और (अग्नये शुचये०) इस मन्त्र से प्रायश्चित्तार्थ होम करे ॥१३॥ यदि घर में लगे हुए अग्नि से आहित अग्नि मिल जाय तो द्विज लोग (क्ष्मामवां०) मन्त्र से होम करें । यदि दावाग्नि से अपने अग्नि का संसर्ग होजाय और उस से हृदय में दुःख हो तो भी उक्त मन्त्र से प्रायश्चित्त होम करे ॥ १४ ॥ दो वार करके संसर्ग हो तो अग्नि को शान्त कर देवे और संसर्ग न हुआ होय तो अग्नि को जगा लेवे ऐसा गिरिशर्मा ने कहा है॥१५॥ अपने अग्नि में एक समिधा की आहुति को छोड़ के अन्य पुत्रादि निमित्त का भी होम न करे चाहे वे अन्य के होम स्वर्गवासार्थ भी हों तो भी अपने अग्नि में तब तक न करे कि जब तक पुत्र उत्पन्न न हो ॥ १६ ॥

नामकरण आदि संस्कारों में सब जगह लौकिक अग्नि लेना चाहिये क्योंकि पिता ने जिस अग्नि को स्थापित किया है वह कभी भी पुत्र का नहीं होता ॥ १७ ॥ जिस अग्निहोत्री के अग्नि में दूसरे मनुष्य का होम होजाय तो वह वैश्वानर देवता वाले चरु को बनाकर होम करे यही उसका प्रायश्चित्त है ॥ १८ ॥ अन्य कोई अपने लिये अग्निहोत्री के स्थापित अग्नि में होम करे

पितृयज्ञात्ययेचैव वैश्वदेवद्वयस्यच ॥ १९ ॥
अनिष्ट्वानवयज्ञेन नवान्नप्राशनेतथा ।
भोजनेपतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरोभवेत् ॥ २० ॥
स्वपितृभ्यःपितादद्यात् सुतसंस्कारकर्मसु ।
पिण्डानोद्वहनात्तेषां तस्याभावेतुतत्क्रमात् ॥ २१ ॥
भूतिप्रवाचनेपत्नी यद्यसन्निहिताभवेत् ।
रजोरोगादिनातत्र कथंकुर्वन्तियाज्ञिकाः ॥ २२ ॥
महानसेऽन्नंयाकुर्यात् सवर्णातांप्रवाचयेत् ।
प्रणवाद्यपिवाकुर्यात् कात्यायनवचोयथा ॥ २३ ॥
यज्ञवास्तुनिमुष्ट्यांच स्तंबेदर्भवटौतथा ।
दर्भसंख्यानविहिता विष्टरास्तरणेषुच ॥ २४ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ अष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

वा अन्य के अग्नि में अग्निहोत्री स्वयं होम करे, पितृयज्ञ और दो बार वैश्वदेव के छूट जाने पर ॥१९॥ नवान्नेष्टि किये विना नया अन्न खा लेनेपर तथा पतित मनुष्य का अन्न भोजन करलेने पर इतने कर्मों में वैश्वानर चरु से प्रायश्चित्त होम करे ॥२०॥ पुत्रों के नामकरण आदि संस्कारों में पिता अपने पितरों को पिण्ड आदि देवे जब तक पुत्रों का विवाह न हो और विवाह हो जाने पर पुत्र भी मृत पितरों को पिण्ड देवें। पिता के मरजाने पर जो अधिकारी हो वही पिण्ड देवे ॥ २१ ॥ यदि भूतिप्रवाचन (ऋत्विजों से आशीर्वाद आदि लेना) में रजोदर्शन वा रोग आदि कारण पत्नी समीप में न होय तो यज्ञ करने वाले कैसा करें ? ॥२२॥ महानस (रसोई खाने) में जो स्त्री अन्न पकावे और वह अपनी सजातीय भी होय तो उसे भूतिप्रवाचन के समय पत्नी के स्थानापन्न करलेवे अथवा कात्यायन के कथनानुसार ओंकार आदि कर लेवे ॥ २३ ॥ यज्ञ के वास्तु (घर) में मुष्टी में यूपादिस्तंब में दर्भ के बटु में और विष्टर के आस्तरण में कुशों की गिनती नहीं की जाती है ॥ २४ ॥

यह १८ खंड पूरा हुआ ॥

निःक्षिप्याग्निंस्वदारेषु परिकल्प्यर्त्विजंतथा ।
प्रवसेत्कार्य्यवान्विप्रो वृथैवनचिरंक्वचित् ॥ १ ॥
मनसानैत्यिकंकर्म्म प्रवसन्नप्यतन्द्रितः ।
उपविश्यशुचिःसर्वं यथाकालमनुव्रजेत् ॥ २ ॥
पत्न्याचाप्यवियोगिन्या शुश्रूष्योऽग्निर्विनीतया ।
सौभाग्यवित्तावैधव्यकामयाभर्तृभक्तया ॥३॥
यावास्याद्वीरसूरासामाज्ञासंपादिनीप्रिया ।
दक्षाप्रियंवदाशुद्धा तामत्रविनियोजयेत् ॥४॥
दिनत्रयेणवाकर्म्म यथाज्यैष्ठंस्वशक्तितः ।
विभज्यसहवाकुर्य्युर्यथाज्ञानंचशास्त्रवत् ॥५॥
स्त्रीणांसौभाग्यतोज्यैष्ठ्यं विद्ययैवद्विजन्मनाम् ।
नहिख्यात्यानतपसा भर्तातुष्यतियोषिताम् ॥६॥
भर्तुरादेशवर्त्तिन्या यथोमाबहुभिर्व्रतैः ।

अपनी स्त्री को अग्नि सौंप कर और एक ऋत्विज नियत करके कार्य्य वाला ब्राह्मण विदेश में जावे किन्तु चिरकाल तक कहीं व्यर्थ विदेश में भी नहीं ठहरे ॥१॥ विदेश में गया हुआ भी अग्निहोत्री स्नानादि करके बैठ कर अपने सब नित्य कर्म को आलस्य छोड़कर नियत समय पर मन से किया करे ॥ २ ॥ पति के वियोग को न चाहती हुई सौभाग्य, धन विधवा न होना इन की कामना के लिये पति में है भक्ति जिस की ऐसी पत्नी भी पति के विदेश जाने पर नम्र होकर अग्नि की सेवा करे ॥ ३ ॥ जिस के बहुत स्त्री हों वह पुरुष अग्नि की सेवा में उस स्त्री को नियुक्त करे जो वीरसू (वीर पुत्र उत्पन्न करने वाली) आज्ञाकारिणी प्यारी चतुर प्रियवचन कहने वाली–और शुद्ध हो॥४॥ अथवा सब स्त्रियां तीन दिन में बड़ी स्त्री के क्रम से अपनी शक्ति के अनुसार विभाग (पारी २ से) वा एक साथ मिल के अग्नि की सेवा करें अथवा जैसा शास्त्र का ज्ञान उन को हो वैसे सब करें ॥ ५ ॥ स्त्रियों का बड़प्पन सौभाग्यवती होने से है और ब्राह्मणों की बड़ाई विद्या से क्योंकि प्रसिद्धि और तप से स्त्रियों पर पति प्रसन्न नहीं होता ॥ ६ ॥ किन्तु पति की आज्ञा

अग्निश्चतोषितोऽमुत्र साक्षीसौभाग्यमाप्नुयात्॥७॥
विनयावनतापिस्त्री भर्तुर्यादुर्भगाभवेत्।
अमुत्रोमाग्निभर्तृणामवज्ञालिकृतातया॥८॥
श्रोत्रियंसुभगांगांच अग्निमग्निचितिन्तथा।
प्रातरुत्थायय:पश्येदापद्भ्य:सप्रमुच्यते ॥ ९ ॥
पापिष्ठंदुर्भगामन्त्यं नग्नमुत्कृत्तनासिकम्।
प्रातरुत्थायय:पश्येत्सकलेरुपयुज्यते ॥ १० ॥
पतिमुल्लङ्घ्यमोहात्स्त्री किंकिन्ननरकंव्रजेत्।
कृच्छ्रान्मनुष्यतांप्राप्य किंकिंदु:खंनविन्दति ॥११॥
पतिशुश्रूषयैवस्त्री कान्नलोकान्समश्नुते।
दिव:पुनरिहायाता सुखानामम्बुधिर्भवेत् ॥१२॥
सदारोन्यान्पुनर्दारान् कथंचित्कारणान्तरात्।
यइच्छेदग्निमान्कर्तुं क्वहोमोऽस्यविधीयते ॥१३॥
स्वेग्नावेवभवेद्धोमो लौकिकेनकदाचन।

करने वाली पर प्रसन्न होता है कि जैसे पार्वती जी ने शिव जी को प्रसन्न किया है। जिसने अग्नि को प्रसन्न किया है वह स्त्री परलोक में सौभाग्य को प्राप्त होती है ॥७॥ पति में प्रेम से नवती हुई भी स्त्री जो दुर्भागिन हो जिस के पुत्रादि नहीं उस ने पूर्व जन्म में पार्वती, अग्नि, और पति, इन का तिरस्कार किया जानो ॥८॥ वेदपाठी, सुहागिन स्त्री, गौ, अग्निहोत्र, और अग्निचयन यज्ञ इन को प्रातःकाल उठ कर जो देखे वह विपत्तियों से छूट जाता है ॥९॥ पाप-शील, दुर्भागिन बंध्या वा (विधवा) चमार भंगी आदि अन्त्यज नंगा, नकटा, इन को जो प्रातःकाल उठकर देखता है वह कलियुग को प्राप्त होता है ॥१०॥ अज्ञान से पति का उलंघन करके स्त्री किस२ नरक में नहीं जाती?। फिर बड़े कष्ट से मनुष्य योनि को प्राप्त होकर किस २ दुःख को नहीं प्राप्त होती है? ॥११॥ और पति की सेवा से स्त्री कौन २ लोक (स्वर्गादि) के सुख नहीं भोगती अर्थात् सभी लोकों के सुख पाती है और स्वर्ग से फिर भूलोक में आकर सुखों का समुद्र बनती है ॥ १२ ॥ जो एक स्त्री वाला अग्निहोत्री पुरुष किसी का-रण से अन्य स्त्री से विवाह करने की इच्छा करे तो इस का होम किस अग्नि में होवे? यह शंका है ॥ १३ ॥ समाधान यह है कि अपने अग्नि में ही होम

नह्याहिताग्नेःस्वंकर्म लौकिकेऽग्नौविधीयते ॥१४॥
षडाहुतिकमन्येन जुहुयाद्ध्रुवदर्शनात् ।
नह्यात्मनोऽर्थंस्यात्तावद्यावन्नपरिणीयते ॥१५॥
पुरस्तात्त्रिविकल्पं यत्प्रायश्चित्तमुदाहृतम् ।
तत्षडाहुतिकंशिष्टैर्यज्ञविद्भिःप्रकीर्तितम् ॥१६॥
इति कात्यायनस्मृतावेकोनविंशः खण्डः ॥१९॥
इति कात्यायनविरचिते कर्मप्रदीपे द्वितीयः प्रपाठकः ॥२॥
असमक्षन्तुदम्पत्योर्होतव्यंनर्त्विगादिना ।
द्वयोरप्यसमक्षंहि भवेद्धुतमनर्थकम् ॥१॥
विहायाग्निंसभार्यश्चेत्सीमामुल्लङ्घ्यगच्छति ।
होमकालात्ययेतस्य पुनराधानमिष्यते ॥२॥
अरण्योःक्षयनाशाग्निदाहेष्वग्निंसमाहितः ।
पालयेदुपशान्तेस्मिन् पुनराधानमिष्यते ॥३॥

करे लौकिक अग्नि में कदापि नहीं क्योंकि अग्निहोत्री का निज कर्म लौकिक अग्नि में करना शास्त्र में विहित नहीं है ॥ १४ ॥ विवाह में होने वाले ध्रुव दर्शन कर्म के पश्चात् प्रायश्चित्त की छः आहुति का भी अन्य अग्नि में होम न करे। पाणिग्रहण और सप्तपदी से पहिले का होम पत्नी भाव न होने के कारण अपने लिये नहीं माना जायगा ॥ १५ ॥ पहिले जो त्रिविकल्प वाला प्रायश्चित्त कह आये हैं उस को ही यज्ञ के जानने वाले शिष्ट (सज्जन) लोग षडाहुतिक कहते हैं ॥ १६ ॥ यह १९ वां खण्ड पूरा हुआ ॥

कात्यायन के रचे कर्म प्रदीप में २ द्वितीय प्रपाठक पूरा हुआ ॥

स्त्री पुरुष दोनों के परोक्ष में ऋत्विज् आदि कोई स्थापित अग्नि में होम न करे क्योंकि पति पत्नी दोनों की अनुपस्थिति में होम निष्फल होता है ॥१॥ यदि अग्नि को छोड़ कर पत्नी को साथ लेके पुरुष ग्राम की सीमा को लांघ कर चला जाय और उस के होम का समय बीत जाय तो वह फिर से विधिपूर्वक अग्नि का आधान करे ॥ २ ॥ अरणियों का नाश हो जाने वा अग्नि में जल जाने पर सावधानी से अग्नि की रक्षा करे तथापि यदि अग्नि शान्त हो जाय तो फिर से विधिपूर्वक अग्नि का आधान करे ॥ ३ ॥

ज्येष्ठाचेद्बहुभार्य्यस्य अतिचारेणगच्छति ।
पुनराधानमत्रैक इच्छन्तिनतुगौतमः ॥ ४ ॥
दाहयित्वाग्निभिर्भार्य्यां सदृशींपूर्वसंस्थिताम् ।
पात्रैश्चाथाग्निमादध्यात्कृतदारोऽविलम्बितः ॥ ५ ॥
एवंवृत्तांसवर्णांस्त्रीं द्विजातिःपूर्वमारणीम् ।
दाहयित्वाग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्चधर्म्मवित् ॥ ६ ॥
द्वितीयांचैवयःपत्नीं दहेद्वैतानिकाग्निभिः ।
जीवन्त्यांप्रथमायांतु ब्रह्मघ्नेनसमंहितत् ॥ ७ ॥
मृतायांतुद्वितीयायां योऽग्निहोत्रंसमुत्सृजेत् ।
ब्रह्मोज्झंतंविजानीयाद्यश्चकामात्समुत्सृजेत् ॥ ८ ॥
मृतायामपिभार्य्यायां वैदिकाग्निंनहित्यजेत् ।
उपाधिनापितत्कर्म्म यावज्जीवंसमापयेत् ॥ ९ ॥
रामोऽपिकृत्वासौवर्णीं सीतांपत्नींयशस्विनीम् ।
ईजेयज्ञैर्बहुविधैः सहभ्रातृभिरच्युतः ॥ १० ॥

यदि बहुत स्त्री वाले पुरुष की जेठी स्त्री व्यभिचार आदि से चली जाय भाग जाय तो ऐसी अवस्था में कोई ऋषि फिर अग्नि का आधान कहते हैं और गौतम ऋषि नहीं कहते ॥ ४ ॥ अपने वर्ण की और पहिले जो मरी ऐसी स्त्री को स्थापित अग्नियों से पात्रों सहित जला करके शीघ्र ही विवाह कर विधि पूर्वक अग्नि का फिर आधान करे ॥५॥ धर्मनिष्ठ धर्मज्ञ द्विजाति पुरुष ऐसे आचरण वाली पूर्व मरी सवर्णा स्त्री को अग्निहोत्र के अग्नि से यज्ञपात्रों सहित दग्ध करके फिर से अग्निहोत्र लेवे ॥ ६ ॥ पीछे विवाही दूसरी स्त्री को स्थापित अग्नि से जो पुरुष पहिली स्त्री के विद्यमान होने पर जलाता है वह ब्रह्म हत्यारे के समान है॥७॥ पीछे से विवाहित दूसरी स्त्री के मर जाने पर जो पुरुष इच्छा पूर्वक अग्निहोत्र को त्यागता है उस को वेद त्यागने का अपराधी जानो ॥ ८ ॥ मुख्य स्त्री के मर जाने पर भी वैदिक अग्नि का परित्याग न करे उपाधि (कुशा वा धातु की स्त्री बनाकर) से भी अपने जीवने तक अग्निहोत्र कर्म को पूरा करे॥९॥ महाराजा अच्युत भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने भी यश-वाली सोने की—सीता स्त्री को बना कर भाइयों सहित बड़े २ यज्ञ किये ॥१०॥

योदहेदग्निहोत्रेण स्वेनभार्य्यांकथंचन ।
सास्त्रीसंपद्यतेतेन भार्यावास्यपुमान्भवेत् ॥ ११ ॥
भार्य्यामरणमापन्ना देशान्तरगतापिवा ।
अधिकारीभवेत्पुत्रो महापातकिनिद्विजे ॥ १२ ॥
मान्याचेन्म्रियतेपूर्वं भार्यापतिविमानिता ।
त्रीणिजन्मानिसापुंस्त्वं पुरुषःस्त्रीत्वमर्हति ॥ १३ ॥
पूर्वैवयोनिःपूर्वावृत् पुनराधानकर्म्मणि ।
विशेषोत्राग्न्युपस्थानमाज्याहुत्यष्टकंतथा ॥ १४ ॥
कृत्वाव्याहृतिहोमान्तमुपतिष्ठेतपावकम् ।
अध्यायःकेवलाग्नेयः कस्तेजामिरमानसः ॥ १५ ॥
अग्निमीडेअग्नआयाह्यग्नआयाहिवीतये ।
तिस्रोऽग्निज्योतिरित्यग्निं दूतमग्नेमृडेतिच ॥ १६ ॥
इत्यष्टावाहुतीर्हुत्वायथाविध्यनुपूर्वशः ।
पूर्णाहुत्यादिकंसर्वमन्यत्पूर्ववदाचरेत् ॥ १७ ॥

जो अपने अग्निहोत्र के अग्नि से कदाचित् पीछे विवाही अप्रधान स्त्री का दाह करे तो वह पुरुष जन्मान्तर में स्त्री होता और वह स्त्री पुरुष बनती है ॥ ११ ॥ यदि स्त्री मर गई हो वा विदेश में चली गई हो अथवा अग्निहोत्री पुरुष को ही महापातक लगगया हो तो अग्निहोत्र का अधिकारी पुत्र होता है ॥ १२ ॥ यदि पति के तिरस्कार करने से मान के योग्य पहिली ज्येष्ठा स्त्री पहिले मर जाय तो वह स्त्री तीन जन्म तक पुरुष बनती और पुरुष तीन जन्म तक स्त्री बनता है ॥ १३ ॥ दूसरे अग्नि के आधान में पहिले ही योनि (अरणी) और आवृत् होते हैं केवल अग्नि का उपस्थान और आठ घी की आहुतियों की विशेषता है ॥ १४ ॥ व्याहृतियों से होम तक कृत्य करके अग्नि का उपस्थान करे और उस स्तुति में केवल अग्नि का अध्याय १ (कस्तेजामिरमानसः २) ॥ १५ ॥ और (अग्निमीडे ३) (अग्न आयाह्यग्निभिः ४ । ऋ० अ० ६ । अ० ४ । व० १४) (अग्न आयाहिवीतये० ५ ऋ० ४ । ५ । २२) (अग्निज्योतिः० ६) (अग्निंदूतं वृणीमहे० ७ऋ० । १ । १ । २२) (अग्नेमृडमहाँअसि० ८ ऋ० ३ । ५ । ९) ॥ १६ ॥ इन आठ आहुतियों को क्रम से विधि पूर्वक देकर पूर्णाहुति आदि सब अन्य कर्म पूर्व के समान करे ॥ १७ ॥

अरण्योरल्पमप्यङ्गं यावत्तिष्ठतिपूर्वयोः ।
नतावत्पुनराधानमन्यारण्योर्विधीयते ॥ १८ ॥
विनष्टस्रुक्स्रुवंन्युब्जं प्रत्यक्स्थलमुदर्च्चिषि ।
प्रत्यगग्रंचमुसलं प्रहरेज्जातवेदसि ॥ १९ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ विंशतितमः खण्डः ॥ २० ॥
स्वयंहोमासमर्थस्य समीपमुपसर्पणम् ।
तत्राप्यसक्तस्यततः शयनाच्चोपवेशनम् ॥ १ ॥
हुतायांसायमाहुत्यां दुर्लभश्चेद्गृहीभवेत् ।
प्रातर्होमस्तदैवस्याज्जीवेच्चेत्सपुनर्नवा ॥ २ ॥
दुर्बलंस्नापयित्वातु शुद्धचैलाभिसंवृतम् ।
दक्षिणाशिरसंभूमौ बर्हिष्मत्यांनिवेशयेत् ॥ ३ ॥
घृतेनाभ्यक्तमाप्लाव्य सवस्त्रमुपवीतिनम् ।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सुमनोभिर्विभूषितम् ॥ ४ ॥

जब तक पहिली दोनों अरणियों का थोड़ा भी भाग शेष रहै तब तक अन्य नयी अरणियों द्वारा अग्नि का पुनराधान कदापि न करे ॥१८॥ नष्ट हुये स्रुक् स्रुव को औंधा करके और नष्ट हुए मुसल को पश्चिमाग्र करके अच्छे जलते हुए अग्नि में छोड़ के जला देवे ॥ १९ ॥

यह २० वां खण्ड पूरा हुआ ॥

यदि अग्निहोत्री को स्वयं होम करने का सामर्थ्य न हो तो अग्नि के समीप जा बैठे यदि समीप भी न जाया जाय तो शय्या से नीचे उतर बैठे ॥१॥ यदि सायंकाल का होम किये पीछे गृहस्थ दुर्बल (मरने के समान) होजाय तो प्रातःकाल का होम उसी समय हो जाय यदि फिर भी वह प्रातःकाल तक जीवित बना रहे तो फिर भी प्रातःकाल हो वा न बचे तो न हो ॥ २॥ दुर्बल (मरने के समीप जो हो) को स्नान कराकर शुद्ध वस्त्र पहनावे और दक्षिण दिशा की तरफ शिर करके कुश बिछायी पृथवी में लिटा देवे ॥ ३ ॥ मरजाने पर सब शरीर में घी लगा के सवस्त्र स्नान करावे फिर सव्य जनेऊ पहना के सब अङ्गों पर चन्दन छिड़के और पुष्पों से शोभित करे ॥ ४ ॥

हिरण्यशकलान्यस्य क्षिप्त्वाच्छिद्रेषुसप्तसु ।
मुखेष्वथापिधायैनं निर्हरेयुःसुतादयः ॥ ५ ॥
आमपात्रेऽन्नमादाय प्रेतमग्निपुरःसरम् ।
एकोऽनुगच्छेत्तस्यार्द्धमर्द्धपथ्युत्सृजेद्भुवि ॥ ६ ॥
अर्धमादहनंप्राप्त आसीनोदक्षिणामुखः ।
सव्यंजान्वाच्यशनकैः सतिलंपिण्डदानवत् ॥ ७ ॥
अथपुत्रादिराप्लुत्य कुर्य्याद्दारुचयंमहत् ।
भूप्रदेशेशुचौदेशे पश्चाच्चित्यादिलक्षणे ॥ ८ ॥
तत्रोत्तानंनिपात्यैनं दक्षिणाशिरसंमुखे ।
आज्यपूर्णांस्रुचंदद्याद्दक्षिणाग्रांनसिस्रुवम् ॥ ९ ॥
पादयोरधरांप्राचीमरणीमुरसीत्तराम् ।
पार्श्वयोःशूर्पचमसे सव्यदक्षिणयोःक्रमात् ॥ १० ॥
मुसलेनसहन्युब्जमन्तरूर्वोरुलूखलम् ।

और सुवर्ण के टुकड़े सातो छिद्रों (मुख आदि) में गेरै और मुर्दे के मुख को ढांक कर पुत्र आदि श्मशान में ले जायं ॥ ५ ॥ कच्चे मट्टी के पात्र में अन्न लेकर एक मनुष्य मृत के पीछे २ चले और अग्निहोत्र के अग्नि को कोई आगे २ ले चले प्रेत को पीछे ले चले और उस अन्न में से आधे अन्न को घर और श्मशान के बीच मार्ग में पृथ्वी पर पुत्र छोड़ देवे ॥ ६ ॥ और जब श्मशान भूमि में मुर्दा पहुंचजाय तब दक्षिण को मुख करके बैठा हुआ बायां घोंटू पृथिवी में टेक कर धीरे २ तिल सहित उस अन्न को पिण्डदान की विधि से पृथिवी पर छोड़ देवे ॥ ७ ॥ इस के पश्चात् जो चिता के योग्य हो ऐसे भूमि के शुद्ध स्थल में जो स्थान ग्राम से पश्चिम वा दक्षिण दिशा में हो वहां पुत्र आदि स्नान करके चिता बना के उस पर बहुत लकड़ी चिने ॥ ८ ॥ तिस चिता पर दक्षिण की ओर जिस का शिर हो ऐसे इस अग्निहोत्री को ऊपर को मुख करके लिटावे और दक्षिण को अग्र भाग करके घी से भरी जुहू स्रुच् को मुख पर और घी से भरे स्रुव को नाक पर रख देवे ॥ ९ ॥ अधरारणी को पगों पर पूर्वाग्र धरे और उत्तरारणी को छाती पर पूर्वाग्र धरे और बांई पशुलियों पर सूपको तथा दहिनी पर चमस को क्रम से रख देवे ॥ १० ॥ मुशल,

चात्रौवीलीकमन्त्रैवमनश्नुनयनोविभीः ॥ ११ ॥
अपसव्येनकृत्वैतद्वाग्यतःपितृदिङ्मुखः ।
अथाग्निंसव्यजान्वक्तो दद्याद्दक्षिणतःशनैः ॥ १२ ॥
अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयंजायतांपुनः ।
असौस्वर्गायलोकाय स्वाहेतियजुरीरयन् ॥ १३ ॥
एवंगृहपतिर्दग्धः सर्वंतरतिदुष्कृतम् ।
यश्चैनंदाहयेत्सोपि प्रजांप्राप्नोत्यनिन्दिताम् ॥ १४ ॥
यथास्वायुधधृक्पान्थोह्यरण्यान्यपिनिर्भयः ।
अतिक्रम्यात्मनोभीष्टं स्थानमिष्टंचविन्दति ॥ १५ ॥
एवमेपोऽग्निमान्यज्ञपात्रायुधविभूषितः ।
लोकानन्यानतिक्रम्य परंब्रह्मैवविन्दति ॥ १६ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ एकविंशतिमःखण्डः ॥ २१ ॥

औंधी ओखली, चात्र तथा ओविली को जंघाओं के बीच में भय रहित और न रोता हुआ पुत्र रखदेवे ॥ ११ ॥ दक्षिण की ओर मुख कर मौन हुआ अप सव्य होके पूर्वोक्त पात्रचयन कर्म करके बांये घोंटू को भूमि में लगा के चिता में दक्षिण दिशा की ओर धीरे से अग्नि जलावे ॥ १२ ॥ और उस समय इस यजुर्वेद के मन्त्र को पढ़े कि (अस्मात्त्वमधि०) हे जीव ! और हे देह तू इस अग्नि से पैदा हुआ था । और हे अग्नि ! तेरे से यह देह आदि फिर पैदा हो इस से प्रज्वलित अग्नि में इस प्राणी को स्वर्ग लोक की प्राप्ति के निमित्त यह स्वाहा है ॥ १३ ॥ इस उक्त प्रकार जिस का दाह कर्म किया जाय वह गृहस्थ सब पापों से छूट जाता है और जो दाह करता है वह भी उत्तम संतानों को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ जैसे अपने उत्तम शस्त्रों को ले कर पथिक पुरुष निर्भय होकर बनों को भी लांघ कर अपने वांछित स्थान को पहुंचता है और अपने मनोरथ को प्राप्त हो जाता है ॥ १५ ॥ इसी प्रकार अपने यज्ञ पात्ररूप शस्त्रों से शोभित यह अग्निहोत्री भी स्वर्ग आदि लोकों को लांघ कर परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

यह २१ इक्कीशवां खण्ड पूरा हुआ ॥

अथानवेक्षमेत्यापः सर्वएवशवस्पृशः ।
स्नात्वासचैलमाचम्य दद्युरस्योदकंस्थले ॥ १ ॥
गोत्रनामानुवादान्ते तर्पयामीत्यनन्तरम् ।
दक्षिणाग्रान्कुशान्कृत्वा सतिलन्तुपृथक्पृथक् ॥ २ ॥
एवंकृतोदकान्सम्यक् सर्वान्शाद्वलसंस्थितान् ।
आप्लुत्यपुनराचान्तान् वदेयुस्तेऽनुयायिनः ॥ ३ ॥
माशोकंकुरुतानित्ये सर्वस्मिन्प्राणधर्मिणि ।
धर्म्मंकुरुतयत्नेन योवःसहगमिष्यति ॥ ४ ॥
मानुष्येकदलीस्तंभे निःसारेसारमार्गणम् ।
यःकरोतिससंमूढो जलबुद्बुदसन्निभे ॥ ५ ॥
गन्त्रीवसुमतीनाशमुदधिर्दैवतानिच ।
फेनप्रख्यःकथन्नाशं मर्त्यलोकोनयास्यति ॥ ६ ॥

इस के अनन्तर चिता की ओर न देखते हुए मुर्दे को स्पर्श करने वाले सब लोग सचैल स्नान और आचमन करके इस प्रेत को स्थल (जहां जल न हो ऐसी भूमि) पर जल देवें ॥ १ ॥ गोत्र और प्रेत के नाम के अन्त में " तर्पयामि" कहैं जैसे (वसिष्ठगोत्रं चैत्रशर्माणं तर्पयामि) और दक्षिण को अग्रभाग जिन का हो ऐसे कुशों को करके उन कुशों और तिल सहित जल पृथक् २ सब लोग देवें यही तिलाञ्जलि कहाती है ॥ २ ॥ उत्तम प्रकार से शास्त्र रीत्यनुसार दिया है जल जिन्हों ने और जो हरी घास पर बैठे हों तिलाञ्जलि देने पश्चात् फिर स्नान कर के किया है आचमन जिन्हों ने ऐसे प्रेत के सब कुटुम्बियों को उन के संग श्मशान में कोई विद्वान् वा संसार गति के जानने वाले विचार शील गये हों वे निम्न प्रकार उपदेश करें कि ॥ ३ ॥ सब प्राणी अनित्य हैं इस से शोक मत करो किन्तु बड़े यत्न और सावधानी से धर्म करो जो धर्म तुम्हारे संग चलेगा ॥ ४ ॥ जैसे केला के खम्भा में छिलके उतारते जावें तो भीतर कुछ सार नहीं निकलता वैसे ही संसारी विषयों में विचार पूर्वक सच्चे सुख का खोज करें तो कहीं लेशमात्र भी नहीं दीखता । इसलिये जल के बुल बुलों को पकड़ने के समान जगत् में सुख खोजने वाला महा मूर्ख है ॥ ५ ॥ जब कि पृथ्वी, समुद्र, देवता; ये भी नष्ट होने वाले हैं तब जल में उठे फेन के तुल्य लीन होने वाले मनुष्य लोगों का नाश किस प्रकार न होगा ? । अर्थात् अवश्य नाश होगा ॥ ६ ॥

पञ्चधासम्भृतःकायो यदिपञ्चत्वमागतः ।
कर्मभिःस्वशरीरोत्थैस्तत्रकापरिदेवना ॥ ७ ॥
सर्वेक्षयान्तानिचयाः पतनान्ताःसमुच्छ्रयाः ।
संयोगाविप्रयोगान्ता मरणान्तंहिजीवितम् ॥ ८ ॥
श्लेष्माश्रुबान्धवैर्मुक्तं प्रेतोभुङ्क्तेयतोऽवशः ।
अतोनरोदितव्यंहि क्रियाःकार्य्याःप्रयत्नतः ॥ ९ ॥
एवमुक्त्वाव्रजेयुस्ते गृहाँल्लघुपुरःसराः ।
स्नानाग्निस्पर्शनाज्याशैः शुध्येयुरितरेकृतैः ॥ १० ॥
इति कात्यायनस्मृतौ द्वाविंशतितमः खण्डः ॥ २२ ॥
एवमेवाहिताग्नेस्तु पात्रन्यासादिकम्भवेत् ।
कृष्णाजिनादिकश्चात्र विशेषःसूत्रचोदितः ॥ १ ॥

यदि पांच भूतों से बना देह अपने देह से किये कर्मों के कारण मृत्यु (मरण) को प्राप्त होगया तो इस में शोक वा आश्चर्य ही क्या है? ॥ ७ ॥ संसार में संचय वा वृद्धि का अन्तपरिणाम नाश है । ऊपर को चढ़ने वालों का अन्तपरिणाम नीचे गिरना है । तथा सब मेल वा संयोगों का अन्त वियोग और जीवन का अन्त परिणाम मरण है ॥ ८ ॥ जिन आंसुओं को भाई बन्धु छोड़ते हैं उन्हें वेवश हुआ प्रेत खाता है इस मे रोना उचित नहीं किन्तु यत्न से और्ध्वदेहिक कर्म करना चाहिये ॥ ९ ॥ मुर्दा को लेजाते समय सब से बड़ी आयु वाला सब से आगे चले उस से कम २ आयु वाले क्रम से पीछे २ चलें सब से छोटा सब से पीछे चले । बराबर कोई न चले । और उक्त प्रकार श्मशान के समीप उपदेश कर लौटते समय सब से छोटा सब से आगे चले और सब से अधिक बूढ़ा सब से पीछे २ आवे । और जो कुटुम्बियों से भिन्न मनुष्य मरघट में गये हों उनकी शुद्धि स्नान अग्निस्पर्श और घी खाने से होती है ॥१०॥

यह २२ बाईशवां खण्ड पूरा हुआ ॥

इसी प्रकार आहिताग्नि (अग्निहोत्री) का पात्रचयनादि अन्त्येष्टि कर्म किया जाय । और जिन कृष्णाजिन आदि यज्ञ सम्बन्धी पदार्थों के लिये यहां कुछ नहीं कहा उन का कृत्य कल्प सूत्रों में कहे अनुसार जानो ॥ १ ॥

विदेशमरणेस्थीनि ह्याहृत्याभ्यज्यसर्पिषा ।
दाहयेदूर्णयाच्छाद्य पात्रन्यासादिपूर्ववत् ॥ २ ॥
अस्थ्नामलाभेपर्णानि सकलान्युक्तयावृता ।
भर्जयेदस्थिसंख्यानि ततःप्रभृतिसूतकम् ॥ ३ ॥
महापातकसंयुक्तो दैवात्स्यादग्निमान्यदि ।
पुत्रादिःपालयेदग्नीन्युक्तआदोषसंक्षयात् ॥ ४ ॥
प्रायश्चित्तंनकुर्याद्यः कुर्वन्वाम्रियतेयदि ।
गृह्यंनिर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वस्येत्सपरिच्छदम् ॥ ५ ॥
सादयेदुभयंवाप्सु ह्यद्भ्योऽग्निरभवद्यतः ।
पात्राणिदद्याद्विप्राय दहेदप्स्वेववाक्षिपेत् ॥ ६ ॥
अनयैवावृतानारी दग्धव्यायाव्यवस्थिता ।
अग्निप्रदानमन्त्रोस्या नप्रयोज्यइतिस्थितिः ॥ ७ ॥

यदि कोई विदेश में मरजाय तो वहां से उस की हड्डी लेकर उन में घी लगा के और ऊन के वस्त्र से ढांक कर दाह करे और यज्ञ पात्रों का रखना पूर्व के समान यहां भी जानो ॥२॥ यदि विदेश में मरे की हड्डी भी न मिलें तो शरीर में जितनी हड्डियां होती हैं उतने पत्ते किसी यज्ञार्ह ढांक आदि वृक्ष के लेकर उन्हें भूंज कर मुर्दे की तरह श्मशान में लेजाकर पूर्वोक्त प्रकार पात्रचयनादि दाह पर्यन्त कर्म करे और तभी से सूतक माने ॥३॥ यदि अग्निहोत्री को दैवयोग से ब्रह्महत्यादि महापातक लग जाय तो प्रायश्चित्त द्वारा दोष की निवृत्ति होने तक पुत्रादि सावधान होकर अग्नि की रक्षा तथा विधि के साथ नित्य होमादि कृत्य करे ॥४॥ यदि महापातकी प्रायश्चित्त न करे या प्रायश्चित्त करता २ ही मरजाय तो गृह्य नाम आवसथ्याग्नि को बुता देवे और यज्ञपात्रों सहित श्रौत अग्नियों को किसी उत्तम जलाशय में छोड़ देवे ॥ ५ ॥ अथवा श्रौतस्मार्त्त दोनों अग्नियों जल में छोड़ देवे क्योंकि जिस कारण जल से ही अग्नि उत्पन्न हुआ है । अथवा पात्र ब्राह्मण को देदेवे वा जलादे अथवा जल में ही गेर देवे ॥ ६ ॥ इसी शास्त्रोक्त रीति से जो अग्निहोत्री की स्त्री अपने धर्म पर स्थित रहती हुई मरे तो उसका भी दाह कर्म करे परन्तु अग्नि देने का मन्त्र न पढ़े यह शास्त्र की मर्यादा है ॥ ७ ॥ यदि स्त्री किसी कारण पति से पृथक् स्वतन्त्र होगई हो

अग्निनैवदहेद्भार्यां स्वतन्त्रापतितानचेत् ।
तदुत्तरेणपात्राणि दाहयेत्पृथगन्तिके ॥ ८ ॥
अपरेद्युस्तृतीयेवा अस्थ्नांसञ्चयनंभवेत् ।
यस्तत्रविधिरादिष्ट ऋषिभिःसोधुनोच्यते ॥ ९ ॥
स्नानान्तंपूर्ववत्कृत्वा गव्येनपयसाततः ।
सिञ्चेदस्थीनिसर्वाणि प्राचीनावीत्यभाषयन् ॥ १० ॥
शमीपलाशशाखाभ्यामुद्धृत्योद्धृत्यभस्मनः ।
आज्येनाभ्यज्यगव्येन सेचयेद्गन्धवारिणा ॥ ११ ॥
मृत्पात्रसंपुटंकृत्वा सूत्रेणपरिवेष्टयच ।
श्वभ्रंखात्वाशुचौभूमौ निखनेद्दक्षिणामुखः ॥ १२ ॥
पूरयित्वावटंपङ्कपिण्डशैवालसंयुतम् ।
दत्त्वोपरिसमंशेषं कुर्यात्पूर्वाह्णकर्मणा ॥ १३ ॥
एवमेवागृहीताग्नेः प्रेतस्यविधिरिष्यते ।

पर व्याभिचारादि द्वारा पतित न हुई हो तो उस का भी अग्निहोत्र के अग्नि से ही दाह कर्म करे परन्तु यज्ञ के पात्र स्त्री से उत्तर दिशा में समीप पृथक् जला देवे किन्तु उक्त प्रकार चयन न करे ॥ ८ ॥ दूसरे वा तीसरे दिन अस्थि संचयन कर्म करे उस का जो विधान ऋषियों ने कहा है उसे हम कहते हैं ॥९॥ पूर्ववत् स्नान पर्यन्त कर्म करके तदनन्तर गौके दूध से सब हड्डियों को छिड़के अपसव्य रहै, मौन भी धारण करे ॥ १० ॥ शमी (छयोंकर) और ढांक की शाखा से भस्म में से हड्डियों को निकास २ कर गौ का घी उन में लगा २ के सुगन्ध जल से छिड़के ॥ ११ ॥ घट को संपुट (सीधा) करे और उस में हड्डियों को भरकर रंगे सूत से लपेट के शुद्ध भूमि स्थल में गढ़ा खोद कर उस में घड़े को धरके दक्षिण को मुख कर गाढ़ देवे ॥ १२ ॥ और उस गढ़े में जितना खाली हो उसे गीली मट्टी और नदी की घास सिवार नामक से भर कर उस के ऊपर कुछ रखकर सम (एकसा) करदे और यह सब काम पूर्वाह्ण में करे ॥ १३ ॥ इसी प्रकार जो अग्निहोत्री नहो उसका भी दाह विधि करना शास्त्रानुकूल इष्ट है। परन्तु स्त्री के तुल्य मन्त्र पढ़े बिना ही उस अनाहिता-

स्त्रीणामिवाग्निदानंस्यादथातोऽनुक्तमुच्यते ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ त्रयोविंशतितमः खण्डः ॥ २३ ॥

सूतकेकर्मणांत्यागः सन्ध्यादीनांविधीयते ।
होमःश्रौतेतुकर्तव्यः शुष्कान्नेनापिवाफलैः ॥ १ ॥
अकृतंहावयेत्स्मार्त्ते तदभावेकृताकृतम् ।
कृतंवाहावयेदन्नमन्वारम्भविधानतः ॥ २ ॥
कृतमोदनसक्त्वादि तण्डुलादिकृताकृतम् ।
व्रीह्यादिचाकृतंप्रोक्तमितिहव्यंत्रिधाबुधैः ॥ ३ ॥
सूतकेचप्रवासेषु चाशक्तौश्राद्धभोजने ।
एवमादिनिमित्तेषु हावयेदितियोजयेत् ॥ ४ ॥
नत्यजेत्सूतकेकर्म ब्रम्हचारीस्वकंक्वचित् ।
नदीक्षणयात्परंयज्ञे नकृच्छ्रादितपश्चरन् ॥ ५ ॥
पितर्य्यपिमृतेनैषां दोषोभवतिकर्हिचित् ।

अग्नि को भस्म करे । अब जो पूर्व नहीं कहा सो अनाहिताग्नि के लिये विशेष कहते हैं ॥ १४ ॥

यह २३ तेईशवां खण्ड पूरा हुआ ॥

सूतक में संध्या आदि कर्मों का त्याग कहा है परन्तु सूखे अन्न वा फलों से गार्हपत्यादि श्रौत अग्नियों में सूतक के दिनों में भी होम करना चाहिये ॥१॥ आवसथ्य नामक स्मार्त्त अग्नि में अकृत को वा अकृत न मिले तो कृताकृतको अथवा कृत अन्न की आहुति ब्रह्मा के अन्वारम्भ करनेपर दिया करे ॥ २॥ ओदन (भात) और सत्तू आदि पीसा पकाया अन्न कृत, कच्चे चावलादि कृताकृत और बिनकुटे धान आदि अकृत कहाते हैं यह तीन प्रकार का हविष्यान्न विद्वानों ने कहा है ॥ ३ ॥ सूतक में, परदेश में, रोगादि से असमर्थ होने पर, श्राद्ध भोजन करने पर इत्यादि निमित्तों में स्वयं होम न करे किन्तु अन्य किसी द्वारा होम करावे ॥ ४ ॥ सूतक में ब्रह्मचारी अपने कर्म को कभी न छोड़े और दीक्षणीया इष्टि से आगे यज्ञ में और दो आदि दिन में होने वाले कृच्छ्र सान्तपन आदि तप करता हुआ भी सूतक में न छोड़े ॥ ५ ॥ पिता के भी मरजाने पर इन ब्रह्मचारी आदि को दोष नहीं लगता अथवा

आशौचंकर्मणोऽन्तेस्यात् त्र्यहंवाब्रह्मचारिणः ॥ ६ ॥
श्राद्धमग्निमतःकार्यं दाहादेकादशेऽहनि ।
प्रत्याब्दिकंतुकुर्वीत प्रमीताहनिसर्वदा ॥ ७ ॥
द्वादशप्रतिमास्यानि आद्यंषाण्मासिकेतथा ।
सपिण्डीकरणञ्चैव एतद्वैश्राद्धषोडशम् ॥ ८ ॥
एकाहेनतुषण्मासा यदास्युरपिवात्रिभिः ।
न्यूनाःसंवत्सरश्चैव स्यातांषाण्मासिकेतदा ॥ ९ ॥
यानिपञ्चदशाद्यानि अपुत्रस्येतराणितु ।
एकस्मिन्नहिदेयानि सपुत्रस्यैवसर्वदा ॥ १० ॥
नयोषायाःपतिर्दद्यादपुत्राया अपिक्वचित् ।
नपुत्रस्यपितादद्यान्नानुजस्यतथाग्रजः ॥ ११ ॥
एकादशेऽह्निनिर्वर्त्य अर्वाग्दर्शाद्यथाविधि ।
प्रकुर्वीताग्निमान्पुत्रो मातापित्रोःसपिण्डताम् ॥ १२ ॥

ब्रह्मचारी को प्रारम्भ किये कर्म के समाप्त होजाने पर तीन दिन सूतक मानना चाहिये ॥ ६ ॥ अग्निहोत्री का श्राद्ध दाह के दिन से ग्यारहवें दिन करै और प्रति वर्ष में भी मरने के दिन सदैव श्राद्ध करै ॥ ७ ॥ एक वर्षतक बारह मास के प्रत्येक अमावास्या के बारह श्राद्ध, ग्यारहवें दिन का १ एक पहिला श्राद्ध, छः २ महिने पूरे होने पर दो श्राद्ध और एक सपिंडीकरण श्राद्ध ये अग्निहोत्री के सोलह श्राद्ध कहाते हैं ॥ ८ ॥ ये दो छः २ मास वाले श्राद्ध तब होते हैं जब छः महीने वा १ वर्ष में एक वा तीन दिन शेष रहें तब छठे २ महीने में दो वार श्राद्ध करे ॥ ९ ॥ पहिले जो पन्द्रह श्राद्ध हैं वे जिसके पुत्र न हो उसके एक ही दिन में करदे और जिसके पुत्र हो उसके सर्वदा (पृथक् २) उस २ समय में करै ॥ १० ॥

जिस स्त्री के पुत्र न हो उस का पति उस को श्राद्ध में पिण्ड न देवे पुत्र को पिता पिण्ड न दे तथा छोटे भाई को बड़ा भाई पिण्ड न देवे ॥ ११ ॥ ग्यारहवें दिन मावस से पहिले कर्म को पूर्ण करके अग्निहोत्री पुत्र माता पिता की सपिण्डी विधि पूर्वक करै ॥ १२ ॥ सपिण्डी किये पीछे प्रति महीने एको-

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं नदद्यात्प्रतिमासिकम् ।
एकोद्दिष्टेनविधिना दद्यादित्याहगौतमः ॥ १३ ॥
कर्षूसमन्वितंमुक्त्वा तथाद्यंश्राद्धषोडशम् ।
प्रत्याब्दिकंचशेषेषु पिण्डाःस्युःषाडितिस्थितिः ॥ १४ ॥
अर्घेऽक्षय्योदकेचैव पिण्डदानेऽवनेजने ।
तन्त्रस्यतुनिवृत्तिःस्यात्स्वधावाचनएवच ॥ १५ ॥
ब्रह्मदण्डादियुक्तानां येषांनास्त्यग्निसत्क्रिया ।
श्राद्धादिसत्क्रियाभाजो नभवन्तीहतेक्वचित् ॥ १६ ॥
इति कात्यायनस्मृतौचतुर्विंशतितमः खण्डः ॥ २४ ॥
मन्त्राम्नायेऽग्नइत्येतत् पञ्चकंलाघवार्थिभिः ।
पठ्यतेतत्प्रयोगेस्यान्मन्त्राणामेवविंशतिः ॥ १ ॥
अग्नेःस्थानेवायुचन्द्रसूर्यान्वहुवदूह्यच ।
समस्यपञ्चमीसूत्रे चतुश्चतुरितिश्रुतेः ॥ २ ॥

द्दिष्ट श्राद्ध न करे और गौतम ऋषि यह कहते हैं कि सपिण्डी के पश्चात् भी एकोद्दिष्ट की विधि से ही प्रति महीने श्राद्ध करे ॥ १३ ॥ कर्षू (अर्घा) सहित पहिले श्राद्ध को षोडश १६ श्राद्धों को और वार्षिक (बरसी) श्राद्ध को छोड़ कर शेष पार्वणादि श्राद्धों में छः २ पिण्ड देने चाहिये यह मर्यादा है ॥ १४ ॥ अर्घ अक्षय्योदक, पिण्डदान, अवनेजन,–और स्वधावाचन इतने कामों में तन्त्र न करे । अर्थात् किसी को किसी के साथ मिला के न करे ॥ १५ ॥ ब्रह्मदण्ड (शाप) आदि से मरे जिन पुरुषों का अग्नि में दाह रूप सत्कर्म नहीं कहा वे श्राद्ध आदि सत्कर्म के भागी इस लोक में कभी नहीं होते ॥ १६ ॥

यह २४ चौवीशवां खण्ड पूरा हुआ ॥

मन्त्र संहिता में (अग्ने०) इत्यादि जो पांच मन्त्र लाघव चाहने वाले ऋषियों ने पढ़े हैं उन मन्त्रों के प्रयोग में वीस मन्त्र होते हैं ॥ १ ॥ क्योंकि (अग्ने) इस पद के स्थान में (वायो) (चन्द्र) (सूर्य) इन का ऊह कर लेने से एक २ के चार २ मन्त्र हो जाते हैं । फिर पांचवां मन्त्र पूरा करने के लिये अग्नि आदि चारो देवताओं का समास कर लेना चाहिये । क्योंकि चार २ देवताओं को एक २ आहुति देवे यह श्रुति में कहा है ॥ २ ॥ पहिले पञ्चक

प्रथमेपञ्चकेपापीलक्ष्मीरितिपदंभवेत्।
अपिपञ्चसुमन्त्रेषु इतियज्ञविदोविदुः ॥ ३ ॥
द्वितीयेतुपतिघ्नीस्यादपुत्रेतितृतीयके।
चतुर्थेत्वपसव्येति इदमाहुतिविंशकम् ॥ ४ ॥
धृतिहोमेनप्रयुञ्ज्याद्गोनामसुतथाष्टसु।
चतुर्थ्यामघ्न्यइत्येतद्गोनामसुहिहूयते ॥ ५ ॥
लताग्रपल्लवोगूढः शुङ्गेतिपरिकीर्त्यते।
पतिव्रताव्रतवती ब्रह्मबन्धु स्तथाऽश्रुतः ॥ ६ ॥
शलाटुनीलमित्युक्तं ग्रन्थःस्तवकउच्यते।
कपुष्णिकाभितःकेशा मूर्धनिपश्चात्कमुच्छलम् ॥ ७ ॥
श्वाविच्छलाकाशलली तथावीरतरःशरः।
तिलतण्डुलसम्पक्वः कृसरःसोभिधीयते॥ ८ ॥
नामधेयेमुनिवसुपिशाचाबहुवत्सदा।
यक्षाश्चपितरोदेवा यष्टव्यास्तिथिदेवताः॥९॥
आग्नेयाद्येऽथसर्पाद्ये विशाखाद्येतथैवच।

में पापी लक्ष्मी पद पांचों मन्त्रों में लगावे यह यज्ञ का तत्त्व जानने वालों ने स्थिर किया है ॥ ३ ॥ दूसरे पंचक में पतिघ्नी पद तीसरे पंचक में अपुत्रा पद और चौथे पञ्चक में अपसव्या पद लगावें ये बीश आहुति हैं ॥ ४ ॥ धृति के होम में और आठों गोनाम के होमों में प्रयोग न करे गो नामों में चौथी आहुति पर (अघ्न्ये) इस मन्त्र से आहुति देवे ॥५॥ लता के आगेका जो पत्ता गुप्त है उसे शुंगा कहते हैं पतिव्रता को व्रतवती और जो वेद न पढ़ा हो उस ब्राह्मण को ब्रह्मबन्धु कहते हैं ॥६॥ नील को शलाटु, स्तवक (गुच्छा) को ग्रन्थ कहते हैं । स्त्री के शिर पर दोनों तरफ के केशों को कपुष्णिका और पीछे केश के जूड़े को कपुच्छल कहते हैं ॥७॥ सेही के कांटे को शलली, बाण को वीरतर कहते और इकट्ठे पके तिल चावलों को कृसर नाम खिचड़ी कहते हैं ॥ ८ ॥ मुनि, वसु, पिशाच, यक्ष, पितर, देव और तिथियों के देवता इन सब को बहुवचनान्त नाम लेकर पूजे (जैसे मुनिभ्योनमः इत्यादि) ॥९॥ इतने नक्षत्र द्वन्द्व (दो २) हैं इन को सदैव बहुवचन पद से यथा (कृत्तिकाभ्यः

आषाढाद्ये धनिष्ठाद्ये अश्विन्याद्ये तथैवच ॥१०॥
द्वन्द्वान्येतानिबहुवदृक्षाणांजुहुयात्सदा।
द्वन्द्वद्वयंद्विवच्छेषमवशिष्टान्यथैकवत् ॥११॥
देवतास्वपिहूयन्ते बहुवत्सार्वपित्तयः।
देवाश्चवसवश्चैव द्विपद्देवाश्विनौसदा ॥१२॥
ब्रह्मचारीसमादिष्टो गुरुणाव्रतकर्मणि।
वाढमोमित्वाब्रूयात्तथैवानुपपालयेत् ॥१३॥
सशिखंवपनंकार्यमास्नानाद्ब्रह्मचारिणा।
आशरीरविमोक्षाय ब्रह्मचर्य्यंनचेद्भवेत् ॥ १४ ॥
नगात्रोत्सादनंकुर्य्यादनापदिकदाचन।
जलक्रीडामलंकारान्व्रतीदण्डइवाप्लवेत् ॥ १५ ॥
देवतानांविपर्य्यासे जुहोतिपुकथम्भवेत्।
सर्वंप्रायश्चित्तंहुत्वा क्रमेणजुहुयात्पुनः ॥ १६ ॥
संस्काराअतिपत्येरन् स्वकालाच्चेत्कथ्वन।

स्वाहा इत्यादि) आहुति दे और शेष दो द्वन्द्वों को द्विवचनान्त पद से और बाकी के नक्षत्रों को एक वचनान्त पद से आहुति देवे ॥११॥ देवताओं में भी सार्वपित्ति देव, वसु, द्विपद्देव, अश्विनीकुमार इन को बहुवचनान्त पद से उच्चारण करे ॥ १२ ॥ जिस व्रत के काम में ब्रह्मचारी को गुरु आज्ञा देवें उस में वाढं (सत्य है) अथवा ओं (अङ्गीकार है) ऐसे कहे और गुरु की आज्ञा को वैसी ही ज्यों की त्यों पालन करे ॥ १३ ॥

यदि जीवन भर के लिये नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण न किया हो तो समावर्त्तन संस्कार होने पर्यन्त ब्रह्मचारी को शिखा सहित मुण्डन सदा कराना चाहिये ॥१४॥ ब्रह्मचारी आपत्ति के विना अपने शरीर को किसी से न दब वावे। जल में क्रीड़ा, आभूषण धारण इन को भी न करे और जलाशय में डुबकी लगा के स्नान न करे किन्तु दण्ड के तुल्य जल पर तर लेवे ॥ १५ ॥ यदि कभी होम में देवताओं का विपर्यास (आगे का पीछे वा पीछे का आगे) होजाय तो प्रायश्चित्त की सब आहुति देकर फिर क्रम से होम करे ॥ १६ ॥ यदि यज्ञोपवीत से पहिले संस्कारों (जात कर्मादि) की अतिपत्ति

हुत्वातदैवकर्तव्या येतूपनयनादधः ॥ १७ ॥
अनिष्ट्वानवयज्ञेन नवान्नंयोऽत्त्यकामतः ।
वैश्वानरश्चरुस्तस्य प्रायश्चित्तंविधीयते ॥ १८ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ पञ्चविंशतितमः खण्डः ॥ २५ ॥
चरुःसमशनीयोयस्तथागोयज्ञकर्मणि ।
वृषभोत्सर्जनेचैव अश्वयज्ञेतथैवच ॥ १ ॥
श्रावण्यांवाप्रदोषेयः कृष्यारम्भेतथैवच ।
कथमेतेपुनिर्वापाः कथञ्चैवजुहोतयः ॥ २ ॥
देवतासंख्ययाग्राह्या निर्वापास्तुपृथक्पृथक् ।
तूष्णींद्विरेवगृण्हीयाद्धोमश्चापिपृथक्पृथक् ॥ ३ ॥
यावताहोमनिर्वृत्तिर्भवेद्वायत्रकीर्तिता ।
शेषञ्चैवभवेत्किञ्चित्तावन्तंनिर्वपेच्चरुम् ॥ ४ ॥
चरौसमशनीयेतु पितृयज्ञेचरौतथा ।

शास्त्रोक्त समय पर न होना) हो जाय तो प्रायश्चित्त की सब आहुति देकर उन २ संस्कारों को समय निकल जाने पर भी करे ॥ १७ ॥ जो पुरुष अज्ञान से नवान्नेष्टि किये विना नवीन अन्न को खा लेवे उस का प्रायश्चित्त वैश्वानर (अग्नि का) चरु है अर्थात् वैश्वानर देवता के नाम से चरु बना कर होम करे ॥ १८ ॥

यह २५ पचीशवां खण्ड पूरा हुआ ॥

जो समशनीय (खाने योग्य) चरु है वह और गोयज्ञ कर्म में वृषोत्सर्ग में, अश्वमेध में ॥१॥ श्रावणी में, प्रदोष में, कृषि (खेती) के आरम्भ में इतनी जगहों में निर्वाप और आहुति कैसे होनी चाहिये सो कहते हैं ॥ २ ॥ जितने देवता हों उतने ही पृथक् २ निर्वाप लेने चाहिये- और प्रत्येक देवता के लिये एक २ वार मन्त्र से दो २ वार तूष्णीं हविष्यान्न का ग्रहण करे और सब देवताओं के लिये होम भी पृथक् २ करे ॥ ३ ॥ जितना होम जहां कहा हो या जितने से होम हो सके और कुछ शेष भी रह जाय उतना ही चरु बनावे ॥ ४ ॥ समशनीय चरु में पितृयज्ञ के चरु में इन में तो मेक्षण नाम

होतव्यम्मेक्षणेनान्य उपस्तीर्याभिघारितम् ॥ ५ ॥
कालःकात्यायनेनोक्तो विधिश्चैवसमासतः ।
वृषोत्सर्गेयतोनोऽत्र गोभिलेनतुभाषितः ॥ ६ ॥
पारिभाषिकएवस्यात् कालोगोवाजिमेधयोः ।
अन्यस्मादुपदेशात्तु स्वस्तरारोहणस्यच ॥ ७ ॥
अथवामार्गपाल्येऽह्नि कालोगोयज्ञकर्मणः ।
नीराजनेऽह्निवाश्वानामितितन्त्रान्तरेविधिः ॥ ८ ॥
शरद्वसन्तयोःकेचिन्नवयज्ञंप्रचक्षते ।
धान्यपाकवशादन्ये श्यामाकोवनिनःस्मृतः ॥ ९ ॥
आश्वयुज्यान्तथाकृष्यां वास्तुकर्मणियाज्ञिकाः ।
यज्ञार्थतत्त्ववेत्तारो होममेवंप्रचक्षते ॥ १० ॥
द्वेपञ्चद्वेक्रमेणैता हविराहुतयःस्मृताः ।
शेषाआज्येनहोतव्या इतिकात्यायनोऽब्रवीत् ॥ ११ ॥

काष्ठ के यज्ञपात्र से होम करे और अन्य पक्ष में घी का उपस्तरण (आहुति देने से प्रथम स्रुवादि में घी चुपड़ना) और आहुति के लिये ग्रहण किये चरु पुरोडाशादि पर ऊपर से घी डालना अभिघार कहाता है ॥ ५ ॥ काल और विधि संक्षेप से कात्यायन ने कहे हैं परन्तु वृषोत्सर्ग में गोभिल ऋषि ने काल और विधि नहीं कहे ॥६॥ गोमेध और अश्वमेध यज्ञ में समय वही है जो पारिभाषिक (परिभाषा सूत्रों में नियत किया) हो । अन्य उपदेश से स्वस्तरारोहण गृह्यकर्म का काल भी पारिभाषिक जानो ॥ ७ ॥ अथवा मार्गपाल्य दिन में गोयज्ञ कर्म का और नीराजन (दिवाली) के दिन अश्वकर्म का काल होता है यह शास्त्रान्तरों की विधि है ॥ ८ ॥ कोई ऋषि शरद् और वसन्त में नवान्नेष्टियज्ञ कहते और कोई अन्न के पकने पर कहते हैं और वानप्रस्थ को श्यामाक (समा) पकने पर वर्षा ऋतु में नवान्नेष्टि यज्ञ कहा है ॥ ९ ॥ आश्विन की पूर्णिमा के दिन, कृषि कर्म के आरम्भ में और वास्तु प्रतिष्ठा में इन में यज्ञ का तत्त्व जानने वाले याज्ञिक लोग इस आगे कहे प्रकार से होम कहते हैं ॥ १० ॥ दो, पांच, फिर दो, इस क्रम से आहुति हविष्यान्न की और शेष आहुति घी की देनी चाहिये यह कात्यायन ने कहा है ॥११॥

पयोयदाज्यसंयुक्तं तत्पृषातकमुच्यते ।
दध्येकेतदुपासाद्य कर्त्तव्यःपायसश्चरुः ॥ १२ ॥
व्रीहयःशालयोमुद्गा गोधूमाःसर्षपास्तिलाः ।
यवाश्चौषधयःसप्त विपदंघ्नन्तिधारिताः ॥ १३ ॥
संस्काराःपुरुषस्यैते स्मर्य्यन्तेगौतमादिभिः ।
अतोऽष्टकादयःकार्य्याः सर्वेकालक्रमोदिताः ॥ १४ ॥
सकृदप्यष्टकादीनि कुर्यात्कर्माणियोद्विजः ।
सपङ्क्तिपावनोभूत्वा लोकान्प्रेतिघृतश्च्युतः ॥ १५ ॥
एकाहमपिकर्मस्थो योऽग्निशुश्रूषकःशुचिः ।
नयत्यत्रतदेवास्य शताहंदिविजायते ॥ १६ ॥
यस्त्वाधायाग्निमाशास्य देवादीन्नैभिरिष्टवान् ।
निराकर्त्तामरादीनां सविज्ञेयोनिराकृतिः ॥ १७ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ षड्विंशतितमः खण्डः ॥ २६ ॥

घी जिस में मिला है ऐसे दूध को पृषातक कहते हैं और कोई विद्वान् यह कहते हैं कि उस दूध में दधि मिलाकर पायस चरु बना ले ॥१२॥ व्रीहि धान शालि बासमती. मूंग.गेहूं. सरसों. तिल. जौ.—ये सात औषधी धारण करने से विपत्ति को दूर करती हैं ॥ १३ ॥ गौतम आदि ऋषियों ने ये स्मार्त्तकर्म पुरुष को शुद्ध करने वाले कहे हैं इससे अष्टका आदि सब कर्म जिस समय में कहे हैं उसी समय करने चाहिये ॥ १४ ॥ जो द्विज पुरुष अष्टका श्राद्ध आदि कर्मों को एक बार भी श्रद्धा और विधि से ठीक २ करता है वह पंक्तिपावन (पांत का पवित्र करने वाला) होकर उत्तम लोकों (स्वर्गादि) को प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ जो धर्म कर्म में तत्पर शुद्धि के साथ स्थापित अग्नि का सेवक पुरुष एक दिन भी ऐसी दशा में बिताता है वही दिन स्वर्ग में सौ १०० गुणा फल दायक हो जाता है ॥ १६ ॥ जो अग्नि का आधान स्थापन करके और देवतादि को आशा देकर इन यज्ञों से देवताओं का पूजन नहीं करता इस से उन देवताओं को तिरस्कार करने वाले को निराकृति (नास्तिक) जानना चाहिये ॥ १७ ॥

यह २६ छब्बीसवां खण्ड पूरा हुआ ॥

यच्छ्राद्धंकर्मणामादौ याचान्तेदक्षिणाभवेत् ।
अमावास्यांद्वितीयंयदन्वाहार्य्यंतदुच्यते ॥ १ ॥
एकसाध्येष्वबर्हिःषु नस्यात्परिसमूहनम् ।
नोदगासादनञ्चैव क्षिप्रहोमाहितेमताः ॥ २ ॥
अभावेव्रीहियवयोर्दध्नावापयसापिवा ।
तदभावेयवाग्वावा जुहुयादुदकेनवा ॥ ३ ॥
रौद्रन्तुराक्षसंपित्र्यमासुरञ्चाभिचारिकम् ।
उक्त्वामन्त्रंस्पृशेदाप आलभ्यात्मानमेवच ॥ ४ ॥
यजनीयेन्हिसोमश्चेद्वारुण्यांदिशिदृश्यते ।
तत्रव्याहृतिभिर्हुत्वा दण्डंदद्याद्द्विजातये ॥ ५ ॥
लवणंमधुमांसंच क्षारांशोयेनहूयते ।
उपवासेनभुञ्जीत नोरुरात्रौनकिंचन ॥ ६ ॥
स्वकालेसायमात्याह अप्राप्तौहोतृहव्ययो : ।

कर्मों के आदि में जो आभ्युदयिक श्राद्ध होता है और कर्मों के अन्त में जो दक्षिणा दीजाती है और अमावस को जो दूसरा श्राद्ध होता है उसे अन्वाहार्य्य कहते हैं ॥ १ ॥ एक साथ होने वाले, जिन में बर्हिनामक कुश न लिये गये हों ऐसे होमों में परिसमूहन और उत्तर २ पात्रों का रखना नहीं होता क्योंकि वे शीघ्र होने वाले होम कहाते हैं ॥ २ ॥ ब्रीहि और जौ के अभाव में दही या दूध से और उन के भी अभाव में ढीले रांधे हुए चावलों से, यदि ये भी न मिलें तो केवल जल से होम करे ॥ ३ ॥ रुद्र, राक्षस, पितर, असुर और अभिचार नाम शत्रु वध का जिन में विशेष कर वर्णन हो ऐसे मन्त्रों का उच्चारण करके अपने हृदय का स्पर्श कर दहिने हाथ से जल स्पर्श करे ॥ ४ ॥ यदि दर्शेष्टि के दिन संध्या के समय पश्चिम दिशा में चन्द्रमा दीख पड़े तो वहां व्याहृति [भूः आदि] यों से होम करके किसी ब्राह्मण को एक छड़ी दान में देवे ॥ ५ ॥ लवण, सहत, मांस, और खार इन का अग्नि में जो होम करता है वह दिन में उपवास करे और रात्रि में भी मध्यम भोजन करे न बहुत कम न अधिक ॥६॥ सायंकाल की आहुति के समय पर यदि होता और हविष्यान्न न मिलें

प्राक्प्रातराहुतेःकालः प्रायश्चित्तेहुतेसति ॥ ७

प्राक्सायमाहुतेः प्रातर्होमकालानतिक्रमः ।

प्राक्पौर्णमासाद्दर्शस्य प्राग्दर्शादितरस्यतु ॥ ८ ॥

वैश्वदेवेत्वतिक्रान्ते अहोरात्रमभोजनम् ।

प्रायश्चित्तमथोहुत्वा पुनःसन्तनुयाद्व्रतम् ॥ ९ ॥

होमद्वयात्ययेदर्शपौर्णमासात्ययेतथा ।

पुनरेवाग्निमादध्यादितिभार्गवशासनम् ॥ १० ॥

अनृचोमाणवोज्ञेय एणःकृष्णमृगःस्मृतः ।

रुरुर्गौरमृगःप्रोक्तस्तम्बलःशोणउच्यते ॥ ११ ॥

केशान्तिकोब्राह्मणस्य दण्डःकार्यःप्रमाणतः ।

ललाटसम्मितोराज्ञः स्यात्तुनासान्तिकोविशः ॥ १२ ॥

ऋजवस्तेतुसर्वेस्युरव्रणाःसौम्यदर्शनाः ।

अनुद्वेगकरान्नृणां सत्वचोऽनाग्निदूषिताः ॥ १३ ॥

गौर्विशिष्टतयाविप्रैर्वेदेष्वपिनिगद्यते ।

तो प्रातःकाल की आहुति देने से पहिले प्रायश्चित्त की आहुति के पीछे सायंकाल का होम कर देवे और प्रातःकाल का होम छूट जाय तो सायंकाल की आहुति से पहिले प्रायश्चित्तपूर्वक उस के कर लेने का समय है। यदि कोई पौर्णमासेष्टि समय पर न हो पावे तो दर्शेष्टि से पहिले २ उस को प्रायश्चित्त पूर्वक कर लेवे और दर्शेष्टि छूट जावे तो अगली पौर्णमासेष्टि से पहिले उसे भी कर लेवे ॥ ८ ॥ एक दिन का वैश्वदेव छूट जाने पर एक दिन रात भोजन न करे तदनन्तर प्रायश्चित्त होम करके विस्तार के साथ नियम का पालन करे ॥९॥ यदि दो वार का होम छूट जाय वा दर्शपूर्णमास दोनों इष्टि छूट जायं तो फिर से अग्नि का आधान करै यह भार्गव का मत है ॥ १० ॥ यज्ञोपवीत न हुए बालक को अनृच कहते और काले मृग को एण और गोरे मृग को रुरु और लाल को तम्बल कहते हैं ॥ ११ ॥ केशों की उंचाई तक ब्राह्मण का, मस्तक तक क्षत्रिय का और नासिका तक वैश्य ब्रह्मचारी का दण्ड होना चाहिये॥१२॥ और वे दण्ड कोमल हों, घुने न हों, देखने में सुन्दर हों, मनुष्यों को डरपाने वाले न हों, वक्कल सहित हों और जले न हों ॥ १३ ॥ ब्राह्मणों ने और वेदों में

नततोऽन्यद्वरंयस्मात्तस्माद्गौर्वरमुच्यते ॥ १४ ॥
येषांव्रतानामन्तेषु दक्षिणानविधीयते ।
वरंतत्रभवेद्दानमपिवाच्छादयेद्गुरुम् ॥ १५ ॥
अस्थानोच्छ्वासविच्छेदघोषणाध्यापनादिकम् ।
प्रमादिकंश्रुतौयत्स्याद्यातयामत्वकारितत् ॥ १६
प्रत्यब्दंयदुपाकर्म सोत्सर्गंविधिवद्द्विजैः ।
क्रियतेछन्दसान्तेन पुनराप्यायनंभवेत् ॥ १७ ॥
अयातयामैश्छन्दोभिर्यत्कर्म्मक्रियतेद्विजैः ।
क्रीडमानैरपिसदा तत्तेषांसिद्धिकारकम् ॥ १८ ॥
गायत्रींचसगायत्रां बार्हस्पत्यमितित्रिकम् ।
शिष्येभ्योऽनूच्यविधिवदुपाकुर्य्यात्ततःश्रुतिम् ॥ १९ ॥
छन्दसामेकविंशानां संहितायांयथाक्रमम् ।
तच्छन्दस्काभिरेवाग्भिरााद्याभिर्होमइष्यते ॥ २० ॥

भी गौ को उत्तम कहा है जिस कारण गौ से श्रेष्ठ दक्षिणा अन्य कोई नहीं है इस कारण वर शब्द से कही गोदान की दक्षिणा ही सर्वोत्तम जानो ॥ १४ ॥ जिन व्रतों के अन्त में कोई दक्षिणा नहीं कही वहां वर (गौ) को ही दक्षिणा देवे अथवा गुरु को वस्त्र दान देवे ॥१५॥ अस्थान. (जिस स्थान से बोलना चाहिये उस से वर्ण को न बोलना) ऊंचे श्वांस से बोलना सन्धि न करके विच्छेद अवसान देकर बोलना. अति ऊंचे शब्द से बोलना. और पढ़ाने की तरह पढ़ना, यदि ऐसे दोष प्रमाद से होजांय तो वेदाध्ययनरूप धर्म यातयाम नाम साररहीन होजाता है ॥१६॥ प्रतिवर्ष जो उत्सर्ग के सहित उपाकर्म श्रावण में ब्राह्मण लोग करते हैं उस से फिर वेदों की आप्यायन नाम पूर्त्ति हो जाती है ॥ १७ ॥ अयातयाम [सार वाले] वेदों द्वारा जो कर्म खेल करते हुये भी द्विज लोग करते हैं वह कर्म उन के मनोरथ की सिद्धि करने वाला होता है ॥ १८ ॥ प्रणव सहित गायत्री और बार्हस्पत्य (बृहस्पति देवता का मन्त्र) इन तीनों को शिष्यों को पढ़ा के तदनन्तर वेद का उपाकर्म करे ॥ १९ ॥ वेद संहिताओं में गायत्री आदि इक्कीस छन्द हैं, उन छन्दों वाली सनातन ऋचाओं से होम कहा है ॥ २० ॥

पर्व्वभिश्चैवगानेषु ब्राह्मणेषूत्तरादिभिः ।
अङ्गेषुचर्चामन्त्रेषु इतिषष्टिर्जुहोतयः ॥२१ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ सप्तविंशतितमःखण्डः ॥ २७ ॥
अक्षतास्तुयवाःप्रोक्ता भ्रष्टाधानाभवन्तिते ।
भ्रष्टास्तुव्रीहयोलाजा घटःखाण्डिकउच्यते ॥ १ ॥
नाधीयीतरहस्यानि सोत्तराणिविचक्षणः ।
नचोपनिषदश्चैव षण्मासान्दक्षिणायनात् ॥ २ ॥
उपाकृत्योदगयने ततोऽधीयीतधर्म्मवित् ।
उत्सर्गश्चैकएवैषां तैष्यांप्रोष्ठपदेऽपिवा ॥ ३ ॥
अजातव्यञ्जनालोम्नी नतयासहसंविशेत् ।
अयुगूःकाकवन्ध्याया जातातांनविवाहयेत् ॥ ४ ॥
संसक्तपदविन्यासस्त्रिपदःप्रक्रमःस्मृतः ।
स्मार्त्तकर्म्मणिसर्वत्र श्रौतेन्ध्वर्य्युणोदितः ॥ ५ ॥

गान (सामवेद) में पर्वों से और ब्राह्मण वेद में उत्तरादि से और अङ्गों में चर्चा और मन्त्रों में जो कही है वेही साठ ६० आहुति हैं ॥ २१ ॥

यह सत्ताईसवां २७ खण्ड पूरा हुआ ॥

विन कुटे जौ को अक्षत कहते हैं और वेही भुंजे हुए जौ धाना कहाते हैं तथा भुंजे धानों को लाजा (खीलें) कहते हैं और घड़े को खाण्डिक कहते हैं ॥ १ ॥ दक्षिणायन के छः महीनों में विद्वान् पुरुष उत्तर भागों सहित वेद सम्बन्धी रहस्य ग्रन्थों को और उपनिषदों को न पढ़े ॥ २ ॥ उपाकर्म करके उत्तरायण में धर्म का ज्ञाता पुरुष रहस्यादि वेद भागों को पढ़े । द्विजों के लिये पौष वा भाद्रपद की पौर्णमासी पर एक ही वार उत्सर्ग कर्म कहा है ॥३॥ जिस स्त्री के शरीर पर जब तक सर्वथा ही लोम न उगे हों और जिस के वक्षस्थल में कुच प्रकट न हुए हों, उसके साथ धर्मनिष्ठ पुरुष संयोग न करे जिस के अंग उत्पत्ति से ही विगड़े हों और जो काकवन्ध्या हो उस के साथ विवाह न करे ॥४॥ सर्वत्र स्मार्त्त कर्म में मिला२ के नापे तीन पग लंबा १ प्रक्रम कहाता है । और श्रौतकर्मों में यजुर्वेद के ब्राह्मणकल्प में कहा प्रक्रम का नाप जानो ॥ ५ ॥

यस्यांदिशिबलिंदद्यात्तामेवाभिमुखोबलिम्।
श्रवणाकर्म्मणिभवेन्न्यञ्चकर्मनसर्वदा॥ ६॥
बलिशेषस्यहवनमग्निप्रणयनन्तथा।
प्रत्यहंनभवेयातामुल्मुकन्तुभवेत्सदा ॥ ७ ॥
पृषातकप्रेषणयोर्नवस्यहविषस्तथा।
शिष्टस्यप्राशनेमन्त्रस्तत्रसर्वेऽधिकारिणः ॥ ८॥
ब्राह्मणानामसान्निध्ये स्वयमेवपृषातकम्।
अवेक्षेद्धविषःशेषं नवयज्ञेऽपिभक्षयेत्॥ ९ ॥
सफलाबदरीशाखा फलवत्यभिधीयते।
घनाविसिकताःशङ्काः स्मृताजातशिलास्तुताः ॥१०॥
नष्टोविनष्टोमणिकः शिलानाशेतथैवच।
तदेवाहृत्यसंस्कार्य्या नापेक्षेदाग्रहायणीम् ॥ ११ ॥
श्रवणाकर्म्मलुप्तंचेत्कथंचित्सूतकादिना।
आग्रहायणिकंकुर्याद्बलिवर्जमशेषतः ॥ १२ ॥

जिस दिशा में बलि देनी हो उसी दिशा के सम्मुख बैठे-और श्रावणी कर्म में नीचे को अधोमुख कर्म सदा ही न करे ॥ ६ ॥ बलि के शेष भाग का होम और अग्नि का प्रणयन-(लाना) ये प्रतिदिन होते और उल्मुक अंगार तो प्रति दिन होता ही है ॥ ७ ॥ पृषातक [मिलाये हुये दूध घी] प्रेषण नवीन हविः और हविः शेष के भोजन में जो मन्त्र है उसमें सब द्विज अधिकारी हैं ॥ ८ ॥ यदि ब्राह्मण समीप में न हों तो क्षत्रियादि पुरुष आप ही पृषातक को देखले और नवयज्ञ में भी हविः शेषः का भक्षण भी करे ॥ ९ ॥ फलों पत्तों वाली बेरिया की शाखा को फलवती कहते और सघन कंकड़ीली मट्टी जो शिला जैसी जम गई हो, जिस में बालू न हो, उसे शंका कहते हैं ॥१०॥ मणिक वा शिला नष्ट भ्रष्ट हो जावे तो उसी समय नया लाकर संस्कार करले किन्तु अगहन की पौर्णमासी की बाट न देखे ॥ ११ ॥ यदि किसी प्रकार सूतक आदि से श्रावणी का कर्म न हुआ हो तो बलि कर्म को छोड़ कर आग्रहायणी (अगहन शुदी १५) को सब कर्म करे ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वंस्वस्तरशायीस्यान्मासमर्द्धमथापिवा ।
सप्तरात्रंत्रिरात्रंवा एकांवासद्यएववा ॥१३॥
नोर्ध्वंमन्त्रप्रयोगःस्यान्नाग्न्यागारं नियम्यते ।
नाहतास्तरणंचैव नपार्श्वंचापिदक्षिणम् ॥ १४ ॥
दृढश्चेदाग्रहायण्यामावृत्यावापिकर्म्मणः ।
कुम्भौमन्त्रवदासिञ्चेत्प्रतिकुम्भमृचंपठेत् ॥ १५ ॥
अल्पानांयोविघातःस्यात् सबाधोबहुभिःस्मृतः ।
प्राणसम्मितइत्यादि वासिष्ठं बाधितंयथा ॥ १६ ॥
विरोधोयत्रवाक्यानां प्रामाण्यंतत्रभूयसाम् ।
तुल्यप्रमाणकत्वेतु न्यायएवंप्रकीर्तितः ॥ १७ ॥
त्रैयम्बकंकरतलमपूपामण्डकाःस्मृताः ।
पालाशागोलकाश्चैव लोहचूर्णंचचीवरम् ॥ १८ ॥
स्पृशन्ननामिकाग्रेण क्वचिदालोकयन्नपि ।
अनुमन्त्रणीयंसर्वत्र सदैवमनुमन्त्रयेत् ॥ १९ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ अष्टाविंशतितमः खण्डः॥ २८ ॥

फिर एक महीने वा पन्द्रह दिन वा सात दिन वा तीन दिन वा एक दिन अथवा उसी समय अपने २ गृह्यकल्प में कहे अनुसार स्वस्तरारोहण कर्म करें ॥ १३ ॥ फिर स्वस्तरारोहण के पीछे सोने में मन्त्र प्रयोग, अग्न्यागार के निकट सोने का नियम, अहतवस्त्र बिछाने का नियम और दहिने करवट से लेटने का नियम नहीं रक्खा जाता है ॥ १४ ॥ यदि मनुष्य मार्गशिर की पौर्णमासी को वार २ कर्म की आवृत्ति करने में समर्थ हो तो कुआ में से जल ला २ कर मट्टी के बड़े २ दो पात्रों में प्रत्येक वार मन्त्र पढ़ २ के जल भरे ॥१५॥ छोटे कर्मों का जो विघात (नाश) है उसे बहुत ऋषि बाध कहते हैं जैसे प्राण सम्मित (शक्ति के अनुसार) इत्यादि वशिष्ठ ऋषि का कहा विचार बाधित है ॥ १६ ॥ जहां वचनों का परस्पर विरोध हो वहां बहुत ऋषियों का वचन प्रमाण होता है और जहां दोनों विरुद्धों में तुल्य प्रमाण हों वहां यह आगे कहा निर्णय जानो ॥ १७ ॥ हाथ के तल को त्रैयंबक, अपूपों को मण्डक, ढाकों को गोलक और लोहे के चूर्ण को चीवर कहते हैं ॥ १८ ॥ अनामिका के अग्रभाग से अनुमन्त्रणीय वस्तु का सब अनुमन्त्रण के कामों में स्पर्श करता हुआ वा किसी कर्म में उसको देखता हुआ भी सदैव अनुमन्त्रण करे ॥ १९ ॥ यह २८ वां खण्ड पूरा हुआ ॥

अथ नवमःखण्डः। तत्र पशुकल्पः।

~~अथ नवमःखण्डः~~ पश्वादिनिरूपणम् ।

तूष्णींमिच्छाक्रमेणस्या द्रुपार्थेपार्णदारुणी ॥ १ ॥

सप्ततावन्मूर्धन्यानि तथास्तनचतुष्टयम् ।

नाभिःश्रोणिरपानंच गोस्रोतांसिचतुर्दश ॥ २ ॥

क्षुरोमांसावदानार्थः कृत्स्नास्विष्टकृदावृता ।

वपामादायजुहुयात्तत्र मन्त्रंसमापयेत् ॥ ३ ॥

हृज्जिह्वाक्रोडमस्थीनि यकृद्वृक्कौगुदंस्तनाः ।

श्रोणिस्कन्धसटापार्श्वं पश्वङ्गानिप्रचक्षते ॥ ४ ॥

एकादशानामङ्गानामवदानानिसंख्यया ।

पार्श्वस्यवृक्कसक्थ्नोश्च द्वित्वादाहुश्चतुर्दश ॥ ५ ॥

चरितार्थाश्रुतिःकार्या यस्मादप्यनुकल्पशः ।

अतोऽष्टर्चेनहोमःस्याच्छागपक्षेचरावपि ॥ ६ ॥

अवदानानियावन्ति क्रियेरन्प्रस्तरेपशोः ।

तावतःपायसान्पिण्डान्पश्वभावेपिकारयेत् ॥ ७ ॥

यज्ञ सम्बन्धी पशु के इन्द्रिय वा छिद्रों का दाभ के कूंचे से अपनी इच्छानुकूल क्रम से (तूष्णीं) विना मन्त्र पढ़े प्रक्षालन करे। और वपाश्रपणी नामक यज्ञपात्र [जिस पर रख के वपा पकाई जाती है] ढांक के पत्तों की वा काष्ठ की होनी चाहिये गौ के शरीर में चौदह छिद्र होते हैं सात तो ऊपर, शिर में चार ४ थन, नाभी, (डोंडी) योनी और गुदा ॥२॥ मांस के टुकड़े करने के लिये छुरा होता है । प्रधान के बाद क्रम से वपा को लेकर सब स्विष्टकृत् पर्यन्त होम करे और उस समय मन्त्र को समाप्त करे अर्थात् प्रधान याग और स्विष्टकृत् दोनों मन्त्रों को मिलाकर एकही वार वपा की आहुति देवे ॥ ३ ॥ हृदय, जिह्वा, गोड़, हड्डी, जिगर, वृषण, गुदा, स्तन, श्रोणी, कन्धे और सटा (ठाठे) के दोनों पार्श्व ये पशु के अंग कहाते हैं ॥ ४ ॥ इन ग्यारह अङ्गों के अवदान नाम टुकड़े लेखानुसार गिनती मे होते हैं और पार्श्व, वृषण [अण्डकोश] और सक्थी जांघ, ये दो २ होते हैं इस से पशु के चौदह अङ्ग कहे हैं ॥ ५ ॥ प्रत्येक कल्पोक्त कामों में श्रुति को चरितार्थ करना चाहिये ॥ इस से बकरा और चरु दोनों पक्षों में आठ ऋचाओं से होम करना चाहिये ॥६॥ यज्ञ पशु के अंगों के जितने अवदान नाम टुकड़े, प्रस्तर नामक कुशों पर कर के रक्खे जांय उतने ही पायस नाम खीर के पिण्ड पशु न हो, तब भी करावे ॥७॥

ऊहनव्यञ्जनार्थंतु पश्वभावेऽपिपायसम् ।
सद्रवंश्रपयेत्तद्वदन्वष्टक्येऽपिकर्म्मणि ॥ ८ ॥
प्राधान्यंपिण्डदानस्य केचिदाहुर्मनीषिणः ।
गयादौपिण्डमात्रस्य दीयमानत्वदर्शनात् ॥ ९ ॥
भोजनस्यप्रधानत्वं वदन्त्यन्येमहर्षयः ।
ब्राह्मणस्यपरीक्षायां महायत्नप्रदर्शनात् ॥ १० ॥
आमश्राद्धविधानस्य विनापिण्डैःक्रियाविधिः ।
तदालभ्याप्यनध्यायविधानश्रवणादपि ॥ ११ ॥
विद्वन्मतमुपादाय ममाप्येतद्धृदिस्थितम् ।
प्राधान्यमुभयोर्यस्मात्तस्मादेषसमुच्चयः ॥ १२ ॥
प्राचीनावीतिनाकार्य्यं पित्र्येषुप्रोक्षणंपशोः ।
दक्षिणोद्वासनान्तंच चरोर्निर्वपणादिकम् ॥ १३ ॥
सन्नयश्चावदानानां प्रधानार्थोनहीतरः ।

ऊहन और व्यञ्जन कर्म के लिये भी पशु के अभाव में पायस ही करे और अन्वष्टका श्राद्ध कर्म में उस पायस को सद्रव नाम ढीला पकावे ॥ ८ ॥ ऋषि कोई विद्वान् ऋषि श्राद्ध में पिण्डदान को ही प्रधान कहते हैं क्योंकि गया आदि तीर्थों में केवल पिण्ड ही दिया जाता है ॥ ९ ॥ और कोई ऋषि ब्राह्मणों को भोजन कराने को ही मुख्य कहते हैं क्योंकि ब्राह्मण की परीक्षा में मनु आदि धर्म शास्त्र में बहुत प्रयत्न किया देख जाता है ॥१०॥ अग्नि में न पकाये कन्द फलादि से होने वाले श्राद्ध का विधान यह है कि विना पिंड दिये ही कर्म करना श्रेष्ठ है। क्योंकि ब्राह्मण के मिलने पर भी अनध्याय की विधि शास्त्र से सुनी जातीहै ॥११॥ विद्वानों के मत को स्वीकार करके हमारे भी हृदय में यही निश्चय हुआ है कि जिस कारण दोनों की प्रधानता है इस से यह समुच्चय अर्थात् पिण्डदान और श्रेष्ठ ब्राह्मण को भोजन देना ये दोनों होने चाहिये ॥१२॥ पितृ कर्मों में पशु का प्रोक्षण (मन्त्रों से छिड़कना) अपसव्य होकर करे और चरु के लिये चावल ग्रहण करने से लेकर पका के उतारने पर्यन्त सब कृत्य अपसव्य होकर करे ॥ १३ ॥ चरु के अवदानों का सन्नय नाम संग्रह भी

प्रधानंहवनंचैव शेषंप्रकृतिवद्भवेत् ॥ १४ ॥
द्वीपमुन्नतमाख्यातं शादाचैवेष्टकास्मृता ।
कौलिनंसजलंप्रोक्तं दूरखातोदकोमरुः ॥ १५ ॥
द्वारंगवाक्षस्तम्भैः कर्दमभित्यन्तकोणवेधैश्च ।
नेष्टंवास्तुद्वारंविद्धमनाक्रान्तिमार्य्यैश्च ॥ १६ ॥
वशंगमावितिव्रीहींश्छंखश्चेतियवांस्तथा ।
असावित्यत्रनामोक्त्या जुहुयात्क्षिप्रहोमवत् ॥ १७ ॥
साक्षतंसुमनोयुक्तमुदकंदधिसंयुतम् ।
अर्घ्यंदधिमधुभ्यांच मधुपर्कोविधीयते ॥ १८ ॥
कांस्येनैवार्हणीयस्य निनयेदर्घ्यमञ्जलौ ।
कांस्यापिधानंकांस्यस्थं मधुपर्कंसमर्पयेत् ॥ १९ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ एकोनत्रिंशत्तमःखण्डः ॥ २९ ॥
इति कात्यायनविरचिते कर्मप्रदीपे तृतीयः प्रपाठकः ॥
समाप्ता चेयं कात्यायनसंहिता ॥ शुभंभूयात् ॥

प्रधान कृत्य है किन्तु अन्य कोई प्रधान नहीं। प्रधान तथा होम-शेष कर्म प्रकृति यज्ञ के समान होता है ॥ १४ ॥ ऊंचे को द्वीप कहते इष्टका ईंटो को शादा, जल सहित को कौलिन और जहां दूर खोदने से जल निकले उसे मरु (मारवाड़) कहते हैं ॥१५॥ ऐसा घर का द्वार इष्ट (अच्छा) नहीं होता जिस में गवाक्ष (खिड़की) या झरोखे तथा खम्भ न हों और (कर्दम) गारा की भीत जिस में हो, कोण का जिस में वेध हों अथवा जिस में सज्जन नहीं हैं ॥१६॥ (वशंगमौ०) इस मंत्र से व्रीहि और (शंखश्च) इस मंत्र से जौ का क्षिप्रहोम के समान होम करे परन्तु जो मंत्र में असौ पद है उसके स्थान में अपेक्षित का नाम बोले ॥१७॥ अक्षत, फूल, दही, जिसमें मिलाये हों ऐसा जल अर्घ देने के लिये अर्घ्य कहाता है और दही तथा मधु जिसमें मिलाये हों उसे मधुपर्क कहते हैं ॥ १८ ॥ जिस अपने पूजने योग्य को अर्घ देना हो उसकी अंजलि में कांसे के पात्र से अर्घ छोड़ें और कांसे के पात्र से ढके हुए कांसे के पात्र में रखकर मधुपर्क का समर्पण करे ॥ १९ ॥

यह २९ उन्तीशवां खण्ड पूरा हुआ ॥
और कात्यायन ऋषि के रचे कर्म प्रदीप में तीसरा प्रपाठक पूरा हुआ ॥
इति कात्यायनस्मृतिः समाप्ता ॥

श्रीगणेशायनमः। अथ बृहस्पतिस्मृतिप्रारम्भः॥

इष्ट्वाक्रतुशतंराजा समाप्तवरदक्षिणम्।
मघवावाग्विदांश्रेष्ठं पर्यपृच्छद्बृहस्पतिम्॥ १॥
भगवन्केनदानेन सर्वतःसुखमेधते।
यद्दत्तंयन्महार्घंच तन्मेब्रूहिमहत्तम?॥ २॥
एवमिन्द्रेणपृष्टोऽसौ देवदेवपुरोहितः।
वाचस्पतिर्महाप्राज्ञो बृहस्पतिरुवाचह॥ ३॥
सुवर्णदानंगोदानं भूमिदानंचवासव?।
एतत्प्रयच्छमानस्तु सर्वपापैःप्रमुच्यते॥ ४॥
सुवर्णरजतंवस्त्रं मणिरत्नंचवासव?।
सर्वमेवभवेद्दत्तं वसुधांयःप्रयच्छति॥ ५॥
फालकृष्टांमहींदत्त्वा सबीजांसस्यशालिनीम्।
यावत्सूर्यकरालोके तावत्स्वर्गेमहीयते॥ ६॥

श्रेष्ठ दक्षिणा जिन में दी हो ऐसे सौ यज्ञों को समाप्त करके राजा इन्द्र ने विद्वानों में श्रेष्ठ बृहस्पति जी से पूछा॥ १॥ कि हे भगवन्! किस दान से मनुष्य को सब ओर से सुख बढ़ता है। और जो २ वस्तु दिया जाय और जो सर्वोपरि बहु मूल्य हो उस दान को हे बड़ों में बड़े मुझ से कहो॥ २॥ इस प्रकार इन्द्र ने पूछा है जिनको ऐसे इन्द्र के पुरोहित और वाणी के पति और महान् विद्वान् बृहस्पति बोले कि॥ ३॥ हे इन्द्र! सुवर्ण, पृथ्वी, गौ इन को जो देता है वह सब पापों से छूट जाता है॥ ४॥ हे इन्द्र? जो मनुष्य पृथिवी का दान देता है उसने सुवर्ण, चांदी, वस्त्र, मणि, रत्न, इन सबका दान दिया जानो॥ ५॥ जो हल से जुती हो, जिसमें बीज बोया हो और जो हरे अन्न से शोभायमान हो, ऐसी पृथिवी को देनेवाला इतने काल तक स्वर्ग में वास करता है कि जब तक सूर्य का जगत् में प्रकाश है॥ ६॥

यत्किञ्चित्कुरुतेपापं पुरुषोवृत्तिकर्षितः ।
अपिगोचर्ममात्रेण भूमिदानेनशुद्ध्यति ॥ ७ ॥
दशहस्तेनदण्डेन त्रिंशद्दण्डानिवर्त्तनम् ।
दशतान्येवविस्तारो गोचर्मैतन्महाफलम् ॥ ८ ॥
सवृषंगोसहस्रन्तु यत्रतिष्ठत्यतन्द्रितम् ।
बालवत्साप्रसूतानां तद्गोचर्मइतिस्मृतम् ॥ ९ ॥
विप्रायदद्याच्चगुणान्विताय तपोनियुक्तायजितेन्द्रियाय।
यावन्महीतिष्ठतिसागरान्ता तावत्फलंतस्यभवेदनन्तम् ॥ १०॥
यथाबीजानिरोहन्ति प्रकीर्णानिमहीतले ।
एवंकामाः प्ररोहन्ति भूमिदानसमर्जिताः ॥ ११ ॥
यथाप्सुपतितःसद्यस्तैलबिन्दुःप्रसर्पति ।
एवंभूमिकृतंदानं सस्येसस्येप्ररोहति ॥ १२ ॥
अन्नदाःसुखिनोनित्यं वस्त्रदश्चैवरूपवान् ।
सनरस्सर्वदोभूप? योददातिवसुन्धराम् ॥ १३ ॥

आजीविका से दुःखी मनुष्य जो कुछ पाप करता है, वह गौ के चर्म की बराबर पृथिवी का दान देकर शुद्ध होजाता है ॥ ७ ॥ दश हाथ के दण्ड से तीस दण्ड भर जिस की लम्बाई और चौड़ाई हो यह महान् फल का देने वाला गोचर्म का नाप कहाता है ॥ ८ ॥ जितने भूभाग में हजार गौ और हजार बैल आनन्द से ठहर सकें तथा उन गौओं में जो व्यानी हों उन के बाल बछड़े भी जिस में आसकें उसे गोचर्म प्रमाण कहते हैं ॥ ९ ॥ जो इस पृथ्वी को ऐसे ब्राह्मण को देवे जो गुणी हो, तपस्वी हो, जितेन्द्रिय हो, उस पुरुष को, समुद्र पर्यन्त पृथ्वी जब तक रहेगी तब तक अनन्त फल होता है ॥ १० ॥ जैसे पृथ्वी पर बोये हुए बीज जमते हैं वैसे ही पृथ्वी के दान से कामनाओं की सिद्धियां बढ़ती हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! जैसे जल में पड़ी तेल की बूंद फैलती है ऐसे ही किया हुआ भूमि का दान शाख २ में जमता है ॥ १२ ॥ अन्न का दाता सदा सुखी, वस्त्र का दाता सुन्दर रूपवाला होता है और हे राजन् ! वह मनुष्य सब कुछ देने वाला होता है जो पृथ्वी को देता है ॥ १३ ॥

यथागौर्भरतेवत्सं क्षीरमुत्सृज्यक्षीरिणी ।
स्वयंदत्तासहस्राक्ष ? भूमिर्भरतिभूमिदम् ॥ १४ ॥
शंखम्भद्रासनंछत्रं चरस्थावरवारणाः ।
भूमिदानस्यपुण्यानि फलंस्वर्गःपुरन्दर ! ॥ १५ ॥
आदित्योवरुणोवन्हिर्ब्रह्मासोमोहुताशनः ।
शूलपाणिश्चभगवानभिनन्दतिभूमिदम् ॥ १६ ॥
आस्फोटयन्तिपितरः प्रहर्षन्तिपितामहाः ।
भूमिदाताकुलेजातः सचत्राताभविष्यति ॥ १७ ॥
त्रीण्याहुरतिदानानि गावःपृथ्वीसरस्वती ।
तारयन्तीहदातारं सर्वपापादसंशयम् ॥ १८ ॥
प्रावृतावस्त्रदायान्ति नग्नायान्तित्ववस्त्रदाः ।
तृप्तायान्त्यन्नदातारः क्षुधितायान्त्यनन्नदाः ॥ १९ ॥
काङ्क्षन्तिपितरःसर्वे नरकाद्भयभीरवः ।

जैसे दूध देती गौ दूध को छोड़कर बछड़े को संतुष्ट करती है हे इन्द्र ! ऐसे ही अपने हाथ से दी हुई पृथ्वी भी अपने दाता को पुष्ट सन्तुष्ट करती है ॥ १४ ॥ शंख, भद्रासन, (राजगद्दी) छाता, चर प्राणी, स्थावर वृक्षादि, उत्तम हाथी हे इन्द्र ! ये पृथ्वी के दान के पुण्य हैं और स्वर्ग फल है ॥ १५ ॥ सूर्य-वरुण, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, होम का अग्नि-और भगवान शिवजी ये पृथ्वी के दाता की प्रशंसा करते हैं ॥ १६ ॥

पृथिवी दाता के पितृ पितामह लोग अच्छे प्रकार आनन्द मनाते हैं कि हमारे कुल में पृथिवी दाता सन्तान जन्मा है वही हमारी रक्षा करने वाला होगा ॥ १७ ॥ गौ, पृथिवी और विद्या ये तीन सब से बड़े तथा श्रेष्ठ महादान हैं, ये तीनों दाता को निःसन्देह पापों से पार कर देते है ॥ १८ ॥ वस्त्र के दाता ढके हुये सुरक्षित, जिन्होंने वस्त्र नहीं दिये वे नंगे, अन्न के दाता तृप्त हुये और जिन्हों ने अन्न नहीं दिया वे भूखे आया करते हैं ॥ १९ ॥ नरक के भय से डरते हुये पितर यह इच्छा करते हैं कि जो पुत्र गया में आयगा

गयांयास्यतियःपुत्रः सनस्त्राताभविष्यति ॥ २० ॥
एष्टव्याबहवःपुत्रा यद्येकोपिगयांव्रजेत् ।
यजेतवाश्वमेधेन नीलंवावृषमुत्सृजेत् ॥ २१ ॥
लोहितोयस्तुवर्णेन पुच्छाग्रेयस्तुपाण्डुरः ।
श्वेतःखुरविषाणाभ्यां सनीलोवृषउच्यते ॥ २२ ॥
नीलःपाण्डुरलाङ्गूलस्तृणमुद्धरतेतुयः ।
षष्टिवर्षसहस्त्राणि पितरस्तेनतर्पिताः ॥ २३ ॥
यस्यशृङ्गगतंपङ्कं कूलात्तिष्ठतिचोद्धृतम् ।
पितरस्तस्यचाश्नन्ति सोमलोकंमहाद्युतिम् ॥ २४ ॥
पृथोर्यदोर्दिलीपस्य नृगस्यनहुषस्यच ।
अन्येषांचनरेन्द्राणां पुनरन्योभविष्यति ॥ २५ ॥
बहुभिर्वसुधादत्ता राजभिःसगरादिभिः ।
यस्ययस्ययथाभूमिस्तस्यतस्यतथाफलम् ॥ २६ ॥
यस्तु ब्रह्मघ्नःस्त्रीघ्नोवा यस्तुवैपितृघातकः ।

वही हमारी रक्षा करने वाला होगा ॥ २० ॥ मनुष्य बहुत से पुत्रों की इच्छा करे यदि उन में से एक भी गया को जाय व अश्वमेध यज्ञ करे वा नील बैल का वृषोत्सर्ग करे ॥ २१ ॥ नील बैल उस को कहते हैं जिस का रंग लाल हो, जो पूंछ के अग्रभाग में पीला हो और खुर तथा सींग जिस के सफेद हों ॥२२॥ नील जिसका रंग हो, पीली जिस की पूंछ हो और जो घास तृणों को उखाड़ २ के चरे, ऐसे बैल के उत्सर्ग से साठ हजार वर्ष तक पितर तृप्त होते हैं ॥ २३ ॥ नदी आदि के किनारे से उखाड़ा हुआ पंक (कीचड़) जिस के सींग पर लगा हो ऐसे बैल के उत्सर्ग कर्त्ता के पितर प्रकाशमान चन्द्रमा के लोक को भोगते हैं ॥ २४ ॥ राजा पृथु, यदु, दिलीप, नृग, नहुष, और अन्य राजाओं में से कोई राजा वह वृषोत्सर्ग करने वाला मरे पीछे फिर होता है ॥ २५ ॥ बहुत से सगर आदि राजाओं ने पृथिवी का दान किया जिस २ की जैसी २ पृथिवी दान हुई उस २ को वैसा २ ही फल हुआ ॥ २६ ॥ जो पुरुष ब्रह्म हत्यारा वा स्त्री को मारने वाला और पितृ घातक है वह पापी

गवांशतसहस्राणां हन्ताभवतिदुष्कृती ॥ २७ ॥
स्वदत्तांपरदत्तांवा योहरेतवसुन्धराम् ।
श्वविष्ठायांकृमिर्भूत्वा पितृभिःसहपच्यते ॥ २८ ॥
आक्षेप्ताचानुमन्ताच तमेवनरकंव्रजेत् ।
भूमिदोभूमिहर्ताच नापरंपुण्यपापयोः ॥ २९ ॥
ऊर्ध्वंचाधोवतिष्ठेत यावदाभूतसंप्लवम् ।
अग्नेरपत्यंप्रथमंसुवर्णं भूर्वैष्णवीसूर्यसुताश्चगावः ॥३०॥
लोकास्त्रयस्तेनभवन्तिदत्ता यःकाञ्चनंगांचमहींचदद्यात् ।
षडशीतिसहस्राणां योजनानांवसुन्धरा ॥ ३१ ॥
स्वयंदत्तातुसर्वत्र सर्वकामप्रदायिनी ।
भूमिंयःप्रतिगृह्णाति भूमिंयश्चप्रयच्छति ॥ ३२ ॥
उभौतौपुण्यकर्माणौ नियतंस्वर्गगामिनौ ।
सर्वेषामेवदानानामेकजन्मानुगंफलम् ॥ ३३ ॥
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगंफलम् ।

लक्ष गौओं को मारने वाला होता है ॥२७॥ जो पुरुष अपनी वा पराई दी हुई पृथ्वी को छीन लेता है वह कुत्ते की विष्ठा में कीड़ा होकर पितरों सहित पकाया जाता है ॥ २८ ॥ आक्षेप करने और अनुमति देने वाला एक ही नरक में जाते हैं । पृथ्वी का दाता और पृथ्वी का हरने वाला अपने २ पुण्य वा पाप से ॥ २९ ॥ क्रम से स्वर्ग में वा नरक में प्रलय पर्यन्त ठहरते हैं। अग्नि का प्रथम पुत्र सुवर्ण है, पृथ्वी विष्णु की पत्नी है और सूर्य की पुत्री गौ है॥३०॥ जो पुरुष सुवर्ण गौ और पृथ्वी को दान में देता है उस ने मानो तीनों लोक दिये। छयासी हजार योजन पृथिवी का विस्तार है ॥३१॥ उस को जिस ने स्वयं दिया है वह पृथ्वी उसकी सब कामना पूरण करती है। पृथ्वी का दान जो लेता है और जो पृथ्वी को देता है॥३२॥ वे दोनों पुण्यात्मा निरन्तर स्वर्ग में जाते हैं। अन्य सब दानों का फल एक ही जन्म में मिलता है ॥ ३३ ॥ सुवर्ण, पृथ्वी, गौ, इनका फल सात जन्म तक मिलता है। जो पुरुष यह समझता हुआ

योनहिंस्यादहंह्यात्मा भूतग्रामञ्चतुर्विधम् ॥ ३४ ॥
तस्यदेहाद्वियुक्तस्य भयन्नास्तिकदाचन ।
अन्यायेनहृताभूमिर्यैर्नरैरपहारिता ॥ ३५ ॥
हरन्तोहारयन्तश्च हन्युस्तेसप्तमंकुलम् ।
हरतेहारयेद्यस्तु मन्दबुद्धिस्तमोवृतः ॥ ३६ ॥
सबद्धोवारुणैःपाशैस्तिर्यग्योनिषुजायते ।
अश्रुभिःपतितैस्तेषां दानानामपकीर्तनम् ॥ ३७ ॥
ब्राह्मणस्यहृतेक्षेत्रे हन्तित्रिपुरुषंकुलम् ।
वापीकूपसहस्रेण अश्वमेधशतेनच ॥ ३८ ॥
गवांकोटिप्रदानेन भूमिहर्तानशुद्ध्यति ।
गामेकांस्वर्णमेकंवा भूमेरप्यर्धमंगुलम् ॥ ३९ ॥
हरन्नरकमायाति यावदाभूतसंप्लवम् ।
हुतंदत्तंतपोधीतं यत्किंचिद्धर्मसंचितम् ॥ ४० ॥
अर्धांगुलस्यसीमायां हरणेनप्रणश्यति ।

कि चार प्रकार के भूत समुदाय में मैं एक ही आत्मा विद्यमान हूं ऐसे विचार से चार प्रकार (अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज) के भूतों को दुःख नहीं देता ॥३४॥ देह से जुदे होने पर उस जीवात्मा को कभी भी भय नहीं है। जिन मनुष्यों ने अन्याय से पृथ्वी छीनी वा छिनवाई है ॥ ३५ ॥ वे दोनों छीनने और छिनवाने वाले अपने सात कुलों को नष्ट करते हैं। जो मन्द बुद्धि और अज्ञानी पृथिवी छीनते हुए को सिखाया करता है ॥ ३६ ॥ वह वरुण के फांसों से बंधा हुआ पशु आदि तिर्यग्योनि में पैदा होता है। जिनकी भूमि आदि छीनी गयीं उनके आंसू पड़ने से दाता का दान भी नष्ट हो जाता है ॥ ३७ ॥ ब्राह्मण के खेत को जो छीन लेता है उसकी तीन पीढ़ी नष्ट होती हैं। हजार बावड़ी तथा कूपों के बनाने से, सौ अश्वमेध यज्ञ करने से ॥ ३८ ॥ तथा एक किरोड़ गौओं के देने से भी पृथ्वी को हरने वाला शुद्ध नहीं होता। एक गौ एक सोना (अशरफी) और पृथ्वी का आधा अंगुल इनके ॥ ३९ ॥ हरलेने से प्रलय तक नरक में जाता है। होम, दान, तप, वेद का पढ़ना और जो कुछ पुण्य धर्म से संचित किया है वह सब ॥ ४० ॥ आधा

गोवीथींग्रामरथ्यांच श्मशानंगोपितंतथा ॥ ४१ ॥
संपीड्यनरकंयाति यावदाभूतसंप्लवम् ।
ऊषरेनिर्जलेस्थाने प्रास्तंसस्यंविसर्जयेत् ॥ ४२ ॥
जलाधारश्चकर्तव्यो व्यासस्यवचनंयथा ।
पञ्चकन्यानृतेहन्ति दशहन्तिगवानृते ॥ ४३ ॥
शतमश्वानृतेहन्ति सहस्रंपुरुषानृते ।
हन्तिजातानजातांश्च हिरण्यार्थेनृतंवदन् ॥ ४४ ॥
सर्वंभूम्यनृतेहन्ति मास्मभूम्यनृतंवदीः ।
ब्रह्मस्वेनरतिंकुर्यात्प्राणैःकण्ठगतैरपि ॥ ४५ ॥
अनौषधमभैषज्यं विषमेतद्धलाहलम् ।
नविषंविषमित्याहुर्ब्रह्मस्वंविषमुच्यते ॥ ४६ ॥
विषमेकाकिनंहन्ति ब्रह्मस्वंपुत्रपौत्रकम् ।

अंगुल भूमि की सीमा हरने से नष्ट हो जाता है-गौओं का मार्ग, ग्राम की गली, श्मशान और गोपित (रखाया हुआ खेत) ॥ ४१ ॥ इनके बिगाड़ने से प्रलय तक नरक में जाता है। ऊषर और जहां जल न हो वहां खेत न बोवे ॥४२॥ व्यास जी के वचन के अनुसार कूपादि जलाशय खेत भरने आदि के लिये करना चाहिये। कन्या के निमित्त झूठ बोलने में पांच को, गौ के निमित्त झूठ बोलने में दश को ॥ ४३ ॥ घोड़े के निमित्त मिथ्या बोलने में सौ को, पुरुष के निमित्त झूठ बोलने में हज़ार को, सुवर्ण के निमित्त झूठ बोलने में जो पैदा हुए हैं तथा जो पैदा होंगे उन सब को ॥ ४४ ॥ और पृथ्वी के निमित्त झूठ बोलने में सब को मारता है इससे पृथ्वी के निमित्त झूठ मत बोलो। चाहैं प्राण कंठ में आजांय, तो भी ब्राह्मण के धन से प्रीति न करै अर्थात् लेने की इच्छा न करे ॥ ४५ ॥ यह ब्राह्मण का धन लेलेना हलाहल विष है, जिसकी औषधि वा चिकित्सा नहीं है। क्योंकि बुद्धिमान् लोग कहते हैं कि विष, विष नहीं है किन्तु ब्राह्मण का धन मारलेना सर्वोपरि विष है ॥४६॥

क्योंकि विष एकको ही मारता है परन्तु ब्राह्मण का धन छीन लेना पुत्र पौत्रों को भी मारता है। लोहे तथा पत्थर का चूर्ण और विष इन को

लोहचूर्णाश्मचूर्णंच विषञ्चजरयेन्नरः ॥ ४७ ॥
ब्रह्मस्वंत्रिषुलोकेषु कःपुमान्जरयिष्यति ।
मन्युप्रहरणाविप्रा राजानःशस्त्रपाणयः ॥ ४८ ॥
शस्त्रमेकाकिनंहन्ति ब्रह्ममन्युःकुलत्रयम् ।
मन्युप्रहरणाविप्राश्चक्रप्रहरणोहरिः ॥ ४९ ॥
चक्रात्तीव्रतरोमन्युस्तस्माद्विप्रन्नकोपयेत् ।
अग्निदग्धाःप्ररोहन्ति सूर्यदग्धास्तथैवच ॥ ५० ॥
मन्युदग्धस्यविप्राणामङ्कुरोनप्ररोहति ।
तेजसाग्निश्चदहति सूर्योदहतिरश्मिना ॥ ५१ ॥
राजादहतिदण्डेन विप्रोदहतिमन्युना ।
ब्रह्मस्वेनतुयत्सौख्यं देवस्वेनतुयारतिः ॥ ५२ ॥
तद्धनंकुलनाशाय भवत्यात्मविनाशनम् ।
ब्रह्मस्वंब्रह्महत्याच दरिद्रस्यचयद्धनम् ॥ ५३ ॥
गुरुमित्रहिरण्यंच स्वर्गस्थमपिपीडयेत् ।

भी मनुष्य पचा सकता है ॥४७॥ पर तीनों लोकों में ऐसा कोई पुरुष नहीं जो ब्राह्मण के धन को पचासके। ब्राह्मणों का शस्त्र क्रोध है, राजाओं के हाथ में शस्त्र है ॥ ४ ॥ वह हाथ का शस्त्र एक को ही मारता है और ब्राह्मण का क्रोध तीन कुल को नष्ट करता है। ब्राह्मणों का प्रहार (शस्त्र) क्रोध और विष्णु का प्रहार चक्र है ॥ ४९ ॥ चक्र से क्रोध बड़ा पैना है, इससे ब्राह्मण को कुपित न करे वा न करावे अग्नि और सूर्य के जले भी जम आते हैं ॥ ५० ॥ और ब्राह्मणों के क्रोध से दग्ध हुओं का अङ्कुर भी नहीं जमता, अग्नि अपने तेज से और सूर्य अपनी किरणों से दग्ध करते हैं ॥५१॥ राजा दण्ड से और ब्राह्मण क्रोध से दग्ध करता है। ब्राह्मण के धन से जो सुख भोग होता, देवता के धन से जो रति (क्रीड़ा) होती है ॥ ५२ ॥ वह धन, कुल और आत्मा को नष्ट करता है। ब्राह्मण का धन ब्राह्मण की हत्या और दरिद्र का जो धन ॥५३॥ गुरु और मित्र का सुवर्ण, ये स्वर्ग में रहने वाले को भी पीड़ित करते हैं।

ब्रह्मस्वेनतुयच्छिद्रं तच्छिद्रंनप्ररोहति ॥ ५४ ॥
प्रच्छादयतितच्छिद्रमन्यत्रतुविसर्पति ।
ब्रह्मस्वेनतुपुष्टानिसाधनानिबलानिच ॥ ५५ ॥
संग्रामेतानिलीयन्ते सिकतासुयथोदकम् ।
श्रोत्रियायकुलीनाय दरिद्रायचवासव ! ॥ ५६ ॥
संतुष्टायविनीताय सर्वभूतहितायच ।
वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणांचसंयमः ॥ ५७ ॥
ईदृशायसुरश्रेष्ठ ! यद्दत्तंहितदक्षयम् ।
आमपात्रेयथान्यस्तं क्षीरंदधिघृतंमधु ॥ ५८ ॥
विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्चपात्रंविनश्यति ।
एवंगांचहिरण्यंच वस्त्रमन्नंमहींतिलान् ॥ ५९ ॥
अविद्वान्प्रतिगृह्णाति भस्मीभवतिकाष्ठवत् ।
यस्यचैवगृहेमूर्खो दूरेचापिबहुश्रुतः ॥ ६० ॥
बहुश्रुतायदातव्यं नास्तिमूर्खेव्यतिक्रमः ।

और ब्राह्मण के धन को मार लेने से जो छिद्र नाम दोष लगता है वह नहीं मिटता ॥ ५४॥ यदि कोई उस छिद्र को छिपाता है तो भी वह छिपता नहीं। ब्राह्मण के धन से पुष्ट हुए अङ्गरूप साधन और सेना ॥ ५५ ॥ संग्राम में ऐसे लीन होजाते हैं जैसे रेत (वालू) में जल । हे इन्द्र ! कुलीन और दरिद्री वेद पाठी ब्राह्मण को ॥ ५६॥ जो सन्तोषी, नम्र, और सब प्राणियों का हितकारी हो, जो वेद का अभ्यासी हो, तपस्वी हो और इन्द्रियों का जीतने वाला हो ॥ ५७ ॥ हे देवताओं में उत्तम इन्द्र ! जो ऐसे ब्राह्मण को दिया जाय वह दान अक्षय पुण्यवाला होता है । कच्चे मट्टी के पात्र में रक्खा दूध, दही, घी सहत ॥५८॥ जैसे पात्र की दुर्बलता से नष्ट होता है और वह पात्र भी नष्ट हो जाता है । इसी प्रकार गौ, सुवर्ण, वस्त्र, अन्न, पृथिवी, तिल इन को ॥ ५९ ॥ जो मूर्ख ब्राह्मण दान लेता है वह काष्ठ के समान भस्म होता है। जिस पुरुष के घर में मूर्ख ब्राह्मण हो और बहुश्रुत (पण्डित) दूर हो ॥६०॥ तो पण्डितको दान देवे किन्तु मूर्ख का उल्लंघन न माने। क्योंकि पण्डित को देने से हे इन्द्र !

कुलंतारयतेधीरः सप्तसप्तचवासव ! ॥ ६१ ॥
यस्तडागंनवंकुर्यात्पुराणंवापिखानयेत् ।
ससर्वंकुलमुद्धृत्य स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ६२ ॥
वापीकूपतडागानि उद्यानोपवनानिच ।
पुनःसंस्कारकर्ताच लभतेमौलिकंफलम् ॥ ६३ ॥
निदाघकालेपानीयं यस्यतिष्ठतिवासव ! ।
सदुर्गंविषमंकृत्स्नं नकदाचिदवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥
एकाहंतुस्थितंतोयं पृथिव्यांराजसत्तम ! ।
कुलानितारयेत्तस्य सप्तसप्तपराण्यपि ॥ ६५ ॥
दीपालोकप्रदानेन वपुष्मान्सभवेन्नरः ।
प्रेक्षणीयप्रदानेन स्मृतिंमेधांचविन्दति ॥ ६६ ॥
कृत्वापिपापकर्माणि योदद्यादन्नमर्थिने ।
ब्राह्मणायविशेषेण नसपापेनलिप्यते ॥ ६७ ॥
भूमिर्गावस्तथादाराः प्रसह्यह्रियतेयदा ।
नचावेदयतेयस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ६८ ॥

वह अपने इक्कीस कुलों को तारता है ॥ ६१ ॥ जो पुरुष नया तालाब बनवावे वा पुराने को खुदवावे, वह सब कुल का उद्धार करके स्वर्ग में पूजा जाता है ॥६२॥ बावड़ी, कूप, तड़ाग, बाग, और उपवन (छोटा बगीचा) इन का जो फिर संस्कार (मरम्मत) करता कराता है वह नये बनाने के फल को प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ ग्रीष्म ऋतुकाल में जिस के यहां जल रहता है वह कठोर विषम दुःख को कभी नहीं भोगता है ॥ ६४ ॥ जिस की खोदी हुई पृथिवी में एक दिन भी जल ठहरता है । हे राजाओं में उत्तम इन्द्र ! उस के अगले पिछले सात २ कुलों को तारता है ॥ ६५ ॥ दीपक के देने से सुन्दर शरीर वाला मनुष्य होता है और दर्शनीय वस्तु दान से स्मृति और बुद्धि को प्राप्त होता है॥६६॥

निन्दित पाप कर्म करके भी जो अभ्यागत वा भिक्षुक को और विशेष कर ब्राह्मण को अन्न देता है, वह पाप से दूषित नहीं होता ॥ ६७ ॥ जो पुरुष बल पूर्वक पृथिवी, गौ और स्त्री इन को बिन कहे हर लेता है उस को ब्रह्महत्यारा कहते हैं ॥ ६८ ॥

निवेदितश्चराजावै ब्राह्मणैर्मन्युपीडितैः ।
ननिवारयतेयस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ६९ ॥
उपस्थितेविवाहेच यज्ञेदानेचवासव ! ।
मोहाच्चरतिविघ्नंयः समृतोजायतेक्रमिः ॥ ७० ॥
धनंफलतिदानेन जीवितंजीवरक्षणात् ।
रूपमारोग्यमैश्वर्यमहिंसाफलमश्नुते ॥ ७१ ॥
फलमूलाशनात्पूजां स्वर्गस्सत्येनलभ्यते ।
प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्वंचसुखमश्नुते ॥ ७२ ॥
गवाढ्यःशक्रदीक्षायाः स्वर्गगामीतृणाशनः ।
स्त्रियस्त्रिषवणस्नायी वायुंपीत्वाक्रतुंलभेत् ॥ ७३ ॥
नित्यस्नायीभवेदर्कं संध्येद्वेचजपन्द्विजः ।
नवंसाधयतेराज्यं नाकपृष्ठमनाशके ॥ ७४ ॥
अग्निप्रवेशेनियतं ब्रह्मलोकेमहीयते ।

क्रोध से दुःखित पीड़ित ब्राह्मणों की प्रार्थना करने पर भी जो राजा उस हरने वाले को नहीं रोकता उस को ब्रह्महत्यारा कहते हैं ॥ ६९ ॥ हे इन्द्र ! विवाह, दान, यज्ञ इन के समय में जो मोह से विघ्न करता है वह मरने के अनन्तर कीड़ा होता है ॥७०॥ दान से धन और जीवों की रक्षा करने से जीवन फलता (बढ़ता) है। और रूप, आरोग्य, ऐश्वर्य, ये जो हिंसा न करने के फल हैं, इन को भोगता है ॥ ७१ ॥ फल और मूल खाने से मनुष्य पूजा प्रतिष्ठा को और सत्य से स्वर्ग को प्राप्त होता है। और मरण के निमित्त तीर्थ आदि पर बैठने से राज्य और संपूर्ण सुखों को भोगता है ॥७२॥ हे इन्द्र ! दीक्षा का उपदेश लेने से मनुष्य गौओं से युक्त होता और जो तृणों को खाता है वह स्वर्ग को प्राप्त होता है। तीन काल में जो स्नान करता है वह स्त्रियों को प्राप्त होता है। और वायु भक्षण करता हुआ तप करने वाला यज्ञों के फल को प्राप्त होता है ॥ ७३ ॥ जो मनुष्य नित्य स्नान करता और दोनों संध्याओं में सूर्य नारायण को जपता है वह नये राज्य और सदैव स्वर्गवास को प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥ जो अग्नि में प्रवेश करता है वह ब्रह्मलोक में पूजा

रसनाप्रतिसंहारे पशून्पुत्रांश्चविन्दति ॥ ७५ ॥
नाकेचिरंसवसते उपवासीचयोभवेत् ।
सततंचैकशायीयः सलभेदीप्सितांगतिम् ॥ ७६ ॥
वीरासनंवीरशय्यां वीरस्थानमुपाश्रितः ।
अक्षय्यास्तस्यलोकाःस्युः सर्वकामागमास्तथा ॥ ७७ ॥
उपवासंचदीक्षांच अभिषेकंचवासव ! ।
कृत्वाद्वादशवर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते ॥ ७८ ॥
अधीत्यसर्ववेदान्वै सद्योदुःखात्प्रमुच्यते ।
पावनंचरतेधर्मं स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ७९ ॥
बृहस्पतिमतंपुण्यं येपठन्तिद्विजातयः ।
चत्वारितेषांवर्द्धन्तेआयुर्विद्यायशोबलम् ॥ ८० ॥
इति श्रीबृहस्पतिप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥

जाता है, जो अपनी जिह्वा को वश में रखता है वह पशु और पुत्रों को प्राप्त होता है ॥ ७५ ॥ जो उपवास व्रत करता है वह चिरकाल तक स्वर्ग में वसता जो निरन्तर एक शय्या पर सोता अर्थात् एक ही स्त्री को भोगता है वह जिस गति को चाहता उसी को प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥ जो वीरासन, वीर शय्या, और वीरस्थान का आश्रय लेता है उसके लिये सब लोक और सब काम अ-क्षय प्राप्त होते हैं ॥ ७७ ॥ उपवास, दीक्षा. और अभिषेक इनको जो बारह १२ वर्ष तक निरन्तर करता है वह वीरस्थान के फल से अधिक उत्तम फल पाता है ॥ ७८ ॥ सब वेदों को पढ़कर शीघ्र ही दुःख से छूटता, पवित्र धर्म क-रता और स्वर्ग लोक में पुजता है ॥ ७९ ॥ बृहस्पति के पवित्र मत को जो द्विजाती लोग पढ़ते हैं उनकी अवस्था विद्या, यश, और बल,ये चारों बढ़ते हैं॥८०॥

यह बृहस्पति का रचा धर्मशास्त्र समाप्त हुआ ॥ १० ॥

——⊂:*:⊃——

श्रीगणेशायनमः ॥

अथ पाराशरस्मृतिप्रारम्भः

अथातोहिमशैलाग्रे देवदारुवनालये ।
व्यासमेकाग्रमासीनमपृच्छन्नृषयःपुरा ॥ १ ॥
मानुषाणांहितंधर्मं वर्तमानेकलौयुगे ।
शौचाचारंयथावच्च वदसत्यवतीसुत ! ॥ २ ॥
तत्श्रुत्वाऋषिवाक्यंतु सशिष्योऽग्न्यर्कसन्निभः ।
प्रत्युवाचमहातेजाः श्रुतिस्मृतिविशारदः ॥ ३ ॥
नचाहंसर्वतत्वज्ञः कथंधर्मंवदाम्यहम् ।
अस्मत्पितैवप्रष्टव्य इतिव्यासःसुतोऽवदत् ॥ ४ ॥
ततस्तेऋषयःसर्वे धर्मतत्त्वार्थकाङ्क्षिणः ।
ऋषिंव्यासंपुरस्कृत्य गतावदरिकाश्रमम् ॥ ५ ॥
नानापुष्पलताकीर्णं फलपुष्पैरलङ्कृतम् ।

देवदारु वृक्षों के वन में हिमालय पर्वत के ऊपर एकाग्र बैठे हुए व्यास जी से पूर्वकाल में ऋषियों ने पूछा ॥ १ ॥ हे सत्यवती के पुत्र व्यासजी ! वर्तमान कलियुग में मनुष्यों का हितकारी धर्म शौच और आचार हमसे कहो ॥२॥ उक्त ऋषियों के वाक्य को सुनकर शिष्यों सहित अग्नि और सूर्य के तुल्य बड़े तेज वाले श्रुति और स्मृति में चतुर व्यासजी ऋषियों के प्रति बोले ॥ ३ ॥ कि हम सब तत्वों को नहीं जानते तब कैसे धर्म को कहें । हमारे पिता को ही यह विषय पूछो यह पराशर के पुत्र व्यास ने कहा ॥४॥ तिसके अनन्तर धर्म के तत्त्व को चाहते हुए वे सब ऋषि लोग व्यास ऋषि को आगे लेकर वदरिकाश्रम (वद्रीनारायण) को गये ॥ ५ ॥ जो अनेक प्रकार के पुष्प लताओं

नदीप्रस्रवणोपेतं पुण्यतीर्थोपशोभितम् ॥ ६ ॥
मृगपक्षिनिनादाढ्यं देवतायतनावृतम् ।
यक्षगन्धर्वसिद्धैश्च नृत्यगीतैरलङ्कृतम् ॥ ७ ॥
तस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रंपराशरम् ।
सुखासीनंमहातेजामुनिमुख्यगणावृतम् ॥ ८ ॥
कृताञ्जलिपुटोभूत्वा व्यासस्तुऋषिभिःसह ।
प्रदक्षिणाभिवादैश्च स्तुतिभिःसमपूजयत् ॥ ९ ॥
अथसन्तुष्टहृदयः पराशरमहामुनिः ।
आहसुस्वागतंब्रूहीत्यासीनोमुनिपुंगवः ॥ १० ॥
व्यासःसुस्वागतंयेच ऋषयश्चसमन्ततः ।
कुशलंसम्यगित्युक्त्वा व्यासःपृच्छत्यनन्तरम् ॥
यदिजानासिमेभक्तिं स्नेहाद्वाभक्तवत्सल ! ॥ ११ ॥
धर्मंकथयमेतात ! अनुग्राह्योह्यहंतव ।
श्रुतामेमानवाधर्मा वासिष्ठाःकाश्यपास्तथा ॥ १२ ॥
गार्गेयागौतमीयाश्च तथाचौशनसाःस्मृताः ॥

से युक्त, फल फूलों से शोभायमान नदियों तथा झरनों से युक्त, पवित्र तीर्थों से जिस की शोभा है ॥ ६ ॥ मृग तथा पक्षियों के सुहावने शब्दों से युक्त, जिस में देवालय विद्यमान हैं, और जो यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, तथा अप्सरादि के नृत्य और गीतों से शोभा है ॥ ७ ॥ ऐसे बदरिकाश्रम में ऋषियों की सभा के बीच सुखपूर्वक बैठे तथा बड़े २ नामी अनेक मुनीश्वर जिन के चारों ओर बैठे हैं ऐसे शक्ति के पुत्र पाराशर का ॥८॥ ऋषियों सहित बड़े तेजस्वी व्यास जी ने हाथ जोड़ कर परिक्रमा अभिवादन और स्तुतिओं से पूजन किया॥९॥ इस के अनन्तर मन से संतुष्ट हुए मुनियों में उत्तम पराशर महामुनि व्यास जी से बोले कि तुम भली प्रकार स्वागत (आनन्द से आना) कहो ॥ १० ॥ तब व्यास जी तथा अन्य ऋषियों ने कुशल पूर्वक आना कह कर पीछे व्यास जी ने यह पूछा कि हे भक्तवत्सल ! जो आप मेरी भक्ति को जानते हो तो भक्ति से वा स्नेह से ॥ ११ ॥ हे पितः मुझ से धर्म कहिये क्योंकि मैं आप के अनुग्रह करने योग्य हूं—मैंने मनु, वसिष्ठ, कश्यप, ॥ १२ ॥ गर्ग, गौतम, उशना,

अत्रेर्विष्णोश्चसांवर्ता दाक्षाआङ्गिरसास्तथा ॥ १३ ॥
शातातपाश्चहारीता याज्ञवल्क्यकृताश्चये ।
आपस्तम्बकृताधर्माः शंखस्यलिखितस्यच ॥ १४ ॥
कात्यायनकृताश्चैव तथाप्राचेतसान्मुनेः ।
श्रुताह्येतेभवत्प्रोक्ताः श्रौतार्थामेनविस्मृताः ॥ १५ ॥
अस्मिन्मन्वन्तरेधर्माः कृतत्रेतादिकेयुगे ।
सर्वेधर्माःकृतेजाताः सर्वेनष्टाःकलौयुगे ॥ १६ ॥
चातुर्वर्ण्यसमाचारं किंचित्साधारणंवद ।
चतुर्णामपिवर्णानां कर्त्तव्यंधर्मकोविदैः ॥ १७ ॥
ब्रूहिधर्मस्वरूपज्ञ सूक्ष्मंस्थूलञ्चविस्तरात् ।
व्यासवाक्यावसानेतु मुनिमुख्यःपराशरः ॥ १८ ॥
धर्मस्यनिर्णयंप्राह सूक्ष्मंस्थूलञ्चविस्तरात् ।
शृणुपुत्रप्रवक्ष्यामि शृण्वन्तुमुनयस्तथा ।
कल्पेकल्पे क्षयोत्पत्तौ ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ २० ॥
श्रुतिस्मृतिसदाचार निर्णेतारश्चसर्वदा ।

अत्रि, विष्णु, संवर्त, दक्ष, अंगिरा, ॥ १३ ॥ शातातप, हारीत, याज्ञवल्क्य, आपस्तम्ब, शंख, लिखित, ॥ १४ ॥ कात्यायन प्रचेता इन सब ऋषि मुनियों के कहे बनाये धर्मशास्त्र मैंने सुने हैं तथा आप के कहे वेद के अर्थ भी हम ने सुने और उन को हम भूले भी नहीं हैं ॥ १५ ॥ इस मन्वन्तर तथा कृत त्रेता आदि युगों में जो धर्म किये गये थे वे सब कलियुग में नष्ट हो गये ॥ १६ ॥ धर्म का मर्म जानने वालों को जो चारो वर्णों को कर्त्तव्य है वह चारों वर्णों का किंचित्साधारण आचार कहिये ॥ १७ ॥ हे धर्म के स्वरूप को जानने वाले! सूक्ष्म और स्थूल आचार को विस्तार से कहिये। इस प्रकार व्यास जी के वचनों के पूर्ण होने पर मुनियों में मुख्य पराशर जी ने ॥ १८ ॥ सूक्ष्म और स्थूल धर्म का निर्णय विस्तार से कहा ॥ १९ ॥ हे पुत्र! व्यास जी तथा अन्य मुनियो! तुम सुनो कल्प २ में प्रलय तथा सृष्टि होने पर ब्रह्मा विष्णु और शिव ये तीनों ॥२०॥ श्रुति, स्मृति, और सदाचार के निर्णय करने वाले

नकश्चिद्वेदकर्त्ताच वेदस्मर्त्ताचतुर्मुखः ॥ २१ ॥
तथैवधर्मान्स्मरति मनुःकल्पान्तरान्तरे ।
अन्येकृतयुगेधर्मा स्त्रेतायांद्वापरेपरे ॥ २२ ॥
अन्येकलियुगेनॄणां युगरूपाऽनुसारतः ।
तपःपरंकृतयुगे त्रेतायांज्ञानमुच्यते ॥ २३
द्वापरेयज्ञमेवाहु र्दानमेकंकलौयुगे ।
कृतेतुमानवाधर्मास्त्रेतायांगौतमाःस्मृताः ॥ २४ ॥
द्वापरेशंखलिखिताः कलौपाराशराःस्मृताः ।
त्यजेद्देशंकृतयुगे त्रेतायांग्राममुत्सृजेत् ॥ २५ ॥
द्वापरेकुलमेकन्तु कर्त्तारंतुकलौयुगे ।
कृतेसंभाषणादेव त्रेतायांचैवदर्शनात् ॥ २६ ॥
द्वापरेत्वन्नमादाय कलौपततिकर्मणा ।
कृतेतात्क्षणिकःशापस्त्रेतायांदशभिर्दिनैः ॥२७॥

हैं। परन्तु वेद का बनाने वाला कोई नहीं है (इसी से वेद अपौरुषेय कहाता है) किन्तु चतुर्मुख ब्रह्मा जी पूर्व कल्प के अभ्यास किये वेद का सर्गारम्भ में स्मरण करने वाले हैं ॥२१॥ उसी प्रकार मनु जी कल्प २ में तथा प्रत्येक मन्वन्तर में धर्मों का स्मरण करते हैं। सतयुग, त्रेता, और द्वापर में मनुष्यों का धर्म भिन्न २ हो जाता बदलता रहता है ॥२२॥ युग के अनुसार कलियुग में अन्य धर्म हो जाता है। सतयुग में तप, त्रेता में ज्ञान, ॥२३॥ द्वापर में यज्ञ और कलियुग में एक दान को ही मुख्य कहते हैं (इसी बात को चाहे यों कहो वा मानो कि तप ज्ञान यज्ञ और दान ये धर्म के चार पग हैं उन में से सद्युगी तप को, त्रेता-युगी ज्ञान को, द्वापरयुगी यज्ञ को और कलियुगी धर्मात्मा दान को मुख्य कर्तव्य मानते हैं) सतयुग में मनु के कहे त्रेता में गौतम के कहे धर्म विशेष कर चल सकते हैं ॥२४॥ द्वापर में शंख और लिखित के तथा कलियुग में पराशर के कहे धर्म मानने उचित हैं। सतयुग में धर्महीन देश को और त्रेता में धर्मविरोधी ग्राम को ॥२५॥ द्वापर में धर्म विरोधी कुल को और कलियुग में अधर्म करने वाले को त्याग दो और सतयुग में अधर्मी के साथ संभाषण करने से, त्रेता में उस के देखने से ॥२६॥ द्वापर में अन्न लेकर और कलियुग में कर्म करने से पतित होता है। सतयुग में उसी समय और त्रेता में दशदिन में शाप लगता ॥२७॥

द्वापरेचैकमासेन कलौसंवत्सरेणतु ।
अभिगम्यकृतेदानं त्रेतास्वाहूयदीयते ॥ २८ ॥
द्वापरेयाचमानाय सेवयादीयतेकलौ ।
अभिगम्योत्तमंदानमाहूयैवतुमध्यमम् ॥ २९ ॥
अधमंयाच्यमानंस्यात् सेवादानन्तुनिष्फलम् ।
जितोधर्मोह्यधर्मेणसत्यंचैवानृतेनच ॥ ३० ॥
जिताश्चौरैश्चराजानः स्त्रीभिश्चपुरुषाजिताः ।
सीदन्तिचाऽग्निहोत्राणि गुरुपूजाप्रणश्यति ॥३१॥
कुमार्यश्चप्रसूयन्तेतस्मिन्कलियुगेसदा ।
कृतेत्वस्थिगताःप्राणास्त्रेतायांमांसमाश्रिताः ॥३२॥
द्वापरेरुधिरंयावत्कलौत्वन्नादिषुस्थिताः ।
युगेयुगेचयेधर्मास्तत्रतत्रचयेद्विजाः ॥ ३३ ॥
तेषांनिन्दानकर्तव्या युगरूपाहितेद्विजाः ।
युगेयुगेतुसामर्थ्यंशेषंमुनिविभाषितम् ॥ ३४ ॥

द्वापर में एक महीने में और कलियुग में एक वर्ष में शाप लगता है सतयुग में ब्राह्मण के समीप जाकर त्रेता में ब्राह्मण को अपने घर पर बुलाकर ॥२८॥ द्वापर में मांगने पर और कलियुग में जो सेवा करै उसे दान देते हैं अर्थात् दान के ये चार दर्जे हैं । ब्राह्मण के समीप जाकर दान देना सद्युगी सर्वोत्तम है । समीप जाकर दिया जो दान है वह उत्तम और बुलाकर जो दिया वह मध्यम ॥ २९ ॥ मांगने वाले को जो दिया वह अधम और सेवक को जो दिया वह निष्फल है । कलियुग में अधर्म से धर्म, झूठ से सत्य ॥ ३० ॥ चौरों से राजा और स्त्रियों से पुरुष जीत लिये जाते अर्थात् दब जाते हैं। अग्निहोत्र बन्द हो जाते गुरु पूजा नष्ट हो जाती है ॥ ३१ ॥ कुमारी कन्याओं के सन्तान होते यह काम सदैव प्रत्येक कलियुग में होते हैं । सतयुग में प्राण हाड़ों में रहते त्रेता में मांस में ॥ ३२ ॥ द्वापर में रुधिर में और कलियुग में अन्न आदि में रहते हैं जिस २ युग में जो २ धर्म होते हैं और उस २ युग में जो द्विज हैं ॥३३॥ उनकी निन्दा न करनी चाहिये क्योंकि वे युग के अनुसारी हैं। और युग २ में जो सामर्थ्य मुनियों ने कहा है ॥ ३४ ॥

पराशरेणचाप्युक्तं प्रायश्चित्तंविधीयते ।
अहमद्यैवतत्सर्वमनुस्मृत्यब्रवीमिवः ॥ ३५ ॥
चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृण्वन्तुऋषिपुङ्गवाः ।
पराशरमतंपुण्यं पवित्रंपापनाशनम् ॥ ३६ ॥
चिन्तितंब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनायच ।
चतुर्णामपिवर्णाना माचारोधर्मपालकः ॥ ३७ ॥
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मःपराङ्मुखः ।
षट्कर्माभिरतोनित्यं देवतातिथिपूजकः ।
हुतशेषन्तुभुञ्जानो ब्राह्मणोनावसीदति ॥ ३८ ॥
सन्ध्यास्नानञ्जपोहोमः स्वाध्यायोदेवतार्चनम् ।
आतिथ्यंवैश्वदेवंच षट्कर्माणिदिनेदिने ॥ ३९ ॥
प्रियोवायदिवाद्वेष्यो मूर्खःपण्डितएववा ।
संप्राप्तोवैश्वदेवान्ते सोऽतिथिःस्वर्गसंक्रमः ॥ ४० ॥
दूराच्चोपगतंश्रान्तं वैश्वदेवउपस्थितम् ॥

पराशर जी ने भी जो कहा है उसके अनुसार प्रायश्चित्त का विधान किया जाता है । उस सब को अभी स्मरण करके हम कहते हैं ॥ ३५ ॥ हे ऋषियों में उत्तम पुरुषो चारो वर्णो का आचरण सुनो क्योंकि पराशर का मत पुण्य का उत्पादक पवित्र तथा पापों का नाशक है ॥ ३६ ॥ जो मत ब्राह्मणों के लिये तथा धर्म की स्थिति के लिये विचारा है—चारो वर्णों का जो आचार है वही धर्म का रक्षक जानो ॥ ३७ ॥ जिन का देह आचार से भ्रष्ट है उन से धर्म भी पराङ्मुख होता पीठ फेर लेता है । जो छः कर्मों में नित्य तत्पर है तथा देवता और अतिथि का पूजन करता है और जो होम करके शेष बचे अन्न को खाता है वह ब्राह्मण दुःखी नहीं होता ॥ ३८ ॥ सन्ध्या स्नान जप होम विधि पूर्वक वेदाध्ययन और देवताओं का पूजन अतिथि की सेवा तथा वैश्वदेव—ये छः कर्म प्रति दिन करे । सन्ध्या स्नान जप ये तीनों अङ्गाङ्गिरूप से एक हैं ॥ ३९ ॥ पियारा हो वा शत्रु हो मूर्ख हो वा पण्डित हो जो वैश्वदेव के अन्त में प्राप्त हो वह अतिथि स्वर्ग में पहुंचाने वाला है ॥४०॥ जो दूर से आया हो थक गया हो वैश्वदेव के समय उपस्थित हो उस को

अतिथिंतंविजानीयान्नातिथिःपूर्वमागतः ॥ ४१ ॥
नैकग्रामीणमतिथिं विप्रंसाङ्गमिकंतथा ।
अनित्यंह्यागतोयस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ ४२ ॥
अतिथिंतत्रसंप्राप्तं पूजयेत्स्वागतादिना ।
तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेनच ॥ ४३ ॥
श्रद्धयाचान्नदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेणच ।
गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद्गृही ॥ ४४ ॥
अतिथिर्यस्यभग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्त्तते ।
पितरस्तस्यनाश्नन्ति दशवर्षाणिपञ्चच ॥ ४५ ॥
काष्ठभारसहस्रेण घृतकुंभशतेनच ।
अतिथिर्यस्यभग्नाशस्तस्यहोमोनिरर्थकः ॥ ४६ ॥
सुक्षेत्रेवापयेद्बीजं सुपात्रेनिःक्षिपेद्धनम् ।
सुक्षेत्रेचसुपात्रेच ह्युप्तंदत्तंननश्यति ॥ ४७ ॥
नपृच्छेद्गोत्रचरणे नस्वाऽध्यायंश्रुतंतथा ।
हृदयेकल्पयेद्देवं सर्वदेवमयोहिसः ॥ ४८ ॥

अतिथि जाने वैश्वदेव से पहिले आये ठहरे हुए को नहीं ॥ ४१ ॥ एक गांव में रहने वाले ब्राह्मण को तथा मेली ब्राह्मण को अतिथि कभी न माने जिस से नित्य जो न आवे उसे ही अतिथि कहा जाता है ॥४२॥ उस समय (वैश्वदेव में) आये अतिथि का (स्वागत) आदि से पूजन करे । तथा वैसे ही आसन देने-पग धोने ॥४३॥ श्रद्धा से अन्न देने प्रिय तथा मधुर प्रश्न और उत्तरों से जाते के पीछे चलने से गृहस्थी पुरुष अतिथि को प्रसन्न करे ॥४४॥ जिस के घर से निराश हो कर अतिथि चला जाता है उस के यहां पितर पन्द्रह वर्ष तक नहीं खाते ॥४५॥ काष्ठ के हजार बोझों से सौ घी के घड़ों से भी उसका होम वृथा है जिस के यहां से अतिथि निराश होकर लौट जाता है ॥४६॥ अच्छे खेत में बीज बोवे और सुपात्र को धन देवे क्योंकि अच्छे खेत में बोया बीज और सुपात्र को दिया दान नष्ट नहीं होता ॥ ४७ ॥ गोत्र वा चरण (नाम कठ कौथुमादि) ब्रह्मयज्ञ और वेदाध्ययन इनको भी न पूछे अपने हृदय में अतिथि को देवता समझे क्योंकि अतिथि सब देवताओं का रूप है ॥ ४८ ॥

अपूर्वःसुव्रतोविप्रोह्यपूर्वश्चातिथिस्तथा ।
वेदाभ्यासरतोनित्यं त्रयोऽपूर्वादिनेदिने ॥ ४९ ॥
वैश्वदेवेतुसंप्राप्ते भिक्षुकेगृहमागते ।
उद्धृत्यवैश्वदेवार्थं भिक्षांदत्वाविसर्जयेत् ॥ ५० ॥
यतिश्चब्रह्मचारीच पक्वान्नस्वामिनावुभौ ।
तयोरन्नमदत्वाच भुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत् ॥ ५१ ॥
दद्याच्चभिक्षात्रितयं परिब्राट्ब्रह्मचारिणाम् ।
इच्छयाचनतोदद्याद्विभवेसत्यवारितम् ॥ ५२ ॥
यतिहस्तेजलंदद्याद्भैक्षंदद्यात्पुनर्जलम् ।
तद्भैक्षंमेरुणातुल्यं तज्जलंसागरोपमम् ॥ ५३ ॥
यस्यछत्रंहयश्चैवकुंजरारोहमृद्धिमत् ।
ऐंद्रस्थानमुपासीत तस्मात्तंनविचारयेत् ॥ ५४ ॥
वैश्वदेवकृतंपापं शक्तोभिक्षुर्व्यपोहितुम् ।
नहिभिक्षुकृतंदोषं वैश्वदेवोव्यपोहति ॥ ५५ ॥

अच्छे व्रत नियम वाला ब्राह्मण—और ऐसा ही अतिथि और नित्य २ वेद का पढ़ने वाला ये तीनों प्रति दिन भी अपूर्व (नवीन) ही समझे जाते हैं ॥४९॥ वैश्वदेव के समय यदि भिक्षुक घर में आवे तो वैश्वदेव के लिये पृथक् अन्न निकाल कर भिक्षा देके विदा करे ॥ ५० ॥ यति संन्यासी और ब्रह्मचारी ये दोनों पक्के अन्न के अधिकारी हैं उन दोनों को विना अन्न दिये जो भोजन करे वह चांद्रयण व्रत का प्रायश्चित्ती होता है ॥ ५१ ॥ संन्यासी और ब्रह्मचारियों को तीन खुराक तक भिक्षा देवे यदि धन होय तो अपनी इच्छा से और भी देवे ॥ ५२ ॥ पहिले संन्यासी के हाथ में जल दे फिर अन्न दे पीछे भोजनान्त में फिर जल देवे वह भिक्षा मेरु पर्वत के और वह जल समुद्र के समान दान है ॥ ५३ ॥ जिसके छत्र—घोड़ा और चढ़ने के लिये उत्तम हाथी है वह धनी इन्द्र के स्थान का भोग करता है तिससे संन्यासी के देने में वह भी विचार न करे ॥ ५४ ॥ संन्यासी का सत्कार अवश्य करे वैश्व देव के भूल जाने के दोष को भिक्षु दूर कर सकता है पर भिक्षु के लौट जाने से हुए पाप को वैश्वदेव दूर नहीं कर सकता ॥ ५५ ॥

अकृत्वावैश्वदेवंतु भुञ्जतेयेद्विजाधमाः ।
सर्वेतेनिष्फलाज्ञेयाः पतन्तिनरकेऽशुचौ ॥ ५६ ॥
वैश्वदेवविहीनाये आतिथ्येनबहिष्कृताः ।
सर्वेतेनरकंयान्ति काकयोनिंव्रजन्तिच ॥ ५७ ॥
शिरोवेष्ट्यतुयोभुङ्क्ते दक्षिणाभिमुखस्तुयः ।
वामपादेकरंन्यस्य तद्वैरक्षांसिभुञ्जते ॥ ५८ ॥
यतयेकाञ्चनंदत्त्वा ताम्बूलंब्रह्मचारिणे ।
चोरेभ्योप्यभयंदत्त्वा दातापिनरकंव्रजेत् ॥ ५९ ॥
शुक्लवस्त्रंचयानंच ताम्बूलंधातुमेवच ।
प्रतिगृह्यकुलंहन्यात्प्रतिगृह्णातियस्यच ॥ ६० ॥
चोरोवायदिचाण्डालः शत्रुर्वापितृघातकः ।
वैश्वदेवेतुसंप्राप्ते सोऽतिथिःस्वर्गसंक्रमः ॥ ६१ ॥
नगृह्णातितुयोविप्रो ह्यतिथिंवेदपारगम् ।
अदत्त्वान्नमात्रंतु भुक्त्वाभुङ्क्तेतुकिल्विषम् ॥ ६२ ॥

जो द्विजों में नीच पुरुष वैश्वदेव कर्म किये बिना भोजन करते हैं उनका सब जीवन निष्फल है और वे अशुद्ध नरक में पड़ते हैं ॥ ५६ ॥ जो वैश्वदेव से रहित हुए अतिथि का सत्कार नहीं करते वे सब नरक में जाते हैं तद्-नन्तर कौवे की योनि को प्राप्त होते हैं ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य शिर में पगड़ी आदि बांध कर वा दक्षिण को मुख करके भोजन करता है तथा बांये पग पर हाथ रख कर खाता है उस अन्न को राक्षस खा जाते हैं ॥ ५८ ॥ संन्यासी को सुवर्ण ब्रह्मचारियों को पान और चोरों को अभय दान देकर दाता भी नरक में जाता है ॥ ५९ ॥ सफेद वस्त्र, सवारी, पान, और धातु इनका दान लेने वाला और देने वाला अपने कुल का नाश करता है ॥ ६० ॥ चोर हो था चाण्डाल हो और चाहे पिता को मारने वाला शत्रु भी हो परन्तु वैश्व-देव के समय आया हो तो वह अतिथि स्वर्ग में ले जाने वाला है ॥६१॥ जो ब्राह्मण वेद का पार जानने वाले अतिथि का नहीं ग्रहण करता अर्थात् ऐसे अतिथि का पूजन नहीं करता वह अतिथि को नहीं दिये अन्न जलै को खाकर पाप का भागी होता है ॥ ६२ ॥

ब्राह्मणस्यमुखंक्षेत्रं निरुदकमकण्टकम् ।
वापयेत्सर्वबीजानि साकृषिःसर्वकामिका ॥ ६३ ॥
सुक्षेत्रेवापयेद्बीजं सुपात्रेनिःक्षिपेद्धनम् ।
सुक्षेत्रेचसुपात्रेच ह्युप्तंदत्तन्ननश्यति ॥ ६४ ॥
अव्रताह्यनधीयाना यत्रभैक्षचराद्विजाः ।
तंग्रामंदण्डयेद्राजा चौरभक्तप्रदोहिसः ॥ ६५ ॥
क्षत्रियोहिप्रजारक्षन् शस्त्रपाणिःप्रचण्डवत् ।
निर्जित्यपरसैन्यानि क्षितिंधर्मेणपालयेत् ॥ ६६ ॥
लक्ष्मीःकुलक्रमायाता भूषणोल्लिखिताऽपिवा ।
खड्गेनाक्रम्यभुञ्जीत वीरभोग्यावसुन्धरा ॥ ६७ ॥
पुष्पं पुष्पंविचिन्वीत मूलच्छेदंनकारयेत् ।
मालाकारइवाऽरामे नयथाङ्गारकारकः ॥ ६८ ॥
लाभकर्मतथारत्नं गवांचपरिपालनम् ।

ब्राह्मण का मुख कांटे रहित और जल विहीन सर्वोत्तम खेत है उसी में सब बीज बोवे क्योंकि वही खेती सब कामनाओं को देने वाली है ॥६३॥ अच्छे खेत में बीज बोवे और सुपात्र को धन देवे। अच्छे खेत में बोया अन्न और सुपात्र को दिया धन नष्ट नहीं होता ॥६४॥ जिस ग्राम में व्रतों को न करते और वेद को न पढ़े हुए ब्राह्मण भिक्षा मांगते हैं उस ग्राम को राजा दण्ड दे क्योंकि वह ग्राम चोरों को भाग देता है ॥६५॥ क्रोधी के तुल्य शस्त्र को हाथ में लिये प्रजा की रक्षा करता हुआ क्षत्रिय शत्रुओं की सेनाओं को जीत कर धर्मानुकूल प्रजा की पालना करै ॥६६॥ क्योंकि लक्ष्मी कुछ कुल परम्परा से नहीं आती और भूषणों से भी नहीं जानी जाती किन्तु अपने शस्त्रबल से शत्रुओं को दबा कर पृथ्वी को भोगे क्योंकि पृथ्वी शूरवीरों के भोगने योग्य है ॥ ६७ ॥ राजा को चाहिये कि जैसे माली बगीचे के वृक्षों की रक्षा रखता हुआ फूल २ तोड़ लेता है वैसे ही प्रजा की रक्षा करता हुआ राजा उस से धनादि लिया करे किन्तु कोइला बनाने वाला जैसे जड़ से वृक्षों को काट डालता है वैसे प्रजा की जड़ न बिगाड़े ॥ ६८ ॥ लाभ का काम, रत्नादि की परीक्षा तथा बेंचना, गौओं की अच्छी रक्षा, खेती क-

कृषिकर्मचवाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥ ६९ ॥
शूद्राणांद्विजशुश्रूषा परमोधर्मउच्यते ।
अन्यथाकुरुतेकिंचित्तद्भवेत्तस्यनिष्फलम् ॥ ७० ॥
लवणंमधुतैलंच दधितक्रंघृतंपयः ।
नदुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात्सर्वेषुविक्रयम् ॥ ७१ ॥
विक्रीणन्मद्यमांसानि ह्यभक्ष्यस्यचभक्षणम् ।
कुर्वन्नगम्यागमनं शूद्रःपतितितत्क्षणात् ॥ ७२ ॥
कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेनच ।
वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्यनरकंध्रुवम् ॥ ७३ ॥
इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
अतःपरंगृहस्थस्य धर्माचारंकलौयुगे ।
धर्मसाधारणंशक्यं चातुर्वर्ण्याश्रमागतम् ॥ १ ॥
संप्रवक्ष्याम्यहंपूर्वं पराशरवचोयथा ।
षट्कर्मसहितोविप्रः कृषिकर्माणिकारयेत् ॥२॥

रना व्यापार ये वैश्य की वृत्ति (जीविका) कही हैं ॥ ६९ ॥ और शूद्रों का परम धर्म द्विजों की सेवा करना कहा है । इस से भिन्न जो कुछ धर्मसम्बन्धी कृत्य शूद्र करता है वह उस का निष्फल है ॥ ७० ॥ लवण, सहत, तेल, दही, मठा, घी, और दूध ये शूद्रों के दूषित नहीं है इन को शूद्र सब जातियों में बेंचे ॥ ७१ ॥ मदिरा और मांस को बेचता, अभक्ष्य का भक्षण करता और गमन करने के अयोग्य ब्राह्मणी आदि स्त्री के संग गमन करके शूद्र उसी क्षण में पतित हो जाता है ॥ ७२ ॥ कपिला गौ का दूध पीने, ब्राह्मणी के संग गमन करने, और वेद के अक्षरों का विचार करने से शूद्र को निश्चय नरक होता है ॥ ७३ ॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे १ अध्यायः ॥

इस के अनन्तर कलियुग में गृहस्थ का धर्म आचार और चारों वर्णों तथा आश्रमों का यथाशक्ति साधारण धर्म जो है ॥ १ ॥ उस को हम पहिले पराशर के वचनानुसार कहेंगे । छः कर्मों सहित ब्राह्मण खेती के काम भी करावे ॥२॥

क्षुधितंतृषितंश्रान्तं बलीवर्द्दंनयोजयेत् ।
हीनाङ्गंव्याधितंक्लीबं वृषंविप्रोनवाहयेत् ॥३॥
स्थिराङ्गंनीरुजंतृप्तं सुनर्द्दंषण्ढवर्जितम् ।
वाहयेद्दिवसस्यार्द्धं पश्चात्स्नानंसमाचरेत् ॥४॥
जपंदेवार्चनंहोमं स्वाध्यायंसाङ्गमभ्यसेत् ।
एकद्वित्रिचतुर्विप्रान् भोजयेत्स्नातकान्द्विजः ॥५॥
स्वयंकृष्टेतथाक्षेत्रेधान्यैश्चस्वयमर्जितैः ।
निर्वपेत्पञ्चयज्ञांश्च क्रतुदीक्षांचकारयेत् ॥६॥
तिलारसानविक्रेया विक्रेयाधान्यतत्समाः ।
विप्रस्यैवंविधावृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रयः ॥७॥
ब्राह्मणस्तुकृषिंकृत्वामहादोषमवाप्नुयात् ।
अष्टागवंधर्म्यहलं षड्गवंवृत्तिलक्षणम् ॥८॥
चतुर्गवंनृशंसानां द्विगवंगोजिघांसिनाम् ।
द्विगवंवाहयेत्पादं मध्यान्हंतुचतुर्गवम् ॥९॥

ऐसे बैल को न जुतवावे जो भूखा प्यासा थका किसी अंग से हीन रोगी—और नपुंसक हो ॥३॥ जो स्थिरांग (जिस के अंग सब पुष्ट हों) रोगरहित—तृप्त खूब शब्द करता हो—जो बधिया न किया गया हो—ऐसे बैल को आधे दिन जुतवावे और पीछे स्नान करे ॥४॥ जप देवताओं की पूजा होम और छः अङ्गों सहित वेद का पाठ इन का अभ्यास करे और एक, दो, तीन, वा चार ब्राह्मणों (जो ब्रह्मचर्य समाप्त करके गृहाश्रम में आये हों उन्हीं) को भोजन करावे ॥५॥ आप जोते खेत में और आप ही पैदा किये अन्नों से पंच यज्ञ करे और यज्ञ की दीक्षा भी करावे ॥६॥ तिल तथा छः रसों को न बेचै। अन्न और जो अन्न के समान हैं उन को, और तृण, काठ आदि को बेचै। ब्राह्मण की यह जीविका वैश्यवृत्तियों में है ॥७॥ जो ब्राह्मण खेती करे तो महादोष को प्राप्त हो—आठ जिसमें बैल हों वह हल धर्म का है छः जिस में हों वह मध्यम जीविका के लिये है ॥८॥ चार जिस में बैल हों वह हिंसकों का है और जिस में दो बैल हों वह हल गोहत्यारे के समान है। दो बैल वाले हल को चौथाई दिन जोते चार बैल के हल को मध्यान्ह तक जोते ॥९॥

षड्गवंतुत्रियामाहेऽष्टभिःपूर्णंतुवाहयेत् ।
नयातिनरकेष्वेवं वर्त्तमानस्तुवैद्विजः ॥१०॥
दानंदद्याच्चवैतेषां प्रशस्तंस्वर्गसाधनम् ।
संवत्सरेणयत्पापं मत्स्यघातीसमाप्नुयात् ॥११॥
अयोमुखेनकाष्ठेन तदेकाहेनलाङ्गली ।
पाशकोमत्स्यघातीच व्याधःशाकुनिकस्तथा ॥ १२ ॥
अदाताकर्षकश्चैव पञ्चैतेसमभागिनः ।
कण्डनीपेषणीचुल्ही उदकुम्भीचमार्जनी ॥ १३ ॥
पञ्चसूनागृहस्थस्य अहन्यहनिवर्तते ।
वैश्वदेवोबलिर्भिक्षा गोग्रासोहन्तकारकः ॥ १४ ॥
गृहस्थःप्रत्यहंकुर्यात्सूनादोषैर्नलिप्यते ।
वृक्षान्छित्वामहींभित्त्वा हत्वाचकृमिकीटकान् ॥ १५ ॥
कर्षकःखलुयज्ञेन सर्वपापैःप्रमुच्यते ।

छः बैलों के हल को दिन के तीन पहर और आठ बैल के हल को सब दिन जोते ऐसे वर्तता हुआ द्विज नरक में नहीं जाता॥१०॥ स्वर्ग का उत्तम साधन दान ब्राह्मणों को ही देवे। मच्छियों को मारने वाला एक वर्ष में जिस पाप का भागी होता है ॥११॥ लोहा है मुख में जिसके ऐसे काठ (हल) से हल वाला ब्राह्मण एक दिन में उस पापका भोगने वाला होता है। १-पाशक (फांसी देके मारने वाला) २-मच्छियों का मारने वाला, ३-हिरणादि को मारने वाला वधिक ४-पक्षियों को पकड़ने वाला ॥ १२ ॥ तथा पांचवां जो दान न दे और खेती करने वाला हो-ये पांचो एकही प्रकार के समान पाप भागी हैं। ओखली, चक्की, चूल्हा, जल के घड़े, मार्जनी (बुहारी) ॥१३॥ ये पांच हत्या गृहस्थ पुरुष को नित्य २ लगती हैं। वैश्वदेव (देवयज्ञ) बलि (भूतयज्ञ) भिक्षा देना, गोग्रास, और हंतकार नाम अतिथियज्ञ ॥ १४ ॥ इन पांचों को जो गृहस्थी प्रति दिन करता है वह पूर्वोक्त पांच हत्याओं के दोष से लिप्त नहीं होता। वृक्षों को काटने, पृथ्वी के खोदने, कृमि और कीड़ों के मारने से जो पाप खेती में लगता है ॥ १५ ॥ खेती करने वाला यज्ञ करने से उन सब पापों से

योनदद्याद्द्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः ॥ १६ ॥
सचौरःसचपापिष्ठो ब्रह्मघ्नंतंविनिर्दिशेत् ।
राज्ञेदत्वातुषड्भागं देवानांचैकविंशकम् ॥ १७ ॥
विप्राणांत्रिंशकंभागं कृषिकर्त्तानलिप्यते ।
क्षत्रियोपिकृषिंकृत्वा देवान्विप्रांश्चपूजयेत् ॥ १८ ॥
वैश्यःशूद्रस्तथाकुर्यात्कृषिवाणिज्यशिल्पकम् ।
विकर्मकुर्वतेशूद्रा द्विजशुश्रूषयोज्झिताः ॥ १९ ॥
भवन्त्यल्पायुषस्तेवै निरयंयान्त्यसंशयम् ।
चतुर्णामपिवर्णाना मेषधर्मःसनातनः ॥ २० ॥
इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
अतःशुद्धिंप्रवक्ष्यामि जननेमरणेतथा ।
दिनत्रयेणशुद्ध्यन्ति ब्राह्मणाःप्रेतसूतके ॥ १ ॥
क्षत्रियोद्वादशाहेन वैश्यःपञ्चदशाहकैः ।
शूद्रःशुद्ध्यतिमासेन पराशरवचोयथा ॥ २ ॥
उपासनेतुविप्राणामङ्गशुद्धिश्चजायते ।

छूट जाता है। जिसके अन्न की राशि हुई हो और वह समीप में आये ब्राह्मणों को न दे तो ॥ १६ ॥ वह चौर और पापी है उसे ब्रह्महत्यारा कहते हैं। छठा भाग राजा को और इक्कीसवां भाग देवताओं को ॥ १७ ॥ तीशवां भाग ब्राह्मणों को जो देता है वह खेती के दोष से लिप्त नहीं होता। क्षत्रिय भी खेती करे तो देवता और ब्राह्मणों की पूजा करे ॥ १८ ॥ तिसी प्रकार वैश्य और शूद्र भी खेती वाणिज्य (व्यापार) और कारीगरी—इनको करें। द्विजों की सेवा को छोड़कर शूद्र लोग जो कर्म करते हैं वह खोटा काम है ॥ १९ ॥ और वे शूद्र थोड़ी अवस्था वाले होते हैं और नरक में जाते हैं इसमें संशय नहीं चारों वर्णों का यह सनातन धर्म है ॥ २० ॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे २ अध्यायः ॥

अब जन्म और मरण समय में शुद्धि को कहते हैं। मरने के सूतक में मध्यकोटि के धर्मनिष्ठ ब्राह्मण तीन दिन में शुद्ध होते हैं ॥ १ ॥ क्षत्रिय बारह दिन में वैश्य पन्द्रह दिन में शूद्र एक महीने में पाराशर के वचनानुसार शुद्ध होते हैं ॥ २ ॥ ब्राह्मणों की सेवा करने से सेवक का देह शुद्ध

ब्राह्मणानांप्रसूतौतु देहस्पर्शोविधीयते ॥ ३ ॥
जातेविप्रोदशाहेन द्वादशाहेनभूमिपः ।
वैश्यःपञ्चदशाहेन शूद्रोमासेनशुद्ध्यति ॥ ४ ॥
एकाहाच्छुद्ध्यतेविप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः ।
त्र्यहात्केवलवेदस्तु द्विहीनोदशभिर्दिनैः ॥ ५ ॥
जन्मकर्मपरिभ्रष्टः संध्योपासनवर्जितः ।
नामधारकविप्रस्तु दशाहंसूतकीभवेत् ॥ ६ ॥
अजागावोमहिष्यश्च ब्राह्मणीनवसूतिका ।
दशरात्रेणसंशुद्ध्येद् भूमिस्थंचनवोदकम् ॥ ७ ॥
एकपिण्डास्तुदायादाः पृथग्दारनिकेतनाः ।
जन्मन्यपिविपत्तौच तेषांतत्सूतकंभवेत् ॥ ८ ॥
उभयत्रदशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ।
दानंप्रतिग्रहोहोमः स्वाध्यायश्चनिवर्त्तते ॥ ९ ॥

हो जाता है। और जन्म सूतक में शूद्र को ब्राह्मण के देह का स्पर्श कहा है अर्थात् शूद्र के यहां होमादि से शुद्धि नहीं है। किन्तु शुद्धि के दिन पूरे हों तब स्नानादि करके ब्राह्मणों के चरणस्पर्श करके शूद्र शुद्ध होते हैं॥ ३ ॥ जन्म सूतक में ब्राह्मण दशदिन में, क्षत्री बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में, शूद्र एक महीने में शुद्ध होते हैं ॥ ४ ॥ अग्निहोत्र और वेदपाठ दोनों धर्म कृत्य यथोक्त करने वाला ब्राह्मण एक दिन में, केवल वेदपाठी तीन दिन में और जो इन दोनों से हीन हो वह ब्राह्मण दश दिन में शुद्ध होता है ॥५॥ द्वितीय जन्म से जातकर्मादि संस्कार तथा कर्म से हीन-और संध्योपासन जो न करता हो ऐसा जो नाम धारने वाला ब्राह्मण वह दश दिन के सूतक का भागी होता है ॥६॥ बकरी-गौ-भैंस-नवसूतिका (जिस के प्रथम ही सन्तान हुआ हो) ऐसी ब्राह्मणी और पृथ्वी पर ठहरा जल ये दश दिन में शुद्ध होते हैं ॥ ७ ॥ जो पिता के अंश के भागी हैं एक मा बाप से उत्पन्न हुए जिन के पृथक् २ स्त्री और घर हैं जन्म और मरण का सूतक उन सब को होता है॥८॥ दोनों प्रकार के सूतकों में सूतक वालों का अन्न दश दिन तक नहीं खाना चाहिये। दान देना, दान लेना, ब्रह्मयज्ञ और होम भी सूतक में नहीं करना चाहिये ॥ ९ ॥

तावत्तत्सूतकंगोत्रे चतुर्थपुरुषेणतु ।
दायाद्विच्छेदमाप्नोति पञ्चमोवात्मवंशजः ॥ १० ॥
चतुर्थेदशरात्रंस्यात्षण्निशाःपुंसिपञ्चमे ।
षष्ठेचतुरहाच्छुद्धिः सप्तमेतुदिनत्रयम् ॥ ११ ॥
शृङ्ग्यङ्ग्निमरणेचैवदेशान्तरमृतेतथा ।
बालेप्रेतेचसंन्यस्ते सद्यःशौचंविधीयते ॥ १२ ॥
पञ्चभिःपुरुषैर्युक्ता अश्रद्धेयाःसगोत्रिणः ।
ततःषट्पुरुषाद्यश्च श्राद्धभोज्याःसगोत्रिणः ॥ १३ ॥
दशरात्रेष्वतीतेषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ।
ततःसंवत्सरादूर्ध्वं सचैलंस्नानमाचरेत् ॥१४॥
देशान्तरमृतःकश्चित्सगोत्रःश्रूयतेयदि ।
नत्रिरात्रमहोरात्रं सद्यःस्नात्वाशुचिर्भवेत् ॥१५॥
आत्रिपक्षात्त्रिरात्रंस्यादाषण्मासाच्चपक्षिणी ।
अहःसंवत्सरादर्वाक्सद्यःशौचंविधीयते ॥ १६ ॥

उस गोत्र में चौथी पीढ़ी तक ही वह सूतक भी होता है क्योंकि अपने वंश का पांचवां पुरुष बांट हो जाने से पृथक् हो जाता है ॥१०॥ चतुर्थ पीढी तक दश दिन पांचवीं पीढी में छः दिन रात–छटी पीढ़ी में चार दिन और सातवी पीढी में तीन दिन में शुद्धि होती है ॥ ११ ॥ सींग वाले पशुओं से–वा अग्नि से मरने में वा देशान्तर के मरने में–बालक के मरने में और अपने कुटुम्बी संन्यासी के मरने में उसी समय शुद्धि हो जाती है ॥१२॥ पांच पुरुषों से युक्त सगोत्री पुरुष श्रद्धा करने योग्य नहीं हैं। परन्तु जिन में कोई सुपात्र छठा बाहरी हो ऐसे सगोत्री श्राद्ध में भोजन कराने योग्य माने जाते हैं ॥१३॥ दश दिन बीत जाने पर विदेश में सगोत्री का मरण सुने तो तीन दिन में शुद्धि और एक वर्ष बाद सुने तो तत्काल सचैल स्नान करने से शुद्धि होती है ॥१४॥ यदि देशान्तर में मरा सगोत्री सुना जाय तो न तीन दिन और न एक दिन रात अशौच माने किन्तु शीघ्र ही स्नान करने से तत्काल शुद्धि होती है ॥१५॥ डेढ़ महिने तक सुनने पर तीन दिन में शुद्धि, छः महीने में सुने तो एकदिन रात शुद्धि माने, वर्ष भर के भीतर सुने तो एक दिन मात्र में शुद्धि और पश्चात् वर्ष बीत जाने पर तत्काल शुद्धि कर लेवे ॥ १६ ॥

देशान्तरगतोविप्रः प्रयासात्कालकारितात् ।
देहनाशमनुप्राप्तस्तिथिर्नज्ञायतेयदि ॥ १७ ॥
कृष्णाष्टमीत्वमास्या कृष्णाचैकादशीचया ।
उदकंपिण्डदानंच तत्रश्राद्धंचकारयेत् ॥१८॥
अजातदन्तायेबाला येचगर्भाद्विनिःसृताः ।
नतेषामग्निसंस्कारो नाशौचंनोदकक्रिया ॥१९॥
यदिगर्भोविपद्येत स्रवतेवापियोषिताम् ।
यावन्मासंस्थितोगर्भो दिनंतावत्तुसूतकम् ॥२०॥
आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातःपञ्चमषष्ठयोः ।
अतऊर्द्ध्वंप्रसूतिःस्याद्दशाहंसूतकंभवेत् ॥२१॥
प्रसूतिकालेसंप्राप्ते प्रसवेयदियोषिताम् ।
जीवापत्येतुगोत्रस्य मृतेमातुश्चसूतकम् ॥२२॥
रात्रावेवसमुत्पन्ने मृतेरजसिसूतके ।
पूर्वमेवदिनंग्राह्यं यावन्नोदयतेरविः ॥२३॥

यदि देशान्तर में गया ब्राह्मण काल से प्रकट हुए परिश्रम से मर जाय और मरने की तिथि मालूम न हो ॥ १७ ॥ तो कृष्ण पक्ष की आठें, मावस, अथवा कृष्ण एकादशी में जलदान, पिण्डदान और श्राद्ध करे ॥ १८ ॥ जो दांतों के निकलने से पहिले वा गर्भ से निकसते ही मर गये हों उन को अग्नि का दाह, अशौच और जलदान (तिलांजलि) नहीं करना चाहिये ॥१९॥ यदि गर्भ में विपत्ति (मरना) हो जाय वा स्त्री का गर्भ ही गिर जाय तो जितने महीने का गर्भ हो उतने ही दिन का सूतक होता है ॥ २० ॥ चार महीने तक का जो गर्भ गिरे उसे स्राव कहते हैं, पांच और छठे महीने का गिरे तो उसे गर्भपात कहते हैं इस से आगे प्रसूति होती है उस का सूतक दश दिन का होता है ॥२१॥ स्त्रियों के प्रसव समय में यदि जीवित सन्तान पैदा हो तो चार पीढ़ी तक के गोत्र वालों को आशौच लगता और मरा पैदा हो तो केवल माता को अशुद्धि लगती है ॥ २२ ॥ यदि रात्रि में मरा हुआ सन्तान पैदा हो तो सूर्योदय से पहिले बीते हुए दिन से ही गणना करनी चाहिये ॥ २३ ॥

दन्तजातेनुजातेच कृतचूड़ेचसंस्थिते ।
अग्निसंस्करणंतेषां त्रिरात्रंसूतकंभवेत् ॥ २४ ॥
आदन्ताजननात्सद्यआचूडान्नैशिकीस्मृता ।
त्रिरात्रमाव्रतात्तेषांदशरात्रमतःपरम् ॥ २५ ॥
गर्भेयदिविपत्तिःस्याद्दशाहंसूतकंभवेत् ।
जीवन्जातोयदिप्रेतः सद्यएवविशुध्यति ॥ २६ ॥
स्त्रीणांचूडान्नआदानात्सप्तमात्तदधःक्रमात् ।
सद्यःशौचमथैकाहं त्र्यहःपितृवन्धषु ॥ २७ ॥
ब्रह्मचारीगृहेयेषां हूयतेचहुताशनः ।
संपर्कंचेन्नकुर्वन्ति नतेषांसूतकंभवेत् ॥ २८ ॥
संपर्काद्दुष्यतेविप्रो जननेमरणेतथा ।
संपर्काच्चनिवृत्तस्य नप्रेतंनैवसूतकम् ॥ २९ ॥

दांत उगने के पीछे या दांत निकलते हों अथवा मुण्डन हो जाने पर बालक मर जाय तो उसका अग्नि से दाह करें और तीन दिन रात अशुद्धि माने ।२४। दांतों के निकलने से पहिले जो बालक मरे तो उसी समय, चूड़ाकर्म से पहिले मरे तो एक दिन रात और यज्ञोपवीत से पहिले मरे तो तीन दिन रात का अशौच होता है इससे परे दश दिन का होता है ॥ २५ ॥ यदि गर्भ में विपत्ति हो जाय अर्थात् जीवित बच्चा पैदा हो कर मर जाय तो दश दिन और मरा हुआ पैदा हो तो तत्काल शुद्धि होती ॥ २६ ॥ चूड़ा कर्म से पहिले कन्या मरे तो तत्काल शुद्धि होती, सगाई से पहिले मरे तो एक दिन रात और वाग्दान होने पर सप्तपदी से पहिले मरे तो पितृगोत्र वालों को तीन दिन रात शुद्धि माननी चाहिये ॥ २७ ॥ जिन के घर में होम करता हुआ ब्रह्मचारी रहता हो और वह यदि मर जाय तो जिन लोगों ने उसका स्पर्श नहीं किया उन्हें सूतक नहीं लगता ॥ २८ ॥ जन्म और मरण सम्बन्धी सूतक में सात पीढ़ी वालों से भिन्न ब्राह्मण स्पर्श करने से दूषित होता यदि संपर्क न करै तो दोनों ही सूतक नहीं लगते ॥ २९ ॥

शिल्पिनःकारुकावैद्या दासीदासाश्चनापिताः ।
राजानःश्रोत्रियाश्चैव सद्यःशौचाःप्रकीर्तिताः ॥ ३० ॥
सव्रतीमन्त्रपूतश्च आहिताग्निश्चयोद्विजः ।
राज्ञश्चसूतकंनास्ति यस्यचेच्छतिपार्थिवः ॥ ३१ ॥
उद्यतोनिधनेदानेआर्तोविप्रोनिमन्त्रितः ।
तदैवऋषिभिर्दृष्टं यथाकालेनशुद्ध्यति ॥ ३२ ॥
प्रसवेगृहमेधीतु नकुर्यात्सङ्करंयदि ।
दशाहाच्छुद्ध्यतेमाता त्ववगाह्यपिताशुचिः ॥ ३३ ॥
सर्वेषांशावमाशौचं मातापित्रोस्तुसूतकम् ।
सूतकंमातुरेवस्या दुपस्पृश्यपिताशुचिः ॥ ३४ ॥
यदिपत्न्यांप्रसूतायां संपर्कंकुरुतेद्विजः ।
सूतकंतुभवेत्तस्य यदिविप्रःषडङ्गवित् ॥ ३५ ॥
संपर्काज्जायतेदोषो नान्योदोषोस्तिवैद्विजे ।

शिल्पी (चित्र बनाने वाले) कारीगर, वैद्य,दासी (टहलनी) दास,नाई,राजा, और, वेदपाठी, इनकी उसी समय तत्काल शुद्धि होती है ॥ ३० ॥ जिस ने किसी नियत काल तक व्रत ले रक्खा हो, वेदमन्त्रों के जप से जो पवित्र हैं, जो द्विज विधिपूर्वक अग्नि स्थापन करके अग्निहोत्री है, राजा को और जिस के सूतक को राजा न चाहे उस को सूतक नहीं लगता है ॥ ३१ ॥ दान में उद्यत (तईयार) मनुष्य यदि मरजाय और आर्त्त (दुःखी) ब्राह्मण को दान देने का न्योता दे रक्खा हो तो उसी दान के समय पर शुद्ध होता है यह ऋषियों ने जाना अर्थात् कहा है ॥ ३२ ॥ यदि जन्मसूतक में ब्राह्मण सूतिका का सङ्कर (स्पर्श) न करै तो माता दश दिन में और पिता स्नान करके शुद्ध होता है ॥ ३३ ॥ शाव (मुर्दे का) आशौच सात पीढी तक सब को और जन्मसूतक माता पिता को ही लगता है और उन दोनों में भी माता ही विशेष कर अशुद्ध होती है पिता तो स्नान करने से ही शुद्ध हो जाता है ॥३४॥ जिस ब्राह्मण की स्त्री प्रसूता हो और वह पत्नी का स्पर्श करे तो चाहै वह वेद के छः अंग का पण्डित भी हो तो भी उसे सूतक लगता है ॥३५॥ ब्राह्मण को संपर्क

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संपर्कंवर्जयेद्बुधः ॥ ३६ ॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके ।
पूर्वसंकल्पितंद्रव्यं दीयमानंनदुष्यति ॥ ३७ ॥
अन्तरातुदशाहस्य पुनर्मरणजन्मनी ।
तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम् ॥ ३८ ॥
ब्राह्मणार्थेविपन्नानां वन्दिगोग्रहणेतथा ।
आहवेषुविपन्नानामेकरात्रमशौचकम् ॥ ३९ ॥
द्वाविमौपुरुषौलोके सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणेचाभिमुखोहतः ॥ ४० ॥
यत्रयत्रहतःशूरः शत्रुभिःपरिवेष्टितः ।
अक्षयांल्लभतेलोकान् यदिक्लीबंनभाषते ॥ ४१ ॥
संन्यस्तंब्राह्मणंदृष्ट्वा स्थानाच्चलतिभास्करः ।
एषमेमण्डलंभित्त्वा परंस्थानंप्रयास्यति ॥ ४२ ॥

से दोष लगताहै अन्य कुछ दोष नहीं है तिससे बड़े यत्न से ज्ञानवान् द्विजसंपर्क न करे ॥ ३६ ॥ विवाह, उत्सव, यज्ञ, इन के बीच यदि मरण वा जन्म हो जांय तो पूर्व संकल्पित किये द्रव्य के देने का दोष नहीं है ॥ ३७ ॥ यदि सूतक के दश आदि दिन पूरे होने से पहिले दूसरा मरण वा जन्म हो जाय तो ब्राह्मण तभी तक अशुद्ध होता है कि जब तक पहिले दश दिन पूरे हों ॥ ३८ ॥ ब्राह्मण के लिये, भागे (कैदी) के तथा गौ के पकड़ने में और संग्राम में जो मरे हैं उनको अशौच एक दिन रात का लगता है ॥ ३९ ॥ दो पुरुष जगत् में सूर्य मण्डल के भेदन करने वाले हैं एक तो योग युक्त योगाभ्यासी संन्यासी और दूसरा जो संग्राम में सन्मुख मरा हो ॥ ४० ॥ शत्रुओं से युद्ध में घेरा हुआ शूरवीर पुरुष जहां २ मारा जाता है वह अक्षय लोकों को प्राप्त होता है यदि वह क्लीव (कातर के वचन न कहै) ॥ ४१ ॥ संन्यासी ब्राह्मण को देखकर सूर्य नारायण भी अपने स्थान से चलायमान हो जाते हैं क्योंकि सूर्यनारायण को भय हो जाता है कि यह संन्यासी मेरे मण्डल को लंघकर परम स्थान (ब्रह्मलोक) को जायगा ॥ ४२ ॥

यस्तुभग्नेषुसैन्येषु विद्रवत्सुसमन्ततः ।
परित्रातायदागच्छेत्सचक्रतुफलंलभेत् ॥ ४३ ॥
यस्यच्छेदक्षतंगात्रं शरमुद्गरयष्टिभिः ।
देवकन्यास्तुतंवीरं हरन्तिरमयन्तिच ॥ ४४ ॥
देवाङ्गनासहस्राणि शूरमायोधनेहतम् ।
त्वरमाणाःप्रधावन्ति ममभर्ताममेतिच ॥ ४५ ॥
यंयज्ञसंघैस्तपसाचविप्राः स्वर्गैषिणोवात्रयथैवयान्ति ।
क्षणेनयान्त्येवहितत्रवीराः प्राणान्सुयुद्धेनपरित्यजन्तः॥४६॥
जितेनलभ्यतेलक्ष्मीर्मृतेनापिवराङ्गनाः ।
क्षणध्वंसिनिकायेस्मिन्काचिन्तामरणेरणे ॥ ४७ ॥
ललाटदेशाद्रुधिरंस्रवच्च यस्याहवेतुप्रविशेतवक्त्रम् ।
तत्सोमपानेनकिलास्यतुल्यं संग्रामयज्ञेविधिवच्चदृष्टम्॥४८॥
अनाथंब्राह्मणंप्रेतं येवहन्तिद्विजातयः ।
पदेपदेयज्ञफलमानुपूर्व्याल्लभन्तिते ॥ ४९ ॥
नतेषामशुभंकिञ्चिद् द्विजानांशुभकर्मणि ।

जो शत्रुओं ने मारी पीटी और चारों तरफ भागती हुई सेना के मनुष्यों की रक्षा के लिये जाताहै वह यज्ञ के फल को पाता है ॥४३॥ जिसका शरीर वाण मुद्गर—लाठी इनके छिद्रों से घायल हुआ है उस मनुष्य को देवताओं की कन्या बुला ले जातीं और रमण करातीं हैं ॥ ४४ ॥ संग्राम में मारे गये शूरवीर के सम्मुख हजारों देवताओं की कन्या शीघ्रता करतीं हुईं दौड़ती हैं कि यह मेरा भर्ता यह मेरा भर्त्ता हो ॥ ४५ ॥ यज्ञों के समूह और तप करके स्वर्ग की इच्छा करने वाले ब्राह्मण जिस लोक में जिस प्रकार जाते हैं उसी लोक में क्षणमात्र में ही वे शूरवीर जाते हैं जो युद्ध में प्राणों को त्यागते हैं ॥ ४६ ॥ जब युद्ध में जय होने से लक्ष्मी और मरने से अप्सरा मिलती हैं तो क्षणमात्र में नष्ट होने वाली काया के रण में मरने की क्या चिन्ता है ॥ ४७ ॥ संग्राम में मस्तक से गिरता रुधिर जिस के मुख में प्रवेश करता है वह मुख संग्राम रूपी यज्ञ में विधिपूर्वक सोमपान करने वाले मुख के तुल्यहै ॥४८॥ जो द्विजाति लोग मरे हुए अनाथ ब्राह्मण को श्मशान में ले जाते हैं वे क्रम से पग २ में यज्ञ के फल को प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ और उन द्विजों को शुभ

जलावगाहनात्तेषां सद्यःशौचंविधीयते ॥ ५० ॥
असगोत्रमबन्धुंच प्रेतीभूतंद्विजोत्तमम् ।
नीत्वाचदाहयित्वाच प्राणायामेनशुद्ध्यति ॥ ५१ ॥
अनुगम्येच्छयाप्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेववा ।
स्नात्वासचैलंस्पृष्ट्वाग्निं घृतंप्राश्यविशुद्ध्यति ॥ ५२ ॥
क्षत्रियंमृतमज्ञानाद् ब्राह्मणोयोऽनुगच्छति ।
एकाहमशुचिर्भूत्वा पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥ ५३ ॥
शवंचवैश्यमज्ञानाद् ब्राह्मणोह्यनुगच्छति ।
कृत्वाशौचंद्विरात्रंच प्राणायामान्षडाचरेत् ॥ ५४ ॥
प्रेतीभूतंतुयःशूद्रं ब्राह्मणोज्ञानदुर्बलः ।
अनुगच्छेन्नीयमानं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ५५ ॥
त्रिरात्रेतुततःपूर्णे नदींगत्वासमुद्रगाम् ।
प्राणायामशतंकृत्वा घृतंप्राश्यविशुद्ध्यति ॥ ५६ ॥
विनिर्वर्त्यंयदाशूद्रा उदकान्तमुपस्थिताः ।

कर्म करने में कुछ भी अशुभ वा दोष नहीं है क्योंकि जल में स्नान करने से उन की उसी समय शुद्धि हो जाती है ॥ ५० ॥ जो ब्राह्मण अपने गोत्र का न हो और अपना बन्धु भी न हो वह मरजाय तो श्मशान में ले जा कर और दाह करके प्राणायाम करने से शुद्ध हो जाता है ॥५१॥ अपने कुटुम्ब के वा अन्य कुटुम्ब के मुर्दों के संग जाकर वस्त्रों सहित स्नान, अग्नि का स्पर्श और थोड़ा घी खाकर शुद्ध होता है ॥५२॥ मरे हुए क्षत्रिय के संग जो ब्राह्मण श्मशान में जाता है वह एक दिन अशुद्ध रह कर पञ्चगव्य सेवन करने से शुद्ध होता है ॥५३॥ जो ब्राह्मण मरे हुए वैश्य के संग अज्ञान से जावे वह दो दिन रात का अशौच करके छः प्राणायाम करे ॥ ५४ ॥ जो अज्ञानी ब्राह्मण मरे हुए शूद्र के संग जाता है वह तीन दिन रात अशुद्ध होता है ॥ ५५ ॥ तीन दिन के पीछे जो समुद्र में जाने वाली हो उस नदी में जाके स्नान करे प्राणायाम कर और घी खाके शुद्ध होता है ॥ ५६ ॥ जब श्मशान से लौटकर शूद्र लोग जल के समीप तिलाञ्जलि देने को आवें तब द्विज लोग उन के उ-

द्विजैस्तदानुगन्तव्या एषधर्मःसनातनः ॥ ५७ ॥
तस्माद्द्विजोमृतंशूद्रं नस्पृशेन्नचदाहयेत् ।
दृष्टेसूर्यावलोकेन शुद्धिरेषापुरातनी ॥ ५८ ॥
इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥
अतिमानादतिक्रोधात्स्नेहाद्वायदिवाभयात् ।
उद्बध्नीयात्स्त्रीपुमान्वा गतिरेषाविधीयते ॥ १ ॥
पूयशोणितसंपूर्णे त्वन्धेतमसिमज्जति ।
षष्टिंवर्षसहस्त्राणि नरकंप्रतिपद्यते ॥ २ ॥
नाशौचंनोदकंनाग्निं नाश्रुपातंचकारयेत् ।
वोढारोऽग्निप्रदातारः पाशच्छेदकरास्तथा ॥ ३ ॥
तप्तकृच्छ्रेणशुद्ध्यन्तीत्येवमाहप्रजापतिः ।
गोभिर्हतंतथोद्बद्धं ब्राह्मणेनतुघातितम् ॥ ४ ॥
संस्पृशन्तितुयेविप्रा वोढारश्चाग्निदाश्चये ।

मीच जांय यही सनातन धर्म की रीति है ॥ ५७ ॥ तिस से द्विज लोग मरे हुए शूद्र का न तो स्पर्श करें और न दाह करावें यदि मरे शूद्र को देख ले तो सूर्यनारायण के दर्शन से शुद्धि होती है यह शुद्धि पुरातन धर्म की मर्यादा है ॥५८॥

यह पाराशरीय धर्मशास्त्र का तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥

अत्यन्त मान से वा अत्यन्त क्रोध से या किसी के साथ अधिक प्रेम होने से वा भय से स्त्री अथवा पुरुष परस्पर फांसी दें तो उन की निम्न लिखित गति होती है ॥ १ ॥ पीव और रुधिर से भरे नरक में साठ हजार वर्ष तक गोता खाते हैं ॥ २ ॥ न उन का अशौच, न जलदान, न अग्निदाह, और न आंसू बहाते हुये उन के लिये कोई रोवे जो उन्हें गंगा आदि में ले जांय वा जो अग्नि में दाह करे और जो उन की फांसी को काटे ॥ ३ ॥ वे लोग तप्त कृच्छ्र व्रत करने से शुद्ध होते हैं ऐसा प्रजापति ने कहा है—जो पुरुष गौओं से मारा गया हो वा बन्धन (फांसी) से मरा हो वा जिस को ब्राह्मण ने मारा हो ॥४॥ उसका जो ब्राह्मण स्पर्श करें वा उसके मृत देहको श्मशान में लेजांय वा जो

अन्येऽपिवाऽनुगन्तारः पाशच्छेदकराश्चये ॥ ५ ॥
तप्तकृच्छ्रेणशुद्धास्ते कुर्युर्ब्राह्मणभोजनम् ।
अनडुत्सहितांगांच दद्युर्विप्रायदक्षिणाम् ॥ ६ ॥
त्र्यहमुष्णंपिबेद्वारि त्र्यहमुष्णंपयःपिबेत् ।
त्र्यहमुष्णंपिबेत्सर्पिर्वायुभक्षोदिनत्रयम् ॥७॥
षट्पलंतुपिबेदंभस्त्रिपलन्तुपयःपिबेत् ।
पलमेकंपिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रंविधीयते ॥ ८ ॥
योवैसमाचरेद्विप्रः पतितादिष्वकामतः ।
पञ्चाहंवादशाहंवा द्वादशाहमथापिवा ॥ ९ ॥
मासार्द्धमासमेकंवा मासद्वयमथापिवा ।
अब्दार्द्धमब्दमेकंवा भवेदूर्ध्वंहितत्समः ॥ १० ॥
त्रिरात्रंप्रथमेपक्षे द्वितीयेकृच्छ्र[illegible]माचरेत् ।
तृतीयेचैवपक्षेतु कृच्छ्रंसान्तपनंचरेत् ॥ ११ ॥
चतुर्थेदशरात्रंस्यात्पराकःपञ्चमेमतः ।

अग्नि में दाह करे और जो उस के संग जाय वा जो फांसी काटें ॥५॥ वे तप्त कृच्छ्र व्रत से शुद्ध हुए ब्राह्मणों को भोजन करावें और एक बैल और एक गौ ब्राह्मण को दक्षिणा देवें ॥ ६ ॥ तीन दिन गर्म जल पीवे फिर तीन दिन गर्म दूध पीवे फिर तीन दिन गर्म घी पीवे फिर तीन दिन वायु को भक्षण करके रहे ॥७॥ छः पल जल, तीन पल दूध, एक पल घी, इस को तप्त कृच्छ्र कहते हैं (पांच तोला चारमासे का एक पल होता है) ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मण पतित आदिकों के साथ अज्ञान से पांच, दश, वा बारह दिन व्यवहार करता है ॥९॥ पन्द्रह दिन, वा एक महीना; वा दो महीने, वा चार महीने, वा एक वर्ष, तक पतित के साथ व्यवहार करे वह उस प्रायश्चित्त को करै जो आगे कहेंगे और एक वर्ष से अधिक व्यवहार करे तो वह भी उसी पतित के तुल्य (पतित) हो जाता है ॥ १० ॥ पांच दिन पतित का संग करने में तीन दिन उपवास, दस दिन करने में एक कृच्छ्र, बारह दिन के संग में शान्तपन कृच्छ्र करे ॥ ११ ॥ पन्द्रह दिन के संग में दश दिन का व्रत एक महीने के संग में पराक व्रत,

कुर्याच्चान्द्रायणंषष्ठे सप्तमेत्वैन्दवद्वयम् ॥ १२ ॥
शुद्ध्यर्थमष्टमेचैव षण्मासान्कृच्छ्रमाचरेत् ।
पक्षसंख्याप्रमाणेन सुवर्णान्यपिदक्षिणा ॥ १३ ॥
ऋतुस्नानातुयानारी भर्त्तारंनोपसर्पति ।
सामृतानरकंयाति विधवाचपुनःपुनः ॥ १४ ॥
ऋतुस्नातांतुयोभार्यां सन्निधौनोपगच्छति ।
घोरायांभ्रूणहत्यायां युज्यतेनात्रसंशयः ॥ १५ ॥
अदुष्टापतितांभार्यां यौवनेयःपरित्यजेत् ।
सप्तजन्मभवेत्स्त्रीत्वं वैधव्यंचपुनःपुनः ॥ १६ ॥
दरिद्रंव्याधितंमूर्खं भर्त्तारंयावमन्यते ।
सामृताजायतेव्याली वैधव्यंचपुनःपुनः ॥ १७ ॥
पत्यौजीवतियानारी उपोष्यव्रतमाचरेत् ।
आयुष्यंहरतेभर्तुः सानारीनरकंव्रजेत् ॥ १८ ॥

दो महीने के संग में चान्द्रायण और चार महीने के संग में दो चान्द्रायण व्रत करे ॥१२॥ एक वर्ष के संग में छः महीने तक कृच्छ्रव्रत करे और एक पक्ष की संख्या के प्रमाण से सुवर्ण दान की संख्याओं का प्रमाण जानो । अर्थात् एक महिने के संग का प्रायश्चित्त हो तो दो सुवर्ण दक्षिणा देवे (सोलह मासा सोने को ' सुवर्ण ' कहते हैं) ॥ १३ ॥ जो स्त्री ऋतु काल में चौथे दिन स्नान करके छठे आदि दिन पति के समीप नहीं जाती वह मर कर नरक में जाती है और बारं बार विधवा होती है ॥ १४ ॥ जो पुरुष ऋतु में स्नान जिसने किया हो उस अपनी पत्नी के समीप नहीं जाता उसे घोर भ्रूण हत्या लगती है ॥ १५ ॥ जो पतित न हुई हो ऐसी निर्दोष पत्नी को युवावस्था में जो पुरुष छोड़ देता है वह सात जन्म तक स्त्री योनि में जन्म लेता और बार २ विधवा होता है ॥ १६ ॥ दरिद्री, रोगी मूर्ख भी जो अपना पति हो उस का जो स्त्री अपमान करती है वह मर कर सांपिन होती और बारं बार विधवा होती है ॥ १७ ॥ पति के जीवते जो स्त्री उपवास तथा व्रत करती है वह अपने पति की अवस्था घटाती और आप नरक में जाती है ॥ १८ ॥

अपृष्ट्वाचैवभर्त्तारं यानारीकुरुतेव्रतम् ।
सर्वंतद्राक्षसान्गच्छेदित्येवंमनुरब्रवीत् ॥ १९ ॥
बान्धवानांसजातीनां दुर्वृत्तंकुरुतेतुया ।
गर्भपातंचयाकुर्यान्न तांसंभाषयेत्क्वचित् ॥ २० ॥
यत्पापंब्रह्महत्याया द्विगुणंगर्भपातने ।
प्रायश्चित्तंनतस्यास्ति तस्यास्त्यागोविधीयते ॥ २१ ॥
नकार्यमावसथ्येन नाग्निहोत्रेणवापुनः ।
सभवेत्कर्मचाण्डालो यस्तुधर्मपराङ्मुखः ॥ २२ ॥
ओघवाताहृतंबीजं यस्यक्षेत्रेप्ररोहति ।
सक्षेत्रीलभतेबीजं नबीजीभागमर्हति ॥ २३ ॥
तद्वत्परस्त्रियःपुत्रौ द्वौसुतौकुण्डगोलकौ ।
पत्यौजीवतिकुण्डस्तु मृतेभर्तरिगोलकः ॥ २४ ॥
औरसःक्षेत्रजश्चैव दत्तःकृत्रिमकःसुतः ।

जो स्त्री अपने पति को पूछे बिना व्रत करती है वह सब राक्षसों को मिलता है यह मनुजी ने कहा है ॥१९॥ जो स्त्री अपने सजातीय बांधवों के संग दुष्ट आचरण वा गर्भपात करती है उस के संग कभी भी पति न बोले ॥ २० ॥ जो पाप ब्रह्महत्या का है उस से दूना गर्भ के पात (गिराने) में है उस गर्भ घातिनी का प्रायश्चित्त कुछ नहीं है किन्तु उस का त्याग कर देवे ॥ २१ ॥ उस गर्भपात करने वाली पत्नी के त्याग से श्रौत स्मार्त्त अग्निहोत्र भले ही छूट जाय कुछ चिन्ता न करे किन्तु उस स्त्री के साथ अग्निहोत्र करने वाला धर्म विरोधी होने से कर्मचाण्डाल माना जायगा ॥ २२ ॥

आंधी रूप वायु के वेग से उड़कर आया बीज यदि दूसरे के खेत में उपज आवे तो वह खेत वाले का ही भाग होगा और बीज वाले को उस का भाग मिलना योग्य नहीं ॥ २३ ॥ इसी प्रकार अन्यपुरुष के बीज से दूसरे की स्त्री में जो पुत्र उत्पन्न हो वह भी उस का होगा जिस की वह स्त्री हो सो ऐसे कुण्ड और गोलक दो पुत्र होते हैं एक पति के जीते जो जार से उत्पन्न हो वह कुण्ड और पति के मरे पीछे होय तो गोलक कहाता है ॥ २४ ॥ औरस, क्षेत्रज, दत्तक, और कृत्रिम ये चार पुत्र कहाते हैं। जिस को माता वा पिता

दद्यान्मातापितावापि सपुत्रोदत्तकोभवेत् ॥ २५ ॥
परिवित्तिःपरीवेत्ता ययाचपरिविद्यते ।
सर्वेतेनरकंयान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥ २६ ॥
दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुतेयोऽग्रजेसति ।
परिवेत्तासविज्ञेयः परिवित्तिस्तुपूर्वजः ॥ २७ ॥
द्वौकृच्छ्रौपरिवित्तेस्तु कन्यायाःकृच्छ्रएवच ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौदातुस्तु होताचान्द्रायणं चरेत् ॥२८॥
कुब्जवामनषण्ढेषु गद्गदेषुजडेषुच ।
जात्यन्धेबधिरेमूके नदोषःपरिविन्दतः ॥ २९ ॥
पितृव्यपुत्रःसापत्नः परनारीसुतस्तथा ।
दाराग्निहोत्रसंयोगे नदोषःपरिवेदने ॥ ३० ॥
ज्येष्ठोभ्रातायदातिष्ठेदाधानंनैवकारयेत् ।
अनुज्ञातस्तुकुर्वीत शंखस्यवचनंयथा ॥ ३१ ॥

दे देवे वह दत्तक पुत्र होता है ॥ २५ ॥ परिवित्ति (परिवेत्ता का बड़ा भाई) परिवेत्ता (बड़े भाई से पहिले जो छोटा विवाह करे) वह कन्या जिस के साथ विवाह करने से वह परिवेत्ता हुआ है, कन्या का दाता और याजक (विवाह पढ़ने वाला) ये सब नरक में जाते हैं ॥२६॥ ज्येष्ठ भाई से पहिले जो अपना विवाह करे वा अग्निहोत्र ग्रहण करे वह परिवेत्ता और ज्येष्ठ भाई परिवित्ति कहाता है ॥ २७ ॥ परिवित्ति दो कृच्छ्र व्रत करे कन्या एक कृच्छ्र व्रत करे, कन्याका दाता कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र दोनों व्रत करे तथा विवाह कराने वाला पुरोहित चांद्रायण व्रत करे ॥ २८ ॥ कुबड़ा, विलंदिया (बौना) नपुंसक, तोतला, महा मूर्ख, जन्मान्ध, बहरा, गूंगा, इन ऐसे जेठे भाइयों के परिवेदन करने (पहिले विवाह वा अग्निहोत्र लेने) में दोष नहीं है ॥ २९ ॥ यदि जेठा भाई चाचा का पुत्र हो, वा सौतेली माता का पुत्र हो, वा दूसरे की स्त्री का पुत्र हो तो उस से पहिले विवाह करने और अग्निहोत्र लेने से उस के परिवेदन में दोष नहीं है ॥३०॥ जेठा भाई विद्यमान हो पर स्वयं अग्निहोत्र न ले तब शंख ऋषि के वचनानुसार उस बड़े भाई की आज्ञा से छोटा भाई अग्निहोत्र को ग्रहण करले ॥ ३१ ॥

नष्टेमृतेप्रव्रजिते क्लीबेचपतितेपतौ ।
पञ्चस्वापत्सुनारीणां पतिरन्योविधीयते ॥ ३२ ॥
मृतेभर्त्तरियानारी ब्रह्मचर्यंव्रतेस्थिता ।
सामृतालभतेस्वर्गं यथातेब्रह्मचारिणः ॥ ३३ ॥
तिस्रःकोट्योर्द्धकोटीच यानिलोमानिमानवे ।
तावत्कालंवसेत्स्वर्गे भर्त्तारंयाऽनुगच्छति ॥ ३४ ॥
व्यालग्राहीयथाव्यालं बलादुद्धरतेबिलात् ।
एवंस्त्रीपतिमुद्धृत्य तेनैवसहमोदते ॥ ३५ ॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

वृकश्वानशृगालादि दष्टोयस्तुद्विजोत्तमः ।
स्नात्वाजपेत्सगायत्रीं पवित्रांवेदमातरम् ॥ १ ॥
गवांशृङ्गोदकस्नानान्महानद्योस्तुसंगमे ।

जिस से सगाई हुई हो वह पति नष्ट (परदेश में गया हो और खबर न हो) हो जाय, वा मर जाय, वा संन्यासी हो जाय, वा नपुंसक निकले, वा पतित हो जाय, तो इन पांच आपत्तियों में दूसरा पति कहा है अर्थात् सगाई हुये पीछे दूसरे के संग सगाई करके विवाह कर देवे ॥ ३२ ॥ पति के मरे पीछे जो स्त्री ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित रहती है। वह मर कर स्वर्ग में इस प्रकार जाती है जैसे वे ब्रह्मचारी गये ॥ ३३ ॥ जो स्त्री पति के संग अनुगमन (सती होना) करती है वह साढ़े तीन करोड़ मनुष्य के शरीर में जो लोम हैं उतने ही वर्ष तक स्वर्ग में वसती है ॥३४॥ सांप को पकड़ने वाला जैसे बिल में से सांप को निकाल लेता है ऐसे ही वह स्त्री भी मरकरके अपने पतिका उद्धार करके उस पतिके संग ही स्वर्गमें आनन्द भोगती है॥३५॥

यह पाराशरीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में ४ चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥

भेड़िया, कुत्ता, गीदड़ आदि जिस ब्राह्मण को काटें वह स्नान करके वेदों की माता पवित्र गायत्री का जप करे ॥ १ ॥ कुत्ता जिसे काटे वह गौ के सींग के जलस्नान से वा गङ्गादि महानदियों के सङ्गम में स्नान करने

समुद्रदर्शनाद्वापि शुनादष्टःशुचिर्भवेत् ॥ २ ॥
वेदविद्याव्रतस्नातः शुनादष्टोद्विजोयदि ।
सहिरण्योदकेस्नात्वा घृतंप्राश्यविशुद्ध्यति ॥ ३ ॥
सव्रतस्तुशुनादष्टस्त्रिरात्रंसमुपोषितः ।
घृतंकुशोदकंपीत्वा व्रतशेषंसमापयेत् ॥ ४ ॥
अव्रतःसव्रतोवापि शुनादष्टोभवेद्द्विजः ।
प्रणिपत्यभवेत्पूतो विप्रैश्चानुनिरीक्षितः ॥ ५ ॥
शुनाघ्राताऽवलीढस्य नखैर्विलिखितस्यच ।
अद्भिःप्रक्षालनंप्रोक्तमग्निनाचोपचूलनम् ॥ ६ ॥
ब्राह्मणीतुशुनादष्टा जम्बुकेनवृकेणवा ।
उदितंसोमनक्षत्रं दृष्ट्वासद्यःशुचिर्भवेत् ॥ ७ ॥
कृष्णपक्षेयदासोमो नदृश्येतकदाचन ।
यांदिशंव्रजतेसोमस्तांदिशंचाऽवलोकयेत् ॥ ८ ॥
असद्ब्राह्मणकेग्रामे शुनादष्टोद्विजोत्तमः ।

से वा समुद्र के दर्शन से शुद्ध होता है ॥ २ ॥ वेद विद्या पढ़े वा ब्रह्मचर्य व्रत पूरा करके समावर्त्तन स्नान किये गृहस्थ ब्राह्मण को यदि कुत्ता काटे तो वह सुवर्ण सहित जल से स्नान कर और घी खाके शुद्ध होता है ॥ ३ ॥ यदि व्रत वाले ब्राह्मण को कुत्ता काटे तो तीन दिन रात उपवास करै फिर घृत और कुशों के जल को पीकर शेष व्रत को पूरा करदेवे ॥ ४ ॥ व्रत वाले वा बिना व्रत वाले कैसे ही द्विज को कुत्ता काटे तो ब्राह्मणों को प्रणिपात (नमस्कार) करने और तपस्वी ब्राह्मणों के देखनेसे शुद्ध होताहै॥५॥ जो वस्तु कुत्तेने सूंघा, वा चाटा हो, वा नखों से खोदा हो वह जल से धोने और अग्नि में तपाने से शुद्ध होताहै ॥६॥ यदि ब्राह्मणी को कुत्ता वा गीदड़ वा भेड़िया काटे तो उदय हुए चन्द्रमा और नक्षत्रों को देख कर शुद्ध होती है ॥७॥ यदि कृष्णपक्ष में कभी चन्द्रमा न दीखे तो जिस दिशा को चन्द्रमा उदय हो कर जाता है उस दिशा को देख लेवे ॥ ८ ॥ जिस में ब्राह्मण कोई न हो वा ब्रह्मतेज से हीन दुराचारी ब्राह्मण रहते हों ऐसे ग्राम में यदि ब्राह्मण को कुत्ता काटे

वृषंप्रदक्षिणोकृत्य सद्यःस्नात्वाशुचिर्भवेत् ॥ ९ ॥
चण्डालेनश्वपाकेन गोभिर्विप्रैर्हतोयदि ।
आहिताग्निर्मृतोविप्रो विषेणात्माहतोयदि ॥ १० ॥
दहेत्तं ब्राह्मणंविप्रो लोकाग्नौमन्त्रवर्जितम् ।
स्पृष्ट्वाचोह्यचदग्ध्वाच सपिण्डेषुचसर्वदा ॥ ११ ॥
प्राजापत्यंचरेत्पश्चाद्विप्राणामनुशासनात् ।
दग्ध्वास्थीनिपुनर्गृह्य क्षीरैःप्रक्षालयेद्द्विजः ॥ १२ ॥
स्वेनाऽग्निनास्वमन्त्रेण पृथगेतत्पुनर्दहेत् ।
आहिताग्निर्द्विजः कश्चित्प्रवसेत्कालचोदितः ॥ १३ ॥
देहनाशमनुप्राप्तस्तस्याऽग्निर्वसतेगृहे ।
श्रौताग्निहोत्रसंस्कारः श्रूयतांमुनिपुङ्गवाः ! ॥ १४ ॥
कृष्णाजिनंसमास्तीर्य कुशैस्तुपुरुषाकृतिम् ।
षट्शतानिशतंचैव पलाशानांचवृन्तकम् ॥ १५ ॥

तो शिव जी के वाहन बैल (नन्दी) की प्रदक्षिणा कर शीघ्र स्नान करके शुद्ध होता है ॥ ९ ॥ यदि किसी ब्राह्मण को चाण्डाल, श्वपाक (महतर की जाति डोम) गौ, वा ब्राह्मण, मारडाले वा विष खा कर स्वयं मरजाय और वह आहिताग्नि नाम अग्निहोत्री होय तो ॥ १० ॥ उस ब्राह्मण का लौकिक अग्नि से दाह करे । और यदि सपिण्ड के लोग उस का स्पर्श करें, श्मशान में ले जांय वा दाह करें तो क्रिया करने पश्चात् सदैव ॥ ११ ॥ ब्राह्मणों की आज्ञा से प्राजापत्य व्रत करें और उस के फूंके हुये हाड़ों को फिर बीन कर द्विज लोग दूधसे धोवें ॥ १२ ॥ फिर अपने अग्नि और अपनी शाखा के मन्त्र से दूसरी जगह विधिपूर्वक उस चाण्डादि के हाथ से मरे ब्राह्मण के हड्डियों का दाह करें। यदि अग्निहोत्री ब्राह्मण परदेश में काल वश ॥ १३ ॥ मरण को प्राप्त हो जाय और अग्नि उस के घर में विद्यमान होय तो हे मुनियो में श्रेष्ठ लोगो ! उस प्रेत का वेदोक्त अन्त्येष्टि संस्कार तुम सुनो ॥ १४ ॥ कालीमृगछाला बिछाकर कुशाओं से पुरुष का आकार बनावे सातसौ ७०० ढांकके पत्ते डंडी सहित इस निम्न लिखित प्रकार से उसमें लगावे ॥ १५ ॥

चत्वारिंशच्छिरेदद्यात्षष्टिंकण्ठेतुविन्यसेत् ।
बाहुभ्यांचशतंदद्यादङ्गुलीषुदशैवतु ॥ १६ ॥
शतंचोरसिसंदद्याच्छतंचैवोदरेन्यसेत् ।
दद्यादष्टौवृषणयोःपञ्चमेढ्रेतुविन्यसेत् ॥ १७ ॥
एकविंशतिमूरुभ्यां जानुजङ्घेचविंशतिम् ।
पादाङ्गुल्योःशतार्द्धंच यज्ञपात्रंततोन्यसेत् ॥ १८ ॥
शम्यांशिश्नेविनिक्षिप्य अरणिंमुष्कयोरपि ।
जूहूंचदक्षिणेहस्ते वामेतूपभृतंन्यसेत् ॥ १९ ॥
कर्णेतूलूखलंदद्यात्पृष्ठे चमुसलंन्यसेत् ।
उरसिक्षिप्यदृषदं तण्डुलाज्यतिलान्मुखे ॥ २० ॥
श्रोत्रेचप्रोक्षणींदद्यादाज्यस्थालींचचक्षषोः ।
कर्णनेत्रेमुखेघ्राणे हिरण्यशकलंन्यसेत् ॥ २१ ॥
अग्निहोत्रोपकरणमशेषंतत्रविन्यसेत् ।
असौस्वर्गायलोकायस्वाहेतिचघृताहुतिम् ॥ २२ ॥

चालीस शिर में,साठ पत्ते कंठ में, दोनों भुजाओं में सौ २ पत्ते,और दश २ (पचास) पत्ते अंगुलियों में लगावे ॥१६॥ सौ पत्ते छाती में, सौ पत्ते उदर में,और आठ पत्ते दोनों वृषणों (अण्डकोशों) में, और पांच मेढ्र (लिङ्ग) में, रक्खै ॥१७॥ इक्कीस २ पत्ते घोंटू से ऊपर दोनों जांघों में,घोंटू से नीचे गोड़ों में बीश २ पत्ते, और पगों की अङ्गुलियों में पचाश पत्ते रक्खै। फिर यज्ञ के पात्रों का विनियोग निम्न लिखित रीति से करे ॥१८॥ शम्या नामक यज्ञ पात्र को लिंग पर, अरणी को अंडकोशों पर, दहिने हाथ पर जुहू को, बांयें हाथ में उपभृत् को रक्खै ॥ १९ ॥ दहिने कान पर ऊखल को, पीठ पर मूसल को रक्खै, छाती पर दृषद् (हविष्पीषने की शिल) तंडुल, घी, और तिल मुख पर रक्खै ॥ २० ॥ कान पर प्रोक्षणी पात्र, नेत्रों में आज्य स्थाली को रक्खै, कान, नेत्र, मुख, नाक, इन के छिद्रों में सुवर्ण के टुकड़े डाले ॥ २१ ॥ और अग्निहोत्र के शेष बचे सब औजार वहां चितापर रखदे फिर (असौस्वर्गाय लोकाय स्वाहा) इस मंत्र से घृत की एक आहुति छोडे ॥२२॥

दद्यात्पुत्रोऽथवाभ्राताप्यन्योवापिचबान्धवः ।
यथादहनसंस्कारस्तथाकार्यंविचक्षणैः ॥ २३ ॥
ईदृशंतुविधिंकुर्याद्ब्रह्मलोकगतिःस्मृता ।
दहन्तियेद्विजास्तंतु तेयान्तिपरमांगतिम् ॥ २४ ॥
अन्यथाकुर्वतेकर्म त्वात्मबुद्धिप्रचोदिताः ।
भवन्त्यल्पायुषस्तेवै पतन्तिनरकेऽशुचौ ॥२५॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अतःपरंप्रवक्ष्यामि प्राणिहत्यासुनिष्कृतिम् ।
पराशरेणपूर्वोक्तां मन्वर्थेपिचविस्तृताम् ॥ १ ॥
क्रौंचसारसहंसांश्च चक्रवाकंचकुक्कुटम् ।
जालपादंचशरभं हत्वाऽहोरात्रतःशुचिः ॥ २ ॥
बलाकाटिट्टिभौवापि शुकपारावतावपि ।
अटीनबकघातीचशुद्ध्यतेनक्तभोजनात् ॥ ३ ॥
वृककाककपोतानां सारीतित्तिरिघातकः ।

पुत्र, भाई,अथवा अन्य कोई बांधव इस आहुति को देवे । फिर जैसे अग्नि से दाह करते हैं वैसे ही विद्वान् लोग सब कर्म करें ॥ २३ ॥ जिस मृतक का ऐसे पूर्वोक्त विधान से दाह कर्म किया जाय उस को ब्रह्मलोक प्राप्त होता है और जो ब्राह्मणादि द्विज उस अग्निहोत्री का दाह करते हैं वे भी परमगति को प्राप्त होते हैं ॥२४॥ जो लोग अपनी बुद्धि से अन्यथा शास्त्र विरुद्ध कर्म करते हैं वे अल्प अवस्था वाले होते हैं और अशुद्ध नरक में पड़ते हैं ॥२५॥

यह पाराशरीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में पांचवां अध्याय पूराहुआ ॥

यहां से प्राणियों की हत्याओं का प्रायश्चित्त कहतेहैं। जो प्रथममहर्षि पाराशर ने कहा और जिसे मनु जी ने भी विस्तार से कहाहै ॥१॥ क्रौंच, सारस,हंस, चकवा,मुरगा,जालपाद,शरभ (एक प्रकारका मृग) इनको मारकर एक दिन रात व्रत करने से शुद्ध होता है ॥२॥ बलाका, टिट्टिभ, तोता, कबूतर, अटीनबक (जो बगला उड़ता फिरे) इन के मारने पर दिन भर व्रत कर रात्रि को भोजन करने से शुद्ध होताहै ॥ ३ ॥ भेड़िया, कौआ, कपोत, सारी (पक्षिभेद) और

अन्तर्जलउभेसंध्ये प्राणायामेनशुद्ध्यति ॥ ४ ॥
गृध्रश्येनशशादीनामुलूकस्यचघातकः ।
अपक्वाशीदिनंतिष्ठे त्त्रिकालंमारुताशनः ॥ ५ ॥
वल्गुणीचटकानांच कोकिलाखञ्जरीटकान् ।
लावकान्रक्तपादांश्च शुद्ध्यतेनक्तभोजनात् ॥ ६ ॥
कारण्डवचकोराणां पिङ्गलाकुररस्यच ।
भारद्वाजादिकंहत्वा शिवंसंपूज्यशुद्ध्यति ॥ ७ ॥
भेरुण्डचाषभासांश्च पारावतकपिञ्जलौ ।
पक्षिणांचैवसर्वेषामहोरात्रमभोजनम् ॥ ८ ॥
हत्वामूषकमार्जारसर्पाऽजगरडुण्डुभान् ।
कृसरंभोजयेद्विप्रान्लोहदण्डंचदक्षिणाम् ॥ ९ ॥
शिशुमारंतथागोधां हत्वाकूर्मंचशल्लकम् ।
वृन्ताकफलभक्षीवाऽप्यहोरात्रेणशुद्ध्यति ॥ १० ॥
वृकजम्बुकऋक्षाणां तरक्षूणांचघातकः ।

तीतर इन को जो मारे वह दोनों संध्या (प्रातःकाल और सायंकाल) ओं में जल के भीतर प्राणायाम करने से शुद्ध होता है ॥ ४ ॥ गीध, बाज, खरहा, और उल्लू इन को जो मारे वह दिनभर पका अन्न न खावे किन्तु तीनों काल वायु भक्षण करता हुआ खड़ा रहे ॥५॥ बल्गुणी, चटका, कोइल, खंजरीट, (खंजन) लावक (लवा) रक्तपग वाले इन को मार कर दिन को जपादिव्रत तथा रात को भोजन करने से शुद्ध होता है ॥ ६ ॥ कारंडव (हंस का भेद) चकोर, पिंगला, (छोटा उल्लू) कुरर (कुररी) भारद्वाज (व्याघ्राट) आदि को मार कर शिव जी का पूजन करने से शुद्ध होता है ॥ ७ ॥ भेरुन्ड (भुरड) पपीहा, भास, पारावत, कपिंजल, और अन्य सब पक्षियों को मार कर एक दिन रात भोजन न करै ॥ ८ ॥ मूसा, बिलाव, सांप, अजगर, डुंडुभ, को मारने वाला ब्राह्मणों को खिचड़ी जिमाकर लोहे का डंडा दक्षिणा में देवै ॥ ९ ॥ शिशुमार, गोह, कछुआ, सेही, इनको जो मारे वह और जो बैंगन खाय वह एक दिन रात व्रत उपवास करने से शुद्ध होता है ॥ १० ॥ भेड़िया, गीदड़, रीछ, तरक्षु (चीता) इन को जो मारे वह ब्राह्मण को एक सेर भर तिल

तिलप्रस्थंद्विजेदद्याद्वायुभक्षोदिनत्रयम् ॥ ११ ॥
गजस्यचतुरङ्गस्य महिषोष्ट्रनिपातने ।
प्रायश्चित्तमहोरात्रं त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ १२ ॥
कुरङ्गंवानरंसिंहं चित्रंव्याघ्रञ्चघातयेत् ।
शुद्ध्यतेसत्रिरात्रेण विप्राणांतर्पणेनच ॥ १३ ॥
मृगरोहिद्वराहाणामवेर्बस्तस्यघातकः ।
अफालकृष्टमश्नीयादहोरात्रमुपोष्यसः ॥ १४ ॥
एवंचतुष्पदानांच सर्वेषांवनचारिणाम् ।
अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वैजातवेदसम् ॥ १५ ॥
शिल्पिनंकारुकंशूद्रं स्त्रियंवायस्तुघातयेत् ।
प्राजापत्यद्वयंकृत्वा वृषैकादशदक्षिणा ॥ १६ ॥
वैश्यंवाक्षत्रियंवापि निर्दोषंयोऽभिघातयेत् ।
सोऽतिकृच्छ्रद्वयंकुर्य्याद् गोविंशंदक्षिणांददेत् ॥ १७ ॥
वैश्यंशूद्रंक्रियासक्तं विकर्मस्थंद्विजोत्तमम् ।

देवे और तीन दिन वायु मात्र का भक्षण करे अर्थात् उपवास करे ॥ ११ ॥ हाथी, घोड़ा, भैंसा, ऊंट, इन को जो मारे वह एक दिन रात उपवास करे और त्रिकाल स्नान करे ॥ १२ ॥ कुरंग मृग, वानर, सिंह, चीता, वाघ, इनको जो मारे वह तीन दिन रात व्रत करने और ब्राह्मणों को भोजन कराने से शुद्ध होता है ॥ १३॥ हरिण, लालमृग, सूकर, भेड़, वकरा, इन को जो मारे वह एक दिन रात उपवास करके उस अन्न को खाय जो विना जोते पैदा हुआ हो ॥ १४ ॥ इसी प्रकार सब चौपाये और सब वन के विचरने वाले जीवों को मार कर जातवेदस अग्नि के मंत्र का जप करता हुआ एक दिन रात खाड़ रह के उपवास करे॥१५॥ शिल्पी, कारीगर, शूद्र, और स्त्री इनको जो मारडाले, वह दो प्राजापत्य करके दश गौ ग्यारहवां वैल दक्षिणा में देवे ॥१६ ॥ निर्दोष वैश्य वा क्षत्रिय को जो मार डाले वह दो अतिकृच्छ्र व्रत करै और वीस गौ दक्षिणा में देवे ॥१७॥ शुभ कर्म में तत्पर वैश्य वा शूद्र को और निन्दित कर्म करने वाले ब्राह्मण को जो मार डाले वह चांद्रायण व्रत करै और तीस

हत्वाचान्द्रायणंकुर्यात् त्रिंशद्गाश्चैवदक्षिणा ॥ १८ ॥
चाण्डालंहतवान्कश्चिद् ब्राह्मणोयदिकञ्चन ।
प्राजापत्यंचरेत्कृच्छ्रं गोद्वयंदक्षिणांददेत् ॥ १९ ॥
क्षत्रियेणापिवैश्येन शूद्रेणैवेतरेणच ।
चाण्डालेवधसंप्राप्ते कृच्छ्रार्द्धेनविशुद्ध्यति ॥२०॥
चौरःश्वपाकश्चाण्डालो विप्रेणाभिहतोयदि ।
अहोरात्रोषितःस्नात्वा पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥ २१ ॥
श्वपाकंचापिचाण्डालं विप्रःसंभाषतेयदि ।
द्विजैःसंभाषणंकुर्य्यात्सावित्रींचसकृज्जपेत् ॥ २२॥
चाण्डालैःसहसुप्तंतु त्रिरात्रमुपवासयेत् ।
चाण्डालैकपथंगत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः ॥ २३ ॥
चाण्डालदर्शनेसद्य आदित्यमवलोकयेत् ।
चाण्डालस्पर्शनेचैव सचैलंस्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥
चाण्डालखातवापीषु पीत्वासलिलमग्रजः ।
अज्ञानाच्चैकनक्तेन त्वहोरात्रेणशुद्ध्यति ॥ २५ ॥
चाण्डालभाण्डसंस्पृष्टं पीत्वाकूपगतंजलम् ।

गौ दक्षिणा में देवे ॥ १८ ॥ यदि कोई ब्राह्मण किसी चांडाल को मार डाले तो कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत करै और दो गौ दक्षिणा में देवे ॥ १९ ॥ यदि क्षत्रिय वैश्य वा शूद्र वा अन्य कोई वर्णसंकर ये चांडाल को मार डालें तो आधा कृच्छ्र व्रत करने से शुद्ध होते हैं ॥ २० ॥ यदि कोई ब्राह्मण, चौर श्वपाक, चांडाल इन को मार डाले तो एक दिन रात उपवास पूर्वक स्नान करके पञ्चगव्य पीने से शुद्ध होता है ॥ २१ ॥ यदि श्वपाक और चांडाल इन के संग ब्राह्मण संभाषण करे तो ब्राह्मणों के साथ संभाषण करके एक बार गायत्री जपै ॥ २२ ॥ जो ब्राह्मण चांडाल के संग सोवे तो तीन दिन उपवास करने से और चांडाल के संग एक मार्ग में चले तो गायत्री के स्मरण से शुद्ध होता है ॥ २३ ॥ चाण्डाल का दर्शन करे तो शीघ्र ही सूर्य का दर्शन करै और चांडाल का स्पर्श करे तो सचैल स्नान करे ॥ २४ ॥ चाण्डाल की खोदी बावड़ी वा कुआ में अज्ञान से ब्राह्मण जल पीवे तो एक रात भर और जान कर पीवे तो एक दिन रात व्रत करने से शुद्ध होता है ॥ २५ ॥ जिस कूप में चाण्डाल के

गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥ २६ ॥
चाण्डालघटसंस्थंतु यत्तोयंपिबतिद्विजः ।
तत्क्षणात्क्षिपतेयस्तु प्राजापत्यंसमाचरेत् ॥ २७ ॥
यदिनक्षिपतेतोयं शरीरेयस्यजीर्यति ।
प्राजापत्यंनदातव्यं कृच्छ्रंसांतपनंचरेत् ॥ २८ ॥
चरेत्सांतपनंविप्रः प्राजापत्यंतुक्षत्रियः ।
तदर्धंतुचरेद्वैश्यः पादंशूद्रस्यदापयेत् ॥ २९ ॥
भाण्डस्थमन्त्यजानांतु जलंदधिपयःपिबेत् ।
ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यः शूद्रश्चैवप्रमादतः ॥ ३० ॥
ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनांतुनिष्कृतिः ।
शूद्रस्यचोपवासेन तथादानेनशक्तितः ॥ ३१ ॥
भुंङ्क्तेऽज्ञानाद्द्विजश्रेष्ठः चाण्डालान्नंकथंचन ।
गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेणशुद्ध्यति ॥ ३२ ॥
एकैकंग्रासमश्नीयाद् गोमूत्रयावकस्यच ।
दशाहंनियमस्थस्य व्रतंतत्तुविनिर्द्दिशेत् ॥ ३३ ॥

वर्त्तन का स्पर्श हुआ हो उस कुए का जल पिया होतो गोमूत्र और कुलत्थ को खाकर एक दिन रात व्रत करने से शुद्ध होता है ॥ २६ ॥ यदि चांडाल के घट का जल ब्राह्मण पीलेवे और उस जल को उसी क्षण में वमन कर दे तो एक प्राजापत्य व्रत करे ॥ २७ ॥ यदि वमन न करदे और उस जल को पचाजाय तो प्राजापत्य न करै किन्तु सांतपन कृच्छ्र व्रत करे ॥ २८ ॥ ब्राह्मण कृच्छ्र सांतपन व्रत,क्षत्रिय प्राजापत्य, वैश्य आधाप्राजापत्य और शूद्र चौथाई प्राजापत्य व्रत करे ॥ २९ ॥ यदि अन्त्यजों के पात्र में रक्खा जल, दही, दूध, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वा शूद्र भूल कर के पी लेवें तो ॥ ३० ॥ ब्रह्मकूर्च उपवास से द्विजातियों की और एक उपवास तथा यथाशक्ति किये दान से शूद्र की शुद्धि होती है ॥ ३१ ॥ यदि किसी प्रकार अज्ञान से ब्राह्मण चांडाल के अन्न को खालेवे तो गोमूत्र और कुलत्थ को खाकर दश दिन में शुद्ध होता है ॥ ३२ ॥ और गोमूत्र में कुलत्थ को दश दिन तक एक २ ग्रास खाय और नियम से रहे यही व्रत उस ब्राह्मण के लिये बताना चाहिये ॥ ३३ ॥

अविज्ञातस्तुचाण्डालो यत्रवेश्मनितिष्ठति ।
विज्ञातउपसंन्यस्य द्विजाःकुर्युरनुग्रहम् ॥३४॥
मुनिवक्त्रोद्गतान्धर्मान् गायन्तोवेदपारगाः ।
पतन्तमुद्धरेयुस्ते धर्मज्ञाःपापसंकटात् ॥ ३५ ॥
दध्नाचसर्पिषाचैव क्षीरगोमूत्रयावकम् ।
भुञ्जीतसहभृत्यैश्च त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ ३६ ॥
त्र्यहंभुञ्जीतदध्नाच त्र्यहंभुञ्जीतसर्पिषा।
त्र्यहंक्षीरेणभुञ्जीत एकैकेनदिनत्रयम् ॥३७ ॥
भावदुष्टंनभुञ्जीत नोच्छिष्टंकृमिदूषितम् ।
दधिक्षीरस्यत्रिपलं पलमेकंघृतस्यतु ॥ ३८ ॥
भस्मनातुभवेच्छुद्धिरुभयोःकांस्यताम्रयोः ।
जलशौचेनवस्त्राणां परित्यागेनमृन्मयम् ॥ ३९ ॥

यदि विना जाने कोई चांडाल द्विजों के घर में ठहरे तो जान लेने पर उसे निकाल कर द्विज ब्राह्मण लोग उस ब्राह्मण पर दया कर उसे शुद्ध करें ॥३४॥ मुनियों के मुख से निकसे धर्मों को गाते हुये वेद के पार पहुंचे हुए धर्म के ज्ञाता विद्वान् लोग पतित हुए उस ब्राह्मण को प्रायश्चित्त कराके पाप संकट से उद्धार करें ॥ ३५ ॥ वह ब्राह्मण जिस के घर में अज्ञात चाण्डाल मिल जुल के रहा हो दही, घी, दूध, गोमूत्र,और कुलत्थ इन को भृत्यों और स्त्री पुत्रादि के सङ्ग निम्न प्रकार से खावे और त्रिकाल स्नान करै ॥ ३६ ॥ तीन दिन दही से, तीन दिन घी से,और तीन दिन दूध से (यावक) नाम कुल्माष–(कुलथी) खावे और तीन दिन एक २ दही आदि खावे ॥ ३७ ॥ जिस में कोई दोषारोपण हो गया हो वा दूषित होने की शंका हो गयी हो, जो किसी का झूठा हो, जिस में कृमि पड़ गये हों,उसे न खावे। दही और घी ऊपर कहे व्रत में तीन २ पल (अर्थात् चार तोला का एक पल होता तब १२ तोले के तीन पल हुए) और घी एक पल खावे ॥ ३८ ॥ जिस के घर में चाण्डाल रह चुका हो उस घर के कांसे और तांबे के पात्रों की शुद्धि भस्म से, जलमें धोने से वस्त्रों की शुद्धि होती और मट्टी के पात्र अशुद्ध हों तो त्याग देने चाहिये ॥ ३९ ॥

कुसुम्भगुडकार्पासलवणंतैलसर्पिषी ।
द्वारेकृत्वातुधान्यानि दद्याद्वेश्मनिपावकम् ॥ ४० ॥
एवंशुद्धस्ततःपश्चात्कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ।
त्रिंशतंगावृषंचैकं दद्याद्विप्रेषुदक्षिणाम् ॥ ४१ ॥
पुनर्लेपनखातेन होमजाप्येनशुद्ध्यति ।
आधारेणचविप्राणां भूमिदोषोनविद्यते ॥ ४२ ॥
चाण्डालैःसहसंपर्कं मासंमासार्द्धमेववा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेनविशुद्ध्यति ॥ ४३ ॥
रजकीचर्मकारीच लुब्धकीवेणुजीविनी ।
चातुर्वर्ण्यस्यतुगृहे त्वविज्ञातानुतिष्ठति ॥ ४४ ॥
ज्ञात्वातुनिष्कृतिंकुर्यात् पूर्वोक्तस्यार्द्धमेवतु ।
गृहदाहंनकुर्वीत शेषंसर्वंचकारयेत् ॥ ४५ ॥
गृहस्याभ्यन्तरंगच्छेच्चाण्डालोयदिकस्यचित् ।
तमागाराद्विनिःसार्य मृद्भाण्डंतुविसर्जयेत् ॥ ४६ ॥
रसपूर्णंतुमृद्भाण्डं नत्यजेत्तुकदाचन ।

फिर घर के द्वारपर कुसुम, गुड़, कपास, लवण, तेल, घी अन्न इन को निकाल कर घर में अग्नि लगा देवे ॥ ४० ॥ इस प्रकार शुद्ध होकर ब्राह्मणों को भोजन कराके तृप्त करै और तीस गौ एक बैल ब्राह्मणों को दक्षिणा देवे ॥ ४१ ॥ दुबारा लीपना, खोदना, होम, जप, और ब्राह्मणों के बैठने से पृथ्वी शुद्ध होती है फिर उस भूमि में कुछ दोष नहीं रहता ॥ ४२ ॥ यदि चांडालों के संग एक महीना वा पन्द्रह दिन संसर्ग रहे तो पन्द्रह १५ दिन तक गोमूत्र और कुलथी खाकर शुद्ध होता है ॥ ४३॥ रजकी (धोबिन) चमारी, व्याधनी, बांस के पात्र बना के जीवि का करने वाले की स्त्री, ये यदि अज्ञान से चारों वर्णों के घर में निवास करें तो ॥ ४४॥ जानने पीछे पूर्वोक्त का आधा प्रायश्चित्त करै घर को जलावे नहीं और सब कृत्य आधा करै॥४५॥ यदि किसी के घर के भीतर चांडाल चला जाय तो उस को घर से बाहर निकाल कर मिट्टी के पात्रों को फेंक देवे ॥ ४६ ॥ परंतु रस के भरे मिट्टी

गोमयेनतुसंमिश्रैर्जलैःप्रोक्षेद्गृहंतथा ॥ ४७ ॥
ब्राह्मणस्यव्रणद्वारे पूयशोणितसंभवे ।
कृमिरुत्पद्यतेयस्य प्रायश्चित्तंकथंभवेत् ॥ ४८ ॥
गवांमूत्रपुरीषेण दध्नाक्षीरेणसर्पिषा ।
त्र्यहंस्नात्वाचपीत्वाच कृमिदष्टःशुचिर्भवेत् ॥ ४९ ॥
क्षत्रियोऽपिसुवर्णस्य पञ्चमाषान्प्रदायतु ।
गोदक्षिणांतुवैश्यस्याप्युपवासंविनिर्दिशेत् ॥ ५० ॥
शूद्राणांनोपवासः स्याच्छूद्रोदानेनशुद्ध्यति ।
ब्राह्मणांस्तुनमस्कृत्य पञ्चगव्येनशुध्यति ॥ ५१ ॥
अच्छिद्रमितियद्वाक्यं वदन्तिक्षितिदेवताः ।
प्रणम्यशिरसाग्राह्यमग्निष्टोमफलंहितत् ॥ ५२ ॥
जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रंयज्ञकर्मणि ।
सर्वंभवतिनिश्छिद्रं ब्राह्मणैरुपपादितम् ॥ ५३ ॥
व्याधिव्यसनिनिश्रान्ते दुर्भिक्षेडामरेतथा ।

के पात्रों को कदापि न त्यागै और गोबर मिले जल से घर को लीपे वा छिड़के ॥ ४७ ॥ राध (पीव) और रुधिर से भरे ब्राह्मण के घाव में यदि कृमि (कीड़े) पड़ जांय तो प्रायश्चित्त कैसे हो सो कहते हैं ॥ ४८ ॥ गोमूत्र, गोबर, गोदही गोदूध गोघृत इन को मिला कर तीन दिन स्नान और इन को तीन दिन पीकर वह कीड़ों का काटा हुआ पुरुष शुद्ध होता है ॥ ४९ ॥ क्षत्रिय भी पांच मासे सुवर्ण का दान देवे । वैश्य एक गौ की दक्षिणा देवे इसी उपवास से वह शुद्ध होता है ॥ ५० ॥ शूद्रों को उपवास का निषेध है इस से शूद्र दान से शुद्ध होता है । शूद्र दान देने पश्चात् ब्राह्मणों को प्रणाम कर और पञ्चगव्य का प्राशन करने से शुद्ध होता है ॥ ५१ ॥ जिस काम को ब्राह्मण लोग (अच्छिद्रमस्तु) ऐसा कह देवें । उस वाक्य को सब लोग शिरोधार्य मानकर ग्रहण करें क्योंकि उससे अग्निष्टोम यज्ञ का फल होता है ॥५२॥ जप का छिद्र तप का छिद्र और यज्ञ कर्म का छिद्र नाम जो कुछ त्रुटि है । ब्राह्मणों के कहने से वह सब छिद्र रहित हो जाता है ॥ ५३ ॥ यदि शूद्र मनुष्य व्याधियों से पीड़ित दुःखित हो, वा दुर्भिक्ष से पीड़ित हो, वा लूट लड़ाई

उपवासोव्रतोहोमो द्विजसंपादितानिवै ॥ ५४ ॥
अथवाब्राह्मणास्तुष्टाः सर्वेकुर्वन्त्यनुग्रहम् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति द्विजैःसंवर्धिताशिषा ॥५५॥
दुर्बलानुग्रहःप्रोक्तस्तथावैबालवृद्धयोः ।
ततोऽन्यथाभवेद्दोषस्तस्मान्नानुग्रहःस्मृतः ॥ ५६
स्नेहाद्वायदिवालोभाद्भयादज्ञानतोऽपिवा ।
कुर्वन्त्यनुग्रहंयेतु तत्पापंतेषुगच्छति ॥ ५७ ॥
शरीरस्याऽत्ययेप्राप्ते वदन्तिनियमंतुये ।
महत्कार्योपरोधेन नस्वस्थस्यकदाचन ॥ ५८ ॥
स्वस्थस्यमूढाःकुर्वन्ति नियमंतुवदन्तिये ।
तेतस्याविघ्नकर्तारः पतन्तिनरकेऽशुचौ ॥ ५९ ॥
स्वयमेवव्रतंकृत्वा ब्राह्मणंयोऽवमन्यते ।
वृथातस्योपवासःस्यान्नसपुण्येनयुज्यते ॥ ६० ॥

आदि से दुःखित हो तो उपवास, व्रत और होम सुपात्र ब्राह्मण द्वारा करावे ॥ ५४ ॥ अथवा प्रसन्न संतुष्ट हुए सब ब्राह्मण लोग अनुग्रह (कृपा) करते हैं । अर्थात् ब्राह्मणों के आशीर्वाद से बढ़ा हुआ वह शूद्र सब कामनाओं को प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥ निर्बल (असमर्थ) बालक, और वृद्ध इन पर अनुग्रह करना चाहिये । यदि इन से भिन्न मनुष्यों पर अनुग्रह किया जाय अर्थात् प्रायश्चित न कराया जाय तो ठीक नहीं है ॥ ५६ ॥ उसको अनुग्रह नहीं कहते जो स्नेह से, भय से, लोभ से, अथवा अज्ञान से, ब्राह्मण लोग किसी पर अनुग्रह करते हैं तो अपराधी का पाप उन को ही लगता है ॥५७॥ जो ब्राह्मण लोग प्राण नाश की सम्भावना होने पर भी प्रायश्चित्त का विधान करते, और बड़े महान् कामों की हानि होने के विचार से स्वस्थ पुरुष को नियम पालन का निषेध करते हैं ॥५८॥ तथा जो मूढ़लोग स्वस्थ पुरुष के पालनीयनियम को लोभादि से स्वयं पालन करते वा कहते हैं । वे सब उस के कार्य में विघ्न करने वाले होने से अपवित्र नरक में पड़ते हैं ॥५९॥ जो पुरुष विद्वानों से पूछे बिना आपही व्रत करके ब्राह्मणों का तिरस्कार करता है। उस का उपवास वृथा है और उसे पुण्य फल प्राप्त नहीं होता ॥६०॥

सएवनियमोग्राह्यो यमेकोऽपिवदेद्द्विजः ।
कुर्याद्वाक्यंद्विजानांतु अन्यथाभ्रूणहाभवेत् ॥ ६१ ॥
ब्राह्मणाजङ्गमंतीर्थं तीर्थभूताहिसाधवः ।
तेषांवाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्तिमलिनाजनाः ॥ ६२ ॥
ब्राह्मणायानिभाषन्ते मन्यन्तेतानिदेवताः ।
सर्वदेवमयोविप्रो नतद्वचनमन्यथा ॥ ६३ ॥
उपवासोव्रतंचैव स्नानंतीर्थंजपस्तपः ।
विप्रैःसंपादितंयस्य संपूर्णंतस्यतद्भवेत् ॥६४ ॥
अन्नाद्येकीटसंयुक्ते मक्षिकाकेशदूषिते ।
तदन्तरास्पृशेच्चापस्तदन्नंभस्मनास्पृशेत् ॥ ६५ ॥
भुञ्जानश्चैवयोविप्रः पादंहस्तेनसंस्पृशेत् ।
समुच्छिष्टमसौभुङ्क्ते योभुङ्क्तेभुक्तभाजने ॥ ६६ ॥
पादुकास्थोनभुञ्जीत पर्यङ्कस्थःस्थितोऽपिवा ।

इससे वही नियम ग्रहण करना योग्य है जिसे एक भी ब्राह्मण कहै । और ब्राह्मण के वचन को अवश्य स्वीकार करे यदि न करेगा तो भ्रूणहत्या का दोष लगता है ॥ ६१ ॥ क्योंकि ब्राह्मण लोग जंगम (चेतन) तीर्थ हैं और साधु (सीधे शुद्ध निर्विकार ब्राह्मण लोग) भी तीर्थ रूप ही होते हैं । उन ब्राह्मणों के वाक्य रूप जल से ही मलिन पुरुष शुद्ध हो जाते हैं ॥ ६२ ॥ ब्राह्मण लोग जिन धर्मयुक्त वाक्यों को कहते हैं उन्हें देवता भी मानते हैं । ब्राह्मण सर्व देवताओं का रूप है इस से उस का वचन अन्यथा नहीं हो सकता ॥ ६३ ॥ उपवास व्रत स्नान जप तप ये सब जिस के ब्राह्मण ने संपादन (अनुमोदन) कर दिये उस को ही इन का ठीक फल होता है ॥ ६४॥ यदि पकाये हुये अन्न में कीड़े मिल गये हों वा वह भोज्यान्न मक्खी और केशों से दूषित हो गया हो तो कीड़ा, मक्खी केशादि को निकाल के उस के बीच २ जल से धो कर शुद्ध करे और उस अन्न का भस्म से स्पर्श करे ॥६५॥ जो भोजन करता हुआ ब्राह्मण पग को दहिने हाथ से छूलेवे तो अथवा किसी के जूंठे पात्र में भोजन करे तो उस का उच्छिष्ट भोजन करना जानो ॥ ६६ ॥ खड़ाऊं पर बैठ कर वा खाट अथवा बिस्तरे पर बैठ कर अथवा खड़ा हो कर

चाण्डालेनशुनादृष्टं भोजनंपरिवर्जयेत् ॥६७॥
पक्वान्नंप्रतिषिद्धंस्यादन्नशुद्धिस्तथैवच ।
यथापराशरेणोक्तं तथैवाहंवदामिवः ॥ ६८ ॥
मितंद्रोणाढकस्यान्नं काकश्वानोपघातितम् ।
केनेदंशुद्ध्यतेचेति ब्राह्मणेभ्योनिवेदयेत् ॥ ६९ ॥
काकश्वानावलीढंतु द्रोणान्नंनपरित्यजेत् ।
वेदवेदाङ्गविद्विप्रैर्धर्मशास्त्रानुपालकैः ॥ ७० ॥
प्रस्थाद्द्वात्रिंशतिर्द्रोणः स्मृतोद्विप्रस्थआढकः ।
ततोद्रोणाऽढकस्यान्नं श्रुतिस्मृतिविदोविदुः ॥ ७१ ॥
काकश्वानावलीढंतु गवाघ्रातंखरेणवा ।
स्वल्पमन्नंत्यजेद्विप्रः शुद्धिर्द्रोणाढकेभवेत् ॥ ७२ ॥
अन्नस्योद्धृत्यतन्मात्रं यच्चलालाहतंभवेत् ।
सुवर्णोदकमभ्युक्ष्य हुताशेनैवतापयेत् ॥ ७३ ॥
हुताशनेनसंस्पृष्टं सुवर्णसलिलेनच ।

भोजन न करे । कुत्ते और चांडाल के देखे हुये भोजन को त्याग देवे ॥६७॥ पकाया हुआ कोई अन्न निषिद्ध है वा किसी अन्न की शुद्धि हो सकती है । व्यास जी कहते हैं कि इस उक्त विषय में महर्षि पराशर ने जैसा विचार कहा वैसा हम कहते हैं ॥६८॥ द्रोण वा आढक भर पकाये अन्न को यदि कौआ वा कुत्ता बिगाड़ देवें तो यह अन्न कैसे शुद्ध हो ऐसा ब्राह्मणों से कहे ॥६९॥ उस समय धर्मशास्त्र की मर्यादा के रक्षक और वेद वेदाङ्ग के जानने वाले ब्राह्मण लोग यह आज्ञा देवें कि काक वा कुत्ते ने बिगाड़े द्रोण भर अन्न को न त्यागे ॥ ७० ॥ बत्तीस प्रस्थ (अंजली) का एक द्रोण और दो प्रस्थ का एक आढक कहाता है । तिस से श्रुति स्मृति के ज्ञाता विद्वान् लोग द्रोणान्न तथा आढकान्न को शुद्ध मानते हैं ॥ ७१ ॥ यदि कौआ वा कुत्ता ने चाटा और गौ वा गधे ने सूंघा थोड़ा अन्न हो तो त्याग देवे और वह पकाया अन्न द्रोण वा आढक भर होतो उस की शुद्धि हो सकती है ॥ ७२ ॥ जितने अन्न में कौवे आदि का मुख लगा हो उतना निकाल देने बाद सुवर्ण के जल से छिड़क कर अग्नि से तपावे तव शुद्ध हो जाता है ॥ ७३ ॥ क्योंकि जिस अन्न में अग्नि का

विप्राणांब्रह्मघोषेण भोज्यंभवतितत्क्षणात् ॥ ७४ ॥
स्नेहोवागोरसोवाऽपि तत्रशुद्धिःकथंभवेत् ।
अल्पंपरित्यजेत्तत्र स्नेहस्योत्पवनेनच ॥
अनलज्वालयाशुद्धिर्गोरसस्यविधीयते ॥ ७५ ॥
इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥
अथातोद्रव्यशुद्धिस्तु पराशरवचोयथा ।
दारवाणांतुपात्राणां तत्क्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ १ ॥
मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिनायज्ञकर्मणि ।
चमसानांग्रहाणांच शुद्धिःप्रक्षालनेनच ॥ २ ॥
चरूणांस्रुक्स्रुवाणांच शुद्धिरुष्णेनवारिणा ।
भस्मनाशुद्ध्यतेकांस्यं ताम्रमम्लेनशुद्ध्यति ॥ ३ ॥
रजसाशुद्ध्यतेनारी विकलंयानगच्छति ।
नदीवेगेनशुद्ध्येत लेपोयदिनदृश्यते ॥ ४ ॥

और सुवर्ण के जल का स्पर्श होता है उससे तथा ब्राह्मणों के वेद पाठ की ध्वनि से वह अन्न उसी समय खाने योग्य शुद्ध हो जाता है ॥ ७४ ॥ यदि स्नेह (घी आदि) हो वा गोरस (दूध आदि) होय तो उस की शुद्धि कैसे हो ? उस में से थोड़ा सा निकाल देवे और घी आदि स्नेह को छान लेवे और दूध को अग्नि की ज्वाला से तपा लेने से शुद्धि कही है ॥ ७५॥

यह पाराशरीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में छठा अध्याय पूरा हुआ ॥६॥

अब महर्षि पराशर भगवान् के वचनानुसार द्रव्य की शुद्धि कहते हैं। काठ के पात्रों की तो उसी समय शुद्धि करनी इष्ट है ॥ १ ॥ यज्ञ कर्म में यज्ञ के पात्रों की शुद्धि हाथ से मांजने से होती सोम याग के चमस और सोम ग्रहों की शुद्धि जल में धोने से होती है ॥ २ ॥ चरुस्थाली, स्रुक, स्रुवा, इन यज्ञपात्रों की उष्णजल से, कांसे के पात्र की भस्म से और तांबे के पात्र की खटाई से मांजने पर शुद्धि होती है ॥ ३ ॥ यदि स्त्री ने पर पुरुष से व्यभिचार न किया हो किन्तु केवल मन से चलायमान हुई हो तो वह रजोदर्शन (मासिक धर्म होने) ही से शुद्ध होजाती है और यदि नदी में कहीं अधिक मलिनता संलग्न न हो तो उस की साधारण अशुद्धि प्रवाह के वेग से शुद्ध हो जाती है ॥ ४ ॥

वापीकूपतडागेषु दूषितेषुकथंचन ।
उद्धृत्यवैकुंभशतं पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥ ५ ॥
अष्टवर्षाभवेद्गौरी नववर्षातुरोहिणी ।
दशवर्षाभवेत्कन्या ततऊर्ध्वंरजस्वला ॥ ६ ॥
प्राप्तेतुद्वादशेवर्षे यःकन्यांनप्रयच्छति ।
मासिमासिरजस्तस्याः पिबन्तिपितरःस्वयम् ॥ ७ ॥
माताचैवपिताचैव ज्येष्ठोभ्रातातथैवच ।
त्रयस्तेनरकंयान्ति दृष्ट्वाकन्यांरजस्वलाम् ॥ ८ ॥
यस्तांसमुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणोमदमोहितः ।
असंभाष्योह्यपाङ्क्तेयः सविप्रोवृषलीपतिः ॥ ९ ॥
यःकरोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनंद्विजः ।

बावड़ी, कूप, तालाव, यदि ये किसी प्रकार दूषित हो जांय तो उन में से सौ घड़े जल निकाल कर पंचगव्य गेरने से शुद्ध होजाते हैं ॥ ५ ॥ आठ वर्ष की कन्या को गौरी,नौ वर्ष की रोहिणी, और दश वर्ष की को कन्या ही कहते हैं और दश वर्ष से ऊपर रजस्वला कोटि में गिनी जाती है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य बारह वर्ष की कन्या का विवाह नहीं करता उसके पितर महीने २ में उस लड़की के रज को पीते हैं ॥७॥ माता, पिता, और जेठा भाई ये तीनों रजस्वला कन्या को देख २ कर नरक में जाते (पाप के भागी) होते हैं ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मणादि मद से मोहित उस रजस्वला * कन्या के साथ विवाह करता है वह भी संभाषण करने और पंक्ति में बैठाने योग्य नहीं क्योंकि वह स्वधर्म से पतित स्त्री का पति है ॥ ९ ॥ जो द्विज ब्राह्मणादि पुरुष एक रात भर में जितना पाप वृषली (वेश्या) का सेवन करने से प्राप्त

---

* रजो दर्शन होने से पहिले विवाह करे यह सभी धर्मशास्त्रों की राय से विधिवाक्य है। यदि अच्छा वर खोजने आदि में देर लगे और कन्या रजस्वला होने लगे तो दोष पितादि को नहीं लगता यह उक्त विधि का अपवाद माना जायगा। माता पितादि नरक में जाते हैं यह उक्त विधिवाक्य का अर्थवाद है। जिस का मतलब यह है कि रजस्वला होने पर सन्तानोत्पत्ति की सम्भावना है उस में बाधा पड़ती है। इस कारण माता पितादि को अपराध लगता है। विधि से विरुद्ध करने का निन्दार्थ वाद विध्यनुकूल करने की आवश्यकता और उत्तमता दिखाने के लिये है। विधि विरुद्ध करना ही पाप है और वह नरक नाम दुःख विशेष का हेतु है॥

सभैक्ष्यभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्विशुद्ध्यति ॥ १० ॥
अस्तंगतेयदासूर्ये चाण्डालंपतितंस्त्रियम् ।
सूतिकांस्पृशतेचैव कथंशुद्धिर्विधीयते ॥ ११ ॥
जातवेदंसुवर्णंच सोममार्गंविलोक्यच ।
ब्राह्मणानुगतश्चैव स्नानंकृत्वाविशुध्यति ॥ १२ ॥
स्पृष्ट्वारजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणीब्राह्मणींतथा ।
तावत्तिष्ठेन्निराहारा त्रिरात्रेणैवशुद्ध्यति ॥१३॥
स्पृष्ट्वारजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणीक्षत्रियांतथा ।
अर्द्धकृच्छ्रंचरेत्पूर्वा पादमेकमनन्तरा ॥ १४ ॥
स्पृष्ट्वारजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणीवैश्यजांतथा ।
पादहीनंचरेत्पूर्वा पादमेकमनन्तरा ॥ १५ ॥
स्पृष्ट्वारजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणीशूद्रजांतथा ।
कृच्छ्रेणशुद्ध्यतेपूर्वा शूद्रादानेनशुद्ध्यति ॥ १६ ॥
स्नातारजस्वलायातु चतुर्थेऽहनिशुद्ध्यति ।

करता है वह भिक्षा का अन्न खाकर और जप करता हुआ तीन वर्ष तक किये प्रायश्चित्त से शुद्ध होता है ॥१०॥ यदि सूर्य के अस्त हो जाने पर चांडाल, पतित, और सूतिका स्त्री इनका स्पर्श करै तो कैसे शुद्धि कही है? सो कहते हैं ॥११॥ अग्नि, सुवर्ण, और चन्द्रमा का मार्ग इन को देख कर और ब्राह्मणों की आज्ञा से स्नान करके शुद्ध होता है ॥ १२ ॥ यदि दो रजस्वला ब्राह्मणी परस्पर स्पर्श करें तो रजोदर्शन की समाप्ति तक निराहार रहैं और तीन ही दिन प्रायश्चित्त करने से शुद्ध होती हैं ॥ १३ ॥ यदि ब्राह्मणी और क्षत्रिया रजस्वला परस्पर छूजावें तो ब्राह्मणी अर्द्ध कृच्छ्र व्रत और क्षत्रिया चौथाई कृच्छ्र व्रत प्रायश्चित्त करै ॥ १४ ॥ यदि रजस्वला ब्राह्मणी और वैश्या परस्पर स्पर्श करलें तो ब्राह्मणी पौन कृच्छ्र व्रत और वैश्या चौथाई कृच्छ्र व्रत करे ॥ १५ ॥ यदि रजस्वला ब्राह्मणी और शूद्रा परस्पर स्पर्श कर लें तो ब्राह्मणी एक कृच्छ्र से और शूद्रा स्त्री दान करने से ही शुद्ध हो जाती है ॥ १६ ॥ जो रजस्वला स्त्री स्नान करके चौथे दिन शुद्ध

कुर्याद्रजोनिवृत्तौतु दैवपित्र्यादिकर्मच ॥ १७ ॥
रोगेणयद्रजःस्त्रीणामन्वहंतुप्रवर्त्तते ।
नाऽशुचिःसाततस्तेन तत्स्याद्वैकारिकंमतम् ॥१८॥
साध्वाचारानतावत्स्याद्रजोयावत्प्रवर्त्तते ।
रजोनिवृत्तौगम्यास्त्री गृहकर्मणिचैवहि ॥ १९ ॥
प्रथमेऽहनिचाण्डाली द्वितीयेब्रह्मघातिनी ।
तृतीयेरजकीप्रोक्ता चतुर्थेऽहनिशुद्ध्यति ॥ २० ॥
आतुरेस्नानउत्पन्ने दशकृत्वोह्यनातुरः ।
स्नात्वास्नात्वास्पृशेदेनं ततःशुद्ध्येत्सआतुरः ॥२१॥
उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुनाशूद्रेणवाद्विजः।
उपोष्यरजनीमेकां पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥ २२ ॥
अनुच्छिष्टेनशूद्रेण स्पर्शेस्नानंविधीयते ।
तेनोच्छिष्टेनसंस्पृष्टः प्राजापत्यंसमाचरेत् ॥ २३ ॥

होती है वह रज के निवृत्त होने पर देवता तथा पितृआदि सम्बन्धी कर्मों में अपने पति के साथ संमिलित हो सकती है ॥१७॥ जो रोग के कारण प्रतिदिन स्त्रियों के रजोधर्म होता है उस रज से वह स्त्री अशुद्ध नहीं होती क्योंकि वह विकार जन्य माना गया है ॥ १८ ॥ जबतक रजोदर्शन रहता है तब तक शुद्ध आचरण न करै रज की निवृत्ति होने पर ही स्त्री गृहस्थीके काम और संग करने योग्य होती है ॥१९ ॥ पहिले दिन चांडाली के तुल्य अशुद्ध, दूसरे दिन ब्रह्महत्यारी के तुल्य, तीसरे दिन रजकी (धोबिन) के तुल्य अशुद्ध जानना और चौथे दिन शुद्ध होती है ॥ २० ॥ यदि रोगी को स्नान करना ही पड़े तो नीरोग मनुष्य दशबार स्नान कर २ उस रोगी का स्पर्श करै तब वह स्नान कियेके तुल्यशुद्ध होजाताहै॥२१॥यदि ब्राह्मण जूठन खाते हुए कुत्ते वा शूद्र का स्पर्शकरले तो एक दिन रात उपवास करके पञ्चगव्य पीने से शुद्ध होताहै॥२२॥ जो उच्छिष्ट नहो ऐसा शूद्र ब्राह्मण का स्पर्श कर लेवै तो स्नान ही करै। यदि उच्छिष्ट शूद्र स्पर्श करले तो प्राजापत्य व्रत करै ॥ २३ ॥ जिस में

भस्मनाशुद्ध्यतेकांस्यं सुरयायन्नलिप्यते ।
सुरामात्रेणसंस्पृष्टं शुद्ध्यतेऽग्न्युपलेखनैः ॥ २४ ॥
गवाघ्रातानिकांस्यानि श्वकाकोपहतानिच ।
शुद्ध्यन्तिदशभिःक्षारैः शूद्रोच्छिष्टानियानिच ॥ २५
गण्डूषंपादशौचंच कृत्वावैकांस्यभाजने ।
षण्मासान्भुविनिक्षिप्य उद्धृत्यपुनराहरेत् ॥ २६ ॥
आयसेष्वपसारेण सीसस्याग्नौविशोधनम् ।
दन्तमस्थितथाशृङ्गं रौप्यंसौवर्णभाजनम् ॥ २७ ॥
मणिपाषाणशंखाश्च एतान्प्रक्षालयेज्जलैः ।
पाषाणेतुपुनर्घर्ष एषाशुद्धिरुदाहृता ॥ २८ ॥
अद्भिस्तुप्रोक्षणंशौचं बहूनांधान्यवाससाम् ।
प्रक्षालनेनत्वल्पानामद्भिःशौचंविधीयते ॥ २९ ॥
मृद्भाण्डदहनाच्छुद्धिर्धान्यानांमार्जनादपि ।
वेणुवल्कलचीराणां क्षौमकार्पासवाससाम् ॥

मदिरा का संसर्ग न हुआ हो ऐसा कांसे का पात्र भस्म से, और जिस में मदिरा लग गई हो वह अग्नि में तपाने से, और घिसने छीलने से, शुद्ध होता है ॥ २४ ॥ गौ के सूंघे, कुत्ता और कौआ के छूए, और शूद्र ने जिन में खाया हो ऐसे कांसे के पात्र दश खारी वस्तु लगाने से शुद्ध होते हैं ॥ २५ ॥ कांसे के पात्र में कुल्ला करे वा पग धोवे तो उसे छः महीने तक पृथ्वी में गाड़ रक्खे फिर निकाले तब भोजनादि के योग्य शुद्ध होता है ॥२६॥ लोहे के पात्र स्थानान्तर में कर देने ही से शुद्ध हो जाते हैं । और सीसे के पात्रों की शुद्धि अग्नि में तपाने से होती है । दांत, हड्डी सींग, और चांदी सोने के पात्र मणि, पत्थर-और शंख इनको जलसे धोके शुद्ध करे परन्तु पत्थर के पात्र॥२७॥ को फिर से घिसे तब शुद्ध होता है॥२८॥ बहुत से धान्य की राशि तथा बहुत से वस्त्र किसी कारण अशुद्ध हो जांय तो कुशों द्वारा जल छिड़कने से, तथा थोड़े वस्त्र वा धान्य हों तो जल में धोने से शुद्ध होते हैं ॥२९॥ मिट्टी के पात्र को अग्नि में फिर से पकाने पर, अन्नों की मार्जन (जल सेचन) से, बांस, वक्कल, चीर (फिलजा कपड़ा) अलसीके वस्त्र, और कपास के वस्त्र, ऊन और नेत्र (वेतआदि)

और्णानांनेत्रपट्टानां प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ ३० ॥
मुंञ्जोपस्करशूर्पाणां शाणस्यफलचर्मणाम् ।
तृणकाष्ठादिरज्जूनामुदकाभ्युक्षणंमतम् ॥ ३१ ॥
तूलिकाद्यपधानानि रक्तवस्त्रादिकानिच ।
शोषयित्वार्कतापेन प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ ३२ ॥
मार्जारमक्षिकाकीट पतङ्गकृमिदर्दुराः ।
मेध्यामेध्यंस्पृशन्तो ये नोच्छिष्टान्मनुरब्रवीत् ॥३३ ॥
महींस्पृष्ट्वागतंतोयं याश्चाप्यन्योन्यविप्रुषः ।
भुक्तोच्छिष्टंतथास्नेहं नोच्छिष्टंमनुरब्रवीत् ॥ ३४ ॥
तांबूलेक्षुफलान्येव भुक्तस्नेहानुलेपने ।
मधुपर्केचसोमेच नोच्छिष्टंधर्मतोविदुः ॥ ३५ ॥
रथ्याकर्दमतोयानि नावःपन्थास्तृणानिच ।
मरुतार्केणशुद्ध्यन्ति पक्वेष्टकाचितानिच ॥ ३६
अदुष्टाःसंतताधारा वातोद्धूताश्चरेणवः ।

के वस्त्र इन को पछोरने (फींचने) से शुद्धि मानी है ॥ ३० ॥ मूंज की वस्तु सूप, शण की वस्तु, फल, चाम, तृण, काठ, रस्सी इन की जल छिड़कने से शुद्धि मानी है ॥ ३१ ॥ रुई आदि के तकिये तथा लाल वस्त्रादि को सूर्य के घाम में सुखा के जल छिड़कने से शुद्धि होना इष्ट है ॥३२॥ बिलाव, मक्खी, कीड़े, पतंगे, कृमि, मेंडक, ये सब पवित्र वा अपवित्र वस्तु का स्पर्श करें तो वस्तु उच्छिष्ट अशुद्ध नहीं होता यह मनु जी ने कहा है ॥ ३३ ॥ अशुद्ध वा नीच ने छुआ पृथ्वी में बहता हुआ जल और परस्पर बोलने से गिरने वाले थूक के छींटा तथा रसोईखाने में भोजन से बचा घी आदि स्नेह ये उच्छिष्ट नाम अशुद्ध नहीं होते यह भी मनु जी ने कहा है ॥ ३४ ॥ पान, गांडा, स्नेह युक्त फल, जिस में से खाया हो, ऐसा घी आदि स्नेह मधुपर्क तथा सोम यागों का सोमरस तथा घिसा हुआ केशर चन्दनादि इन में से कुछ भाग प्रथम किसी ने खाया वा बर्ता हो तो शेष धर्मानुसार उच्छिष्ट वा अशुद्ध नहीं होता ॥ ३५ ॥ सड़क, दगड़ा, कीचड़, जल, नौका, मार्ग, तृण (पलालचटाई आदि) पकी ईंटों से चिने(मन्दिर घर की भित्ति आदि) ये सब पवन और सूर्य के किरणों से शुद्ध होजाते हैं ॥३६॥ निरंतर वर्षती हुई मेघ की धारा, पवन

स्त्रियोवृद्धाश्चबालाश्च नदुष्यन्तिकदाचन ॥ ३७ ॥
क्षुतेनिष्ठीवनेचैव दन्तोच्छिष्टेतथाऽनृते ।
पतितानांचसंभाषे दक्षिणंश्रवणंस्पृशेत् ॥ ३८ ॥
अग्निरापश्चवेदाश्च सोमसूर्यानिलास्तथा ।
एतेसर्वेऽपिविप्राणां श्रोत्रेतिष्ठन्तिदक्षिणे ॥ ३९ ॥
प्रभासादीनितीर्थानि गङ्गाद्याःसरितस्तथा ।
विप्रस्यदक्षिणेकर्णे सान्निध्यंमनुरब्रवीत् ॥ ४० ॥
देशभङ्गेप्रवासेवा व्याधिषुव्यसनेष्वपि ।
रक्षेदेवस्वदेहादि पश्चाद्धर्मंसमाचरेत् ॥ ४१ ॥
येनकेनचधर्मेण मृदुनादारुणेनवा ।
उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थोधर्ममाचरेत् ॥ ४२ ॥
आपत्कालेतुसम्प्राप्ते शौचाऽऽचारंनचिन्तयेत् ।
शुद्धिंसमुद्धरेत्पश्चात्स्वस्थोधर्मंसमाचरेत् ॥ ४३ ॥
इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
गवांबन्धनयोक्त्रेतु भवेन्मृत्युरकामतः ।

के वेगसे उड़ी हुई धूलि, (रजस्वला होने से भिन्न) स्त्रियां, बालक, वृद्ध, ये स्नानादि किये विना भी कभी दूषित नहीं होते ॥ ३७ ॥ छींकने, थूकने, दांतों में जूठन निकलने, झूठ बोलने, और पतितों के संग बोलने पर दहिने कान का स्पर्श करे ॥ ३८ ॥ अग्नि, जल, वेद, चन्द्रमा, सूर्य, और वायु, ये सब देवता ब्राह्मण के दहिने कान में निवास करते हैं ॥ ३९ ॥ प्रभासक्षेत्र आदि तीर्थ और गंगा आदि नदी, ये सब ब्राह्मण के दहिने कान में वास करते हैं यह मनु जी ने कहा है ॥ ४० ॥ देश में गदर होने, परदेश गमन, रोग, तथा व्यसन विपत्तियों के समय में अपने शरीरादि की रक्षा करे और पीछे स्वस्थ दशा होने पर धर्म का आचार विचार कर लेवे ॥४१॥ कोमल वा कठोर जिस किसी धर्म से अपनी असमर्थ दीन दशा का उद्धार करे और समर्थ होजाने पर फिर धर्म करे ॥ ४२ ॥ आपत्काल आ जाने पर शौच तथा आचार के बिगड़ने की चिन्ता न करे । पीछे स्वस्थ दशा प्राप्त होने पर शुद्धि और धर्म का आचरण कर लेवे ॥४३॥
यह पाराशरीय धर्म शास्त्र के भाषानुवाद में सातवां अध्याय पूरा हुआ ॥
यदि अज्ञान से बांधने वा जोड़ने से गौओं की मृत्यु हो जाय तो

अकामकृतपापस्य प्रायश्चित्तंकथंभवेत् ॥ १ ॥
वेदवेदाङ्गविदुषां धर्मशास्त्रंविजानताम्।
स्वकर्मरतविप्राणां स्वकंपापंनिवेदयेत् ॥ २ ॥
अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामि उपस्थानस्यलक्षणम् ।
उपस्थितोहिन्यायेन व्रतादेशनमर्हति ॥ ३ ॥
सद्योनिःसंशयेपापे नभुञ्जीतानुपस्थितः ।
भुञ्जानोवर्द्धयेत्पापं पर्षद्यत्रनविद्यते ॥ ४ ॥
संशयेतुनभोक्तव्यं यावत्कार्यविनिश्चयः ।
प्रमादस्तुनकर्त्तव्यो यथैवासंशयस्तथा ॥ ५ ॥
कृत्वापापंनगूहेत गूह्यमानंविवर्द्धते ।
स्वल्पंवाथप्रभूतंवा धर्मविद्भ्योनिवेदयेत् ॥ ६ ॥
तेहिपापकृतांवैद्या हन्तारश्चैवपाप्मनाम् ।
व्याधितस्ययथावैद्या बुद्धिमन्तोरुजापहाः ॥ ७ ॥
प्रायश्चित्तेसमुत्पन्ने ह्रीमान्सत्यपरायणः ।

अनिच्छा से किये पाप का प्रायश्चित्त कैसे हो ? सो कहते हैं ॥१॥ वेद वेदाङ्ग और धर्मशास्त्र को जो जानते हों और जो अपने कर्म में तत्पर हों ऐसे ब्राह्मणों से अपना पाप निवेदन करे ॥ २ ॥ इस से आगे विद्वानों की सभा में उपस्थित (हाजिर) होने का स्वरूप कहते हैं क्योंकि जो न्याय से उपस्थित होता है वही व्रत के उपदेश योग्य है ॥ ३ ॥ यदि शीघ्र ही पाप का निश्चय हो जाय तो प्रायश्चित्त के लिये विद्वत्सभा में उपस्थित हुये विना भोजन न करे । जहां सभा न हो वहां भी पहिले जो भोजन करता है वह पाप को बढ़ाता है ॥४॥ यदि संशय होय कि मुझ से अपराध हुआ है वा नहीं ? तो कार्य के निश्चय तक भोजन न करे और अपराध के निश्चय करने में प्रमाद (भूल) भी न करे किन्तु जिस प्रकार सन्देह मिट जाय वैसा ही करे ॥ ५ ॥ पाप को करके कदापि न छिपावे, क्योंकि छिपाया हुआ पाप बढ़ता है—थोड़ा पाप हो वा बहुत हो उसे धर्म के ज्ञाताओं को निवेदन करके प्रायश्चित्त पूछे ॥ ६ ॥ क्योंकि वे ही लोग पाप करने वाले रोगियों के वैद्य हैं और पापों का नाश करने वाले हैं—जैसे कि बुद्धिमान् वैद्य रोगी के रोगको दूर करने वाले होते हैं ॥७॥ प्रायश्चित्त के समय, लज्जा युक्त हो सत्य धर्ममें तत्पर और बारंबार नम्रता कोमलता को धारण करने वाला क्षत्रिय वा वैश्य मनुष्य शुद्धि

मुहुरार्जवसंपन्नः शुद्धिंगच्छतिमानवः ॥ ८ ॥
सचैलंवाग्यतःस्नात्वा क्लिन्नवासाःसमाहितः ।
क्षत्रियोवाथवैश्योवा ततःपर्षदमाव्रजेत् ॥ ९ ॥
उपास्थायततःशीघ्रमार्तिमान्धरणींव्रजेत् ।
गात्रैश्चशिरसाचैव नचकिंचिदुदाहरेत् ॥ १० ॥
सावित्र्याश्चापिगायत्र्याः संध्योपास्त्यग्निकार्ययोः ।
अज्ञानात्कृषिकर्त्तारो ब्राह्मणानामधारकाः ॥ ११ ॥
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशःसमेतानां परिपत्त्वंनविद्यते ॥ १२ ॥
यद्वदन्तितमोमूढा मूर्खाधर्ममतद्विदः ।
तत्पापंशतधाभूत्वा तद्वक्तृनधिगच्छति ॥ १३ ॥
अज्ञात्वाधर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तंददातियः ।
प्रायश्चित्तोभवेत्पूतः किल्बिषंपर्षदिव्रजेत् ॥ १४ ॥
चत्वारोवात्रयोवापि यंब्रूयुर्वेदपारगाः ।
सधर्मइतिविज्ञेयो नेतरैस्तुसहस्रशः ॥ १५ ॥

को प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥ मौन धारण कर सचैल स्नान करके गीले वस्त्र पहिने हुये सावधान हो कर पर्षद् (धर्म सभा) में जावे ॥ ९ ॥ फिर शीघ्र सभाके समीप जाकर दुःखी हुआ गात और शिरसे (साष्टांग) पृथ्वी में पड़ जाय और कुछ न कहै ॥ १० ॥ सूर्यनारायण जिस के देवता हैं ऐसी गायत्री सन्ध्यावंदन और अग्निहोत्र इन कामों को जो नहीं जानते और न करते हों और जो खेती करते हों वे नाम मात्र के ब्राह्मण हैं ॥११॥ जिन के सन्ध्यादि कर्म करने का नियम नहीं,जो वेद मन्त्रोंको नहीं जानते और जातिमात्र से जो ब्राह्मण बने हैं ऐसे चाहे हजारों भी जिस में इकट्ठे हों वह परिषत (धर्मसभा) नहीं है ॥ १२ ॥ धर्म के मर्म को न जानने वाले अज्ञानी मूर्ख ब्राह्मण लोग जो (प्रायश्चित्त आदि) बतलातेहैं वह पाप सौ गुणा होकर उन धर्मकी व्यवस्था कहने वालों को प्राप्त होताहै ॥१३॥ जो धर्मशास्त्रों को न जानकर प्रायश्चित्त देताहै तो वह पापी पवित्र होजाताहै और उस प्रायश्चित्ती का प्रायश्चित्त देने वालेको लगताहै ॥१४॥ चार वा तीन वेदोंको पूर्ण रूपसे ठीक२ जाननेवाले जिस को कहैं वही धर्म जानो और अन्य हजार भी जिसे कहैं वह धर्म नहीं ॥१५॥

प्रमाणमार्गंमार्गन्तो येधर्मंप्रवदन्तिवै ।
तेषामुद्विजतेपापं संभूतगुणवादिनाम् ॥ १६ ॥
यथाश्मनिस्थितंतोयं मारुतार्केणशुद्ध्यति ।
एवंपरिषदादेशान्नाशयेत्तद्गदुष्कृतम् ॥ १७ ॥
नैवगच्छतिकर्त्तारं नैवगच्छतिपर्षदम् ।
मारुतार्कादिसंयोगात्पापंनश्यतितोयवत् ॥ १८ ॥
चत्वारोवात्रयोवापि वेदवन्तोऽग्निहोत्रिणः ।
ब्राह्मणानांसमर्थायें परिषत्साविधीयते ॥ १९ ॥
अनाहिताग्नयोयेऽन्ये वेदवेदाङ्गपारगाः ।
पञ्चत्रयोवाधर्मज्ञाः परिषत्साऽपिकीर्तिता ॥ २० ॥
मुनीनामात्मविद्यानां द्विजानांयज्ञयाजिनाम् ।
वेदव्रतेषुस्नातानामेकोऽपिपरिषद्भवेत् ॥ २१॥
पञ्चपूर्वंमयाप्रोक्तास्तेषांचासंभवेत्रयः ।
स्ववृत्तिपरितुष्टाये परिषत्साऽपिकीर्तिता ॥ २२ ॥

प्रमाण के मार्ग को खोजते हुये जो पण्डित लोग धर्म की व्यवस्था कहते हैं उन तत्त्व कहने वालों से पाप डरता कांपता है ॥ १६ ॥ जैसे पत्थर पर पड़ा जल पवन और सूर्य के तेज से शुद्ध होजाता है । ऐसे ही धर्मसभा की आज्ञा से किये प्रायश्चित्त से उस पापी का पाप भी नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥ वह पाप न तो करने वाले पर रहता और न सभा पर जाता किन्तु पवन और सूर्य के संयोग से पत्थर पर पड़े जल के समान नष्ट हो जाता है ॥१८॥ वेद के ज्ञाता अग्निहोत्री चार वा तीन जो ब्राह्मणों में शास्त्र जानने में समर्थ हों उसे परिषत् कहते हैं ॥१९॥ अथवा जो अग्निहोत्री नहीं किन्तु वेद वेदाङ्गों के तत्त्व को जानने वाले और धर्म के मर्म को जानने वाले हों ऐसे पांच वा तीन को भी परिषत् (धर्मसभा) कह सकते हैं ॥ २० ॥ कुछ न बोलने वाले मौनव्रती वा अत्यल्पमितभाषी तपस्वी मुनि आत्मविद्या (वेदान्त) के ज्ञाता, द्विजों को यज्ञ कराने वाले, और वेदोक्त नियमों को ब्रह्मचर्यद्वारा समाप्त करके जिनने समावर्त्तन किया हो, ऐसे ब्राह्मणों में से कोई एक भी हो तो उसे परिषत् (धर्मसभा) कह सकते हैं ॥ ॥ २१ ॥ हमने जो पहिले पांच सभ्य कहे हैं यदि वे पांचो न मिलें तो अपनी वृत्ति (जीविका) करने से सन्तोषी तीन भी पण्डित परिषत् (धर्मसभा) कहाते हैं ॥२२॥

अतऊर्द्ध्वंतुयेविप्राः केवलंनामधारकाः ।
परिषत्त्वंनतेष्वस्ति सहस्रगुणितेष्वपि ॥ २३ ॥
यथाकाष्ठमयोहस्ती यथाचर्ममयोमृगः ।
ब्राह्मणास्त्वनधीयानास्त्रयस्तेनामधारकाः ॥ २४ ॥
ग्रामस्थानंयथाशून्यं यथाकूपस्तुनिर्जलः ।
यथाहुतमनग्नौच अमन्त्रोब्राह्मणस्तथा ॥२५॥
यथाषण्ढोऽफलःस्त्रीषु यथागौरूषराऽफला ।
यथाचाज्ञेऽफलंदानं तथाविप्रोऽनृचोऽफलः ॥ २६ ॥
चित्रंकर्मयथानेकै रङ्गैरुन्मील्यतेशनैः ।
ब्राह्मण्यमपितद्वद्धि संस्कारैर्मन्त्रपूर्वकैः ॥ २७ ॥
प्रायश्चित्तंप्रयच्छन्ति येद्विजानामधारकाः ।
तेद्विजाःपापकर्माणः समेतानरकंययुः ॥ २८ ॥
येपठन्तिद्विजावेदं पञ्चयज्ञरताश्चये ।
त्रैलोक्यंतारयन्त्येव पञ्चेन्द्रियरताअपि ॥ २९ ॥
संप्रणीतःश्मशानेषु दीप्तोऽग्निःसर्वभक्षकः ।

इन से भिन्न जो ब्राह्मण केवल नाम के धारण करने वाले हैं वे चाहें हजार गुणे भी हों तो उन की धर्मसभा नहीं होती ॥ २३ ॥ जैसे काठ का हाथी जैसे चाम का हिरण हिरण नहीं वैसे ही वेद के विना पढ़े ब्राह्मण हैं ये तीनों नाम के ही धारण करने वाले हैं ॥ २४ ॥ जैसा निर्जन (जिस में कोई मनुष्य न हो वह) ग्राम, जैसा जल के विना कूप (अंधौआ) जैसा अग्नि विना भस्मादि में होम करना है ऐसा ही वेद मन्त्रों को पढ़े विना ब्राह्मण भी शून्य मात्र है ॥ २५ ॥ जैसे स्त्रियों में नपुंसक वृथा है जैसे बंध्या गौ वृथा है और जैसे मूर्ख ब्राह्मण को दान देना वृथा है ऐसे ही वेद हीन ब्राह्मण वृथा है ॥ २६ ॥ जैसे चित्र खींचने वालों की चित्रकारी अनेक रंगों से शनैः २ अति शोभायमान चमकीली होती है इसी प्रकार मंत्रों के द्वारा हुए अनेक संस्कारों से ब्राह्मणपन भी उज्ज्वल प्रकाशमान होता है ॥२७॥ जो विद्या और तप से हीन नामधारी ब्राह्मण प्रायश्चित्त देतेहैं वे सब पापों के कर्त्ता इकट्ठे होकर नरक में जाते हैं ॥ २८ ॥ जो ब्राह्मण वेद को पढ़ते हैं वा जो पंच महायज्ञों के करने में तत्पर हैं वे पांचो इन्द्रियों के विषयों में आसक्त हों तो भी त्रिलोकी को तारने वाले ही हैं ॥२९॥ जैसे जलता हुआ अग्नि श्मशानों में मुर्दों का भक्षक होने पर भी संसार का उद्धार कर्त्ता

तथाचवेदविद्विप्रः सर्वभक्षोऽपिदैवतम् ॥ ३० ॥
अमेध्यानितुसर्वाणि प्रक्षिप्यन्तेयथोदके ।
तथैवकिल्बिषंसर्वं प्रक्षिपेच्चद्विजानले ॥ ३१ ॥
गायत्रीरहितोविप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत् ।
गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यन्तेजनैर्द्विजाः ॥ ३२ ॥
दुःशीलोऽपिद्विजःपूज्यो नतुशूद्रोजितेन्द्रियः ।
कःपरित्यज्यगांदुष्टां दुहेच्छीलवतींखरीम् ॥ ३३ ॥
धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधराद्विजाः ।
क्रीडार्थमपियद्ब्रूयुः सधर्मःपरमःस्मृतः ॥ ३४ ॥
चातुर्वैद्योविकल्पीच अङ्गविद्धर्मपाठकः ।
त्रयश्चाश्रमिणोमुख्याः पर्षदेषादशावरा ॥ ३५ ॥
राज्ञश्चानुमतेस्थित्वा प्रायश्चित्तंविनिर्दिशेत् ।
स्वयमेवनकर्तव्यं कर्तव्यास्वल्पनिष्कृतिः ॥ ३६ ॥
ब्राह्मणांस्ताननतिक्रम्य राजाकर्तुंयदीच्छति ।

देवता है इसी प्रकार सर्व भक्षक होने पर भी धर्म निष्ठ ब्राह्मण वेद का ज्ञाता होने से देवता ही है ॥ ३०॥ जैसे संपूर्ण अपवित्र वस्तु वर्षादि के समय नद्यादि के जल में फेंके शुद्ध हो जाते हैं वैसे ही संपूर्ण पाप ब्राह्मण रूप अग्नि में छोड़ देने से भस्म हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ गायत्री से हीन ब्राह्मण शूद्र से भी अधिक अशुद्ध होता है । और गायत्री रूप वेद के तत्त्व को जानने वाले ब्राह्मणों को मनुष्य पूजते हैं ॥३२॥ दुष्ट स्वभाव वाला भी ब्राह्मण पूजने योग्यहै और जितेन्द्रिय भी शूद्र वैसा पूज्य नहीं क्योंकि (निकृष्ट ब्राह्मण में भी कुछ ब्राह्मण पन अवश्य होगा) ऐसा कौन है जो दुष्ट गौ को छोड़ कर सुशीला गधी को दुहे ॥३३॥ धर्मशास्त्ररूपी रथमें बैठे, वेदरूपी खड्ग (हथियारों) को धारण किये विद्वान् ब्राह्मण साधारण विचार से भी जो कुछ कहैं वह भी उत्तम धर्म माना जाय ॥ ३४॥ चारों वेदों के ज्ञाता चार विद्वान्, पांचवां नैयायिक, छठा छः वेदाङ्गों का ज्ञाता, सातवां धर्मशास्त्रों का पाठक और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, ये तीनों आश्रमों वाले मुखिया, यह कम से कम दश धर्मज्ञ विद्वानों की धर्म सभा कहाती है ॥३५॥ राजा की अनुमति में होकर प्रायश्चित्त बतावें आप ही प्रायश्चित्त का निर्णय न कर देवें (अर्थात् प्रायश्चित्तादि धर्म व्यवस्था कारिणी विद्वत्सभा राजसभा की अनुमति से अपना काम करे) परन्तु स्वल्प प्रायश्चित्त को स्वयं भी निश्चित कर देवें ॥ ३६ ॥ यदि उन वि-

तत्पापंशतधाभूत्वा राजानमनुगच्छति ॥ ३७ ॥
प्रायश्चित्तंसदादद्याद्देवतायतनाग्रतः ।
आत्मकृच्छ्रंततःकृत्वा जपेद्वैवेदमातरम् ॥ ३८ ॥
सशिखंवपनंकृत्वा त्रिसंध्यमवगाहनम् ।
गवांमध्येवसेद्रात्रौ दिवागाश्चाप्यनुव्रजेत् ॥ ३९ ॥
उष्णेवर्षतिशीतेवा मारुतेवातिवाभृशम् ।
नकुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वातुशक्तितः ॥ ४० ॥
आत्मनोयदिवाऽन्येषां गृहेक्षेत्रेऽथवाखले ।
भक्षयन्तींनकथयेत्पिबन्तंचैववत्सकम् ॥ ४१ ॥
पिबन्तीषुपिबेत्तोयं संविशन्तीषुसंविशेत् ।
पतितांपङ्कलग्नांवा सर्वप्राणैःसमुद्धरेत् ॥ ४२ ॥
ब्राह्मणार्थेगवार्थेवा यस्तुप्राणान्परित्यजेत् ।
मुच्यतेब्रह्महत्याया गोप्तागोर्ब्राह्मणस्यच ॥ ४३ ॥
गोवधस्यानुरूपेण प्राजापत्यंविनिर्दिशेत् ।

द्वान् ब्राह्मणों का उलंघन करके राजा स्वयं किया चाहै तो वह पाप सौ गुणा होकर राजा को लगता है ॥ ३७ ॥ सदैव देवता के मन्दिर के आगे प्रायश्चित्त करावे। फिर वह विद्वान् भी अपना कृच्छ्र व्रत (प्रायश्चित्त) करके वेदकी माता गायत्री का जप करे ॥ ३८ ॥ प्रायश्चित्त करने वाला शिखा सहित वालों का मुंडन कराके त्रिकाल स्नान करै । रात्रि को गौओं के बीच गोशाला में वसे और दिन में चरने को निकली गौओं के पीछे २ जंगल में भ्रमण करै ॥३९॥ अत्यंत उष्णकाल (गर्मी) में, वर्षा में, शीतकाल में, और अत्यन्त पवन (आंधी) में अपनी रक्षा का उपाय तब करे जब शक्ति भर गौओं की रक्षा पहिले करलेवे ॥४०॥ अपने अथवा अन्य के घर में, खेत में अथवा खलियान में खाती हुई गौ को न स्वयं हटावे तथा न अन्य से हटाने को कहे और दूध पीते हुए बछड़े को भी किसी को न बतावे ॥ ४१ ॥ गौओं के जल पीने पर स्वयं जल पीवे, गौओं के बैठने पर स्वयं बैठे और गढ़े आदि में गिरी पड़ी वा कीचड़ में फसी गौ को संपूर्ण बल से उठावे निकाले ॥४२॥ जो कोई मनुष्य ब्राह्मण वा गौओं की रक्षा करने के लिये अपने प्राणों को देकर गौ और ब्राह्मण की रक्षा करै वह ब्रह्महत्यादि महापापों से भी शीघ्र ही छूट जाता है ॥४३॥ गौवध पाप के अनुसार निम्न चतुर्विधों में से उचित प्राजापत्य व्रत बतावे । उस

प्राजापत्यंतुयत्कृच्छ्रं विभजेत्तच्चतुर्विधम् ॥ ४४ ॥
एकाहमेकभक्ताशी एकाहंनक्तभोजनः ।
अयाचितश्चैकमहरेकाहंमारुताशनः ॥ ४५ ॥
दिनद्वयंचैकभक्तो द्विदिनंनक्तभोजनः ।
दिनद्वयमयाचीस्याद् द्विदिनंमारुताशनः ॥ ४६॥
त्रिदिनंचैकभक्ताशी त्रिदिनंनक्तभोजनः ।
दिनत्रयमयाचीस्यात्त्रिदिनंमारुताशनः ॥ ४७ ॥
चतुरहंत्वेकभक्ताशी चतुरहंनक्तभोजनः ।
चतुर्दिनमयाचीस्याच्चतुरहंमारुताशनः ॥ ४८ ॥
प्रायश्चित्तेततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
विप्राणांदक्षिणां दद्यात्पवित्राणिजपेद्द्विजः ॥ ४९ ॥
ब्राह्मणान्भोजयित्वातु गोघ्नःशुद्ध्येन्नसंशयः ॥ ५० ॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

कृच्छ्र व्रत को चार भाग में बांटे ॥ ४४ ॥ एक दिन प्रातः एक वार परिमित अन्न खावे, और एक दिन रात में भोजन करै, एक दिन विना मांगे जो मिलै उसे खावे और एक दिन सर्वथा निराहार रहे यह छोटा कृच्छ्र वा पादकृच्छ्र व्रत है ॥ ४५ ॥ दो दिन एकवार प्रातःकाल परिमित खावे, दो दिन रातमें परिमित भोजन करै, दो दिन बिना मांगे जो मिले उसे खावे, फिर दो दिन निराहार उपवास करे यह द्वितीय कक्षा का कृच्छ्र व्रत वा अर्द्ध कृच्छ्र जानो ॥ ४६ ॥ तीन दिन एकवार प्रातः खावे, तीन दिन रात में भोजन करै, तीन दिन विना मांगे जो मिले उसे खावे फिर तीन दिन निराहार रहे यह तीसरा वा पौन कृच्छ्र व्रत है ॥ ४७ ॥ चार दिन एक वार प्रातः खावे, चार दिन रात में एक वार भोजन करै फिर चार दिन बिना मागे जो मिले उसे खावे और चार दिन निराहार रहे यह पूरा कृच्छ्र व्रत है ॥ ४८ ॥ प्रायश्चित्त के पूर्ण हुए पीछे वह द्विज ब्राह्मणादि अन्य सुपात्र ब्राह्मणों को भोजन करावे दक्षिणा देवे और पवित्र वेद मन्त्रों (गायत्री आदि) को जपे ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणों को भोजन करा कर गोवध का करने वाला शुद्ध हो जाता है इस में संदेह नहीं है ॥५०॥

यह पाराशरीय धर्म शास्त्र के भाषानुवाद में आठवां अध्याय पूरा हुआ ॥

गवांसंरक्षणार्थाय न दुष्येद्रोधबन्धयोः ।
तद्वधंतुमतंविद्यात्कामाकामकृतंतथा ॥ १ ॥
दण्डादूर्ध्वंयदान्येन प्रहरेद्वानिपातयेत् ।
प्रायश्चित्तंचरेत्प्रोक्तं द्विगुणंगोवधेचरेत् ॥२ ॥
रोधबन्धनयोक्त्राणि घातश्चेतिचतुर्विधम् ।
एकपादंचरेद्रोधे द्विपादंबन्धनेचरेत् ॥ ३ ॥
योक्त्रेषुतुत्रिपादंस्याच्चरेत्सर्वंनिपातने ।
गोचरेवागृहेवापि दुर्गेष्वप्यसमस्थले ॥ ४ ॥
नदीष्वथसमुद्रेषु खातेष्वथदरीमुखे ।
दग्धदेशेस्थितागावः स्तम्भनाद्रोधउच्यते ॥ ५ ॥
योक्त्रदामकडोरैश्च कण्ठाभरणभूषणैः ।
गृहेचापिवनेवापि बद्धास्याद्गौर्मृतायदि ॥ ६ ॥
तदेवबन्धनंविद्यात्कामाकामकृतंचयत् ।

गौओं की रक्षा के लिये रोकने और बांधने में यदि गौ मरजाय तो उसको गोवध नहीं जानना, चाहे वह रोकने बांधने की इच्छा से भी हुआ हो ॥१॥ दंड से भिन्न यदि किसी औजार से गौ को मारै वा गिरा देवे तो वह गोवध में कहे से दूना प्रायश्चित्त करै ॥ २ ॥ रोकने, बंध बांधने, जोतने, और मारने से इन चार प्रकारों से गोहत्या होती है। परन्तु ये काम कष्ट पहुंचाने की इच्छा से निर्दय होकर किये गये हों तब यदि रोकने से गोहत्या हुई हो तो एक पाद, बंधन से हुई हो तो दो पाद ॥ ३ ॥ योक्त्र से गोहत्या होने पर तीनपाद, और मारने से हुई गोहत्या में (अ० ८ के श्लोक ४४ से ५० तक में कहा) संपूर्ण प्रायश्चित्त करै। गौओं के चरने को रखाये बाड़ा में, घर में, दुर्ग (जहां निकलने पैठने का रास्ता न हो) में, और ऊंची नीची जगह में, ॥ ४ ॥ नदीयों में, समुद्र में, गड्ढों में, गुफा के मुख में, जले तपे हुए स्थान में, इन जगहों में खड़ी हुई गौओं को रोकने से रोध द्वारा मरना कहते हैं ॥ ५ ॥ यदि जुए में वा रस्सी से बांधा हो, घंटारों की रस्सी से वा आभूषण की रस्सी से घर में वा वन में बंधी हुई गौ यदि मरजाय तो ॥ ६ ॥ अवस्था भेद से उस की कामकृत वा अकामकृत हत्या कहते हैं। यदि हल में, वा गाड़ी में, वा

हलेवाशकटेपङ्क्तौ भारेवापीडितोनरैः ॥ ७ ॥
गोपतिर्मृत्युमाप्नोति यौक्त्रोभवतितद्वधः ।
[illegible]उन्मत्तश्चेतनोवाऽप्यचेतनः ॥ ८ ॥
[illegible]कृतक्रोधो दण्डैर्हन्यादथोपलैः ।
[illegible]मृतावापि तद्धिहेतुर्निपातने ॥ ९ ॥
[illegible]ष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रःप्रमाणतः ।
[illegible]तुसपलाशश्च दण्डइत्यभिधीयते ॥ १० ॥
[illegible]:पतितोवापि दण्डेनाभिहतःसलु ।
[illegible]स्थितस्तुयदागच्छेत्पञ्चसप्तदशाथवा ॥ ११ ॥
ग्रासंवायदिगृण्हीयात्तोयंवापिपिबेद्यदि ।
पूर्व्वव्याध्युपसृष्टश्चे त्प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ १२ ॥
पिण्डस्थेपादमेकंतु द्वौपादौगर्भसंमिते ।
पादोनंव्रतमुद्दिष्टं हत्वागर्भमचेतनम् ॥ १३ ॥
पादेऽङ्गरोमवपनं द्विपादेश्मश्रुणोऽपिच ।

[illegible] चार बैलों की पांति में बांधने पर, बोझा लादने पर, मनुष्यों से पीड़ा को प्राप्त हुआ ॥७॥ बैल मरजाय तो उस वध को यौक्त्र कहा है। जो मनुष्य [illegible] उन्मत्त,चेतन वा अचेतन दशा में हो ॥ ८ ॥ समझ कर वा विना [illegible] करके दंडों से वा पत्थरों से गौ पर प्रहार करै और वह गौ मर[illegible] तो उसे निपातन (मरण) का हेतु कहते हैं ॥ ९ ॥ अंगूठे भर मोटा और भुजा की बराबर लंबा, गीला, और पत्तों वाला जो हो उसे दंड कहते हैं ॥१०॥

मूर्छा को प्राप्त हुआ, वा पड़ा हुआ, वा दंड से ताड़ा हुआ वह बैल जो पांच व सात अथवा दश पग तक उठकर चले ॥ ११ ॥ अथवा एक ग्रास खा[illegible] वा जल पीलेवे और पहिले से उस को कोई रोग हो तो ऐसी हिंसा का प्रायश्चित्त नहीं है ॥ १२ ॥ यदि गोलाकार पिंडी मात्र बने गर्भ को गि[illegible] तो पाद कृच्छ्र व्रत, कुछ २ गर्भ का आकार बनजाने पर गर्भपात कराने [illegible] कृच्छ्र व्रत, और ठीक २ बने अचेतन गर्भ को गिरावे तो पौन कृ[illegible] प्रायश्चित्त करे ॥ १३ ॥ पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त में शरीर के रोम मुंडावे,

त्रिपादेतुशिखावर्जं सशिखंतुनिपातने ॥ १४ ॥
पादंवस्त्रयुगंचैव द्विपादेकांस्यभाजनम् ।
त्रिपादेगोवृषंदद्याच्चतुर्थेगोद्वयंस्मृतम् ॥ १५ ॥
निष्पन्नसर्वगात्रेषु दृश्यतेवासचेतनः ।
अङ्गप्रत्यङ्गसंपूर्णो द्विगुणंगोव्रतंचरेत् ॥१६ ॥
पाषाणेनैवदण्डेन गावोयेनाभिघातिताः ।
शृङ्गभङ्गेचरेत्पादं द्वौपादौनेत्रघातने ॥ १७ ॥
लाङ्गूलेपादकृच्छ्रंतु द्वौपादावस्थिभञ्जने ।
त्रिपादंचैवकर्णेतु चरेत्सर्वंनिपातने ॥ १८ ॥
शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गेच कटिभङ्गेतथैवच ।
यदिजीवतिषण्मासान्प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ १९ ॥
व्रणभङ्गेचकर्तव्यः स्नेहाभ्यङ्गस्तुपाणिना ।

आधे कृच्छ्र व्रत में डाढ़ी मूछें भी मुंडावे, त्रिपाद (पौन) व्रत में शिखा को छोड़कर मुंडावे और पूरे कृच्छ्र व्रत में शिखा सहित बालों को मुंडावे ॥ १४॥ चौथाई व्रत में दो वस्त्र, आधे व्रत में कांसे का पात्र, त्रिपाद (पौन) व्रत में एक बैल, और चौथे पूर्ण प्रायश्चित्त में दो गौ दक्षिणा देवे ॥ १५ ॥ यदि सब अंग जिस के बन गये हों ऐसा अंग प्रत्यंगों सहित पूरा २ चेतन गर्भ दीखता हो तो उस के गिराने में पूर्व कहे गोवध के प्रायश्चित्त से दूना प्रायश्चित्त करे॥१६॥ पत्थर वा दंड से जिसने गौ को ताड़ना की हो उस से यदि सींग टूट जाय तो पादव्रत, और नेत्र फूटजाय तो आधा व्रत प्रायश्चित्त करे ॥ १७ ॥ पूंछ टूट जावे तो चौथाई व्रत, हाड़ टूट जाय तो आधा व्रत, कान टूट जाय तो तीन पाद (पौन) व्रत और उस पशु के मरजाने पर संपूर्ण प्रायश्चित्त करे ॥ १८ ॥ सींग टूटने पर, वा गोड़ आदि का हाड़ टूटने पर, छः महीने तक जीवित रहे तो प्रायश्चित्त नहीं है अर्थात् १७ । १८ । श्लोकों में कहे प्रायश्चित्त सींगादि टूटने पर छः महिने से पहिले पशु के मरने पर जानो ॥ १९ ॥ यदि बैलादि के घाव हो जाय तो हाथ से उस घाव पर तैलादि दवा लगाया करे

यत्रसश्चोपहर्तव्यो यावदृढबलोभवेत् ॥ २० ॥
यावत्संपूर्णसर्वाङ्गस्तावत्तंपोषयेन्नरः ।
गोरूपंब्राह्मणस्याग्रे नमस्कृत्वाविसर्जयेत् ॥ २१ ॥
यद्यसंपूर्णसर्वाङ्गो हीनदेहोभवेत्तदा ।
गोघातकस्यतस्यार्द्धं प्रायश्चित्तंविनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥
काष्ठलोष्ठकपाषाणैः शस्त्रेणैवोद्धतोबलात् ।
व्यापादयतियोगांतु तस्यशुद्धिंविनिर्दिशेत् ॥ २३ ॥
चरेत्सांतपनंकाष्ठे प्राजापत्यंतुलोष्ठके ।
तप्तकृच्छ्रंतुपाषाणे शस्त्रेचैवातिकृच्छ्रकम् ॥ २४ ॥
पञ्चसान्तपनेगावः प्राजापत्येतथात्रयः ।
तप्तकृच्छ्रेभवन्त्यष्टावतिकृच्छ्रेत्रयोदश ॥ २५ ॥
प्रमापणेप्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम् ।
तस्यानुरूपंमूल्यंवा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः ॥ २६ ॥

और जब तक बैल बलवान् हो तबतक घास खिलाया करे काम कुछ न लेवे ॥२०॥

जब तक ठीक घाव पूरा होके हृष्ट पुष्ट हो जाय तब तक मनुष्य उस का पोषण करे। फिर गौ रूप बैल को ब्राह्मण के आगे नमस्कार करके छोड़ देवे ॥ २१ ॥ यदि उस बैल का कोई अंग ठीक अच्छा न हो किन्तु लूला लंगड़ा ही रहे और हीनदेह (दुबला) होजाय तो गौ के मारने वाले को कहे से आधा प्रायश्चित्त बतावे ॥ २२ ॥ लकड़ी, ढेला, पत्थर, वा किसी हथियार से बल पूर्वक मारी हुई गौ मरजावे तो उस का निम्न लिखित प्रायश्चित्त जानो ॥ २३ ॥ लकड़ी से मरने पर कृच्छ्र सान्तपन, ढेला से मरने पर प्राजापत्य, पत्थर से मरने पर तप्तकृच्छ्र, और हथियार (बर्छी भालादि) से मरने पर अतिकृच्छ्र व्रत करे ॥ २४ ॥ सान्तपन में पांच, प्राजाप्रत्य में तीन, तप्त कृच्छ्र में आठ और अतिकृच्छ्र व्रत करने में तेरह गौ दक्षिणा देवे ॥ २५ ॥ प्राणियों के मारने पर उन २ की प्रतिमा सुवर्ण की बनवा के दान करे अथवा उस २ प्राणी का जितना २ उचित मूल्य हो उतना दान करे यह बात मनु जी ने कही है ॥ २६

अन्यत्राङ्कनलक्ष्मभ्यां वहनेदोहनेतथा ।
सायंसंगोपनार्थंच नदुष्येद्रोधबन्धयोः ॥२७ ॥
अतिदाहेऽतिवाहेच नासिकाभेदनेतथा ।
नदीपर्वतसंचारे प्रायश्चित्तंविनिर्दिशेत् ॥ २८ ॥
अतिदाहेचरेत्पादं द्वौपादौवाहनेचरेत् ।
नासिक्येपादहीनंतु चरेत्सर्वंनिपातने ॥२९ ॥
दहनात्तुविपद्येत अनड्वान्योक्त्रयन्त्रितः ।
उक्तंपराशरेणैव ह्येकंपादंयथाविधि ॥ ३० ॥
रोधनंबन्धनंचैव भारःप्रहरणंतथा ।
दुर्गप्रेरणयोक्त्रंच निमित्तानिवधस्यषट् ॥ ३१ ॥
बन्धपाशसुगुप्ताङ्गो म्रियतेयदिगोपशुः ।
भुवनेतस्यनाशस्य पापेकृच्छ्रार्द्धमर्हति ॥ ३२ ॥

दाग देने (अङ्कित करने) वा चिह्न लगाने, जोतने तथा दुहने में और सायं-काल रात्रि में रक्षा करने के लिये रोकने बांधने में गौओं को जो कुछ कष्ट हो वा कोई गौ दैवयोग से मर भी जायतो दोष नहीं लगेगा ॥ २७ ॥ दाग देने में अत्यन्त जलाने, वा बहुत काल तक सख्ती से हलादि में जोतने पर, नाथने में और नदी में घुमाने तथा पर्वत पर चढ़ाने पर यदि बैल मर जाय तो निम्न लिखित प्रायश्चित्त जानो ॥ २८ ॥ दाग ने से मरने पर चौ-थाई, जोतने से मरने पर आधा, नाथने से मरने पर पौना और नदी पर्व-त पर घुमाने चढ़ाने से मरने पर पूरा प्रायश्चित्त करे ॥ २९ ॥ यदि रस्सी से बांधे हुए बैल को गिरा कर दाग देने मात्र से मर जावे तो महर्षि पराशर की सम्मत्यनुसार चौथाई प्रायश्चित्त करे ॥ ३० ॥ रोकना, बांधना, बोझालादना, लकड़ी आदि से मारना पीटना, किसी कठिन जगह नदी आदि में घुसाना वा चढ़ाना, और नाथ डालने आदि के लिये गिराने को रस्सी आदि से बांधना इन छः निमित्तों से बैल आदि पशु की हिंसा होती है ॥३१॥ खूंटा पर बांधा हुआ रस्सी की फांसी लग कर यदि बैल मर जावे । तब घर में उस बैल के नाश का पाप लगने पर आधा कृच्छ्र व्रत प्रायश्चित्त करे ॥३२॥

ननारिकेलैर्नचशाणवालैर्नचापिमौञ्जैर्नचवल्कशृङ्खलैः।
एतैस्तुगावोननिबन्धनीया बद्ध्वातुतिष्ठेत्परशुंगृहीत्वा ॥३३॥
कुशैःकाशैश्चबध्नीयाद्गोपशुंदक्षिणामुखम् ।
पाशलग्नाग्निदग्धेषु प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ ३४ ॥
यदितत्रभवेत्काण्डं प्रायश्चित्तंकथंभवेत ।
जपित्वापावनींदेवीं मुच्यतेतत्रकिल्विषात् ॥ ३५ ॥
प्रेरयन्कूपवापीषु वृक्षच्छेदेषुपातयन् ।
गवाशनेषुविक्रीणंस्ततःप्राप्नोतिगोवधम् ॥ ३६ ॥
आराधितस्तुयःकश्चिद्द भिन्नकक्षोयदाभवेत् ।
श्रवणंहृदयंभिन्नं मग्नोवाकूपसंकटे ॥ ३७ ॥
कूपादुत्क्रमणेचैव भग्नोवाग्रीवपादयोः ।
सएवम्रियतेतत्रत्रीन्पादांस्तुसमाचरेत ॥ ३८ ॥

नारियल की, शण की, बालों की, मूंज की, तथा बक्कल की रस्सी से और लोहे की सांकल से इन सब से गौ को नहीं बांधना चाहिये। यदि कदाचित् इन से बांधे तो हाथ में फरसा लिये गौ के समीप रक्षार्थ खड़ा रहे ॥ ३३ ॥ किन्तु कुशों तथा कांसों की रस्सी से दक्षिण को मुख करके गौ को बांधे। कुशादि की रस्सी से रक्षार्थ बांधने पर फांसी लगजाय वा अग्नि लग कर गौ बैल जल जाय तो प्रायश्चित्त नहीं करने पड़ेगा क्योंकि बांधने वाले का दोष नहीं है ॥ ३४ ॥ यदि वहां सरपता का ढेर लगा हो और उस में अग्नि लगकर गौ जल जावे तो प्रायश्चित्त कैसे हो? इस का उत्तर यह है कि वहां जगत्पावनी गायत्री का जप करके उस पाप से छूट जाता है ॥ ३५ ॥ कुआ वा बावली में घुमाने की प्रेरणा करता हुआ, कटे हुए पड़े वृक्षों पर घेर २ कर गिराते हुए गौ मर जावे वा गोभक्षक कसाई आदि के हाथ बेंचने पर गोहत्या लगती है ॥ ३६ ॥ यदि उक्त हालत में गौके बचाने का उपाय करने पर भी उस की कोख फटजाय, कान टूट जाय, हृदय फटजाय, वा कुए में डूब कर मरजाय ॥ ३७ ॥ अथवा कुए पर इधर से उधर फंदाने से भी उस बैल की गर्द्दन वा टांग टूट जावे और इसी कारण यदि वह मर जाय तो त्रिपाद (तीन हिस्सा) प्रायश्चित्त करे ॥ ३८ ॥

कूपखातेतटीबन्धे नदीबन्धेप्रपासुच ।
पानीयेषुविपन्नानां प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ ३९ ॥
कूपखातेतटीखाते दीर्घखातेतथैवच ।
अन्येषुधर्मखातेषु प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ ४० ॥
वेश्मद्वारेनिवासेषु योनरःखातमिच्छति ॥
स्वकार्येगृहखातेषु प्रायश्चित्तंविनिर्दिशेत् ॥ ४१ ॥
निशिबन्धनिरुद्धेषु सर्पव्याघ्रहतेषुच ।
अग्निविद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ ४२ ॥
ग्रामघातेशरौघेण वेश्मबन्धनिपातने ।
अतिवृष्टिहतानांच प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ ४३ ॥
संग्रामेऽपहतानांच येदग्धावेश्मकेषुच ।
दावाग्निग्रामघातेषु प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ ४४ ॥

कुए, गढे, वा पोखरेमें, बांधपर, नदी में, प्याऊ में पानी पिलाते समय यदि गौ वा बैल मरजावे तो प्रायश्चित्त नहीं लगेगा ॥३९॥ कुए के समीप खोदे हुए गढे में,नदी के गढे में वा बहुत काल से खोदे हुए गढे में अथवा धर्मार्थ खोदे हुए तालाब आदि में जल पिलाने को घुसाये गौ वा बैल के मरजाने पर भी प्रायश्चित्त नहीं लगता है ॥ ४० ॥ घर के द्वार पर, गोशाला में, वा अपने किसी प्रयोजन से घर के भीतर कोई गढ़ा खोदा हो और उस में गिर कर यदि गौ वा बैल मर जावे तो यथोचित प्रायश्चित्त करै ॥ ४१ ॥ रक्षा के लिये रात्रि में बांधने वा रोकने पर यदि सांप काट ले, अथवा बाघ आदि जानवर मार डाले, अकस्मात् आग लग जाय अथवा बिजली गिरकर मरजाय तो प्रायश्चित्त नहीं लगेगा ॥ ४२ ॥ गांव में लूट हो, डांका पड़े और अनेक बाण चलने से गौहत्या हो, वा घरकी भीत गिरजाने से मरे अथवा अत्यन्त वर्षा होने से गौ वा बैल मरें उनका भी प्रायश्चित्त नहीं लगेगा ॥ ४३ ॥ युद्ध के समय पर, घर में आग लगजाने पर, बन के अग्नि से, अथवा गांव के नष्ट होने पर जो गौ मरजावें उनका प्रायश्चित्त किसी को नहीं लगेगा ॥४४॥

यन्त्रितागौश्चिकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने ।
यत्नेकृतेविपद्येत प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ ४५ ॥
व्यापन्नानांबहूनांचरोधनेबन्धनेपिवा ।
भिषङ्मिथ्याप्रचारेण प्रायश्चित्तंविनिर्दिशेत् ॥ ४६ ॥
गोवृषाणांविपत्तौच यावन्तःप्रेक्षकाजनाः ।
अनिवारयतांतेषां सर्वेषांपातकंभवेत् ॥ ४७ ॥
एकोहतोयैर्बहुभिःसमेतैर्नज्ञायतेयस्यहतोभिघातात् ।
दिव्येनतेषामुपलभ्यहन्ता,निवर्त्तनीयोनृपसन्नियुक्तैः ४८
एकाचेद्बहुभिःकाचिद्दैवाद्व्यापादिताक्वचित् ।
पादंपादंतुहत्यायाश्चरेयुस्तेपृथक्पृथक् ॥ ४९ ॥
हतेतुरुधिरंदृश्यं व्याधिग्रस्तःकृशोभवेत् ।
ग्रासार्थंचोदितोवापि अध्वनंनैवगच्छति ।

यदि दवाई करने के लिये गौ को रस्सी से बांध कर गिराने से, और अटके हुए गर्भ को निकालने से उपाय करने पर भी गौ मरजाय तो गोहत्या का दोष नहीं लगेगा ॥ ४५ ॥ यदि बहुतों को एक साथ थोड़ी जगह में रोकने वा बांधने पर अनेक गौ मरजावें। अथवा वैद्य डाक्टरादि की विरुद्ध हानिकारक दी ओषधि से गौ मरजावे तो प्रायश्चित्त यथोचित करना चाहिये ॥४६॥ जहां गौ वा बैल मारे पीटे वा वध किये जाते हों तब जितने देखने वाले ब्राह्मणादि सनातनधर्मी देखते रहें वा सुनते जानते रहें और गोहत्या का निवारण न करें तो गोहत्या का पाप सब को लगता है ॥ ४७ ॥ एक मनुष्य वा पशु को इकट्ठे हुए बहुतों ने मारा हो पर यह न जानपड़े कि किस की चाट से मारा गया तो वहां अग्नि का गोला हाथ पर रखना आदि दिव्य उपाय से अपराधी को जानकर राजकर्मचारी राजदण्ड दिलावें ॥ ४८ ॥ यदि एक गौ को बहुत मनुष्यों ने मिलकर मारा हो तो हत्या का चौथाई २ प्रायश्चित्त सब करें ॥ ४९ ॥ कोई गौ मारी पीटी गई हो तो रुधिर निकलने से, वा रोग से दुबली हो जावे, वा दाना घास आदि खिलाने पर भी न खावे, वा मार्गमें हांकने पर भी न चले और फेन गिरावे तो जान लो कि गौ को किसी ने मारा पी

लालाभवतिदृष्टेषु एवमन्वेषणंभवेत् ॥ ५० ॥
मनुनाचैवमेकेन सर्वशास्त्राणिजानता ।
प्रायश्चित्तंतुतेनोक्तं गोघ्नश्चान्द्रायणंचरेत् ॥ ५१ ॥
केशानांरक्षणार्थाय द्विगुणंव्रतमाचरेत् ।
द्विगुणेव्रतआदिष्टे दक्षिणाद्विगुणाभवेत् ॥५२॥
राजावाराजपुत्रोवा ब्राह्मणोवाबहुश्रुतः ।
अकृत्वावपनंतेषां प्रायश्चित्तंविनिर्दिशेत् ॥ ५३ ॥
यस्यनद्विगुणन्दानङ्केशश्चपरिरक्षितः ।
तत्पापंतस्यतिष्ठेत वक्ताचनरकंव्रजेत् ॥ ५४ ॥
यत्किंचित्क्रियतेपापं सर्वंकेशेषुतिष्ठति ।
सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलद्वयम् ॥ ५५ ॥
एवंनारीकुमारीणां शिरसोमुण्डनंस्मृतम् ।
नस्त्रियाःकेशवपनं नदूरेशयनासनम् ॥ ५६ ॥
नचगोष्ठेवसेद्रात्रौ नदिवागाअनुव्रजेत् ।

टा है ॥ ५० ॥ धर्म शास्त्रों का मर्म जानने वाले एक मनुजी ने गोहत्या करने वाले को चान्द्रायण व्रत प्रायश्चित्त कहा है ॥ ५१ ॥ यदि कोई मनुष्य प्रायश्चित्त में शिर के बाल न मुंडाना चाहे तो उसे दूना प्रायश्चित्त व्रत करना चाहिये। और उस में दक्षिणा भी द्विगुणी देनी चाहिये ॥५२॥ ऐसे द्विगुण प्रायश्चित्त करने वालों को राजा, वा राजपुत्र अथवा बहुत शास्त्रों को जानने वाला ब्राह्मण विद्वान् प्रायश्चित्त करावे ॥ ५३ ॥ जो अपराधी शिर के बाल न मुंडावे और दक्षिणा भी दूनी न देवे उस का पाप प्रायश्चित्त से निवृत्त नहीं होता किन्तु पाप वैसाही बना रहता है। और प्रायश्चित्त बताने वा कराने वाले को भी नरक होता है ॥५४॥ जो कुछ पाप किया जाता है वह सब बालों में ठहरता है। इस लिये जो कोई प्रायश्चित्ती केश न मुंडाना चाहे वह भी शिर के सब बालों को इकट्ठा करके ऊपर से दो अंगुल पुलझा कटा देवे ॥ ५५ ॥ यदि स्त्री वा कुमारी कन्या को किसी अपराध में प्रायश्चित्त करना पड़े तो स्त्री के शिर के बाल न मुड़ावे किन्तु सब बाल इकट्ठे करके ऊपर से दो अंगुल कटवा देवे। और प्रायश्चित्त के लिये स्त्री अपने घर से दूर कहीं एकान्त में अकेली न सोवे न निवास करे ॥ ५६ ॥ प्रायश्चित्त के समय स्त्री

नदीपुसंगमेचैव अरण्येषुविशेषतः ॥ ५७ ॥
नस्त्रीणामजिनंवासो व्रतमेवंसमाचरेत् ।
त्रिसंध्यंस्नानमित्युक्तं सुराणामर्चनंतथा ॥ ५८ ॥
बन्धुमध्येव्रतंतासां कृच्छ्रचान्द्रायणादिकम् ।
गृहेषुसततंतिष्ठेच्छुचिर्नियममाचरेत् ॥ ५९ ॥
इहयोगोवधंकृत्वा प्रच्छादयितुमिच्छति ।
सयातिनरकंघोरं कालसूत्रमसंशयम् ॥ ६० ॥
विमुक्तोनरकात्तस्मान्मर्त्यलोकेप्रजायते ।
क्लीबोदुःखीचकुष्ठीच सप्तजन्मानिवैनरः ॥ ६१ ॥
तस्मात्प्रकाशयेत्पापं स्वधर्मंसततंचरेत् ।
स्त्रीबालभृत्यगोविप्रेष्वतिकोपंविवर्जयेत् ॥ ६२ ॥
इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

रात को गोशाला में भी न बसे, न दिन में गौओं के पीछे २ जंगल में जावे, नदियों में तथा नदी के संगम पर भी स्नान को अकेली न जावे और एकान्त बन में भी न रहे ॥ ५७ ॥ प्रायश्चित्त में स्त्रियों के लिये मृग चर्म धारण का भी निषेध है किन्तु स्त्री तीन वार स्नान करे और देवताओं की प्रतिमाओं का पूजन करती हुई प्रायश्चित्त व्रत पूरा करे ॥ ५८ ॥ स्त्रियों को भाई बन्धों के बीच अपने घर में कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत करना उचित है। निरन्तर अपने घर में ही रहे और शुद्धि आदि के नियमों का पालन ब्रह्मचर्य रखती हुई करे ॥५९॥ इस जगत् में जो कोई पुरुष गोवध करके छिपाना चाहता है वह अवश्यमेव काल सूत्र नामक घोर नरक को प्राप्त होता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ६० ॥ वह गोहिंसक पुरुष उस नरक से छूटने पर मनुष्य लोक में जन्म लेता है। तब सात जन्मों तक नपुंसक तथा कोढ़ी होता हुआ अनेक बड़े २ कठिन दुःख पाता है। इससे गोहत्या बन पड़े तो उसे न छिपा कर प्रायश्चित्त अवश्य करे ॥ ६१ ॥ जिस से गोहत्यादि पाप को प्रकाशित करे और अपना धर्म निरन्तर करे। स्त्री, बालक, अपना दास, गौ और ब्राह्मणों पर अत्यन्त क्रोध कदापि न करे ॥ ६२ ॥

यह पाराशरीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में नवम अध्याय पूरा हुआ ॥

चातुर्वर्ण्येषुसर्वेषु हितांवक्ष्यामिनिष्कृतिम् ।
अगम्यागमनेचैव शुद्धौचान्द्रायणंचरेत् ॥ १ ॥
एकैकंह्रासयेद्ग्रासं कृष्णेशुक्लेचवर्द्धयेत् ।
अमावास्यांनभुञ्जीत ह्येषचान्द्रायणेविधिः ॥ २ ॥
कुक्कुटाण्डप्रमाणंतु ग्रासंवैपरिकल्पयेत् ।
अन्यथाभावदुष्टस्य नधर्मोनचशुद्ध्यति ॥ ३ ॥
प्रायश्चित्ततनश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
गोद्वयंवस्त्रयुग्मंच दद्याद्विप्रेषुदक्षिणाम् ॥ ४ ॥
चाण्डालींवाश्वपाकींवा अनुगच्छतियोद्विजः ।
त्रिरात्रमुपवासीस्याद् विप्राणामनुशासनात् ॥ ५ ॥
सशिखंवपनंकृत्वा प्राजापत्यत्रयंचरेत् ।
ब्रह्मकूर्चंततःकृत्वा कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ॥ ६ ॥
गायत्रींचजपेन्नित्यं दद्याद्गोमिथुनद्वयम् ।

सब ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लिये हितकारी प्रायश्चित्त इस आगे द-शवें अध्याय में हम कहेंगे । अगम्या स्त्री के साथ गमन करने पर शुद्धि के लिये चान्द्रायण व्रत करे ॥ १ ॥ जिस मास में चान्द्रायण करे तब पौर्णमासी को १५ ग्रास खाकर कृष्ण प्रतिपदा से एक २ ग्रास घटाता जाय फिर अमावस्या को कुछ न खावे निराहार रहे फिर शुक्ल प्रतिपदा को एक द्विती-या को दो ग्रास खावे ऐसे ही प्रति दिन एक २ बढ़ा के पौर्णमासी को फिर १५ ग्रास खावे यही चान्द्रायण का विधान है ॥२॥ मुरगा के अण्डा के बराबर एक ग्रास का प्रमाण जानो। जिस का मन छलकपटादि से दूषित हो वह धर्म करने योग्य नहीं और न उस की प्रायश्चित्तों से शुद्धि होती है ॥ ३ ॥ प्राय-श्चित्त पूरा होने पर ब्राह्मणों को भोजन करावे । तथा दो गौ और दो वस्त्र ब्राह्मणों को दक्षिणा देवे ॥ ४ ॥ चाण्डाली वा डोमिनी स्त्री से जो ब्राह्मण समागम करै वह ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर प्रथम तीन दिन रात उपवास करे ॥ ५ ॥ फिर शिखा सहित शिर के बाल मुंडा के दो प्राजापत्य व्रत करे । तदनन्तर ब्रह्मकूर्च व्रत करके ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ ६ ॥ नित्य गायत्री

विप्रायदक्षिणांदद्याच्छुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ७ ॥
क्षत्रियोवाऽथवैश्योवा चाण्डालींगच्छतोयदि ।
प्राजापत्यद्वयंकुर्याद् दद्याद्गोमिथुनंतथा ॥ ८ ॥
श्वपाकीमथचाण्डालीं शूद्रोवैयदिगच्छति ।
प्राजापत्यंचरेत्कृच्छ्रं चतुर्गोमिथुनंददेत् ॥ ९ ॥
मातरंयदिगच्छेत्तु भगिनींस्वसुतांतथा ।
एतास्तुमोहितोगत्वा त्रीणिकृच्छ्राणि संचरेत् ॥ १० ॥
चान्द्रायणत्रयंकुर्याच्छिश्नच्छेदेनशुद्धयति ।
मातृष्वसृगमेचैव आत्ममेढ्रनिकृन्तनम् ॥ ११ ॥
अज्ञानेनतुयोगच्छेत्कुर्याच्चान्द्रायणद्वयम् ।
दशगोमिथुनंदद्याच्छुद्धिंपाराशरोऽब्रवीत् ॥ १२ ॥
पितृदारान्समारुह्य मातुराप्तांचभ्रातृजाम् ।

का जप किया करे। दो गौ दो बैल ब्राह्मण को दक्षिणा में देवे तो इतने प्रायश्चित्त से निःसन्देह शुद्ध हो जाता है ॥ ७ ॥ क्षत्रिय वा वैश्य पुरुष यदि चाण्डाली से गमन करें तो दो प्राजापत्य व्रत करके दो गौ दो बैल दक्षिणा में देवें और ब्रह्मभोज करावें ॥ ८ ॥ डोमिनी वा चाण्डाली के साथ यदि शूद्र पुरुष गमन करे तो एक प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करे और चार गौ चार बैल दक्षिणा देवे ॥ ९ ॥ माता, भगिनी, तथा अपनी पुत्री से जो पुरुष मोहाज्ञानग्रस्त हो के गमन करे तो तीन कृच्छ्रव्रत करे ॥ १० ॥ फिर तीन चान्द्रायण व्रत तीन मास तक करे तब शिश्न (लिङ्गेन्द्रिय) को काट डालने पर शुद्ध होता है। और मातृष्वसा (मौसी) से गमन करने पर भी अपने इन्द्रिय का छेदन करके काट डाले ॥ ११ ॥ और यदि अज्ञान से ऐसा पूर्वोक्त काम करे तो दो मास तक दो चान्द्रायण व्रत करे और दशगौ दश बैल दक्षिणा में देवे। यह शुद्धि महर्षि पराशर ने कही है ॥ १२ ॥ जो पुरुष पिता की अन्य किसी स्त्री (जो अपनी उत्पादिका माता न हो) से गमन करे या माता की सगी भतीजी से गमन करे वा गुरुपत्नी, पुत्रवधू, भ्रातृ

गुरुपत्नींस्नुषांचैव भ्रातृभार्यांतथैवच ॥ १३ ॥
मातुलानींसगोत्रांच प्राजापत्यत्रयंचरेत् ।
गोद्वयंदक्षिणांदत्त्वा मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ १४ ॥
पशुवेश्यादिगमने महिष्युष्ट्रींकपींस्तथा ।
खरींचशूकरींगत्वा प्राजापत्यंसमाचरेत् ॥ १५ ॥
गोगामीचत्रिरात्रेण गामेकांब्राह्मणेददेत् ।
महिष्युष्ट्रीखरीगामी त्वहोरात्रेणशुद्ध्यति ॥ १६ ॥
डामरेसमरेवाऽपि दुर्भिक्षेवाजनक्षये ।
बन्दिग्राहेभयार्त्तावा सदास्वस्त्रींनिरीक्षयेत् ॥१७॥
चाण्डालैःसहसंपर्कं यानारीकुरुतेततः ।
विप्रान्दशावरान्कृत्वा स्वकंदोषंप्रकाशयेत् ॥ १८ ॥
आकण्ठसंमितेकूपे गोमयोदककर्द्दमे ।
तत्रस्थित्वानिराहारा त्वहोरात्रेणनिष्क्रमेत् ॥ १९ ॥

जाया (भौजाई—भावज) से गमन करे ॥ १३ ॥ तथा माता की भावज और अपने गोत्र की किसी भी स्त्री से गमन करे तो तीन प्राजापत्य व्रत करे। और दो गौ दक्षिणा में देवे तो निःसन्देह पाप से छूट जाता है ॥ १४ ॥ किसी पशु बकरी आदि के साथ तथा वेश्या के साथ गमन करे वा भैंस, ऊंटिनी, बंदरी, गधी, और सूकरी इन सब के साथ मैथुन करने पर प्राजापत्य व्रत करे ॥१५॥ यदि कोई गौ से गमन करे तो तीन उपवास करे और एक गौ ब्राह्मण को दान करे। भैंस, ऊंटिनी, और गधी से गमन करनेवाला एक दिन रात व्रत करने पर शुद्ध होता है ॥ १६ ॥ डामर (महा पीड़ा) संग्राम, दुर्भिक्ष, मनुष्यों का नाश, जेलखाना, भय से पीड़ा होने पर इन सब अवसरों में सदा अपनी स्त्री की रक्षा का ध्यान रक्खे विस्मरण न करे ॥ १७ ॥ जो स्त्री चाण्डालों के साथ संसर्ग करतीहै वह कमसे कम दश ब्राह्मणों से अपना दोष प्रकाशित करे ॥ १८ ॥ फिर किसी कुए में कण्ठ तक गहरा गोबर जल मिला के कीचड़ भरे, उस कीचड़ में एक दिन रात निराहार खड़ी रहने बाद निकले ॥ १९ ॥

सशिखंवपनंकृत्वा भुञ्जीयाद्यावकौदनम् ।
त्रिरात्रमुपवासित्वा त्वेकरात्रंजलेवसेत् ॥ २० ॥
शंखपुष्पीलतामूलं पत्रंवाकुसुमंफलम् ।
सुवर्णंपञ्चगव्यंच क्राथयित्वापिबेज्जलम् ॥२१॥
एकभक्तंचरेत्पश्चाद्यावत्पुष्पवतीभवेत् ।
व्रतंचरतितद्यावत्तावत्संवसतेबहिः ॥ २२ ॥
प्रायश्चित्तेततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
गोद्वयंदक्षिणांदद्याच्छुद्धिंपाराशरोऽब्रवीत् ॥ २३ ॥
चातुर्वर्ण्यस्यनारीणां कृच्छ्रंचान्द्रायणव्रतम् ।
यथाभूमिस्तथानारी तस्मात्तांनतुदूषयेत् ॥ २४ ॥
बन्दिग्राहेणयाभुक्ता हत्वाबद्ध्वाबलाद्भयात् ।
कृत्वासांतपनंकृच्छ्रं शुद्ध्येत्पाराशरोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥
सकृद्भुक्तातुयानारी नेच्छन्तीपापकर्मभिः ।

फिर शिखा सहित सब बाल मुंडा के कुलथी और भात खावे । फिर तीन दिन रात उपवास करके एक दिन रात जल के भीतर बसे ॥२०॥ फिर शंखाहूली घास की जड़, पत्ते, फूल वा फलों को और सुवर्ण तथा पञ्चगव्य इन सब का काढा बनाकर जल पीवे ॥ २१ ॥ फिर जबतक रजस्वला हो तब तक एकवार भोजन करे भूमि पर सोवे । और जबतक इस व्रत को करे तबतक घरसे पृथक् घरके किसी भाग में वसे ॥ २२ ॥ फिर प्रायश्चित्त पूरा होने पर ब्राह्मणों को भोजन करावे और दो गौ दक्षिणा में देवे यह शुद्धि महर्षि पराशर ने कही है।२३। चारो वर्णों की स्त्रियों के लिये दोष लगने पर कृच्छ्रचान्द्रायणव्रत प्रायश्चित्त है क्योंकि स्त्री भूमि के समान है इस से वह सर्वथा त्याज्य नहीं होती है ॥२४॥ यदि किसी पुरुष ने मारपीट कर या बांधकर वा मारडालनेका भय दिखाकर वा जबरदस्ती से हाथ पांव बांध कर स्त्री से दुराचार किया हो तो वह स्त्री सान्तपन कृच्छ्र व्रत करके शुद्ध होती है यह पाराशर जी ने कहा है ॥२५॥ पापकर्मी व्यभिचारियों ने जिस इच्छा न रखती हुई शुद्ध स्त्री से एकवार दुराचार किया हो वह प्राजापत्य व्रत करने और रजस्वला होने से शुद्ध

प्राजापत्येनशुद्ध्येत ऋतुप्रस्रवणेनच ॥ २६ ॥
पतत्यर्द्धंशरीरस्य यस्यभार्यासुरांपिबेत् ।
पतितार्द्धशरीरस्य निष्कृतिर्नविधीयते ॥ २७ ॥
गायत्रींजपमानस्तु कृच्छ्रंसांतपनंचरेत् ।
गोमूत्रंगोमयंक्षीरं दधिसर्पिःकुशोदकम् ॥ २८ ॥
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रंसांतपनंस्मृतम् ॥ २९ ॥
जारेणजनयेद्गर्भं मृतेत्यक्तेगतेपतौ ।
तांत्यजेदपरेराष्ट्रे पतितांपापकारिणीम् ॥ ३० ॥
ब्राह्मणीतुयदागच्छेत्परपुंसासमन्विता ।
सातुनष्टाविनिर्दिष्टा नतस्यागमनंपुनः ॥ ३१ ॥
कामान्मोहाच्चयागच्छेत्त्यक्त्वाबन्धून्सुतान्पतिम् ।
साऽपिनष्टापरेलोके मानुषेषुविशेषतः ॥ ३२ ॥

होती है ॥२६॥ जिस द्विज की स्त्री मद्य पीती है उसका आधा अङ्ग पतित हो जाता है । और जिस का आधा शरीर पतित हो गया उस का यद्यपि कोई प्रायश्चित्त नहीं है ॥२७॥ तथापि गायत्री को जपता हुआ कृच्छ्र सान्तपन व्रत करे ॥ २८ ॥ गोमूत्र, गोमय, गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, और कुश पीसकर निकाला जल इन सब को मिलाकर एकदिन खावे और एकदिन उपवास करे तो यह कृच्छ्र सान्तपन व्रत कहाता है ॥२९॥ जो स्त्री अपने पति के त्याग देने पर, पति के कहीं चले जाने पर, वा पति के मर जाने पर, अन्य जार पुरुष से व्यभिचार द्वारा सन्तान पैदा कर लेवे उस पतित हुई पापिनि स्त्री को राजा स्वदेश से निकाल दे अन्य किसी राज्य में भेज देवे ॥ ३० ॥ यदि कोई ब्राह्मणी अन्य पुरुष के साथ मेल करके अपने घर से भाग जावे तो उस को नष्ट भ्रष्ट जानो । वह फिर प्रायश्चित्त द्वारा भी ग्राह्य नहीं है ॥३१॥ जो स्त्री किसी पुरुष पर कामासक्त होके वा अज्ञान रूप मोह से, अपने पति, पुत्रों और बन्धुओं को त्याग के किसी अन्य पुरुष के साथ निकल जावे वह भी परलोक से नष्ट होती उस का परलोक बिगड़ जाता और विशेष कर यह लोक तो बिगड़ता ही है ॥ ३२ ॥

मदमोहगतानारी क्रोधाद्दण्डादिताडिता ।
अद्वितीयंगताचैव पुनरागमनंभवेत् ॥ ३३ ॥
दशमेतुदिनेप्राप्ते प्रायश्चित्तंनविद्यते ।
दशाहंनत्यजेन्नारीं त्यजेन्नष्टश्रुतांतथा ॥ ३४ ॥
भर्त्ताचैवचरेत्कृच्छ्रं कृच्छ्रार्द्धंचैवबान्धवाः ।
तेषांभुक्त्वाचपीत्वा अहोरात्रेणशुद्ध्यति ॥ ३५ ॥
ब्राह्मणीतुयदागच्छेत्परपुंसाविवर्जिता ।
गत्वापुंसांशतंयाति त्यजेयुस्तांतुगोत्रिणः ॥ ३६ ॥
पुंसोयदिगृहंगच्छेत्तदशुद्धंगृहंभवेत् ।
पितृमातृगृहंयच्च जारस्यैवतुतद्गृहम् ॥ ३७ ॥
उल्लिख्यतद्गृहंपश्चात्पञ्चगव्येनसेचयेत् ।
त्यजेच्चमृन्मयंपात्रं वस्त्रंकाष्ठंचशोधयेत् ॥ ३८ ॥

मद्यादि नशा पीकर वा अज्ञानाहंकार से बिगड़ती हुई स्त्री को क्रोध के साथ पति आदि ने पीटाहो और घरसे निकल जावे परन्तु अन्य पुरुष से संपर्क न होने का पक्का प्रमाण मिले तो उसे फिर अपने घर में रख लेना चाहिये ॥३३॥ यदि स्त्री को घर से निकले दश दिन बीत जावें तो उस का प्रायश्चित्त नहीं होसकता । अर्थात् दश दिन तक न त्यागे और दश दिन के भीतर भी स्वधर्म से नष्ट हुई सुन लें तो अवश्य त्याग देवे ॥ ३४ ॥ जिस की स्त्री बाहर निकल गयी हो वह पति एक कृच्छ्रव्रत करे और स्त्री के भाई आदि आधा कृच्छ्रव्रत करें । तब उन के घर अन्य बिरादरी के लोग खा पीकर एक दिन रात में शुद्ध करें ॥ ३५ ॥ यदि कोई ब्राह्मणी पति आदि के रोकने पर भी अन्य पुरुष के साथ कहीं चली जावे और जाकर सैकड़ों पुरुषों से मेल करे वह फिर भी लौट आना चाहे तो कुटुम्बी लोग उस का त्याग ही कर देवें ॥ ३६ ॥ यदि वह ब्राह्मणी पति के घर में आवे तो वह घर अशुद्ध हो जायगा । और यदि अपने मा बाप के घर में जाके रहे तो वह भी व्यभिचारी जार का घर कहावेगा ॥ ३७ उस घर को ऊपर २ से छील कर फिर से लेपन करके उस में पञ्चगव्य का सेचन करे । उस घर में जितने मट्टी के पात्र हों सब निकाल के फेंक देवें तथा वस्त्रों और काष्ठ के पात्रों की शुद्धि करे ॥ ३८ ॥

संभाराञ्छोधयेत्सर्वान्गोकेशैश्चफलोद्भवान् ।
ताम्राणिपञ्चगव्येन कांस्यानिदशभस्मभिः ॥ ३९ ॥
प्रायश्चित्तंचरेद्विप्रो ब्राह्मणैरुपपादितम् ।
गोद्वयंदक्षिणांदद्यात्प्राजापत्यद्वयंचरेत् ॥ ४० ॥
इतरेषामहोरात्रं पञ्चगव्येनशोधनम् ।
सपुत्रःसहभृत्यश्च कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ ४१ ॥
उपवासैर्व्रतैःपुण्यैः स्नानसंध्यार्चनादिभिः ।
जपहोमदयादानैः शुद्ध्यन्तेब्राह्मणादयः ॥ ४२ ॥
आकाशंवायुरग्निश्च मेध्यंभूमिगतंजलम् ।
नदुष्यन्तिचदर्भाश्च यज्ञेषुचमसायथा ॥ ४३ ॥
इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥
अमेध्यरेतोगोमांसं चाण्डालान्नमथापिवा ।
यदिभुक्तंतुविप्रेण कृच्छ्रंचान्द्रायणंचरेत् ॥ १ ॥

कर घर के सब सामान की शुद्धि करे तथा फल सम्बन्धी तनादि की शुद्धि गौके वालों से करे । तामे के पात्रों की पञ्चगव्य के मर्दन से और कांसे के पात्रों की दश प्रकार के भस्मों से शुद्धि करे ॥ ३९ ॥ फिर वह ब्राह्मण विद्वान् ब्राह्मणों की आज्ञानुसार प्रायश्चित्त करे । अर्थात् दो प्राजापत्य व्रत करे और दो गौ दक्षिणा में देवे ॥ ४० ॥ उस घर के अन्य लोग एक दिन रात पञ्चगव्य पीके उपवास द्वारा शुद्धि करें । फिर पुत्र और भृत्यादि सहित ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ ४१ ॥ सामान्य कर उपवास, व्रत, पुण्य, तीर्थादि में स्नान, देवपूजा, जप, होम, दया, दान, इत्यादि कामों के द्वारा ब्राह्मणादि शुद्ध होते हैं ॥४२॥ आकाश, वायु, अग्नि, शुद्धभूमि में भरा वा नदी में वहता हुआ जल, और दाभ ये पदार्थ नीच के स्पर्शादि से दूषित नहीं होते कि जैसे यज्ञों में सोमरस के चमस उच्छिष्ट नहीं होते ॥ ४३ ॥

यह पाराशरीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में दशवां अध्याय पूरा हुआ ॥

लहसुन आदि अभक्ष्य, वीर्य, गो मांस, चाण्डाल का अन्न, यदि ब्राह्मण इन पदार्थों को खालेवे तो कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करे ॥ १ ॥

तथैवक्षत्रियोवैश्यस्तदर्द्धंतुसमाचरेत् ।
शूद्रोऽप्येवंयदाभुङ्क्ते प्राजापत्यंसमाचरेत् ॥ २ ॥
पञ्चगव्यंपिबेच्छूद्रो ब्रह्मकूर्चंपिबेद्द्विजः ।
एकद्वित्रिचतुर्गावो दद्याद्विप्राद्यनुक्रमात् ॥ ३ ॥
शूद्रान्नंसूतकस्यान्नमभोज्यस्यान्नमेवच ।
शङ्कितंप्रतिषिद्धान्नं पूर्वोच्छिष्टंतथैवच ॥ ४ ॥
यदिभुक्तंतुविप्रेण अज्ञानादापदापिवा ।
ज्ञात्वासमाचरेत्कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चंतुपावनम् ॥ ५ ॥
व्यालैर्नकुलमार्जारैरन्नमुच्छिष्टितंयदा ।
तिलदर्भोदकैःप्रोक्ष्य शुद्ध्यतेनात्रसंशयः ॥ ६ ॥
शूद्रोप्यभोज्यंभुक्त्वान्नं पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ।
क्षत्रियोवापिवैश्यश्च प्राजापत्येनशुद्ध्यति ॥७॥
एकपङ्क्त्युपविष्टानां विप्राणांसहभोजने ।
यद्येकोऽपित्यजेत्पात्रं शेषमन्नंनभोजयेत् ॥ ८ ॥

वैसे ही क्षत्रिय वा वैश्य उक्त पदार्थों को खावें तो उस से आधा व्रत करें। तथा शूद्र भी उक्त पदार्थों को खावें तो एक प्राजापत्य व्रत करे ॥२॥ फिर शूद्र पञ्चगव्य पीवे और द्विज ब्रह्मकूर्च पीवे। एक, दो, तीन, तथा चार गौओं का दान चारों वर्ण क्रमसे करें ॥ ३ ॥ शूद्र का, सूतक वाले का, जिस२ के अन्न का निषेध किया है उसका, जिसमें अपवित्र होने की शंका होगयी हो, जिस (बासी आदि) का खाना मना किया हो, और जो पहिले भोजन करने से बचा हो ॥ ४ ॥ ऐसा पूर्वोक्त शूद्रादि का अन्न ब्राह्मण ने अज्ञान से वा आपत्काल में यदि खाया हो तो जानलेने पर कृच्छ्रव्रत करे और ब्रह्मकूर्च भी पवित्र करने वाला है ॥५॥ जिस अन्नमें से सांप, न्योला और बिलाव ने कुछ खाके उच्छिष्ट कर दिया हो उस पर तिल और दाभ मिलाये जल से मार्जन करने से निःसन्देह शुद्ध हो जाताहै ॥ ६ ॥ शूद्र भी अभोज्य अन्न को खाले तो पञ्चगव्य से शुद्ध होता है। तथा क्षत्रिय और वैश्य भी अशुद्ध वा वर्जित अन्न को खावें तो प्राजापत्य व्रत करने से शुद्ध होते हैं ॥७॥ एक पंक्ति में बैठ कर एक साथ भोजन करते हुए ब्राह्मणों में से यदि एक मनुष्य भी पत्तल को त्याग देवे तो पङ्क्ति वाले सभी शेष अन्न को उच्छिष्ट समझ कर न खावें ॥८॥ यदि कोई ब्राह्मण अज्ञान

मोहाद्भुञ्जीतयस्तत्र पंक्तावुच्छिष्टभोजने ।
प्रायश्चित्तंचरेद्विप्रः कृच्छ्रंसांतपनंतथा ॥ ९ ॥
पीयूषंश्वेतलशुनं वृन्ताकफलगृञ्जने ।
पलाण्डुंवृक्षनिर्यासान्देवस्वंकवकानिच ॥ १० ॥
उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरमज्ञानाद्भक्षयेद्द्विजः ।
त्रिरात्रमुपवासेन पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥ ११ ॥
मण्डूकंभक्षयित्वातु मूषिकामांसमेवच ।
ज्ञात्वाविप्रस्त्वहोरात्रं यावकान्नेनशुद्ध्यति ॥ १२ ॥
क्षत्रियश्चापिवैश्यश्च क्रियावन्तौशुचिव्रतौ ।
तद्गृहेषुद्विजैर्भोज्यं हव्यकव्येपुनित्यशः ॥ १३ ॥
घृतंक्षीरंतथातैलं गुडंतैलेनपाचितम् ।
गत्वानदीतटेविप्रो भुञ्जीयाच्छूद्रभाजने ॥ १४ ॥
मद्यमांसरतंनित्यं नीचकर्मप्रवर्तकम् ।

से उस पांतिमें उच्छिष्ट अन्नको खावे तो ब्राह्मण कृच्छ्र सान्तपन व्रत प्रायश्चित्त करे ॥९॥ गिजरी, (दशदिनके भीतरका गोदुग्ध) सफेद लहसुन, बैंगन, गाजर, प्याज, वृक्षोंका गोंद, देवताका धन, कठफल ॥१०॥ उंटिनीका दूध, भेड़का दूध इन सब को जो ब्राह्मण अज्ञानसे खावे वह तीन उपवास करके पञ्चगव्य से शुद्ध होता है ॥११॥ मेंडक, चूहा इन का मांस ब्राह्मण जान कर खालेवे तो एक दिन रात कुलत्थी अन्न खाने से शुद्ध होता है ॥ १२ ॥ जो क्षत्रिय और वैश्य बाहरी भीतरी सब प्रकार की शुद्धि नियम से रखते हुए सन्ध्या तर्पण पञ्चमहायज्ञादि कर्म यथावत् करते हों उन के घरों में देव पितर सम्बन्धी कामों के समय ब्राह्मणों को सदा भोजन करना चाहिये ॥१३॥ घी, दूध, तेल, गुड़, और गुड़ से पकाया कोई पदार्थ हो शूद्र के घर के इन सब को नदी किनारे जाकर शूद्र के पात्र में भी ब्राह्मण खा सकता है ॥ १४ ॥ जो मद्य मांस खाने पीने में तत्पर तथा नीच कर्मों का प्रवर्त्तक हो ऐसे शूद्र को चाण्डाल के तुल्य

तंशूद्रंवर्जयेद्विप्रः श्वपाकमिवदूरतः ॥ १५ ॥
द्विजशुश्रूषणरतान्मद्यमांसविवर्जितान् ।
स्वकर्मनिरतान्नित्यं ताञ्छूद्रान्नत्यजेद्द्विजः ॥१६॥
अज्ञानाद्भुञ्जतेविप्राः सूतकेमृतकेऽपिवा ।
प्रायश्चित्तंकथंतेषां वर्णवर्णेविनिर्दिशेत् ॥ १७ ॥
गायत्र्यष्टसहस्रेण शुद्धिःस्याच्छूद्रसूतके ।
वैश्येपञ्चसहस्रेण त्रिसहस्रेणक्षत्रिये ॥ १८ ॥
ब्राह्मणस्ययदाभुङ्क्ते प्राणायामेनशुद्ध्यति ।
अथवावामदेव्येन साम्नाचैकेनशुद्ध्यति ॥ १९ ॥
शुष्कान्नंगोरसंस्नेहं शूद्रवेश्मनआगतम् ।
पक्वंविप्रगृहेपूतं भोज्यंतंमनुरब्रवीत ॥ २० ॥
आपत्कालेतुविप्रेण भुक्तंशूद्रगृहेयदि ।
मनस्तापेनशुद्ध्येत द्रुपदांवाशतंजपेत् ॥ २१ ॥

नीच समझ कर ब्राह्मण दूर से त्याग देवे ॥१५॥ मद्य मांस जिन ने त्याग दिये हों ब्राह्मणों की सेवा शुश्रूषा में जो तत्पर हों ऐसे स्वकर्मनिष्ठ शूद्रों का त्याग ब्राह्मण न करे ॥ १६ ॥ जो ब्राह्मण लोग अज्ञान से जन्म सूतक में वा मृतक अशुद्धि में किसी के यहां भोजन करते हैं उन का वर्ण २ में प्रायश्चित्त कैसे हो ॥ १७ ॥ शूद्र के सूतक में किये भोजन पर आठ हजार गायत्री जपने से शुद्ध होतो, वैश्य के घर में भोजन करने से पांच हजार गायत्री का और क्षत्रिय के घर में सूतक के समय भोजन करे तो तीन हजार गायत्री का जप करने से शुद्धि होती है ॥ १८ ॥ और ब्राह्मण के घर में सूतक के समय खाये तो प्राणायाम करने से ही शुद्ध हो जाता है । अथवा एक बार वामदेव्य साम का गान करने से शुद्ध हो जाता है ॥ १९ ॥ सूखा अन्न, गोरस, घी, तेल, इन को शूद्र के घर से लाकर ब्राह्मण के घर में पकाने पर भोजन करने योग्य पवित्र होजाता है यह मनु जी ने कहा है ॥२०॥ यदि आपत्काल में ब्राह्मण ने शूद्र के घर में भोजन कर लिया हो तो मन में पश्चात् ताप करने से शुद्ध हो जाता है अथवा (द्रुपदादिव०) मन्त्र को एक सौ जप लेवे ॥ २१ ॥

दासनापितगोपाल-कुलमित्रार्द्धसीरिणः ।
एतेशूद्रेषुभोज्यान्ना यश्चात्मानंनिवेदयेत् ॥ २२ ॥
शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेनतुसंस्कृतः ।
संस्कृतस्तुभवेद्दासो ह्यसंस्कारैस्तुनापितः ॥ २३ ॥
क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्नस्तुयःसुतः ।
सगोपालइतिख्यातो भोज्योविप्रैर्नसंशयः ॥ २४ ॥
वैश्यकन्यासमुद्भूतो ब्राह्मणेनतुसंस्कृतः ।
सह्यार्द्धिकइतिज्ञेयो भोज्योविप्रैर्नसंशयः ॥ २५ ॥
भाण्डस्थितमभोज्येषु जलंदधिघृतंपयः ।
अकामतस्तुयोभुङ्क्ते प्रायश्चित्तंकथंभवेत् ॥ २६ ॥
ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यः शूद्रोवाप्युपसर्पति ।

दास नाम कहार, नाई, आभीर (अहीर) अपने कुल का मित्र, (कुल मित्र शब्द का अपभ्रंश कुर्मी हुआ हो यह भी सम्भव है) खेती में आधा साझी, ये सब शूद्रों में भोजन करने योग्य हैं अर्थात् इन का तथा शरणागत शूद्र का सूखा अन्न आटा दाल आदि भोजनार्थ लेने में ब्राह्मण को दोष नहीं लगता है ॥ २२ ॥ ब्राह्मण से शूद्र की कन्या में जो सन्तान पैदा हो उस का संस्कार यदि ब्राह्मण ने कराया हो तो वह दास (कहार) माना जावे और यदि संस्कार न हो तो वह नाई होगा । (यहां संस्कार पद से ब्राह्मण द्वारा पालन पोषण अर्थ लेना चाहिये) ॥ २३ ॥ क्षत्रिय पुरुष से शूद्र की कन्या में जो सन्तान पैदा हो उस को गोपाल कहते हैं । ब्राह्मण लोग उस गोपाल का अन्न खा सकते हैं इस में सन्देह नहीं ॥ २४ ॥ क्षत्रिय से वैश्य की कन्या में जो सन्तान पैदा हो और ब्राह्मण उस का संस्कार करे तो वह आर्द्धिक कहाता है और ब्राह्मण लोग उस का अन्न निःसन्देह खावें ॥ २५ ॥ जिन का अन्न खाना वर्जित है उन के पात्र में रक्खा जल, दही, घी, वा दूध इन को जो कामना के विना खाता है उस का प्रायश्चित्त कैसे हो ? ॥ २६ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यदि उक्त अपराध का प्रायश्चित्त धर्म सभा से

ब्रह्मकूर्चोपवासेन यथावर्णस्यनिष्कृतिः ॥ २७ ॥
शूद्राणांनोपवासःस्याच्छूद्रोदानेनशुद्ध्यति ।
ब्रह्मकूर्चमहोरात्रं श्वपाकमपिशोधयेत् ॥ २८ ॥
गोमूत्रंगोमयंक्षीरं दधिसर्पिःकुशोदकम् ।
निर्दिष्टंपञ्चगव्यंच पवित्रंपापशोधनम् ॥ २९ ॥
गोमूत्रंकृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैवगोमयम् ।
पयश्चताम्रवर्णाया रक्तायागृह्यतेदधि ॥ ३० ॥
कपिलायाघृतंग्राह्यं सर्वंकापिलमेववा ।
मूत्रमेकपलंदद्यादङ्गुष्ठार्द्धंतुगोमयम् ॥ ३१ ॥
क्षीरंसप्तपलंदद्याद्दधित्रिपलमुच्यते ।
घृतमेकपलंदद्यात्पलमेकंकुशोदकम् ॥ ३२ ॥
गायत्र्यादायगोमूत्रं गन्धद्वारेतिगोमयम् ।

चाहें तो ब्रह्मकूर्च रूप उपवास से यथा योग्य भिन्न २ प्रकार वर्णों का प्रायश्चित्त जानो ॥२७॥ शूद्रों के लिये ब्रह्मकूर्चादि का पान वा उपवास करना निषिद्ध है किन्तु शूद्र दान करने से शुद्ध हो जाता है । ब्राह्मणादि द्विज पुरुष एक दिन रात ब्रह्मकूर्च उपवास करे तो चाण्डाल के तुल्य लगे दोष को भी यह व्रत शुद्ध कर देता है ॥ २८ ॥ (अब तक पूर्व में कई वार ब्रह्मकूर्च उपवास का प्रसंग आचुका है सो अब यहां से ४० श्लोक तक ब्रह्मकूर्च का विधान कहते हैं सो जहां २ ब्रह्मकूर्च कहा है वहां २ इसी विधान को जान लेना) गो मूत्र, गोबर, गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, और कुशों को पीस कर निचोड़ा जल इस प्रकार कुशोदक और पञ्चगव्य का निम्न रीति से सेवन करना परम पवित्र होने से पापों का शोधन करने वाला है ॥ २९ ॥ काली गौ का गोमूत्र लेवे, श्वेत गौ का गोबर लेवे, ताम्र वर्ण गौ का दूध लेवे, लाल गौ का दही ॥ ३० ॥ कपिला गौ का घी लेना चाहिये । अथवा गो मूत्रादि सभी कपिला गौ का लेवे । एक पल (चार तोला) गोमूत्र, अपने आधे अंगूठे भर गोबर ॥ ३१ ॥ सात पल (अट्ठाईश तोला) गौ का दूध लेवे, तीन पल (१२ तोला) दही, एक पल (४ तोला) घी और एक पल कुशोदक लेवे ॥ ३२ ॥ (तत्सवितु०) गायत्री से गोमूत्र, (गन्धद्वारां०) लक्ष्मीसूक्त के मन्त्र से

आप्यायस्वेतिचक्षीरं दधिक्राव्णस्तथादधि ॥ ३३ ॥
तेजोसिशुक्रमित्याज्यं देवस्यत्वाकुशोदकम् ।
पञ्चगव्यमृचापूतं स्थापयेदग्निसन्निधौ ॥ ३४ ॥
आपोहिष्ठेतिचालोड्य मानस्तोकेतिमन्त्रयेत् ।
सप्तावरास्तुयेदर्भा अच्छिन्नाग्राःशुकत्विषः ॥ ३५ ॥
एतैरुद्धृत्यहोतव्यं पञ्चगव्यंयथाविधि ।
इरावतीइदंविष्णुर्मानस्तोकेचशंवती ॥ ३६ ॥
एताभिश्चैवहोतव्यं हुतशेषंपिबेद्द्विजः ॥ ३७ ॥
आलोड्यप्रणवेनैव निर्मथ्यप्रणवेनतु ।
उद्धृत्यप्रणवेनैव पिबेच्चप्रणवेनतु ॥ ३८ ॥
यत्त्वगस्थिगतंपापं देहेतिष्ठतिदेहिनाम् ।
ब्रह्मकूर्चोदहेत्सर्वं यथैवाग्निरिवेन्धनम् ॥ ३९ ॥

गोबर, (आप्यायस्व समेतु० यजु० अ० १२ । ११२) मन्त्रसे दूध, (दधिक्राव्णोअकार० यजु० अ० २३ । ३२) मन्त्रसे दही, (तेजोऽसिशुक्रमस्य० यजु० १ । ३१) मन्त्र से घी, (देवस्यत्वा०-हस्ताभ्यां गृह्णामि । यजु०अ० १।१०) मन्त्र से कुशोदक लेवे । इस प्रकार ऋचाओं से पवित्र किये पञ्चगव्य तथा कुशोदक को लेकर अग्निकुण्ड के समीप स्थापित करे ॥ ३३।३४ ॥ फिर (आपोहिष्ठा० यजु० अ० ११ । ५०) इत्यादि तीन मन्त्रों से गोमूत्रादि सब को मिलाके (आलोडन करके) (मानस्तोके० यजु० अ० १६ । १६) मन्त्र से अभिमन्त्रण करे अर्थात् मन्त्र पढ़ता हुआ गोमूत्रादि को देखे । फिर जिनका अग्रभाग न टूटा हो ऐसे टोकर हरे कम से कम सात दाभों से ॥ ३५ ॥ कुशोदक सहित पञ्चगव्य को लेर कर निम्न मन्त्रों से यथाविधि होम करे । (इरावती धेनुमती० यजु०अ० ५।१६) (इदं विष्णुर्वि० यजु० अ०५ । १५) (मानस्तोकेतनये० यजु० अ० १६ । १६) और यजु० अ० ३६ के (शंनो मित्रः०) इत्यादि शं शब्द वाले मन्त्रों से ॥३६॥ होम करे फिर होमसे शेष बचे भागको निम्न प्रकार पीवे ॥३७॥ ओंकार से आलोडन कर ओंकार से मन्थन कर ओंकार से ही उठाकर तथा ओंकार पढ़ के ही पीवे ॥ ३८ ॥ जो पाप मनुष्यों के शरीर की त्वचा तथा हड्डियों में भी पैठ गया हो उस सब को यह ब्रह्मकूर्च ऐसे ही भस्म कर देता है जैसे कि इंधन को अग्नि जलावे ॥ ३९॥

पवित्रंत्रिषुलोकेषु देवताभिरधिष्ठितम् ।
वरुणश्चैवगोमूत्रे गोमयेहव्यवाहनः ।
दध्निवायुःसमुद्दिष्टः सोमःक्षीरेघृतेरविः ॥ ४० ॥
पिबतःपतितंतोयं भाजनेमुखनिःसृतम् ।
अपेयंतद्विजानीयाद् भुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत् ॥ ४१ ॥
कूपेचपतितंदृष्ट्वा श्वशृगालौचमर्कटम् ।
अस्थिचर्मादिपतिताः पीत्वामेध्याअपोद्विजः ॥ ४२ ॥
नारंतुकुणपंकाकं विड्वराहंखरोष्ट्रकम् ।
गावयंसौप्रतीकंच मायूरंखाड्गकंतथा ॥ ४३ ॥
वैयाघ्रमार्क्षंसैंहंवा कूपेयदिनिमज्जति ॥ ४४ ॥
तडागस्याऽपिदुष्टस्य पीतंस्यादुदकंयदि ॥
प्रायश्चित्तंभवेत्पुंसः क्रमेणैतेनसर्वशः ॥ ४५ ॥
विप्रःशुद्ध्येत्त्रिरात्रेण क्षत्रियस्तुदिनद्वयात् ।
एकाहेनतुवैश्यश्च शूद्रोनक्तेनशुद्ध्यति ॥ ४६ ॥
परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्यच ।

यह ब्रह्मकूर्च अनेक देवताओं से अधिष्ठित होने से तीनों लोक में अति पवित्र है। गो मूत्र में वरुण देवता, गोबर में अग्नि, दही में वायु, दूध में सोम, और घी में सूर्य नारायण विराजते हैं ॥ ४० ॥ जल पीते समय मुख से निकल के जलपात्र में जूठा जल गिरजाय तो वह पात्रका जल पीने योग्य नहीं है। यदि उस को पीलेवे तो चान्द्रायण व्रत करे ॥४१॥ यदि कुए में कुत्ता, गीदड़, बन्दर, हाड़, चाम आदि गिरे हुए देखकर भी द्विज पुरुष उस अशुद्ध जल को पी लेवे ॥ ४२ ॥ मनुष्य का मुर्दा देह, कौवा, विष्ठा खाने वाला सूअर, गधा, ऊंट, गवय, (नीलगाय) हाथी, मोर, गेंडा, ॥ ४३ ॥ बाघ, रीछ, सिंह, ये यदि कूप में डूब जांय ॥ ४४ ॥ और तालाब का बिगड़ा हुआ खराब दुर्गंधयुक्त जल भी यदि पीया जाय तो पुरुषों का क्रमसे यह निम्न प्रायश्चित्त है कि ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण तीन दिन रात, क्षत्रिय दो दिन रात, के उपवास से वैश्य एक दिन रात के उपवास से और शूद्र रातभर के उपवास से शुद्ध होता है ॥ ४६ ॥ जो पुरुष परपाक से निवृत्त हो और जो परपाक रत हो इन दोनोंका और १५ श्लोक

अपचस्यचभुक्त्वान्नं द्विजश्चान्द्रायणंचरेत् ॥ ४७ ॥
अपचस्यतुयद्दानन्दातुरस्यकुतःफलम् ।
दाताप्रतिग्रहीताच द्वौतौनिरयगामिनौ ॥ ४८ ॥
गृहीत्वाग्निंसमारोप्य पञ्चयज्ञान्ननिर्वपेत् ।
परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिःपरिकीर्त्तितः ॥ ४९ ॥
पञ्चयज्ञान्स्वयंकृत्वा परान्नेनोपजीवति ।
सततंप्रातरुत्थाय परपाकरतस्तुसः ॥ ५० ॥
गृहस्थधर्मेयोविप्रो ददातिपरिवर्जितः ।
ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचःपरिकीर्तितः ॥ ५१ ॥
युगेयुगेतुयेधर्मास्तेषुतेषुचयेद्विजाः ।
तेषांनिन्दानकर्तव्या युगरूपाहितेद्विजाः ॥ ५२ ॥
हुंकारंब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारंचगरीयसः ।

में कहे अपच का अन्न खाकर ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत करे ॥ ४७ ॥ अपच पुरुष को जो दान देवे उस का दाता को फल कहां ? दान का दाता और लेने वाला ये दोनों नरक में जाते हैं ॥ ४८ ॥ जो पुरुष अग्नि को स्थापन करके अरणी में समारोप करके पञ्चमहायज्ञ न करै । मुनियों ने उसको "परपाक निवृत्त" कहा है ॥ ४९ ॥ और जो नित्य प्रातःकाल उठकर आप ही पञ्चमहायज्ञ करके अन्य के पकाये अन्न को खाता हो वह "परपाकरत" कहाता है ॥५०॥ अर्थात् ये दोनों ही बुरे निन्दित हैं । पर नाम वैश्वदेवार्थ अन्न पकाना चाहिये उसी का शेष खाना अमृतभोजन है। और पर नाम अन्य के पकाये में खाने की रुचि न रक्खे। गृहस्थोंके धर्म में तत्पर जो ब्राह्मण हो और दान धर्मसे वर्जित हो (दान कुछ न देता हो अर्थात् पञ्चमहायज्ञों द्वारा देवतादि को भी कुछ न देता हो) धर्म तत्त्व के ज्ञाता ऋषियों ने उसे "अपच" कहा है ॥५१॥ युग २ में जो भिन्न २ धर्म हैं उन २ धर्मों में तत्पर जो ब्राह्मण उन ब्राह्मणों की निन्दा नहीं करनी चाहिये क्योंकि वे ब्राह्मण युग के अनुरूप हैं सद्युगी, त्रेतायुगी, द्वापरयुगी, और कलियुगी ब्राह्मण भिन्न २ होंगे । कलि में अन्य युगों केसे ब्राह्मण भी हो ही नहीं सकते ॥५२॥ बड़े विद्वान् धर्मनिष्ठ ब्राह्मण को हुंकार और किसी मान्य पुरुष से त्वंकार (हुं वा तूं) जिस समय कहे उस समय

स्नात्वातिष्ठन्नहःशेषमभिवाद्यप्रसादयेत् ॥ ५३ ॥
ताडयित्वातृणेनापि कण्ठेबध्वापिवाससा ।
विवादेनापिनिर्जित्य प्रणिपत्यप्रसादयेत् ॥ ५४ ॥
अवगूर्य्यत्वहोरात्रं त्रिरात्रंक्षितिपातने ।
अतिकृच्छ्रंचरुधिरे कृच्छ्रमन्तरशोणिते ॥ ५५ ॥
नवाहमतिकृच्छ्रंस्यात्पाणिपूरान्नभोजनम् ।
त्रिरात्रमुपवासःस्यादतिकृच्छ्रःसउच्यते ॥ ५६ ॥
सर्वेषामेवपापानां संकरेसमुपस्थिते ।
शतंसाहस्रमभ्यस्ता गायत्रीशोधनंपरम् ॥ ५७ ॥
इति पाराशरीये धर्म्मशास्त्र एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
दुःस्वप्नंयदिपश्येत्तु वान्तेवाक्षरकर्म्मणि ।
मैथुनेप्रेतधूमेच स्नानमेवविधीयते ॥ १ ॥
अज्ञानात्प्राश्यविण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेवच ।

जितना दिन शेष हो उतने कालतक स्नान करके खड़ा रहै फिर अभिवादन करके प्रसन्न (राजी) करे॥५३॥ तृण से भी ब्राह्मण को ताड़ना करके और ब्राह्मण के कण्ठ में वस्त्र भी बांधकर अथवा ब्राह्मण को शास्त्रार्थ में जीतकर नमस्कार करके प्रसन्न करे ॥५४॥ ब्राह्मण की ओर गुर्रा कर वा ऐंठ दिखा के एक दिन रात और पृथिवी पर पटक देकर तीन दिन रात उपवास करे । ब्राह्मण के रुधिर निकालने पर अतिकृच्छ्र व्रत करे और रुधिर न निकले किन्तु वृथा चोट लगे तो कृच्छ्रव्रत करे ॥५५॥ जो नौ ९ दिन तक पकाया हुआ अंजलि भर अन्न खावे यह अतिकृच्छ्र होता है । या तीन दिन रात उपवास करे उसे अतिकृच्छ्र कहते हैं ॥ ५६ ॥ यदि सब पापों का संकर होजाय अर्थात् अनेक प्रकार के अनेक पाप जिस ने किये हों वह सौ हजार (एक लाख) वा सवा लाख गायत्री का अभ्यास जप करे यह अनुष्ठान परम शुद्धि करने वाला है ॥५७॥

यह पाराशरीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में ग्यारहवां अध्याय पूरा हुआ ॥

वमन, क्षौर कर्म, मैथुन, प्रेत का धूम, इन विषयों में वा इन का खोटा स्वप्न देखे तो तत्काल स्नान करना कहा है ॥ १ ॥ अज्ञान से विष्ठा, मूत्र, और

पुनःसंस्कारमर्हन्ति त्रयोवर्णाद्विजातयः ॥ २ ॥
अजिनंमेखलादण्डो भैक्षचर्याव्रतानिच ।
निवर्त्तन्तेद्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥ ३ ॥
स्त्रीशूद्रस्यचशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यंसमाचरेत् ।
पञ्चगव्यंचकुर्वीत स्नात्वापीत्वाशुचिर्भवेत् ॥ ४ ॥
जलाग्निपतनेचैव प्रव्रज्यानाशकेषुच ।
प्रत्यवसितवर्णानां कथंशुद्धिर्विधीयते ॥ ५ ॥
प्राजापत्यद्वयेनैव तीर्थाभिगमनेनच ।
वृषैकादशदानेन वर्णाःशुद्ध्यन्तितेत्रयः ॥ ६ ॥
ब्राह्मणस्यप्रवक्ष्यामि वनंगत्वाचतुष्पथे ।
सशिखंवपनंकृत्वा प्राजापत्यद्वयंचरेत् ॥ ७ ॥
गोद्वयंदक्षिणांदद्याच्छुद्धिंपाराशरोऽब्रवीत् ।
मुच्यतेतेनपापेन ब्राह्मणत्वंचगच्छति ॥ ८ ॥

जिस में मदिरा मिली हो उस को खाकर ब्राह्मणादि तीनों द्विजाति फिर से संस्कार के योग्य होते हैं ॥ २ ॥ द्विजातियों के फिर (दुबारा) उपनयन संस्कार कर्म में मृगछाला, मौंजी मेखला, पलाशादि का दंड, भिक्षा मांगने के नियम, ये सब निवृत्त हो जाते हैं ॥३॥ स्त्री और शूद्र को यदि उक्त दोष लगे तो प्राजापत्य व्रत करैं और पंचगव्य बनावैं स्नान करके पंचगव्य को पीकर शुद्ध होते हैं ॥ ४ ॥ स्नान का नियम बिगड़ने, वा स्थापित अग्नि के बुझ जाने पर और संन्यास धर्म को बिगाड़ने वाला कोई काम बन पड़े तो हीन हुए तीनों वर्णों की कैसे शुद्धि हो सो कहते हैं ॥ ५ ॥ दो प्राजापत्य व्रतों से, तीर्थों की यात्रा से, ग्यारह बैलों का दान करने से, वे तीनों वर्ण क्रम से शुद्ध होते हैं ॥६॥ वन में ब्राह्मण का प्रायश्चित्त प्रथम कहते हैं। वह ब्राह्मण वन में जाकर चौराहे पर शिखा सहित सब बालों का मुंडन कराके दो प्राजापत्य व्रत करै ॥७॥ फिर दो गौ दक्षिणा में देवे यह शुद्धि पाराशर ने कही है। फिर ब्राह्मण उस पाप से छूटजाता है और ब्राह्मणपन को प्राप्त हो जाता है ॥८॥

स्नानानिपञ्चपुण्यानि कीर्त्तितानिमनीषिभिः ।
आग्नेयंवारुणंब्राह्मं वायव्यंदिव्यमेवच ॥ ९ ॥
आग्नेयंभस्मनास्नानमवगाह्यतुवारुणम् ।
आपोहिष्ठेतिचब्राह्मं वायव्यं गोरजःस्मृतम् ॥ १० ॥
यत्तुसातपवर्षेण स्नानंतद्दिव्यमुच्यते ।
तत्रस्नात्वातुगंगायां स्नातोभवतिमानवः ॥ ११ ॥
स्नातुंयान्तंद्विजंसर्वे देवाःपितृगणैःसह ।
वायुभूतास्तुगच्छन्ति तृषार्त्ताःसलिलार्थिनः ॥ १२ ॥
निराशास्तेनिवर्तन्ते वस्त्रनिष्पीडनेकृते ।
तस्मान्नपीडयेद्वस्त्रमकृत्वापितृतर्पणम् ॥ १३ ॥
रोमकूपेष्ववस्थाप्य यस्तिलैस्तर्पयेत्पितॄन् ।
तर्पितास्तेनतेसर्वे रुधिरेणमलेनच ॥ १४ ॥
अवधूनोतियःकेशान् स्नात्वाप्रस्रवतोद्विजः ।

मुनि लोगों ने पांच स्नान पवित्र कहे हैं १ आग्नेय, २ वारुण, ३ ब्राह्म, ४ वायव्य, ५ दिव्य, ॥९॥ भस्म से किया स्नान आग्नेय, जल से किये को वारुण, (आपोहिष्ठाः) इन तीन आदि मंत्रों से किये स्नान को ब्राह्म, गौओं के पगों से उड़ी धूलि से किये को वायव्य स्नान कहते हैं ॥१०॥ और जो वर्षा के समय धूप भी निकल रही हो उस समय मेघ की बूंदों से जो स्नान करे उसे दिव्य स्नान कहते हैं क्योंकि उस वर्षा में स्नान करके मनुष्य को गंगा के स्नान का फल होता है ॥ ११ ॥ जिस समय ब्राह्मण स्नान करने को जाता है उस समय सब देवता, पितरों के सहित तृषा से पीड़ित हुए जल के लिये वायु का रूप धारण करके ब्राह्मण के पीछे २ चलते हैं ॥१२॥ यदि वह ब्राह्मण तर्पण करने से पहिले वस्त्र (धोती) निचोड़ ले तो वे निराश होकर लौट जाते हैं । तिससे देव, ऋषि, पितरों का तर्पण किये विना वस्त्र को न निचोड़े ॥ १३ ॥ रोमों पर तिलों को रखकर जो मनुष्य पितरों का तर्पण करता है उसने अपने रुधिर और मल से उन सब पितरों को तृप्त किया जानो ॥१४॥ जो द्विज ब्राह्मण स्नान करके टपकते हुए केशों को झाड़ता है और जल के भीतर खड़ा या

आचामेद्वाजलस्थोपि बाह्यःसपितृदैवतैः ॥ १५ ॥
शिरःप्रावृत्यकण्ठंवा मुक्तकच्छशिखोपिवा ।
विनायज्ञोपवीतेन आचान्तोप्यशुचिर्भवेत् ॥ १६ ॥
जलेस्थलस्थोनाचामेज्जलस्थश्चबहिस्थले ।
उभेस्पृष्ट्वासमाचामेदुभयत्रशुचिर्भवेत् ॥ १७ ॥
स्नात्वापीत्वाक्षुतेसुप्ते भुक्त्वारथ्योपसर्प्पणे ।
आचान्तःपुनराचामेद्वासोविपरिधायच ॥ १८ ॥
क्षुतेनिष्ठीवनेचैव दन्तोच्छिष्टेतथाऽनृते ।
पतितानांचसंभाषे दक्षिणंश्रवणंस्पृशेत् ॥ १९ ॥
ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च सोमःसूर्योऽनिलस्तथा ।
तेसर्वेह्यपितिष्ठन्ति कर्णेविप्रस्यदक्षिणे ॥ २० ॥
भास्करस्यकरैःपूतं दिवास्नानंप्रशस्यते ।
अप्रशस्तंनिशिस्नानं राहोरन्यत्रदर्शनात् ॥ २१ ॥
मरुतोवसवोरुद्रा आदित्याश्चाथदेवताः ।

बैठा आचमन करता है वह मनुष्य पितर और देवताओं से बाह्य (देव कर्म पितृ कर्म के अयोग्य) है ॥ १५ ॥ शिर वा कंठ को बांध कर कांछ खोल के वा शिखा को खोलकर, अथवा जनेऊ के बिना जो आचमन करता है वह आचमन करके भी अशुद्ध ही रहता है॥१६॥ स्थल में बैठा मनुष्य जल में और जल में बैठा स्थल में आचमन न करै किन्तु स्थल में बैठा हो तो स्थल में ही आचमन करै और जल में बैठा हो तो जल में ही आचमन करे तो शुद्ध होता है ॥ १७ ॥ आचमन किये पीछे यदि स्नान करे, जल पीवे, छींक आवे, सोवे, खावे, अथवा मार्ग में चले, वस्त्र पहने, (कपड़ा बदले) तो फिर से आचमन करै ॥ १८ ॥ छींकना, थूकना, दांतों में उच्छिष्ट (जूठन) निकलना, अथवा झूंठ बोलना, वा पतितों के संग संभाषण करना, इन के होने पर ब्राह्मण अपने दहिने कान का स्पर्श करे ॥ १९ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सोम, सूर्य, वायु, ये सब देवता ब्राह्मण के दहिने कान में रहते हैं ॥ २० ॥ सूर्य की किरणों से पवित्र हुआ जो दिनमें स्नान करना है वहउत्तम है और राहु के द्वारा हुए चन्द्र ग्रहण को छोड़ कर रात्रि का स्नान अधम कहा है ॥ २१ ॥ उनचास मरुत, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, और बारह आदित्य,ये सब देवता चन्द्रग्रहण के समय

सर्वेसोमेप्रलीयन्ते तस्मात्स्नानंतुतद्ग्रहे ॥ २२ ॥
खलयज्ञेविवाहेच संक्रान्तौग्रहणेतथा ।
शर्वर्य्यांदानमस्त्येव नाऽन्यत्रतुविधीयते ॥ २३ ॥
पुत्रजन्मनियज्ञेच तथाचात्ययकर्मणि ।
राहोश्चदर्शनेदानं प्रशस्तंनान्यदानिशि ॥ २४ ॥
महानिशातुविज्ञेया मध्यस्थंप्रहरद्वयम् ।
प्रदोषपश्चिमौयामौ दिनवत्स्नानमाचरेत् ॥ २५ ॥
चैत्यवृक्षश्चितिस्थश्च चाण्डालःसोमविक्रयी ।
एतांस्तुब्राह्मणःस्पृष्ट्वा सवासाजलमाविशेत् ॥ २६ ॥
अस्थिसंचयनात्पूर्वं रुदित्वास्नानमाचरेत् ।
अन्तर्दशाहेविप्रस्य ह्यूर्ध्वमाचमनंस्मृतम् ॥ २७ ॥
सर्वंगंगासमंतोयं राहुग्रस्तेदिवाकरे ।
सोमग्रहेतथैवोक्तं स्नानदानादिकर्मसु ॥ २८ ॥

चंद्रमा में लीन होते (छिप जाते हैं) तिससे चन्द्रग्रहण का मोक्ष होने पर स्नान अवश्य करे ॥ २२ ॥ खलियान में होने वाले खलयज्ञ, विवाह, संक्रांति, और चन्द्र ग्रहण इन में रात्रि में भी दान कहा ही है अन्यत्र नहीं ॥ २३ ॥ पुत्रका जन्म होने पर, यज्ञ में, मृतक के कर्म में, राहु के दर्शन (ग्रहण) में, इन ही अवसरों पर रात्री में दान करना उत्तम कहा है अन्यत्र नहीं ॥ २४ ॥ रात्रि के बीच के दो पहरों को महानिशा कहते हैं । इस से सायंकाल तथा प्रातः काल की रात के दो प्रहरों में दिन के समान स्नान दानादि करे ॥ २५ ॥ चैत्य का वृक्ष जो मरघट पर उगाहो, चिता, चांडाल, यज्ञ में सोम लता का बेंचने वाला, इन का स्पर्श करके ब्राह्मण सचैल स्नान करे ॥ २६ ॥ अस्थि संचयन (मरे के फूल इकट्ठे करने) से पहिले रोवे तो स्नान करे । ब्राह्मणों को दशदिन के भीतर रोने पर स्नान करना और दशदिन बीते पर आचमन करना कहा है ॥ २७ ॥ जिस समय राहु, सूर्य वा चंद्रमा को ग्रसे उस समय स्नान दान आदि कर्मों में सब जल गंगा जल के समान कहे हैं ॥ २८ ॥

कुशैःपूतंभवेत्स्नानं कुशेनोपस्पृशेद्द्विजः ।
कुशेनचोद्धृतंतोयं सोमपानसमंभवेत् ॥ २९ ॥
अग्निकार्यात्परिभ्रष्टाः संध्योपासनवर्जिताः ।
वेदंचैवानधीयानाः सर्वेतेवृषलाःस्मृताः ॥ ३० ॥
तस्माद्वृषलभीतेन ब्राह्मणेनविशेषतः ।
अध्येतव्योप्येकदेशो यदिसर्वंनशक्यते ॥ ३१ ॥
शूद्रान्नरसपुष्टस्याप्यधीयानस्यनित्यशः ।
जपतोजुह्वतोवापि गतिरूर्ध्वानविद्यते ॥ ३२ ॥
शूद्रान्नंशूद्रसंपर्कः शूद्रेणतुसहासनम् ।
शूद्राज्ज्ञानागमश्चापि ज्वलन्तमपिपातयेत् ॥ ३३ ॥
यःशूद्र्यापाचयेन्नित्यं शूद्रीचगृहमेधिनी ।
वर्जितःपितृदेवेभ्यो रौरवंयातिसद्विजः ॥ ३४ ॥
मृतसूतकपुष्टाङ्गं द्विजंशूद्रान्नभोजिनम् ।

कुशों से मार्जन पूर्वक स्नान करना पवित्र कारक होता है और कुशों से ही ब्राह्मणादि द्विज आचमन करै क्योंकि कुशों से उठाया जल सोम के पीने तुल्य पवित्र होताहै ॥२९॥ जो ब्राह्मण अग्निहोत्र से भ्रष्ट और संध्योपासन से वर्जित हैं और विधिपूर्वक वेद को भी नहीं पढ़ते वे सब शूद्र के तुल्य कहे हैं ॥३०॥ तिससे शूद्र होजाने के भयसे विशेष कर ब्राह्मणको चाहिये कि यदि सब वेदको न पढ़ सके तो वेद का कोई एक भाग ही पढ़े ॥३१॥ जो ब्राह्मण शूद्रके दिये अन्न को खाके पुष्ट हुआ हो वह प्रतिदिन वेद का अध्ययन, जप, तथा होम करता हुआ भी स्वर्गको प्राप्त नहीं होता ॥३२॥ शूद्र का अन्न, शूद्र का संपर्क, (मल) शूद्र के संग एक जगह निवास होना, शूद्र से शिक्षा लेना, ये काम प्रतापी तेजस्वी ब्राह्मण को भी पतित करदेते हैं ॥ ३३ ॥ जो द्विज शूद्री स्त्री से भोजन बनवाता हो, और जिस के घर में शूद्री ही स्त्री हो वह द्विज पितर और देवताओं से वर्जित हुआ रौरव नरक को प्राप्त होताहै ॥३४॥ मरण तथा जन्म के सूतक का अन्न खा २ के जिस का शरीर पुष्ट हुआ हो और जो शूद्र

अहंतन्नविजानामि कांकांयोनिंगमिष्यति ॥ ३५ ॥
गृध्रोद्वादशजन्मानि दशजन्मानिसूकरः ।
श्वयोनौसप्तजन्मानि इत्येवंमनुरब्रवीत् ॥ ३६ ॥
दक्षिणार्थंतुयोविप्रः शूद्रस्यजुहुयाद्धविः ।
ब्राह्मणस्तुभवेच्छूद्रः शूद्रस्तुब्राह्मणोभवेत् ॥ ३७ ॥
मौनव्रतंसमाश्रित्य आसीनोनवदेद्द्विजः ।
भुञ्जानोहिवदेद्यस्तु तदन्नंपरिवर्जयेत् ॥ ३८ ॥
अर्द्धभुक्तेतुयोविप्रस्तस्मिन्पात्रेजलंपिबेत् ।
हतंदैवंचपित्र्यंच आत्मानंचोपघातयेत् ॥ ३९ ॥
भुञ्जानेषुतुविप्रेषु योऽग्रेपात्रंविमुञ्चति ।
समूढःसचपापिष्ठो ब्रह्मघ्नःसखलूच्यते ॥ ४० ॥
भाजनेषुचतिष्ठत्सु स्वस्तिकुर्वन्तियेद्विजाः ।
नदेवास्तृप्तिमायान्ति निराशाःपितरस्तथा ॥ ४१ ॥

के अन्न को खाता हो हम नहीं जानते कि वह ब्राह्मण किस २ योनि में जायगा? ॥३५॥ परन्तु मनुजी ने ऐसा कहा है कि बारह जन्म तक गीध पक्षी, दश जन्मतक सूकर और सात जन्म तक कुत्तेकी योनिमें जन्म लेता है ॥३६॥ जो ब्राह्मण दक्षिणा के लिये शूद्र के हविष्य का होम करै वह ब्राह्मण तो जन्मान्तर में शूद्र होता और वह शूद्र ब्राह्मण कुल में जन्मता है ॥ ३७ ॥ मौनव्रत को धारण करके जो ब्राह्मण बैठा हुआ न बोले और वह भोजन करता हुआ बोले उन के अन्न को त्याग देना चाहिये ॥ ३८ ॥ आधा भोजन किये पीछे जो ब्राह्मण उसी भोजन के पात्र में जल पीवे उस के देवताओं और पितरों का कर्म नष्ट होता और वह अपने को भी नष्ट करता है ॥३९॥ पांति में ब्राह्मणों के भोजन करते हुए जो पहिले पात्र को छोड़ देता है वह मूढ़ बड़ा पापी और ब्रह्महत्यारा कहाता है ॥ ४० ॥ भोजन पात्रों (पत्तलों) के उठाने से पहिले जो ब्राह्मण स्वस्ति (कल्याण हो) कहते हैं उस ब्रह्मभोज पर देवता तृप्त नहीं होते और पितर भी निराश हो के लौट जाते हैं ॥४१॥

अस्नात्वावैनभुञ्जीत द्विजश्चाग्निमपूज्यच ।
नपर्णपृष्ठे भुञ्जीत रात्रौदीपंविनातथा ॥ ४२ ॥
गृहस्थस्तुदयायुक्तो धर्ममेवानुचिन्तयेत् ।
पोष्यवर्गार्थसिद्ध्यर्थं न्यायवर्त्तीसबुद्धिमान् ॥ ४३ ॥
न्यायोपार्जितवित्तेन कर्त्तव्यंह्यात्मरक्षणम् ।
अन्यायेनतुयोजीवे त्सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ ४४ ॥
अग्निचित्कपिलासत्री राजाभिक्षुर्महोदधिः ।
दृष्टमात्राःपुनन्त्येते तस्मात्पश्येत्तुनित्यशः ॥ ४५ ॥
अरणिंकृष्णमार्जारं चन्दनंसुमणिंघृतम् ।
तिलान्कृष्णाजिनं छागंगृहेचैतानिरक्षयेत् ॥ ४६ ॥
गवांशतंसैकवृषं यत्रतिष्ठत्ययन्त्रितम् ।
तत्क्षेत्रंदशगुणितं गोचर्मपरिकीर्तितम् ॥ ४७ ॥
ब्रह्महत्यादिभिर्मर्त्यो मनोवाक्कायकर्मभिः ।
एतद्गोचर्मदानेन मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ ४८ ॥

विशेष कर ब्राह्मण को चाहिये कि—स्नान किये विना और अग्नि को पूजे विना भोजन न करै, पत्तों की पीठ (उलटी पत्तल) पर और रात्रि में दीपक के जलाये विना अंधेरे में भोजन न करे॥४२॥ दया युक्त हुआ गृहस्थ पुरुष धर्म की ही चिन्ता करे। अपने पोष्यवर्ग (पुत्र वा भृत्य आदि) के निर्वाह की सिद्धि के लिये बुद्धिमान् सदैव न्याय से अन्न धनादि का संचय करे ॥ ४३ ॥ न्याय के साथ धर्मानुकूल संचय किये धन से अपनी रक्षा करे। क्योंकि जो पुरुष अधर्म अन्याय से जीविका करता है वह सब कर्म धर्मों से बाहर (अनधिकारी) होजाता है ॥ ४४ ॥ चयन यज्ञ करने वाला, कपिला गौ, सत्रयज्ञ करने वाला, राजा, भिक्षु, (संन्यासी) समुद्र, ये सब दर्शन से ही दर्शन कर्त्ता को पवित्र कर देते हैं। तिससे इन का नित्य दर्शन करे॥४५॥ अरणि, काला बिलाव, चन्दन, उत्तम मणि, घी, तिल, काला मृगचर्म, बकरा, इन को घर में रक्खा करे ॥४६॥ जितनी जगह में सौ गौ और एक बैल विना बांधे खड़े हो सकें उस से दशगुणी जगह भूमि को गोचर्म कहते हैं ॥४७॥ इस गोचर्ममात्र भूमिके दान से मनुष्य मन, वाणी, और शरीर से किये ब्रह्महत्या आदि पापों से छूट जाताहै ॥४८॥

कुटुंबिनेदरिद्राय श्रोत्रियायविशेषतः ।
यद्दानंदीयतेतस्मै तद्दानंशुभकारकम् ॥ ४९ ॥
वापीकूपतडागाद्यैर्वाजपेयशतैर्मखैः ।
गवांकोटिप्रदानेन भूमिहर्तानशुद्ध्यति ॥५० ॥
आषोडशदिनादर्वाक् स्नानमेवरजस्वला ।
अतऊर्ध्वंत्रिरात्रंस्यादुशनामुनिरब्रवीत् ॥ ५१ ॥
युगंयुगद्वयंचैव त्रियुगंचचतुर्युगम् ।
चाण्डालसूतिकोदक्या पतितानामधःक्रमात् ॥ ५२ ॥
ततःसन्निधिमात्रेण सचैलंस्नानमाचरेत् ।
स्नात्वावलोकयेत्सूर्यमज्ञानात्तत्स्पृशतेयदि ॥ ५३ ॥
वापीकूपतडागेषु ब्राह्मणोज्ञानदुर्बलः ।
तोयंपिबतिवक्त्रेण श्वयोनौजायतेध्रुवम् ॥ ५४ ॥
यस्तुक्रुद्धःपुमान्भार्य्यां प्रतिज्ञाप्याप्यगम्यताम् ।
पुनरिच्छतितांगन्तुं विप्रमध्येतुश्रावयेत् ॥ ५५ ॥

जो ब्राह्मणकुटुम्ब वाला हो, दरिद्रहो, और विशेष कर वेदपाठी हो, उनको जो दान दिया जाता है वही दान उस दाता के लिये शुभ करने वाला होता है ॥४९॥दी हुई भमि को हर लेने वाला मनुष्य बावड़ी, कप, तालाव आदि के धर्मार्थ बनवाने से,सौ १०० वाजपेय यज्ञों के करने से, और कोटि गौओं का दान देने से भी शुद्ध नहीं हो सक्ता ॥ ५० ॥ यदि रजोदर्शन से सोलह–दिन के वीच कोई स्त्री फिर से रजस्वला हो तो स्नान ही से शुद्ध हो जाती है। सोलहवें दिन के वाद रजोधर्म हो तो तीन दिन में शुद्धि होगी यह उशना मुनि ने कहाहै ॥५१॥ जानकर चाण्डाल के छूनेपर दो दिन में, सूति का स्त्री के छूने पर चार दिनमें, रजस्वला के छूने पर छः दिनमें, और पतित स्त्री के छूने पर आठ दिनमें शुद्ध होताहै ॥५२॥ चाण्डालादि के समीप बैठे तो सचैल स्नान करै। यदि अज्ञान से चाण्डालादि को छू लेवे तो स्नान करके सूर्य नारायण का दर्शन करै ॥ ५३ ॥ हाथों के विद्यमान रहते भी जो अज्ञानी ब्राह्मण बावड़ी कुआ वा तालाव में मुख लगाकर जल पीता है वह निश्चय करके जन्मान्तर में कुत्ता होता है ॥ ५४ ॥ जो मनष्य क्रुद्ध होके अपनी स्त्री से प्रतिज्ञा करे कि तू दूषित होने से गमन करने योग्य नहीं है और फिर उस स्त्रीका संग करना चाहे तो इस बात को ब्राह्मणों की मण्डली वा सभा में सुना देवे ॥ ५५ ॥

श्रान्तःक्रुद्धस्तमोऽन्धोवा क्षुत्पिपासाभयार्दितः ।
दानपुण्यमकृत्वावा प्रायश्चित्तंदिनत्रयम् ॥ ५६ ॥
उपस्पृशेत्त्रिषवणं महानद्युपसंगमे ।
चीर्णान्तेचैवगांदद्याद् ब्राह्मणान्भोजयेद्दश ॥ ५७ ॥
दुराचारस्यविप्रस्य निषिद्धाचरणस्यच ।
अन्नंभुक्त्वाद्विजःकुर्याद्दिनमेकमभोजनम् ॥ ५८ ॥
सदाचारस्यविप्रस्य तथावेदान्तवेदिनः ।
भुक्त्वान्नंमुच्यतेपापादहोरात्रंतुवैनरः ॥ ५९ ॥
ऊर्ध्वोच्छिष्टमधोच्छिष्टमन्तरिक्षमृतौतथा ।
कृच्छ्रत्रयंप्रकुर्वीत अशौचमरणेतथा ॥ ६० ॥
कृच्छ्रं देव्ययुतंचैव प्राणायामशतद्वयम् ।
पुण्यतीर्थेह्यार्द्रशिराः स्नानंद्वादशसंख्यया ।
द्वियोजनंतीर्थयात्रा कृच्छ्रमेकंप्रकल्पितम् ॥ ६१ ॥
गृहस्थःकामतःकुर्याद्रेतसःसेचनंभुवि ।

जो थका हो, क्रोध करे, मादकद्रव्य खाने आदि से उन्मत्त, बेहोश मूर्छित हुआ हो, क्षुधा, प्यास वा भय से पीड़ित हो गया हो ऐसी दशाओं में दान पुण्य न करे तो वह ब्राह्मण तीन दिन प्रायश्चित्त करे ॥५६॥ और गंगा आदि बड़ी नदियों के संगम में सायं, प्रातः, और मध्याह्न में तीन वार स्नान और आचमन करे। प्रायश्चित्त किये पीछे एक गोदान करे और दश ब्राह्मण जिमावे ॥ ५७ ॥ दुराचारी और निषिद्ध आचरण करने वाले ब्राह्मण का अन्न खा कर द्विज पुरुष एक दिन भोजन न करे ॥ ५८ ॥ उत्तम सदाचारी और वेदान्त को जानने वाले ब्राह्मणका अन्न खाकर मनुष्य एक दिन रात में अनेक पापों से छूटजाता है ॥ ५९ ॥ नाभि से ऊपर उच्छिष्ट होने वा नाभि से नीचे के भाग में अशुद्ध होने की दशा में कोई मरे, वा खटिया पर मरे, अथवा जो सूतक में मरे, उस के लिये पुत्रादि वारिस लोग शुद्धि के बाद तीन कृच्छ्र व्रत करें ॥ ६० ॥ दश हजार गायत्री का जप, दोसौ २०० प्राणायाम, और पवित्र तीर्थ में बारह बार शिर भिगो २ कर स्नान करे ये सब एक कृच्छ्र का फल देते हैं। इस कारण कृच्छ्र व्रत करने में असमर्थ हो तो उक्त गायत्री जपादि को तिगुणा करे। और दो योजन तक तीर्थयात्रा को भी एक कृच्छ्र माना है ॥ ६१ ॥ यदि गृहस्थ पुरुष जानकर अपने वीर्यको

सहस्रंतुजपेद्देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिःसह ॥ ६२ ॥
चातुर्वेद्योपपन्नस्तु विधिवद्ब्रह्मघातके ।
समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित्तंसमादिशेत् ॥ ६३ ॥
सेतुबन्धपथेभिक्षां चातुर्वर्ण्यात्समाचरेत् ।
वर्जयित्वाविकर्मस्थान् छत्रोपानद्विवर्जितः ॥ ६४ ॥
अहंदुष्कृतकर्मावै महापातककारकः ।
गृहद्वारेषुतिष्ठामि भिक्षार्थीब्रह्मघातकः ॥ ६५ ॥
गोकुलेषुवसेच्चैव ग्रामेषुनगरेषुच ।
तपोवनेषुतीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषुच ॥ ६६ ॥
एतेषुख्यापयन्नेनः पुण्यंगत्वातुसागरम् ।
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ ६७ ॥
रामचन्द्रसमादिष्टं नलसंचयसंचितम् ।
सेतुंदृष्ट्वासमुद्रस्य ब्रह्महत्यांव्यपोहति ।
सेतुंदृष्ट्वाविशुद्धात्मा त्ववगाहेतसागरम् ॥ ६८ ॥
यजेतवाश्वमेधेन राजातुपृथिवीपतिः ।

भूमि पर गिरावे तौ वह तीन प्राणायाम के साथ एक हजार गायत्री का जप करे ॥ ६२ ॥ विधिपूर्वक जिसने चारों वेद पढ़े जाने हों वह यदि ब्रह्महत्या करै तो सेतुबंध रामेश्वर पर जाना प्रायश्चित्त बतावे ॥ ६३ ॥ और वह प्रायश्चित्ती जूता और छाता का धारण न करके सेतुबन्ध के मार्ग में हिंसा चोरी व्यभिचारादि दुष्कर्मियों को छोड़ के शेष चारों वर्णों से भिक्षा मांगता खाता जावे ॥ ६४ ॥ वह भिक्षा मांगते समय ऐसे कहा करे कि "मैं खोटा कर्म करने वाला और महापातक कर्त्ता हूं । मुझे ब्रह्महत्या लगी है भिक्षा के लिये आपके द्वारे पर खड़ा हूं" ॥६५॥ ग्राम, वा नगरों की गोशाला धर्मशालादि में रात को बसे। तपोवनों में, तीर्थों में नदी के सोताओं पर ॥६६॥ इन सब स्थानों में अपने पाप को प्रकट करता हुआ दश योजन चौड़े और सौ योजन लंबे पवित्र समुद्र पर जावे ॥ ६७ ॥ महाराजा भगवान् रामचन्द्र जी की आज्ञा से नलवानरके बनाये हुए समुद्र के सेतु को देखकर ब्रह्महत्या को दूर करता है । सेतु के दर्शन करके विशुद्ध मन हुआ सागर में स्नान करै ॥६८॥ और पृथ्वी का पति राजा ब्रह्महत्या करै

पुनःप्रत्यागतोवेश्म वासार्थमुपसर्पति ॥ ६९ ॥
सपुत्रःसहभृत्यश्च कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
गाश्चैवैकशतंदद्याच्चातुर्विद्येषुदक्षिणाम् ॥ ७० ॥
ब्राह्मणानांप्रसादेन ब्रह्महातुविमुच्यते ।
विन्ध्यादुत्तरतोयस्य संवासःपरिकीर्त्तितः ॥ ७१ ॥
पराशरमतंतस्य सेतुबन्धस्यदर्शनात् ।
सवनस्थांस्त्रियंहत्वा ब्रह्महत्याव्रतंचरेत् ॥ ७२ ॥
सुरापश्चद्विजःकुर्यान्नदींगत्वासमुद्रगाम् ।
चान्द्रायणेततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ ७३ ॥
अनडुत्सहितांगांच दद्याद्विप्रेषुदक्षिणाम् ॥ ७४ ॥
सुरापानंसकृत्कृत्वा अग्निवर्णांसुरांपिबेत् ।
सपावयेदिहात्मानमिहलोकेपरत्रच ॥ ७५ ॥
अपहृत्यसुवर्णंतु ब्राह्मणस्यततःस्वयम् ।
गच्छेन्मुशलमादाय राजानंस्ववधायतु ॥ ७६ ॥

तो अश्वमेध यज्ञ करै। फिर तीर्थ यात्री लौटकर घर में बसने के लिये आवे ॥ ६९ ॥ तब पुत्र और भृत्यों सहित ब्राह्मणों को जिमावे और चारो वेदों को पढ़ने जानने वाले ब्राह्मणों को सौ १०० गौ दक्षिणा में देवे ॥ ७० ॥ तब ब्राह्मणों को प्रसन्न सन्तुष्ट करने से ब्रह्महत्या से छूटजाता है। विन्ध्याचल पर्वतसे उत्तर जो बसता है॥७१॥ उस के लिये पाराशर ऋषिने सेतुबन्धु का दर्शन कहा है। जिस के शीघ्र सन्तान होने वाला हो ऐसी स्त्री को मार डाले तो ब्रह्महत्या का व्रत करे ॥ ७२ ॥ मदिरा पीने वाला ब्राह्मण समुद्र तक जाने वाली नदी पर जाके चान्द्रायण व्रत करे फिर व्रत के पूरे होने पर ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ ७३ ॥ एक बैल सहित एक गौ ब्राह्मणों को दक्षिणा देवे ॥ ७४ ॥ अथवा जो शुद्ध ब्राह्मण एक वार भी मदिरा को पीवे वह अग्नि वर्ण (अत्यन्त उष्ण) मदिरा पीकर प्राण त्याग करे तो इस लोक और परलोक में अपने को पवित्र कर लेताहै ॥७५॥ ब्राह्मण के सुवर्ण को चुराकर आप ही मूसल को हाथ में लेके अपने मारने के लिये राजा के समीप जाय ॥७६॥

हतःशुद्धिमवाप्नोति राज्ञाऽसौमुक्तएवच ।
कामतस्तुकृतंयत्स्यान्नान्यथावधमर्हति ॥ ७७ ॥
आसनाच्छयनाद्यानात्संभाषात्सहभोजनात् ।
संक्रामन्तीहपापानि तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥ ७८ ॥
चान्द्रायणंयावकंच तुलापुरुषएवच ।
गवांचैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ७९ ॥
एतत्पाराशरंशास्त्रं श्लोकोनांशतपञ्चकम् ।
द्विनवत्यासमायुक्तं धर्मशास्त्रस्यसंग्रहः ॥ ८० ॥
यथाध्ययनकर्माणि धर्मशास्त्रमिदंतथा ।
अध्येतव्यंप्रयत्नेन नियतंस्वर्गकामिना ॥ ८१ ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्म्मशास्त्रे सकलप्रायश्चित्त निर्णयो नाम द्वादशोऽध्यायः समाप्तः

समाप्ता च पाराशरसंहिता ॥

तब यदि राजा मरवा डाले वा उचित समझ के छोड़ देवे तो भी दोनों हालत में पाप से छूट जाता है ॥ यदि जान कर चोरी की हो तो मारने के योग्य है अन्यथा वध करने योग्य नहीं है ॥ ७७ ॥ एक जगह बैठने, लेटने, एक सवारी में बैठ कर चलने, पास २ बैठ कर वार्त्तालाप करने और साथ २ बैठ कर भोजन करने से पापियों के पाप अच्छे लोगों को लगते हैं कि जैसे जल में तेल का बिन्दु फैलजाता है ॥ ७८ ॥

चान्द्रायण, यावक (जौ को ही खाना) और तुला पुरुष-तुलादान करना, गौओं के पीछे गमन करना,अर्थात् तन मन धन से गोरक्षा में तत्पर होना ये काम सब पापों को नाश करने वाले हैं ॥ ७९ ॥ यह पाराशर ऋषि का कहा धर्मशास्त्र जिसमें पांच सौ बानवे ५९२ श्लोक हैं । सो यह धर्मशास्त्र का संक्षेप से संग्रह कियाहै ॥ ८० ॥ जैसे वेद के अध्ययन सम्बन्धी कर्म पुण्योत्पादक हैं वैसा ही यह धर्मशास्त्र है इसलिये स्वर्ग की इच्छा रखने वाले पुरुष को यह धर्मशास्त्र यत्न से पढ़ना चाहिये ॥ ८१ ॥

यह पाराशरीय धर्मशास्त्र के पं० भीमसेन शर्मकृत भाषानुवाद में समस्त प्रायश्चित्त निर्णय नामक बारहवां १२ अध्याय पूरा हुआ ॥
और यह ११ वीं पाराशरस्मृति समाप्त हुई ॥

श्रीगणेशायनमः

अथ व्यासस्मृतिप्रारम्भः

वाराणस्यांसुखासीनं वेदव्यासंतपोनिधिम् ।
पप्रच्छुर्मुनयोऽभ्येत्य धर्मान्वर्णव्यवस्थितान् ॥ १ ॥
सपृष्टःस्मृतिमान्स्मृत्वा स्मृतिंवेदार्थगर्भिताम् ।
उवाचाथप्रसन्नात्मा मुनयःश्रूयतामिति ॥ २ ॥
यत्रयत्रस्वभावेन कृष्णसारोमृगःसदा ।
चरतेतत्रवेदोक्तो धर्मोभवितुमर्हति ॥ ३ ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधोयत्रदृश्यते ।
तत्रश्रौतंप्रमाणन्तु तयोर्द्वैधेस्मृतिर्वरा ॥ ४ ॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्त्रयोवर्णाद्विजातयः ।
श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त धर्मयोग्यास्तुनेतरे ॥ ५ ॥
शूद्रोवर्णश्चतुर्थोपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति ।

काशी में सुख पूर्वक बैठे बड़े तपस्वी वेदव्यास जी के समीप जा कर मुनियों ने वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी धर्म पूछे ॥ १ ॥ मुनियों से पूछे हुए बुद्धिमान् वेदव्यास जी वेदार्थगर्भित धर्मशास्त्र का स्मरण कर और प्रसन्न होके तुम सुनो ऐसा बोले ॥२॥ जिस २ देश में स्वभाव से ही कृष्ण मृग सदैव विचरता है उस देश में वेदोक्त धर्म का प्रचार वा अनुष्ठान ठीक २ हो सकता है ॥३॥ जिस विषय में श्रुति स्मृति--और पुराण का परस्पर विरोध दीख पड़े वहां वेदोक्त का प्रमाण मानो तथा स्मृति और पुराण के विरोध में स्मृति उत्तम है अर्थात् स्मृति का कहा कर्म करना चाहिये ॥ ४ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ये तीन वर्ण द्विजाति कहाते हैं और विशेष कर ये ही तीनों वेद स्मृति, और पुराणों में कहे धर्म के अधिकारी हैं अन्य नहीं ॥ ५ ॥ चौथा शूद्र भी वर्ण होने से वेद मन्त्र, स्वधा, स्वाहा, वषट्कार आदि को छोड़ के शेष स्मृति-

वेदमन्त्रस्वधास्वाहा वषट्कारादिभिर्विना ॥ ६ ॥
विप्रवद्विप्रविन्नासु क्षत्रविन्नासु क्षत्रवत् ।
जातकर्मादि कुर्वीत ततः शूद्रासु शूद्रवत् ॥ ७ ॥
वैश्यासु विप्रक्षत्राभ्यां ततः शूद्रासु शूद्रवत् ।
अधमादुत्तमायां तु जातः शूद्राधमः स्मृतः ॥ ८ ॥
ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चाण्डालो धर्मवर्जितः ।
कुमारीसम्भवस्त्वेकः सगोत्रायां द्वितीयकः ॥ ९ ॥
ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चाण्डालस्त्रिविधः स्मृतः ।
वर्द्धकी नापितो गोप आशापः कुम्भकारकः ॥ १० ॥
वणिक्किरातकायस्थ मालाकारकुटुम्बिनः ।
वरटो मेदचाण्डाल दासश्वपचकोलकाः ॥ ११ ॥
एतेऽन्त्यजाः समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः ।

पुराणोक्त प्रतिमा [illegible] आधकारी है ॥ ६ ॥ ब्राह्मण के साथ विवाही क्षत्रिय कन्या [illegible] संस्कार ब्राह्मण के तुल्य, क्षत्रिय से विवाही [illegible] तुल्य और ब्राह्मण क्षत्रिय से विवाही शूद्रकन्या [illegible] तुल्य करे ॥ ७ ॥ अथवा ब्राह्मण क्षत्रिय से [illegible] के संस्कार वैश्य के तुल्य करे और वैश्य से विवाही [illegible] पुत्रों के जातकर्मादि संस्कार भी शूद्र के ही तुल्य करे । [illegible] उत्तम वर्ण की कन्या में जो पैदा हो वह शूद्र से भी नीच [illegible] में जो शूद्र से पैदा हो वह सब धर्मों से वर्जित चाण्डाल [illegible] वह दो प्रकार का है, एक वह जो कुमारी कन्या से पैदा हो, दूसरा वह जो सगोत्रा (विवाही) से पैदा हो ॥९॥ ब्राह्मणी में शूद्र से पैदा हुआ चाण्डाल तीन प्रकार का होता है । बढई, नाई, गोप, आशा से जो घड़े बनावे वह (कुम्हार) ॥ १० ॥ वणिक् (जो लेनदेन करे और निषिद्ध जाति हो) किरात, कायस्थ, माली, कुटुम्बी, बरट, मेद चण्डाल, दास, श्वपच, कोलक, ॥ ११ ॥ ये सब और जो गोमांस खावें वे अन्त्यज कहाते हैं इन के संग बोलने से स्नान करे और इन के देखने से सूर्य

एषांसम्भाषणात्स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम् ॥ १२ ॥
गर्भाधानंपुंसवनं सीमन्ताजातकर्मच ।
नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनंवपनक्रिया ॥ १३ ॥
कर्णवेधोव्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः ।
केशान्तःस्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥ १४ ॥
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराःषोडशस्मृताः ।
नवैताःकर्णवेधान्ता मन्त्रवर्जं [illegible] ॥ १५
विवाहोमन्त्रतस्तस्याः [illegible] ।
गर्भाधानंप्रथमतस्तृतीये [illegible] ॥ १६ ॥
सीमन्तश्चाष्टमेमासि [illegible] ।
एकादशेऽन्हिनामाकेर्[illegible] ॥ १७ ॥
षष्ठेमास्यन्नमश्नीया[illegible] ।
कृतचूडेचबालेच कर्णवेधो[illegible] ॥ १८ ॥
विप्रोगर्भाष्टमेवर्षे [illegible] ।

का दर्शन करै ॥ १२ ॥ १—गर्भाधान, २—पुंसवन, ३—सीमन्त, ४—जातकर्म,—५—नाम करण, ६—निष्क्रमण, ७—अन्नप्राशन, ८—मुण्डन, ९—कर्णवेध, १०—यज्ञोपवीत, ११—वेदारम्भ, १२—केशान्त, १३—समावर्तन, १४—विवाह, १५—आवसथ्याध्यान, १६—गार्हपत्य, आहवनीय, और दक्षिणाग्नि इन तीनों श्रौत अग्नियों का स्थापन, ये गर्भाधान आदि सोलह संस्कार कहाते हैं। कर्णवेध तक जो नौ ९ संस्कार हैं वे स्त्री के विना मन्त्र होते हैं ॥ १५ ॥ विवाह स्त्री का भी मन्त्रों से होता है और शूद्रों के ये दशों संस्कार [illegible] वेद मन्त्रों के होने चाहिये॥ गर्भाधान प्रथम (पहिले गर्भस्थापन के समय) होता, तीन मास का जब गर्भ हो तब पुंसवन संस्कार करे ॥ १६ ॥ आठवें महीने में सीमन्तोन्नयन संस्कार करे, सन्तान के पैदा हुए पर जात कर्म, ग्यारहवें दिन नामकरण, चौथे महीने अर्कदर्शन (निष्क्रमण) अर्थात् बाहर निकाल कर बालक को सूर्यनारायण का दर्शन करावे ॥ १७ ॥ छठे महीने अन्नप्राशन और मुण्डन कुल की रीति के अनुसार करे, जब बालक का मुण्डन हो चुके तब कर्णवेध कान छेदने का संस्कार करे ॥ १८ ॥ गर्भ से आठवें वर्ष ब्राह्मण के, ग्यारहवें

द्वादशेवैश्यजातिस्तु व्रतोपनयमर्हति ॥ १९ ॥
तस्यप्राप्तव्रतस्यायं कालःस्याद्द्विगुणाधिकः ।
वेदव्रतच्युतोव्रात्यः सव्रात्यस्तोममर्हति ॥ २० ॥
द्वेजन्मनीद्विजातीनां मातुःस्यात्प्रथमन्तयोः ।
द्वितीयंछन्दसांमातुर्ग्रहणाद्विधिवद्गुरोः ॥ २१ ॥
एवं द्विजातिमापन्नो विमुक्तोवान्यदोषतः ।
श्रुतिस्मृतिपुराणानां भवेदध्ययनक्षमः ॥ २२ ॥
उपनीतोगुरुकुले वसेन्नित्यंसमाहितः ।
बिभृयाद्दण्डकौपीनोपवीताजिनमेखलाः ॥ २३ ॥
पुण्येन्हिगुर्वनुज्ञातः कृतमन्त्राहुतिक्रियः ।
स्मृत्वोङ्कारंचगायत्री मारभेद्वेदमादितः ॥ २४ ॥
शौचाचारविचारार्थं धर्मशास्त्रमपिद्विजः ।

वर्ष क्षत्रिय के और बारहवें वर्ष वैश्य के बालक व्रतोपनयन (जनेउ) के योग्य होते हैं ॥१९॥ इन के उपनयन संस्कार का जो समय है उनसे दूने से अधिक समय यदि बीत जाय और संस्कार न हो तो वे तीनों वर्ण के बालक वेद के व्रत से पतित "व्रात्य" हो जाते हैं तब वे व्रात्यस्तोम [प्रायश्चित्त] करने योग्य हो जाते हैं ॥ २० ॥ द्विजातियों के दो जन्म होते हैं, उन में पहिला माता से और दूसरा गुरु से वेदों की माता (गायत्री) के विधिपूर्वक ग्रहण करने से ॥ २१ ॥ ऐसे द्विजत्व को प्राप्त हुआ और अन्य दुराचारादि दोषों से निवृत्त होकर श्रुतिस्मृति पुराण इन के पढ़ने के योग्य होता है ॥२२॥ यज्ञोपवीत होने पर गुरु के कुल में सावधान होकर वसे और दण्ड, कौपीन, जनेऊ, मृगछाला, और मेखला (कंधनी) इन सब ब्रह्मचर्य के शास्त्रोक्त चिन्हों को धारण करे ॥२३॥ फिर पुण्य दिन शुभ मुहूर्त में गुरु की आज्ञा से, मन्त्रों से समिदाधान कर तथा ओंकार और गायत्री का स्मरण करके आदि से अपने वेद का पढ़ना आरम्भ करे ॥ २४ ॥ द्विज ब्रह्मचारी शौच तथा आचार को सम्यक् जानने के लिये गुरु से धर्मशास्त्र को भी पढ़े और धर्मशास्त्र में कहे कर्म को गुरु की

पठेतमुक्तःसम्यक् कर्मतद्विष्टमाचरेत् ॥ २५ ॥
ततोभिवाद्यस्थविरान् गुरुंचैवसमाश्रयेत् ।
स्वाध्यायार्थंतदापन्नः सर्वदाहितमाचरेत् ॥ २६ ॥
नापक्षिप्तोऽपिभाषेत नाव्रजेत्ताडितोऽपिवा ।
विद्वेषमथपैशुन्यं हिंसनंचार्कवीक्षणम् ॥ २७ ॥
तौर्य्यत्रिकानृतोन्मादपरिवादानलङ्क्रियाम् ।
अञ्जनोद्वर्त्तनादर्शस्रग्विलेपनयोषितः ॥ २८ ॥
वृथाटनमसन्तोषं ब्रह्मचारीविवर्जयेत् ।
ईषच्चलितमध्यान्हेऽनुज्ञातोगुरुणास्वयम् ॥ २९ ॥
अलोलुपश्चरेद्भैक्षं व्रतिषूत्तमवृत्तिषु ।
सद्योभिक्षान्नमादाय वित्तवत्तदुपस्पृशेत् ॥ ३० ॥
कृतमाध्यान्हिकोऽश्नीयादनुज्ञातोयथाविधि ।
नाद्यादेकान्नमुच्छिष्टं भुक्त्वाचाचामितामियात् ॥ ३१ ॥

आज्ञानुसार भली प्रकार करे ॥ २५ ॥ फिर वृद्धों को नमस्कार करके गुरु का आश्रय ले और वेद पढ़ने के लिये सावधानी से गुरु के हित का आचरण करे ॥ २६ ॥ निन्दा करने पर भी गुरु के सन्मुख न बोले और गुरु की ताड़ना से भी वहां से कहीं न जावे । वैर, पैशुन्य, (चुगलपन) हिंसा. सूर्य को बिना प्रयोजन देखना ॥ २७ ॥ तौर्यत्रिक (गाना, बजाना, नाचना) झूठ बोलना, उन्माद, निन्दा, भूषण पहरना, अंजन, उबटन, आदर्श (शीशा) का देखना पुष्प माला, चन्दन आदि सुगन्ध का लगाना और स्त्री का स्मरण, देखना, स्पर्श आदि ॥ २८ ॥ वृथा फिरना–असन्तोष नाम लोभ लालच इन को ब्रह्मचारी वर्जन कर देवे और जब कुछ मध्यान्ह ढले उस समय गुरु की आज्ञासे आप ही ॥ २९ ॥ चंचलता को त्याग कर उत्तम आचरण वाले वेदाध्ययन जिन के होते और जो पञ्चमहायज्ञादि करते हों, ऐसे ब्राह्मणादि द्विजों के घरों से ब्रह्मचारी भिक्षा मांगे और शीघ्र भिक्षा के अन्न को लाकर लब्ध वस्तु के समान उस का संस्कार करे ॥ ३० ॥ फिर मध्यान्ह का कर्म करके गुरु की आज्ञा ले विधि पूर्वक भोजन करे और एक घर का भिक्षा अन्न और उच्छिष्ट [बचा हुआ] इन को न खावे यदि खावे तो आचमन करे ॥३१॥

नान्यद्विभिक्षितमादद्यादापन्नोद्रविणादिकम् ।
अनिन्द्यामन्त्रितःश्राद्धे पैत्रेऽद्याद्गुरुचोदितः ॥ ३२ ॥
एकान्नमप्यविरोधे व्रतानांप्रथमाश्रमी ।
भुक्त्वागुरुमुपासीत कृत्वासन्धुक्षणादिकम् ॥ ३३ ॥
समिधोऽग्नावादधीत ततःपरिचरेद्गुरुम् ।
शयीतगुर्वनुज्ञातः प्रह्वश्चप्रथमंगुरोः ॥ ३४ ॥
एवमन्वहमभ्यासी ब्रह्मचारीव्रतंचरेत् ।
हितोपवादःप्रियवाक् सम्यग्गुर्वर्थसाधकः ॥ ३५ ॥
नित्यमाराधयेद्वेदसमाप्त्याद्गुरुंनियतान् ।
अनेनविधिनाऽधीतो वेदमन्त्रोद्विजंनयेत् ॥ ३६ ॥
शापानुग्रहसामर्थ्यमृषीणांचसलोकताम् ।
पयोऽमृताभ्यांमधुभिः साज्यैःप्रीणन्तिदेवताः ॥ ३७ ॥
तस्मादहरहर्वेदमनध्यायमृतेऽभ्यसेत् ।

नियम बद्ध रहता हुआ ब्रह्मचारी आपत्ति में भी भोजन से अन्य धनादि पदार्थ किसी के आदर या आग्रह पूर्वक देने पर भी न लेवे और अनिन्द्य (शुद्ध) पुरुष के निमन्त्रण देने पर भी पितरों के श्राद्ध में गुरु की आज्ञा होने पर भोजन करे ॥ ३२ ॥ यदि ब्रह्मचर्याश्रम के अन्य नियम व्रतों में बाधा न होती हो तो ब्रह्मचारी किसी एक गृहस्थ के भिक्षान्न को खाकर भी तथा सन्धुक्षण (अग्ने सुश्रवः) आदि कर्म करके गुरु की सेवा किया करे ॥ ३३ ॥ प्रतिदिन विधि पूर्वक समिदाधान कर्म करके गुरु की सेवा किया करे और प्रथम गुरु को नमस्कार करके गुरु की आज्ञा से शयन करे ॥ ३४ ॥ ऐसे प्रतिदिन अभ्यास करता हुआ ब्रह्मचारी व्रतों को करे और हित की बात बोले, प्यारी वाणी रक्खे और भली प्रकार गुरु के कार्य को साधे ॥ ३५ ॥ वेद के पढ़ने की समाप्ति तक नित्य गुरु की आराधना (सेवा) करे । इस विधि से पढ़ा हुआ वेद का मन्त्र द्विज को ऐसा करता है कि वह ॥३६॥ शाप और वरदान देने में समर्थ और ऋषियों के लोक में जाने योग्य हो जाता है। ब्रह्मचारी ने विधि पूर्वक किये वेदाध्ययन से दूध, अमृत, मधु और आज्य (घी) इनसे तृप्त होके के तुल्य देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ३७ ॥ जिससे अनध्यायों

यदङ्गंतदनध्याये गुरोर्वचनमाचरन् ॥ ३८ ॥
व्यतिक्रमादसम्पूर्णमनहंकृतिराचरेत् ।
परत्रेहचतद्ब्रह्म अनधीतमपिद्विजम् ॥ ३९ ॥
यस्तूपनयनादेतदा मृत्योर्व्रतमाचरेत् ।
सनैष्ठिकोब्रह्मचारी ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४० ॥
उपकुर्व्वाणकोयस्तु द्विजःषड्विंशवार्षिकः ।
केशान्तकर्मणातत्र यथोक्तचरितव्रतः ॥ ४१ ॥
समाप्यवेदान्वेदौवा वेदंवाप्रसभंद्विजः ।
स्नायीतगुर्वनुज्ञातः प्रवृत्तोदितदक्षिणः ॥ ४२ ॥
इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
एवंस्नातकतांप्राप्तो द्वितीयाश्रमकाङ्क्षया ।
प्रतीक्षेतविवाहार्थमनिन्द्यान्वयसम्भवाम् ॥ १ ॥

को छोड़ कर प्रतिदिन विधिपूर्वक वेद को पढ़े और गुरु की आज्ञा पालन करता हुआ वेद के जो अंग (व्याकरण आदि) हैं उन्हें अनध्यायों में पढ़े ॥३८॥ नियमों का व्यतिक्रम करने से वेदाध्ययन असम्पूर्ण (पूरा नहीं होता) रहता है इससे अहंकार को छोड़कर यही आचरण करे, वह वेद चाहे द्विज न पढ़े (अर्थात् बहुत कम पढ़े) तो भी गुरु सेवादि नियम को सम्यक् पूरा करने वाले ब्रह्मचारी को इस लोक और परलोक में सुख देता है ॥३९॥ जो यज्ञो-पवीत संस्कार से लेकर मृत्यु पर्यंत इस व्रत को करे वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्रह्मसायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ केशान्त कर्म तक शास्त्र में कहे के अनुसार किये हैं व्रत जिसने ऐसा जो छब्बीस वर्ष का द्विज हो वह यदि गृहाश्रम करके अपना वा भिक्षादि देने द्वारा गरीबों का उपकार करना चाहता हो तो ॥४१॥ तीनों वेदों को वा दो वेदों को या एक वेद को शीघ्र समाप्त करके और गुरु की आज्ञा से गुरु को दक्षिणा देकर विधि पूर्वक स-मावर्त्तन संस्कार करे ॥ ४२ ॥

श्रीवेदव्यासीयधर्मशास्त्र के प्रथम अध्याय का यह अनुवाद पूरा हुआ ॥

द्वितीय गृहस्थ आश्रमकी इच्छा से ऐसे स्नातकरूप को प्राप्त हुआ द्विज शुद्ध वंश में पैदा हुई स्त्री की विवाह के लिये प्रतीक्षा (अन्वेषण) करे ॥ १ ॥

अरोगदुष्टवंशोत्था मशुल्कादानदूषिताम् ।
सवर्णामसमानार्षाममातृपितृगोत्रजाम् ॥ २ ॥
अनन्यपूर्विकांलघ्वीं शुभलक्षणसंयुताम् ।
धृताधोवसनांगौरीं विख्यातदशपूरुषाम् ॥ ३ ॥
ख्यातनाम्नःपुत्रवतः सदाचारवतः सतः
दातुमिच्छोर्दुहितरं प्राप्यधर्मेणचोद्वहेत् ॥ ४ ॥
ब्राह्मोद्वाहविधानेन तदभावेपरोविधिः ।
दातव्यैषासदृक्षाय वयोविद्यान्वयादिभिः ॥ ५ ॥
पितृतत्पितृभ्रातृषु पितृव्यज्ञातिमातृषु ।
पूर्वाभावेपरोदद्यात्सर्वाभावेस्वयंव्रजेत् ॥ ६ ॥
यदिसादातृवैकल्याद्रजः पश्येत्कुमारिका ।

और जिस स्त्री के कुष्ठादि कोई बड़ा असाध्य वा कष्ट साध्य रोग न हो–दुष्ट वंश की न हो, जिस का बाप धन लेकर विवाह करना न चाहता हो, अपने वर्ण की हो–अपने प्रवर की न हो–तथा जो माता वा पिता के गोत्र की न हो ॥ २ ॥ जिस का अन्य के साथ पहिले विवाह न हुआ हो, जो विशेष मोटी न हो, शुभलक्षणों वाली हो, अधोवस्त्र (लहंगा) पहनती हो, गौरी (८ वर्ष की) हो और जिस के कुल में पूर्वज दश पुरुष तक विख्यात कुलीन हों ॥३॥ जिस का नाम विख्यात हो ऐसे पुत्रवाले और अच्छे आचरण वाले की पुत्री हो जो अपनी कन्या का विवाह कर देना चाहता हो, ऐसे की कन्या मिलती हो तो धर्मानुसार शास्त्रोक्त विधि से विवाह कर लेवे॥४॥ ब्राह्मविवाह की विधि से विवाहै और ब्राह्मविवाह के न हो सकने पर दूसरी (देव आदि विवाहों की) विधि करे और यह पुरुष अवस्था विद्या, और कुलीनता में समान वा कुछ बड़ा हो उस वर के साथ कन्या का विवाह करे ॥ ५ ॥ पिता, पितामह, भाई, चाचा, कुटुम्ब के मनुष्य, माता, इन में पहिले २ के अभाव में अगला २ कन्या का विवाह करे। यदि इन में से कोई भी न हो तो कन्या आप ही योग्य पति के साथ विवाह कर लेवे ॥ ६ ॥ यदि वह कन्या देने वालों की असावधानी वा ढील ढाल से विवाह से पहिले ही रजस्वला होने लगे तो जितने वर्षों तक रजस्वला होती रहे उतनी ही

भ्रूणहत्याश्चयावत्यः पतितःस्यात्तदप्रदः ॥ ७ ॥
तुभ्यंदास्याम्यहमिति ग्रहीष्यामीतियस्तयोः ।
कृत्वासमयमन्योन्यं भजतेनसदण्डभाक् ॥ ८ ॥
त्यजन्नदुष्टांदण्ड्यःस्याद्दूषयंश्चाप्यदूषिताम् ।
ऊढायांहिसवर्णायामन्यांवाकाममुद्वहेत् ॥ ९ ॥
तस्यामुत्पादितःपुत्रो नसवर्णात्प्रहीयते ।
उद्वहेत्क्षत्रियांविप्रो वैश्यांचक्षत्रियोविशाम् ॥ १० ॥
नतुशूद्रांद्विजःकश्चिन्नाधमःपूर्ववर्णजाम् ।
नानावर्णासुभार्य्यासु सवर्णासहचारिणी ॥ ११ ॥
धर्म्याधर्म्मेषुधर्मिष्ठा ज्येष्ठानस्यस्वजातिषु ।
पाटितोऽयंद्विजाःपूर्वमेकदेहःस्वयंभुवा ॥ १२ ॥

भ्रूणहत्याओं के पाप से कन्या का विवाह न करने वाला पतित होता है ॥७॥ मैं तुम को दूंगा और मैं तुम को ग्रहण करूंगा ऐसे परस्पर समय की प्रतिज्ञा वर और दाता दोनों करके यदि उन दोनों में से जो अपनी प्रतिज्ञा को पूरी न करे वही राजदण्ड का भागी होता है ॥ ८ ॥ जो स्त्री दूषित न हो उसे जो त्यागे वह और जो निर्दोष कन्या को दूषण लगाये वे दोनों राजदण्ड के योग्य होते हैं। यदि अपने वर्ण की एक कन्या के साथ विवाह कर लिया हो तो दूसरे क्षत्रियादि वर्ण की अन्य स्त्री के साथ विशेष कामभोगेच्छा होने पर विवाह कर लेवे ॥ ९ ॥ उस अन्य वर्ण की स्त्री में जो पुत्र उत्पन्न होता है वह सवर्ण ही अर्थात् पिता के वर्ण का होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिया और वैश्य कन्या के साथ विवाह करे और क्षत्रिय पुरुष वैश्य कन्या के साथ कर ले ॥ १० ॥ कोई भी द्विज, शूद्र कन्या के साथ विवाह न करे और नीच वर्ण का पुरुष अपने से उत्तम वर्ण की कन्या के साथ विवाह न करे। अनेक वर्ण की स्त्रियों से विवाह किया हो तो जो सवर्णा हो वही अग्निहोत्रादि धर्म कार्यों में सहचारिणी रहे ॥ ११ ॥ जिस पुरुष ने कई सवर्णा स्त्रियों से विवाह किया हो तो अग्निहोत्रादि धर्म के कामों में जो अधिक श्रद्धावती हो वही धर्मानुकूल बड़ी होने से सहचारिणी होनी चाहिये। हे द्विजो ! स्त्री पुरुष मिल के यह एक ही देह पहिले था जिस को ब्रह्मा जी ने स्त्री पुरुष रूप दो भाग किया है ॥ १२ ॥

पतयोर्द्धेनचार्द्धेन पत्न्योऽभूवन्निति श्रुतिः ।
यावन्नविन्दतेजायां तावदर्द्धोभवेत्पुमान् ॥ १३ ॥
नार्द्धंप्रजायतेसर्वं प्रजायेतेत्यपिश्रुतिः ।
गुर्वीसाभूस्त्रिवर्गस्य वोढुंनान्येनशक्यते ॥ १४ ॥
यतस्ततोन्वहंभूत्वास्ववशोविभृयात्स्त्रताम् ।
कृतदारोऽग्निपत्नीभ्यां कृतवेश्मागृहंवसेत् ॥ १५ ॥
स्वकृतंवित्तमासाद्य वैतानाग्निंनहापयेत् ।
स्मार्तवैवाहिकेवन्हौ श्रौतंवैतानिकाग्निषु ॥ १६ ॥
कर्मकुर्यात्प्रतिदिनं विधिवत्प्रीतिपूर्वतः ।
सम्यग्धर्मार्थकामेषु दम्पतिभ्यामहर्निशम् ॥ १७ ॥
एकचित्ततयाभाव्यं समानव्रतवृत्तितः ।
नपृथग्विद्यतेस्त्रीणां त्रिवर्गविधिसाधनम् ॥ १८ ॥
भावतोह्यतिदेशाद्वा इतिशास्त्रविधिःपरः ।

आधे देह मे पति और आधे मे स्त्री हुई है यह श्रुतिमें लिखा है। इसलिये जब तक पुरुष स्त्री को न विवाहे तब तक आधा ही रहता है इसी कारण पत्नी अर्द्धाङ्गिनी कहाती है ॥ १३ ॥ वेद में लिखा है कि पुरुष को सन्तानोत्पत्ति करनी चाहिये । और विना पत्नी के आधा शरीर पुत्रोत्पत्ति कर नहीं सकता इस से सवर्णा के साथ विवाह करना आवश्यक है। यह स्त्री धर्म, अर्थ और काम की बड़ी भारी भूमि (पैदा करने वाली) है। उस त्रिवर्ग की प्राप्ति पत्नी के बिना अन्य साधन से नहीं हो सकती ॥१४॥ जहां तहां से व्यभिचारादि से बच कर अपने शरीरेन्द्रियों को वशी भूत रखता हुआ गृहस्थ पुरुष उस स्त्री का भरण पोषण करे ; विवाह करके अग्नि और पत्नी के सहित पुरुष घर को बना कर उस में बसे ॥ १५ ॥ अपने परिश्रम से पैदा किये धन को प्राप्त हो कर विधि से स्थापित किये श्रौत अग्नियों को न त्यागे । स्मृति में कहे कर्मों को विवाह सम्बन्धी गृह्य अग्नि में और श्रौत-कर्मों को श्रौत अग्नियों में किया करे ॥१६॥ प्रतिदिन विधि और प्रीति पूर्वक उक्त कर्म को करे—स्त्री पुरुषों को धर्म, अर्थ, कामों में रात दिन भलीप्रकार ॥१७॥ एक मन, एक व्रत, एकवृत्ति से रहना चाहिये स्त्रियों को धर्म अर्थ काम को प्राप्त करने का पति से पृथक् कोई साधन नहीं है॥१८॥ भाव (पति के अभिप्राय)

पत्युःपूर्वंसमुत्थाय देहशुद्धिंविधायच ॥ १९ ॥
उत्थायशयनाद्यानि कृत्वावेश्मविशोधनम् ।
मार्जनैर्लेपनैःप्राप्य साग्निशालांस्वमङ्गणम् ॥ २० ॥
शोधयेदग्निकार्याणि स्निग्धान्युष्णेनवारिणा ।
प्रोक्षणैरितितान्येव यथास्थानंप्रकल्पयेत् ॥ २१ ॥
द्वन्द्वपात्राणिसर्वाणि नकदाचिद्वियोजयेत् ।
शोधयित्वातुपात्राणि पूरयित्वातुधारयेत् ॥ २२ ॥
महानसस्यपात्राणि बहिःप्रक्षाल्यसर्वथा ।
मृद्भिश्चशोधयेच्चुल्लीं तत्राग्निंविन्यसेत्ततः ॥ २३ ॥
स्मृत्वानियोगपात्राणि रसांश्चद्रविणानिच ।
कृतपूर्वाण्हकार्याच स्वगुरूनभिवादयेत् ॥ २४ ॥
ताभ्यांभर्तृपितृभ्यांवा भ्रातृमातुलबान्धवैः ।

से वा उसकी आज्ञा से स्त्री धर्मादि को जाने तथा करे यही शास्त्र की उत्तम विधि है। स्त्री पति से पहले उठ कर और देह की शुद्धि करके ॥ १९ ॥ शय्या आदि को उठाकर और झाड़ू आदि से घर का शोधन (सफाई) करके मार्जन (बुहारने) और लीपने से अग्नि की शाला और अपने आंगन को ॥ २० ॥ शुद्ध करै और अग्नि के कार्य जिनसे होमादि होते हों ऐसे (यज्ञ पात्र आदि) जो चिकने हों उनको (प्रोक्षणैः०) इस मन्त्र से गर्म जल से शुद्ध कर, फिर उन्हें जहां के तहां रख दे ॥२१॥ सूर्प-अग्निहोत्र हवणी, स्रुच् स्रुव, उखल-मुसल, दृषत् उपला इत्यादि एक साथ काम आने वाले जो दो २ पात्र हैं उनको कदापि पृथक् २ न रक्खे। फिर पात्रों को शुद्ध करके और जल आदि से भर कर रखदे ॥ २२ ॥ चौके से बाहर महानस (रसोई) के सब पात्र धोकर पीला मट्टी से चूल्हे को पोत कर उस में अग्नि को स्थापित कर देवे॥२३॥ वर्तने के पात्रों को और रसों तथा द्रव्यों को स्मरण (याद) करके कि किस २ धातु आदि के पात्र में कौन २ रसादि रखना है ऐसा स्मरण करके उन २ पात्रों में वह २ रसादि धर देवे। पूर्वान्ह (दुपहर से पहिले) के काम करके अपने गुरु (पति) को अभिवादन करे ॥ २४ ॥ अपने माता, पिता, वा पति के माता पिता अपने सासु ससुर ने तथा भाई,

वस्त्रालङ्काररत्नानि प्रदत्तान्येवधारयेत् ॥ २५ ॥
मनोवाक्कर्मभिःशुद्धा पतिदेशानुवर्तिनी ।
छायेवानुगतास्वच्छा सखीवहितकर्मसु ॥ २६ ॥
दासीवादिष्टकार्येषु भार्याभर्तुःसदाभवेत् ।
ततोऽन्नसाधनंकृत्वा पतयेविनिवेद्यतत् ॥ २७ ॥
वैश्वदेवकृतैरन्नैर्भोजनीयांश्चभोजयेत् ।
पतिंचैवाभ्यनुज्ञाता शिष्टमन्नादिनात्मना ॥ २८ ॥
भुक्त्वानयेदहः शेषमायव्ययविचिन्तया ।
पुनःसायंपुनःप्रातर्गृहशुद्धिंविधायच ॥ २९ ॥
कृतान्नसाधनासाध्वी सुभृशंभोजयेत्पतिम् ।
नातितृप्त्यास्वयंभुक्त्वा गृहनीतिंविधायच ॥३०॥
आस्तीर्यसाधुशयनं ततःपरिचरेत्पतिम् ।
सुप्तेपत्यौतदभ्याशे स्वपेत्तद्गतमानसा ॥३१॥

मामा, बांधव. इन के दिये वस्त्र और आभूषणों को धारण करै ॥ २५ ॥ मन. वाणी कर्म से शुद्ध. पति की आज्ञा में वर्तने वाली छाया के समान पति की अनुगामिनी और स्वच्छ हुई सखी के समान पति का हित करै ॥२६॥ पति के कहे कार्यों में पत्नी सदैव दासी के समान रहे फिर अन्न वा उत्तम स्वादिष्ट पाक बना कर पति को निवेदन करके ॥ २७ ॥ किया है वैश्वदेव [अर्थात्–देवयज्ञ. भूतयज्ञ. पितृयज्ञ] जिसमें ऐसे अन्न से जिमाने के योग्य [अतिथि आदि] को और पति को जिमावे और पति की आज्ञा लेकर शेष [बचे] अन्न को आप खावे ॥२८॥ भोजन करने पश्चात् शेष दिन को आय (आमदनी) व्यय (खर्च) की चिन्ता से बितावे। इसी प्रकार नित्य २ सायं प्रातःकाल घर की शुद्धि करके ॥ २९ ॥ साध्वी स्त्री नित्य २ प्रीतिपूर्वक उत्तम स्वादिष्ट पाक बनाकर बड़ी प्रीति से अपने पति को जिमावे और अत्यन्त तृप्ति जिस में नहो उतना भोजन स्वयं करके और घरका उत्तम प्रबन्ध करके ॥३०॥ अच्छी सेज बिछाकर पति की सेवा करे। जब पति सो जांय तब पति में है मन जिसका ऐसी स्त्री उन के समीप में सो जावे॥३१॥

अनग्नाचाप्रमत्ताच निष्कामाचजितेन्द्रिया ।
नोच्चैर्वदेन्नपरुषं नबहून्पत्युरप्रियम् ॥ ३२ ॥
नकेनचिद्विवदेच्च अप्रलापविलापिनी ।
नचातिव्ययशीलास्यान्नधर्म्मार्थविरोधिनी ॥३३॥
प्रमादोन्मादरोषेर्ष्या वञ्चनंचातिमानिताम् ।
पैशुन्यहिंसाविद्वेषमहाहङ्कारधूर्त्तता ॥३४॥
नास्तिक्यंसाहसंस्तेयं दम्भान्साध्वीविवर्जयेत् ।
एवंपरिचरन्तीसा पतिंपरमदैवतम् ॥३५॥
यशःशमिहयात्येव परत्रचसलोकताम् ।
योषितोनित्यकर्मोक्तं नैमित्तिकमथोच्यते ॥३६॥
रजोदर्शनतोदोषात् सर्वमेवपरित्यजेत् ।
सर्वैरलक्षिताशीघ्रं लज्जितान्तर्गृहेवसेत् ॥ ३७ ॥

नंगी न रहे, प्रमत्त (बेहोश) न रहे, निष्काम और जितेन्द्रिय रहे, ऊंचे स्वर से चिल्ला कर न बोले और कठोर न बोले, बहुत व्यर्थ न बोले मितभाषिणी हो, पति को प्यारे न हों ऐसे वचन कदापि न बोले ॥ ३२ ॥ किसी के संग विवाद वा लड़ाई न करे अनर्थक वृथा न बोले किसी गुजरे दुःख का विलाप न करे, बहुत खर्च करने का स्वभाव न रक्खे, धर्म और अर्थ का विरोध न करे ॥ ३३ ॥ असावधानी, उन्माद, क्रोध, ईर्ष्या, ठगना, (छल फरेब) अत्यन्त मान चाहना, चुगलपन, हिंसा, बैर, बड़ा अहंकार, धूर्तपन ॥ ३४ ॥ नास्तिकपना, साहस (शीघ्रता में विना विचारे चाहे जो कर बैठना) चोरी, दम्भ, इन सब को साध्वी स्त्री छोड़ देवे, ऐसे परम देवता रूप पति की सेवा करती वह स्त्री ॥ ३५ ॥ इस लोक में यश और सुख को और पर-लोक में पति के लोक को अवश्य प्राप्त होती है। यह स्त्री का नित्य कर्त्तव्य धर्म कहा अब इस के आगे नैमित्तिक (जो किसी निमित्त से हो) कर्म कहते हैं ॥ ३६ ॥ रजोदर्शन होने पर दोष (अपराध लगने) के भय से सब कामों को त्याग देवे। जहां किसी को न दीखे वहां शीघ्र ही जाकर घर के भीतर लज्जित हुई बसे ॥ ३७ ॥

एकाम्बराकृतादीना स्नानालङ्कारवर्जिता ।
मौनिन्यधोमुखीचक्षुः पाणिपद्भिरचञ्चला ॥ ३८ ॥
अश्नीयात्केवलंभक्तं नक्तंमृन्मयभाजने ।
स्वपेद्भूमावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम् ॥ ३९ ॥
स्नायीतचत्रिरात्रान्ते सचैलमुदितेरवौ ।
विलोक्यभर्तुर्वदनं शुद्धाभवतिधर्मतः ॥ ४० ॥
कृतशौचापुनःकर्म पूर्ववच्चसमाचरेत् ।
रजोदर्शनतोयाःस्यू रात्रयःषोडशर्तवः ॥ ४१ ॥
तत्रपुंबीजमक्लिष्टं शुद्धेक्षेत्रेप्ररोहति ।
चतस्रश्चादिमारात्राः पर्ववच्चविवर्जयेत् ॥ ४२ ॥
गच्छेद्युग्मासुरात्रीषु पौष्णपित्रर्क्षराक्षसान् ।
प्रच्छादितादित्यपथे पुमान्गच्छेत्स्वयोषितः ॥ ४३ ॥
क्षमालङ्कृदवाप्नोति पुत्रंपूजितलक्षणम् ।

एकधोती वस्त्र धारण किये दीनदशा रखती हुई; स्नान और आभूषण से वर्जित, मौन हुई, नीचे को मुख किये, हाथ पग इन को विशेष न चलावे ॥३८॥ रात्रि के समय मिट्टी के पात्र में एक बार सान्नी भात खावे । प्रमाद छोड़ सावधान हुई पृथिवी पर चटाई डाल कर सोवे ऐसे तीन दिन बितावे ॥ ३९ ॥ तीन दिन पूरे होने पर चौथे दिन प्रातःकाल सूर्य के उदय हो जाने पर पहिने हुये वस्त्रों सहित स्नान करे फिर शुद्ध वस्त्र पहिन कर अपने पति के मुख को देख के धर्म से शुद्ध होती है ॥४०॥ किया है शौच जिसने वह स्त्री फिर पहिले के समान कामों को करै—रजोदर्शन से लेकर ऋतुकाल की जो सोलह रात्रि होती हैं ॥ ४१ ॥ उन रात्रियों में पुरुष का नीरोग बीज शुद्ध क्षेत्र में जमता है । चार पहिली रात्रियों को और अमावास्या अष्टमी पौर्णमासी चतुर्दशी ये पर्व तिथि सोलह में आजावें तो उन को भी छोड़ देवे ॥ ४२ ॥ शेष बची रात्रियों में से ६ । ८ । १० । १२ । १४ । १६ इन समरात्रियों में यदि रेवती–मघा आश्लेषा इन में से कोई नक्षत्र हो तो उस दिन सूर्य के अस्त हो जाने पर रात्रि में पुरुष अपनी स्त्री के पास जावे ॥४३॥ क्षमा से शोभायमान वह पुरुष,

ऋतुकालेऽभिगम्यैवं ब्रह्मचर्येण्यवस्थितः ॥ ४४ ॥
गच्छन्नपियथाकामं नदुष्टःस्यादनन्यकृत् ।
भ्रूणहत्यामवाप्नोति ऋतौभार्य्यापराङ्मुखः ॥ ४५ ॥
सात्ववाप्यान्यतोगर्भं त्याज्याभवतिपापिनी ।
महापातकदुष्टाच पतिगर्भविनाशिनी ॥४६॥
सद्वृत्तचारिणींपत्नीं त्यक्त्वापततिधर्मतः ।
महापातकदुष्टोऽपि नाप्रतीक्ष्यस्तयापतिः ॥४७॥
अशुद्धेःक्षयमादूरं स्थितायामनुचिन्तया ।
व्यभिचारेणदुष्टानां पत्नीनांदर्शनादृते ॥४८॥
धिक्कृतायामवाच्यायामन्यत्रवासयेत्पतिः ।
पुनस्तामार्तवस्नातां पूर्ववद्व्यवहारयेत् ॥४९॥
धूर्तांचधर्मकामघ्नीं मपुत्रांदीर्घरोगिणीम् ।

प्रशंसा के योग्य हैं लक्षण जिस के ऐसे पुत्र को प्राप्त होता है । ऋतु के समय उक्त प्रकार स्त्री का संग करके अन्य समय पुरुष ब्रह्मचारी रहे ॥ ४४ ॥ ऋतु से भिन्न काल में भी यथेच्छ गमन करता हुआ पुरुष दूषित नहीं होता यदि अन्य निन्दित कर्म आदि न करे । जो ऋतुकाल में स्त्री का संग नहीं करता वह भ्रूणहत्या का दोष भागी होता है ॥ ४५ ॥ यदि वह स्त्री किसी अन्य पुरुष से गर्भवती हो जाय तो उस पापिनी का त्याग कर देवे । और पति के गर्भ का नाश करने वाली तथा ब्रह्महत्यादि महापातकों से दूषित हो तो भी उस का त्याग करना चाहिये ॥ ४६ ॥ अच्छे आचरण करने वाली पत्नी को त्याग कर पुरुष धर्म से पतित होता है । और पति महापातक से दूषित हो तो शुद्धि तक वह स्त्री प्रतीक्षा करे (बाट देखे) ॥ ४७ ॥ महापातकी पति की शुद्धि पर्यन्त व्यभिचारी भी दुष्ट पति उन के दर्शन को छोड़ कर थोड़ी दूर स्थान में चिन्ता से ठहरी पत्नी हो तब प्रतीक्षा करे ॥४८॥ और जिसे धिक्कार दी हो वा जिस के संग बोलना छोड़ दिया हो उसे दूसरे स्थान में बसा दे फिर जब वह ऋतु स्नान करले तब पूर्व के समान उस के संग वर्ताव करे ॥ ४९ ॥ जो स्त्री धूर्त हो, जो धर्म और काम को नष्ट करे,

सुदुष्टांव्यसनासक्तमहितामधिवासयेत् ॥५०॥
अधिविन्नामपित्रिभुः स्त्रीणांतुसमतामियात् ।
विवर्णादीनवदना देहसंस्कारवर्जिता ॥५१॥
पतिव्रतानिराहारा शोष्यतेप्रोषितेपतौ ।
मृतंभर्तारमादाय ब्राह्मणीवन्हिमाविशेत् ॥५२॥
जीवन्तीचेत्त्यक्तकेशा तपसाशोधयेद्वपुः ।
सर्वावस्थासुनारीणां नयुक्तंस्याद्रक्षणम् ॥५३॥
तदेवानुक्रमात्कार्यं पितृभर्तृसुतादिभिः ।
जाताःसुरक्षितावाये पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः ॥५४॥
येयजन्तिपितॄन्यज्ञैर्मोक्षप्राप्तिमहोदयैः ।

जिस के कोई पुत्र न हो, जिस को असाध्य दीर्घ रोग हो, जो अत्यन्त दुष्ट हो, जिसे कुछ व्यसन (मदिरा पीना आदि) लगा हो और जो पति का हित न चाहती वा करती हो इन ऐसी स्त्रियों का अधिवासन करे अर्थात् इन के विद्यमान होते भी द्वितीय विवाह कर लेवे ॥५०॥ जिस के होते दूसरा विवाह किया है पति को अन्य स्त्रियों के समान ही उस अधिविन्ना स्त्री का आदर वस्त्राभूषणादि से करना चाहिये । पति के परदेश जाने पर जो स्त्री मलिन वर्ण, दीन मुख, देह के संस्कार उबटना तैल मर्दन आदि को न करती हुई ॥५१॥ पति में व्रत रक्खे, अन्य पुरुष का मन में भी ध्यान न करे, अति सूक्ष्म आहार करे, देह को कृश निर्बल कर दे ऐसी ब्राह्मणी आदि पतिव्रता कहाती है, वह मरे हुए पति को लेकर अग्नि में प्रवेश करे (सती होजाय) ॥ ५२ ॥ यदि जीवित रहे तो केशों को मुंड़ा डाले तप से शरीर को शुद्ध करे स्त्रियों की सब अवस्था (बालक से वृद्ध तक) ओं में पुरुषों को रक्षा करनी उचित है ॥ ५३ ॥ सो बाल्यावस्था में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्रादि लोग अपनी पुत्री, पत्नी और मातादि की क्रम से रक्षा करें। जो सन्तान अपने घर में उत्पन्न हुए वा गोद लेकर जिन का पालन पोषण किया ऐसे जो पुत्र पौत्र और प्रपौत्र कहाने वाले लोग ॥ ५४ ॥ मोक्ष देने वाले तथा महान् फलोदय वाले बड़े २ अग्निहोत्रादि यज्ञों से अपने पितरों को पूजते हैं वे लोग जब मरें तो उन का स्थापित किये अग्निहोत्र के

मृतान्तानग्निहोत्रेण दाहयेद्विधिपूर्वकम् ।
दाहयेदविलम्बेन भार्याचात्रव्रजेतसा ॥ ५५ ॥
इति श्रीवेदव्यासीये धर्म्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
नित्यंनैमित्तिकंकाम्यमितिकर्मत्रिधामतम् ।
त्रिविधंतच्चवक्ष्यामि गृहस्थस्यावधार्य्यताम् ॥ १ ॥
यामिन्याःपश्चिमेयामे त्यक्तनिद्रोहरिंस्मरेत् ।
आलोक्यमङ्गलद्रव्यं कर्मावश्यकमाचरेत् ॥ २ ॥
कृतशौचोनिषेव्याग्नीन्दन्तान्प्रक्षाल्यवारिणा ।
स्नात्वोपास्यद्विजःसन्ध्यां देवादींश्चैवतर्पयेत् ॥३॥
वेदवेदाङ्गशास्त्राणि इतिहासानिचाभ्यसेत् ।
अध्यापयेच्चसच्छिष्यान् सद्विप्रांश्चद्विजोत्तमः ॥ ४ ॥
अलब्धंप्रापयेल्लब्ध्वा क्षणमात्रंसमापयेत् ।

अग्नि से विधिपूर्वक दाह करें और ऐसे लोगों की पत्नी पहिले मरे तो उसका भी उसी अग्निहोत्र के अग्नि से दाह करें तो वह भी स्वर्ग में जाती है ॥५५॥
श्रीवेदव्यासीय धर्मशास्त्र के द्वितीय अध्याय का अनुवाद समाप्त हुआ ॥

गृहस्थ पुरुष का नित्य नैमित्तिक काम्य यह तीन प्रकार का कर्म शास्त्र में कहाहै वह तीनों प्रकार का कर्म हम कहते हैं तुम लोग सुनो ॥१॥ ब्राह्मणादि द्विज पुरुष रात्रि के पिछले चौथे पहर में उठकर विष्णु का स्मरण करे [हरि का ग्रहण उपलक्षणार्थ है तिस से शम्भु आदि अन्य देवों का भी स्मरण जानो] फिर मङ्गल द्रव्य (गौ आदि) को देखकर शौचादि आवश्यक काम को करें ॥२॥ मल मूत्र त्यागादि शौच, अग्नि की सेवा, जल से दांतों का धोना, और स्नान करने पश्चात् संध्या करके देव ऋषि और पितरों का तर्पण करें ॥ ३ ॥ गृहस्थ ब्राह्मण वेद, वेदाङ्ग, छः शास्त्र और इतिहासों का अभ्यास किया करे । अच्छे शिष्य और उत्तम ब्राह्मणों को वेदादि पढ़ाया करे ॥ ४ ॥ अप्राप्त (जो अपने यहां न हो) वस्तु की प्राप्ति का उपाय करें और उस वस्तु को पाकर कुछ थोड़े काल ठहर जावे फिर अन्य अप्राप्त की प्राप्ति का उपाय करे। विद्यादि गुणों से समर्थ होकर किसी धनादि से समर्थ राजा रईसादि के यहां अपने गुण को अप्रकट करके न बसे। किन्तु

समर्थोहिसमर्थेन नाविज्ञातःक्वचिद्वसेत् ॥ ५ ॥
सरित्सरःसुवापीषु गर्तप्रस्रवणादिषु ।
स्नायीतयावदुद्धृत्य पञ्चपिण्डानिवारिणा ॥ ६ ॥
तीर्थाभावेप्यशक्तोवा स्नायात्तोयैःसमाहृतैः ।
गृहाङ्गनगतस्तत्र यावदम्बरपीडनम् ॥ ७ ॥
स्नानमब्दैवतैःकुर्य्यात् पावनैश्चापिमार्जनम् ।
मन्त्रैःप्राणांस्त्रिरायम्य सौरैश्चार्कंविलोकयेत् ॥ ८ ॥
तिष्ठन्स्थित्वातुगायत्रीं ततःस्वाध्यायमारभेत् ।
ऋचांचयजुषांसाम्नामथर्वाङ्गिरसामपि ॥ ९ ॥
इतिहासपुराणानां वेदोपनिषदांद्विजः ।
शक्त्यासम्यक्पठेन्नित्यमल्पमप्यासमापनात् ॥ १० ॥
सयज्ञदानतपसामखिलंफलमाप्नुयात् ।

अपने गुण को जता कर वहां से आदर प्राप्त करे ॥ ५ ॥ नदी, छोटा तालाब, बावड़ी, कुण्ड, झरने इन में से किसी में तब स्नान करे जब पहिले पांच पिण्ड मिट्टी को बाहर निकाल देवे॥६॥ कोई घाट नदी आदि में नहीं वा घाट तक जाने का सामर्थ्य न होतो नद्यादि से जल मगाकर वा कुए से जल को भर कर घर के आंगन में जितने जल से पहिना वस्त्र (धोती) भीग जाय उतने जल से स्नान करे ॥७॥ जल है देवता जिनका ऐसे वेद मन्त्रों से स्नान करे और (चित्पतिर्मापुनातु०) इत्यादि पावन मन्त्रों से मार्जन करे और व्याहृत्यादि मन्त्रों से तीन प्राणायाम करके सूर्य देवता वाले मन्त्रों से खड़ा हुआ सूर्य को देखे अर्थात् सूर्य नारायण को देखता हुआ उपस्थान करे॥८॥ फिर खड़ा होकर गायत्री का जप करके ब्रह्मयज्ञ की विधि से वेद का अभ्यास करे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ॥९॥ इतिहास, पुराण, वेदों के उपनिषद् इनका थोड़ा भी भाग उन २ की समाप्ति होने तक अपनी शक्ति के अनुसार जो द्विज भली प्रकार पढे (यही स्वाध्याय नामक ब्रह्मयज्ञ कहाता है) ॥ १० ॥ वह यज्ञ, दान, और तप के सम्पूर्ण फल को प्राप्त होता है तिस से ब्राह्मणादि द्विज पुरुष प्रतिदिन वाणी को वश में रख कर अर्थात् बीच में अन्य कुछ भी

तस्मादहरहर्वेदं द्विजोऽधीयीतवाग्यतः ॥ ११ ॥
धर्मशास्त्रेतिहासादि सर्वेषांशक्तितःपठेत् ।
प्रथमंकृतस्वाध्यायस्तर्पयेच्चाथदेवताः ॥ १२ ॥
जान्वाच्यदक्षिणंदर्भैः प्रागग्रैःसयवैस्तिलैः ।
एकैकाञ्जलिदानेन प्रकृतिस्थोपवीतकः ॥ १३ ॥
समजानुद्वयोब्रह्म सूत्रहारउदङ्मुखः ।
तिर्यग्दर्भैश्चवामाग्रैर्यवैस्तिलविमिश्रितैः ॥ १४ ॥
अम्भोभिरुत्तरक्षिप्तैः कनिष्ठामूलनिर्गतैः ।
द्वाभ्यांद्वाभ्यामञ्जलिभ्यां मनुष्यांस्तर्पयेत्ततः ॥ १५ ॥
दक्षिणाभिमुखःसव्यं जान्वाच्यद्विगुणैःकुशैः ।
तिलैर्जलैश्चदेशिन्या मूलदर्भाग्रनिःसृतैः ॥ १६ ॥
दक्षिणांसोपवीतःस्यात् क्रमेणाञ्जलिभिस्त्रिभिः ।
सन्तर्पयेद्दिव्यपितॄंस्तत्परांश्चपितॄन्स्वकान् ॥ १७ ॥

न बोलता हुआ वेद को पढ़े ॥ ११ ॥ और धर्मशास्त्र इतिहासादि का भी थोड़ा २ भाग अपनी शक्ति के अनुसार पढ़े इस प्रकार प्रथम स्वाध्याय करके देवताओं का आगे लिखे प्रकार से तर्पण करे ॥ १२ ॥ दहिने घोटू [जानु] को भूमि पर नवाय कर पूर्व को है अग्रभाग जिन का ऐसे कुश जौ, और तिल लेकर सव्य यज्ञोपवीत धारण किये पूर्वाभिमुख बैठा एक २ अंजलि देता हुआ तर्पण करे ॥ १३ ॥ दोनों जानु बराबर रख जनेऊ कंठ में कर उत्तर को मुख कर,--बांयी ओर अग्रभाग जिन का ऐसे तिरछे कुश और तिल मिले हुये जौ से ॥ १४ ॥ कनिष्ठा अंगुली के मूल से उत्तर में जो गिरें ऐसे जलों से दो २ अंजलियों से सनकादि मनुष्यों [ऋषियों] का तर्पण करे ॥१५॥ दक्षिण को मुख करके बायां जानु (घोंटू) भूमि पर टेक कर द्विगुण कुश तिल, और प्रदेशिनी (तर्जनी) के मूल पर रक्खे कुशों से गिरते हुए जलों से ॥ १६ ॥ दहिने कन्धे पर जनेऊ रक्खे हुये क्रम से तीन २ अंजली देता हुआ दिव्य पितरों का तर्पण करके अपने पिता, पितामह, प्रपितामह पितरों का तर्पण क्रम से करे ॥ १७ ॥

मातृमातामहांस्तद्वत् त्रीनेवंहित्रिभिस्त्रिभिः ।
मातामहस्ययेऽप्यन्ये गोत्रिणोदाहवर्जिताः ॥ १८ ॥
तानेकाञ्जलिदानेन तर्पयेच्चपृथक्पृथक् ।
असंस्कृतप्रमीताये प्रेतसंस्कारवर्जिताः ॥ १९ ॥
वस्त्रनिष्पीडिताम्भोभिस्तेषामाप्यायनंभवेत् ।
अतर्पितेषुपितृषु वस्त्रंनिष्पीडयेत्तुयः ॥ २० ॥
निराशाःपितरस्तस्य भवन्तिसुरमानुषैः ।
पयोदर्भस्वधाकार गोत्रनामतिलैर्भवेत् ॥ २१ ॥
सुदत्तंतत्पुनस्तेषामेकेनापिविनावृथा ।
अन्यचित्तेनयद्दत्तं यद्दत्तंविधिवर्जितम् ॥ २२ ॥
अनासनस्थितेनापि तज्जलंरुधिरायते ।
एवंसन्तर्पिताःकामैस्तर्पकांस्तर्पयन्तिच ॥ २३ ॥
ब्रह्मविष्णुशिवादित्यमित्रावरुणनामभिः ।

पितादि के तुल्य माता, पितामही, और प्रपितामही इन तीनों का तर्पण करके मातामह (नाना) प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह इन तीनों का भी इसी प्रकार तीन २ अञ्जुलियों से तर्पण करे—और नाना के गोत्र के अन्य जो लोग मर गये हों जिन का दाह कर्म नहीं हुआ हो ॥ १८ ॥ उन का भी एक २ अञ्जलि देकर पृथक् २ तर्पण करे और जो उपनयनादि संस्कार हुए विना ही मरे हैं तथा जिन का दशगात्रादि प्रेत संस्कार भी नहीं हुआ ॥१९॥ उन की वस्त्र (अंगोछा) निचोड़ने के जल से तृप्ति होजाती है। जो पुरुष पितरों के तर्पण से पहिले वस्त्र को निचोड़ता है ॥२०॥ उस के पितर; देवता और मनुष्यों सहित निराश हो जाते हैं। जल, कुश, स्वधा, गोत्र नाम और तिल इन सब के सहित जो तर्पण किया जाता है ॥ २१ ॥ वह जलदान उत्तम है। उन जलादि में से एक भी कोई वस्तु न हो तो किया हुआ तर्पण वृथा हो जाता है। अन्य विचार मन में रख कर वा विधिपूर्वक जो तर्पण नहीं किया ॥ २२ ॥ अथवा आसन पर बैठ विना जो जल दिया वह सब रुधिर के समान है। इस प्रकार तृप्त किये पितर तर्पण करने वालों को कामनाओं की पूर्त्ति से तृप्त करते हैं ॥२३॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, आदित्य, मित्रावरुण, इन देवताओं

पूजयेल्लक्षितैर्मन्त्रैर्जलैर्मन्त्रोक्तदेवताः ॥ २४ ॥
उपस्थायरविंकाष्ठां पूजयित्वाचदेवताः ।
ब्रह्माग्नीन्द्रौषधीजीवविष्णुवाङ्महतांतथा ॥ २५ ॥
अपांपतेतिसत्कारं नमस्कारैःस्वनामभिः ।
कृत्वामुखंसमालभ्य स्नानमेवंसमाचरेत् ॥ २६ ॥
ततःप्रविश्य भवनमावसथ्येहुताशने ।
पाकयज्ञांश्चचतुरो विदध्याद्विधिवद्द्विजः ॥ २७ ॥
अनाहितावसथ्याग्निरादायान्नंघृतप्लुतम् ।
शाकलेनविधानेन जुहुयाल्लौकिकेऽनले ॥ २८ ॥
व्यस्ताभिर्व्याहृतीभिश्च समस्ताभिस्ततःपरम् ।
षड्भिर्देवकृतस्येति मन्त्रवद्भिर्यथाक्रमम् ॥ २९ ॥
प्राजापत्यंस्विष्टकृतं हुत्वैवंद्वादशाहुतीः ।
ओंकारपूर्वःस्वाहान्तस्त्यागःस्विष्टविधानतः ॥ ३० ॥

को उन २ के मन्त्रों द्वारा जल से अर्घ देवे ॥२४॥ सूर्य नारायण का उपस्थान करके और पूर्व दिशाओं को उन २ के इन्द्रादि देवताओं सहित नमस्कार करके ब्रह्मा,अग्नि,इन्द्र, औषधी.जीव.विष्णु. वाच्. महत्.॥२५॥ अपांपति इन सब का (अग्नयेनमः) इत्यादि नाम मन्त्रों से पूजन करके (संवर्चसा०) मन्त्र से मुख का प्रक्षालन करके फिर मध्याह्न का स्नान करे ॥ २६ ॥ फिर घर में जाकर गृह्य अग्नि में ब्राह्मणादि द्विज विधिपूर्वक देव यज्ञादि चारो पाक यज्ञों को करें ॥ २७ ॥ विधिपूर्वक गृह्याग्नि का स्थापन जिस ने न किया हो वह पुरुष घी से सम्यक् प्लावित अन्न को लेकर शाकल्य संहिता में कहे विधान से लौकिक अग्नि में होम करे ॥ २८ ॥ १—ओं भूः स्वाहा । २—ओंभुवः स्वाहा । ३—ओंस्वः स्वाहा । इस प्रकार व्यस्त नाम पृथक् २ तीन व्याहृतियों से तथा—ओंभूर्भुवःस्वः स्वाहा । और (देवकृतस्यैन०) इत्यादि शाकल होम के छः मन्त्रों से छः आहुति करके ॥ २९ ॥ इसी प्रकार प्राजापत्य तथा एक स्विष्टकृत् ये सब बारह आहुति करे उक्त सब मन्त्रों के पूर्व ओंकार और अन्त में स्वाहा पद लगावे । त्याग वाक्य गृह्यसूत्रानुसार जानो ॥ ३० ॥

भुविदर्भान्समास्तीर्य बलिकर्मसमाचरेत् ।
विश्वेभ्योदेवेभ्यइति सर्वेभ्योभूतेभ्यएवच ॥ ३१ ॥
भूतानांपतयेचेति नमस्कारेणशास्त्रवित् ।
दद्याद्बलित्रयंचाग्रे पितृभ्यश्चस्वधानमः ॥ ३२ ॥
पात्रनिर्णेजनंवारि वायव्यांदिशि निःक्षिपेत् ।
उद्धृत्यषोडशग्रासमात्रमन्नंघृतोक्षितं ॥ ३३ ॥
इदमन्नंमनुष्येभ्योहन्तेत्युक्त्वासमुत्सृजेत् ।
गोत्रनामस्वधाकारैः पितृभ्यश्चापिशक्तितः ॥ ३४ ॥
षड्भ्योऽन्नमन्वहंदद्यात्पितृयज्ञविधानतः ।
वेदादीनांपठेत्किंचिदल्पंब्रह्ममखाप्तये ॥ ३५ ॥
ततोऽन्यदन्नमादाय निर्गत्यभवनाद्बहिः ।
काकेभ्यःश्वपचेभ्यश्च क्षिपेद्गोग्रासमेवच ॥ ३६ ॥
उपविश्यगृहद्वारि तिष्ठेद्यावन्मुहूर्तकम् ।
अप्रमुक्तोऽतिथिंलिप्सुर्भावशुद्धःप्रतीक्षकः ॥ ३७ ॥

पृथ्वी पर कुश बिछा कर बलि कर्म (भूतयज्ञ) करै (विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः) (सर्वेभ्योभूतेभ्योनमः) ॥ ३१ ॥ और (भूतानांपतयेनमः) इस प्रकार शास्त्र का जानने वाला पुरुष तीन बलि प्रथम दे कर (पितृभ्यःस्वधानमः) इस मन्त्र से पितरों के लिये एक बलि अपसव्य दक्षिणाभिमुख हो कर देवे ॥ ३२ ॥ वैश्वदेव सम्बन्धी अन्नपात्र के धोने का जल वायव्य दिशा में छोड़े फिर घृतसेचन किये सोलह ग्रास परिमित अन्न को निकाल कर ॥३३॥ इदमन्नं मनुष्येभ्योहन्त–यह कहकर मनुष्य यज्ञ कर देवे और अपने गोत्र का नाम तथा स्वधा कहकर यथा शक्ति पितरोंको भी देवै॥३४॥ पितृयज्ञ की विधि से छः (३ पितृपक्ष के ३ मातृपक्ष के) को नित्य अन्न देवे। फिर ब्रह्मयज्ञ की प्राप्ति के निमित्त कुछ वेद आदि का भाग पढ़ै ॥३५॥ फिर अन्य अन्न को ले घर से बाहर जाके काक कुत्ते चाण्डाल इन को भी देवे और गौओं को ग्रास भी देवे ॥३६॥ फिर घर के द्वार पर बैठ कर दो घड़ी ठहरे तथा स्वयं भोजन न करै और अतिथि की आकांक्षा करता हुआ मन से शुद्ध होकर अतिथि की बाट देखै ॥ ३७ ॥

आगतंदूरतःशान्तं भोक्तुकाममकिंचनम् ।
दृष्ट्वासम्मुखमभ्येत्य सत्कृत्यप्रश्रयार्च्चनैः ॥ ३८ ॥
पादधावनसम्मानाभ्यञ्जनादिभिरर्च्चितः ।
त्रिदिवंप्रापयेत्सद्यो यज्ञस्याभ्यधिकोऽतिथिः ॥ ३९ ॥
कालागतोऽतिथिर्दृष्टवेदपारोगृहागतः ।
द्वावेतौपूजितौस्वर्गं नयतोऽधस्त्वपूजितौ ॥ ४० ॥
विवाह्यस्नातकक्ष्माभृदाचार्यसुहृदृत्विजः ।
अर्घ्याभवन्तिधर्मेण प्रतिवर्षंगृहागताः ॥ ४१ ॥
गृहागतायसत्कृत्य श्रोत्रियाययथाविधि ।
भक्त्योपकल्पयेदेकं महाभागंविसर्जयेत् ॥ ४२ ॥
विसर्जयेदनुव्रज्य सुतृप्तश्रोत्रियातिथीन् ।
मित्रमातुलसंबन्धिबान्धवान्समुपागतान् ॥ ४३ ॥
भोजयेद्गृहिणोभिक्षां सत्कृतांभिक्षुकोऽर्हति ।

जो दूरसे आया हो, शान्तस्वभाव हो, निर्धन हो, ऐसे अभ्यागत ब्राह्मण वा संन्यासी को देखकर सन्मुख जाके नम्रता और आदर पूर्वक स्तुति प्रार्थना से ॥ ३८ ॥ पग धोना, सम्मान, तैलमर्दनादि से पूजित हुआ अतिथि यज्ञ से भी अधिक स्वर्ग को प्राप्त कराता (पहुंचाता) है ॥ ३९ ॥ उचित समय पर आया अतिथि और वेद का तत्त्व जानने वाला अपने घर आये ये दोनों पूजे हों तो स्वर्ग में, और न पूजे हों तो नरक में ले जाते हैं ॥४०॥ जो अपने यहां विवाहा हो, ब्रह्मचर्य समाप्त करके हुआ स्नातक, राजा आचार्य, मित्र, ऋत्विज, ये छः अपने घर पर आवें तो प्रतिवर्ष अर्घ मधुपर्कादि विधि विहित धर्म से पूजने योग्य हैं ॥४१॥ अपने घर आये वेदपाठी का शास्त्रोक्त विधि से सत्कार करके श्रद्धा से अपने धनादि का एक बड़ा भाग (हिस्सा) देकर विदाकरे ॥४२॥ अच्छे आदर सत्कार से तृप्त किये वेदपाठी तथा अतिथियों के पीछे कुछ दूर चल कर विसर्जन करे । मित्र, मामा, सम्बन्धि,बांधव, ये लोग अपने घर पर आये हों तो ॥४३॥ उन को भी आदर से भोजन करावे और सत्कार से दी हुई गृहस्थी की भिक्षा को भिक्षुक भी अवश्य ग्रहण करे और जो गृहस्थी स्वादु अन्न को स्वयं खाता तथा अस्वादु अन्न अतिथि आदि को देता है वह

स्वाद्वन्नमश्नन्नस्वादु ददद्गच्छत्यधोगतिम् ॥ ४४ ॥
गर्भिण्यातुरभृत्येषु वालवृद्धातुरादिषु ।
बुभुक्षितेषुभुञ्जानो गृहस्थोऽश्नातिकिल्बिषम् ॥ ४५ ॥
नाद्यादृगृद्धे ऽन्नपाकाद्यं कदाचिदनिमन्त्रितः ।
निमन्त्रितोपिनिन्द्येन प्रत्याख्यानंद्विजोर्हति ॥ ४६ ॥
शूद्राभिशस्तवार्धुष्या वागदुष्टक्रूरतस्कराः ।
क्रुद्धापविद्धवद्धोग्रवधबन्धनजीविनः ॥ ४७ ॥
शैलूषशौण्डिकोन्नद्धोन्मत्तव्रात्यव्रतच्युताः ।
नग्ननास्तिकनिर्लज्जपिशुनव्यसनान्विताः ॥ ४८ ॥
कदर्यस्त्रीजितानार्य्यपरवादकृतानराः ।
अनीशाःकीर्तिमन्तोऽपि राजदेवस्वहारकाः ॥ ४९ ॥
शयनासनसंसर्गव्रतकर्मादिदूषिताः ।
अश्रद्दधानाःपतिना भ्रष्टाचारादयश्चये ॥ ५० ॥
अभोज्यान्नाःस्युरन्नादो यस्ययःस्यात्सतत्समः ।

अधोगति (नरक) को प्राप्त होताहै ॥४४॥ गर्भवतीस्त्री, रोगी भृत्य, वालक, और वृद्धतासे दुःखित इनके भूखे बैठ रहते जो गृहस्थ भोजन करता है वह पापका भागी होताहै। इससे गर्भवती आदिको पहिले भोजन देवे । निमन्त्रण दियेविना अर्थात् विन बुलाये किसीके पङ्क्ति भोजनादि में कदापि न खावे और न इच्छा करै। यदि कोई निन्दित पुरुष निमन्त्रण भी देवे तो भी ब्राह्मण उसे स्वीकार न करे ॥ ४६ ॥ शूद्र, जिसे शाप लगा हो, ब्याज लेने वाला, गूंगा, दुष्ट, कठोर, चोर, क्रोधी, पतित, कैदी, बड़ीहिंसा और बंधन से जो जीविका करते हैं॥४७॥ नट, कलवार, उन्नद्ध (उत्कट) उन्मत्त, व्रात्य (जिसका जनेऊ न हुआ हो) जिसने व्रत को छोड़ दिया हो, गूंगा, नास्तिक, निर्लज्ज, चुगल, व्यसनी, (जो मदिरा आदि पीता हो) ॥ ४८ ॥ कनूजूस, और स्त्रियों ने जिसे जीता हो, असज्जन, सबका निन्दक, असमर्थ और कीर्तिवाले होकर भी जो राजा और देवता के द्रव्य को मार ले ॥ ४९ ॥ शय्या, आसन, संसर्ग, व्रत कर्म इन में जो किसी प्रकार दूषित हों और श्रद्धाहीन पतित भ्रष्टाचार आदि इन सब नट आदि के ॥ ५० ॥ अन्न को धर्मनिष्ठ पुरुष कदापि न खावे क्योंकि जो

नापितान्वयमित्रार्द्धसीरिणोदासगोपकाः ॥ ५१ ॥
शूद्राणामप्यमीषान्तु भुक्त्वान्नंनैवदुष्यति ।
धर्मेणान्योन्यभोज्यान्ना द्विजास्तुविदितान्वयाः ॥ ५२ ॥
स्ववृत्तोपार्जितंमेध्यमाकरस्थममाक्षिकम् ।
अश्वलीढमगोघ्रातमस्पृष्टंशूद्रवायसैः ॥ ५३ ॥
अनुच्छिष्टमसंदुष्टमपर्युषितमेवच ।
अम्लानबाह्यमन्नाद्यमाद्यंनित्यंसुसंस्कृतम् ॥ ५४ ॥
कृसरापूपसंयावपायसंशष्कुलीतिच ।
नाश्नीयाद्ब्राह्मणोमांसमनियुक्तःकथञ्चन ॥ ५५॥
क्रतौश्राद्धेनियुक्तोवा अनश्नन्पततिद्विजः ।
मृगयोपार्जितंमांसमभ्यर्च्यापितृदेवताः ॥ ५६ ॥
क्षत्रियाद्द्वादशोनन्तत्क्रीत्वावैश्योऽपिधर्मतः ।

जिसके अन्न को खाता है वह उसी के समान हो जाता है । नाई, वंश परम्परा से मित्र, अर्द्धसीरी (जिसके आधे साझे में खेती होती हो) दास (कहार) और गोप ॥ ५१ ॥ इतने शूद्रों के भी अन्न को खाकर दोष भागी नहीं होता । प्रसिद्ध है वंश जिन का ऐसे ब्राह्मण परस्पर भोज्यान्न (वह उसके अन्न को और वह उस के को खालें) कहे हैं ॥ ५२ ॥ अपनी जीविका से जो संचय किया हो, सहत को छोड़कर आकर (खान) की वस्तु, घोड़े का तथा गौ का उच्छिष्ट किया न हो, जिस को शूद्र ने वा कौवे ने न छुआ हो वे सब अन्न पवित्र हैं ॥ ५३ ॥ जो उच्छिष्ट न हो जिसको दोष न लगाया हो, बासी न हो, म्लान (दुर्गन्ध) न हो, ऐसे भली प्रकार बनाये अन्न आदि को नित्य खावे ॥ ५४ ॥ खिचड़ी, मालपूवे, मोहनभोग, खीर, पूरी इनको भी खा लेवे । यज्ञ में किसी ऋत्विज् के काम पर नियुक्त हुए विना ब्राह्मण कभी मांस न खावे ॥ ५५ ॥ यज्ञ और श्राद्ध में नियुक्त किया हुआ ऋत्विगादि अधिकार स्वीकार करके यदि ब्राह्मण मांस न खावे तो भी पतित हो जाता है । शिकार करके लाये हुए मांस को पितर और देवताओं का पञ्चमहायज्ञों द्वारा पूजन करके ॥५६॥ ११ भागों को क्षत्रिय और उस में से बारहवें भाग को

द्विजोजग्ध्वावृथामांसं हत्वाप्यविधिनापशून् ॥ ५७ ॥
निरयेष्वक्षयंवासमाप्नोत्याचन्द्रतारकम् ।
सर्वान्कामान्समासाद्य फलमश्वमखस्यच ॥ ५८ ॥
मुनिसाम्यमवाप्नोति गृहस्थोऽपिद्विजोत्तमः ।
द्विजभोज्यानिगव्यानि माहिष्याणिपयांसिच ॥ ५९ ॥
निर्दशाहानिसन्धिन्यानि वत्सवन्तीपयांसिच ।
पलाण्डुंश्वेतवृन्ताकं रक्तमूलकमेवच ॥ ६० ॥
गृञ्जनारुणवृक्षासृग्जतुकुम्भफलानिच ।
अकालकुसुमादीनि द्विजोभुक्त्वैन्दवञ्चरेत् ॥ ६१ ॥
वाग्दूषितमविज्ञातमन्यपीडनकार्यपि ।
भूतेभ्योऽन्नमदत्त्वान्नं तदन्नंगृहिणोदहेत् ॥ ६२ ॥
हेमराजतकांस्येषु पात्रेष्वद्यात्सदागृही ।
अभावेसाधुगन्धेषु लोध्रद्रुमलतासुच ॥ ६३ ॥

मोल लेकर वैश्य भी खासकता है। ब्राह्मण वृथा मांस (जो यज्ञ वा श्राद्ध का न हो) को खाकर और वेदोक्त विधि के विना पशुओं को मार कर ॥ ५७ ॥ नरक में तब तक बसता है जब तक चन्द्रमा और तारे विद्यमान हैं। सब कामना और अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त होकर ॥ ५८ ॥ गृहस्थ ब्राह्मण भी मुनियों के तुल्य तपस्वी होजाता है। ब्राह्मणों के भोजन योग्य गौ और भैंस के दूध होते हैं ॥ ५९ ॥ और वह दूध खाने योग्य है जो ब्याने से दश दिन के पीछे का हो, सन्धिनी अर्थात् गर्भवती गौ का वा भैंस का न हो, बछड़े वा बछिया वाली का हो किन्तु जिस का बच्चा मर जाय उस का दूध अभक्ष्य है और पलाण्डु (प्याज) सफेद बैंगन और लाल मूली वा शलगम ॥ ६० ॥ गाजर, वृक्ष का लाल गोंद, गूलर के फल, बिना समय के फूल, इन को ब्राह्मण खावे तो चान्द्रायणव्रत प्रायश्चित्त करे ॥ ६१ ॥ वाणी से दूषित (गोभी आदि) और जिसे न जानता हो कि कैसा है, जिस से दूसरे को दुःख हो, इन को भी खाकर चान्द्रायणव्रत प्रायश्चित्त करे। भूतों को विना दिये अर्थात् भूतयज्ञ किये विना जो अन्न खाता है वह अन्न गृहस्थ को दग्ध करता है ॥ ६२ ॥ सुवर्ण चांदी कांसे के पात्रों में गृहस्थ पुरुष सदा भोजन करे पात्र न हो तो उत्तम गंध वाले लोध आदि वृक्षों के पत्तों में खावे ॥ ६३ ॥

पलाशपद्मपत्रेषु गृहस्थोभोक्तुमर्हति ।
ब्रह्मचारीयतिश्चैव श्रेयोयद्भोक्तुमर्हति ॥ ६४ ॥
अभ्युक्ष्यान्नंनमस्कारैर्भुविदद्याद्बलित्रयम् ।
भूपतयेभुवनपतये भूतानांपतयेतथा ॥ ६५ ॥
अपःप्राश्यततःपश्चात् पञ्चप्राणाहुतीःक्रमात् ।
स्वाहाकारेणजुहुयाच्छेषमद्याद्यथासुखम् ॥ ६६ ॥
अनन्यचित्तोभुञ्जीत वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।
आतृप्तेरन्नमश्नीयादशून्यंपात्रमुत्सृजेत् ॥ ६७ ॥
उच्छिष्टमन्नमुद्धृत्य ग्रासमेकंभुविक्षिपेत् ।
आचान्तःसाधुसङ्गेन सद्विद्यापठनेनच ॥ ६८ ॥
पुरावृत्तकथाभिश्च शेषाहर्मातिवाहयेत् ।

अथवा ढाक वा कमल के पत्तों की पत्तल पर भोजन करे, ब्रह्मचारी और यति (संन्यासी) भी उक्त पत्तों में खाय तो श्रेष्ठ है किन्तु धातु पात्र उन के योग्य नहीं हैं ॥ ६४ ॥ अन्न के मन्त्र और प्रदक्षिण क्रम से जल सेचन करके नमस्कार सहित पृथ्वी में तीन बलि नाम ग्रास प्राक्संस्थ धरे जैसे–भूपतये नमः । भुवनपतये नमः । भूतानांपतये नमः ॥ ६५ ॥ फिर (ओममृतोपस्तरणमसि स्वाहा) इस मन्त्र से आचमन करके पांच(१) प्राणों के लिये पांच आहुति स्वाहा कहकर क्रम से मुख में देवे और फिर सुखपूर्वक शेष अन्न को खावे ॥ ६६ ॥ मौन होकर अन्न की निन्दा न करता हुआ मनुष्य एकाग्र मन करके तृप्ति पर्यन्त भोजन करे और पात्र को खाली न छोड़े किन्तु कम से कम एक दो ग्रास पात्र में अवश्य छोड़ देवे ॥ ६७ ॥ उच्छिष्ट अन्न में से एक ग्रास उठा कर भोजनपात्र से वांयी ओर (मद्भुक्तोच्छिष्ट०) मन्त्र पढ़ के पितृ तीर्थ से धरे इस का नाम पित्राहुतिहै । फिर (अमृतापिधान०) मन्त्र से आचमन करके साधुओंकी संगति,उत्तम विद्याके पढ़ने ॥६८॥ और प्राचीन इतिहासोंकी उत्तम कथाओं से शेष दिनको बितावे और भृत्यों (स्त्री पुत्रादि) सहित गृहस्थ पुरुष

---

(१)——प्राणाय स्वाहा । (१) —— ओं अपानाय स्वाहा । (२)—— ओं व्यानाय स्वाहा । (३)—— ओं उदानाय स्वाहा । (४) ——ओं समानाय स्वाहा ॥ ५——

सायंसन्ध्यामुपासीत हुत्वाग्निंभृत्यसंयुतः ॥ ६९ ॥
आपोशानक्रियापूर्वमश्नीयादन्वहंद्विजः ।
सायमप्यतिथिःपूज्यो होमकालागतोद्विजः ॥ ७० ॥
श्रद्धयाशक्तितोनित्यं श्रुतंहन्यादपूजितः ।
नातितृप्तउपस्पृश्य प्रक्षाल्यचरणौशुचिः ॥ ७१ ॥
अप्रत्यगुत्तरशिराः शयीतशयनेशुभे ।
शक्तिमानुचितेकाले स्नानंसन्ध्यांनहापयेत् ॥ ७२ ॥
ब्राह्मेमुहूर्तेचोत्थाय चिन्तयेद्धितमात्मनः ।
शक्तिमान्मतिमान्नित्यं व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ ७३ ॥
इतिश्रीवेदव्यासीयेधर्मशास्त्रेगृहस्थान्हिकोनामतृतीयोध्यायः॥३॥
इतिव्यासकृतंशास्त्रं धर्मसारसमुच्चयम् ।
आश्रमेयानिपुण्यानि मोक्षधर्माश्रितानिच ॥ १ ॥
गृहाश्रमात्परोधर्मो नास्तिनास्तिपुनःपुनः ।

अग्निहोत्र करके सायंकाल की सन्ध्या करे ॥६९॥ आपोशान क्रिया (भोजन से पहिले उपस्तरणरूप आचमन) करके द्विज पुरुष नित्य भोजन करे। होम के समय आये ब्राह्मण अतिथि का सायंकाल में भी सदैव पूजन करे ॥७०॥ श्रद्धा और शक्ति के अनुसार यदि अतिथि का पूजन न किया जाय तो वह वेदपाठ को नष्ट (निष्फल) करता है। अत्यन्त तृप्त नहो किन्तु लघु भोजन कर आचमन करके चरणों को धोकर ॥ ७१ ॥ उत्तम शय्या पर सोवे परन्तु पश्चिम वा उत्तर दिशा में शिर न करे। समर्थ (नीरोग) हो तो सूर्योदय के समय स्नान, सन्ध्या को कभी न छोड़े ॥ ७२ ॥ ब्राह्म मुहूर्त [४ घड़ी रात से] में उठकर अपने हित की चिन्ता करे। शक्ति और बुद्धि वाला मनुष्य इस व्रत (नियम) को नित्य २ सेवन करे ॥ ७३ ॥

यह वेदव्यासीय धर्मशास्त्र में गृहस्थ के नित्यकर्म विषय में तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥३॥

धर्म के सार का है संग्रह जिस में ऐसा यह वेदव्यास जी का बनाया धर्मशास्त्र है। सब आश्रमों में जो पुण्य हैं और जो पुण्य मोक्ष के धर्मों में हैं वे सब गृहाश्रम में प्राप्त हो सकते हैं ॥१॥ सब आश्रमों में गृहस्थ आश्रम

सर्वतीर्थफलंतस्य यथोक्तंयस्तुपालयेत् ॥ २ ॥
गुरुभक्तोभृत्यपोषी दयावाननसूयकः ।
नित्यजापीचहोमीच सत्यवादीजितेन्द्रियः ॥ ३ ॥
स्वदारेयस्यसन्तोषः परदारनिवर्त्तनम् ।
अपवादोऽपिनोयस्य तस्यतीर्थफलंगृहे ॥ ४ ॥
परदारान्परद्रव्यं हरतेयोदिनेदिने ।
सर्वतीर्थाभिषेकेण पापंतस्यननश्यति ॥ ५ ॥
गृहेषुसेवनीयेषु सर्वतीर्थफलंततः ।
अन्नदस्यत्रयोभागाः कर्त्ताभागेनलिप्यते ॥ ६ ॥
प्रतिश्रयंपादशौचं ब्राह्मणानांचतर्पणम् ।
नपापंसंस्पृशेत्तस्य बलिंभिक्षांददातियः ॥ ७ ॥
पादोदकंपादघृतं दीपमन्नंप्रतिश्रयम् ।

से परे धर्म नहीं है । जो गृहस्थ पुरुष अपने धर्म का पूरा २ शास्त्रानुसार पालन करे उसको संपूर्ण तीर्थों का फल घर में ही मिल जाता है ॥२॥ गुरु का भक्त, स्त्री पुत्रादि भृत्यों का पालन करने वाला, दया करने वाला, जो किसी की निन्दा नहीं करता जो नित्य २ जप और होम करता सत्य बोलता और जितेन्द्रिय रहता है ॥ ३ ॥ अपनी स्त्री में ही जिस को सन्तोष हो, अन्य की स्त्री से निवृत्ति हो, जिस की निन्दा बुराई कोई न करता हो उस मनुष्य को घर में भी तीर्थ का फल मिलता है ॥ ४ ॥ पराई स्त्री और पराये धन को जो दिन पर दिन भोगता है सब तीर्थों के स्नान से भी उस का पाप नष्ट नहीं होता ॥ ५ ॥ तिस से सेवन करने योग्य उत्तम धर्मों वाले घरों में सब तीर्थों का फल होता है । पुण्य के तीन भाग उस को मिला करते हैं कि जिस के अन्न से श्राद्ध आदि किया जाय और जो उक्त कर्मों को करता है उस को एक भाग फल मिलता है ॥ ६ ॥ नम्रता, वा पगों का धोना, ब्राह्मणों को तृप्त करना बलि-वैश्वदेव, और भिक्षा देना इन कामों को जो नित्य २ करता है उस मनुष्य को पाप नहीं लगता ॥ ७ ॥ पग धोने का जल, पादघृत (जूता वा खड़ाम्-पादुका,) दीपक, अन्न, घर, ये वस्तु जो ब्राह्मणों को देता है उस के पास

योददातिब्राह्मणेभ्यो नोपसर्पतितंयमः ॥ ८ ॥
विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठतिमेदिनी ।
तावत्पुष्करपात्रेषु पिबन्तिपितरोऽमृतम् ॥ ९ ॥
यत्फलंकपिलादाने कार्तिक्यांज्येष्ठपुष्करे ।
तत्फलंऋषयःश्रेष्ठा विप्राणांपादशौचने ॥ १० ॥
स्वागतेनाग्नयःप्रीता आसनेनशतक्रतुः ।
पितरःपादशौचेन अन्नाद्येनप्रजापतिः ॥ ११ ॥
मातापित्रोःपरंतीर्थं गङ्गागावोविशेषतः ।
ब्राह्मणात्परमंतीर्थं नभूतन्नभविष्यति ॥ १२ ॥
इन्द्रियाणिवशीकृत्य यत्रयत्रवसेन्नरः ।
तत्रतत्रकुरुक्षेत्रं नैमिषंपुष्कराणिच ॥ १३
गङ्गाद्वारंचकेदारं सन्निहत्यांतथैवच ।
एतानिसर्वतीर्थानि कृत्वापापैःप्रमुच्यते ॥ १४ ॥
वर्णानामाश्रमाणांच चातुर्वर्ण्यस्यभोद्विजाः ।

यमराज नहीं आता ॥ ८ ॥ ब्राह्मणों के पगों के जल से गीली की हुई पृथ्वी जब तक रहती है तब तक पुष्कर तीर्थ के पत्तों में पितर लोग अमृत पीते हैं ॥ ९ ॥ जो फल कपिला गौ के दान का है और जो फल कार्तिक की पूर्णिमा को पुष्कर के स्नान का है। हे श्रेष्ठ ऋषि लोगो ! वही फल ब्राह्मणों के पग धोने में हैं ॥ १० ॥ विद्वान् ब्राह्मणों वा विरक्त संन्यासियों के स्वागत (आपने बड़ी कृपाकी आइये ! इत्यादि कहना) से अग्नि, आसन के देने से इन्द्र, पग धोने से पितर, और अन्न आदि के देने से ब्रह्मा, प्रसन्न होते हैं ॥ ११ ॥ माता पिता की सेवा करना परम तीर्थ है। विशेष कर गङ्गा गौ तीर्थ हैं और ब्राह्मणों से अधिक तीर्थ न हुआ न होगा ॥ १२ ॥ जो मनुष्य इन्द्रियों को वश में करके जिस २ आश्रम में बसता है उस के लिये वहां २ कुरुक्षेत्र–नैमिष–और पुष्कर ॥ १३ ॥ हरिद्वार, केदार, संनिहत्या–इत्यादि तीर्थ हैं वह इन सब तीर्थों को करके सब पापों से छूट जाता है ॥ १४ ॥

हे ऋषियो ब्राह्मणो ! चारों वर्ण और आश्रमों के दान धर्म को व्यास

दानधर्मंप्रवक्ष्यामि यथाव्यासेनभाषितम् ॥ १५ ॥
यद्ददातिविशिष्टेभ्यो यच्चाश्नातिदिनेदिने ।
तच्चवित्तमहंमन्ये शेषंकस्यापिरक्षति ॥ १६ ॥
यद्ददातियदश्नाति तदेवधनिनोधनम् ।
अन्येमृतस्यक्रीडन्ति दारैरपिधनैरपि ॥ १७ ॥
किंधनेनकरिष्यन्ति देहिनोऽपिगतायुषः ।
यद्वर्द्धयितुमिच्छन्तस्तच्छरीरमशाश्वतम् ॥ १८ ॥
अशाश्वतानिमित्राणि विभवोनैवशाश्वतः ।
नित्यंसन्निहितोमृत्युः कर्तव्योधर्मसंग्रहः ॥ १९ ॥
यदिनामनधर्माय नकामायनकीर्तये ।
यत्परित्यज्यगन्तव्यं तद्धनंकिंनदीयते ॥ २० ॥
जीवन्तिजीविनेयस्य विप्रामित्राणिबान्धवाः ।
जीवितंसफलंतस्य आत्मार्थेकोनजीवति ॥ २१ ॥
कृमयःकिंनजीवन्ति भक्षयन्तिपरस्परम् ।

जी के कहने के अनुसार कहते हैं ॥ १५ ॥ जो उत्तम विद्वान् धर्मात्माओं को देता है वा नित्य २ जो खाता है उस को ही उस का धन मानते हैं और शेष किसी अन्य के ही धन को वह रक्षा करता है ॥१६॥ जितना दान देता है या जितना भोग कर लेता है वही धनी का धन है। क्योंकि उस के मर जाने पर उस के स्त्री तथा धन से अन्य लोग ही आनन्द भोगते हैं ॥१७॥ बुड्ढे हुए देहधारी मनुष्य धन से क्या करेंगे. जिस शरीर को धन से बढ़ाया वा हृष्ट पुष्ट किया चाहते हैं वह भी अनित्य है ठहरने वाला नहीं मित्र और धन सदैव नहीं रहते और मृत्यु नित्य ही समीप में खड़ा है इस से धर्म का सञ्चय करना चाहिये ॥ १९ ॥ जो धन धर्म के लिये काम (भोग) के लिये और कीर्ति के लिये नहो और जिस धन को यहां छोड़कर परलोक जाना है उस धन को क्यों नहीं दिया जाता ? ॥ २० ॥ जिस मनुष्य के जीवित रहने से ब्राह्मण, मित्र, बांधव (कुटुम्बी) लोगों की जीविका (उपकार) हो उस का जीवन सफल है। अपने लिये कौन नहीं जीता है ? ॥ २१ ॥ कृमिकीट

परलोकाविरोधेन योजीवतिसजीवति ॥ २२ ॥
पशवोऽपिहिजीवन्ति केवलात्मोदरम्भराः।
किंकायेनसुगुप्तेन बलिनाचिरजीविना ॥ २३ ॥
ग्रासादर्द्धमपिग्रासमर्थिभ्यःकिंनदीयते ।
इच्छानुरूपोविभवः कदाकस्यभविष्यति ॥ २४ ॥
अदातापुरुषस्त्यागी धनंसन्त्यज्यगच्छति।
दातारंकृपणंमन्ये मृतोऽप्यर्थंनमुञ्चति ॥ २५ ॥
प्राणनाशस्तुकर्तव्यो यःकृतार्थोनसोमृतः ।
अकृतार्थस्तुयोमृत्युं प्राप्तःखरसमोहिसः॥ २६ ॥
अनाहूतेषुयद्दत्तं यच्चदत्तमयाचितम् ।
भविष्यतियुगस्यान्तस्तस्यान्तोनभविष्यति ॥ २७ ॥

पतङ्गादि भी क्या जीवन का निर्वाह नहीं करते ? कि जो एक दूसरे को खा लेते हैं। परन्तु परलोक के लिये दान पुण्य करता हुआ जो पुरुष जीता है उसी का जीवन सार्थक है ॥ २२ ॥ केवल अपने पेट भरने वाले तो पशु भी जीते हैं। भली प्रकार रक्षा किये बलवान् बहुत जीने वाले. शरीर से मनुष्यों को क्या फल है ? ॥ २३ ॥ ग्रास वा आधाग्रास अन्न मांगने वाले भिक्षुक को क्यों नहीं देता ?। इच्छा के अनुसार धन कब किस के हो जायगा? अर्थात् इतना धन कभी किसी के न होगा जिस से तृष्णा पूरी हो जावे ॥२४॥ हमारी राय में किसी को कुछ भी न देने वाला पुरुष ही त्यागी क्योंकि वह धन को छोड़ कर मर जाता है। परन्तु हम दाता को कृपण मानते हैं क्योंकि दाता मर कर भी धन को नहीं छोड़ता अर्थात् मरे पर भी उसे धन दान का पुण्य फल उत्तम ऐश्वर्य भोग मिलता है ॥ २५ ॥ प्राणों का नाश तो होना ही है परन्तु अपना काम दान पुण्यादि धर्म करके जो मरा है वह जानो नहीं मरा और जो अकृतार्थ (धर्म किये विना) मरता है वह गधे के समान है ॥ २६ ॥ विन बुलाये ब्राह्मण के घर जाकर और विन मांगे जो दान दिया जाता है युग नाम काल का तो अन्त होगा परन्तु उस दान के फल का अन्त नहीं होगा ॥ २७ ॥

मृतवत्सायथागौश्च कृष्णालोभेनदुह्यते ।
परस्परस्यदानानि लोकयात्रानधर्मतः ॥ २८ ॥
अदृष्टेचाशुभेदानं भोक्ताचैवनदृश्यते ।
पुनरागमनंनास्ति तत्रदानमनन्तकम् ॥ २९ ॥
मातापितृषुयद्दद्याद् भ्रातृषुश्वशुरेषुच ।
जायापत्येषुयद्दद्यात् सोनन्तःस्वर्गसंक्रमः ॥ ३० ॥
पितुःशतगुणंदानं सहस्रंमातुरुच्यते ।
भगिन्यांशतसाहस्रं सोदरेदत्तमक्षयम् ॥ ३१ ॥
इन्दुक्षयःपिताज्ञेयो माताचैवतिथिक्षयः ।
संक्रान्तिर्भगिनीचैव व्यतीपातःसहोदरः ॥ ३२ ॥
अहन्यहनिदातव्यं ब्राह्मणेषुमुनीश्वराः ! ।

मर गया है बछड़ा जिस का ऐसी काली गौ का जो दूध के लोभ से दुहते हैं अर्थात् बच्चा मर जाने पर अथवा गाभिन [गर्भिणी] हो जाने पर गौ को दुहना शास्त्र से निषिद्ध है । वह दूध भी अभक्ष्य है। इसी प्रकार परस्पर का जो दान (रीति वा व्योहार) है वह लोक रीति है धर्म नहीं ॥२८॥ जो मनुष्य पाप को न देखकर (अर्थात् किसी पाप के नाश के लिये न दे) वा दान के भोक्ता को न देखे (यह न चाहे कि इस दान का फल मुझे मिले) और यह भी न चाहे कि फिर मैं जगत् में आऊंगा ऐसे समय में दान का फल अनन्त है अर्थात् किसी कामना से जो न किया जाय वही दान सब से उत्तम है ॥२९॥ माता पिता भाई श्वशुर स्त्री पुत्र वा पुत्री इन को जो दिया जाय वह भी ऐसे स्वर्ग में पहुंचाता है जिस का अन्त नहीं है ॥ ३० ॥ पिता को देना सौगुना, माता को हजार गुना, भगिनी (बहिन) को देना लाख गुना होता है और भाई को जो दिया जाय उस का कभी भी नाश नहीं होता किन्तु उस का अक्षय फल है ॥ ३१ ॥ पिता को देने से अमावास्या के दान के तुल्य पुण्य होता, माता को देने से जिस तिथि की हानि हो उस के तुल्य, बहन को देने से संक्रान्ति के तुल्य और सगे भाई को देने से व्यतीपात योग में दिये दान के तुल्य पुण्य होता है ॥ ३२ ॥ हे मुनीश्वरो ! सुपात्र ब्राह्मण को नित्य २ दान देना चाहिये क्योंकि जो कभी कोई तपस्वी सुपात्र

आगमिष्यतियत्पात्रं तत्पात्रंतारयिष्यति ॥ ३३ ॥
किञ्चिद्वेदमयंपात्रं किञ्चित्पात्रंतपोमयम् ।
पात्राणामुत्तमंपात्रं शूद्रान्नंयस्यनोदरे ॥ ३४ ॥
यस्यचैवगृहेमूर्खो दूरेचापिगुणान्वितः ।
गुणान्वितायदातव्यं नास्तिमूर्खेव्यतिक्रमः ॥ ३५ ॥
देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेनच ।
कुलान्यकुलतांयान्ति ब्राह्मणातिक्रमेणच ॥ ३६ ॥
ब्राह्मणातिक्रमोनास्ति विप्रेवेदविवर्जिते ।
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य नहिभस्मनिहूयते ॥ ३७ ॥
सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणंयोव्यतिक्रमेत् ।
भोजनेचैवदानेच हन्यात्त्रिपुरुषंकुलम् ॥ ३८ ॥
यथाकाष्ठमयोहस्ती यथाचर्ममयोमृगः ।

सिद्ध योगी महात्मा आजायगा वह दाता को संसारसागर से पार कर देगा ॥ ३३ ॥ कोई सुपात्र तो वेदपाठी वा कोई तपस्वी होता है और सब सुपात्रों में उत्तम सुपात्र वह है जिस के पेट में शूद्र का अन्न न गया हो ॥ ३४ ॥ जिस के घर के समीप में तो मूर्ख ब्राह्मण हो और गुणी सुपात्र दूर हो वह मनुष्य गुणी ब्राह्मण को देवे मूर्ख के उल्लंघन करने में कुछ दोष नहीं है ॥३५॥ किसी देवता के मन्दिर सम्बन्धी द्रव्य का नाश करने से ब्राह्मण के धन को किसी प्रकार मारलेने से और ब्राह्मण का उल्लंघन अपमान (तिरस्कार) करने से अच्छे कुल भी पतित नीच हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ वेद से हीन मूर्ख निन्दित कुपात्र ब्राह्मण का [दान देके आदर सत्कार न करना रूप] उलंघन, उल्लंघन नहीं है क्योंकि जलते हुए अग्नि को छोड़कर भस्म में होम नहीं किया जाता है। अर्थात् जैसे भस्म को छोड़ कर प्रज्वलित अग्नि में होम करना उचित है वैसे ही मूर्ख ब्राह्मण का उल्लंघन [छोड़] कर विद्वान् को देना चाहिये ॥३७॥ भोजन और दान में समीप के विद्वान् ब्राह्मण का जो उलंघन करता है वह तीन पीढ़ी तक अपने कुल को नष्ट करता है ॥३८॥ जैसा काठ का हाथी और जैसा चाम का मृग होता वैसा ही बिना पढ़ा मूर्ख ब्राह्मण ये तीनों नाम मात्र ही हाथी, मृग और ब्राह्मण कहाने वाले हैं अर्थात्

यश्चविप्रोऽनधीयानस्त्रयस्तेनामधारका: ॥ ३९ ॥
ग्रामस्थानंयथाशून्यं यथाकूपश्चनिर्जल: ।
यश्चविप्रोऽनधीयानस्त्रयस्तेनामधारका: ॥ ४० ॥
ब्राह्मणेषुचयद्दत्तं यच्चवैश्वानरेहुतम् ।
तद्धनंधनमाख्यातं धनंशेषंनिरर्थकम् ॥ ४१ ॥
समोद्विब्राह्मणेदानं द्विगुणंब्राह्मणब्रुवे ।
सहस्त्रगुणमाचार्य्ये ह्यनन्तंवेदपारगे ॥ ४२ ॥
ब्रह्मबीजसमुत्पन्नो मन्त्रसंस्कारवर्जित: ।
जातिमात्रोपजीवीच सभवेद्ब्राह्मण:सम: ॥ ४३ ॥
गर्भाधानादिभिर्मन्त्रैर्वेदोपनयनेनच ।
नाध्यापयतिनाधीते सभवेद्ब्राह्मणब्रुव: ॥ ४४ ॥
अग्निहोत्रीतपस्वीच वेदमध्यापयेच्चय: ।

निरर्थक हैं ॥३९॥ जैसा ग्राम का स्थान शून्य और जैसा जल से हीन कूप होता वैसा ही विन पढ़ा मूर्ख ब्राह्मण ये तीनों नाम के ही धारण करने वाले हैं अर्थात् वास्तव में वे सच्चे ग्राम, कूप और ब्राह्मण नहीं हैं ॥ ४० ॥

जो धन ब्राह्मणों को दान दिया वा जो अग्नि में होम किया है वही धन कहाता है और शेष धन इष्ट साधक न होने से व्यर्थ है ॥ ४१ ॥ सम ब्राह्मण को जितना दान दिया जाय वह सम नाम उतना ही फलदायक होता है और ब्राह्मणब्रुव को जो दान दिया जाय उस का दूना फल; आचार्य को हजार गुना और वेदपारग को दिया दान अनन्त फलवाला होता है ॥ ४२ ॥ जो ब्राह्मण के बीज से ब्राह्मण ब्राह्मणी माता पिता से पैदा हो और वेद मन्त्रों से जिस का उपनयन जातकर्मादि संस्कार न हुआ हो अर्थात् गायत्री से भी हीन हो और ब्राह्मण जाति होने से ही जीविका करे वह ब्राह्मण सम कहाता है ॥ ४३ ॥ जिस का गर्भाधान आदि के मन्त्रों से और वेदोक्त यज्ञोपवीत से संस्कार तो हुआ हो और गायत्री भी जानता हो परन्तु वेद को न पढ़े न पढ़ावे उस को ब्राह्मणब्रुव कहते हैं ॥ ४४ ॥ जो अग्निहोत्री हो, तपस्वी हो, कल्प-वेदाङ्ग और रहस्य नाम उपनिषदों के सहित वेदों को जो विना वेतन लिये

सकल्पंसरहस्यंच तमाचार्यंप्रचक्षते ॥ ४५ ॥
इष्टिभिःपशुबन्धैश्च चातुर्मास्यैस्तथैवच ।
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्येनचेष्टंसइष्टवान् ॥ ४६ ॥
मीमांसतेचयोवेदान् षड्भिरङ्गैःसविस्तरैः ।
इतिहासपुराणानि सभवेद्वेदपारगः ॥४७ ॥
ब्राह्मणायेनजीवन्ति नान्येवर्णाःकथञ्चन ।
ईदृक्पथमुपस्थाय कोऽन्यस्तंत्यक्तुमुत्सहेत् ॥ ४८ ॥
ब्राह्मणःसंभवेनैव देवानामपिदैवतम् ।
प्रत्यक्षंचैवलोकस्य ब्रह्मतेजोहिकारणम् ॥ ४९ ॥
ब्राह्मणस्यमुखंक्षेत्रं निरूषरमकण्टकम् ।
वापयेत्तत्रबीजानि साकृषिःसार्वकामिकी ॥ ५० ॥
सुक्षेत्रेवापयेद्बीजं सुपात्रेदापयेद्धनम् ।
सुक्षेत्रेचसुपात्रेच ह्युप्तंदत्तंनदुष्यति ॥ ५१ ॥

धर्मार्थ पढ़ावे उसे आचार्य कहते हैं ॥ ४५ ॥ दर्शपौर्णमासादि इष्टि,पशुबंध, चातुर्मास्य, और अग्निष्टोम आदि यज्ञों से जिसने देवताओं की पूजा की उसे इष्टवान् नाम यज्ञों का करने वाला कहते हैं ॥ ४६ ॥ अनेक ग्रन्थों में विस्तृत वेद के छः अङ्ग [व्याकरण आदि] सहित चारों वेद और इतिहास पुराणों की जो मीमांसा नाम आन्दोलन करे उसे वेदपारग कहते हैं ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण लोग जिस वेदोक्त मार्ग से जीविका करते हैं उस से अन्य वर्ण कभी नहीं जीविका करते ऐसे वेदमार्ग में ठहर कर ऐसा अन्य कौन है जो ब्राह्मण का परित्याग करे ॥४८॥ ब्राह्मण उत्पत्तिमात्र से ही देवताओं का भी देवता है और लोगों को ब्राह्मण का प्रभाव प्रत्यक्ष भी है उस का कारण ब्रह्मतेज ही है ॥ ४९ ॥ ऊपर और कांटों से रहित उत्तम खेत ब्राह्मण का मुख है उसी में बीज बोवे क्योंकि वही खेती सब कामना देने वाली है ॥ ५० ॥ अच्छे खेत में बीज बोवे और सुपात्र को धन देवे क्यों कि अच्छे खेत और सुपात्र में जो अन्न धन छोड़ा जाता है वह कभी भी दूषित वा व्यर्थ नहीं जाता ॥ ५१ ॥

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणेगृहमागते ।
क्रीडन्त्योषधय:सर्वा यास्याम:परमांगतिम् ॥ ५२ ॥
नष्टशौचेव्रतभ्रष्टे विप्रेवेदविवर्जिते ।
दीयमानंरुदत्यन्नं भयाद्वैदुष्कृतंकृतम् ॥ ५३ ॥
वेदपूर्णमुखंविप्रं सुभुक्तमपिभोजयेत् ।
नचमूर्खंनिराहारं षड्रात्रमुपवासिनम् ॥ ५४ ॥
यानियस्यपवित्राणि कुक्षौतिष्ठन्तिभोद्विजा: ।।
तानितस्यप्रयोज्यानि नशरीराणिदेहिनाम् ॥ ५५ ॥
यस्यदेहेसदाश्नन्ति हव्यानित्रिदिवौकस: ।
कव्यानिचैवपितर: किंभूतमधिकंतत: ॥ ५६ ॥
यद्भुङ्क्तेवेदविद्विप्र: स्वकर्मनिरत:शुचि: ।
दातु:फलमसंख्यातं प्रतिजन्मतदक्षयम् ॥ ५७ ॥

विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण यदि अपने घर आवे तो उस समय सब औषधी [अन्न आदि] क्रीड़ा करती [आनन्द मनाती] हैं कि हम परम गति को प्राप्त होंगी ॥ ५२ ॥ शास्त्रानुकूल शुद्धि न करके मलिन रहने सन्ध्यादि कर्म को नियम से न करने वाले तथा वेद से शून्य ब्राह्मण को दिया हुआ अन्न भय से रोता है कि इस दाता ने बुरा किया जो हम को ऐसे गुण कर्म हीन मूर्ख ब्राह्मण के उदर में पहुंचाया ॥ ५३ ॥ वेद के पठन पाठन से भरा है मुख जिस का ऐसे भोजन से तृप्त ब्राह्मण को भी जिमावे और छः दिन के उपासे भी निराहार मूर्ख ब्राह्मण को न जिमावे ॥ ५४ ॥ हे ऋषि लोगो ! जिस मनुष्य का जो पवित्र वस्तु (अन्न आदि) जिस विद्वान् के उदर में ठहरे वह वस्तु ही उसको देना चाहिये अन्यथा देह धारियों का देह किसी प्रयोजन का नहीं है ॥ ५५ ॥ जिस ब्राह्मण के देह में देवता लोग हव्य और पितर लोग कव्य सदैव खाते हैं उससे परे अन्य कौन प्राणी हो सकता है ? अर्थात् उस से उत्तम अन्य कोई नहीं है ॥ ५६ ॥ वेद का ज्ञाता और अपने धर्म कर्म में तत्पर ब्राह्मण जो खाता है दाता को उसका फल असंख्य होता और जन्म जन्म में वह अक्षय अविनाशी होता है ॥ ५७ ॥

हस्त्यश्वरथयानानिकेचिदिच्छन्तिपण्डिताः ।
अहंनेच्छामिमुनयः ! कस्यैताःसस्यसम्पदः ॥ ५८ ॥
वेदलाङ्गलकृष्टेषु द्विजश्रेष्ठेषुसत्सुच ।
यत्पुरापातितंबीजं तस्यैताःसस्यसम्पदः ॥ ५९ ॥
शतेषुजायतेशूरः सहस्रेषुचपण्डितः ।
वक्ताशतसहस्रेषु दाताभवतिवानवा ॥ ६० ॥
नरणेविजयाच्छूरोऽध्ययनान्नचपण्डितः ।
नवक्तावाक्पटुत्वेन नदाताचार्थदानतः ॥ ६१ ॥
इन्द्रियाणांजयेशूरो धर्मंचरतिपण्डितः ।
हितप्रियोक्तिभिर्वक्ता दातासन्मानदानतः ॥ ६२ ॥
यस्त्वेकपङ्क्त्यांविषमन्ददाति स्नेहाद्भयाद्वायदिवार्थहेतोः ।

हाथी, घोड़ा, रथ यान पालकी आदि इन को कोई पण्डित अच्छा कहते हैं परन्तु हे मुनियो ! हम नहीं चाहते क्योंकि ये हाथी आदि किस कर्म की सम्पदा [फल] हैं ? ॥५८॥ वेद रूप हल से जुते जो सत्पात्र ब्राह्मणों के उत्तम शरीर उन में जो पूर्व जन्म में बीज बोया गया था उसी खेती की ये हाथी घोड़ा आदि संपदा [फल] हैं ॥५९॥ सौ १०० में एक शूरवीर, हज़ार में एक पण्डित–और लाख में एक वक्ता [जो वेदादि शास्त्र के गूढ़ विषय को ठीक २ वर्णन कर सके] होता है और लाखों में भी दाता होना दुर्लभ है ॥ ६० ॥ रण में जीत जाने से शूर नहीं होता–वेदादि के पढ़ने मात्र से पण्डित नहीं होता–वाणी की चतुराई मात्र से लिफाफे दार बनावटी व्याख्यान देने वाला वक्ता नहीं होता और धन के देने मात्र से दाता नहीं होता ॥ ६१ ॥ किन्तु इन्द्रियों को जो जीते वह शूर, शास्त्रोक्त धर्म कर्म को जो ठीक २ करै वह पण्डित-वेदानुकूल हित का उपदेश जो प्रिय वाणी से कहे वह वक्ता– और श्रद्धा तथा सन्मान पूर्वक जो दान दे वह दाता होता है ॥ ६२ ॥ स्नेह प्रीति से, भय से, वा धन आदि के लोभ से जो एक पंक्ति में बैठे ब्राह्मणों को विषम न्यूनाधिक परोसता है वा किसी को उत्तम किसी को निकृष्ट भोज्य वस्तु देता है वह ब्रह्म हत्या का दोषी मुनियों ने कहा है यह बात

वेदेषुदृष्टंऋषिभिश्चगीतं तद्ब्रह्महत्यांमुनयोवदन्ति॥६३॥
ऊषरेवापितंवीजं भिन्नभाण्डेषुगोदुहम्।
हुतंभस्मनिहव्यंच मूर्खेदानमशाश्वतम् ॥ ६४ ॥
मृतसूतकपुष्टाङ्गो द्विजःशूद्रान्नभोजने।
अहमेवंनजानामि कांयोनिंसगमिष्यति ॥ ६५ ॥
शूद्रान्नेनोदरस्थेन यदिकश्चिन्म्रियेतयः।
सभवेत्सूकरोनूनं तस्यवाजायतेकुले ॥ ६६ ॥
गृध्रोद्वादशजन्मानि सप्तजन्मानिसूकरः।
श्वाचैवसप्तजन्मानि इत्येवंमनुरब्रवीत् ॥ ६७ ॥
अमृतंब्राह्मणान्नेन दारिद्र्यंक्षत्रियस्यच।
वैश्यान्नेनतुशूद्रत्वं शूद्रान्नान्नरकंव्रजेत् ॥ ६८ ॥
यश्चभुङ्क्तेऽथशूद्रान्नं मासमेकंनिरन्तरम्।
इहजन्मनिशूद्रत्वं मृतःश्वाचैवजायते ॥ ६९ ॥
यस्यशूद्रापचेन्नित्यं शूद्रावागृहमेधिनी।

वेदों में भी देखी और ऋषियों ने भी कही है ॥ ६३ ॥ ऊसर में बोया बीज, फूटे पात्र में दुहा दूध, भस्म में किया होम, और मूर्ख को दिया दान ये सब अशाश्वत नाम शीघ्र नष्ट होतेहैं अर्थात् निष्फलहैं॥६४॥ मरेके सूतक में खानेसे पुष्ट हुआ है शरीर जिस का ऐसा शूद्र का भोजन करने वाला ब्राह्मण किस नीच योनि में जायगा यह हम नहीं जानते ॥ ६५ ॥ शूद्र का अन्न पेट में रहते जो ब्राह्मण मरता है वह निश्चय से या तो शूकर योनि में जन्म लेता है अथवा जिसका अन्न खाया है उस शूद्र के ही कुल में जन्म लेता है॥६६॥ बारह जन्म तक गीध पक्षी, सात जन्म तक शुअर और सात जन्म तक कुत्ता वह शूद्रान्न भोजी ब्राह्मण होता है ऐसा मनु जी ने कहा है ॥ ६७ ॥ ब्राह्मण के अन्न से अमृत देव योनि, क्षत्रिय के अन्न से दरिद्रता, वैश्य के अन्न से शूद्र होना और शूद्र के अन्न से नरक होता है ॥ ६८ ॥ जो ब्राह्मण मनुष्य एक महीने तक निरंतर शूद्र के अन्न को खाता है वह इसी जन्म में शूद्र हो जाता है और मर कर कुत्ता की योनि में होजाता है ॥६९॥ जिस के यहां शूद्रा स्त्री अन्न

वर्जितःपितृदेवैस्तु रौरवंयातिसद्द्विजः ॥ ७० ॥
भाण्डसङ्करसङ्कीर्णा नानासंकरसंकराः ।
योनिसंकरसंकीर्णा निरयंयान्तिमानवाः ॥ ७१ ॥
पङ्क्तिभेदीवृथापाकी नित्यंब्राह्मणनिन्दकः ।
आदेशीवेदविक्रेता पञ्चैतेब्रह्मघातकाः ॥ ७२ ॥
इदंव्याससमतंनित्य मध्येतव्यंप्रयत्नतः ।
एतदुक्ताचारवतः पतनंनैवविद्यते ॥ ७३ ॥

इति श्रीवेदव्यासीयधर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

समाप्तं चेदं धर्मशास्त्रम् ॥

(रसोई) को बनावें अथवा जिस की स्त्री शूद्रा हो वह ब्राह्मण पितर और देवताओं से वर्जित हुआ नरक में जाता है ॥ ७० ॥ पात्रों के संकर दोष से जो संकीर्ण हैं चाहे जिसके पात्रसे खालें वा जल पीलें अनेक नीच वर्ण संकरों से जिन का मेल है और योनिसंकर दोष से भी जो संकीर्ण हैं अर्थात् चाहे जिसे विवाहलें वा नीच औरत को भी घरमें रखलें इतने मनुष्य नरकमें जाते हैं ॥ ७१ ॥ पंक्ति में जो भेद करे [न्यूनाधिक परोसे] वृथा पाकी जो पञ्चमहा यज्ञ न करे, अपना उदर भरने के लिये ही अन्न पकावे. ब्राह्मणों की सदैव निन्दा करे और जो आज्ञा को करे (सेवक नौकर हो) और वेद को जो बेंचे अर्थात् द्रव्य के लोभ से पढ़ावे या जपे ये पांच ब्रह्महत्या के दोषी हैं ॥७२॥ इस व्यास जी के मत को यत्न से नित्य पढ़े इस में कहे हुए आचरणों को जो करता है उस का पतन (नरक में जाना) नहीं हो सकता ॥ ७३ ॥

श्रीवेदव्यासीय धर्मशास्त्र का यह चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥

और यह धर्मशास्त्र भी पूरा हो गया ॥

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अथ शंखस्मृतिप्रारम्भः॥

स्वयंभुवेनमस्कृत्य सृष्टिसंहारकारिणे ।
चातुर्वर्ण्यहितार्थाय शंखःशास्त्रमकल्पयत् ॥ १ ॥
यजनंयाजनंदानं तथैवाध्यापनक्रिया ।
प्रतिग्रहंचाध्ययनं विप्रकर्माणिनिर्दिशेत् ॥ २ ॥
दानंचाध्ययनंचैव यजनंचयथाविधि ।
क्षत्रियस्यचवैश्यस्य कर्मेदंपरिकीर्तितम् ॥ ३ ॥
क्षत्रियस्यविशेषेण प्रजानांपरिपालनम् ।
कृषिगोरक्षवाणिज्यं विशश्चपरिकीर्तितम् ॥ ४ ॥
शूद्रस्यद्विजशुश्रूषा सर्वशिल्पानिचाप्यथ ।
क्षमासत्यंदमःशौचं सर्वेषामविशेषतः ॥ ५ ॥

सृष्टि और संहार करने वाले स्वयंभु ब्रह्मा जी को नमस्कार करके चारों वर्णों के कल्याण के अर्थ शंख ऋषि ने यह धर्म शास्त्र बनाया है ॥ १ ॥ यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, छः अङ्गों सहित वेद का पढ़ाना, प्रतिग्रह (दान लेना) और स्वयं साङ्ग वेद को पढ़ना ये छः कर्म ब्राह्मण के कहे हैं ॥ २ ॥ दान देना, वेद पढ़ना, विधिपूर्वक यज्ञ करना, ये तीन कर्म क्षत्रिय और वैश्य के लिये कहे हैं ॥ ३ ॥ विशेष कर क्षत्रिय का कर्म प्रजा की रक्षा करना है और वैश्य का विशेष कर्म खेती, गौओं की रक्षा, और लेन देन करना कहा है ॥ ४ ॥ शूद्र का कर्म ब्राह्मणादि तीनों द्विजों की सेवा और संपूर्ण कारीगरी कही है । क्षमा, सत्य, दम, (मन को वश में करना) शौच, ये चारों वर्णों के समान ही धर्मानुकूल कर्त्तव्य कर्म हैं ॥ ५ ॥

ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यस्त्रयोवर्णाद्विजातयः ।
तेषांजन्मद्वितीयन्तु विज्ञेयंमौञ्जिबन्धनात् ॥ ६ ॥
आचार्यस्तुपिताप्रोक्तः सावित्री जननी तथा ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां मौञ्जीबन्धनजन्मनि ॥ ७ ॥
वृत्त्याशूद्रसमास्तावद्विज्ञेयास्तेविचक्षणैः ।
यावद्वेदेनजायन्ते द्विजाज्ञेयास्ततःपरम् ॥ ८ ॥

इति श्रीशाङ्खे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

गर्भस्यस्फुटताज्ञाने निषेकःपरिकीर्तितः ।
पुरातुस्पन्दनात्कार्यं पुंसवनंविचक्षणैः ॥ १ ॥
षष्ठेऽष्टमेवासीमन्तो जातेवैजातकर्मच ।
आशौचेतुव्यतिक्रान्ते नामकर्मविधीयते ॥ २ ॥
नामधेयंचकर्तव्यं वर्णानांचसमाक्षरम् ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों को द्विजाति कहते हैं । उनका दूसरा जन्म यज्ञोपवीत के समय से जानना चाहिये ॥ ६ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के यज्ञोपवीत सम्बन्धी द्वितीय जन्म में आचार्य तो पिता और गायत्री माता कही है ॥ ७ ॥ जब तक वैदिक संस्कार से प्रकट न हों तावत् विद्वान् लोग वर्ताव में ब्राह्मणादि तीन वर्णों को शूद्र के तुल्य जानें अर्थात् ब्राह्मणादि के साथ कहा व्यवहार उनके साथ न करें । और तदनन्तर उपनयन संस्कार हो जाने पर उनको द्विज मानना चाहिये ॥ ८ ॥

श्री शंखस्मृति के भाषानुवाद में यह प्रथम अध्याय पूरा हुआ ॥

गर्भ की जब प्रकट रूप से स्थिति प्रतीत हो उसको निषेक संस्कार (वा गर्भाधान) कहते हैं और विद्वान् लोग गर्भ के हिलने चलने से पहिले पुंसवन संस्कार करें ॥ १ ॥ छठे वा आठवें महीने में सीमन्त, पैदा होने पर जात कर्म, और सूतक शुद्धि होजाने पर नाम कर्म संस्कार करें ॥ २ ॥ और चारों वर्णों का नाम ऐसा हो जिसके अक्षर दो वा चार आदि सम हों (जैसा गङ्गाराम) और ब्राह्मण का नाम ऐसा हो जिसके उच्चारण में मङ्गल हो जैसे (शिवदत्त इत्यादि) क्षत्रिय का नाम ऐसा हो जिससे बल प्रतीत

माङ्गल्यंब्राह्मणस्योक्तं क्षत्रियस्यबलान्वितम् ॥ ३ ॥
वैश्यस्यधनसंयुक्तं शूद्रस्यतुजुगुप्सितम् ।
शर्मान्तंब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तंक्षत्रियस्यतु ॥ ४ ॥
धनान्तंचैववैश्यस्य दासान्तंचान्त्यजन्मनः ।
चतुर्थेमासिकर्तव्यं बालस्यादित्यदर्शनम् ॥ ५ ॥
षष्ठेन्नप्राशनंमासि चूडाकार्यायथाकुलम् ।
गर्भाष्टमेऽब्देकर्तव्यं ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥ ६ ॥
गर्भादेकादशेराज्ञो गर्भात्तुद्वादशेविशः ।
षोडशाब्दान्निविप्रस्य राजन्यस्यद्विविंशतेः ॥ ७ ॥
विंशतिःसचतुष्कात्तु वैश्यस्यपरिकीर्त्तितः ।
नातिवर्त्तेतसावित्रीमतऊर्ध्वंनिवर्त्तते ॥ ८ ॥
विज्ञातव्यास्त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः ।

हो (जैसा अमितौजाः । अरिन्दमः । इत्यादि) ॥ ३ ॥ वैश्य का नाम ऐसा हो जिसका अर्थ धन से युक्त हो (जैसा धनसुखराम । लक्ष्मीचन्द्र । इत्यादि) शूद्र का नाम ऐसा हो जिसमें निन्दा प्रतीत हो (जैसा देवदास कटजक, तुषजक इत्यादि) ब्राह्मण के नाम के पीछे शर्म क्षत्रिय के नाम के पीछे वर्म्म ॥ ४ ॥ वैश्य के नाम के अन्त में धन वा गुप्त शब्द रहे और शूद्र के नाम के अन्त में दास हो । चौथे महीने में बालक को सूर्य का दर्शन करावे इसी का नाम निष्क्रमण संस्कार है ॥ ५ ॥ छठे महीने में अन्न प्राशन संस्कार करावे और मुण्डन संस्कार कुल रीति के अनुसार जन्म से पहिले वा तीसरे वर्ष में [चाहे जब] करे । गर्भ से आठवें वर्ष ब्राह्मण का यज्ञोपवीत ॥ ६ ॥ गर्भ से ग्यारहवें वर्ष क्षत्रिय का, गर्भ से बारहवें वर्ष वैश्य का, उपनयन संस्कार करें । ब्राह्मण को सोलह वर्ष तक क्षत्रिय को बाईस वर्ष तक ॥ ७ ॥ और वैश्य को चौबीस वर्ष तक शास्त्र में कही हुई सावित्री गुरु मन्त्र के ग्रहण का नियत काल है । इस से आगे मन्त्राधिकार निवृत्त हो जाता है ॥ ८ ॥ अपने २ काल के अनुसार नहीं हुआ है संस्कार जिन का ऐसे ये ब्राह्मणादि तीनों वर्ण सावित्री से पतित और सम्पूर्ण धर्मों से

सावित्रीपतिताव्रात्याः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ ९ ॥
मौञ्जीज्याबल्वजानांतु क्रमान्मौञ्ज्यःप्रकीर्तिताः ।
मार्गवैयाघ्रबास्तानि चर्माणिब्रह्मचारिणाम् ॥ १० ॥
पर्णपिप्पलबिल्वानां क्रमाद्दण्डाःप्रकीर्तिताः ।
केशदेशललाटास्य तुल्याःप्रोक्ताःक्रमेणतु ॥ ११ ॥
अवक्रास्सत्वचस्सर्वे नाग्निदग्धास्तथैवच ।
वस्त्रोपवीतेकार्पासक्षौमोर्णानांयथाक्रमम् ॥ १२ ॥
आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम् ।
भैक्षस्याचरणंप्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १३ ॥
इति श्री शाङ्खे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
उपनीयगुरुःशिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ।
आचारमग्निकार्यंच संध्योपासनमेवच ॥ १ ॥

बहिष्कृत [अनाधिकारी] व्रात्य हो जाते हैं अर्थात् शूद्र वत् हो जाते हैं॥९॥ मूंज, मूर्वा (तृणविशेष) और शण इन की क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों की मेखला (कंधनी) और मृग व्याघ्र बकरा इन के चर्म तीनों ब्रह्मचारियों के लिये क्रम से कहे हैं ॥ १० ॥ ढांक पीपल बेल इन वृक्षों के दण्ड तीनों वर्णों के लिये क्रम से कहे हैं । केशों तक ब्राह्मण का, माथे तक क्षत्रिय का और मुख तक वैश्य ब्रह्मचारी का दण्ड रहे ॥ ११ ॥ वे दण्ड टेढ़े न हों त्वचा [वक्कल] सहित हों; तथा अग्नि से जले न हों । ब्राह्मण के वस्त्र तथा जनेऊ कपास के, क्षत्रिय के अतसी के और वैश्य के ऊन के होने चाहिये ॥ १२ ॥ भिक्षा मांगने के समय ब्राह्मण ब्रह्मचारी (भवति भिक्षां देहि) ऐसा वाक्य कहे । क्षत्रिय (भिक्षां भवति देहि) ऐसा कहे और वैश्य (भिक्षां देहि भवति) ऐसा वाक्य कहे ॥ १३ ॥

यह शङ्ख स्मृति के भाषानुवाद में द्वितीय अध्याय पूरा हुआ ॥

गुरु शिष्य को यज्ञोपवीत कराकर प्रथम शौच [मल मूत्र के त्यागादि समय कैसे २ शुद्धि करे] आचार [धर्मानुकूल व्यवहार] अग्नि कार्य (नित्य सायंप्रातःकाल का समिदाधान) और सन्ध्योपासन की शिक्षा दे (सिखावे) ॥१॥

सगुरुर्यःक्रियाःकृत्वा वेदमस्मैप्रयच्छति ।
भृतकाध्यापकोयस्तु उपाध्यायःसउच्यते ॥ २ ॥
मातापितागुरुश्चैव पूजनीयास्सदानृणाम् ।
क्रियास्तस्याफलाः सर्वायस्यैतेनादृतास्त्रयः ॥ ३ ॥
प्रयतःकल्यउत्थाय स्नातोहुतहुताशनः ।
कुर्वीतप्रणतोभक्त्या गुरूणामभिवादनम् ॥ ४ ॥
अनुज्ञातस्तुगुरुणा ततोऽध्ययनमाचरेत् ।
कृत्वाब्रह्माञ्जलिंपश्यन् गुरोर्वदनमानतः ॥ ५ ॥
ब्रह्मावसानेप्रारम्भे प्रणवंचप्रकीर्तयेत् ।
अनध्यायेष्वध्ययनं वर्जयेच्चप्रयत्नतः ॥ ६ ॥
चतुर्दशींपञ्चदशीमष्टमींराहुसूतकम् ।
उल्कापातंमहीकम्पमाशौचंग्रामविप्लवम् ॥ ७ ॥
इन्द्रप्रयाणंश्वरुतं सर्वसंघातनिःस्वनम् ।

जो शिष्य को कर्म [जनेऊ आदि] कराकर वेद पढ़ावे उसे गुरु कहते हैं। और जो कुछ द्रव्य मासिक वेतन लेकर पढ़ावे उसे उपाध्याय कहते हैं ॥ २ ॥ माता पिता और गुरु इन तीनों की मनुष्यों को सदा सेवा पूजा करनी चाहिये क्योंकि जिस पुत्र वा शिष्य ने इन तीनों का आदर सत्कार नहीं किया उस के सब पुण्य कर्म निष्फल से हैं ॥३॥ प्रातःकाल सावधान हो नियम से उठ कर स्नान और होम करके नम्रता से गुरुओं को अभिवादन करै ॥ ४ ॥ फिर गुरु की आज्ञा लेकर दोनों हाथ जोड़ के और गुरु के मुख को देखता हुआ नम्र होकर वेद का अध्ययन करै ॥५॥ वेद पढ़ने के प्रारम्भ समय और अन्त में (जब पढ़ चुके) ओंकार का उच्चारण करै। और अनध्यायों [अमावास्या, अष्टमी, पौर्णमासी, चतुर्दशी आदि दिनों] में कदापि वेद को न पढ़े ॥ ६ ॥ चौदश, पूर्णिमा, अष्टमी, ग्रहण, उलकापात, बिजली का तड़पना, भूकम्प अशौच (जन्म मरण का सूतक) ग्राम का उपद्रव ॥ ७ ॥ इन्द्रप्रयाण (वर्षाकाल के इन्द्र धनुष का) दर्शन, कुत्ते का रोना, बहुतों के समूह का शब्द, बाजों का कोलाहल और युद्ध इन (चौदश आदि) अन-

वाद्यकोलाहलंयुद्धमनध्यायान्विवर्जयेत् ॥ ८ ॥
नाधीयीताभियुक्तोपि यानगोनचनौगतः ।
देवायतनवल्मीकश्मशानशवसन्निधौ ॥ ९ ॥
भैक्षचर्यांतथाकुर्याद् ब्राह्मणेषुयथाविधि ।
गुरुणाचाप्यनुज्ञातः प्राश्नीयात्प्राङ्मुखःशुचिः ॥ १० ॥
हितंप्रियंगुरोःकुर्यादहंकारविवर्जितः ।
उपास्यपश्चिमांसंध्यां पूजयित्वाहुताशनम् ॥ ११ ॥
अभिवाद्यगुरुंपश्चाद् गुरोर्वचनकृद्भवेत् ।
गुरोःपूर्वंसमुत्तिष्ठेच्छयीतचरमंतथा ॥ १२ ॥
मधुमांसाञ्जनंश्राद्धं गीतंनृत्यंचवर्जयेत् ।
हिंसांपरापवादंच स्त्रीलीलांचविशेषतः ॥ १३ ॥
मेखलामजिनंदण्डं धारयेच्चविशेषतः ।
अधःशायीभवेन्नित्यं ब्रह्मचारीसमाहितः ॥ १४ ॥
एवंव्रतंतुकुर्वीत वेदस्वीकरणंबुधः ।

ध्यायों में वेद को न पढ़े ॥ ८ ॥ यान (सवारी) पर चढ़ा नाव में बैठा और देवमन्दिर, बामी, श्मशान (मरघट) मुर्दा इन के समीप में बैठ कर वेदको न पढ़े ॥ ९ ॥ ब्राह्मण ब्रह्मचारी विशेष कर गृहस्थ ब्राह्मण के घर पूर्वोक्त विधि के सहित भिक्षा मांगे । गुरु की आज्ञा लेकर पूर्व को मुख करके शुद्धता से भोजन करै ॥ १० ॥ अहंकार को छोड़ कर गुरु का प्रिय काम और हितकारी कर्म करै और सायंकाल की संध्या और अग्नि में समिदाधान कर के ॥ ११ ॥ फिर गुरु को अभिवादन करके गुरु जो आज्ञा करैं उसे करै और गुरु से पहिले उठे और पीछे सोवै ॥ १२ ॥ मधु (सहत वा मदिरा), मांस, आंखों में अंजन वा सुरमा लगाना, श्राद्ध का भोजन, नाचना, गाना, बजाना, हिंसा, पराई निन्दा और विशेष कर स्त्रियों की लीला को छोड़देवै ॥ १३ ॥ मूंज आदि की मेखला, मृगछाला, दंड इन को विशेष कर नित्य धारण करै और ब्रह्मचारी सावधान रहता हुआ नियम से पृथिवी पर सोवै ॥ १४ ॥ वेद पढ़ने के समय विचार शील ब्रह्मचारी इस प्रकार व्रत नियम आदि करै और फिर वेदाध्ययनकी समाप्ति होने पर गुरुको दक्षिणा देकर गुरुकी आज्ञा

गुरवेचधनंदत्त्वा स्नायीततदनुज्ञया ॥ १५ ॥
॥ इति श्रीशाङ्खे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ३ ॥
विन्देतविधिवद्भार्यामसमानार्षगोत्रजाम् ।
मातृतःपञ्चमींचापि पितृतस्त्वथसप्तमीम् ॥ १ ॥
ब्राह्मोदैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ।
गान्धर्वोराक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २ ॥
एषुधर्म्यास्तुचत्वारः पूर्वंयेपरिकीर्त्तिताः ।
गान्धर्वोराक्षसश्चैव क्षत्रियस्यतुशस्यते ॥ ३ ॥
संप्रार्थितःप्रयत्नेन ब्राह्मस्तुपरिकीर्त्तितः ।
यज्ञस्थायर्त्विजेदैव आदायार्षस्तुगोद्वयम् ॥ ४ ॥
प्रार्थितःसंप्रदानेन प्राजापत्यःप्रकीर्त्तितः ।
आसुरोद्रविणादानाद् गान्धर्वःसमयान्मिथः ॥ ५ ॥

से समावर्त्तन स्नान कर के गृहस्थाश्रम को ग्रहण करे ॥ १५ ॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥

जो अपने गोत्र और प्रवर की न हो ऐसी स्त्री को वेदोक्त विधि से विवाहे अथवा जो अपनी माता के कुल में पांचवीं पीढ़ी की और पिता के कुल में सातवीं पीढ़ी की हो उसे विवाहे (यह पिछला मत एकदेशी है। इसी से संप्रति ऐसी चाल नहीं दीखती है) ॥ १ ॥ ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच ये आठ प्रकार के विवाह हैं और इन में आठवां पैशाच अधम नाम नीच काम है ॥ २ ॥ इनमें जो पहिले चार कहे हैं वे धर्म युक्त अच्छे विवाह हैं। गान्धर्व और राक्षस ये दोनों क्षत्रिय के लिये श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ बड़े यत्न से भली प्रकार प्रार्थना पूर्वक जो वेद विधि से विवाह हो उसे ब्राह्म कहते, यज्ञ में बैठे ऋत्विज् वर को जो कन्या वेद विधि से दी जाय वह विवाह दैव और वर से दो गौ वा उनका मूल्य लेकर जो कन्या वेद विधि से दी जाय उसे आर्ष विवाह कहते हैं ॥ ४ ॥

कन्या वाले से कन्या मांगने के लिये जहां वर प्रार्थना करे उस वेदोक्त विधिसे हुए विवाह को प्राजापत्य, द्रव्यलेकर जो विवाह हो उसे आसुर; कन्या और वर की परस्पर इच्छामात्र से जो विवाह हो उसे गान्धर्व कहते हैं ॥५॥

राक्षसोयुद्धहरणात्पैशाचःकन्यकाछलात् ।
तिस्रस्तुभार्याविप्रस्य द्वेभार्येक्षत्रियस्यतु ॥ ६ ॥
एकैवभार्यावैश्यस्य तथाशूद्रस्यकीर्तिता ।
ब्राह्मणीक्षत्रियावैश्या विप्रभार्याःप्रकीर्तिताः॥ ७ ॥
क्षत्रियाचैववैश्याच क्षत्रियस्यविधीयते ।
वैश्याचभार्यावैश्यस्य शूद्राशूद्रस्यकीर्तिता ॥ ८ ॥
आपद्यपिनकर्त्तव्या शूद्राभार्याद्विजन्मना ।
तस्यांतस्यप्रसूतस्य निष्कृतिर्नविधीयते ॥ ९ ॥
तपस्वीयज्ञशीलस्तु सर्वधर्मभृतांवरः ।
ध्रुवंशूद्रत्वमायाति शूद्रश्राद्धेत्रयोदशे ॥ १० ॥
नीयतेतुसपिण्डत्वं येषांशूद्रःकुलोद्भवः ।
सर्वेशूद्रत्वमायान्ति यदिस्वर्गजितश्च्युते ॥ ११ ॥
सपिण्डीकरणंकार्यं कुलजस्यतथाध्रुवम् ।

युद्ध करके जो कन्या हरी जाय उसे राक्षस और छल से चुराकर कन्या लेली जाय उसे पैशाच विवाह कहते हैं। ब्राह्मण के तीन स्त्री और क्षत्रिय के दो स्त्री हो सकती हैं ॥ ६ ॥ वैश्य और शूद्र के एक २ ही स्त्री हो सकती है, ब्राह्मणी, क्षत्रिया; और वैश्या ये तीन ब्राह्मण की भार्या कही हैं ॥ ७ ॥ क्षत्रिया और वैश्या क्षत्रिय की भार्या * और वैश्य की वैश्या और शूद्र की शूद्रा ही भार्या होती हैं ॥ ८ ॥ आपत्काल में भी ब्राह्मणादि तीनों द्विज शूद्रा के साथ विवाह न करें क्योंकि शूद्रा में पैदा हुए द्विजाति का कोई प्रायश्चित्त नहीं है किन्तु वह पतित ही हो जाता है ॥ ९ ॥ चाहे कैसा ही तपस्वी, यज्ञशील, और सब धर्मात्माओं में श्रेष्ठ भी ब्राह्मण शूद्र के त्रयोदशाह (तेरहवीं) श्राद्ध में जीमने से निश्चय कर शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है ॥ १० ॥ द्विजों के कुल में पैदा हुआ शूद्र जिन द्विजों की सपिण्डी श्राद्ध करे चाहे वे स्वर्ग के भी जीतने वाले हों तो भी वे सब शूद्र हो जाते हैं॥११॥ तिस से कुल में उत्पन्न हुए का बारहवें दिन का श्राद्ध करके त्रयोदशाह

---

* अपने २ वर्ण का एक २ स्त्री से विवाह करना धर्मशास्त्रानुकूल उत्तम पक्ष है। और स्ववर्ण की वा अन्य वर्ण की एक से अधिक स्त्रियों के साथ विवाह करना कामी लोगों को व्यभिचार से बचाने के लिये मध्यम पक्ष है।

श्राद्धद्वादशकंकृत्वा श्राद्धेप्राप्तेत्रयोदशे ॥ १२ ॥
सपिण्डीकरणेचार्हन्नचशूद्रःकथञ्चन ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शूद्रांभार्यांविवर्जयेत् ॥ १३ ॥
पाणिर्ग्राह्यस्सवर्णासु गृण्हीयात्क्षत्रियाशरम् ।
वैश्याप्रतोदमादद्याद्वेदनत्वग्रजन्मनः ॥ १४ ॥
साभार्यायागृहेदक्षा साभार्यायापतिव्रता ।
साभार्यायापतिप्राणा साभार्यायाप्रजावती ॥ १५ ॥
लालनीयासदाभार्या ताडनीयातथैवच ।
ताडितालालिताचैव स्त्रीश्रीर्भवतिनान्यथा ॥ १६ ॥

इतिशांखेधर्मशास्त्रेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चसूनागृहस्थस्य चुल्लीपेषण्युपस्करः ।
कण्डनीचोदकुम्भश्च तस्यपापस्यशान्तये ॥ १ ॥
पञ्चयज्ञविधानन्तु गृहीनित्यंनहापयेत् ।

श्राद्ध के दिन अवश्य सपिण्डीकरण करे ॥ १२ ॥ द्विज कुल में पैदा हुआ शूद्र कदापि सपिण्डी करने योग्य नहीं है, तिस से संपूर्ण यत्न से शूद्रा स्त्री से कदापि विवाह न करे ॥१३॥ ब्राह्मण के साथ ब्राह्मणी के विवाह में ब्राह्मणी का हाथ, क्षत्रिया बाण को, वैश्या प्रतोद (पैना) को ग्रहण करे ॥१४॥ जो घर के कामों में चतुर हो, औ पतिव्रता हो, वा जिस के प्राणपति में वसते हों, और जो पुत्रादि सन्तानों वाली हो, वही उत्तम भार्या है ॥१५॥ भार्या को सदैव लालना (लाड़) करे और अनुचित पर ताड़ना भी करे क्योंकि लालना और ताड़ने से ही वह स्त्री लक्ष्मी होती है अन्यथा नहीं ॥१६॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

गृहस्थ पुरुष को ये पांच प्रकार की हत्या नाम दोष प्रति दिन लगता है कि चूल्हा, चक्की, मार्जनी, (बुहारी) कण्डनी (ओखली) और जल का घड़ा, उस हत्यारूप पाप की शान्ति के लिये ॥१॥ गृहस्थ पुरुष पांच महायज्ञों को प्रतिदिन न त्यागे, क्योंकि पांच महायज्ञों के करने से गृहस्थ का उन

पञ्चयज्ञविधानेन तत्पापंतस्यनश्यति ॥ २ ॥
देवयज्ञोभूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथैवच ।
ब्रह्मयज्ञोनृयज्ञश्च पञ्चयज्ञाःप्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥
होमोदैवोबलिर्भौतः पित्र्यःपिण्डक्रियास्मृतः ।
स्वाध्यायोब्रह्मयज्ञश्च नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ४ ॥
वानप्रस्थोब्रह्मचारी यतिश्चैवतथाद्विजः ।
गृहस्थस्यप्रसादेन जीवन्त्येतेयथाविधि ॥ ५ ॥
गृहस्थएवयजते गृहस्थस्तप्यतेतपः ।
ददातिचगृहस्थश्च तस्माच्छ्रेयान्गृहाश्रमी ॥ ६ ॥
यथाभर्त्ताप्रभुःस्त्रीणां वर्णानांब्राह्मणोयथा ।
अतिथिस्तद्वद्देवास्य गृहस्थस्यप्रभुःस्मृतः ॥ ७ ॥
नव्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेणविविधेनच ।
नारीस्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोतिपतिपूजनात् ॥ ८ ॥
नव्रतैर्नोपवासैश्च नचयज्ञैःपृथग्विधैः ।

हत्याओं सम्बन्धी पाप नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥ देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, और मनुष्ययज्ञ, ये पांच महायज्ञ कहाते हैं ॥ ३ ॥ लवण रहित भोजन के वस्तु भात आदि का होम देवयज्ञ, उन २ के नाम से भूमि वा पत्तों पर ग्रास धरना भूतयज्ञ, पितरों के लिये अपसव्य से पिण्डदान को पितृयज्ञ, विधिपूर्वक वेदादि का पाठ ब्रह्मयज्ञ और अतिथि का भोजनादि से सत्कार पूजन, मनुष्ययज्ञ कहाता है ॥ ४ ॥ वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, और संन्यासी ये तीनों, द्विज गृहस्थ के भिक्षारूप प्रसाद से यथाविधि (यथार्थ से) जीवते हैं ॥ ५ ॥ गृहस्थ ही यज्ञ करता, गृहस्थ ही तप करता और गृहस्थ ही दान देता है जिस से गृहस्थाश्रम ही सब से उत्तम है ॥ ६ ॥ जैसे स्त्रियों का रक्षक पति, जैसे वर्णों का रक्षक ब्राह्मण है इसी प्रकार गृहस्थ का प्रभु अतिथि कहाताहै ॥७॥ व्रत उपवास और अनेक प्रकारके धर्मसेवन से स्त्री स्वर्गको प्राप्त नहीं होती किन्तु श्रद्धाभक्ति के साथ तनमन धन से पतिकी सेवा पूजा से स्त्री को निश्चित स्वर्ग होता है ॥८॥ व्रत, उपवास, और अपने किये अनेक प्रकार

राजास्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोतिपरिपालनात् ॥ ९ ॥
नस्नानेननमौनेन नैवाग्निपरिचर्यया ।
ब्रह्मचारीदिवंयाति सयातिगुरुपूजनात् ॥ १० ॥
नाग्निशुश्रूषयाक्षान्त्या स्नानेनविविधेनच ।
वानप्रस्थोदिवंयाति यातिभोजनवर्जनात् ॥ ११ ॥
नदण्डैर्नचमौनेन शून्यागाराश्रयेणच ।
यतिःसिद्धिमवाप्नोति योगेनाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १२ ॥
नयज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्वन्हिशुश्रूषयातथा ।
गृहीस्वर्गमवाप्नोति यथाचातिथिपूजनात् ॥ १३ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गृहस्थोऽतिथिमागतम् ।
आहारशयनाद्येन विधिवत्प्रतिपूजयेत् ॥ १४ ॥
सायंप्रातश्चजुहुयादग्निहोत्रंयथाविधि ।
दर्शञ्चपौर्णमासंच जुहुयाद्विधिवत्तथा ॥ १५ ॥

के यज्ञों से राजा स्वर्ग को प्राप्त नहीं होता किन्तु धर्मानुसार ठीक २ प्रजा की रक्षा करने से राजा को स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ स्नान (शुद्धि) मौन रहना और अग्नि की सेवा (समिदाधान) इन से ब्रह्मचारी स्वर्ग में नहीं जाता किन्तु गुरु की सेवा पूजा करने से स्वर्ग में जाता है ॥ १० ॥ अग्नि की सेवा (पंचाग्निताप) क्षमा, और अनेक प्रकार के वार २ स्नान करने से वान-प्रस्थ स्वर्ग में तिस प्रकार नहीं जाता कि जैसे भोजन के त्याग से जाता है अर्थात उपवासों द्वारा इन्द्रियों की चंचलता मिटती है परमार्थ के विचारों में विघ्न नहीं होता ॥ ११ ॥ तीन दण्डों से, मौन से, और शून्य स्थान में रहने से सन्यासी सिद्धि को प्राप्त नहीं होता किन्तु योगाभ्यास से ही सर्वोत्तम गति वा सिद्धि को प्राप्त होता है ॥१२॥ दक्षिणा वाले बड़े २ यज्ञों और श्रौतस्मार्त अग्नियों की सेवा रूप अग्निहोत्र से गृहस्थ पुरुष वैसा स्वर्ग में प्राप्त नहीं होता कि जैसा अतिथि के पूजन से उस को स्वर्ग होता है ॥१३॥ तिस से गृहस्थ पुरुष आये हुये अतिथि को सम्पूर्ण यत्न से भोजन और शय्या आदि देकर विधि पूर्वक पूजन करे ॥ १४ ॥ सायंकाल और प्रातःकाल से अग्निहोत्र करे और दर्शेष्टि तथा पूर्णमासेष्टियागों को भी विधिपूर्वक प्रतिमास किया करे ॥ १५ ॥

यजेतपशुबन्धैश्च चातुर्मास्यैस्तथैवच ।
त्रैवर्षिकाधिकान्नस्तु पिबेत्सोममतन्द्रितः ॥ १६ ॥
इष्टिंवैश्वानरींकुर्यात्तथाचाल्पधनोद्विजः ।
नभिक्षेतधनंशूद्रात्सर्वंदद्याच्चभिक्षितम् ॥ १७ ॥
वृतन्तुनत्यजेद्विद्वानृत्विजंपूर्वमेवच ।
कर्मणाजन्मनाशुद्धं विद्ययाचवृणीततम् ॥ १८ ॥
एतैरेवगुणैर्युक्तं धर्मार्जितधनंतथा ।
याजयीतसदाविप्रो ग्राह्यस्तस्मात्प्रतिग्रहः ॥ १९ ॥
इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
गृहस्थस्तुयदापश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैवचापत्यं तदारण्यंसमाश्रयेत् ॥ १ ॥
पुत्रेषुदारान्निक्षिप्य तयावानुगतोवनम् ।
अग्नीनुपचरेन्नित्यं वन्यमाहारमाहरेत् ॥ २ ॥

पशुबन्ध यज्ञों और चातुर्मास्य यज्ञों के वैश्वदेवादि चारों पर्वों द्वारा ईश्वर की पूजा करे और तीन वर्ष के निर्वाह से अधिक अन्न का सञ्चय रखने वाला पुरुष हो तो आलस्य छोड़ कर सोम अर्थात् अग्निष्टोम यज्ञ करे ॥ १६ ॥ यदि थोड़े धन वाला ब्राह्मण हो तो वैश्वानरी इष्टि कल्पशास्त्र में लिखे अनुसार करे और यज्ञ के लिये शूद्र से धन न मांगे और द्विजों से मांगा भिक्षा का सब धन यज्ञके अन्तमें दान करदेवे॥१७॥ विद्वान् मनुष्य विधिसे वरण (स्वीकार) किये ऋत्विज का त्याग न करे । जन्म तथा कर्म से शुद्ध हो तथा विद्या से पूर्ण हो उसी ऋत्विज् का वर्ण करे ॥ १८ ॥ इन्हीं पूर्व गुणों से जो युक्त हो, तथा धर्मानुकूल उपाय से जिस ने धन का संचय किया हो उसी को विद्वान् ब्राह्मण सदैव यज्ञ करावै और उसी से प्रतिग्रह–दान लेवे ॥ १९ ॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में पांचवां अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

गृहस्थ पुरुष जब अपने देह में वली (त्वचा की सकुड़न) पलित (बालों का सफेद होते) देखे और पुत्र के पुत्र वा कन्या हो जाय, तब ही वन में चला जावे अर्थात् वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण करे ॥ १ ॥ पुत्रों के समीप अपनी स्त्री को सौंप कर अथवा स्त्री को भी संग लेकर वनमें जाकर श्रौतस्मार्त्त अग्नियों की सेवा करे अर्थात् वन में भी विधिपूर्वक अग्निहोत्र कियाकरे और जो वनमें पैदाहों उन कन्द मूल आदिका ही भोजन करे ॥२॥

यदाहारोभवेत्तेन पूजयेत्पितृदेवताः ।
तेनैवपूजयेन्नित्यमतिथिंसमुपागतम् ॥ ३ ॥
ग्रामादाहृत्यवाश्नीयादष्टौग्रासान्समाहितः ।
स्वाध्यायंचतथाकुर्याज्जटाश्चबिभृयात्तथा ॥ ४ ॥
तपसाशोपयेन्नित्यं स्वयंचैवकलेवरम् ।
आर्द्रवासास्तुहेमन्ते ग्रीष्मेपञ्चतपास्तथा ॥ ५ ॥
प्रावृष्याकाशशायीच नक्ताशीचसदाभवेत् ।
चतुर्थकालिकोवास्यात् षष्ठकालिकएववा ॥ ६ ॥
कृच्छ्रैर्वापिनयेत्कालं ब्रह्मचर्यञ्चपालयेत् ।
एवंनीत्वावनेकालं द्विजोब्रह्माश्रमीभवेत् ॥ ७ ॥

इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

कृत्वेष्टिंविधिवत्पश्चात् सर्ववेदसदक्षिणाम् ।

जो फल मूल आदि अपना भोजन हो उन्हीं से पितर, देवता, और आये हुये अतिथि का नित्य पूजन करे ॥ ३ ॥ अथवा सावधान रहता हुआ ग्रामस्थ द्विजों के घरों से लाकर आठ ग्रास भोजन प्रतिदिन एकवार खाया करे। वेदको नित्य पढ़े और शिर पर जटाओं को रखा लेवे ॥ ४ ॥ तप से अपने शरीर को सुखा देवे, शीत काल में आर्द्र (गीले) वस्त्र पहिने और ग्रीष्म (गरमी) में पंचाग्नि को तपै अर्थात् चारों दिशा में अग्नि सिलगावे बीच में आसन डाल कर बैठे ऊपर से सूर्य का घाम होवे ॥५॥ वर्षा में आकाश खुले (मैदान) में लेटे और सदैव रात्रि में ही भोजन करे अथवा चौथे काल में वा छठे काल में एक वार भोजन करे ॥६॥ अथवा कृच्छ्र व्रत के नियम से ही अपने काल को बितावे और ब्रह्मचर्य का पालन करे इस प्रकार ब्राह्मण अपने वानप्रस्थ समय को बिताकर संन्यास आश्रम का ग्रहण करे ॥ ७ ॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में छठा अध्याय पूरा हुआ ॥

वानप्रस्थ का नियम पूरा होने पश्चात् सर्ववेदस नाम अपना सब पदार्थ जिस में दक्षिणा देदिया जाय ऐसी प्राजापत्या इष्टि करके और अपने आत्मा में ही अग्नियों का विधिपूर्वक समारोप करके संन्यास आश्रम को

आत्मन्यग्नीन्समारोप्य द्विजोब्रह्माश्रमीभवेत् ॥ १ ॥
विधूमेन्यस्तमुसले व्यङ्गारेभुक्तवज्जने ।
अतीतेपात्रसम्पाते नित्यंभिक्षांयतिश्चरेत् ॥ २ ॥
सप्तागारांश्चरेद्भैक्षं भिक्षितंनानुभिक्षयेत् ।
नव्यथेत्तथाऽलाभे यथालब्धेनवर्तयेत् ॥ ३ ॥
नास्वादयेत्तथैवान्नं नाश्नीयात्कस्यचिद्गृहे ।
मृन्मयालाबुपात्राणि यतीनांचविनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥
तेषांसंमार्जनाच्छुद्धिरद्भिश्चैवप्रकीर्तिता ।
कौपीनाच्छादनंवासो बिभृयादव्यथश्चरन् ॥५॥
शून्यागारनिकेतःस्याद्यत्रसायंगृहोमुनिः ॥६॥
दृष्टिपूतंन्यसेत्पादं वस्त्रपूतंजलंपिबेत् ।
सत्यपूतांवदेद्वाचं मनःपूतंसमाचरेत् ॥७॥
चन्दनेनतुलिप्ताङ्गं वास्यैर्वचैवतक्षतः ।

ग्रहण करे ॥ १ ॥ जब ग्राम में धूम उठना बन्द हो जाय, ऊखली से चावल निकाल कर मूसल भी जहां के तहां रख दिये हों, मनुष्यों ने भोजन भी कर लिये हों, रसोई या जल के पात्रों का इधर उधर ले जाना भी बन्द हो गया हो, तब संन्यासी भिक्षा के लिये नित्य ग्राम में जावे ॥२॥ सात घरों से भिक्षा मांगे, जिस के घर में भिक्षा मांग चुका हो फिर वहां से भिक्षा न मांगे, भिक्षा के न मिलने से दुःखी न हो और जितना मिले उतने से ही सन्तोष मान कर निर्वाह करे ॥ ३ ॥ अन्न को स्वाद ले २ कर न खावे, किसी के घर निमन्त्रित हो भोजन न करे और मिट्टी अथवा तुम्बी के पात्र यतियों के लिये शास्त्र में कहे हैं उन्हीं पात्रों से जलपानादि काम करे ॥४॥ और उन पात्रों की शुद्धि केवल जल से धोने से हो जाती है और सुख दुःख न मान कर उदासीन दशा में विचरता हुआ संन्यासी कौपीन और गुदड़ी दो ही वस्त्रों को धारण करे ॥ ५ ॥ जिस में अन्य कोई न रहता हो ऐसे शून्य घर में रात को रहे । जहां सायंकाल हो जाय वहीं ठहर जावे, मौन रहे ॥ ६ ॥ दृष्टि से देखकर मार्ग में पग रक्खे, वस्त्र से छानकर जल पीवे, सत्य वाणी बोले, और शुद्ध मन से विचरा करे ॥ ७ ॥ कोई पुरुष संन्यासी के किसी अंग में चन्दन लगाता हो, या किसी अङ्ग को कोई काटता हो तो उन दोनों का भला बुरा

कल्याणंचाप्यकल्याणं तयोरेवनचिन्तयेत् ॥८॥
सर्वभूतसमोमैत्रः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
ध्यानयोगरतोभिक्षुः प्राप्नोतिपरमाङ्गतिम् ॥९॥
जन्मनायस्तुनिर्मुक्तो मरणेनतथैवच ।
आधिभिर्व्याधिभिश्चैव तंदेवाब्राह्मणंविदुः ॥१०॥
अशुचित्वंशरीरस्य प्रियाप्रियविपर्ययः ।
गर्भवासेचवसतिस्तस्मान्मुच्येतनान्यथा ॥११॥
जगदेतन्निराक्रन्दं नतुसारमनर्थकम् ।
भोक्तव्यमितिनिर्द्विष्टो मुच्यतेनात्रसंशयः ॥१२॥
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्चकिल्बिषम् ।
प्रत्याहारेणसंसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥१३॥
सव्याहृतिंसप्रणवां गायत्रींशिरसासह ।
त्रिःपठेदायतप्राणः प्राणायामःसउच्यते ॥१४॥

कुछ भी चिन्तन न करे ॥ ८ ॥ सब प्राणियों पर सम दृष्टि रक्खे, सब को मित्र माने; मट्टी का ढेला, पत्थर, सोना, इनको एकसा समझे । ध्यान और योगाभ्यास में तत्पर रहे ऐसा जो भिक्षु संन्यासी है वह परमगति को प्राप्त हो जाता है ॥ ९ ॥ जीवते ही जो जन्म मरण के बन्धनों से मुक्त है, मन की पीड़ा और देह के रोग भी जिस को नहीं सताते, देवता लोग उसी को ब्राह्मण कहते हैं ॥ १० ॥ शरीर का अशुद्ध होना, प्रिय के स्थान में अप्रिय और अप्रिय के स्थान में प्रिय हो, मलिन स्थान गर्भ में वास होना, इन सब से संन्यास के बिना नहीं छूट सकता ॥११॥ यह जगत् बड़ा दारुण है, इसमें कुछ सार नहीं और अनर्थ रूप है । इसमें कर्मफल भोगना अवश्य है, इस बुद्धि से जो दुःख भोगता है, वह मुक्त होता है इस में संदेह नहीं है ॥ १२ ॥ प्राणायामों द्वारा इन्द्रियों के दोषोंको, और धारणाओं से शारीरकादि पापोंको भस्म करे । प्रत्याहार से संगों को और ध्यान द्वारा ईश्वर विरोधी नास्तिकता आदि को नष्ट करे ॥१३॥ प्राणोंको रोककर सात व्याहृति, ओंकार, और (आपोज्योती०) इस शिरोमन्त्र सहित गायत्री के तीन बार पढ़ने को प्राणायाम कहते हैं ॥१४॥

मनसःसंयमस्तज्ज्ञैर्धारणेतिनिगद्यते ।
संहारश्चेन्द्रियाणांच प्रत्याहारःप्रकीर्तितः ॥१५॥
हृदिस्थध्यानयोगेन देवदेवस्यदर्शनम् ।
ध्यानंप्रोक्तंप्रवक्ष्यामि ध्यानयोगमतःपरम् ॥१६॥
हृदिस्थादेवतास्सर्वा हृदिप्राणाःप्रतिष्ठिताः ।
हृदिज्योतींषिसूर्यश्च हृदिसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥१७॥
स्वदेहमरणिंकृत्वा प्रणवंचोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्विष्णुंपश्येद्धृदिस्थितम् ॥१८॥
हृद्यर्कश्चन्द्रमासूर्यः सोमोमध्येहुताशनः ।
तेजोमध्येस्थितंसत्त्वं सत्त्वमध्येस्थितोऽच्युतः ॥१९॥
अणोरणीयान्महतोमहीयानात्मास्यजन्तोर्निहितोगुहायाम् ।
तेजोमयंपश्यतिवीतशोको धातुःप्रसादान्महिमानमात्मनः॥२०
वासुदेवस्तमोऽन्धानां प्रत्यक्षोनैवजायते ।
अज्ञानपटसंवीतैरिन्द्रियैर्विषयेप्सुभिः ॥२१॥
एषवैपुरुषोविष्णुर्व्यक्ताव्यक्तःसनातनः ।

संयमके जानने वाले मन के रोकने को धारणा कहते हैं, विषयों से इन्द्रियों के हटाने को प्रत्याहार कहते हैं ॥ १५ ॥ हृदय में ध्यान के योग से ब्रह्म के साक्षात् करने को ध्यान कहते हैं । इससे आगे ध्यानयोग को कहते हैं ॥१६॥ सब देवता, प्राण, तारागण, और सूर्य ये सब अध्यात्म रूप से हृदय में भी स्थित हैं ॥१७॥ अपने शरीर को नीचे की अधरारणी और ओंकार को ऊपर की अरणी मानके ध्यान के निरन्तर मन्थनरूप अभ्याससे हृदयमें स्थित विष्णु भगवान् के दिव्य रूप को देखे ॥१८॥ सूर्य, चन्द्रमा, फिर सूर्य, चन्द्मा और इन चारों के बीच में अग्नि हृदय में रहतेहैं । तेज के मध्य में सत्व गुण स्थितहै, सत्वगुण में अच्युत (विष्णु) स्थित हैं ॥१९॥ छोटे से भी छोटा बड़ों से भी बड़ा आत्मा इस मनुष्य के हृदय में ठहरा हुआ है, नष्ट हो गया है शोक जिस का ऐसा पुरुष तेजोरूप आत्मा की महिमा को विधाता की दयासे देखता है ॥२०॥ अज्ञानान्धकार से अन्धे हुए मनुष्यों को वासुदेव भगवान् प्रत्यक्ष नहीं होते, क्योंकि उन के विषय भोगों के लालची इन्द्रिय अज्ञानरूपी वस्त्रों से ढंपे हैं ॥ २१ ॥ यह पुरुष [हृदय में सोने वाला] विष्णु (व्यापक) प्रकट

एषधाताविधाताच पुराणोनिष्कलःशिवः ॥२२॥
वेदाहमेतंपुरुषंमहान्तमादित्यवर्णंतमसःपरस्तात् ।
यंवैविदित्वानबिभेतिमृत्योर्नान्यःपन्थाविद्यतेऽनाय २३
पृथिव्यापस्तथातेजो वायुराकाशमेवच ।
पञ्चैतानिविजानीयान्महाभूतानिपण्डितः ॥२४॥
चक्षुःश्रोत्रंस्पर्शनंच रसनंघ्राणमेवच ।
बुद्धीन्द्रियाणिजानीयात्पञ्चेमानिशरीरके ॥२५॥
रूपंशब्दस्तथास्पर्शो रसोगन्धस्तथैवच ।
इन्द्रियार्थान्विजानीयात्पञ्चैवसततंबुधः ॥ २६ ॥
हस्तौपादावुपस्थंच जिह्वापायुस्तथैवच ।
कर्मेन्द्रियाणिपञ्चैव नित्यमस्मिञ्शरीरके ॥ २७ ॥
मनोबुद्धिस्तथैवात्मा ह्यव्यक्तंचतथैवच ।
इन्द्रियेभ्यःपराणीह चत्वारिकथितानिच ॥ २८ ॥
चतुर्विंशत्यथैतानि तत्त्वानिकथितानिच ।

और अप्रकट सगुण तथा निर्गुणरूपों से नित्य है । यही धाता, विधाता, प्राचीन, कलाहीन और कल्याण स्वरूप है ॥ २२ ॥ इस को मैं महान् सूर्य के समान तेज वाला और तमोगुण से परे जानता हूं कि जिस को जान कर मनुष्य मृत्यु से नहीं डरता और इस से भिन्न मोक्ष के लिये कोई मार्ग नहीं है ॥ २३ ॥ पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पांच को पण्डित लोग महाभूत जानें ॥२४॥ १–नेत्र, २–कान, ३–त्वचा, ४–रसना, (जिह्वा के अग्र भाग में रहता इन्द्रिय) ५–घ्राण (नाक के अग्र भाग में रहता है) इन पांचो को इस शरीर में ज्ञान इन्द्रिय जानना चाहिये ॥ २५ ॥ रूप, शब्द, स्पर्श, रस, गंध, इन पांचों को उक्त इन्द्रियों के पांच विषय पण्डित लोग निरन्तर जानें ॥ २६ ॥ हाथ, पांव, उपस्थ, जिह्वा, और गुदा ये पांच इस शरीर में नित्य सम्बद्ध कर्मेन्द्रिय कहाते हैं ॥ २७ ॥ मन, बुद्धि, आत्मा, (महत्तत्व) अव्यक्त (प्रधान) ये चार तत्व इन्द्रियों से परे [सूक्ष्म वा कारण रूप] कहे हैं ॥२८॥ ये पूर्वोक्त चौबीस तत्व कहाते हैं, और आत्मा जो पुरुष (ईश्वर है वह

तथात्मानंतद्व्यतीतं पुरुषंपञ्चविंशकम् ॥ २९ ॥
यन्तुज्ञात्वाविमुच्यन्ते येजनाःसाधुवृत्तयः ।
तदिदंपरमंगुह्यमेतदक्षरमुत्तमम् ॥ ३० ॥
अशब्दरसमस्पर्शमरूपंगन्धवर्जितम् ।
निर्दुःखमसुखंशुद्धं तद्विष्णोःपरमंपदम् ॥ ३१ ॥
अजंनिरञ्जनंशान्तमव्यक्तन्ध्रुवमक्षरम् ।
अनादिनिधनंब्रह्म तद्विष्णोःपरमंपदम् ॥ ३२ ॥
विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहबन्धनः ।
सोऽध्वनःपारमाप्नोति तद्विष्णोःपरमंपदम् ॥ ३३ ॥
वालाग्रशतशोभागः कल्पितस्तुसहस्रधा ।
तस्यापिशतमाद्भागाज्जीवःसूक्ष्मउदाहृतः ॥ ३४ ॥
इन्द्रियेभ्यःपराह्यर्था अर्थेभ्यश्चपरम्मनः ।
मनसस्तुपराबुद्धिर्बुद्धेरात्मातथापरः ॥ ३५ ॥
महतःपरमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषःपरः ।

पच्चीसवां उक्त चौबीस तत्त्वों से परे है ॥ २९ ॥ जो मनुष्य साधु नाम शुद्ध स्वभाव के हैं वे जिस को जान कर मुक्त होते हैं । सो यह ब्रह्म परम (श्रेष्ठ) गुप्त अविनाशी और सर्वोत्तम है ॥ ३० ॥ उस आत्मा में शब्द नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, रूप नहीं, गन्ध नहीं है जिसमें, न दुःख है न सुख है वही विष्णु व्यापक परमात्मा का शुद्ध परम पद है ॥३१॥ जो जन्म और कर्मों की वासनाओं से शून्य, शान्त, अप्रत्यक्ष, नित्य, अविनाशी है, जिसके आदि और अन्तभी नहीं हैं और जो ब्रह्मरूप है वही विष्णु भगवान् का परमपद है ॥३२॥ जिस मनुष्य का विज्ञान ही सारथि है और प्रग्रह (लगाम की रस्सी) से जिस का मन बंधा है वही संसार मार्ग के परले छोर पर वर्त्तमान उस विष्णु भगवान् के परम पद को प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ बाल (केश) के अग्रभाग के एक हजार टुकड़े किये जायं उन में से एक टुकड़े का जो सौवां भाग उससे भी सूक्ष्म (छोटा) जीव कहा है ॥ ३४ ॥ इन्द्रियों से परे नाम सूक्ष्म कारण रूप अर्थ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध नामक विषय) हैं अर्थोंसे परे सूक्ष्म कारण मन, मनसे परे बुद्धि और बुद्धिसे परे सूक्ष्म कारण (महत्तत्त्व) वा जीव पदवाच्य आत्मा है ॥ ३५ ॥ महत्तत्त्व से परे सूक्ष्म कारण अव्यक्त नाम प्रधान व प्रकृति है, अव्यक्त से परे सूक्ष्म

पुरुषान्नपरंकिञ्चित् साकाष्ठासापरागतिः ॥ ३६ ॥
एषसर्वेषुभूतेषु तिष्ठत्यविकलःसदा ।
दृश्यतेत्वग्रयया बुद्ध्या सूक्ष्मयासूक्ष्मदर्शिभिः ॥ ३७ ॥
इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
नित्यंनैमित्तिकंकाम्यं क्रियाङ्गंमलकर्षणम् ।
क्रियास्नानं तथाषष्ठं षोढास्नानंप्रकीर्त्तितम् ॥ १ ॥
अस्नातःपुरुषोऽनर्हो जप्याग्निहवनादिषु ।
प्रातःस्नानंतदर्थंच नित्यस्नानंप्रकीर्त्तितम् ॥ २ ॥
चण्डालशवपूयाद्यं स्पृष्ट्वास्नानंरजस्वलाम् ।
स्नानाऽनर्हस्तुयःस्नाति स्नानंनैमित्तिकंचतत् ॥ ३ ॥
पुण्यस्नानादिकंस्नानं दैवज्ञविधिचोदितम् ।
तद्धिकाम्यंसमुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥
जप्तुकामःपवित्राणि अर्चिष्यन्देवतापितॄन् ।

पुरुष है । और पुरुष नाम (ब्रह्म) से परे सूक्ष्म कारण और कुछ नहीं है किन्तु वही स्थिरता की अन्तिम सीमा और वही परम गति है ॥ ३६ ॥ वह परमात्मा इन सब चराचर भूतों में सदैव अविकल एकसा कपड़ों में कपास वा सूत के समान ठहरा हुआ है । सूक्ष्म बुद्धि वाले मनुष्य, नवीन सूक्ष्म बुद्धि से उस ब्रह्म को देखते हैं ॥ ३७ ॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में सातवां अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियांग, मलकर्षण, क्रियास्नान, यह छः प्रकार का स्नान कहाता है ॥ १ ॥ विना स्नान किये मनुष्य जप सन्ध्या तथा अग्निहोत्र आदि के करने में अयोग्य होता है इसलिये सदा प्रातःकाल का स्नान नित्य स्नान कहाता है ॥ २ ॥ चांडाल, [भंगी) शव, [मुर्दा) पूय, राध–पीव, और रजस्वला स्त्री इनको स्पर्श (छू) कर स्नान के पीछेभी जो स्नान करे वह स्नान नैमित्तिक कहाता है ॥३॥ पुण्य नक्षत्र आदिके समयमें जो ज्योतिष शास्त्र में कहा स्नान है वह काम्य है और निष्काम मनुष्य उस काम्य स्नान को कदापि न करे ॥ ४ ॥ पवित्र मन्त्रों के जपनेके लिये अथवा देवता और पितरों के

स्नानंसमाचरेद्यस्तु क्रियाङ्गंतत्प्रकोर्त्तितम् ॥ ५ ॥
मलापकर्षणार्थाय स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ।
मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तस्यनान्यथा ॥ ६ ॥
सरित्सुदेवखातेषु तीर्थेषुचनदीषुच ।
क्रियास्नानंसमुद्दिष्टं स्नानंतत्रमहाक्रिया ॥ ७ ॥
तत्रकाम्यंतुकर्तव्यं यथावद्विधिचोदितम् ।
नित्यंनैमित्तिकंचैव क्रियाङ्गंमलकर्षणम् ॥ ८ ॥
तीर्थाभावेतुकर्तव्यमुष्णोदकपरोदकैः ।
स्नानंतुवन्हितप्तेन तथैवपरवारिणा ॥ ९ ॥
शरीरशुद्धिर्विज्ञेया नतुस्नानफलंलभेत् ।
अद्भिर्गात्राणिशुद्ध्यन्ति तीर्थस्नानात्फलंभवेत् ॥ १० ॥
सरःसुदेवखातेषु तीर्थेषुचनदीषुच ।
स्नानमेवक्रियातस्मात्स्नानात्पुण्यफलंस्मृतम् ॥११॥

पूजने के अर्थ जो मनुष्य स्नान करे उस स्नान को क्रियांग कहते हैं ॥ ५ ॥ मैल को दूर करने के लिये उबटना वा तैल मर्दन पूर्वक जो स्नान है उसे मल कर्षण स्नान कहते हैं क्योंकि उस स्नान करने में मनुष्य की प्रवृत्ति मैल दूर करने के लिये है अन्यथा नहीं है ॥ ६ ॥ नदी, देवताओं के खोदे कुण्ड, तीर्थ, और छोटी २ नदी, इन में किया स्नान क्रिया स्नान कहाता है क्योंकि इन में स्नान करना उत्तम कर्म है ॥ ७ ॥ उन में पूर्वोक्त नदी आदि में ही काम्य स्नान यथोचित विधि से करना चाहिये । नित्य,नैमित्तिक, क्रियांग, और मल कर्षण ये चार प्रकार के स्नान ॥ ८ ॥ नदी घाट आदि के अभाव में गर्म जल से अथवा नदी आदि से भिन्न किसीप्रकार के जल से भी कर लेवे । अग्नि से तपाये तथा अन्य मनुष्य के निकासे जल से जो स्नान करना है ॥९॥ उस से शरीर की शुद्धि मात्र जानो किन्तु स्नान का विशेष फल वहां नहीं मिलता है । क्योंकि जलों से केवल गात्र शुद्ध होते हैं और तीर्थ स्नान से विशेष फल मिलता है ॥ १० ॥ सरोवर, देवताओं के खोदे तालाब, तीर्थ, नदी, इन में स्नान करना ही उत्तम कर्म है इस कारण स्नान करने से पुण्य फल है ॥११॥

तीर्थंप्राप्यानुषङ्गेण स्नानंतीर्थेसमाचरेत् ।
स्नानजंफलमाप्नोति तीर्थयात्राफलंनतु ॥ १२ ॥
सर्वतीर्थानिपुण्यानि पापघ्नानिसदानृणाम् ।
परस्पराऽनपेक्षाणि कथितानिमनीषिभिः ॥ १३ ॥
सर्वेप्रस्रवणाःपुण्याः सरांसिचशिलोच्चयाः ।
नद्यःपुण्यास्तथासर्वा जाह्नवीतुविशेषतः ॥ १४ ॥
यस्यपादौचहस्तौच मनश्चैवसुसंयतम् ।
विद्यातपश्चकीर्त्तिश्च सतीर्थफलमश्नुते ॥ १५ ॥
नृणांपापकृतांतीर्थे पापस्यशमनंभवेत् ।
यथोक्तफलदंतीर्थं भवेच्छुद्धात्मनांनृणाम् ॥ १६ ॥
इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥
क्रियास्नानंतुवक्ष्यामि यथावद्विधिपूर्वकम् ।
मृद्भिरद्भिश्चकर्त्तव्यं शौचमादौयथाविधि ॥ १ ॥
जलेनिमग्नउन्मज्य उपस्पृश्ययथाविधि ।

अकस्मात् अन्य कार्य वश तीर्थ में जाकर जो स्नान करे वह स्नान के फल को तो प्राप्त होगा, पर तीर्थयात्रा का फल उस को नहीं मिलेगा ॥१२॥ सब तीर्थ पवित्र, सदैव मनुष्यों के पापनाशक और परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा न रखने वाले महात्माओं ने कहे हैं ॥ १३ ॥ झरने, सरोवर, पर्वत, नदी, ये सब पुण्यदायक हैं और विशेष कर गंगा जी पवित्र हैं ॥ १४ ॥ जिस के पग, हाथ और मन, ये वशीभूत हैं जो विद्या, तप और कीर्त्ति वाला है वही तीर्थ के फल को भोगता है ॥ १५ ॥ पापी मनुष्यों के पाप की शान्ति (नाश) तीर्थ में हो जाती है । और शुद्ध है मन जिन का ऐसे मनुष्यों को तीर्थ यथोक्त फल का देने वाला होता है ॥ १६ ॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में आठवां अध्याय पूरा हुआ ॥

अब क्रियास्नान को यथावत् विधिपूर्वक कहते हैं । प्रथम मट्टी और जल से विधिपूर्वक शरीर की शुद्धि करे ॥ १ ॥ जल में गोता लगा कर और बाहर निकल कर विधिपूर्वक आचमन करके जल का आवाहन करे । उसको

जलस्यावाहनंकुर्यात्तत्प्रवक्ष्याम्यतःपरम् ॥ २ ॥
प्रपद्येवरुणंदेवमम्भसांपतिमूर्जितम् ।
याचितंदेहिमेतीर्थं सर्वपापापनुत्तये ॥ ३ ॥
तीर्थमावाहयिष्यामि सर्वाघविनिषूदनम् ।
सान्निध्यमस्मिन्सत्तोये भजत्वंमदनुग्रहात् ॥ ४ ॥
रुद्रान्प्रपद्येवरदान्सर्वानप्सुसदस्तथा ।
सर्वानप्सुसदश्चैव प्रपद्येप्रणतःस्थितः ॥ ५ ॥
देवमप्सुसदंवन्हिं प्रपद्येऽघनिषूदनम् ।
आपःपुण्याःपवित्राश्च प्रपद्येशरणंतथा ॥ ६ ॥
रुद्राश्चाग्निश्चसर्पाश्च वरुणश्चापएवच ।
शमयन्त्वाशुमेपापं मांरक्षन्तुचसर्वशः ॥ ७ ॥
इत्येवमुक्त्वाकर्त्तव्यं ततःसम्मार्जनंजले ।
आपोहिष्ठेतितिसृभिर्यथावदनुपूर्वशः ॥ ८ ॥
हिरण्यवर्णेतिवदेदग्निश्चातिसृभिस्तथा ।

पूर्वरूप से कहते हैं कि ॥ २ ॥ बड़े और जलों के पति वरुण देव की मैं शरण होता हूं। हे वरुणदेव ! जिस तीर्थ को मैं चाहूं सम्पूर्ण पापों के दूर करने के अर्थ उसी तीर्थ को आप मुझे दीजिये ॥३॥ सम्पूर्ण पापों के दूर करने वाले तीर्थ का मैं आवाहन करता हूं। हे तीर्थ ! मेरे पर अनुग्रह करके इस उत्तम जल के समीप आइये ॥ ४ ॥ जल में रहते हुए रुद्रों की शरण लेता तथा जल के निवासी अन्य देवताओं को भी मैं नमस्कार करता हुआ शरणागत होता हूं ॥ ५ ॥ जल के भीतर व्यापक पाप के नाश करने वाले अग्नि देवता के भी मैं शरण होता हूं। और पुण्य रूप और पवित्र जलों के भी मैं शरण होता हूं ॥ ६ ॥ रुद्र, अग्नि, सर्प, वरुण, और जल ये सब देवता मेरे पापों का शीघ्र नाश करें और मेरी चारों ओर से रक्षा करें ॥ ७ ॥ ऐसे कह कर फिर जलाशय में घुस कर (आपोहिष्ठा० ऋ० अ० ७ अ० ६ । व० ५) इत्यादि तीन ऋचाओं के क्रम से यथोक्त (भली प्रकार) मार्जन करे ॥ ८ ॥ (हिरण्यवर्णा० अग्निश्च० ऋ० ४ । ३ । २५) इत्यादि तीन ऋचा (शन्नो देवी०

शन्नोदेवीतिचतथा शन्नआपस्तथैवच ॥ ९ ॥
इदमापःप्रवहत स्तथामन्त्रमुदीरयेत् ।
एवंमन्त्रान्समुच्चार्य छन्दांसिऋषिदेवताः ॥ १० ॥
अघमर्षणसूक्तस्य संस्मरेत्प्रयतःसदा ।
छन्दआनुष्टुभन्तस्य ऋषिश्चैवाघमर्षणः ॥ ११ ॥
देवताभाववृत्तस्तु पापघ्नस्यप्रकीर्त्तितः ।
ततोम्भसिनिमग्नस्तु त्रिःपठेदघमर्षणम् ॥ १२ ॥
यथाश्वमेधःक्रतुराट् सर्वपापप्रणाशनः ।
तथाघमर्षणंसूक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १३ ॥
अनेनस्नात्वाअम्मध्ये स्नानवान्धौतवाससा ।
परिवर्त्तितवासास्तु तीर्थतीरमुपस्पृशेत् ॥ १४ ॥
उदकस्याप्रदानाच्च स्नानशाटीन्नपीडयेत् ।
अनेनविधिनास्नानस्तीर्थस्यफलमश्नुते ॥ १५ ॥
इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥
अतःपरंप्रवक्ष्यामि शुभामाचमनक्रियाम् ।

यजु० ३६ । १२)—(शन्न आपः) इन मन्त्रों को पढ़े ॥९॥ (इदमापः प्रवहत० ऋ० १ । ६ । ५)इस मन्त्र को कहै इसप्रकार मन्त्रों का उच्चारण करके छन्द ऋषि, और देवता जो ॥ १० ॥ अघमर्षण सूक्त के हैं उन को सावधानी से सदैव स्मरण करै । अघमर्षण सूक्त का छन्द अनुष्टुप् . ऋषि अघमर्षण है ॥११॥ पाप के नाशक अघमर्षण सूक्त का भाववृत्त देवता कहा है । फिर जल में गोता लगाये हुए तीन बार अघमर्षण सूक्त को पढ़े ॥ १२ ॥ जैसे यज्ञों में सब से बड़ा यज्ञ अश्वमेध सब पापों का नाशक है इसी प्रकार अघमर्षण सूक्त सब पापों का नाशक है ॥ १३ ॥ इस विधि से जल में स्नान करके धौत वस्त्र को बदल कर तीर्थ के तीर पर आचमन करै ॥ १४ ॥ और जल दान (तर्पण) किये बिना स्नान की धोती को न निचोड़े जो इस विधि से स्नान करता है वही तीर्थ के फल को भोगता है ॥१५॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में नवमा अध्याय पूरा हुआ ॥

इस से आगे शोभन आचमन के कर्म को कहते हैं कनिष्ठिका छोटी

कायंकनिष्ठिकामूले तीर्थमुक्तंमनीषिभिः ॥ १ ॥
अङ्गुष्ठमूलेचतथा प्राजापत्यंविचक्षणैः ।
अङ्गुल्यग्रेस्मृतं दैवं पित्र्यंतर्जनिमूलके ॥ २ ॥
प्राजापत्येनतीर्थेन त्रिःप्राश्नीयाज्जलंद्विजः ।
द्विःप्रमृज्यमुखंपश्चात्खान्यद्भिःसमुपस्पृशेत् ॥ ३ ॥
हृद्गाभिःपूयतेविप्रः कण्ठगाभिश्चभूमिपः ।
तालुगाभिस्तथावैश्यः शूद्रःस्पृष्टाभिरन्ततः ॥ ४ ॥
अन्तर्जानुःशुचौदेशे प्राङ्मुखःसुसमाहितः ।
उदङ्मुखोवाप्रयतो दिशश्चानवलोकयन् ॥ ५ ॥
अद्भिःसमुद्धृताभिस्तु हीनाभिःफेनबुद्बुदैः ।
वह्निनाचाप्यतप्ताभिरक्षाराभिरुपस्पृशेत् ॥ ६ ॥
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम् ।
अङ्गुष्ठमध्यायोगेन स्पृशेन्नेत्रद्वयंततः ॥ ७ ॥
अङ्गुष्ठानामिकायोगे श्रवणौसमुपस्पृशेत् ।

अंगुलि के मूल (जड़) में काय तीर्थ महात्मा लोगों ने कहा है ॥ १ ॥ अंगूठे की जड़ में प्राजापत्य तीर्थ और अंगुलियों के अग्रभाग में देव तीर्थ और तर्जनी (अंगूठे के पास की अंगुली) की जड़ में पितृ तीर्थ पण्डितों ने कहा है ॥ २ ॥ प्राजापत्य तीर्थ से तीन बार द्विज पुरुष जल पीवे फिर दो बार मुख को पोंछ कर कान आदि छिद्रों का दहिने हाथ में जल लगा २ के स्पर्श करे ॥ ३ ॥ हृदय तक जाने वाले जलों से ब्राह्मण, कंठ तक जाने वाले जलों से क्षत्रिय, तालू तक जाने वालों से वैश्य और मुख पर स्पर्श किये जलों से शूद्र पवित्र होता है ॥ ४ ॥ गोडों के भीतर हाथ किये और सावधानी से पूर्व वा उत्तर दिशा की ओर मुख किये मनको वश में रख के बैठा दिशाओं का न देखता हुआ मनुष्य ॥५॥ कूप से निकाले, झाग बुद बुला जिन में नहीं, जो जल गर्म न किये हों, और खारे भी न हों ऐसे जलों से आचमन करे॥६॥ अंगूठा और तर्जनी को मिला कर (दोनों से) नासिका के दोनों छिद्रों का, बीच की अंगुली और अंगूठे से दोनों नेत्रों का स्पर्श करे ॥ ७ ॥ अंगूठा और अनामिका के योग से दोनों कानों का, कनिष्ठिका अंगुली और अंगूठे के योग से

कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेत्स्कन्धद्वयंततः ॥ ८ ॥
सर्वासामेवयोगेन नाभिंचहृदयंतथा ।
संस्पृशेच्चतथामूर्ध्नि एषआचमनेविधिः ॥ ९ ॥
त्रिःप्राश्नीयाद्यदम्भस्तु प्रीतास्तेनास्यदेवताः ।
ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च भवन्तीत्यनुशुश्रुम ॥ १० ॥
गङ्गाचयमुनाचैव प्रीयेतेपरिमार्जनात् ।
नासत्यदस्त्रौप्रीयेते स्पृष्टेनासापुटद्वये ॥ ११ ॥
स्पृष्टेलोचनयुग्मेतु प्रीयेतेशशिभास्करौ ।
कर्णयुग्मेतथास्पृष्टे प्रीयेतेअनिलानलौ ॥ १२ ॥
स्कन्धयोःस्पर्शनादस्य प्रीयन्तेसर्वदेवताः ।
मूर्ध्नःसंस्पर्शनादस्य प्रीतस्तुपुरुषोभवेत् ॥ १३ ॥
विनायज्ञोपवीतेन तथामुक्तशिखोद्विजः ।
अप्रक्षालितपादस्तु आचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १४ ॥
बहिर्जानुरुपस्पृश्य एकहस्तार्पितैर्जलैः ।

दोनों कन्धों का स्पर्श करे ॥ ८ ॥ पांचो अंगुलियों को मिला के नाभि, हृदय, और मस्तक का स्पर्श करे यह आचमन का विधि है, यह इन्द्रियस्पर्श आचमन का अंग है। मलमूत्र त्याग के बाद शुद्धि करके ऐसा आचमन सदा ही कर्तव्य है ॥९॥ तीन वार आचमन में जल पीने से ब्रह्मा, विष्णु, शिव ये तीनों देवता इस मनुष्य पर प्रसन्न होते हैं, यह हम ने सुना है ॥१०॥ और मार्जन करने से गंगा, यमुना दोनों, और दोनों नासिका के दो छिद्रों के स्पर्श से अश्विनीकुमार प्रसन्न होते हैं ॥११॥ दोनों नेत्रों के स्पर्श से चन्द्रमा, सूर्य, दोनों कानों के स्पर्श करने से वायु और अग्नि देवता प्रसन्न होते हैं ॥ १२ ॥ दोनों कंधों के स्पर्श से सब देवता; और मस्तक के स्पर्श से मनुष्य पर परमेश्वर प्रसन्न होता है ॥१३॥ विना यज्ञोपवीत, चोटी में गांठ दिये विना, और पग धोए विना आचमन किये पर भी मनुष्य अशुद्ध रहता है ॥ १४ ॥ गोडों से बाहर हाथ किये एक हाथ से लिये जलों से, जूता पहिने हुए, और खड़ा हो कर, जो आचमन

सोपानत्कस्तथातिष्ठन्नैवशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥
आचम्यचपुराप्रोक्तं तीर्थसम्मार्जनंतुयत् ।
उपस्पृशेत्ततःपश्चान्मन्त्रेणानेनधर्मतः ॥ १६ ॥
अन्तश्चरसिभूतेषु गुहायांविश्वतोमुखः ।
त्वंयज्ञस्त्वंवषट्कार आपोज्योतीरसोमृतम् ॥१७॥
आचम्यचततःपश्चादादित्याभिमुखोजलम् ।
उदुत्यंजातवेदसमिति मन्त्रेणनिक्षिपेत् ॥ १८ ॥
एषएवविधिःप्रोक्तः सन्ध्ययोश्चद्विजातिषु ।
पूर्वांसन्ध्यांजपंस्तिष्ठेदासीनःपश्चिमांतथा ॥ १९ ॥
ततोजपेत्पवित्राणि पवित्रंवाथ शक्तितः ।
ऋषयोदीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ॥ २० ॥
सर्ववेदपवित्राणि वक्ष्याम्यहमतःपरम् ।
येषांजपैश्चहोमैश्च पूयन्तेमानवाःसदा ॥ २१ ॥

इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

करै वह शुद्ध नहीं होता ॥ १५ ॥ आचमन के पीछे जो तीर्थ के जलसे मार्जन कहा है तिस को करके धर्म पूर्वक इस मन्त्र से आचमन करे ॥ १६ ॥ हे सर्वत्र व्यापक जल! तुम सब भूतों के हृदय में विचरते हो, यज्ञ, वषट्कार, ज्योति, रस, अमृत, आदि रूप तुम ही हो ॥ १७ ॥ फिर आचमन के पीछे सूर्य के सामने मुख करके (उदुत्यंजातवेदसं०) मन्त्र से जल को फेंके अर्थात् सूर्य देवता को अर्घ देवे ॥ १८ ॥ द्विजातियों में दोनों काल की संध्याओं का यही विधि कहा है। प्रातःकाल की संध्या में खड़ा हो कर और सायंकाल की संध्या में बैठ कर गायत्री का जप करे ॥ १९ ॥ फिर पवित्र मन्त्रों को वा किसी एक पवित्र मन्त्र को शक्ति के अनुसार जपे। ऋषि लोग दीर्घ संध्या (सन्ध्या के समय ईश्वर का अधिक ध्यान) करने से दीर्घ (अधिक) अवस्थाको प्राप्त हुए हैं ॥ २० ॥ इस से आगे सम्पूर्ण वेद में जो पवित्र मन्त्र हैं तिन को कहते हैं जिन के जप और होम से सदैव मनुष्य पवित्र होते हैं ॥ २१ ॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में दशवां अध्याय पूरा हुआ ॥

अघमर्षणंदेवकृतं शुद्धवत्यस्तरत्समाः ।
कूष्माण्ड्यःपावमान्यश्च साविञ्यश्चतथैवच ॥ १ ॥
ऽथभिष्टुंपद्रुदाचैव,स्तोमानिव्याहृतीस्तथा ।
भारुण्डानिचसामानि गायत्रीचौशनंतथा ॥ २ ॥
पुरुषवृत्तंचभार्षंच तथासोमव्रतानिच ।
अब्लिङ्गंबार्हस्पत्यंच वाक्सूक्तममृतंतथा ॥ ३ ॥
शतरुद्रीयमथर्वशिरस्त्रिसुपर्णमहाव्रतम् ।
गोसूक्तमश्वसूक्तंच इन्द्रसूक्तंचसामनी ॥ ४ ॥
त्रीण्याज्यदोहानिरथन्तरंच अग्निव्रतंवामदेवव्रतंच ।
एतानिगीतानिपुनन्तिजन्तून् जातिस्मरत्वंलभतेयदीच्छेत्॥५॥
इति श्रीशाङ्खे धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ॥११॥
इतिवेदपवित्राण्यभिहितानि । एभ्यस्सावित्री विशिष्यते ॥१॥

अघमर्षण. (ऋत च सत्यं चा० ऋ० ८।८।४८) इत्यादि तीन ऋचा, (देवकृतस्यैनसो० यजु० ८।१३) इत्यादि पूरी एककण्डिका छः मन्त्र,—शुद्धवती (एतोन्विन्द्रंस्तवाम० ऋ० मं० ८। सू० ८४।७-९) इत्यादि तीन ऋचा (तरत्समन्दी धा० ऋ० अ० ७। अ० ११५) इत्यादि चार ऋचा—कूष्माण्डी ऋचा, ऋ० मण्डल ९ (स्वादिष्ठया०) इत्यादि अन्त तक ११३ पवमान सूक्त—और साविश्री सविता देवतावाले (विश्वानिदेवसवितः०) इत्यादि मन्त्र ॥१॥ द्रुपदादिव मुमुचानः० शु० यजु० २०।२०) स्तोम, व्याहृती, भारुण्डसामगान,—गायत्री और उशना का मन्त्र ॥ २ ॥ पुरुषसूक्त, भाष, सोमव्रत, जल देवता वाले मन्त्र बृहस्पति देवता के मन्त्र, वागम्भृणी सूक्त, अमृत सूक्त ॥ ३ ॥ शतरुद्रीय अध्याय (नमस्ते रुद्र०) इत्यादि, अथर्व शिर, त्रिसुपर्ण, महाव्रत, गोसूक्त, अश्वसूक्त, दोनो साम ॥ ४ ॥ तीनों आज्य दोह, रथन्तर अग्निव्रत, वामदेव व्रत, ये अघमर्षण आदि सब गाने (पढ़ने) से जीवों को पवित्र करते हैं और जो इच्छा करै वह इनके जपसे पूर्व जन्म में मैं किस जाति में और किस देश में उत्पन्न हुआ था यह जान लेता है ॥ ५ ॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में ग्यारहवां अध्याय पूरा हुआ ॥
ये सब वेद में पवित्र मन्त्र कहे हैं। इन सब में गायत्री श्रेष्ठ है ॥१॥

नास्त्यघमर्षणात्परमन्तर्जले ॥२॥ नसावित्र्याः समं जप्यं न व्याहृतिसमं हुतम् ॥ ३ ॥ कुशशय्यामासीनः कुशोत्तरीयवान् कुशपवित्रपाणिः प्राङ्मुखः सूर्याभिमुखो वा ऽक्षमालामुपादाय देवताध्यायी जपं कुर्यात् ॥ ४ ॥ सुवर्णमणिमुक्तास्फटिकपद्माक्षरुद्राक्षपुत्रजीवकानामन्यतमेनादाय मालां कुर्यात् ॥५॥ कुशग्रन्थिं कृत्वा वामहस्तोपयमैर्वा गणयेत् ॥६॥ आदौ देवता ऋषिश्छन्दः स्मरेत् ॥ ७ ॥ ततः सप्रणवां सव्याहृतिकामाद्यन्ते च शिरसा गायत्रीमावर्तयेत् ॥ ८ ॥ अस्यास्याः सविता देवता ऋषिर्विश्वामित्रो गायत्री छन्दः ॥ ९ ॥ ओंकारः प्रणवाख्यः ॥ १० ॥ ओं भूः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओं महः । ओं जनः । ओं तपः । ओं सत्यमिति व्याहृतयः ॥११॥ ओं आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोमिति शिरः ॥ १२ ॥ भवन्ति चात्र श्लोकाः ॥ १३ ॥

जल के भीतर के जपों में अघमर्षण से अधिक दूसरा नहीं है ॥२॥ गायत्री के समान अन्य मन्त्र का जप नहीं है और व्याहृतियों के समान अन्य होम नहीं है ॥३॥ कुशासन पर बैठ कर कुश का [illegible] कन्धे पर धर कुश की पवित्रियों को धारण कर पूर्व को या सूर्य के सम्मुख मुख कर के रुद्राक्ष की माला को लेकर देवता का ध्यान करता हुआ [illegible] गायत्री वा अपने गुरु मन्त्र का जप करे ॥ ४ ॥ सुवर्ण, मूंगा, मोती, स्फटिक, कमलगट्टे, रुद्राक्ष, बहेड़े के फल, जीवक, इन में से किसी एक को लेकर जप की माला बनावे ॥ ५ ॥ अथवा कुश की रस्सी में गांठ दे [illegible] अथवा बायें हाथ की अंगुलों में गिनती करे ॥ ६ ॥ प्रथम, मन्त्र के देवता, ऋषि, छन्द इन का स्मरण करे ॥ ७ ॥ फिर आदि में व्याहृतियों सहित और अन्त में शिरः मन्त्र (आपोज्योती०) सहित गायत्री का जप करे ॥ ८ ॥ इस (तत्सवितु०) इस का सविता, देवता, विश्वामित्र ऋषि, और गायत्री छन्द है ॥ ९ ॥ ओंकार का नाम प्रणव है ॥१०॥ ओंभूः, ओंभुवः, ओंस्वः, ओंमहः, ओंजनः, ओंतपः, ओंसत्यम् । ये सात व्याहृति कहाती हैं ॥११॥ (ओं आपोज्योती रसो ऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरोम्) इस को गायत्री का शिरो मन्त्र कहते हैं ॥ १२ ॥ यहां आगे श्लोकों में भी कहा है ॥ १३ ॥

सव्याहृतिकांसप्रणवां गायत्रीं शिरसासह ।
येजपन्तिसदातेषां नभयंविद्यतेक्वचित् ॥ १४ ॥
शतंजप्त्वातुसादेवी दिनपापप्रणाशिनी ।
सहस्रंजप्त्वातुतथा पातकेभ्यःसमुद्धरेत् ॥ १५ ॥
दशसहस्रंजप्त्वातु सर्वकल्मषनाशिनी ।
सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो ब्रह्महागुरुतल्पगः ॥ १६ ॥
सुरापश्चविशुद्ध्येत लक्षजाप्यान्नसंशयः ।
प्राणायामत्रयंकृत्वा स्नानकालेसमाहितः ॥ १७ ॥
अहोरात्रकृतात्पापात्तत्क्षणादेवमुच्यते ।
सव्याहृतिकाःसप्रणवाः प्राणायामास्तुषोडश ॥ १८ ॥
अपिभ्रूणहनंमासात्पुनन्त्यहरहःकृताः ।
हुतादेवीविशेषेण सर्वकामप्रदायिनी ॥ १९ ॥
सर्वपापक्षयकरी वरदाभक्तवत्सला ।
शान्तिकामस्तुजुहुयात्सावित्रीमक्षतैःशुचिः ॥ २० ॥
हन्तुकामोपमृत्युंच घृतेनजुहुयात्तथा ।

व्याहृति प्रणव शिरो मन्त्र इन सबके सहित गायत्री को जो मनुष्य सदैव जपते हैं उन को कहीं भी भय नहीं होता ॥१४॥ सौ बार जपी हुई गायत्री दिन के पापों को नष्ट करती है हजार बार जपी हुई पातकों से उद्धार करती है ॥१५॥ दश हजार बार जपी हुई सब पापों का नाश करती है । सुवर्ण की चोरी, ब्रह्महत्या गुरुपत्नी गमन ॥ १६ ॥ मदिरा पान इन महापातकों का भी कर्त्ता ब्राह्मण लक्ष गायत्री का जप करने से निःसन्देह शुद्ध हो जाता है । स्नान के समय सावधानी से तीन प्राणायाम करके ॥ १७ ॥ एक रात दिन में किये पाप से उसी क्षण में छूट जाता है। व्याहृति और ओंकार सहित सोलह प्राणायाम ॥ १८ ॥ प्रति दिन करने से एक मास में भ्रूण गर्भ की हत्या करने वाले को भी शुद्ध निर्दोष कर देते हैं। और गायत्री से किया होम सब कामनाओं का देने वाला होता है ॥ १९ ॥ भक्ति है प्यारी जिस को ऐसी वर देने वाली गायत्री की अधिष्ठात्री देवता सब पापों को क्षय करती है । जो मनुष्य शान्ति चाहै वह शुद्ध होकर गायत्री का होम बिना कुटे जौ वा धानों से करे ॥ २० ॥ जो पुरुष अकाल मृत्यु को दूर किया चाहै, वह घी से, लक्ष्मी

श्रीकामस्तुतथापद्मैर्बिल्वैःकाञ्चनकामुकः ॥ २१ ॥
ब्रह्मवर्चसकामस्तु पयसाजुहुयात्तथा ।
घृतप्लुतैस्तिलैर्वन्हिं जुहुयात्सुसमाहितः ॥ २२ ॥
गायत्र्ययुतहोमाच्च सर्वपापःप्रमुच्यते ।
पापात्मालक्षहोमेन पातकेभ्यःप्रमुच्यते ॥ २३ ॥
अभीष्टंलोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सितम् ।
गायत्रीवेदजननी गायत्रीपापनाशिनी ॥ २४ ॥
गायत्र्याःपरमंनास्ति दिविचेहचपावनम् ।
हस्तत्राणप्रदादेवी पततांनरकार्णवे ॥ २५ ॥
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणोनियतःशुचिः ।
गायत्रीजाप्यनिरतं हव्यकव्येषुभोजयेत् ॥ २६ ॥
तस्मिन्नतिष्ठतेपापमब्बिन्दुरिवपुष्करे ॥ २७ ॥
जप्येनैवतुसंसिद्धयेद् ब्राह्मणोनात्रसंशयः ।

को चाहने वाला कमलों से सुवर्ण को चाहने वाला बिल्व फलों से गायत्री मन्त्र द्वारा होम करे ॥२१॥ जो ब्रह्म तेज को चाहै. वह दूध से गायत्री द्वारा होम करे और भली प्रकार सावधानी से घी मिले तिलों से ॥ २२ ॥ दश हजार गायत्री द्वारा किये होम से सब पापों से छूट जाता है। और बड़ा पापी मनुष्य भी लक्ष गायत्री के होम से पातकों से छूट जाता है ॥ २३ ॥ तथा वह वांछित लोक को और वांछित फल को प्राप्त होता है। गायत्री वेदों की माता और पापों की नाश करने वाली है ॥ २४ ॥ इस लोक तथा परलोक-स्वर्ग में गायत्री से अधिक पवित्र करने वाला कोई नहीं है। नरक रूप समुद्र में गिरने वाले मनुष्यों को हाथ पकड़ कर रक्षा करने वाली गायत्री ही है ॥ २५ ॥ तिस से नियम पूर्वक शुद्धता से ब्राह्मण नित्य गायत्री का अभ्यास नाम जप करे। गायत्री के जप में तत्पर ब्राह्मण को हव्य (जो अन्न देवताओं के लिये बनाया हो) और कव्य (जो पितरों के निमित्त हो) सो जिमावे ॥ २६ ॥ क्योंकि इस ब्राह्मण में पाप इस प्रकार नहीं ठहरते जैसे कमल के पत्ते पर जल की बूंद ॥ २७ ॥ जप से ही ब्राह्मण सिद्धि को प्राप्त हो जाता है इसमें संशय नहीं है. वह ब्राह्मण चाहै अन्य कोई पुण्य का काम

कुर्यादन्यन्नवाकुर्यात् मैत्रोब्राह्मणउच्यते ॥ २८ ॥
उपांशुःस्याच्छतगुणः साहस्रोमानसःस्मृतः ।
नोच्चैर्जपंबुधःकुर्यात्सावित्र्यास्तुविशेषतः ॥ २९ ॥
सावित्रीजप्यनिरतः स्वर्गमाप्नोतिमानवः ।
गायत्रीजाप्यनिरतो मोक्षोपायंचविन्दति ॥ ३० ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नातःप्रयतमानसः ।
गायत्रींतुजपेद्भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ ३१ ॥
इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

स्नातःकृतजप्यस्तदनु प्राङ्मुखो दिव्येन तीर्थेन देवानुदकेन तर्पयेत् ॥ १ ॥ अथ तर्पणविधिः॥२॥ ओं० भगवन्तं शेषं तर्पयामि ॥ ३ ॥ कालाग्निरुद्रंततो रुक्मभौमंतथैवच ।
श्वेतभौमंततःप्रोक्तं पातालानांचसप्तकम् ॥ ४ ॥
जम्बुद्वीपंततःप्रोक्तं शाकद्वीपंततःपरम् ।
गोमेदपुष्करेतद्वच्छाकाख्यंचततःपरम् ॥ ५ ॥

करे वा न करे तो भी उस को मैत्र कहते हैं ॥ २८ ॥ वाणी से साफ २ बोलने की अपेक्षा उपांशु (मन्द) जप सौगुणा और मानस (मन २ में) जप करना हजार गुणा अधिक फल दायक कहा है । ज्ञानवान् मनुष्य ऊंचे स्वर से जप न करे और गायत्रीका जप तो ऊंचे स्वर से विशेष कर कदापि न करै ॥२९॥ गायत्री के जप में तत्पर मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त होता और गायत्री के जपमें तत्पर मनुष्य मोक्ष के उपाय को भी प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ तिससे सब प्रयत्न से स्नान के पीछे मन को रोक कर भक्ति से सब पापों के नाश करने वाली गायत्री को जपे ॥ ३१ ॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में बारहवां अध्याय पूरा हुआ ॥

स्नान और सन्ध्योपासन जप करके पूर्वाभिमुख बैठा पुरुष देवतीर्थ से देवताओं का जल से तर्पण करे ॥ १ ॥ अब तर्पणविधि कहते हैं ॥ २ ॥ ओं भगवान् शेषको तृप्त करता हूं ॥ ३ ॥ फिर कालाग्निरुद्र, रुक्मभौम, श्वेतभौम, सातों पाताल सब को क्रम से तृप्त करै अर्थात् (अतलं तर्पयामि) इत्यादि रीति से पृथक् २ सबका तर्पण करे ॥ ४ ॥ फिर जम्बूद्वीप, शाकद्वीप, गोमेद, पुष्कर, और शाक, इन को पृथक् २ जलदान से तृप्त करै ॥ ५ ॥

शार्वरं ततः स्वधामानं ततो हिरण्यरोमाणं ततः कल्पस्थायिनो लोकांस्तर्पयेत् ॥ ६ ॥ लवणोदकं ततः क्षीरोदं ततो घृतोदं तत इक्षूदं ततः स्वादूदं तत इति सप्त समुद्रकं प्रत्यृचं पुरुषसूक्तेनोदकाञ्जलीन् दद्यात् पुष्पाणि च तथा भक्त्या॥७॥ अथ कृतापसव्यो दक्षिणामुखोऽन्तर्जानुः पित्र्येण पितॄणां यथाश्रद्धं प्रकाममुदकं दद्यात् ॥ ८ ॥ सौवर्णेन पात्रेण राजतेनौदुम्बरेण खड्गपात्रेणान्यपात्रेण वोदकं पितृतीर्थं स्पृशन्दद्यात् ॥९॥ पित्रे पितामहाय प्रपितामहाय मात्रे पितामह्यै प्रपितामह्यै मातामहाय प्रमातामहाय वृद्धप्रमातामहाय मातामह्यै प्रमातामह्यै वृद्धप्रमातामह्यै सप्तमात्पूरुषात् पितृपक्षे यावतां नाम जानीयात् पितृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा गुरूणां मातृपक्षाणां तर्पणं कुर्यात् ॥१०॥ मातृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा सम्बन्धिबान्धवानां कुर्यात् तेषां कृत्वा सुहृदां कुर्यात् ॥ ११ ॥ भवन्ति चात्र श्लोकाः ॥ १२ ॥

फिर शार्वर, स्वधामा, हिरण्यरोमा, कल्पतक ठहरने वाले लोक, इन सबको तृप्त करे ॥६॥ फिर लवणोद, क्षीरोद, घृतोद, इक्षूद, इन सात समुद्रों को तृप्त करे। फिर परमेश्वर को पुरुष सूक्त (सहस्रशीर्षादि) के प्रत्येक मन्त्रसे जलकी अंजली देवे और भक्ति के साथ पुष्पों को समर्पण करे ॥ ७ ॥ फिर अपसव्य हो कर दक्षिण को मुख किये और जानुके भीतर हाथ करके पितृतीर्थ से श्रद्धा के साथ यथेच्छ जल पितरों को देवे ॥ ८ ॥ सुवर्ण, चांदी, गूलर, गेंडा, इन सुवर्णादि के पात्रों से अथवा किसी अन्य ताम्रादि के पात्र से पितृ तीर्थ का स्पर्श करते हुए जलको देवे ॥ ९ ॥ पिता, पितामह, (दादा) प्रपितामह (परदादा) माता पितामही, प्रपितामही मातामह, (नाना) प्रमातामह, (परनाना) वृद्धप्रमातामह, मातामही (नानी) प्रमातामही, (परनानी) वृद्धप्रमातामही, सात पीढ़ी तक पिता के पक्ष में जितनों का नाम जानता हो, पितृपक्ष वालोंका तर्पण करके, गुरु और मातृपक्षवालों का तर्पण करे ॥ १० ॥ और मातृपक्षवालों का तर्पण करके अन्य सम्बन्धि तथा बान्धवोंका तर्पण करे ॥ ११ ॥ इस तर्पणके विषयमें श्लोक भी प्रमाण हैं ॥१२॥

विनारौप्यसुवर्णेन विनाताम्रतिलेनच ।
विनादर्भैश्चमन्त्रैश्च पितृणांनोपतिष्ठते ॥ १३ ॥
सौवर्णराजताभ्यांच खड्गेनौदुम्बरेणच ।
दत्तमक्षयतांयाति पितृणांतुतिलोदकम् ॥ १४ ॥
हेम्नातुसहयद्दत्तं क्षीरेणमधुनासह ।
तदप्यक्षयतांयाति पितृणांतुतिलोदकम् ॥ १५ ॥
कुर्यादहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनवा ।
पयोमूलफलैर्वापि पितृणांप्रीतिमावहन् ॥ १६ ॥
स्नातःसंतर्पणंकृत्वा पितृणांतुतिलाम्भसा ।
पितृयज्ञमवाप्नोति प्रीणातिचपितृंस्तथा ॥ १७ ॥
इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
ब्राह्मणान्नपरीक्षेत दैवेकर्मणिधर्मवित् ।
पित्र्येकर्मणिसंप्राप्ते युक्तमाहुःपरीक्षणम् ॥ १ ॥
ब्राह्मणायेविकर्मस्था वैडालव्रतिकास्तथा ।

चांदी सोना, तांबा, तिल, कुश, और मन्त्र, इन के विना दिया जो जल वह पितरों को प्राप्त नहीं होता ॥ १३ ॥ सोना, चांदी गेंडा, गूलर, इन के पात्रों मे, पितरों को दिया जल अक्षय अविनाशी फल दायक होता है ॥१४॥ सोना, दूध, सहत, इन के साथ जो तिल सहित जल पितरों को दिया जाता है, वह भी अक्षय फलदायी है ॥१५॥ पितरों की श्रद्धा प्रीति प्रकट करता हुआ अन्न आदि, जल, दूध मूल, अथवा फलों से पितरों का प्रति दिन श्राद्ध करे ॥ १६ ॥ स्नान के पीछे तिल सहित जल से पितरों का तर्पण करने से पितृयज्ञ पूरा हो जाता है और पितर भी तृप्त हो जाते हैं ॥ १७ ॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में तेरहवां अध्याय पूरा हुआ ॥

धर्म का मर्म ज्ञाता पुरुष देवताओं के निमित्त किये दान पुण्यादि कर्म में ब्राह्मणों की परीक्षा न करे और पितरों के निमित्त श्राद्धादि कर्म हो तो परीक्षा करना आवश्यक कहा है ॥१॥ जो ब्राह्मण निषिद्ध कर्म को करते हैं अथवा बैडालव्रत (निर्दयी चित्त वाले) हैं, वा जिन के देह के अंगुली आदि

विनारौप्यसुवर्णेन विनाताम्रतिलेनच ।
विनादर्भैश्चमन्त्रैश्च पितॄणांनोपतिष्ठते ॥ १३ ॥
सौवर्णराजताभ्यांच खड्गेनौदुम्बरेणच ।
दत्तमक्षयतांयाति पितॄणांतुतिलोदकम् ॥ १४ ॥
हेम्नातुसहयद्दत्तं क्षीरेणमधुनासह ।
तदप्यक्षयतांयाति पितॄणांतुतिलोदकम् ॥ १५ ॥
कुर्यादहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनवा ।
पयोमूलफलैर्वापि पितॄणांप्रीतिमावहन् ॥ १६ ॥
स्नातःसंतर्पणंकृत्वा पितॄणांतुतिलाम्भसा ।
पितृयज्ञमवाप्नोति प्रीणातिचपितॄंस्तथा ॥ १७ ॥
इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
ब्राह्मणान्नपरीक्षेत दैवेकर्मणिधर्मवित् ।
पित्र्येकर्मणिसंप्राप्ते युक्तमाहुःपरीक्षणम् ॥ १ ॥
ब्राह्मणायेविकर्मस्था वैडालव्रतिकास्तथा ।

चांदी, सोना, तांबा, तिल, कुश, और मन्त्र, इन के विना दिया जो जल वह पितरों को प्राप्त नहीं होता ॥ १३ ॥ सोना चांदी, गेंडा, गूलर, इन के पात्रों से, पितरों को दिया जल अक्षय अविनाशी फल दायक होता है ॥१४॥ सोना, दूध, सहत, इन के साथ जो तिल सहित जल पितरों को दिया जाता है वह भी अक्षय फलदायी है॥१५। पितरों की श्रद्धा प्रीति प्रकट करता हुआ अन्न आदि, जल,-दूध मूल, अथवा फलों से पितरों का प्रति दिन श्राद्ध करे ॥ १६ ॥ स्नान के पीछे तिल सहित जल से पितरों का तर्पण करने से पितृयज्ञ पूरा हो जाता है और पितर भी तृप्त हो जाते हैं ॥ १७ ॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में तेरहवां अध्याय पूरा हुआ ॥

धर्म का मर्म ज्ञाता पुरुष देवताओं के निमित्त किये दान पुण्यादि कर्म में ब्राह्मणों की परीक्षा न करे और पितरों के निमित्त श्राद्धादि कर्म हो तो परीक्षा करना आवश्यक कहा है ॥१॥ जो ब्राह्मण निषिद्ध कर्म को करते हैं, अथवा वैडालव्रत (निर्दयी चित्त वाले) हैं, वा जिन के देह के अंगुली आदि

ऊनाङ्गाअतिरिक्ताङ्गा ब्राह्मणाःपङ्क्तिदूषकाः ॥ २ ॥
गुरूणांप्रतिकूलाश्च वेदाग्न्युत्सादिनश्चये ।
गुरूणांत्यागिनश्चैव ब्राह्मणाःपङ्क्तिदूषकाः ॥ ३ ॥
अनध्यायेष्वधीयानाः शौचाचारविवर्जिताः ।
शूद्रान्नरससंपुष्टा ब्राह्मणाःपङ्क्तिदूषकाः ॥ ४ ॥
षडङ्गवित्त्रिसुपर्णो बह्वृचोज्येष्ठसामगः ।
त्रिणाचिकेतःपञ्चाग्निर्ब्राह्मणाःपङ्क्तिपावनाः ॥५॥
ब्रह्मदेयानुसन्तानो ब्रह्मदेयाप्रदायकः ।
ब्रह्मदेयापतिर्यश्च ब्राह्मणःपङ्क्तिपावनः ॥ ६ ॥
ऋग्यजुःपारगायश्च साम्नांयश्चापिपारगः ।
अथर्वाङ्गिरसोऽध्येता ब्राह्मणःपङ्क्तिपावनः ॥ ७ ॥
नित्यंयोगरतोविद्वान् समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।

अंग न्यूनाधिक हैं, वे पंक्ति को दूषित करने वाले हैं इन्हें ब्राह्मणों को न जिमावे ॥ २ ॥ गुरुओं के जो प्रतिकूल हैं, वा जो वेद के अभ्यास तथा अग्निहोत्र के त्यागने वाले और जो गुरुओं को त्यागते हैं, ये भी पंक्ति के दूषक हैं ॥ ३ ॥ जो अनध्यायों में वेद का पढ़ने, जो शौच आचार से हीन और शूद्र के अन्न से बने रस से पुष्ट होंवे, ये भी पंक्ति के दूषक हैं ॥ ४ ॥ वेद के छः अंगों (शिक्षादि) को जो जाने, त्रिसुपर्ण को जो जाने, ऋग्वेद जिस ने पढ़ा हो, या ज्येष्ठ (बड़े) सामगान को जो गावे तीन वेद को जान कर नाचिकेत अग्नि में चयन यज्ञ करने वाला, पांच अग्नियों (गार्हपत्याऽऽहवनीय आदि) में अग्निहोत्रादि करने वाला, ये सब ब्राह्मण पंक्ति के पावन (पवित्र करने वाले) हैं ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मण कुल परम्परा से वेद को पढ़ता पढ़ाता हो, जो ब्राह्मणको देने योग्य दान देता हो और जो अनेक ब्राह्मणों के देनेयोग्य पदार्थों को स्वयं अकेला ही न लेवे, वह पङ्क्ति पावन कहाता है ॥ ६ ॥ जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद को पूरा २ जानता हो और आङ्गिरस अथर्व वेद को जिस ने पढ़ा हो, वह ब्राह्मण भी पङ्क्तिपावन है ॥७॥ जो विद्वान् नित्य योगाभ्यास में तत्पर हो, जो मट्टी, पत्थर और सुवर्ण को

ध्यानशीलोहियोविद्वान् ब्राह्मणःपङ्क्तिपावनः ॥ ८ ॥
द्वौदैवेप्राङ्मुखौत्रींश्च पित्र्येचोदङ्मुखांस्तथा ।
भोजयेद्विविधान्विप्रानेकैकमुभयत्रवा ॥ ९ ॥
भोजयेदथवाऽप्येकं ब्राह्मणंपङ्क्तिपावनम् ।
दैवेकृत्वातुनैवेद्यं पश्चाद्वन्हौतुतान्क्षिपेत् ॥ १० ॥
उच्छिष्टसन्निधौकार्यं पिण्डनिर्वपणंबुधैः ।
अभावेचतथाकार्यमग्निकार्यंयथाविधि ॥ ११ ॥
श्राद्धंकृत्वाप्रयत्नेन त्वराक्रोधविवर्जितः ।
उष्णमन्नंद्विजातिभ्यः श्रद्धयाविनिवेदयेत् ॥ १२ ॥
अन्यत्रपुष्पमूलेभ्यः पीठकेभ्यश्चपण्डितः ।
भोजयेद्विविधान्विप्रान्गन्धमाल्यसमुज्ज्वलान् ॥ १३ ॥
यत्किंचित्पच्यतेगेहे भक्ष्यंवाभोज्यमेववा ।

बराबर समझता हो और ध्यानशील पण्डित हो वह ब्राह्मण भी पङ्क्तिपावन है ॥ ८ ॥ दैव (विश्वेदेवा) कर्म में पूर्वाभिमुख दो ब्राह्मणों और पितृकर्म में उत्तराभिमुख अनेक प्रकार के तीन ब्राह्मणों, अथवा दोनों जगह एक २ ही ब्राह्मण को जिमावे ॥ ९ ॥ अथवा कहीं न मिलें तो पङ्क्तिपावन एक ही ब्राह्मण को श्राद्ध में जिमावे और दैव कर्म के निमित्त बनाये नैवेद्य को अग्नि में होम करदेवे ॥ १० ॥ भोजन किये ब्राह्मणों के उच्छिष्ट के समीप ही बुद्धिमान् मनुष्य पितरोंके लिये पिण्डदान करे और किसी कारण से सुपात्र न मिलें तो विधिपूर्वक उस अन्न को अग्नि में होम करे कि जो ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता ॥ ११ ॥ ब्राह्मणोंको भोजन कराने का अङ्ग यत्न से पिण्डदानरूप श्राद्ध को पूरा करके शीघ्रता और क्रोध से रहित मनुष्य श्रद्धा के साथ ताज़ा गर्म २ भोजन ब्राह्मणों को जिमावे ॥ १२ ॥ फूल मूल और पीढा नामक आसनोंको छोड़कर अर्थात् कुश आदि के शुद्ध आसन पर बैठाकर गन्ध और मालासे उज्ज्वल विविध ब्राह्मणोंको विचारशील जिमावे ॥ १३ ॥ जो कुछ भक्ष्य, वा भोज्य घरमे पकाया हो उसको पितरोंके समीप निवेदन किये विना कभी

आम्रमामलकीमिक्षुं मृद्वीकादधिदाडिमान् ।
विदार्यंश्चैवरम्भाद्याद्दद्याच्छ्राद्धेप्रयत्नतः ॥ २२ ॥
धानालाजेमधुयुते सक्तून्शर्करयासह ।
दद्याच्छ्राद्धेप्रयत्नेन शृङ्गाटकबिसेतकान् ॥ २३ ॥
भोजयित्वाद्विजान्भक्त्या स्वाचान्तान्दत्तदक्षिणान् ।
अभिवाद्यपुनर्विप्राननुव्रज्यविसर्जयेत् ॥ २४ ॥
निमन्त्रितस्तुयःश्राद्धे मैथुनंसेवतेद्विजः ।
श्राद्धंदत्त्वाचभुक्त्वाच युक्तःस्यान्महतैनसा ॥ २५ ॥
कालशाकंमहाशल्कं मांसंवार्ध्रीणसस्यच ।
खड्गमांसंतथानन्तं यमःप्रोवाचधर्मवित् ॥ २६ ॥
यद्ददातिगयाक्षेत्रे प्रभासेपुष्करेतथा ।
प्रयागेनैमिषारण्ये सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥ २७ ॥
गङ्गायमुनयोस्तीरे पयोष्ण्यामरकण्टके ।

आम के फल, आंवला, गाड़ा वा गन्ना, वा पौंडा, दाख, दही, अनार, विदारी कन्द, केला, इनको श्राद्ध में विशेष कर ब्राह्मणों को जिमावे ॥ २२ ॥ सहत से मिले भुंजे धान और खीलें खांड मिले सत्तू, शृंगाटक (जल की कटहली का फल) बिसतक (भिस) इन को श्राद्ध मे विशेष कर देवे ॥ २३ ॥ ब्राह्मणों को भक्ति से भोजन करा कर किया है आचमन जिन्हों ने और दी है दक्षिणा जिन को ऐसे ब्राह्मणों को फिर नमस्कार और अनु (पीछे २) दूर तक पहुंचा के विसर्जन करे ॥ २४ ॥ जो श्राद्ध में न्योता हुआ ब्राह्मण मैथुन करे उस को जो श्राद्ध में जिमावे, वह और भोजन कराने वाला दोनों बड़े पाप से युक्त होते हैं ॥ २५ ॥ ऋतु का शाक, महाशल्क नामक मछली, वार्ध्रीणस अधिक लम्बे कानोंवाले बकरा का मांस, और गैंडा का मांस इन को यमराज ने श्राद्ध में अनन्त फल देने वाले कहा है ॥ २६ ॥ गया, प्रभास, पुष्कर, प्रयाग, नैमिषारण्य इन तीर्थों में जा कर जो पितरों का श्राद्ध करता है, वह अक्षय फलदायी है ॥ २७ ॥ गंगा, यमुना के तीर पर, पयोष्णी नदी पर, अमरकंटक, नर्मदा और गया के तीर पर इन में पिण्ड

नर्मदायांगयातीरे सर्वमानन्त्यमुच्यते ॥ २८ ॥
वाराणस्यांकुरुक्षेत्रे भृगुतुङ्गेमहालये ।
सप्तवेण्यृषिकूपेच तदप्यक्षयमुच्यते ॥ २९ ॥
म्लेच्छदेशेतथारात्रौ सन्ध्यायांचविशेषतः ।
नश्राद्धमाचरेत्प्राज्ञो म्लेच्छदेशेनचव्रजेत् ॥ ३० ॥
हस्तिच्छायासुयद्दत्तं यद्दत्तंराहुदर्शने ।
विषुवत्ययनेचैव सर्वमानन्त्यमुच्यते ॥ ३१ ॥
प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तांत्रयोदशीम् ।
प्राप्यश्राद्धंप्रकर्तव्यं मधुनापायसेनवा ॥ ३२ ॥
प्रजांपुष्टिंयशःस्वर्गमारोग्यंचधनंतथा ।
नृणांश्राद्धैःसदाप्रीताः प्रयच्छन्तिपितामहाः ॥ ३३ ॥
इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥
जननेमरणेचैव सपिण्डानांद्विजोत्तम ।
त्र्यहाच्छुद्धिमवाप्नोति योऽग्निवेदसमन्वितः ॥ १ ॥
सपिण्डतातुपुरुषे सप्तमेविनिवर्तते ।

देने से अनन्त फल होता है ॥ २८ ॥ काशी कुरुक्षेत्र, भृगुतुङ्ग, महालय (कन्यागत) सप्तवेणी, ऋषि कूप, इन में पिण्ड दान अनन्त फल दायक कहा है ॥२९॥ म्लेच्छों के देश में, रात्रि में और विशेष कर सन्ध्या के समय, बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्ध न करे और म्लेच्छ देश में गमन भी न करे ॥ ३० ॥ गजच्छाया (यह योग पहिले लिख आये हैं) ग्रहण के समय,—विषुवत्संक्रांति और दोनों अयन इन में कहा है ॥ ३१ ॥ भादों मास की पूर्णमा बीत जाने पर, मघा नक्षत्र से संयुक्त त्रयोदशी के दिन, मधु सहत से व खीर से श्राद्ध करे ॥ ३२ ॥
सन्तान, पुष्टता, यश, स्वर्ग, आरोग्य, धन, इन सब को, प्रसन्न हुये पितर लोग सदैव मनुष्यों को देते हैं ॥ ३३ ॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में चौदहवां अध्याय पूरा हुआ ॥

सपिण्डों (पांच वा सात पीढ़ी वालों) के जन्म, अथवा मरण में अग्निहोत्री और नियमानुसार वेदाध्ययन कर्त्ता ब्राह्मण, तीन दिन में शुद्ध होता है ।१। सातवीं पीढ़ी में सपिण्डता निवृत्त हो जाती है । और गुण कर्म हीन जाति

नामधारकविप्रस्तु दशाहेनविशुध्यति ॥ २ ॥
क्षत्रियोद्वादशाहेन वैश्यःपक्षेणशुध्यति ।
मासेनतुतथाशूद्रः शुद्धिमाप्नोतिनान्तरा ॥ ३ ॥
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावेविशुध्यति ।
अजातदन्तबालेतु सद्यःशौचंविधीयते ॥ ४ ॥
अहोरात्रात्तथाशुद्धिर्बालेत्वकृतचूडके ।
तथैवानुपनीतेतु त्र्यहाच्छुध्यन्तिबान्धवाः ॥ ५ ॥
अनूढानांतुकन्यानां तथैवशूद्रजन्मनाम् ।
अनूढभार्यःशूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्परम् ॥ ६ ॥
मृत्युंसमधिगच्छेच्चेन्मासात्तस्यापिबान्धवाः ।
शुद्धिंसमधिगच्छेयुर्नात्रकार्याविचारणा ॥ ७ ॥
पितृवेश्मनियाकन्या रजःपश्यत्यसंस्कृता ।
तस्यांमृतायांनाशौचं कदाचिदपिशाम्यति ॥ ८ ॥
हीनवर्णातुयानारी प्रमादात्प्रसवंव्रजेत् ।
प्रसवेमरणेतज्जमाशौचंनोपशाम्यति ॥ ९ ॥

मात्र से ब्राह्मण कहाने वाला दश दिन में शुद्ध होता है ॥ २ ॥ क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य एक पक्ष १५ दिन में और शूद्र एक मास में शुद्धि को प्राप्त होता है, पहिले नहीं ॥ ३ ॥ जितने महिने का गर्भ गिर जावे, उतने ही दिन में शुद्धि होती है और बालक के दांत उगने से पहिले मर जाने पर उसी समय शुद्धि कही है ॥ ४ ॥ मुण्डन से पहिले बालक के मरने पर एक दिन रात में और यज्ञोपवीत से पहिले मरने पर तीन दिन में, कुटुम्बी लोग शुद्ध होते हैं ॥ ५ ॥ बिना विवाही कन्या, शूद्रा स्त्री, और बिना विवाहा शूद्र, सोलह वर्ष की अवस्था से ऊपर, इन के मरने पर उस मृतक के कुटुम्बी लोग एक महीने में शुद्ध होते हैं, इस में विचार नहीं करना चाहिये ॥ ६ । ७ ॥ यदि बिना विवाही कन्या पिता के घर पर ही रजस्वला हो जाय, तो उसके मरने का अशौच जन्म पर्यन्त कभी भी निवृत्त नहीं होता ॥ ८ ॥ यदि नीच वर्ण की कन्या विवाह से पहिले प्रसूता होते समय मर जाय, तो उस के प्रसव और मरण के दोनों सूतक जन्म पर्यन्त कभी भी निवृत्त नहीं होते ॥ ९ ॥

यस्तुभुङ्क्तेपराशौचे वर्णीसोप्यशुचिर्भवेत् ।
आशौचशुद्धौशुद्धिश्च तस्याप्युक्तामनीषिभिः ॥ २३ ॥
पराशौचेनरोभुक्त्वा क्रमियोनौप्रजायते ।
भुक्त्वान्नंम्रियतेयस्य तस्ययोनौप्रजायते ॥ २४ ॥
दानंप्रतिग्रहोहोमः स्वाध्यायःपितृकर्मच ।
प्रेतपिण्डक्रियावर्जमाशौचेविनिवर्तते ॥ २५ ॥

इति शांखे धर्मशास्त्रे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

मृन्मयंभाजनंसर्वं पुनःपाकेनशुद्ध्यति ।
मद्यैर्मूत्रैःपुरीषैर्वा ष्ठीवनैःपूयशोणितैः ॥ १ ॥
संस्पृष्टंनैवशुद्ध्येत पुनःपाकेनमृन्मयम् ।
एतैरेवतथास्पृष्टं ताम्रसौवर्णराजतम् ॥ २ ॥
शुद्ध्यत्यावर्तितंपश्चादन्यथाकेवलाम्भसा ।

जो ब्रह्मचारी पराये घर सूतक में खाता है, वह भी अशुद्ध होता है और सूतक की शुद्धि होने पर उस की भी बुद्धिमानों ने शुद्धि कही है ॥२३॥ पराये अशौच में खाकर मनुष्य कीड़ों की योनि में जन्म लेता है और जिस के अन्न को खाकर पेट में रक्खे हुए मरता है उसी की जाति में पैदा होता है ॥२४॥ दान देना, दान लेना, होम, वेदपाठ, पितरों का कर्म, ये सब, प्रेत के लिये पिण्ड दान के कर्म को छोड़ कर सूतक से निवृत्त हो जाते हैं । अर्थात् सूतक के समय दानादि कर्म नहीं करने चाहिये ॥ २५ ॥

यह शांखस्मृति के भाषानुवाद में पन्द्रहवां अध्याय पूरा हुआ ॥१५॥

—:o:—

मट्टी का पात्र दुबारा पकाने से शुद्ध हो जाता है, परन्तु मदिरा, मूत्र, विष्ठा, थूक, राध (पीव) और रुधिर, ॥१॥ ये मद्यादि जिस में रक्खे गये हों, ऐसा मट्टी का पात्र दुबारा पकाने से भी शुद्ध नहीं होता और इन मद्यादि का ही स्पर्श जिस में हुआ हो, ऐसा तांबे, सोने और चांदी का पात्र ॥ २ ॥ फिर बनाने से शुद्ध होता और अन्य किसी प्रकार से अशुद्ध हो, सो केवल जल से धोकर शुद्ध होता है । खटाई के जल से धोने पर तांबा, सीसा और लाख के

अम्लोदकेनताम्रस्य सीसस्यत्रपुणस्तथा ॥ ३ ॥
क्षारेणशुद्धिःकांस्यस्य लोहस्यचविनिर्द्दिशेत् ।
मुक्तामणिप्रवालानां शुद्धिःप्रक्षालनेनतु ॥ ४ ॥
अब्जानांचैवभाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्यच ।
शाकवर्जंमूलफल द्विदलानांतथैवच ॥ ५ ॥
मार्ज्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिनायज्ञकर्मणि ।
उष्णाम्भसातथाशुद्धिं सस्नेहानांविनिर्द्दिशेत् ॥ ६ ॥
शयनासनयानानां स्फयशूर्पशकटस्यच ।
शुद्धिःसंप्रोक्षणाद्यज्ञे काष्ठमिन्धनयोस्तथा ॥ ७ ॥
मार्जनाद्वेश्मनांशुद्धिः क्षितेःशोधस्तुतत्क्षणात् ।
सम्मार्जितेनतोयेन वाससांशुद्धिरिष्यते ॥ ८ ॥
बहूनांप्रोक्षणाच्छुद्धिर्धान्यादीनांविनिर्द्दिशेत् ।
प्रोक्षणात्संहतानांच दारवाणांचतक्षणात् ॥ ९ ॥
सिद्धार्थकानांकल्केन शृङ्गदन्तमयस्यच ।
गोवालैःफलपात्राणामस्थ्नांशृङ्गवतांतथा ॥ १० ॥

पात्रादि की शुद्धि होती है ॥ ३ ॥ कांसे और लोहे के पात्रादि की शुद्धि खारे जल से और मोती मणि, मूंगा, इन की शुद्धि जल से धोने मात्र से हो जाती है ॥ ४ ॥ जल के विकारों से पैदा हुए वस्तु, सब प्रकार के पत्थर के पात्र, शाक को छोड़ कर, मूल, फल, और उड़द, मूंग आदि दाल वाले इन सब की शुद्धि धोने से होती है ॥ ५ ॥ यज्ञ कर्म में यज्ञ के पात्रों को मांजने से और चिकने पात्रों की गर्म जल से शुद्धि कही है ॥ ६ ॥ शय्या, आसन, सवारी, सूप, शकट (गाड़ी) चटाई, इन्धन, इन की यज्ञ में जल छिड़कने से शुद्धि होती ॥ ७ ॥ बुहारने से घरों की और उसी समय छील देने से पृथिवी की और जल के मार्जन से वस्त्रों की शुद्धि होती है ॥ ८ ॥ बहुत से अन्नादि राशि की संहत (मिले हुए) पदार्थों की छिड़कने से और काष्ठ के पात्रों की शुद्धि छील देने से होती है ॥ ९ ॥ सींग और हाथी के दांत आदि से बने वस्तुओं की शुद्धि ओषधियों के उबाले रस से और फल से बने पात्र, हाड़ और सींग वाले वस्तुओं की शुद्धि गौ के चंवर से होती है ॥ १० ॥

निर्यासानांगुडानांच लवणानांतथैवच ।
कुसुंभकुंकुमानांच ऊर्णाकार्पासयोस्तथा ॥ ११ ॥
प्रोक्षणात्कथिताशुद्धिरित्याहभगवान्यमः ।
भूमिष्ठमुदकंशुद्धं शुचितोयंशिलागतम् ॥ १२ ॥
वर्णगन्धरसैर्दुष्टैर्वर्जितंयदितद्भवेत् ।
शुद्धंनदीगतंतोयं सर्वदैवतथाकरः ॥ १३ ॥
शुद्धंप्रसारितंपण्यं शुद्धेचाजाश्वयोर्मुखे ।
मुखवर्जंतुगौःशुद्धा मार्जारश्चाक्रमेशुचिः ॥ १४ ॥
शय्याभार्याशिशुर्वस्त्रमुपवीतंकमण्डलुः ।
आत्मनःकथितंशुद्धं नशुद्धंहिपरस्यच ॥ १५ ॥
नारीणांचैववत्सानां शकुनीनांशुनांमुखम् ।
रात्रौप्रस्रवणेवृक्षे मृगयायांसदाशुचि ॥ १६ ॥
शुद्धाभर्तुश्चतुर्थेऽन्हि स्नानेनस्त्रीरजस्वला ।
दैवेकर्मणिपित्र्येच पञ्चमेऽहनिशुद्ध्यति ॥ १७ ॥
रथ्याकर्दमतोयेन ष्ठीवनाद्येनवाप्यथ ।

गोंद, गुड़, लवण, कुसुम्भ, ऊन, और कपास इन की ॥११॥ शुद्धि भी भगवान् यमराजने छिड़कने से कही है। पृथिवीके शुद्ध स्थल में और शिला पर पड़ा जल स्वतः ही शुद्ध होता है॥१२॥ यदि वह भूमिस्थ जल दुष्ट वर्ण, बुरा रस, और बुरे गंध से वर्जित हो, नदी का और आकर (खान) का जल सदा ही शुद्ध है ॥ १३ ॥ दूकान में फैली चीज, बकरी और घोड़े का मुख भी शुद्ध है। मुख को छोड़कर गौके सब अंग शुद्ध हैं और आक्रमण (किसी जानवर को पकड़ के मार डालने) में बिलाव शुद्ध है ॥ १४ ॥ शय्या, स्त्री बालक, वस्त्र, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, ये सब अपने ही शुद्ध कहे हैं और अन्य के नहीं ॥१५॥ स्त्री, बछड़े पक्षि, और कुत्ते का मुख, क्रमसे रात्रि में प्रस्त्रवण थन चूपने में, वृक्ष से फल गिरने में और शिकार करने मे सदव शुद्ध है ॥ १६ ॥ रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करके अपने पति के लिये और देवता वा पितरों के कर्म में पांचवें दिन शुद्ध हुई मानी जावे ॥ १७ ॥ यदि मनुष्य की नाभि से ऊपर के

नाभेरूर्द्ध्वंनरःस्पृष्टः सद्यःस्नानेनशुद्ध्यति ॥ १८ ॥
कृत्वामूत्रंपुरीषंवा स्नात्वाभोक्तुमनास्तथा ।
भुक्त्वाक्षुत्वातथासुप्त्वा पीत्वाचाम्भोऽवगाह्यच ॥१९॥
रथ्यामाक्रम्यवाऽऽचामेद्वासोविपरिधायच ।
कृत्वामूत्रंपुरीषंच लेपगन्धापहंद्विजः ॥ २० ॥
उद्धृतेनाम्भसाशौचं मृदाचैवसमाचरेत् ।
मेहनेमृत्तिकाःसप्त लिङ्गेद्वेपरिकीर्त्तिते ॥ २१ ॥
एकस्मिन्विंशतिर्हस्तेद्वयोर्ज्ञेयाश्चतुर्दश ।
तिस्रस्तुमृत्तिकाज्ञेयाः कृत्वानखविशोधनम् ॥ २२ ॥
तिस्रस्तुपादयोर्ज्ञेयाः शौचकामस्यसर्वदा ।
शौचमेतद्गृहस्थानां द्विगुणंब्रह्मचारिणाम् ॥ २३ ॥
त्रिगुणंतुवनस्थानां यतीनांतुचतुर्गुणम् ।
मृत्तिकाचविनिर्दिष्टा त्रिपर्वंपूर्यतेयया ॥ २४ ॥

इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

शरीर में नाभि की गर्दन का जल या थूक लगजाय तो उसी समय स्नान करने से शुद्ध होता है ॥१८॥ लघु शंका, मल का त्याग, भोजन करना, नाक छिनकना, सोना, जल पीना और जल में अवगाहन (स्नान आदि) इन कामों को करके भोजन से पहिले ॥१९॥ गली में चल कर और वस्त्रों को धारण करके आचमन करे मल मूत्र का त्याग करके द्विज जिससे दुर्गन्ध दूर हो ॥ २० ॥ ऐसी शुद्धि कूपादि से निकासे जल और मिट्टी से करे, मल मूत्र त्यागने पश्चात् गुदेन्द्रिय में सात वार, लिंगेन्द्रिय में दो वार मट्टी लगानी कही है ॥ २१ ॥ एक बांये हाथ में बीस वार और फिर दोनों में चौदह वार फिर नखों की शुद्धि करके तीन वार मट्टी लगानी जानो ॥ २२ ॥ शुद्धि की इच्छा वाले पुरुष को तीन वार पगों में मट्टी लगानी कही है। यह शुद्धि गृहस्थों के लिये कही है इससे दूनी ब्रह्मचारियों को ॥२३॥ तिगुनी वानप्रस्थों को और चौगुनी संन्यासियों के लिये जानो और प्रत्येक वार में इतनी मट्टी लेवे जिससे हाथ के तीन अंगुल भर जावें ॥ २४ ॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में सोलहवां अध्याय पूरा हुआ ॥

नित्यंत्रिषवणस्नायी कृत्वापर्णकुटींवने ।
अधःशायीजटाधारी पर्णमूलफलाशनः ॥ १ ॥
ग्रामंविशेच्चभिक्षार्थं स्वकर्मपरिकीर्तयन् ।
एककालंसमश्नीयाद्वर्षेतुद्वादशेगते ॥ २ ॥
हेमस्तेयीसुरापश्च ब्रह्महागुरुतल्पगः ।
व्रतेनैतेनशुध्यन्ते महापातकिनस्त्विमे ॥ ३ ॥
यागस्थंक्षत्रियंहत्वा वैश्यंहत्वाचयाजकम् ।
एतदेवव्रतंकुर्यादात्रेयीविनिषूदकः ॥ ४ ॥
कूटसाक्ष्यंतथैवोक्त्वा निःक्षेपमपहृत्यच ।
एतदेवव्रतंकुर्यात्त्यक्त्वाचशरणागतम् ॥ ५ ॥
आहिताग्नेःस्त्रियंहत्वा मित्रंहत्वातथैवच ।
हत्वागर्भमविज्ञातमेतदेवव्रतंचरेत् ॥ ६ ॥
वनस्थंचद्विजंहत्वा पार्थिवंचकृतागसम् ।
एतदेवव्रतंकुर्याद्द्विगुणंचविशुद्धये ॥ ७ ॥
क्षत्रियस्यचपादोनं वधेऽर्द्धंवैश्यघातने ।

प्रायश्चित्ती पुरुष वन में ढांक आदि के पत्तों की कुटी बनाकर उस में बसे, सायं,प्रातः,और मध्यान्ह में तीन बार स्नान करे, पृथ्वी पर सोवे,जटाओं को धारण करे, वृक्षोंके पत्ते, मूल, फल, इन का भोजन करे ॥ १ ॥ अपने कर्म को कहता हुआ भिक्षा मांगने के लिये गांव में जाय, बारह वर्ष पर्यन्त एक काल भोजन करै ॥ २ ॥ इस प्रकार सुवर्ण का चोर, ब्रह्म हत्या करने वाला तथा—गुरुस्त्री गामी, ये चारो महापातकी ब्राह्मणादि इस व्रत से शुद्ध होते हैं ॥ ३ ॥ यज्ञ करते हुए क्षत्रिय को और यज्ञ करने वाले वैश्य को मारकर और रजस्वला स्त्री को मार डालने वाला भी यही व्रत करे ॥ ४ ॥ झूंठी गवाही देकर, न्यास (धरोहर) को मार लेने पर और अपने शरण आये को त्याग करके भी यही व्रत करे ॥ ५ ॥ अग्निहोत्री की स्त्री, मित्र, और विना जाने गर्भ को मार कर भी यही व्रत करे ॥ ६ ॥ वनवासी ब्राह्मण और अपराधी राजा इन को मार कर भी विशेष शुद्धि के लिये उक्त से दूना व्रत करै ॥ ७ ॥ वनवासी क्षत्रिय के मारने में पौन, वनस्थ वैश्य के और स्त्री के

अर्द्धमेवसदाकुर्यात्स्त्रीवधेपुरुषस्तथा ॥ ८ ॥
पादन्तुशूद्रहत्यायामुदक्यागमनेतथा ।
गोवधेचतथाकुर्यात्परदारगतस्तथा ॥ ९ ॥
पशून्हत्वातथाग्राम्यान् मासंकृत्वाविचक्षणः ।
आरण्यानांवधेतद्वत्तदर्धंतुविधीयते ॥ १० ॥
हत्वाद्विजंतथासर्पंजलेशयविलेशयान् ।
सप्तरात्रं तथाकुर्याद्व्रतंब्रह्महणस्तथा ॥ ११ ॥
अनस्थ्नांशकटंहत्वा सास्थ्नांदशशतंतथा ।
ब्रह्महत्याव्रतंकुर्यात्पूर्णसंवत्सरंनरः ॥ १२ ॥
यस्ययस्यचवर्णस्य वृत्तिच्छेदंसमाचरेत् ।
तस्यतस्यवधेप्रोक्तं प्रायश्चित्तंसमाचरेत् ॥ १३ ॥
अपहृत्यतुवर्णानां भुवंप्राप्यप्रमादतः ।
प्रायश्चित्तंवधेप्रोक्तं ब्राह्मणानुमतंचरेत् ॥ १४ ॥
गोजाश्वस्यापहरणे मणीनांरजतस्य च ।
जलापहरणेचैव कुर्यात्संवत्सरव्रतम् ॥ १५ ॥
तिलानांधान्यवस्त्राणांमद्यानामामिषस्यच ।

मारने में उक्त में से आधा व्रत करे ॥ ८ ॥ शूद्र की हत्या, रजस्वला स्त्री के गमन, गोवध, और परस्त्री के गमन में उक्त में से चौथाई व्रत को करे ॥९॥ गाम के तथा बन के पशुओं को एक मास तक मार कर उक्त आधा व्रत कहा है ॥१०॥ पक्षी, सांप, जल और बिल में रहने वाले जीव, इन को मार कर ब्रह्महत्या का व्रत सात दिन तक करे ॥ ११ ॥ बिना हड्डी वाले जीवों की भरी गाड़ी और हाड़ वालों के एक हजार को मार कर मनुष्य एक वर्ष तक सम्पूर्ण ब्रह्म हत्या का व्रत करे ॥ १२ ॥ जिस २ वर्ण की जीविका में हानि करे । उसी २ वर्ण की हत्या का प्रायश्चित्त करे ॥१३॥ वर्णों की भूमि को चोरी से अनजाने लेकर ब्राह्मणों की आज्ञा से हत्या का जो प्रायश्चित्त है उस को करे ॥ १४ ॥ गौ, बकरी, घोड़ा, मणी, चांदी, जल, इन की जो चोरी करे वह एक वर्ष तक उक्त व्रत करे ॥ १५ ॥ तिल, अन्न, वस्त्र, मदिरा, मांस, इन

संवत्सरार्द्धंकुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥ १६ ॥
तृणेक्षुकाष्ठतक्राणां रसानामपहारकः ।
मासमेकंव्रतंकुर्याद्गन्धानांसर्पिषांतथा ॥ १७ ॥
लवणानांगुडानांच मूलानांकुसुमस्यच ।
मासार्द्धंतुव्रतंकुर्यादेतदेवसमाहितः ॥ १८ ॥
लोहानांविदलानांच सूत्राणांचर्मणांतथा ।
एकरात्रंव्रतंकुर्यादेतदेवसमाहितः ॥ १९ ॥
भुक्त्वापलाण्डुलशुनं मद्यंचकवकानिच ।
नारंमलंतथामांसं विड्वराहंखरंतथा ॥ २० ॥
गौधेरकुञ्जरोष्ट्रंच सर्वंपाञ्चनखंतथा ।
क्रव्यादंकुक्कुटंग्राम्यं कुर्यात्संवत्सरव्रतम् ॥ २१ ॥
भक्ष्याःपञ्चनखास्त्वेते गोधाकच्छपशल्लकः ।
खड्गश्चशशकश्चैव तान्हत्वाचचरेद्व्रतम् ॥ २२ ॥
हंसंमद्गुंबकंकाकं काकोलंखञ्जरीटकम् ।
मत्स्यादांश्चतथामत्स्यान्बलाकंशुकसारिके ॥२३ ॥

की चोरी करके छः महीने तक सावधानी से उक्त व्रत करै ॥ १६ ॥ तृण, गांडा, काठ, मठा, रस, सुगन्ध, घी इन का चोर एक महीना तक व्रत करै ॥ १७ ॥ लवण, गुड़, मूल, फूल, इन की चोरी करने वाला सावधानी से पन्द्रह दिन यही व्रत करै ॥ १८ ॥ लोहे के पात्र बांस के पात्र, सूत, चाम, इन की चोरी करने वाला सावधान हो कर एकदिनरात यही व्रत करै ॥ १९ ॥ पलाण्डु, (प्याज) लहशन, मदिरा, कवक (कठफूल) मनुष्य का मल, मनुष्य का मांस विष्ठा खाने वाले सूकर और गधा का मांस इन को खा कर ॥ २० ॥ गौधेय (गोह का बच्चा) हाथी, ऊंट, सब पांच नखवाले, कच्चा मांस खाने वाले जीव, और गांव का मुरगा इन सब का मांस खा कर एक वर्ष तक उक्त व्रत करै ॥ २१ ॥ परन्तु गोह, कछुवा, सेही, गैंडा, खरगोश, ये पांच नखों वाले पांच भक्ष्य हैं और इन पांचों को मारकर भी एकवर्ष तक व्रत को करै ॥२२॥ हंस–मद्गुर, (मत्स्यभेद वा जलकाक) बगुला, बलाका, कौआ, काकोल, (सर्प) खञ्जरीट(खञ्जन पक्षि) मछलीको खानेवाली -मछली, तोता, सारिका (मैना,)॥२३॥

चक्रवाकंप्लवंकोकं मण्डूकंभुजगंतथा ।
मासमेकंव्रतंकुर्यादेतच्चैवनभक्षयेत् ॥ २४ ॥
राजीवान्सिंहतुण्डांश्च शकुलांश्चतथैवच ।
पाठीनरोहितौभक्ष्यौ मनुस्येपुपरिकीर्तितौ ॥ २५ ॥
जलेचरांश्चजलजान् मुखाग्रनखविष्किरान् ।
रक्तपादान्जालपादान्सप्ताहंव्रतमाचरेत् ॥ २६ ॥
तित्तिरिंचमयूरंच लावकंचकपिञ्जलम् ।
वार्ध्रीणसंवर्त्तकंच भक्ष्यानाहयमस्तथा ॥ २७ ॥
भुक्त्वाचोभयतोदन्तं स्तथैकशफदंष्ट्रिणः ।
तथाभुक्त्वातुमांसंवै मासार्द्धंव्रतमाचरेत् ॥ २८ ॥
स्वयंमृतंवृथामांसं माहिषंत्वाजमेवच ।
गोश्चक्षीरंविवत्सायाः संधिन्याश्चतथापयः ॥ २९ ॥
संधिन्यमेध्यंभक्षित्वा पक्षंतुव्रतमाचरेत् ।
क्षीराणियान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशनेबुधः ॥ ३० ॥
सप्तरात्रंव्रतंकुर्याद्यदेतत्परिकीर्तितम् ।

चकवा, प्लव (जल का पक्षी) कोक (कोकाहल) मेंडक, सर्प इनको खाकर एक महीना तक व्रत करै और आगे इनको कभी नखाय ॥२४॥ राजीव सिंहतुंड, शकुल, पाठीन, रोहित, इतने नामों वाली मछली भक्ष्य कही हैं ॥२५॥ जल में विचरने और जल में पैदा होने वाले, मुख के अग्रभागमें जो नख उनसे खोदने वाले जिनके पग लालहों, और जिनके जाल के समान पगहों, उन जीवोंका मांस खाकर सातदिन व्रत करै ॥२६॥ तीतर, मोर, लावक (लवा) कपिंजल, वार्धीणस, वर्त्तक, ये यमराजने भक्ष्य कहेहैं ॥२७॥ जिनके दोनों ओर दांत होते, जिनके एक जुड़े खुर होते, जो एक ओर दांत वाले हैं उनका मांस खाकर पंद्रह दिन व्रत करै ॥२८॥ स्वयं मरे जीवका मांस, भैंस और बकरीका मांस, जिस का बछड़ा मरगयाहो अथवा जो संधिनी (गाभिन हो जाने पर दूध देतीहो) उस गौ का दूध ॥२९॥ संधिनी गौ का अशुद्ध मूत्रादि इनको खाकर पंद्रहदिन व्रत करै और जो दूध अभक्ष्यहैं उनके विकारों (दही, मट्ठा, कढ़ी आदि) को खाकर बुद्धिमान् पुरुष ॥३०॥ सात दिन तक उक्त व्रतको करै । वृक्षका लाल गोंद, और जो गोंद वृक्षके

लोहितान्वृक्षनिर्यासान्व्रश्चनप्रभवांस्तथा ॥ ३१ ॥
केवलानिचशुक्तानि तथापर्युषितंचयत् ।
गुडशुक्तंतथाभुक्त्वा त्रिरात्रंचव्रतीभवेत् ॥ ३२ ॥
दधिभक्ष्यंचशुक्तेषु यच्चान्यद्दधिसंभवम् ।
गुडशुक्तंतुभक्ष्यंस्यात् ससर्पिष्कमितिस्थितिः ॥ ३३ ॥
यवगोधूमजाःसर्वे विकाराःपयसश्चये ।
राजवाडवकुल्यंच भक्ष्यंपर्युषितंभवेत् ॥ ३४ ॥
सजीवपक्वंमांसंच सर्वंयत्नेनवर्जयेत् ।
संवत्सरंव्रतंकुर्यात् प्राश्यैतान्ज्ञानतस्तुतान् ॥ ३५ ॥
शूद्रान्नंब्राह्मणोभुक्त्वा तथारङ्गावतारिणः ।
चिकित्सकस्यक्षुद्रस्य तथास्त्रीमृगजीविनः ॥ ३६ ॥
षण्डस्यकुलटायाश्च तथाबन्धनचारिणः ।
वद्धस्यचैवचोरस्य अवीरायाःस्त्रियस्तथा ॥ ३७ ॥
चर्मकारस्यवेनस्य क्लीबस्यपतितस्यच ।
रुक्मकारस्यधूर्त्तस्य तथावार्द्धुषिकस्यच ॥ ३८ ॥
कदर्यस्यनृशंसस्य वेश्यायाःकितवस्यच ।

गोदने से निकले हों ॥३१॥ केवल शुक्त (खटाये हुए) और वासी पदार्थ, खटाया बिगड़ा हुआ गुड़का विकार इन को खाकर तीन दिन व्रत करे ॥ ३२ ॥ विकार से खटाये हुए पदार्थों में दही, तथा दही से बने कढ़ी, रायतादि, घी जिस में मिला हो ऐसा खटाया गुड़ ये शुक्तों में भक्ष्य कहे हैं ॥ ३३ ॥ जौ, गेहूं, दूध,—इन से बने सब विकार और राजवाड़व नामक जीव का मांस ये वासी (धरे हुए) भी भक्ष्य हैं ॥३४॥ जीते जीवों के पकाये मांस को सब प्रकार त्याग देवे और इन पूर्वोक्त अभक्ष्य पदार्थों को ज्ञान पूर्वक खावे तो एक वर्ष तक व्रत करे ॥३५॥ शूद्र, रंगावतारी (नाटकी) वैद्य, क्षुद्रबुद्धि, स्त्री को नचा के तथा मृगों को मार के जीविका करने वाला ॥३६॥ नपुंसक, व्यभिचारिणी स्त्री, बन्धन चारी, (डाकिये) कैदी चोर, पति पुत्र हीन स्त्री, ॥ ३७ ॥ चमार, वेन, क्लीव, (नामर्द) पतित, सुनार, धूर्त नाम अन्य की हानि करने वाला, व्याज लेने वाला, ॥ ३८ ॥ कंजूस, हिंसक, वेश्या, ज्वारी, इन शूद्रादि

गणान्नंभूमिपालान्नमन्नंचैवश्वजीविनाम् ॥ ३९ ॥
मौञ्जिकान्नंसूतिकान्नं भुक्त्वामासंव्रतंचरेत् ।
शूद्रस्यसततंभुक्त्वा षण्मासान्व्रतमाचरेत् ॥ ४० ॥
वैश्यस्यतुतथाभुक्त्वा त्रीन्मासान्व्रतमाचरेत् ।
क्षत्रियस्यतथाभुक्त्वा द्वौमासौव्रतमाचरेत् ॥ ४१ ॥
ब्राह्मणस्यतथाभुक्त्वा मासमेकंव्रतंचरेत् ।
आपःसुराभाजनस्थाः पीत्वापक्षंव्रतंचरेत् ॥ ४२ ॥
मद्यभाण्डगताःपीत्वा सप्तरात्रंव्रतंचरेत् ।
शूद्रोच्छिष्टाशनेमासं पक्षमेकंतथाविशः ॥ ४३ ॥
क्षत्रियस्यतुसप्ताहं ब्राह्मणस्यतथादिनम् ।
अश्राद्धाशनेविद्वान् मासमेकंव्रतीभवेत् ॥ ४४ ॥
परिवित्तिःपरिवेत्ता यथाचपरिविन्दति ।
व्रतंसंवत्सरंकुर्युर्दातृयाजकपञ्चमाः ॥ ४५ ॥
काकोच्छिष्टंगवाघ्रातं भुक्त्वापक्षंव्रतीभवेत् ।

का अन्न, बहुत मनुष्यों के वृन्द का अन्न, राजा का अन्न [illegible] कुत्ते रखने वालों का अन्न ॥३९॥ मूञ्ज के व्यापारी और सूतिका का अन्न खाकर एक मास तक व्रत करे और निरन्तर शूद्र के अन्न को खाकर छ मास तक व्रत करे ॥४०॥ वैश्यका अन्न निरन्तर खाकर तीन महीने और क्षत्रिय का अन्न निरन्तर खाकर दो महीने व्रत करे ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणका अन्न निरन्तर खाकर एक महीने तक व्रत करे और मदिरा के पात्र मे रक्खा जल पीकर पन्द्रह दिन तक व्रत करे ।४२॥ गुड़ की मदिरा के पात्र का जलपीकर सात दिन व्रत करे। शूद्रका उच्छिष्ट खाकर एक महीना और वैश्य का उच्छिष्ट खाकर पन्द्रह दिन व्रत करे ॥ ४३ ॥ क्षत्रिय का उच्छिष्ट अन्न खाकर सात दिन, ब्राह्मण का उच्छिष्ट अन्न खाकर एक दिन और अयाद्‌शाद्ध के श्राद्ध में खाकर एक महीना ज्ञानवान् मनुष्य व्रत करे ॥ ४४ ॥ परिवेत्ता परिवित्ति जिस स्त्री के साथ परिवेत्ता ने बड़े भाई से पहिले विवाह किया हो वह स्त्री कन्या का दाता और पांचवा याजक (विवाह पढ़ने वाला) ये पांचो एक वर्ष तक व्रत करें ॥ ४५ ॥ कौवे का उच्छिष्ट, गौ का सूघा अन्न इनको खाकर पंद्रह दिन व्रत करे और बाल कीड़ा, मूसा, इन इन मे जो दूषित हो अर्थात बाल आदि गड़ गये हों

दूषितंकेशकीटैश्च मूषिकालाङ्गुलेनच ॥ ४६ ॥
मक्षिकामशकेनापि त्रिरात्रंतुव्रतीभवेत् ।
कृशराक्षरसंयावपायसापूपशष्कुलीः ॥ ४७ ॥
भुक्त्वात्रिरात्रंकुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ।
नील्याश्चैवक्षतोविप्रः शुनादष्टस्तथैवच ॥ ४८ ॥
त्रिरात्रंतुव्रतंकुर्यात् पुंश्चलीदशनक्षतः ।
पादप्रतापनंकृत्वा वह्निंकृत्वातथाप्यधः ॥ ४९ ॥
कुशैःप्रमृज्यपादौच दिनमेकंव्रतीभवेत् ।
नीलीवस्त्रंपरीधाय भुक्त्वास्नानार्हणस्तथा ॥ ५० ॥
त्रिरात्रंचव्रतंकुर्याच्छित्वागुल्मलतास्तथा ।
अभ्यारुह्यशयनंयानमासनंपादुकेतथा ॥ ५१ ॥
पलाशस्यद्विजश्रेष्ठस्त्रिरात्रंतुव्रतीभवेत् ।
वाग्दुष्टंभावदुष्टंच भाजनेभावदूषिते ।
भुक्त्वान्नंब्राह्मणः पश्चात्त्रिरात्रंतुव्रतीभवेत् ॥ ५२ ॥
क्षत्रियस्तुरणंदत्त्वा पृष्ठंप्राणपरायणः ।

वा मूसादि ने खाया हो ॥ ४६ ॥ मक्खी मच्छर इन के पड़जाने से दूषित हुए को खा कर तीन दिन व्रत करे और कृशर (केवल अन्न लिये) कूसर (मिले हुए दाल तिल चावल की खिचड़ी) पपाव (मोहनभोग) खीर, पूआ, पूरी ॥४७॥ इनको खा कर सावधानी से तीन दिन तक व्रत करे। जिस ब्राह्मण के शरीर में नील की लकड़ी से घाव हो वा जिस को कुत्ता काटे ॥ ४८ ॥ वह तीन दिन व्रत करे, जिसके पुंश्चली (वेश्या आदि व्यभिचारिणी) के दांतों से घाव हो जाय और नीचे अग्नि रख कर जो पग तपावे ॥४९॥ वह कुशाओं से पगों को झाड़ कर के एक दिन व्रत करे। और नील का रंगा वस्त्र पहन कर और जिस के छूने से स्नान करना योग्य है उस का अन्न खा कर ॥ ५०॥ तीन दिन व्रत करे गुल्म (गुच्छे) लता, इन को काट कर शय्या (खटिया) सवारी, आसन पट्टा वा पलंग और खड़ाऊं इन पर बैठ कर ॥ ५१ ॥ यदि ये खटिया आदि सब पलाश (ढाक) के काष्ठादि से बनी हों तो तीनदिन व्रत करे। वाणी से और भावना से दूषित पदार्थ को, खाके तथा भाव से दूषित पात्र में अर्थात् जो निन्दित पुंगल नाम से बोला गया हो। खाकर ब्राह्मण तीन दिन व्रत करे ॥ ५२ ॥ और अपने प्राणों की रक्षा में तत्पर क्षत्रिय रण

संवत्सरंव्रतंकुर्याच्छित्वावृक्षंफलप्रदम् ॥ ५३ ॥
दिवाचमैथुनंगत्वा स्नात्वानग्नस्तथाम्भसि ।
नग्नांपरस्त्रियंदृष्ट्वा दिनमेकंव्रतीभवेत् ॥ ५४ ॥
क्षिप्त्वाग्नावशुचिद्रव्यं तदेवाम्भसिमानवः ।
मासमेकंव्रतंकुर्यादुपक्रुध्यतथागुरुम् ॥ ५५ ॥
पीतावशेषंपानीयं पीत्वाचब्राह्मणःक्वचित् ।
त्रिरात्रंतुव्रतंकुर्याद्वामहस्तेनवापुनः ॥ ५६ ॥
एकपंक्त्युपविष्टेषु विषमंयःप्रयच्छति ।
सचनाविदसौपक्षं कुर्यात्तुब्राह्मणोव्रतम् ॥ ५७ ॥
धारयित्वा तुलाचार्यं विषमं कारयेद्बुधः ।
सुरालवणमद्यानां दिनमेकंव्रतीभवेत् ॥ ५८ ॥
मांसक्रयविक्रयंकृत्वा कुर्याच्चैवमहाव्रतम् ।
विक्रीयपाणिनामद्यं तिलस्यचतथाचरेत् ॥ ५९ ॥
हुंकारंब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारंचगरीयसः ।
दिनमेकंव्रतंकुर्यात् प्रयतःसुसमाहितः ॥ ६० ॥
प्रेतस्यप्रेतकार्याणि अकृत्वाधनहारकः ।

(वृक्ष) में पीठ दे कर भाग आवे तो एक वर्ष तक व्रत करे, फल देते हुए वृक्ष को काट कर ॥ ५३ ॥ दिन में मैथुन करके, नंगा होकर जलाशय में स्नान करके और अन्य की स्त्री को नगी देखकर एक दिन व्रत करे ॥ ५४ ॥ अग्नि और जल में अशुद्ध पदार्थ डाल कर, और गुरु पर क्रोध करके एक मास तक व्रत करे ॥ ५५ ॥ और पीने से बचे पानी को ब्राह्मण कदाचित् पीकर, और बायें हाथ से जल पीकर तीन दिन व्रत करे ॥ ५६ ॥ एक पङ्क्ति में बैठे हुओं के आगे जो विषम किसी मित्र या प्रतिष्ठित को उत्तम पदार्थ तथा अन्यों को साधारण वस्तु परोसे जिसको अच्छा परोसा हो वह और परोसने वाला दोनों पन्द्रह दिन व्रत करें ॥ ५७ ॥ तोला को रखकर जो कम तुलवावे तथा सुरा, मदिरा, लवण, मद्य, इनको बेंचे या बिकवावे वह एक दिन व्रत करे ॥ ५८ ॥ मांस को बेंच कर महाव्रत करे। अपने हाथ से मदिरा और तिलों को बेंच कर भी महाव्रत करे ॥ ५९ ॥ और ब्राह्मण को हुंः और बड़े प्रतिष्ठित पुरुष को तू कह कर सावधान होके एकाग्र मन से एक दिन व्रत करे ॥ ६० ॥ मरे मनुष्य के दाहादि कर्म न करके उस के धनादि सामान को लेने

वर्णानांयद्व्रतंप्रोक्तं तद्व्रतंप्रयतश्चरेत् ॥ ६१ ॥
कृत्वापापंनगूहेत गूह्यमानंविवर्द्धते ।
कृत्वापापंबुधःकुर्यात् पर्षदोऽनुमतंव्रतम् ॥६२॥
तस्करश्वापदाकीर्णे बहुव्यालमृगेवने ।
नव्रतंब्राह्मणःकुर्यात् प्राणबाधाभयात्सदा ॥६३॥
सर्वत्रजीवनंरक्षेज्जीवन्पापमपोहति ।
व्रतैःकृच्छ्रैश्चदानैश्च इत्याहभगवान्यमः ॥६४॥
शरीरंधर्मसर्वस्वं रक्षणीयंप्रयत्नतः ।
शरीरात्स्रवतेधर्मः पर्वतात्सलिलंयथा ॥६५॥
आलोच्यधर्मशास्त्राणि समेत्यब्राह्मणैःसह ।
प्रायश्चित्तंद्विजोदद्यात् स्वेच्छयानकदाचन ॥६६॥
इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥
त्र्यहंत्रिषवणस्नायी स्नानेस्नानेऽघमर्षणम् ।
निमग्नस्त्रिःपठेदप्सु नभुञ्जीतदिनत्रयम् ॥१॥
वीरासनंचतिष्ठेत गांदद्याच्चपयस्विनीम् ।

यात्मा, ब्राह्मणादि वर्णों को जो २ व्रत कहा है उसी को मन लगाके करे ॥६१॥ पाप को करके न छिपावे क्योंकि छिपाने से पाप बढ़ता है । इस कारण पाप को करके ज्ञानवान् पुरुष धर्मसभा की अनुमति से व्रत करे ॥ ६२ ॥ चोर, भेड़िया, सांप मृग ये जिस में हों ऐसे वन में ब्राह्मण प्राणों के भय से सदैव व्रत न करे ॥ ६३ ॥ क्योंकि जीवन की रक्षा सब जगह करनी चाहिये जीवित रहता हुआ मनुष्य कृच्छ्र प्राजापत्यादि व्रतों तथा दानों के द्वारा पाप को दूर कर सकता है यह बात भगवान् धर्मशास्त्रकर्त्ता यम ने कही है ॥६४॥ धर्म का सर्वस्व जो शरीर है उस की प्रयत्न से रक्षा करनी चाहिये । शरीर से धर्म इस प्रकार निकलता है जैसे पर्वत में से जल के झरने निकलते हैं ॥६५॥ इस से ब्राह्मणों के संग मिल के धर्मशास्त्रों को देख विचार कर विद्वान् ब्राह्मण अपराधी को प्रायश्चित्त बतावे किन्तु अपनी इच्छा से कभी न बतावे ॥६६॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में सत्रहवां अध्याय पूरा हुआ ॥

तीन दिन तक त्रिकाल स्नान करे और तीनों स्नानों में जल में डूबा हुआ तीन २ बार अघमर्षण सूक्त जपे और तीन दिन तक भोजन न करे निराहार व्रत करे ॥१॥ वीरासन से बैठा रहे और दूध देनी गौ का दान करे

अघमर्षणमित्येतद् व्रतंसर्वाघनाशनम् ॥२॥
त्र्यहंसायंत्र्यहंप्रातस्त्र्यहमद्यादयाचितम् ।
त्र्यहंपरंचनाश्नीयात्प्राजापत्यंचरन्व्रतम् ॥३॥
त्र्यहमुष्णंपिबेत्तोयं त्र्यहमुष्णंघृतंपिबेत् ।
त्र्यहमुष्णंपयःपीत्वा वायुभक्षस्त्र्यहंभवेत् ॥ ४ ॥
तप्तकृच्छ्रं विजानीयाच्छीतैः शीतमुदाहृतम् ।
द्वादशाहोपवासेन पराकःपरिकीर्तितः ॥ ५ ॥
विधिनोदकसिद्धान्नं समश्नीयात्प्रयत्नतः ।
सक्तुद्वासोदकान्मासंकृच्छ्रंवारुणमुच्यते ॥ ६ ॥
बिल्वैरामलकैर्वापि पद्माक्षैरथवाशुभैः ।
मासेनलोकेऽतिकृच्छ्रः कथ्यतेबुद्धिसत्तमैः ॥ ७ ॥
गोमूत्रंगोमयंक्षीरं दधिसर्पिःकुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रंसांतपनंस्मृतम् ॥ ८ ॥
एतैस्तुत्र्यहमभ्यस्तं महासांतपनंस्मृतम् ।

यह तीन दिन का अघमर्षण व्रत सब पापों का नाशक है ॥ २ ॥ जो मनुष्य प्राजापत्य व्रत करै वह तीन दिन तक सायंकाल, तीन दिन तक प्रातःकाल, तीन दिनतक जो विनामांगे मिले उसे खावे और तीनदिन तक सर्वथा भोजन न करै निराहार रहे ॥३॥ तीनदिन तक गर्म जल, तीनदिन गर्म घी, तीनदिन गौकागर्म दूध पीवे और तीन दिन वायु मात्र का भक्षण करै अन्य कुछ न खावे ॥४॥ इस को तप्तकृच्छ्र कहते और पूर्वोक्त क्रमसे यदि शीतल जल आदि पीवे तो शीत कृच्छ्र कहा जायगा । और बारह दिनके उपवास से शुद्ध पराक कृच्छ्र व्रत कहाता है ॥ ५ ॥ विधि पूर्वक जल से बनाये अन्न को बड़े यत्न से जो खावे यदि वह मनुष्य एक महीने तक सोदक करै अर्थात् भोजन के विना अन्न न पीवे उसे वारुण कृच्छ्र कहते हैं ॥ ६ ॥ बेल, आंवले, अच्छे कमलगट्टे, इन को एक महीने खाने से बुद्धिमानों ने अतिकृच्छ्र कहा है ॥ ७ ॥ गोमूत्र गोबर, दूध, दही, घी, कुशा का जल इन सब को एक दिन खाना और एक दिन का उपवास करना इस को सांतपन कृच्छ्र कहते हैं ॥ ८ ॥ तीन दिन तक इन के करने से महासांतपन कहाता है । तिलों का खल विना जल का मठा,

पिण्याकंवामतक्रांबुसक्तूनांप्रतिवासरम् ॥ ९ ॥
उपवासान्तराभ्यासात्तुलापुरुषउच्यते ।
गोपुरीषाशनोभूत्वा मासंनित्यंसमाहितः ॥ १० ॥
व्रतंतुयावकंकुर्यात्सर्वपापापनुत्तये ।
ग्रासंचन्द्रकलावृद्ध्या प्राश्नीयाद्वर्द्धयन्सदा ॥ ११ ॥
ह्रासयेच्चकलावृद्ध्या व्रतंचान्द्रायणंचरन् ।
मुण्डस्त्रिषवणस्नायी अधःशायीजितेन्द्रियः ॥ १२ ॥
स्त्रीशूद्रपतितानांच वर्जयेत्परिभाषणम् ।
पवित्राणिजपेच्छक्त्या जुहुयाच्चैवशक्तितः ॥ १३ ॥
अयंविधिःसविज्ञेयः सर्वकृच्छ्रेषुसर्वदा ।
पापात्मानस्तुपापेभ्यः कृच्छ्रैःसंतारितानराः ॥ १४ ॥
गतपापादिवंयान्ति नात्रकार्याविचारणा ।
शंखप्रोक्तमिदंशास्त्रं योऽधीतेबुद्धिमान्नरः ॥ १५ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तस्स्वर्गलोकेमहीयते ॥ १६ ॥

इतिशांखेधर्मशास्त्रेअष्टादशोऽध्यायः॥१८॥इतिशंखस्मृतिःसमाप्ता॥

सत्तू इन के प्रतिदिन ॥९॥ बीच २ में उपवास करके सभ्यास (करना) से तुला-पुरुष व्रत कहा है। गोबर को एक महीने तक प्रतिदिन सावधानी से खाकर ॥१०॥ सब पापों के नाश के लिये इस यावक व्रत को करे। चन्द्रमा की कला की वृद्धि के साथ २ एक २ ग्रास प्रति दिन बढ़ाकर खावे ॥ ११ ॥ और कला की हानि के साथ २ एक २ ग्रास प्रति दिन वह पुरुष घटावे तो चान्द्रायण व्रत करे। मुंडन किये हुये त्रिकाल स्नान करे भूमि पर सोवे इन्द्रियों को जीते ॥१२॥ स्त्री, शूद्र, पतित नीच इनके संग न बोले पवित्रता के मन्त्र स्तोत्र आदि को जपे और यथा शक्ति होम करे ॥ १३ ॥ यह विधान सब कृच्छ्रों में सदा जानो। कृच्छ्रों के प्रताप से पापों से छूटे पापी पुरुष ॥१४॥ नष्ट हुआ है पाप जिन का ऐसे होकर स्वर्ग में जाते हैं इस में कुछ सन्देह नहीं है। शंख ऋषि के कहे इस शास्त्र को जो बुद्धिमान् नर पढ़ता है ॥ १५ ॥ वह सब पापों से पृथक् होकर स्वर्गलोक में पुजता है ॥१६॥

यह शंखस्मृति के भाषानुवाद में अठारहवां अध्याय पूरा हुआ
और यह ग्रन्थ भी समाप्त हुआ ॥

अथलिखितस्मृतिप्रारम्भः॥

इष्टापूर्त्तंतुकर्त्तव्ये ब्राह्मणेनप्रयत्नतः।
इष्टेनलभतेस्वर्गं पूर्त्तेमोक्षमवाप्नुयात्॥ १ ॥
एकाहमपिकर्त्तव्यं भूमिष्ठमुदकंशुभम्।
कुलानितारयेत्सप्त यत्रगौर्वितृषाभवेत्॥ २ ॥
भूमिदानेनयेलोका गोदानेनचकीर्त्तिताः।
तांल्लोकान्प्राप्नुयान्मर्त्यः पादपानांप्ररोपणे॥ ३ ॥
वापीकूपतडागानि देवतायतनानिच।
पतितान्युद्धरेद्यस्तु सपूर्त्तफलमश्नुते॥ ४ ॥
अग्निहोत्रंतपःसत्यं वेदानांचैवपालनम्।
आतिथ्यंवैश्वदेवंच इष्टमित्यभिधीयते॥ ५ ॥
इष्टापूर्त्तंद्विजातीनां सामान्योधर्मउच्यते।

ब्राह्मण प्रयत्न से इष्ट (श्रौत अग्निहोत्रादि) और पूर्त (कूप बनवाना प्याऊ बैठाना आदि) धर्म के कामों को अवश्य यत्न से करें क्योंकि इष्ट से स्वर्ग मिलता और पूर्त से मोक्षको प्राप्त होता है॥ १ ॥ जिससे एक गौ की प्यास निवृत्त होजाय इतना जल यदि एक दिन भी पृथिवी में जो करदे, वह सात कुलों को तारता है॥ २ ॥ भूमि और गौ के दान से जिन लोकों के भोग मिलते हैं उन्हीं लोकों को वृक्षों के लगाने से मनुष्य प्राप्त होता है॥ ३ ॥ बावड़ी, कुआ, तालाब, और देवताओं के मन्दिर, इन में जो २ टूटे फूटे पुराने हो गये हों, उन को जो ठीक २ मरम्मत करे, वह भी पूर्त कर्मों के फल को भोगता है॥ ४ ॥ अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदों की रक्षा, अभ्यागत का सत्कार और वैश्वदेव, इन सब को इष्ट कहते हैं॥ ५ ॥ द्विजातियों के इष्ट और पूर्त (वापी कूप तालाब देव मन्दिरादि का बनवाना) साधारण धर्म

अधिकारोभवेच्छूद्रः पूर्त्तेधर्मेनवैदिके ॥ ६ ॥
यावदस्थिमनुष्यस्य गंगातोयेषुतिष्ठति ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ७ ॥
देवतानांपितृणांच जलेदद्याज्जलाञ्जलिम् ।
असंस्कृतमृतानांच स्थलेदद्याज्जलाञ्जलिम् ॥ ८ ॥
एकादशाहेप्रेतस्य यस्यचोत्सृजतेवृषः ।
मुच्यतेप्रेतलोकात्तु पितृलोकंसगच्छति ॥ ९ ॥
एष्टव्याबहवःपुत्रा यद्येकोपिगयांव्रजेत् ।
यजेतवाश्वमेधेन नीलंवावृषमुत्सृजेत् ॥ १० ॥
वाराणस्यांप्रविष्टस्तु कदाचिन्निष्क्रमेद्यदि ।
हसन्तितस्यभूतानि अन्योन्यंकरताडनैः ॥ ११ ॥
गयाशिरेतुयत्किंचिन्नाम्नापिण्डन्तुनिर्वपेत् ।
नरकस्थोदिवंयाति स्वर्गस्थोमोक्षमाप्नुयात् ॥ १२ ॥
आत्मनोवापरस्यापि गयाक्षेत्रेयतस्ततः ।

कहे हैं। शूद्र मनुष्य पूर्त्त धर्म का अधिकारी है वेदोक्त इष्ट धर्म का नहीं ॥६॥ मनुष्य की हड्डी जब तक गंगा जल में पड़ी रहती है उतने ही हजार वर्ष तक वह स्वर्ग लोक में पुजता है ॥ ७ ॥ देवता और पितरों को जलाशय में, और संस्कार से पहिले जो मरे हों, उन को स्थल में तर्पण के समय जल की अंजली देवे ॥ ८ ॥ जिस मनुष्य के मरने पर ग्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग होता है वह प्रेत योनि से छूट कर पितृलोक में जाता है ॥९॥ बहुत से पुत्रों की इच्छा करनी चाहिये, यदि उन में से एक भी गया को जाय, वा अश्वमेध यज्ञ करे, अथवा नील बैल का उत्सर्ग करे, वही पुत्र पिता को तारने वाला होता है ॥ १० ॥ कोई मनुष्य काशी में जाकर यदि कदाचित् वहां से निकल आता है तो उन को सब भूत आपस में ताली देकर हंसते हैं ॥ ११ ॥ गया में जाकर जिस किसी के नाम से पिण्ड दान करे, यदि वह नरक में हो तो स्वर्ग में जाता और स्वर्ग में हो तो मुक्त हो जाता है ॥ १२ ॥ अपने कुल के वा अन्य इष्ट मित्र सम्बन्धी आदि जिस किसी के नाम से गया में पिण्ड देवे, वह पिण्डदान

यन्नाम्नापातयेत्पिण्डं तंनयेद्ब्रह्मशाश्वतम् ॥ १३ ॥
लोहितोयस्तुवर्णेन शंखवर्णखुरस्तथा ।
लाङ्गूलशिरसोश्चैव सवैनीलवृषःस्मृतः ॥ १४ ॥
नवश्राद्धंत्रिपक्षेच द्वादशस्वेवमासिकम् ।
षण्मासेचाब्दिकंचैव श्राद्धान्येतानिषोडश ॥ १५ ॥
यस्यैतानिनकुर्वीत एकोद्दिष्टानिषोडश ।
पिशाचत्वंस्थिरन्तस्य दत्तैःश्राद्धशतैरपि ॥ १६ ॥
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरंद्विजः ।
मातापित्रोःपृथक्कुर्यादेकोद्दिष्टंमृतेऽहनि ॥ १७ ॥
वर्षेवर्षेतुकर्तव्यं मातापित्रोस्तुसन्ततम् ।
अदैवंभोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकन्तुनिर्वपेत् ॥ १८ ॥
संक्रान्तावुपरागेच पर्वण्यपिमहालये ।
निर्वाप्यास्तुत्रयःपिण्डा एकतस्तुक्षयेऽहनि ॥ १९ ॥
एकोद्दिष्टंपरित्यज्य पार्वणंकुरुतेद्विजः ।
अकृतन्तद्विजानीयात् समातापितृघातकः ॥ २० ॥
अमावास्यांक्षयोयस्य प्रेतपक्षेऽथवापदि ।

उस को सनातन ब्रह्म को पहुंचाता है ॥ १३ ॥ जिस का रंग लाल हो खुर पूंछ, शिर ये सफेद हों, उसे नील बैल कहते हैं ॥१४॥ एक ग्यारहवें दिन का नवक श्राद्ध,-द्वितीय १॥ महीने में, बारह महीनों के बारह, छठे महिने की पूर्ति के दिन १ और एक वर्षी ये सोलह एकोद्दिष्ट श्राद्ध हैं ॥ १५ ॥ जिस के ये सोलह एकोद्दिष्ट नहीं किये गये हों, उस को सैकड़ों श्राद्ध देने पर भी प्रेत योनि नहीं छूटती है ॥ १६ ॥ सपिण्डी श्राद्ध किये पीछे प्रति वर्ष माता पिता के मरने के दिन में पृथक् २ एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया करे ॥ १७ ॥ माता पिता का श्राद्ध वर्ष २ में निरन्तर करे और विश्वेदेवा को छोड़ के श्राद्ध में ब्राह्मण जिमावे और एक पिण्ड देवे ॥ १८ ॥ संक्रान्ति, ग्रहण, पर्व दिन (अमावास्या) महालय (कनागत) इन में पितृपक्ष में तीन पिण्ड और मातृ पक्ष में तीन पिण्ड देवे और पिता माता के मरने के दिन ॥१९॥ एकोद्दिष्ट को छोड़ कर पार्वण श्राद्ध करता है, उस श्राद्ध को नहीं किया जाने क्योंकि वह पुत्र माता पिता का मारने वाला है ॥ २० ॥ जो अमावास्या को

सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं तस्योक्तःपार्वणोविधिः ॥ २१ ॥
त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वंनैवजायते ।
अहन्येकादशेप्राप्ते पार्वणंतुविधीयते ॥ २२ ॥
यस्यसंवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणंस्मृतम् ।
प्रत्यहन्तत्सोदकुंभं दद्यात्संवत्सरंद्विजः ।
पत्याचैकेनकर्तव्यं सपिण्डीकरणंस्त्रियाः ॥ २३ ॥
पितामह्यापितत्तस्मिन्सत्येवन्तुक्षयेऽहनि ।
तस्यांसत्यांप्रकर्त्तव्यं तस्याःश्वश्र्वेतिनिश्चितम् ॥ २४ ॥
विवाहेचैवनिर्वृत्ते चतुर्थेऽहनिरात्रिषु ।
एकत्वंसागताभर्त्तुः पिण्डेगोत्रेचसूतके ॥ २५ ॥
स्वगोत्राद्भ्रश्यतेनारी उद्वाहात्सप्तमेपदे ।
भर्तृगोत्रेणकर्त्तव्या दानंपिण्डोदकक्रियाः ॥ २६ ॥
द्विमातुःपिण्डदानंतु पिण्डेपिण्डेद्विनामतः ।

अथवा कनागतों में मरे उसके निमित्त सपिण्डी श्राद्ध किये पीछे मरने के दिन भी पार्वण करे ॥ २१ ॥ अपने कुल का पितादि कोई पुरुष संन्यासी हो हो जाने बाद मरे तो वह प्रेतयोनि में नहीं जाता, इस से उसके दशगात्रादि न करे, किन्तु ग्यारहवें दिन पार्वण श्राद्ध करे ॥२२॥ एक वर्ष से पहिले ही जिस का सपिण्डी करण कहा है उस के लिये ब्राह्मणादि द्विज प्रति दिन जल से भरा घट दान करे। स्त्री का सपिण्डीकरण श्राद्ध एक पतिके संग ही करें ॥२३॥ यदि पति जीता हो, तो क्षयाह श्राद्ध पितामही के संग करें, यदि पितामही (दादी) भी विद्यमान हो, तो उस की सासु के संग सपिण्डीश्राद्ध करै ॥२४॥ विवाह हो जाने पर चौथे दिन की रात्रि में वह स्त्री पति के संग पिण्ड, गोत्र, और सूतक में एक हो जाती है अर्थात् चतुर्थी कर्म के समय स्त्री अपने पति के पिण्ड-गोत्र और सूतक में मिल जाती है ॥ २५ ॥ विवाह के पीछे सप्तपदी कर्म हो जाने पर कन्या पिता के गोत्र से भ्रष्ट हो जाती है। इस कारण सप्तपदी के पश्चात् मरे, तो पति के गोत्र से ही उस के निमित्त दान पिण्ड और तिलाञ्जलि आदि जलदान कर्म करे ॥२६॥ जिस के दो 'माता' हों, वह प्रत्येक पिण्ड में दोनों का नाम ले लेकर दो पिण्ड देवे। पिता, बाबा, पड़बाबा, माता,

षण्णांदेयास्त्रयःपिण्डा एवंदातानमुह्यति ॥ २७ ॥
अथचेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैःपङ्क्तिदूषणैः ।
अदोषन्तंयमःप्राह पङ्क्तिपावनएवसः ॥ २८ ॥
अग्नौकरणशेषन्तु पितृपात्रेप्रदापयेत् ।
प्रतिपाद्येपितृणांच नदद्याद्वैश्वदेविके ॥ २९ ॥
अग्न्यभावेतुविप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ।
योह्यग्निःसद्विजोविप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥ ३० ॥
अजस्यदक्षिणेकर्णे पाणौविप्रस्यदक्षिणे ।
रजतेचसुवर्णेच नित्यंवसतिपावकः ॥ ३१ ॥
यत्रयत्रप्रदातव्यं श्राद्धंकुर्वीतपार्वणम् ।
तत्रमातामहानांच कर्त्तव्यमभयंसदा ॥ ३२ ॥
अपुत्रायेमृताःकेचित्पुरुषावास्त्रियोपिवा ।
तेभ्यएवप्रदातव्यमेकोद्दिष्टंनपार्वणम् ॥ ३३ ॥
यस्मिन्राशिगतेसूर्ये विपत्तिःस्याद्द्विजन्मनः ।

दादी, पड़दादी, इन छः को तीन२ पिण्ड देवे, ऐसा करने से दाता मोह को प्राप्त नहीं होता ॥२७॥ यदि वेद मन्त्रों को पढ़ने जानने वाला-सुपात्र विद्वान् हीनाङ्गादि पङ्क्ति दूषण चिन्हों से युक्त हो तो भी यमराज ने उसे निर्दोष कहा है क्योंकि वेदाध्ययन द्वारा पवित्र होने से वह पंक्ति को पवित्र करने वाला है ॥ २८ ॥ अग्नौ करण का शेष अन्न पितृपात्र में छोड़ देवे । पितरों को जो अन्नादि देना हो, वह विश्वेदेवाओं को न देवे ॥ २९ ॥ यदि श्राद्ध के समय किसी कारण अग्नि प्राप्त न हो, तो अग्नौ करण की दो आहुति मन्त्र पढ़ के ब्राह्मण के हाथ में देदेवे, क्योंकि वेद के तत्त्वदर्शी विद्वानों ने अग्नि और ब्राह्मण को तुल्य ही कहा है ॥ ३० ॥ बकरा के दहिने कान में ब्राह्मण के दहिने हाथ में चांदी और सुवर्ण में नित्य ही अग्नि देवता वास करता है॥३१॥ जो ब्राह्मण अग्निहोत्री न होकर पार्वण श्राद्ध करै वह जिस२ समय पार्वण करे वहां२ ननसार के नानाआदि तीनों कोभी अभयकरै अर्थात् उनको भी पिण्डदेवे॥३२॥ अपने कुल में जो पुरुष वा स्त्री पुत्र हीन रहते हुए मरे हों, उन के निमित्त एकोद्दिष्ट करै, पार्वण नहीं ॥ ३३ ॥ जिस राशि के सूर्य में ब्राह्मणादि द्विज

तस्मिन्नहनिकर्तव्या दानपिण्डोदकक्रियाः॥ ३४ ॥
वर्षवृद्ध्यभिषेकादि कर्तव्यमधिकेनतु ।
अधिमासेतुपूर्वस्याच्छ्राद्धंसंवत्सरादपि ॥ ३५ ॥
सएवब्रहेयोदिष्टस्य येनकेनतुकर्मणा ।
अभिघातान्तरंकार्य्यं तत्रैवाहःकृतंभवेत् ॥ ३६ ॥
शालाग्नौपच्यतेह्यन्नं लौकिकेवाऽथसंशयः ।
यस्मिन्नेवपचेदन्नं तस्मिन्होमोविधीयते ॥ ३७ ॥
वैदिकेलौकिकेवापि नित्यंहुत्वाह्यतन्द्रितः ।
वैदिकेस्वर्गमाप्नोति लौकिकेहन्तिकिल्विषम् ॥ ३८ ॥
अग्नौव्याहृतिभिःपूर्वं हुत्वा मन्त्रैस्तुशाकलैः ।
संविभागंतुभूतेभ्यस्ततोऽश्नीयादनग्निमान् ॥ ३९ ॥
उच्छेपणंतुनोत्तिष्ठेद्यावद्विप्रविसर्जनम् ।

की मृत्यु हो, उसी राशिके उसी दिनमें, गोदानादि पिण्ड दान (तर्पण) करै॥३४॥ वर्ष की वृद्धि में अभिषेक (स्नान) आदि अधिक के साथ अधिक करै । यदि अधिक (मल) मास आन पड़े, तो वर्ष पूर्त्ति से पहिले भी श्राद्ध होवे ॥ ३५ ॥ जिस किसी कर्म के कारण विहित श्राद्ध का वही दिन (जो वर्ष से पहिले आया हो) त्याग देना चाहिये । मरने के दिन तिथि की हानि हो गयी हो, तो अगले दिन क्षयाह श्राद्ध करे, तब वही क्षयाह माना जायगा ॥३६॥ अग्नि-शाला में विधि पूर्वक स्थापित अग्नि में अथवा लौकिक अग्नि में प्रतिदिन अन्न पकाया जाय ? ऐसा सन्देह हो, तो समाधान यह है कि आहिताग्नि न हो, तो लौकिकाग्नि में पकावे, और जिस अग्नि में अन्न पकावे, उसी में होम करना शास्त्र में कहा है ॥ ३७ ॥ वैदिक (स्थापित) वा लौकिक अग्नि में आलस्य को छोड़कर नित्य होम करे। वैदिक अग्निमें पञ्चमहायज्ञादिसम्बन्धी होम करने वाले को स्वर्ग मिलता और लौकिक अग्निमें होम करनेसे पाप नष्ट होता है॥३८॥ अनाहिताग्नि पुरुष प्रथम लौकिक अग्नि में पृथक् २ तीन व्याहृतियों से, तथा एक साथ तीनों व्याहृति से, ऐसे चार आहुति देकर (देवकृतस्यैनसो०) इत्यादि शाकल होम की छः आहुति देके प्राजापत्य और स्विष्टकृत् दो आहुति देवे । इस प्रकार देव यज्ञ की बारह आहुति देवे, तत्पश्चात् भूमि पर बलिदेना रूप भूतयज्ञ करके भोजन करे ॥ ३९ ॥ जब तक निमन्त्रित ब्राह्मणों को

ततोग्रहवलिंकुर्यादिति धर्म्मोव्यवस्थितः ॥ ४० ॥
दर्भाःकृष्णाजिनंमन्त्रा ब्राह्मणाश्चविशेषतः ।
नैतेनिर्म्माल्यतांयान्ति नियोक्तव्याःपुनःपुनः ॥ ४१ ॥
पानमाचमनंकुर्यात् कुशपाणिस्सदाद्विजः ।
भुक्त्वाप्युच्छिष्टतांयाति एषएवविधिःसदा ॥ ४२ ॥
पानआचमनेचैव तर्पणेदैविकेसदा ।
कुशहस्तोनदुष्येत यथापाणिस्तथाकुशः ॥४३॥
वामपाणौकुशान्कृत्वा दक्षिणेनउस्पृशेत् ।
आचमन्तिचयेमूढा रुधिरेणाचमन्तिते ॥४४॥
नीवीमध्येषुयेदर्भा ब्रह्मसूत्रेषुयेकृताः ।
पवित्रांस्तान्विजानीयाद्यथाकायस्तथाकुशाः ॥४५॥
पिण्डेकृतास्तुयेदर्भा यैःकृतंपितृतर्पणम् ।
मूत्रोच्छिष्टपुरीषंच तेषांत्यागोविधीयते ॥४६॥

भोजन कराके विसर्जन न हो जाय, तब तक जूठन न उठावे, उस के पश्चात् ग्रहवलि करे, यही धर्म की व्यवस्था है ॥४०॥ दर्भ, काले हिरन का चर्म, वेदमन्त्र और विशेष कर ब्राह्मण, ये सब बार २ कार्यों में नियुक्त करने से अशुद्धि को प्राप्त नहीं होते, इस से बार २ धर्म सम्बन्धी काम में इन को नियुक्त करे ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणादि द्विज सदैव कुशों को हाथ में लेकर जलपान और आचमन करे। भोजन के अनन्तर भी मनुष्य उच्छिष्ट हो जाता है, इससे आचमन का यही विधान सदा करे ॥४२॥ जल पीने, आचमन करने और सदा देवतर्पण में कुशों को हाथ में लिये मनुष्य दूषित नहीं होता, क्योंकि जैसा हाथ वैसेही कुश होते हैं ॥ ४३ ॥ बांये हाथ में कुशा लेकर दहिने हाथ से आचमन करे। जो मूर्ख लोग इस प्रकार आचमन करते हैं वे मानों रुधिर से आचमन करते हैं, अर्थात् दहिने हाथ में ही कुश रखता हुआ आचमन करे यही ठीक है ॥४४॥ नीवी कटि(कटिबंधन) में और जनेऊ में, जो कुश बंधे हों, उन को पवित्र जानना चाहिये, क्योंकि कुश देह के समान ही हैं ॥ ४५ ॥ जो कुश श्राद्ध के पिण्डों पर रक्खे गये हों, वा जिन से पितरों का तर्पण किया हो, अथवा जिन को लेकर मल मूत्र का त्याग किया हो उन कुशों का त्याग कहा है ॥ ४६ ॥

देवपूर्वन्तुयच्छ्राद्धमदेवंचापियद्भवेत् ।
ब्रह्मचारीभवेत्तत्र कुर्याच्छ्राद्धन्तुपैतृकम् ॥४७॥
मातुःश्राद्धन्तुपूर्वंस्यात्पितृणांतदनन्तरम् ।
ततोमातामहानांच वृद्धौश्राद्धत्रयंस्मृतम् ॥४८॥
क्रतुर्दक्षोवसुःसत्यः कालकामौधूरिलोचनौ ।
पूरूरवार्द्रवाश्चैव विश्वेदेवाःप्रकीर्तिताः ॥४९॥
आगच्छन्तुमहाभागा विश्वेदेवामहाबलाः ।
येयत्रविहिताःश्राद्धे सावधानाभवन्तुते ॥५०॥
इष्टिश्राद्धेक्रतुर्दक्षो वसुःसत्यश्चवैदिके ।
कालःकामोऽग्निकार्य्येषु काम्येषुधूरिलोचनौ ॥५१॥
पूरूरवार्द्रवाश्चैव पार्वणेषुनियोजयेत् ॥५२॥
यस्यास्तुनभवेद्भ्राता नविज्ञायेतवापिता ।
नोपयच्छेततांप्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशंकया ॥ ५३ ॥
अभ्रातृकांप्रदास्यामि तुभ्यंकन्यामलङ्कृताम् ।
अस्यांयोजायतेपुत्रः समेपुत्रोभविष्यति ॥ ५४ ॥

जो श्राद्ध विश्वेदेव पूर्वक हो वा विश्वदेव पूर्वक न हो। उन दोनों प्रकार के श्राद्धों में पुरुष ब्रह्मचारी रहे और पितरों के निमित्त श्राद्ध करे ॥४७॥ प्रथम माता का श्राद्ध करके पीछे पितरों का करे। फिर मातामहों (नानाआदि३) का श्राद्ध करे, इसप्रकार वृद्धिश्राद्ध (नांदीमुख) में तीन श्राद्ध होते हैं ॥४८॥ क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धूरि, लोचन, पुरूरवा, आर्द्रवा, ये विश्वेदेवाओं के विशेष नाम कहेहैं॥४९॥वे महाबलवान् और महाभाग्यशाली विश्वेदेवा आवें, जो जिस श्राद्ध में कहे हैं, वे सावधान होवें॥५०॥ दर्शपौर्णमासादि इष्टियों सम्बन्धी पिण्डपितृयज्ञादि श्राद्ध में क्रतु, और दक्ष, वेदोक्त श्राद्ध में वसु, सत्य, अग्नि के कार्य्यों में काल, काम, काम्य कर्मों सम्बन्धी श्राद्धों में धूरि, लोचन॥५१॥ पार्वणश्राद्ध में पुरूरवा और आर्द्रवा विश्वेदेवा नियुक्त करने (बुलाने) चाहिये ॥ ५२ ॥ जिस कन्या के कोई सहोदर भाई न हो और जिसका पिता भी मर गया हो, उस कन्या के साथ बुद्धिमान् मनुष्य कन्या ही उत्पन्न होने की शंका से विवाह न करे ॥ ५३ ॥ जिसके कोई भाई नहीं है, ऐसी इस वस्त्र और आभूषणों से शोभित कन्या तुमको देता हूं, इस में जो पुत्र हो, वह मेरा पुत्र होगा, इस प्रतिज्ञासे जो कन्या विवाही जाय उसे पुत्रिका कहते हैं ॥५४॥

मातुःप्रथमतःपिण्डं निर्व्वपेत्पुत्रिकासुतः ।
द्वितीयंतुपितुस्तस्या स्तृतीयन्तत्पितुःपितुः ॥ ५५ ॥
मृन्मयेषुचपात्रेषु श्राद्धेयोभोजयेत्पितॄन् ।
अन्नदातापुरोधाश्च भोक्ताचनरकंव्रजेत् ॥ ५६ ॥
अलाभेमृन्मयंदद्यादनुज्ञातस्तुतैर्द्विजैः ।
घृतेनप्रोक्षणंकार्यं मृदःपात्रंपवित्रकम् ॥ ५७ ॥
श्राद्धंकृत्वापरश्राद्धे यस्तुभुञ्जीतविह्वलः ।
पतन्तिपितरस्तस्य लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ५८ ॥
श्राद्धंदत्त्वाचभुक्त्वाच अध्वानंयोऽधिगच्छति ।
भवन्तिपितरस्तस्य तन्मासंपांसुभोजनाः ॥ ५९ ॥
पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम् ।
दानंप्रतिग्रहंहोमं श्राद्धभुक्त्वष्टवर्जयेत् ॥ ६० ॥
अध्वगामीभवेदश्वः पुनर्भोक्ताचवायसः ।

उस पुत्रिका का पुत्र पहिला पिण्ड अपनी माता को, दूसरा पिण्ड माता के पिता को, तीसरा माता के बाबा को देवे ॥५५॥ श्राद्ध के समय मट्टी के पात्रों में जो पितृ ब्राह्मणों को जिमावे तो वह अन्नदाता, पुरोहित, और भोजन करने वाला ये तीनों नरक में जाते हैं ॥ ५६ ॥ यदि कांसे पीतल आदि के पात्र न मिलें तो ब्राह्मणों की आज्ञा से मट्टी के पात्रों में भी भोजन करा देवे । यदि मट्टी के पात्र को घी से छिड़क ले तो पवित्र हो जाता है ॥५७ ॥ जो मनुष्य स्वयं श्राद्ध करके दूसरे के यहां श्राद्ध में लोभ से व्याकुल होकर भोजन करे तो नष्ट हुआ है पिण्ड और जलदान जिनका ऐसे उसके पितर नरक में जाते हैं ॥ ५८ ॥ श्राद्ध में ब्राह्मणों को भोजन करा के वा अन्य के श्राद्ध में स्वयं भोजन खाकर जो मार्गमें चलता है उसके पितर उस महीने भर धूली फांकते हैं ॥ ५९ ॥ श्राद्ध में भोजन करने वाला ब्राह्मण इन आठ कामों को त्याग देवे । दुबारा भोजन, मार्ग में चलना, बोझा उठाना, वेदवेदाङ्ग पढ़ना, मैथुन करना, दान देना, दान लेना, और होम करना ॥ ६० ॥ श्राद्ध में खाकर जो मार्ग में चले वह जन्मान्तर में घोड़ा, जो उसी दिन पुनः

कर्म्मकृज्जायतेदासः स्त्रीगमनेचसूकरः ॥ ६१ ॥
दशकृत्वःपिबेदापः सावित्र्याचाभिमन्त्रिताः ।
ततःसन्ध्यामुपासीत शुध्येततदनन्तरम् ॥ ६२ ॥
आर्द्रवासास्तुयत्कुर्याद्बहिर्जानुचयत्कृतम् ।
सर्वंतन्निष्फलंकुर्य्याज्जपंहोमंप्रतिग्रहम् ॥ ६३ ॥
चान्द्रायणंनवश्राद्धे पराकोमासिकेतथा ।
पक्षत्रयेतुकृच्छ्रंस्यात् षण्मासेकृच्छ्रमेवच ॥ ६४ ॥
ऊनाब्दिकेद्विरात्रंस्यादेकाहःपुनराब्दिके ।
शावेमासंतुभुक्त्वावा पादकृच्छ्रोविधीयते ॥ ६५ ॥
सर्पविप्रहतानांच शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः ।
आत्मनस्त्यागिनांचैव श्राद्धमेषांनकारयेत् ॥ ६६ ॥
गोभिर्हतंतथोद्बद्धं ब्राह्मणेनतुघातितम् ।
तंस्पृशन्तिचयेविप्रा गोजाश्वाश्चभवन्तिते ॥ ६७ ॥

भोजन करै वह काक, जो बोझा उठानादि कर्म करै वह शूद्र, स्त्री का संग करै वह सूकर होता है ॥ ६१ ॥ श्राद्ध में भोजन करके फिर भोजनादि आठ काम करने वाला पुरुष गायत्री से दशवार पढ़ २ के जल पीवे और फिर संध्या करके शुद्ध होता है ॥ ६२ ॥ गीले वस्त्र पहन कर और गोड़ों से बाहर हाथ रख कर जो जप होम तथा प्रतिग्रह (दान लेना आदि) करै वह सब काम उस का निष्फल हो जाता है ॥ ६३ ॥ नव श्राद्ध (त्रयोदशाह) में जीम कर चान्द्रायण, मासिक श्राद्ध एकोद्दिष्ट में जीम कर पराक, मृत्यु के पश्चात् डेढ महीने के श्राद्ध में और छः महीने के श्राद्ध में जीम कर कृच्छ्रव्रत करै ॥ ६४ ॥ ऊनाब्दिक (११) महीने के श्राद्ध में खाकर तीन दिन और वर्षी में खाकर एक दिन व्रत करै और एक महिने के भीतर मरने के सूतक में खाकर आधा अथवा पाद कृच्छ्रव्रत करना कहा है ॥६५॥ सर्प, ब्राह्मण, सींगवाले, दांतों वाले, सरीसृप (सांप का भेद) इन से मरे और अपने को मार डालने वाले जो मनुष्य हैं इन का श्राद्ध न करै ॥६६॥ गौके मारे, फांसी से मरे, ब्राह्मण ने जिनको मार डाला हो उन का जो ब्राह्मण स्पर्श करें वे जन्मान्तर में गौ, बकरा और घोड़ा होतेहैं६७

अग्निदातातथाचान्ये पाशच्छेदकराश्चये ।
तप्तकृच्छ्रेणशुध्यन्ति मनुराहप्रजापतिः ॥ ६८ ॥
त्र्यहमुष्णंपिबेदापस्त्र्यहमुष्णंपयःपिबेत् ।
त्र्यहमुष्णंघृतंपीत्वा वायुभक्षोदिनत्रयम् ॥ ६९ ॥
गोभूहिरण्यहरणे स्त्रीणांक्षेत्रगृहस्यच ।
यमुद्दिश्यत्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ७० ॥
उद्यताःसहधावन्तो सर्वेयेशस्त्रपाणयः ।
यद्येकोऽपिहनेत्तत्र सर्वेतेब्रह्मघातकाः ॥७१॥
बहूनांशस्त्रघातानां यद्येकोमर्मघातकः ।
सर्वेतेशुद्धिमिच्छन्ति सएकोब्रह्मघातकः ॥७२॥
पतितान्नंयदाभुङ्क्ते भुङ्क्तेचाण्डालवेश्मनि ।
समासार्द्धंचरेद्वारि मासंकामकृतेनतु ॥७३॥
योयेनपतितेनैव संसर्गंयातिमानवः ।
सतस्यैवव्रतंकुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥७४॥
ब्रह्महापातकिस्पर्शे स्नानंयेनविधीयते ।

सर्पादि से मरेका दाह करने वाला तथा अन्य जन जो फांसीको काटने वाले हैं वे तप्तकृच्छ्रव्रत से शुद्ध होते हैं यह बात प्रजा के पति मनुजी ने कही है ॥ ६८ ॥ तीन दिन गर्म जल, तीन दिन गर्म दूध. तीन दिन गर्म घी पीवे और तीन दिन वायु को भक्षण करै यह तप्तकृच्छ्रव्रत का लक्षण है ॥६९॥ गौ, पृथिवी, सुवर्ण, स्त्री, खेत, घर, इन के हरलेने पर जिस का सताया हुआ मनुष्य प्राणों को त्यागे उस को ब्रह्म हत्या का अपराधी कहते हैं ॥ ७० ॥ अनेक मनुष्य शस्त्र ले २ कर एक संग किसी पर हमला करें उन में से यदि एक पुरुष भी मार डाले तो वे हमला करने वाले सब हत्या के अपराधी हैं ॥ ७१ ॥ हथियार से मारने वाले बहुतों में यदि एक कोई मर्म स्थान में मारे जिससे वह मरजावे तो वह मर्मघाती एकही दोषी है अन्य सब निर्दोष शुद्ध हैं ॥७२॥ जो पतितका अन्न खावे वा चाण्डालके घरमें अज्ञानसे खावे तो पन्द्रह दिन और जानकर खावे तो एकमास जलमात्र पीकर व्रत करे ॥ ७३ ॥ जो मनुष्य जिस पतित के साथ खान पानादि में मेल करता है वह उसी पतित के लिये कहा प्रायश्चित्त संसर्ग से हुए दोष की शुद्धि के लिये करे ॥७४॥ जिस ब्रह्महत्यारेका स्पर्श करनेसे स्नान करना कहा है उसी उच्छिष्ट पतितने स्पर्श किया

तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यंसमाचरेत ॥७५॥
ब्रह्महाचसुरापेयी स्तेयीचगुरुतल्पगः ।
महान्तिपातकान्याहुस्तत्संसर्गीचपञ्चमः ॥७६॥
स्नेहाद्वायदिवालोभाद् भयादज्ञानतोऽपिवा ।
कुर्वन्त्यनुग्रहंयेच तत्पापंतेषुगच्छति ॥७७॥
उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टो ब्राह्मणस्तुकदाचन ।
तत्क्षणात्कुरुतेस्नानमाचामेनशुचिर्भवेत ॥७८॥
कुब्जवामनषण्ढेषु गद्गदेषुजडेषुच ।
जात्यन्धेबधिरेमूके नदोषःपरिवेदने ॥७९॥
क्लीवेदेशान्तरस्थेच पतितेव्रजितेपिवा ।
योगशास्त्राभियुक्तेच नदोषःपरिवेदने ॥८०॥
पूरणेकूपवापीनां वृक्षच्छेदनपातने ।
विक्रीणीतगजंचाश्वं गोवधंतस्यनिर्दिशेत् ॥८१॥
पादेऽङ्गरोमवपनं द्विपादेश्मश्रुकेवलम् ।

हो तो प्राजापत्य व्रत करे ॥ ७५ ॥ ब्रह्महत्यारा, वार २ समझ पूर्वक मदिरा पीने वाला, सुवर्ण का चोर, गुरु पत्नी मे संयोग करने वाला और पांचवां इन का संसर्गी मेली ये पांच महापातकी कहाते हैं ॥ ७६ ॥ प्रीति से, लोभ से, भय से, अथवा अज्ञान से, जो अपराधी पर कृपा करते हैं अर्थात् पाप का प्रायश्चित्त नहीं कराते वह अपराधी का पाप उन प्रायश्चित्त न कराने वालों को लगता है ॥ ७७ ॥ यदि कभी उच्छिष्ट ब्राह्मण को अन्य उच्छिष्ट मनुष्य छूलेवे तो उसी क्षण स्नान कर आचमन करने से शुद्ध होता है ॥७८॥ कुबड़ा, बिलंदिया, नपुंसक, तोतला, महामूर्ख, जन्मांध, बहरा, गूंगा, इन के परिवेदन में अर्थात् बड़ा भाई कुब्जादि हो तो छोटे भाई का उस से पहिले विवाह करलेने में कुछ दोष नहीं है । तथा यदि बड़ा भाई क्लीव (हिजड़ा) हो, देशांतर में रहता हो, पतितहो, संन्यासी हो गया हो, और योगाभ्यास में लगा हो तो भी परिवेदन में दोष नहीं है ॥ ७९ ।८० ॥ बावड़ी और कूपों को बन्द करना, काटकर वृक्षों को गिराना, हाथी और घोड़े को बेचना इन कामों को जो करे वह गो हत्या का प्रायश्चित्त करे ॥ ८१ ॥

पाद (चौथाई) कृच्छ्र में सब अंग के रोमों का मुंडन, द्विपाद आधे कृच्छ्र में डाढी मूछों का, त्रिपाद (पौन) कृच्छ्र में शिखा को छोड़कर सब केशों का और चौथे(संपूर्ण

तृतीयेतुशिखावर्जं चतुर्थेतुशिखावपः ॥ ८२ ॥
चाण्डालोदकसंस्पर्शे स्नानंयेनविधीयते ।
तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यंसमाचरेत् ॥ ८३ ॥
चाण्डालस्पृष्टभाण्डस्थं यत्तोयंपिबतिद्विजः ।
तत्क्षणात्क्षिपतेयस्तु प्राजापत्यंसमाचरेत् ॥ ८४ ॥
यदिनोत्क्षिप्यतेतोयं शरीरेतस्यजीर्य्यति ।
प्राजापत्यंनदातव्यं कृच्छ्रंसांतपनंचरेत् ॥ ८५ ॥
चरेत्सान्तपनंविप्रः प्राजापत्यंतुक्षत्रियः ।
तदर्धंतुचरेद्वैश्यः पादंशूद्रेतुदापयेत् ॥ ८६ ॥
रजस्वलायदास्पृष्टा शुनासूकरवायसैः ।
उपोष्यरजनीमेकां पञ्चगव्येनशुध्यति ॥ ८७ ॥
आजानुतःस्नानमात्रमानाभेस्तुविशेषतः ।
अतऊर्ध्वंत्रिरात्रंस्यान्मदिरास्पर्शनेमतम् ॥ ८८ ॥
बालश्चैवदशाहेतु पञ्चत्वंयदिगच्छति ।
सद्यएवविशुध्येत नाशौचंनोदकक्रिया ॥ ८९ ॥
शावसूतकउत्पन्ने सूतकंतुयदाभवेत् ।

कृच्छ्र) में शिखा सहित सब बालों का मुंडन कराना चाहिये ॥८२॥ चांडाल के जल को छूने से ब्राह्मण स्नान करै और उच्छिष्ट चाण्डाल यदि ब्राह्मण को छूले तो प्राजापत्य व्रत करै ॥८३॥ चांडाल ने स्पर्श किये पात्र का जल जो ब्राह्मण पीले यदि उस को उसी क्षण में वमन करदे तो प्राजापत्य व्रत करै ॥८४॥ और यदि वमन न करै किन्तु वह जल उस के शरीर में ही पचजाय तो सांतपन कृच्छ्र करै प्राजापत्य नहीं ॥ ८५ ॥ इसी उक्त दोष पर ब्राह्मण सांतपन कृच्छ्र क्षत्रिय प्राजापत्य, वैश्य आधा प्राजापत्य और शूद्र चौथाई प्राजापत्य व्रत करै ॥८६॥ जिस समय रजस्वला स्त्री को कुत्ता, सूकर, काक, ये छूलें तो एक रात भर उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होती है ॥८७॥ यदि घोंटू तक मदिरा छू जाय तो स्नान मात्र शुद्धि करै, यदि किसी ब्राह्मण के शरीर में पगों से नाभि तक छूजाय तो विशेष कर स्नान से ही शुद्धि है और नाभि से ऊपरके अंग में छूजाय तो तीन दिन रात उपवास करे ॥ ८८ ॥ यदि उत्पन्न हो कर दश दिन के भीतर बालक मर जाय तो उसी समय स्नान वस्त्रादि की शुद्धि करले उस का सूतक नहीं लगता और जलदान (तिलाञ्जलि) भी न करे ॥ ८९ ॥ यदि

शावेनशुध्यतेसूतिर्नसूतिःशावशोधिनी ॥ ९० ॥
षष्ठेनशुध्यतेैकाहं पञ्चमेद्व्यहमेवतु ।
चतुर्थेसप्तरात्रंस्यात् त्रिपुरुषंदशमेऽहनि ॥ ९१ ॥
मरणारब्धमाशौचं संयोगोयस्यनाग्निभिः ।
आदाहात्तस्यविज्ञेयं यस्यवैतानिकोविधिः ॥ ९२ ॥
आमंमांसंघृतंक्षौद्रं स्नेहाश्चफलसंभवाः ।
अन्त्यभाण्डस्थिताह्येते निष्क्रान्ताःशुचयःस्मृताः ॥९३॥
मार्जनीरजसासक्तं स्नानवस्त्रघटोदकम् ।
नवाम्भसितथाचैव हन्तिपुण्यंदिवाकृतम् ॥ ९४ ॥
दिवाकपित्थच्छायायां रात्रौदधिशमीषुच ।
धात्रीफलेषुसर्व्वत्र अलक्ष्मीर्वसतेसदा ॥ ९५ ॥
यत्रयत्रचसंकीर्णमात्मानंमन्यतेद्विजः ।
तत्रतत्रतिलैर्होमं गायत्र्यष्टशतंजपेत् ॥ ९६ ॥
इतिश्रीमहर्षिलिखितप्रोक्तं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥

मरण सूतक में जन्म सूतक हो जाय तो मरण सूतक के शेष दिनों में ही जन्म सूतक की शुद्धि होजाती है और जन्म सूतक के दिनों से मरण सूतक निवृत्त नहीं होता अर्थात् जन्म सूतक छोटा और मरण सूतक बड़ा है ॥ ९० ॥
छठी पीढ़ी वालों को एक दिन का, पांचवीं में दो दिन का, चौथी में सात दिन का और तीसरी में दश दिन का सूतक लगता है ॥९१॥ जो अग्निहोत्री न हो उसे मरण के समय से और जो वेदोक्त अग्निहोत्र करता है उस को दाह के समय से सूतक लगता है ॥९२॥ कच्चा मांस, घृत, शहद, फलों से निकले तैल, अन्य किसी नीच के पात्र में रक्खे हुए ये सब पात्र से निकाल लेने पर शुद्ध हैं ॥९३॥ स्नान का शुद्ध वस्त्र, घड़े का जल, और नया जल, इन में यदि मार्जनी (बुहारी) की धूल लग जाय तो उस दिनमें किये पुण्य को नष्ट करता है ॥९४॥ दिन में कैथ की छाया में रात्रि में दही, तथा छयोंकर में, आंवले के फल में, दिन रात दोनों समय अलक्ष्मी (दरिद्रता) बसती है ॥९५॥ जिस २ निकृष्ट कर्म के करने में ब्राह्मण अपने को लज्जा, शंका, संकोच, हुआ माने वहां २ तिलों से होम करे और आठ सौ गायत्री जपे ॥ ९६ ॥
यह महर्षिलिखितके कहे धर्मशास्त्र का पं० भीमसेनशर्मकृत भाषानुवाद पूराहुआ ॥

अथ दक्षस्मृतिप्रारंभः ॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सर्ववेदविदांवरः ।
पारगःसर्वविद्यानां दक्षो नामप्रजापतिः ॥ १ ॥
उत्पत्तिःप्रलयश्चैव स्थितिःसंहारएवच ।
आत्माचात्मनितिष्ठेत आत्माब्रह्मण्यवस्थितः ॥ २ ॥
ब्रह्मचारीगृहस्थश्च वानप्रस्थोयतिस्तथा ।
एतेषांतुहितार्थाय धर्मशास्त्रमकल्पयत् ॥ ३ ॥
जातमात्रःशिशुस्तावद्यावदष्टौसमावयः ।
सहिगर्भसमोज्ञेयो व्यक्तिमात्रप्रदर्शितः ॥ ४ ॥
भक्ष्याभक्ष्येतथापेये वाच्यावाच्येतथाऽनृते ।
अस्मिन्बालेनदोषःस्यात्सयावन्नोपनीयते ॥ ५ ॥
उपनीतेतुदोषोऽस्ति क्रियमाणैर्विगर्हितैः ।

श्रीः शुभम् । संपूर्ण शास्त्रों को यथार्थ जानने वाले, सब वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ और सब विद्याओं के पार पहुंचे हुए दक्ष नामक प्रजापति हुए हैं ॥१॥ उत्पत्ति, प्रलय (मरना) स्थिति, संहार (पांच महाभूतों का प्रलय) इनके करने में समर्थ जिन दक्ष के आत्मा (देह) में साक्षात् परमात्मा ठहरे थे और जिनका आत्मा धर्म में स्थित था ॥२॥ उन दक्ष प्रजापति जी ने,ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, इन चारों आश्रमों के हितार्थ धर्मशास्त्र को रचा है ॥३॥ जब तक आठ वर्ष की अवस्था हो तब तक बालक पैदा हुये के समान है क्योंकि उसे गर्भ तुल्य ही जाने उस का एक आकार मात्र ही दीखता है ॥४॥ भक्ष्य अभक्ष्य, पीने न पीने योग्य, कहने न कहने योग्य, सत्य और झूठ में इस बालक को जनेऊ होने से पहिले दोष नहीं लगता है ॥५॥ जनेऊ हुए पीछे जो निन्दित काम करे तो उस को दोष लगते हैं । और सोलह वर्ष की

अप्राप्तव्यवहारोऽसौ बालःषोडशवार्षिकः ॥ ६ ॥
स्वीकरोतियदावेदं चरेद्वेदव्रतानिच ।
ब्रह्मचारीभवेत्तावदूर्ध्वंस्नातोभवेद्गृही ॥ ७ ॥
द्विविधोब्रह्मचारीस्यादाद्योह्युपकुर्वाणकः ।
द्वितीयोनैष्ठिकश्चैव तस्मिन्नेवव्रतेस्थितः ॥ ८ ॥
त्रयाणामानुलोम्येन प्रातिलोम्येनवापुनः ।
प्रतिलोमंव्रतंयस्य सभवेत्पापकृत्तमः ॥ ९ ॥
योगृहाश्रममास्थाय ब्रह्मचारीभवेत्पुनः ।
नयतिर्नवनस्थश्च ससर्वाश्रमवर्जितः ॥ १० ॥
अनाश्रमीनतिष्ठेत क्षणमेकमपिद्विजः ।
आश्रमेणविनातिष्ठन् प्रायश्चित्तीयतेहिसः ॥ ११ ॥
जपेहोमेतथादाने स्वाध्यायेचरतःसदा ।
नासौफलमवाप्नोति कुर्वाणोप्याऽऽश्रमाच्युतः ॥१२॥
मेखलाजिनदण्डैश्च ब्रह्मचारीतिलक्ष्यते

आयु तक यह बालक संसारी व्यहारों के लायक नहीं होता ॥ ६ ॥ जब यह बालक वेद का प्रारंभ करै तब वेदोक्त ब्रह्मचर्याश्रम के नियम व्रतों को भी करै और ब्रह्मचारी रहे फिर समावर्त्तन स्नान करके गृहस्थ बने ॥ ७ ॥ दो प्रकार का ब्रह्मचारी होता है एक उपकुर्वाणक,—दूसरा नैष्ठिक जो जन्म भर ब्रह्म-चारी ही रहे जप तप वेदाध्ययनादि करता रहे ॥ ८ ॥ ब्रह्मचारी से गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यास ऐसे क्रम से तीनों आश्रमों में प्रवेश करना उत्तम है । यदि कोई गृहस्थ से ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थ होकर गृहस्थ बने तो वह बड़ा पापी है ॥९॥ जो गृहस्थ होकर फिर ब्रह्मचारी बने और संन्यासी अथवा वानप्रस्थ न बने वह सब आश्रमों से रहित है ॥ १० ॥ ब्राह्मणादि द्विज एक क्षण भर भी आश्रम से हीन न रहे क्योंकि आश्रम के विना रहता हुआ द्विज प्रायश्चित्तके योग्य हो जाता है ॥११॥ आश्रम के विना जप, होम, दान, और वेद के पाठ में तत्पर ब्राह्मणादि द्विज कर्म को करता हुआ भी फल को प्राप्त नहीं होता ॥ १२ ॥ मेखला मृगचर्म, दंड, इन चिन्हों से ब्रह्मचारी, बांस की छड़ी और

गृहस्थोयष्टिवेदाद्यैर्नखलोमैर्वनाश्रमी ॥ १३ ॥
त्रिदण्डेनयतिश्चैवं लक्षणानिपृथकपृथक् ।
यस्यैतल्लक्षणंनास्ति प्रायश्चित्तीनचाऽऽश्रमी ॥१४॥
उक्तंकर्मक्रमेणैव यःकालऋषिभिः स्मृतः ।
द्विजानांचहितार्थाय दक्षस्तुस्वयमब्रवीत् ॥ १५ ॥

इति दाक्षे धर्म्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥

प्रातरुत्थायकर्तव्यं यद्द्विजेनदिनेदिने ।
तत्सर्वंसंप्रवक्ष्यामि द्विजानामुपकारकम् ॥ १ ॥
उदयास्तमितंयावन्नविप्रःक्षणिकोभवेत् ।
नित्यनैमित्तिकैर्युक्तः काम्यैश्चान्यैरगर्हितैः ॥ २ ॥
संध्याद्यंवैश्वदेवान्तं स्वकंकर्मसमाचरेत् ।
स्वकंकर्मपरित्यज्य यदन्यत्कुरुतेद्विजः ।
अज्ञानादथवालोभात् सतेनपतितोभवेत् ॥ ३ ॥
दिवसस्याद्यभागेतु कृत्यंतस्योपदिश्यते ।

वेद पुस्तकादि के धारण करने से गृहस्थ नख तथा केश लोमों के धारण से वानप्रस्थ जाना जाता है ॥१३॥ और त्रिदण्ड के धारण से संन्यासी ये चारों आश्रमों के पृथक् २ लक्षण हैं। जिस के शरीर के साथ ये लक्षण नहीं हैं वह प्रायश्चित्त के योग्य है ॥ १४ ॥ ऋषियों ने कर्मों के क्रम से जो २ समय जिस २ काम के लिये कहा है ब्राह्मणादि द्विजों के हित के अर्थ दक्ष प्रजापति स्वयं उस क्रम को कहते हैं ॥ १५ ॥

यह दक्षस्मृति के भाषानुवाद में प्रथम अध्याय पूरा हुआ ॥

प्रातःकाल से उठकर जो २ धर्म युक्त काम द्विजों को प्रतिदिन करने चाहिये उन द्विजों के उपकारी सब कामों को हम कहते हैं ॥ १ ॥ सूर्य के उदय से लेकर अस्त होने पर्यन्त ब्राह्मण एक क्षण भर भी व्यर्थ न गमावे किंतु नित्य (संध्या आदि) नैमित्तिक (जात कर्मादि) काम्य कर्म (यज्ञादि) सत् शास्त्राभ्यासादि इन में युक्त (लगा) रहै॥२॥ संध्योपासन से लेके वैश्वदेव पर्यन्त जो अपना नित्य कर्म है उसे करै, क्योंकि अपने कर्मको छोड़ कर जो ब्राह्मण अज्ञान से अथवा लोभ से अन्य वर्ण का कर्म करता है वह उस कर्म के करने से पतित हो जाता है ॥ ३ ॥ उस ब्राह्मण को दिन के

द्वितीयेचतृतीयेच चतुर्थेपञ्चमेतथा ॥ ४ ॥
षष्ठेचसप्तमेचैव त्वष्टमेचपृथक्पृथक् ।
विभागेष्वेषुयत्कर्म तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ५ ॥
उषःकालेचसम्प्राप्ते शौचंकृत्वायथार्थवत् ।
ततःस्नानंप्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ६ ॥
अत्यन्तमलिनःकायो नवछिद्रसमन्वितः ।
स्रवत्येवदिवारात्रौ प्रातःस्नानंविशोधनम् ॥ ७ ॥
क्लिद्यन्तिहिप्रसुप्तस्य चेन्द्रियाणिस्रवन्तिच ।
अङ्गानिसमतांयान्ति उत्तमान्यधमानिच ॥ ८ ॥
नानास्वेदसमाकीर्णः शयनादुत्थितःपुमान् ।
अस्नात्वानाचरेत्किञ्चिज्जपहोमादिकंद्विजः ॥ ९ ॥
प्रातरुत्थाययोविप्रः सन्ध्यास्नायीभवेत्सदा ।
सप्तजन्मकृतंपापंत्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥ १० ॥
उषस्युषसियत्स्नानं सन्ध्यायामुदितेरवौ ।

प्रथम, दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवें, छठे, सातवें और आठवें, इन भागों में पृथक् २ जो २ कर्म धर्म शास्त्रों के अनुसार उपदेश किये गये हैं उन सब को क्रम से हम कहेंगे ॥ ४ ॥ ५ प्रातः सूर्योदय से चार घड़ी पहिले जाग कर शास्त्र में कहे अनुसार मल मूत्र त्यागादि रूप यथावत् शौच करके दंत धावन पूर्वक स्नान करे ॥ ६ ॥ यह देह मलिनता निकलने के नौ दरवाजों से युक्त होने के कारण अत्यन्त मलिन है, रात दिन शरीर से मलिनता निकलती है,प्रातःकाल का स्नान इस का शोधन करने वाला है ॥७॥ सोते हुये मनुष्य के इन्द्रिय मलिनता से गीले हो जाते और लार आदि टपक ने लगती है। उत्तम,अधम, सब अंग शिथिल होजाते हैं ॥ ८ ॥ सोकर उठा मनुष्य अनेक प्रकार के पसीनादि से युक्त हो जाता है। इस लिये स्नान किये विना ब्राह्मण किंचित् भी जप होमादि कर्म न करे ॥ ९ ॥ जो ब्राह्मण प्रातःकाल ही उठकर नित्यनियम से सन्ध्या स्नान निरन्तर किया करे वह सात जन्म तक में किये पाप को तीन वर्षों में नष्ट कर देता है ॥ १० ॥ प्रतिदिन प्रातःकाल बादल पीले होते ही और सायंकाल में सूर्य के अस्त होने

प्राजापत्येनतत्तुल्यं सर्वपापापनोदनम् ॥ ११ ॥
प्रातःस्नानंप्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरंहितत् ।
सर्वमर्हतिशुद्धात्मा प्रातःस्नायीजपादिकम् ॥ १२ ॥
गुणादशस्नानपरस्यसाधो रूपंचशौचंचबलंचतेजः ।
आरोग्यमायुश्चमलोलुपत्वं दुःस्वप्नघातश्चतपश्चमेधाः॥१३॥
मनःप्रसादजननं रूपसौभाग्यवर्धनम् ।
दुःखशोकापहंस्नानं मानदंज्ञानदंतथा ॥ १४ ॥
आग्नेयंभस्मनास्नानमवगाह्यचवारुणम् ।
आपोहिष्ठेतिचब्राह्मं वायव्यंगोरजःस्मृतम् ॥ १५ ॥
यत्तुसातपवर्षंतु तत्स्नानंदिव्यमुच्यते ।
पञ्चस्नानानिपुण्यानि मनुःस्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ १६ ॥
आपस्नानंव्रतस्नानं मन्त्रस्नानंतथैवच ।

से पहिले जो स्नान करता है वह स्नान प्राजापत्य व्रत के तुल्य सब पापोंका नाशक है ॥ ११ ॥ प्रत्यक्ष परोक्ष फल देने वाला जो प्रातःकाल का स्नान उन की सब विद्वान् लोग प्रशंसा करते हैं । प्रातःकाल स्नान करने वाला मनुष्य देह की पवित्रता से संपूर्ण जप आदि कर्म करने योग्य होता है ॥ १२ ॥ स्नान में तत्पर कुटिलतारहित साधु मनुष्य में ये दश उत्तम गुण होते हैं कि रूप, शुद्धि, बल, तेज, नीरोगता अवस्था, लालचछूटना, मन की शुद्धि से बुरे स्वप्नों का न होना, तप, और तीक्ष्ण बुद्धि होना ॥ १३ ॥ मन को प्रसन्न करने, रूप तथा सौभाग्य को बढ़ाने, दुःख तथा शोक का नाश करने, मान और ज्ञान का देने वाला, प्रातःकाल का स्नान है ॥ १४ ॥ भस्म से स्नान करना आग्नेय स्नान, जलाशय में अवगाहन करके स्नान करना वारुण, (आपोहिष्ठा०) इत्यादि मन्त्रों को पढ़ २ के स्नान करना ब्राह्म, और गौओं के खुरों से उड़ी धूलि को शरीर पर लेना, वायव्य, स्नान कहाता है ॥ १५ ॥ घाम होने पर वर्षा भी हो उस में स्नान करना, दिव्य स्नान है । स्वायंभुव मनुने ये पांच स्नान पुण्य करने वाले कहे हैं ॥ १६ ॥ आप (जल से) स्नान, व्रत स्नान, (व्रतों के द्वारा मन वाणी शरीरों की शुद्धि) और मन्त्र स्नान, (मन्त्रों के जपादि द्वारा शुद्धि) इन तीन स्नानों में जल स्नान गृहस्थ के लिये, व्रत

आपस्नानंगृहस्थस्य व्रतमन्त्रैतपस्विनाम् ॥ १७ ॥
कनिष्ठादेशिन्यङ्गुष्ठमूलान्यग्रंकरस्यच ।
प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात् ॥ १८ ॥
दानंप्रतिग्रहोहोमो भोजनंबलिकंतथा ।
साङ्गुष्ठंतुसदाकार्यमापतेत्तदधोऽन्यथा ॥ १९ ॥
स्नानादनन्तरंतावदुपस्पर्शनमुच्यते ।
अनेनतुविधानेन स्वाचान्तःशुचितामियात् ॥ २० ॥
उदकएवोदकस्थश्चेत्स्थलस्थश्चस्थलेशुचिः ।
पादौस्थाप्योभयत्रैव आचम्योभयतःशुचिः ॥ २१ ॥
प्रक्षाल्यहस्तौपादौच त्रिःपिबेदम्बुवीक्षितम् ।
संहताङ्गुष्ठमूलेन द्विःप्रमृज्यात्ततोमुखम् ॥ २२ ॥
संहत्यतिसृभिःपूर्वमास्यमेवमुपस्पृशेत् ।
अङ्गुष्ठेनप्रदेशिन्या घ्राणंपश्चादुपस्पृशेत् ॥ २३ ॥
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यांच चक्षुःश्रोत्रेपुनःपुनः ।

स्नान, मन्त्रस्नान, तपस्वियों के लिये हैं॥ १७ ॥ कनिष्ठा, प्रदेशिनी, अंगुष्ठ, इन के मूल में और सब अंगुलियों के अग्रभाग में क्रम से प्रजापति, पितर, ब्रह्म और देवों के तीर्थ माने जाते हैं। इस लिये कनिष्ठा अंगुली के मूल से प्रजापतिको, प्रदेशिनीके मूलसे पितरोंको, अंगुष्ठके मूलसे ब्रह्माको, और हाथ के अग्रभागसे देवोंकेलिये जलदान करे ॥१८॥ दानदेना, दानलेना, भोजन करना, बलि धरना, होम करना, इन कामोंको अंगुष्ठ सहित सब अंगुलियोंसे करे। अन्यथा करने से अधोगति में पड़ेगा ॥ १९ ॥ स्नानके अनन्तर आचमन करने का विधान कहते हैं ठीक इस के आगे कहे विधान से आचमन करने पर मनुष्य सम्यक् शुद्ध हो जाता है ॥२०॥ जलाशय के भीतर वा स्थल में जहां बैठ कर आचमन करे वहां पग जमाकर आचमन करे, तो बाहर भीतरसे शुद्ध होजाताहै।२१। हाथ और पगों को धो कर अंगुलियों से मिलाये हुये अंगुष्ठ के मूल भाग से जल को देख २ कर तीनवार पीवे, फिर अंगुलियों के अग्रभाग में जल लगा २ कर दोवार मुखको शुद्ध करे ॥२२॥ फिर अनामिका, मध्यमा, प्रदेशिनी, इनतीन अंगुलियों से मुखका, अंगुष्ठ और प्रदेशिनी से नासिका के दोनों छिद्रों का,

नाभिंकनिष्ठाङ्गुष्ठाभ्यां हृदयंतुतलेनवै ॥ २४ ॥
सर्वाभिश्चशिरःपश्चाद्बाहूचाग्रेणसंस्पृशेत् ।
सन्ध्यायांचप्रभातेच मध्यान्हेचततःपुनः ॥ २५ ॥
हृद्गाभिःपूयतेविप्रः कण्ठगाभिश्चभूमिपः ।
वैश्यःप्राशितमात्राभिर्जिह्वागाभिःस्त्रियोऽप्रिजाः ॥२६॥
योनसन्ध्यामुपासीत ब्राह्मणोहिविशेषतः ।
सजीवन्नेवशूद्रःस्यान्मृतःश्वाचैवजायते ॥ २७ ॥
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हःसर्वकर्मसु ।
यदन्यत्कुरुतेकर्म नतस्यफलभाग्भवेत् ॥ २८ ॥
सन्ध्याकर्मावसानेतु स्वयंहोमोविधीयते ।
स्वयंहोमेफलंयत्तु तदन्येननजायते ॥ २९ ॥
ऋत्विक्पुत्रोगुरुर्भ्राता भागिनेयोऽथविट्पतिः ।
एभिरेवहुतंयत्तु तद्धुतंस्वयमेवतु ॥ ३० ॥

अंगूठा और अनामिका से बारम्बार नेत्र और कानों का, पहिले दहिने नेत्र दहिने कान का पश्चात् वाम का, स्पर्श करे, और अंगूठा और कनिष्ठका से नाभिका, और हाथके तलसे हृदय का स्पर्श करे ॥ २३ । २४ ॥ सब अंगुलियों से शिरका, हाथ के अग्रभाग से दोनों भुजाओं का स्पर्श करे । सायं सन्ध्या के समय, प्रातःकाल और मध्यान्ह में पूर्वोक्त प्रकार से आचमन तथा इन्द्रि-यस्पर्श करे॥२५॥ हृदय तक पहुंचने वाले जल के आचमन से ब्राह्मण, कंठ तक पहुंचने वाले से क्षत्रिय, प्राशित (जो मुख में ही रहै) मात्र जल से वैश्य, और जिह्वा का स्पर्श जिस से हो, उस जल के आचमन से स्त्री और शूद्र—प-वित्र होते हैं ॥ २६ ॥ जो ब्राह्मण विशेष कर संध्योपासन नहीं करता वह जीता ही शूद्र है और मरकर कुत्ता की योनि में जन्म लेता है ॥२७॥ संध्या-हीन मनुष्य नित्य अशुद्ध तथा सब कर्मों के अयोग्य है और वह जो कुछ अन्य कर्म करता है उस के फलका भी भागी नहीं होता है ॥ २८ ॥ संध्या के पीछे स्वयं होम करना कहा है, क्योंकि जो फल स्वयं होम करने का है, वह अन्य से कराने पर नहीं होता ॥ २९ ॥ ऋत्विज्, अध्वर्यु, अपना पुत्र, गुरु, भाई; भानजा, और जामाता इन प्रतिनिधियों द्वारा जो होम कराया गया हो, वह स्वयं किये के तुल्य ही है ॥ ३०॥

देवकार्यंततःकृत्वा गुरुमङ्गलवीक्षणम् ।
देवकार्यस्यसर्वस्य पूर्वाह्णस्तुविधीयते ॥३१॥
देवकार्याणिपूर्वाह्णे मनुष्याणांतुमध्यमे ।
पितॄणामपराह्णेतु कार्याण्येतानियत्नतः ॥३२॥
पौर्वाह्णिकंतुयत्कर्म तद्यदासायमाचरेत् ।
नतस्यफलमाप्नोति वन्ध्यास्त्रीमैथुनंयथा ॥३३॥
दिवसस्याद्यभागेतु सर्वमेतद्विधीयते ।
द्वितीयेचैवभागेतु वेदाभ्यासोविधीयते ॥३४॥
वेदाभ्यासोहिविप्राणां परमंतपउच्यते ।
ब्रह्मयज्ञःसविज्ञेयः षडङ्गसहितस्तुयः ॥३५॥
वेदस्वीकरणंपूर्वं विचारोऽभ्यसनंजपः ।
प्रदानंचैवशिष्येभ्यो वेदाभ्यासोहिपञ्चधा ॥३६॥
समित्पुष्पकुशादीनां सकालःपरिकीर्त्तितः ।
तृतीयेचैवभागेतु पोष्यवर्गान्नसाधनम् ॥३७॥

फिरदेव कार्य करके गुरु और मंगल वस्तु (गौआदि) का दर्शन करे, सब देव कार्य मध्यान्ह से पूर्व ही समय में करना कहा है ॥३१॥ देव कार्य पूर्वाह्ण में, मनुष्यों के अतिथि यज्ञादि कार्य मध्य दिन में, पितरों के कार्य मध्यान्ह के पीछे तीसरे पहर में यत्न से करे ॥३२॥ पूर्वाह्ण में कर्तव्य कर्म को सायंकाल में जो मनुष्य आलस्यादि से करे, वह उस के फल को इस प्रकार प्राप्त नहीं होता कि जैसे वंध्या स्त्री मैथुन से गर्भ धारण फल को नहीं पाती ॥ ३३ ॥ दिन के पहिले भाग में यह पूर्वोक्त सब कर्तव्य कहा और दिन के दूसरेभाग में नियम से वेद का अभ्यास करे ॥ ३४ ॥ नियम से वेद का अभ्यास करना ब्राह्मणों का परम तप कहा है, यदि वेद के छः अंगों (व्याकरण आदि) सहित वह वेदाभ्यास किया जाय, तो वही ब्रह्मयज्ञ जानो ॥ ३५ ॥ वेद का अभ्यास पांच प्रकार का है। १–वेद का स्वीकार (गुरुमुख से वेद पढ़ना) २-वेदार्थ का विचार, ३-वेद को वार २ घोषण करना रूप अभ्यास, ४-जप और ५-शिष्यों को पढ़ाना ॥ ३६ ॥ ढांक की समिधा, फूल, कुशा, इन को जहां तहां से लाकर संग्रह भी दिन के द्वितीय भाग में करे। पोष्यवर्ग (पालन के योग्य माता आदि) के लिये अन्न का प्रबन्ध दिन के तीसरे भाग में करे ॥ ३७ ॥

मातापितागुरुर्भार्या प्रजादीनःसमाश्रितः ।
अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्गउदाहृतः ॥३८॥
ज्ञातिर्बन्धुजनःक्षीणस्तथाऽनाथःसमाश्रितः ।
अन्योऽपिधनयुक्तस्य पोष्यवर्गउदाहृतः ॥३९॥
सार्वभौतिकमन्नाद्यं कर्तव्यंगृहमेधिना ।
ज्ञानविद्भ्यःप्रदातव्यमन्यथानरकंव्रजेत् ॥४०॥
भरणंपोष्यवर्गस्य प्रशस्तंस्वर्गसाधनम् ।
नरकःपीडनेचास्य तस्माद्यत्नेनतंभरेत् ॥४१॥
सजीवतियएवैको बहुभिश्चोपजीव्यते ।
जीवन्तोऽपिमृतास्त्वन्ये पुरुषाःस्वोदरम्भराः ॥४२॥*
बहूर्थंजीव्यतेकैश्चित्कुटुम्बार्थेतथाऽपरैः ।
आत्माऽर्थेन्योनशक्नोति स्वोदरेणापिदुःखितः ॥४३॥
दीनानाथविशिष्टेभ्यो दातव्यंभूतिमिच्छता ।

माता, पिता, गुरु, स्त्री, संतान, दीन, अनाथ, समाश्रित (दास) अभ्यागत, अतिथि और अग्नि यह सब पोष्य वर्ग कहाता है ॥ ३८ ॥ अपने कुल के वा सम्बन्धियों में जो धन हीन दरिद्र वा क्षीण (असमर्थ) अनाथ और समाश्रित शरणागत, ये अन्य भी धनी पुरुष के लिये पोष्य वर्ग कहा है । अर्थात् ३८ श्लोक का पोष्य वर्ग सर्वसाधारण गृहस्थों के लिये है और धनी के लिये ३८ । ३९ । दोनों में कहा पोष्य वर्ग जानो ॥ ३९ ॥ गृहस्थ को चाहिये कि सब प्राणियों की तृप्ति के लिये भक्ष्य अन्न आदि विशेष कर बनावे और ज्ञानियों को देवे, अन्यथा जो करै वह नरक में जाता है ॥४०॥ पोष्य वर्गका पालन करना स्वर्ग का उत्तम साधन है और पोष्य वर्ग को दुःख पहुंचाने से नरक होता है, इस से पोष्य वर्ग का बड़े यत्न से पालन करै ॥ ४१ ॥ जिस एक पुरुष के सहारे से बहुतों का जीवन हो, वह एक जानो वास्तव में जीवित है और अन्य अपना ही पेट भरने वाले पुरुष जीते हुए भी मृतक (मुर्दा ही) हैं ॥ ४२ ॥ कोई लोग बहुतों के लिये जीविका करते तथा कोई कुटुम्ब के पालनार्थ करते हैं और कोई अपने पेट को ही भरने में दुःखी रहते, अपने निर्वाह के लिये भी समर्थ नहीं होते ॥४३॥ यदि अपनी वृद्धि चाहै, तो दीन

अदत्तदानाजायन्ते परभाग्योपजीविनः ॥४४॥
यद्ददासिविशिष्टेभ्यो यज्जुहोसिदिनेदिने ।
तत्तुवित्तमहंमन्ये शेषंकस्यापिरक्षसि ॥४५॥
चतुर्थेऽह्नस्तथाभागे स्नानार्थंमृदमाहरेत् ।
तिलपुष्पकुशादीनि स्नायाच्चाकृत्रिमेजले ॥४६॥
मृत्तिकाःसप्तनग्राह्या वल्मीकान्मूषकस्थलात् ।
अन्तर्जलाच्चमार्गान्ताद् वृक्षमूलात्सुरालयात् ॥४७॥
परशौचावशिष्टाच श्रेयस्कामैः सदाबुधैः ।
शुचिदेशात्तुसंग्राह्या मृत्तिकास्नानहेतवे ॥४८॥
अश्वक्रान्तेरथक्रान्ते विष्णुक्रान्तेवसुन्धरे ! ।
मृत्तिके ! हरमेपापं यन्मयापूर्वसञ्चितम् ॥४९॥
उद्धृतासिवराहेण कृष्णेनशतबाहुना ।

अनाथ, और सज्जन विद्वानों को देवे क्योंकि जिन्हों ने दान नहीं दिया वे पराये भाग्य से जीने वाले पराधीनता के लिये ही पैदा होते हैं ॥ ४४ ॥ जो सज्जनों, विद्वानों, धर्मात्माओं को देता है और जो प्रतिदिन होम करता है उसी को हम तेरा धन मानते हैं, शेष धन तो किसी अन्य का है, जिस की तू रक्षा करता है ॥ ४५ ॥ दिन के चौथे भाग में स्नान के लिये मट्टी लावे तथा तिल, फूल, कुश आदि लावे और ऐसे जल में स्नान करे जो कृत्रिम (बनाये कूप आदि का) न हो किन्तु स्वयं बहती नदी आदि में स्नान करे ॥ ४६ ॥ कीड़ों के बिलों से, मूषों के घरों से, जल के भीतर से, मार्ग के बीच से, वृक्ष की जड़ से, देव मन्दिर से, और अन्य के हाथ मांजने से बची इन सात स्थानों से अपना कल्याण चाहने वाले विचार शील पुरुष स्नानादि के लिये सदा ही मट्टी न लेवें । किन्तु स्नान के लिये किसी शुद्ध स्थान से मट्टी लेनी चाहिये ॥ ४७ । ४८ ॥ घोड़ा वा रथ जिस पर चलते, विष्णु भगवान् ने अवतार ले २ कर जिसपर आक्रमण-पराक्रम किये ,दिखाये ऐसी हे पृथिवी ! हे मृत्तिके ! मेरे जो पूर्व संचित पाप हैं, उन को दूर करो ॥४९॥ हे मृत्तिके ! कृष्ण वाराह अवतार धारी शत बाहू भगवान् ने तुम्हारा उद्धार किया है । हे मृत्तिके ! मैं प्रजा और धन के निमित्त तुम को ग्रहण करता हूं । इस

मृत्तिकेप्रतिगृह्णामि प्रजयाचधनेनच ॥५०॥
नित्यंनैमित्तिकंकाम्यं त्रिविधंस्नानमुच्यते ।
तेषांमध्येतुयन्नित्यं तत्पुनर्भिद्यतेत्रिधा ॥५१॥
मलापकर्षणंपूर्वं मन्त्रवत्तुजलेस्मृतम् ।
सन्ध्ययोरुभयोःस्नानं स्नानभेदाःप्रकीर्तिताः ॥५२॥
मार्जनंजलमध्येतु प्राणायामोयतस्ततः ।
उपस्थानंततःपश्चाद् गायत्रीजपउच्यते ॥ ५३ ॥
सवितादेवतायस्या मुखमग्निरुदाहृतः ।
विश्वामित्रऋषिश्छन्दो गायत्रीसाविशिष्यते ॥ ५४ ॥
अङ्गारकदिनेप्राप्ते कृष्णपक्षेचतुर्दशी ।
यमुनायांविशेषेण नियतोनियताशनः ॥ ५५ ॥
यमायधर्मराजाय मृत्यवेचान्तकायच ।
वैवस्वतायकालाय सर्वभूतक्षयायच ॥ ५६ ॥
औदुम्बरायदध्नाय नीलायपरमेष्ठिने ॥
वृकोदरायचित्राय चित्रगुप्तायवापुनः ॥ ५७ ॥
एकैकस्यतिलैर्मिश्रान् दद्यात्त्रीनष्टवाञ्जलीन् ।

प्रकार इन दो मन्त्रों को पढ़ के स्नान के लिये हाथ में मृत्ति का लेवे ॥५०॥ नित्य, नैमित्तिक, काम्य, तीन प्रकार का स्नान कहा है। इन तीनों में जो नित्य स्नान है, वहभी तीन प्रकार का होता है ॥ ५१ ॥ मलापकर्षणार्थस्नान, मंत्रों सहित जलाशय में स्नान, और दोनों संध्याओं के समय शुद्ध्यर्थ स्नान करना, ये तीनभेद नित्य स्नानके कहेहैं ॥५२॥ जलके बीच मार्जन, फिर जल में, अथवा बाहर प्राणायाम करे, फिर सूर्यनारायण का उपस्थान करके पश्चात् गायत्री का जप करना कहा है ॥ ५३ ॥ सविता, जिस का देवता, अग्नि जिस का मुख, विश्वामित्र, जिस के ऋषि, जो त्रिपाद् गायत्री छंद है, वह (तत्सवितुर्व०) गायत्री सर्वोत्तम है ॥ ५४ ॥ जब कभी कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को मंगलवार आजाय, उसी दिन थोड़ा नियत भोजन करने वाला सावधान जितेन्द्रिय हुआ पुरुष अपसव्य हो कर विशेष कर यमुना नदी पर जाके (ओंय-

यावज्जीवकृतंपापं तत्क्षणादेवनश्यति ॥ ५८ ॥
पञ्चमेतुतथाभागे संविभागोयथार्थतः ।
पितृदेवमनुष्याणां कीटानांचोपदिश्यते ॥ ५९ ॥
देवैश्चैवमनुष्यैश्च तिर्यग्भिश्चोपजीव्यते ।
गृहस्थःप्रत्यहंयस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठाश्रमोगृही ॥ ६० ॥
त्रयाणामाश्रमाणांतु गृहस्थोयोनिरुच्यते ।
सीदमानेनतेनैव सीदन्तीहेतरेत्रयः ॥ ६१ ॥
मूलत्राणेभवेत्स्कन्धः स्कन्धाच्छाखेतिपल्लवाः ।
मूलेनैवविनष्टेन सर्वमेतद्विनश्यति ॥ ६२ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयोगृहाश्रमी ।
राज्ञाचान्यैस्त्रिभिःपूज्यो माननीयश्चसर्वदा ॥ ६३ ॥
गृहस्थोऽपिक्रियायुक्तो गृहेणनगृहीभवेत् ।

राय नमः। धर्मराजायनमः) इत्यादि मन्त्रों द्वारा चौदह यमों को प्रत्येक को तिलांजलि जलकी तीन २ या आठ २ अञ्जलि देवे, तो जन्मभर में किया सब पाप क्षणमात्र में नष्ट हो जाता है ॥५५। ५६। ५७। ५८॥ दिनके पांचवें भाग में यथा योग्य पितर देव, मनुष्य, और कीड़े इनको महायज्ञ सम्बन्धी कर्म-द्वारा संविभाग (देना) करता है ॥ ५९ ॥ देवता, मनुष्य, तिर्यग्योनि, ये सब जिस कारण आश्रमादि गृहस्थ से ही जीते हैं, तिस से गृहस्थ श्रेष्ठ हैं ॥६०॥ तीनों आश्रमों का योनि (कारण) गृहस्थ कहा है। (गृहस्थ से ही उत्पन्न हो २ कर ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी, होते हैं इसमे गृहस्थ सब आश्रमों का मूल कारण है) उस के जगत् में दुःखी रहने से अन्य तीनों आश्रम दुःखी हो जाते हैं ॥ ६१ ॥ जड़ की रक्षा करने से स्कन्ध (गुद्दे) और गुद्दोंसे डाली और डालियों से पत्ते हो जाते हैं और मूल (जड़) का नाश होनेसे ये सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ६२ ॥ तिस से सम्पूर्ण यत्नसे गृहस्थ आश्रम की रक्षा, पूजा आदर (सत्कार) और मान प्रतिष्ठा राजा और तीनों आश्रमी सदा करैं ॥६३॥ गृहस्थ भी क्रिया (अपने श्रुतिस्मृति प्रतिपादित धर्म कर्म) में तत्पर रहे। घर में रहने से गृहस्थ नहीं होता, अपने कर्म से हीन गृहस्थ पुत्र और स्त्री

नचैवपुत्रदारेण स्वकर्मपरिवर्जितः ॥ ६४ ॥
अस्नात्वाचाप्यहुत्वाच तथाऽदत्वाचभुञ्जते ।
देवादीनामृणीभूत्वा नरकंतेव्रजन्त्यधः ॥ ६५ ॥
अस्नात्वासमलंभुङ्क्ते त्वजापीपूयशोणितम् ।
अहुत्वाचकृमिंभुङ्क्ते ह्यदत्वाऽमेध्यमेवच ॥६६॥
वृथातप्तोदकस्नानं वृथाजाप्यमवैदिकम् ।
वृथारतमपुत्रस्य वृथाभुक्तमसाक्षिकम् ॥ ६७ ॥
एकोहिभक्षयत्यन्नमपरोऽन्नेनभक्ष्यते ।
नभुज्यतेसएवैकोयोऽन्नंभुङ्क्तेहुताशकम् ॥६८॥
विभागशीलतायस्य क्षमायुक्तोदयालुकः ।
देवतातिथिभक्तश्च गृहस्थःसतुधार्मिकः ॥६९॥
दयालज्जाक्षमाश्रद्धा प्रज्ञात्यागःकृतज्ञता ।
गुणायस्यभवन्त्येते गृहस्थोमुख्यएवसः ॥७०॥
संविभागंततःकृत्वा गृहस्थःशेषभुग्भवेत् ।

से गृहस्थ नहीं होता कि जो स्वकर्म से रहित है ॥ ६४ ॥ स्नान होम और दान किये विना जो गृहस्थ लोग भोजन करते हैं वे मनुष्य देवता आदि के ऋणी होकर अधोगति नरक में जाते हैं ॥ ६५ ॥ स्नान किये विना भोजन करने वाला, मल सहित खाता, जप किये विना खाने वाला पीव, रुधिर के तुल्य अन्न को खाता, होम किये विना खाने वाला कीड़ों को खाता, अतिथि को दिये विना अशुद्ध को खाता है ॥६६॥ गर्म किये जल से स्नान, वेद से भिन्न स्तोत्र मन्त्रादि का जप, सन्तान हुए विना स्त्री से समागम, और देवतादि को दिये विना भोजन करना, ये सब काम व्यर्थ हैं॥६७॥ कोई मनुष्य तो अन्न को खाते हैं और किसी मनुष्य को अन्न ही खाता है। यदि अन्न किसी को नहीं खाता तो उस को ही नहीं खाता है जो देव आदि को देकर (वैश्वदेव करके) खाता है ॥ ६८ ॥ जिस का स्वभाव अन्यों का भाग देने का है, जो क्षमायुक्त है, दयालु है, और देवता तथा अतिथियों का भक्त है, वही गृहस्थ धार्मिक है ॥ ६९ ॥ दया, लज्जा, क्षमा, श्रद्धा, बुद्धिमत्ता, त्याग, कृतज्ञता (अन्य के किये उपकार को मानना) ये गुण जिस में हैं, वही गृहस्थ मुख्य है ॥ ७० ॥ फिर सब के लिये विभाग देकर गृहस्थ पुरुष शेष अन्न को

भुक्त्वाऽथसुखमास्थाय तदन्नंपरिणामयेत् ॥७१॥
इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठंवासप्तमंनयेत् ।
अष्टमेलोकयात्रांतु बहिःसंध्याततःपुनः ॥ ७२ ॥
होमंभोजनकृत्यंच यदन्यद्गृहकृत्यकम् ।
कृत्वाचैवंततःपश्चात् स्वाध्यायंकिंचिदाचरेत् ॥७३॥
प्रदोषपश्चिमौयामौ वेदाभ्यासेनतौनयेत् ।
यामद्वयंशयानस्तु ब्रह्मभूयायकल्पते ॥ ७४ ॥
नैमित्तिकानिकाम्यानि निपतन्तियथायथा ।
तथातथातुकार्याणि नकालं तुविलम्बयेत् ॥७५॥
अस्मिन्नेवप्रयुञ्जानो ह्यस्मिन्नेवप्रलीयते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्वाध्यायंसर्वदाभ्यसेत् ॥ ७६ ॥
सर्वत्रमध्यमौयामौ हुतशेषंहविश्चयत् ।
भुञ्जानश्चशयानश्च ब्राह्मणोनावसीदति ॥ ७७ ॥

इति दाक्षे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

खाने वाला हो और भोजन करके सुख पूर्वक बैठकर उस अन्न को पचावे॥७१॥

दिन के छठे वा सातवें भाग को इतिहास पुराणआदि के विचारने पढ़ने में बितावे। दिन के आठवें भागमें घर के कामों का प्रबन्ध करे फिर ग्राम से बाहर शुद्ध स्थान में जाकर सन्ध्या करै ॥७२॥ फिर सायंकाल का होम,भोजन का कार्य और जो कुछ अन्य घर का कार्य हो उसे करके पश्चात् स्वाध्याय (थोड़ा वेदाध्ययन) करै ॥ ७३॥ रात्रि का पहिला और पिछला दो पहर वेदाभ्यास करने में बितावे और मध्यरात्रि के दो पहर सोकर बितावे ऐसा करता हुआ द्विज ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥ नैमित्तिक काम्य कर्म जिस २ समय में आन पड़ें, उसी २ समय करने चाहिये क्योंकि उन के करने को विलम्ब न करे ॥७५॥ वेदाभ्यास में लगा हुआ पुरुष शब्द ब्रह्म में ही लीन होता है जिससे बड़े प्रबल यत्नों के साथ वेद का अभ्यास करे ॥ ७६ ॥ गृहस्थ ब्राह्मण सब जगहों में रात के बीच के दोपहरों में सोता और होम से बचे शेष अन्न का भोजन करता हुआ कभी भी दुःखी नहीं होता ॥७७॥

यह दक्षस्मृति के भाषानुवाद में दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥

सुधानवगृहस्थस्य मध्यमानिनवैवच ।
नवकर्माणितस्यैव विकर्माणिनवैवतु ॥ १ ॥
प्रछन्नानिनवान्यानि प्रकाश्यानिपुनर्नव ।
सफलानिनवान्यानि निष्फलानिनवैवतु ॥ २ ॥
अदेयानिनवान्यानि वस्तुजातानिसर्वदा ।
नवकानवनिर्दिष्टा गृहस्थोन्नतिकारका: ॥ ३ ॥
सुधावस्तूनिवक्ष्यामि विशिष्टेगृहआगते ।
मनश्चक्षुर्मुखंवाचं सौम्यंदत्त्वाचतुष्टयम् ॥ ४ ॥
अभ्युत्थानंततोगच्छेत् पृच्छालापःप्रियान्वितः ।
उपासनमनुव्रजया कार्याण्येतानिनित्यशः ॥ ५ ॥
ईषद्दानानिचान्यानि भूमिरापस्तृणानिच ।
पादशौचंतथाभ्यङ्ग आसनंशयनंतथा ॥ ६ ॥
किंचिद्दद्याद्यथाशक्ति नास्यानश्नन्गृहेवसेत् ।
मृज्जलंचार्थिनेदेय मेतान्यपिसतांगृहे ॥ ७ ॥

गृहस्थ के नौ ९ सुधा, (अमृत) नौ ९ मध्यम, नौ ९ कर्त्तव्य कर्म और नौ ९ विकर्म (निन्दित) कर्म हैं ॥ १ ॥ नौ ९ प्रच्छन्न (छिपे) कर्म, नौ ९ प्रकाश के योग्य, नौ सफल और नौ निष्फल कर्म हैं ॥ २ ॥ और नौ ९ वस्तु सदैव न देने योग्य हैं, ये नौ नवक अर्थात् नौ २ संख्या वाले नौ काम कहे हैं, ये ही गृहस्थ की उन्नति करने वाले नौ काम हैं ॥ ३ ॥ नौ सुधा वस्तुओं को कहते हैं–यदि कोई प्रतिष्ठित विद्वान् वा सज्जन अपने घर आवे तब मन, नेत्र, मुख, वाणी, इन चारों को सौम्य कोमल श्रद्धा युक्त रक्खै ॥ ४ ॥ सज्जनों को आते देख कर उठ कर लावे, आने का प्रयोजन पूछे, प्यार से बोले, सेवा करे, अनुगमन (पीछे चलना) ये ९ काम प्रति दिन अभ्यागत के लिये करे ॥ ५ ॥ ये आगे कहे नौ मध्यम दान हैं भूमि, जल, तृण–(कुश का वा चटाई का आसन) पग धोना, तैल मलना, आसन, शय्या ॥६॥ आये हुए अतिथि को यथाशक्ति कुछ देना चाहिये, क्योंकि विना भोजन किये गृहस्थ के घर में अतिथि न वसे, मांगने वाले को मट्टी, वा जल जो वह चाहे देना ये नौ ९ ईषद्दान अच्छे घरों में सदा होते ही हैं ॥ ७ ॥

सन्ध्यास्नानंजपोहोमः स्वाध्यायोदेवतार्चनम् ।
वैश्वदेवंक्षमातिथ्य मुद्धृत्यापिचशक्तितः ॥ ८ ॥
नवकर्माणिकार्याणि पूर्वोक्तानिमनीषिभिः ।
कृत्वैवंनवकर्माणि सर्वकर्माभवेन्नरः ॥ ९ ॥
पितृदेवमनुष्याणां दीनानाथतपस्विनाम् ।
गुरुमातृपितृणांच संविभागोयथार्थतः ॥
एतानिनवकर्माणि विकर्माणितथापुनः ॥ १० ॥
अनृतंपरदाराश्च तथाऽभक्ष्यस्यभक्षणम् ।
अगम्यागमनापेय पानंस्तेयंचहिंसनम् ॥ ११ ॥
अश्रौतकर्माचरणं मैत्रंधर्मबहिष्कृतम् ।
नवैतानिविकर्माणि तानिसर्वाणिवर्जयेत् ॥ १२ ॥
पैशुन्यमनृतंमाया कामःक्रोधस्तथाप्रियम् ।
द्वेषोदम्भःपरद्रोहः प्रच्छन्नानिनवानव ॥ १३ ॥
गीतनृत्येकृषिःसेवा वाणिज्यंलवणक्रिया ।

सन्ध्या, स्नान, जप, होम, वेदपाठ, देवताओं का पूजन, वैश्वदेव, क्षमा, यथाशक्ति अन्न निकाल के अतिथि का सत्कार,ये नौ शुभ कर्म हैं ॥ ८ ॥

तथा द्वितीय प्रकार से पितर, देवता, मनुष्य, दीन अनाथ,तपस्वी, गुरु, माता पिता इन सब को यथा योग्य भोजनांश देवे । ये पूर्वोक्त नौकर्म जितेन्द्रिय विद्वानों को कर्त्तव्य हैं इन नौ कर्मोंको करके पुरुष सब धर्म कर्म करने वाला माना जायगा ॥ ९ ॥ ये नौ ९ शुभ कर्म हैं, और आगे कहे नौ विकर्म नाम बुरे निन्दित कर्म हैं ॥ १० ॥ मिथ्याभाषण, परस्त्रीगमन अभक्ष्य का भक्षण, अगम्या (वेश्या चाण्डाली आदि) स्त्री का गमन, न पीने योग्य मद्यादि का पीना, चोरी, हिंसा, ॥ ११ ॥ वेद में जो न कहे हों, ऐसे कर्मों को करना, धर्म से विरुद्ध किसी के साथ मित्रता करना, ये नौ निन्दित कर्म हैं, इन सब को त्याग कर देवे ॥ १२ ॥ पैशुन्य (चुगली करना) मिथ्या भाषण, छल कपट, काम, क्रोध, अन्य का अप्रिय, द्वेष, दंभ, परद्रोह, ये नौ प्रच्छन्न (छिप कर होने वाले) निन्दित काम हैं ॥ १३ ॥ गाना, बजाना,खेती करना, दास कर्म,वणिज्व्यापार, लवण बनाना, बेंचना, जुआ खेलना, हथियार बनाना,

द्यूतकर्मायुधान्यात्म–प्रशंसाचविकर्मच ॥ १४ ॥
आयुर्वित्तंगृहच्छिद्रं मन्त्रोमैथुनभेषजे ।
तपोदानापमानेच नवगोप्यानिसर्वदा ॥ १५ ॥
अयोग्यमृणशुद्धिश्च दानाध्ययनविक्रयाः ।
कन्यादानंवृषोत्सर्गो रहस्येतानिवर्जयेत् ॥ १६ ॥
मातापित्रोर्गुरौमित्रे विनीतेचोपकारिणि ।
दीनानाथविशिष्टेषु दत्तंचसफलंभवेत् ॥ १७ ॥
धूर्त्तेवन्दिनिमल्लेच कुवैद्येकितवेशठे ।
चाटुचारणचोरेभ्यो दत्तंभवतिनिष्फलम् ॥ १८ ॥
सामान्यंयाचितंन्यास माधिर्दाराःसुहृद्धनम् ।
भयार्दितंचनिःक्षेपः सर्वस्वंचान्वयेसति ॥ १९ ॥
आपत्स्वपिनदेयानि नववस्तूनिसर्वदा ।
योददातिसमूढस्तु प्रायश्चित्तेनयुज्यते ॥ २० ॥
नवनवकवेत्ताच मनुष्योऽधिपतिर्नृणाम् ।

और अपनी प्रशंसा करना यह भी नौ कर्मों का तीसरा उदाहरण जानो ॥ १४ ॥ अवस्था, धन, घर का छिद्र (कोई बुरीबात,) विष उतारने आदि के मन्त्र, मैथुन, भेषज (उत्तमौषध,) तप, दान, अपमान, ये नौ ९ बातें सदैव छिपाने योग्य हैं ॥ १५ ॥ अयोग्य, ऋण की शुद्धि, दान देना, वेद पढ़ना, किसी वस्तु को बेचना, कन्या का दान, वृषोत्सर्ग, इन को एकांत में न करे ॥ १६ ॥ माता, पिता, गुरु, मित्र, नम्र, उपकारी, दीन, अनाथ, सज्जन धर्मात्मा विद्वान्, इन नौ को देना सफल है ॥ १७ ॥ धूर्त, वंदी (कैदी,) मल्ल, कुवैद्य, कपटी, शठ, चाटु (मिठ बोला ठग) चारण, चोर, इन नौ को देना निष्फल है ॥१८॥ सामान्य वस्तु,भिक्षा,न्यास (धरोहर) आधि मानस दुःख, स्त्री, मित्र का धन, भय से पीड़ित शरणागत मनुष्य, निःक्षेप धरो हर, और वंश के होते अपना सर्वस्व धन ये नौ ९ वस्तु आपत्काल में भी सदैव किसी को न देनी चाहिये। जो इन नौ को देता है, वह मूर्ख है और प्रायश्चित्त का भागी होता है ॥ १९ । २० ॥ इस पूर्वोक्त नव नवक इक्यासी ८१ को जानने वाला पुरुष

इहलोकेपरत्रापि श्रीश्चतंनैवमुञ्चति ॥ २१ ॥
यथैवात्मापरस्तद्वद् द्रष्टव्यःसुखमिच्छता ।
सुखदुःखानितुल्यानि यथात्मनितथापरे ॥ २२ ॥
सुखंवायदिवादुःखं यत्किंचित्क्रियतेपरे ।
यत्कृतंतुपुनःपश्चात्सर्वमात्मनितद्भवेत् ॥ २३ ॥
नक्लेशेनविनाद्रव्यं नद्रव्येणविनाक्रिया ।
क्रियाहीनेनधर्मःस्याद्धर्महीनेकुतःसुखम् ॥ २४ ॥
सुखंहिवाञ्छतेसर्वस्तच्चधर्मसमुद्भवम् ।
तस्माद्धर्मःसदाकार्यः सर्ववर्णैःप्रयत्नतः ॥ २५ ॥
न्यायागतेनद्रव्येण कर्तव्यंपारलौकिकम् ।
दानंहिविधिनादेयं कालेपात्रेगुणान्विते ॥ २६ ॥
समद्विगुणसाहस्र मानन्त्यंचयथाक्रमात् ।
दानेफलविशेषःस्याद्धिंसायांतद्वदेवहि ॥ २७ ॥
सममब्रह्मणेदानं द्विगुणंब्राह्मणब्रुवे ।

मनुष्यों में अधिपति प्रधान माननीय होता है । इस लोक और परलोक में उसको लक्ष्मी नहीं छोड़ती है ॥२१॥ सुख की इच्छा रखने वाला मनुष्य अपने समान दूसरे को देखै, क्योंकि सुख दुःख अपने को जैसे होते वैसे ही दूसरे को होते हैं ॥ २२ ॥ सुख वा दुःख जो कुछ दूसरे के लिये किया जाता है । किये हुए उस सब का फल अपने आत्मा में होता है ॥ २३ ॥ दुःख उठाये विना द्रव्य नहीं मिलता और द्रव्य के विना धर्म सम्बन्धी कर्म नहीं होता । कर्म हीन मनुष्य में धर्म नहीं होता और धर्म हीन मनुष्य को सुख नहीं मिलता ॥ २४ ॥ सब मनुष्य सुख को ही चाहते हैं,सो वह सुख धर्म से होता है, तिससे सब ब्राह्मणादि वर्णों को बड़े यत्न से सदा धर्म करना चाहिये ॥ २५ ॥ न्याय से प्राप्त हुये धन से परलोक के काम (यज्ञादि) करे, अच्छे पुण्य समय पर गुणी विद्वान् सुपात्र को विधि पूर्वक दान देवे ॥ २६ ॥ उस दान का फल क्रम से सम (उतनाही) दूना, सहस्रगुना, और अनंत होता है । जैसे दान करने से सुपात्र के भेद से फल न्यून अधिक होता है वैसे ही ब्राह्मण से भिन्न क्षत्रियादि को दान देने से सम फल ब्राह्मण ब्रुव (नाम मात्र के) ब्राह्मणादि की हिंसा में पाप भी वैसाही क्रमबद्ध जानो ॥२७॥ ब्राह्मण को दिये दानका दूना,

सहस्रगुणमाचार्य्ये त्वनन्तंवेदपारगे ॥ २८ ॥
विधिहीनेयथाऽपात्रे योददातिप्रतिग्रहम् ।
न केवलंहितद्व्यर्थं शेषमप्यस्यनश्यति ॥ २९ ॥
व्यसनप्रतिकारार्थे कुटुम्बार्थेचयाचते ।
एवमन्विष्यदातव्यं सर्वदानेष्वयंविधिः ॥ ३० ॥
मातापितृविहीनस्य संस्कारोद्वाहनादिभिः ।
यःस्थापयतितस्येह पुण्यसंख्यानविद्यते ॥ ३१ ॥
यच्छ्रेयोनाग्निहोत्रेण नाग्निष्टोमेन लभ्यते ।
तच्छ्रेयःप्राप्नुयाद्विप्रो विप्रेणस्थापितेनवै ॥ ३२ ॥
यद्यदिष्टतमंलोके यच्चात्मदयितंभवेत् ।
तत्तद्गुणवतेदेयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥ ३३ ॥

इति दाक्षे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आचार्य को दान देने से सहस्र गुणा और फल होता और वेदपारगन्ता (जिस ने वेद का ठीक २ मर्म जान लिया हो) को दान देने से अनंत फल होता है ॥ २८ ॥ विधि से-हीन तथा कुपात्र को जो प्रतिग्रह (दान) देता है। वह दान केवल व्यर्थ ही नहीं है किन्तु उस का शेष धन भी नष्ट हो जाता है ॥ २९ ॥ जो ब्राह्मणादि अपनी दुःख विपत्ति को हटाने के लिये वा कुटुम्ब का पालन पोषण करने मात्र के लिये याचना करता हो उस को खोज कर देना चाहिये, यह सब दानों में उत्तम विधि है ॥३०॥ जिस के माता पिता मर गये हों, ऐसे अनाथ बालक की उपनयनादि संस्कार और विवाह आदि कर के जो मनुष्य स्थिति करता है उस के पुण्य की संख्या नहीं है ॥३१॥ जो कल्याण अग्निहोत्र और अग्निष्टोम यज्ञ से प्राप्त नहीं होता। उस कल्याण को वह ब्राह्मण प्राप्त होता है जो अनाथ ब्राह्मण बालक की नींव-स्थापित कर देता है ॥ ३२ ॥ संसार में जो २ वस्तु अत्यन्त इष्ट और जो वस्तु अपने को प्रिय हो वह २ पदार्थ सुपात्र गुणी विद्वान् को देना चाहिये ऐसे दान से अक्षय सुख मिलता है ॥ ३३ ॥

यह दक्षस्मृति के भाषानुवाद में तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥

पत्नीमूलंगृहंपुंसां यदिच्छन्दानुवर्तिनी ।
गृहाश्रमात्परंनास्ति यदिभार्यावशानुगा ।
तयाधर्मार्थकामानां त्रिवर्गफलमश्नुते ॥ १ ॥
अनुकूलकलत्रोयः स्वर्गस्तस्यनसंशयः ।
प्रतिकूलकलत्रस्य नरकोनात्रसंशयः ॥ २ ॥
स्वर्गेऽपिदुर्लभंह्येतदनुरागःपरस्परम् ।
रक्तमेकंविरक्तंच ततःकष्टतरंनुकिम् ॥ ३ ॥
गृहवासःसुखार्थोहि पत्नीमूलंचतत्सुखम् ।
सापत्नीयाविनीतास्याच्चित्तज्ञावशवर्त्तिनी ॥४॥
दुःखान्वितासदाखिन्ना छिद्रंपीडापरस्परम् ।
प्रतिकूलकलत्रस्य द्विदारस्यविशेषतः ॥ ५ ॥
जलौकाइवताःसर्वा भूषणाच्छादनाशनैः ।
सुकृतापकृतानित्यं पुरुषंह्यपकर्षति ॥ ६ ॥
जलौकारक्तमादत्ते केवलंसातपस्विनी ।

यदि आज्ञाकारिणी हो तो घर का मूल पत्नी ही है और यदि स्त्री वश में हो तो, गृहस्थाश्रम से परे और कोई श्रेष्ठ नहीं है उस स्त्री के साथ ही धर्म अर्थ काम के त्रिवर्ग फल को भोगता है ॥१॥ जिस की स्त्री सर्वथा अनुकूल, हो उस को घर में ही स्वर्ग है इस में संशय नहीं । और जिस की स्त्री प्रतिकूल पति से विरुद्ध है उस को घर ही नरक है इस में भी संदेह नहीं ॥२॥ स्त्री पुरुष की परस्पर पूर्ण प्रीति का होना स्वर्ग में भी दुर्लभ है । एक प्रेम चाहने वाला हो और दूसरा विरक्त [प्रेमी न हो] इस से अधिक और क्या कष्ट हो सकता है ॥३॥ घर का बसना सुख के लिये है और उस सुख का मूल [कारण] धर्मपत्नी है । जो स्त्री नम्र कोमल हो, चित्त की बात को जानने वाली तथा सर्वथा पति के आधीन रहे, वही वास्तव में पत्नी है ॥४॥ जो स्त्री दुःख से युक्त,सदा खेद मानने वाली, परस्पर एक दूसरे को पीड़ित करे वा छिद्र देखे, ऐसी प्रतिकूल स्त्री वाले तथा विशेष कर दो स्त्री वाले पुरुष को घर में सदा दुःख ही है ॥ ५ ॥ जैसे जौंकें (जलौका) जिसके लग जाती हैं उसका सब रुधिर पी लेती हैं । वैसे ही भूषण वस्त्र और भोजनादि से पालन करते हुए भी पति को वे अनेक स्त्रियां तङ्ग करती हैं ॥६॥ तपस्विनी जलौका–जौंक

अङ्गनातुधनंवित्तं मांसंवीर्यंबलंसुखम् ॥ ७ ॥
साशंकाबालभावेतु यौवनेऽभिमुखीभवेत् ।
तृणवन्मन्यतेनारी वृद्धभावेस्वकंपतिम् ॥ ८ ॥
सुकाम्येवर्तमानाच स्नेहान्नैवनिवारिता ।
सुमुख्यासाभवेत्पश्चाद्यथाव्याधिरुपेक्षितः ॥ ९ ॥
अनुकूलान्ववागदुष्टा दक्षासाध्वीपतिव्रता ।
एभिरेवगुणैर्युक्ता श्रीरिवस्त्रोनसंशयः ॥ १० ॥
प्रहृष्टमानसानित्यं स्थानमानविचक्षणा ।
भर्त्तुःप्रीतिकरीयातु भार्यासाचेतराजरा ॥ ११ ॥
शिष्योभार्याशिशुर्भ्राता मित्रंदासःसमाश्रितः ।
यस्यैतानिविनीतानि तस्यलोकेऽपिगौरवम् ॥ १२ ॥
प्रथमाधर्मपत्नीतु द्वितीयारतिवर्द्धिनी ।

केवल रुधिरको पीतीहै। परन्तु प्रतिकूल स्त्रियां पुरुषके धन, अन्न, मांस, वीर्य, बल और सुख इन सबको हरलेती हैं ॥७॥ बाल्य अवस्था में स्त्री अपने पतिकी कुछ आशंका भी करती है, यौवनावस्थामें पतिका सामना करने लगती, और वृद्ध अवस्था में स्त्री अपने पतिको तृणके समान समझती है ॥८॥ अपनी इच्छानुसार काम करने में स्वतन्त्र हुई स्त्री को प्रेमके कारण यदि पति ने नहीं रोका तो पीछे वह स्त्री अपने पति का सामना करने लगती है कि जैसे उपेक्षा करने से व्याधि (रोग) बढ़के प्रबल हो कर दबा लेता है ॥ ९ ॥ जो स्त्री अनुकूल हो, जिसकी वाणी कोमल तथा प्रिय हो, जो चतुर बुद्धिमती हो, साधु सरल स्वभाव की हो, और पतिव्रता हो, इन सब गुणोंसे युक्त स्त्री लक्ष्मी के तुल्य ही है, इस में संशय नहीं ॥ १० ॥ जो स्त्री मन से सदा प्रसन्न रहे, पति को बढ़ाने और प्रतिष्ठा करने में प्रवीण हो, और जो पति में प्रीति रखने वाली हो, वही भार्या (सच्ची पत्नी) है, इससे भिन्न दुःखदायी जीर्ण करनेवाली है ॥११॥ शिष्य, भार्या, बालक, भाई, मित्र, सेवक, और जो अपने आश्रित शरणागत जिसके, ये शिष्यादि सब विनीत [नम्र कोमल वा शिक्षित] हैं उस की जगत में भी बड़ाई है ॥ १२ ॥ पहिली स्त्री धर्म पत्नी, दूसरी रति (कामासक्ति) बढ़ाने वाली होती है। उस स्त्री का फल इस लोक में प्रत्यक्ष ही होता है

दृष्टमेवफलंतत्र नादृष्टमुपपद्यते ॥ १३ ॥
धर्मपत्नीसमाख्याता निर्दोषायदिसाभवेत् ।
दोषेसतिनदोषःस्यादन्याकार्यागुणान्विता ॥ १४ ॥
अदुष्टांपतितांभार्यां यौवनेयःपरित्यजेत् ।
सजीवनान्तेस्त्रीत्वंच वन्ध्यत्वञ्चसमाप्नुयात् ॥ १५ ॥
दरिद्रंव्याधितञ्चैव भर्तारंयावमन्यते ।
शुनीगृध्रीचमकरी जायतेसापुनःपुनः ॥ १६ ॥
मृतेभर्तरियानारी समारोहेद्धुताशनम् ।
साभवेत्तुशुभाचारा स्वर्गलोकेमहीयते ॥ १७ ॥
व्यालग्राहीयथाव्यालं बलादुद्धरतेबिलात् ।
तथासापतिमुद्धृत्य तेनैवसहमोदते ॥ १८ ॥
चाण्डालप्रत्यवसितपरिव्राजकतापसाः ।
तेषांजातान्यपत्यानि चाण्डालैस्सहवासयेत् ॥ १९ ॥

इति दाक्षे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

परलोक में कुछ नहीं ॥ १३ ॥ यदि शास्त्रोक्त विधि से विवाहिता स्त्री में कोई दोष न हो तो, वह धर्मपत्नी कहाती है । यदि उसमें दोष हो तो भी चिन्ता नहीं क्योंकि उस दशा में अन्य गुणवती से विवाह कर लेवे ॥ १४ ॥ जो पुरुष व्यभिचारादि दोष से रहित पतित स्त्री को युवावस्था में त्याग देवे वह मर कर बन्ध्या स्त्री होती है ॥ १५ ॥ जो स्त्री रोगी पति का तिरस्कार करती है। वह कुतिया, गीधपक्षिणी, और मगरयोनि में बारम्बार जन्म लेती है ॥ १६ ॥ पति के मरने पर जो स्त्री अग्नि में भस्म हुई सती होती है वह शुभ आचरण वाली होती और स्वर्ग में पूजा को प्राप्त होती है ॥ १७ ॥ जैसे सांपों को पकड़ने वाला बिल में से सांप को बल से निकाल लेता है। वैसे ही वह स्त्री भी अधोगति को प्राप्त हुए अपने पति का उद्धार करके उसी पति के संग स्वर्ग में आनन्द भोगती है ॥१८॥ चाण्डाल, पतित, संन्यासी और तपस्वी इन चारोंके किसी स्त्री से व्यभिचार द्वारा यदि सन्तान उत्पन्न हों तो उनको चाण्डालों के संग ही बसावे ॥ १९ ॥

यह दक्षस्मृति के भाषानुवाद में चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

उक्तंशौचमशौचंच कार्यंत्याज्यंमनीषिभिः ।
विशेषार्थंतयोःकिंचिद्वक्ष्यामिहितकाम्यया ॥ १ ॥
शौचेयत्नःसदाकार्यः शौचमूलोद्विजःस्मृतः ।
शौचाचारविहीनस्य समस्तानिष्फलाःक्रियाः ॥ २ ॥
शौचंचद्विविधंप्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरंतथा ।
मृज्जलाभ्यांस्मृतंबाह्यं भावशुद्धिस्तथान्तरम् ॥ ३ ॥
आशौचाद्धिवरंबाह्यं तस्मादाभ्यन्तरंवरम् ।
उभाभ्यान्तुशुचिर्यस्तु सशुचिर्नेतरःशुचिः ॥ ४ ॥
एकालिङ्गेगुदेतिस्रो दशवामकरेतथा ।
उभयोःसप्तदातव्या मृदस्तिस्रस्तुपादयोः ॥ ५ ॥
गृहस्थेशौचमाख्यातं त्रिष्वन्येषुक्रमेणतु ।
द्विगुणंत्रिगुणंचैव चतुर्थस्यचतुर्गुणम् ॥ ६ ॥
अर्द्धप्रसृतिमात्रातु प्रथमामृत्तिकास्मृता ।
द्वितीयाचतृतीयाच तदर्द्धापरिकीर्त्तिता ॥ ७ ॥

मन को वशी करने वाले विद्वान् ऋषि आचार्यों ने शुद्धि, अशुद्धि, करने तथा त्यागने योग्य काम कहे हैं उनदोनों प्रकारके कर्त्तव्यों में मनुष्योंके हित की इच्छासे हम कुछ विशेष विचार कहते हैं ॥१॥ शुद्धि करनेका सदैव प्रबल उपाय करना चाहिये क्योंकि ब्राह्मण पन की स्थिति वा पुष्टिका मूल कारण शौच ही है। शौच और शुद्ध आचारणसे जो हीन है, उसके सब कर्म निष्फल हैं ॥२॥ शुद्धि दो प्रकार की है, एक बाह्य (बाहर की) और दूसरी आभ्यन्तर (भीतर की) बाह्य शरीरकी शुद्धि मट्टी और जलसे होती तथा भीतरी शुद्धि मनको छल कपट रहित करनेसे होती है ॥३॥ अशुद्ध रहनेसे बाह्य शुद्धि उत्तम है और बाह्य शुद्धि से आभ्यन्तर श्रेष्ठ है। इन दोनों प्रकार से जो शुद्धि करना है वही ठीक शुद्ध है, अन्य नहीं ॥ ४ ॥ लिंग में एक वार, गुदा में तीन वार, एक वायें हाथ में दशवार, दोनों हाथों में मिला के सात वार और दोनों पगों में तीन २ वार मट्टी लगावे ॥ ५ ॥ यह शुद्धि गृहस्थियों की कही है, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासी इन तीनों का क्रमशः गृहस्थ से दूनी तिगुनी, चौगुनी, शुद्धि करनी चाहिये ॥ ६ ॥ पहिली वार आधी पसली मट्टी लानी कही है और दूसरी वा तीसरी वार में आधी मट्टी जानो ॥ ७ ॥

लिङ्गेतुमृत्समाख्याता त्रिपर्वपूर्यतेयया ।
एतच्छौचंगृहस्थानां द्विगुणंब्रह्मचारिणाम् ॥ ८ ॥
त्रिगुणंतु वनस्थानांयतीनांचचतुर्गुणम् ।
दातव्यमुदकंतावन्मृदभावोयथाभवेत् ॥ ९ ॥
मृत्तिकानांसहस्रेण चोदकुम्भशतेनच ।
नशुद्ध्यन्तिदुरात्मानो येषांभावोननिर्मलः ॥ १० ॥
मृदातोयेनशुद्धिःस्यान्नक्लेशोनधनव्ययः ।
यस्यशौचेपिशैथिल्यं चित्तंतस्यपरीक्षितम् ॥ ११ ॥
अन्यदेवदिवाशौचमन्यद्रात्रौविधीयते ।
अन्यदापदिनिर्दिष्टं ह्यन्यदेवह्यनापदि ॥ १२ ॥
दिवोदितस्यशौचस्य रात्रावर्द्धंविधीयते ।
तदर्धमातुरस्याहुस्त्वरायामर्द्धंवर्त्मनि ॥ १३ ॥
न्यूनाधिकंनकर्तव्यं शौचंशुद्धिमभीप्सता ।
प्रायश्चित्तेनयुज्येत विहिताऽतिक्रमेकृते ॥ १४ ॥
इति दाक्ष धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

लिंग में इतनी मट्टी लगावे जिस से सब अंगुलियों के तीनों अगुल भर जावें, यह गृहस्थियों की शुद्धि कही, इस से दूनी ब्रह्मचारियों को ॥ ८ ॥ तिगुनी वानप्रस्थों को, और चौगुनी संन्यासियों को करनी चाहिये और मट्टी लगाके इतना जल छोड़े जिस से वह सब मट्टी धो जाय ॥ ९ ॥ जिन का अन्तःकरण निर्मल नहीं, वे दुष्टात्मा मनुष्य सहस्रवार मट्टी लगाने वा सौ घड़े जलसे भी शुद्ध नहीं होते ॥ १० ॥ मट्टी और जल से शुद्धि होती है, इस में न तो कछ क्लेश और न धन का कुछ खर्च है. ऐसी शुद्धि करने में भी जिस को आलस्य है, उस के चित्त की परीक्षा हो गयी ॥ ११ ॥ दिन में अन्य, रात्रिमें अन्य, आपत्ति में अन्य, और विना आपत् के समय अन्य शुद्धि कही है ॥ १२ ॥
दिन में जितनी शुद्धि करे, उससे आधी रात्रि में करे, उससे भी आधी रोगी करे, शीघ्रता के समय और मार्गमें चलने के समय भी आधी शुद्धि करे ॥१३॥

शुद्धिकी इच्छा करने वाला मनुष्य पूर्वोक्त से न्यून वा अधिक शुद्धि न करै। क्योंकि शास्त्र विहित कर्म का उल्लङ्घन करने में प्रायश्चित्त के योग्य हो जाता है ॥ १५ ॥

यह दक्षस्मृति के भाषानुवाद में पांचवां अध्याय पूरा हुआ ॥५॥

आशौचन्तुप्रवक्ष्यामि जन्ममृत्युनिमित्तकम् ।
यावज्जीवंतृतीयंतु यथावदनुपूर्वशः ॥ १ ॥
सद्यःशौचंतथैकाह स्त्र्यहश्चतुरहस्तथा ।
षड्दशद्वादशाहाश्च पक्षोमासस्तथैवच ॥ २ ॥
मरणान्तंतथाचान्यद्दशपक्षास्तुसूतके ।
उपन्यासक्रमेणैव वक्ष्याम्यहमशेषतः ॥ ३ ॥
ग्रन्थार्थं योविजानाति वेदमङ्गैःसमन्वितम् ।
सकल्पंसरहस्यंच क्रियावांश्चेन्नसूतकी ॥ ४ ॥
राजर्त्विग्दीक्षितानांच बालेदेशान्तरेतथा ।
व्रतिनांसत्रिणांचैव सद्यःशौचंविधीयते ॥ ५ ॥
एकाहाच्छुध्यतेविप्रो योग्निवेदसमन्वितः ।
त्र्यहात्केवलवेदस्तु द्विहीनोदशभिर्दिनैः ॥ ६ ॥
शुध्येद्विप्रोदशाहेन द्वादशाहेनभूमिपः ।

जन्म और मरण निमित्त का आशौच कहते हैं तीसरा आशौच जीवने पर्यन्त का है क्रमसे तीन प्रकार के अशौच शास्त्रोक्त हैं ॥ १ ॥ सद्यः शौच (उसी समय शुद्धि करलेना,) एक दिन, तीन दिन, चार दिन, छः दिन, दश दिन, बारह दिन, पन्द्रह दिन, एकमास॥२॥और मरण पर्यन्त, ये दश पक्ष सूतक में मानेगये हैं। उनको क्रम से हम कहते हैं॥३॥जो पुरुष ग्रन्थों के अर्थको वेदके छः अङ्गों,कल्प और रहस्य के सहित वेदको जानताहै वह यदि श्रौतस्मार्त्त कर्मों को करताहोतो उसको सूतक नहीं लगता । अर्थात् वह स्नानादि करके तत्काल शुद्ध हो जाताहै ॥४॥ राजा, ऋत्विज्, दीक्षित, (जिस ने यज्ञादि में दीक्षा ले रक्खी हो) बालक, परदेश में जो रहता हो, व्रती, सत्री (सत्रयज्ञ में जो बैठे हों) इन सब को सद्यः तत्काल शुद्धि कही है ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मण अग्निहोत्री तथा वेदपाठी हो वह एकही दिनमें शुद्धि करले । तथा केवल वेदाध्ययन कर्त्ता तीन दिन सूतक माने और अग्निहोत्र तथा वेदाध्ययन दोनों से हीन ब्राह्मण दशदिन में शुद्ध होता है ॥ ६ ॥ जातिमात्र ब्राह्मण को दशदिन का, क्षत्रिय को बारह

वैश्यःपञ्चदशाहेन शूद्रोमासेनशुध्यति ॥ ७ ॥
अस्नात्वाचाप्यहुत्वाच ह्यदत्त्वायेतुभुञ्जते ।
एवंविधानांसर्वेषां यावज्जीवंहिसूतकम् ॥ ८ ॥
व्याधितस्यकदर्यस्य ऋणग्रस्तस्यसर्वदा ।
क्रियाहीनस्यमूर्खस्य स्त्रीजितस्यविशेषतः ॥ ९ ॥
व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्यनित्यशः ॥
श्रद्धात्यागविहीनस्य भस्मान्तंसूतकंभवेत् ॥ १० ॥
नसूतकंकदाचित्स्याद्यावज्जीवन्तुसूतकम् ।
एवंगुणविशेषेण सूतकंसमुदाहृतम् ॥ ११ ॥
सूतकेमृतकेचैव तथाचमृतसूतके ।
एतत्संहतशौचानां मृताशौचेनशुद्ध्यति ॥ १२ ॥
दानंप्रतिग्रहोहोमः स्वाध्यायश्चनिवर्त्तते ।
दशाहात्तुपरंशौचं विप्रोऽर्हतिचधर्म्मवित् ॥ १३ ॥
दानंचविधिनादेयमशुभात्तारकंहितत् ।

दिन का, वैश्य को पन्द्रह दिन का, और शूद्र को महीने भर का सूतक लगता है ॥ ७ ॥ स्नान, होम, अतिथि पूजन आदि न करके जो भोजन करते हैं ऐसे सब मनुष्यों को जीवन पर्यन्त (अशौच) सूतक लगता है ॥८॥ रोगी, कदर्य (कञ्जूस,) सदैव ऋणी, क्रिया कर्मसे हीन, मूर्ख, और विशेष कर स्त्री ने जिसे जीत लिया हो ॥ ९ ॥ व्यसन (जुआ आदि) में जिस का चित्त आसक्त हो, नित्य जो पराधीन हो, श्रद्धा तथा त्याग (वैराग्य) से जो हीन हो उस को भस्मान्त (मरण पर्यन्त) सूतक लगता है ॥ १० ॥ सूतक कभी न हो और जीने तक सूतक रहे इसप्रकार गुण विशेषसे सूतक दो प्रकारका है ॥११॥ जन्म सूतक में यदि मरण सूतक हो तथा मरण सूतक में जन्म सूतक मिलजाय तो दोनों की शुद्धि मरण सूतक के संग होती है ॥ १२ ॥ सूतक में दान देना, प्रतिग्रह (दान लेना) होम, स्वाध्याय (वेदपाठ) ये सब काम निवृत्त हो जाते हैं । धर्म को जानने वाला ब्राह्मण दश दिनके पीछे सब कर्मों के योग्य शुद्ध हो जाता है ॥ १३ ॥ शास्त्रोक्त विधि से दान देना चाहिये क्योंकि वह दान अशुभ पाप से तारने वाला है । यदि पहिले

मृतकान्तेमृतोयस्तु सूतकान्तेचसूतकम् ॥ १४ ॥
एतत्संहतशौचानां पूर्वाशौचेनशुद्ध्यति ।
उभयत्रदशाहानि कुलस्यान्नंनभुज्यते ॥ १५ ॥
चतुर्थेऽहनिकर्तव्यमस्थिसंचयनंद्विजैः ।
ततःसंचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शोविधीयते ॥ १६ ॥
वर्णानामानुलोम्येन स्त्रीणामेकोयदापतिः ।
दशाहषट्त्र्यहैकाहं प्रसवेसूतकंभवेत् ॥ १७ ॥
स्वस्थकालेत्विदंसर्वमशौचंपरिकीर्तितम् ।
आपद्गतस्यसर्वस्य सूतकेऽपिनसूतकम् ॥ १८॥
यज्ञेप्रवर्तमानेतु जायेताथम्रियेतवा ।
पूर्वसंकल्पितेकार्ये नदोषस्तत्रविद्यते ॥ १९ ॥
यज्ञकालेविवाहेच देवयागेतथैवच ।
हूयमानेतथाचाग्नौ नाशौचं नापिसूतकम् ॥ २०॥

इति दाक्षे धर्म्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

मरण सूतक का समय पूरा न होने तक जो अन्य कोई मरे अथवा ऐसे ही जन्म सूतक में अन्य जन्म हो जाय तो ॥१४॥ इन मिले हुए सूतकों में पूर्व सूतक के शेष दिनों में दोनों की एक साथ शुद्धि हो सकती है। दोनों सूतकों में दश दिन तक सूतक वाले कुल का अन्न न खावे ॥ १५ ॥ मरण के बाद चौथे दिन विद्वान् द्विज अस्थि संचयन करें। फिर अस्थि संचयन के पीछे सूतक वालों के शरीर का स्पर्श कहा है ॥ १६ ॥ वर्णों के अनुलोम क्रमसे यदि स्त्रियों का पति एक होय तो, ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा, इन ब्राह्मण की चारों स्त्रियों को क्रम से दश, छः, तीन, एक, दिन का प्रसव में सूतक लगता है ॥१७॥ यह सब सूतक का विचार स्वस्थदशा में कहा है और आपत्तिकाल में सूतक के समय में भी सूतक नहीं लगता ॥ १८ ॥ यज्ञ का आरम्भ होजाने के समय यदि कोई जन्मे वा मरे तो, पूर्व जिस यज्ञ का संकल्प हो गया है उस को करने में दोष नहीं है ॥ १९ ॥ यज्ञ के समय, विवाह में प्रतिष्ठादि देवपूजन में, अग्निहोत्र में, मरण और जन्म दोनों के सूतक नहीं लगते ॥२०॥

यह दक्षस्मृति के भाषानुवाद में छठा अध्याय पूरा हुआ ॥६॥

अतःपरंप्रवक्ष्यामि योगस्यविधिमुत्तमम् ।
लोकावशीकृतायेन येनचात्मावशीकृतः ॥ १ ॥
इन्द्रियार्थास्तपस्तस्य योगंवक्ष्याम्यशेषतः ॥ २ ॥
प्राणायामस्तथाध्यानं प्रत्याहारोऽथधारणा ।
तर्कश्चैवसमाधिश्च षडङ्गोयोगउच्यते ॥ ३ ॥
मैत्रीक्रियामुदेसर्वा सर्वप्राणिव्यवस्थिता ।
ब्रह्मलोकंनयत्याशु धातारमिवधारणा ॥ ४ ॥
नारण्यसेवनाद्योगो नानेकग्रन्थचिन्तनात् ।
व्रतैर्यज्ञैस्तपोभिर्वा नयोगःकस्यचिद्भवेत् ॥ ५ ॥
नचपद्मासनाद्योगो ननासाग्रनिरीक्षणात् ।
नचशास्त्रातिरिक्तेन शौचेनभवतिक्वचित् ॥ ६ ॥
नमन्त्रमौनकुहकैरनेकैःसुकृतैस्तथा ।
लोकयात्राभियुक्तस्य न योगःकस्यचिद्भवेत् ॥ ७ ॥
अभियोगात्तथाभ्यासात्तस्मिन्नेवसुनिश्चयात् ।

अब आगे योग का उत्तम विधान कहते हैं । संसारी लोगों को और अपने आप को जिस ने वश में किया है ॥ १ ॥ इन्द्रिय और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये विषय, ये सब जिसने वश में किये हैं, जो तपकरने को तत्पर हो, उस के लिये संपूर्ण योग कहते हैं ॥२ ॥ प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, तर्क, समाधि ये छः जिस के अंग (भाग) हैं उसे योग कहते हैं ॥ ३ ॥ आनन्द प्राप्ति के लिये सब प्राणियों के साथ ईर्ष्या द्वेष वैर विरोध छोड़ के मित्र दृष्टि करे, वह मैत्री योगी को ऐसे ब्रह्मलोक में लेजाती है जैसे धारणा ब्रह्मा जी को ब्रह्मलोक में पहुंचाती है ॥४॥ केवल वन में रहने से वा अनेक ग्रंथों को शोचने विचार ने से, व्रत, यज्ञ और तप करने से किसी को योग नहीं होता ॥ ५ ॥ पद्मासन लगा के बैठसे, नाक के अग्रभाग को देखने से और शास्त्रविरुद्ध अधिक शुद्धि करने से भी योग कभी नहीं होता ॥ ६ ॥ मन्त्र जपने, मौन रहने धूनी लगाने, और अनेक प्रकार के पुण्य करने से और लोक के व्यवहारों में तत्पर रहने, से भी योग नहीं होता ॥ ७ ॥ योग के विचार में तत्परता होने, वार २ लगा तार योग का अभ्यास करने, योग में

पुनः पुनश्चनिर्वेदाद्योगः सिद्ध्यतिनान्यथा ॥ ८
आत्मचिन्ताविनोदेन शौचेनक्रीडनेनच ।
सर्वभूतसमत्वेन योगःसिद्ध्यतिनान्यथा ॥ ९ ॥
यश्चाऽऽत्ममिथुनोनित्यमात्मक्रीडस्तथैवच ।
आत्मानन्दस्तुसतत मात्मन्येवसमाहितः ॥ १० ॥
अस्मिन्नेवसुतृप्तश्च संतुष्टोनाऽन्यमानसः ।
आत्मन्येवसुतृप्तस्य योगोभवतिनान्यथा ॥ ११ ॥
सुप्तोऽपियोगयुक्तश्च जाग्रदेवविशेषतः ।
ईदृक्चेष्टःस्मृतःश्रेष्ठो वरिष्ठोब्रह्मवादिनाम् ॥ १२ ॥
अस्त्वात्मव्यतिरेकेण द्वितीयंनैवपश्यति ।
ब्रह्मभूतःसएवेह दक्षपक्षउदाहृतः ॥ १३ ॥
विषयासक्तचित्तोहि कश्चिद्योगंनविन्दति ।
यत्नेनविषयासक्तिं तस्माद्योगीविवर्जयेत् ॥ १४ ॥

ही अटल श्रद्धा विश्वास होने. और बार बार संसार से प्रबल उदासीनता वैराग्य होने से योग सिद्ध होता है. अन्यथा नहीं ॥ ८ ॥ परमात्मा की चिन्ता के आनंद. शौच. अपने आत्मा में ही क्रीड़ा करने और सब प्राणियों में समदृष्टि होने से योग सिद्ध होता है. अन्यथा नहीं ॥९॥ जो नित्य ही आत्म विचार में आनन्दित, आत्मा क्रीड़ा में तत्पर, अपने आत्मा में ही आनन्द मानने वाला और निरंतर एकाग्र चित्त से अपने आपे में रहने वाला ॥ १० ॥ इसी अध्यात्म विचार में सम्यक् तृप्त और मन से संतुष्ट रहे अन्य बात में जिस का मन न लगता हो और आत्मा में ही अच्छे प्रकार तृप्त पुरुष को योग सिद्ध होता है, अन्य था नहीं ॥ ११ ॥ सोता हुआ भी योगी विशेष कर जागता ही है, ऐसी जिस की चेष्टा हो, वही श्रेष्ठ तथा ब्रह्मवादियों में बड़ा है ॥ १२ ॥ जो योगी विद्वान् अपने आत्मा से भिन्न द्वितीय को नहीं देखता अर्थात् सब प्राणियों को एक ब्रह्मात्मरूप अभेद भाव से देखता है वही ब्रह्मरूप दक्ष ऋषि के पक्ष में कहा है ॥ १३ ॥ विषयों में जिसका चित्त आसक्त है, वह कोई भी योग को प्राप्त नहीं होता जिससे योगी पुरुष विषयों की फसावट को बड़े यत्न से छोड़ देवे ॥ १४ ॥

विषयेन्द्रियसंयोगं केचिद्योगंवदन्तिवै ।
अधर्मोधर्मबुद्ध्यातु गृहीतस्तैरपण्डितैः ॥ १५ ॥
आत्मनोमनसश्चैव संयोगन्तुततःपरम् ।
उत्तानमनसोह्येते केवलंयोगवञ्चिताः ॥ १६ ॥
वृत्तिहीनंमनःकृत्वा क्षेत्रज्ञंपरमात्मनि ।
एकीकृत्यविमुच्येत योगोऽयंमुख्यउच्यते ॥ १७ ॥
कषायमोहविक्षेप लज्जाशङ्कादिचेतसः ।
व्यापारास्तुसमाख्यातास्तान्जित्वावशमानयेत् ॥१८॥
कुटुम्बैःपञ्चभिर्ग्रामः षष्ठस्तत्रमहत्तमः ।
देवासुरैर्मनुष्यैश्च सजेतुंनैवशक्यते ॥ १९ ॥
मनसैवेन्द्रियाण्यत्र मनश्चात्मनियोजयेत् ।
सर्वभावविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञंब्रह्मणिन्यसेत् ॥ २० ॥
बलेनपरराष्ट्राणि गृह्णन्शूरस्तुनोच्यते ।
जितोयेनेन्द्रियग्रामः सशूरःकथ्यतेबुधैः ॥ २१ ॥

कोई मनुष्य विषय और इन्द्रियों के संयोग को ही योग कहते हैं। उन निर्बुद्धियों ने अधर्म को धर्म बुद्धि से ग्रहण किया जानो ॥१५॥ तथा अन्य कोई लोग आत्मा और मन के संयोग को योग कहते हैं। ये लोग उत्कृष्ट चित्त वाले होने से केवल योग से वञ्चित रहते हैं ॥ १६ ॥ मन को वृत्तियों से हीन निर्मल करके और क्षेत्रज्ञ आत्मा को परमात्मा में एक करके मुक्त हो जाय यह मुख्य योग कहा है ॥ १७ ॥ कषाय (मन की मलिनता) मोह (अविद्या) विक्षेप (चित्त की चञ्चलता) लज्जा और शंका इत्यादि चित्त के व्यापार कहे हैं। उन कषायादि व्यापारों को जीत कर मन को वश में करे ॥ १८ ॥ पांच कुटुम्बों (५ इन्द्रियों) का ग्राम होता है और उस ग्राम में छठा (मन) अत्यन्त बड़ा है उस को देवता मनुष्य और असुर भी जीतने को समर्थ नहीं होते ॥ १९ ॥ इन्द्रियों को मन से रोक कर और मन को आत्मा में युक्त करे और सब भावों (पदार्थों) से रहित क्षेत्रज्ञ आत्मा को ब्रह्म में लीन करे ॥२०॥ जो बल से पराये राज्यों को छीन ले वह शूर नहीं कहाता किन्तु विद्वान् जन उसे ही शूर कहते हैं जिस ने सब इन्द्रियों को जीत लिया है ॥ २१ ॥

बहिर्मुखानिसर्वाणि कृत्वाचान्तर्मुखानिवै ।
एतद्ध्यानंतथाज्ञानं शेषस्तुग्रन्थविस्तरः ॥ २२ ॥
त्यक्त्वाविषयभोगांस्तु मनोनिश्चलताङ्गतम् ।
आत्मशक्तिस्वरूपेण समाधिःपरिकीर्तितः ॥ २३ ॥
चतुर्णांसन्निकर्षेण फलंयत्तदशाश्वतम् ।
द्वयोस्तुसन्निकर्षेण शाश्वतंपदमव्ययम् ॥ २४॥
यन्नास्तिसर्वलोकस्य तदस्तीतिविरुध्यते ।
कथ्यमानंतथान्यस्य हृदयेनावतिष्ठते ॥ २५ ॥
स्वयंवेद्यंचतद्ब्रह्म कुमारीमैथुनंयथा ।
अयोगीनैवजानाति जात्यन्धोहियथाघटम् ॥ २६ ॥
नित्याभ्यसनशीलस्य स्वसंवेद्यंहितद्भवेत् ।

बहिर्मुख (विषयों में लगी) सब इन्द्रियों को अन्तर्मुख (आत्मा में लीन) करके जो योगी रमता है, यही ध्यान और ज्ञान है । बाकी सब ग्रन्थों का विस्तार है ॥ २२ ॥ संसारी विषय भोगों को त्याग कर आत्मा की शक्ति रूप से निश्चय कर निश्चल हुआ जो मन उसे समाधि कहते हैं ॥ २३ ॥ चारो आश्रम के सामान का संग्रह से वा चार आश्रमियों के मेल से जो फल होता है वह अनित्य है और पिछले दो आश्रमी वानप्रस्थ तथा संन्यासी के मेल से सनातन अविनाशी ब्रह्मपद प्राप्त होता है । सब लोगों को जो ब्रह्म नास्ति अभावसा प्रतीत होता है । वह अस्ति शब्द से कहना विरुद्ध पड़ता है इसी से कहा हुआ भी दूसरे के हृदय में नहीं ठहरता अचल विश्वास नहीं जमता ॥ २५ ॥ वह ब्रह्म इस प्रकार स्वयं जानने योग्य है कि जैसे कुमारी का मैथुन (युवति स्त्री को अनुकूल युवा पतिके प्रथम ही संयोग में जो आनन्द होता है वह अकथनीय स्वयं ज्ञेय होता है वैसे ही ब्रह्मज्ञान का आनन्द भी कहने में नहीं आ सकता) और योग मार्ग से हीन पुरुष उस ब्रह्म को इस प्रकार नहीं जानता जैसे जन्मान्ध पुरुष घट के रूप को नहीं देख सकता ॥२६॥

नित्य योगाभ्यास के स्वभाव वाले मनुष्य को अनायास से ब्रह्म स्वयं जानने योग्य होता है । वह सूक्ष्म होने से सनातन पर ब्रह्म अनिर्देश्य (दिखाने

तत्सूक्ष्मत्वादनिर्देश्यं परंब्रह्मसनातनम् ॥ २७ ॥
बुधास्त्वाभरणंभारं मलमालेपनंतथा ।
मन्यन्तेस्त्रीचमूर्खश्च तदेवबहुमन्यते ॥ २८
सत्वोत्कटाःसुराःसर्वे विषयैश्चवशीकृताः ।
प्रमादिनिक्षुद्रसत्त्वे मनुष्येचात्रकाकथा ॥ २९ ॥
तस्मात्त्यक्तकषायेन कर्तव्यंदण्डधारणम् ।
इतरस्तुनशक्नोति विषयैरभिभूयते ॥ ३० ॥
नस्थिरंक्षणमप्येकमुदकंचयथोर्मिभिः ।
वाताहतंतथाचित्तं तस्मात्तस्यनविश्वसेत् ॥ ३१ ॥
ब्रह्मचर्यंसदारक्षेदष्टधामैथुनंपृथक् ।
स्मरणंकीर्तनंकेलिः प्रेक्षणंगुह्यभाषणम् ॥ ३२ ॥
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेवच ।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्तिमनीषिणः ॥ ३३ ॥
वैणवेनत्रिदण्डेन नत्रिदण्डीतिकथ्यते ।

के अयोग्य नहीं) है ॥२७॥ पण्डित लोग आभूषणों के धारण को बोझा तथा शरीर पर मलिनता का लेपन मानते हैं। स्त्री और मूर्ख लोग आभूषण को ही बहुत उत्तम मानते हैं ॥ २८ प्रबल सत्व गुण वाले सब देवता भी विषयों ने जब अपने वशमें करलिये तब प्रमादी (भूल में पड़े) कम सत्व गुण वाले मनुष्यों के कामादि वश होनेका कहना ही क्या है ! ॥ २९ ॥ तिससे जिस ने मन की मलिनता त्यागी हो वह विषयों के साथ युद्ध करने के लिये दंड का धारण करे। जिस ने मन की मलिनता नहीं त्यागी वह दंड धारण के लिये समर्थ नहीं होता, क्योंकि विषय ही उस को दबालेते हैं ॥ ३० ॥ जैसे तरंगों के उठने से जल एक क्षण मात्र भी स्थिर नहीं रहता इसी प्रकार विषय वासनाओं के वायु से चलायमान हुए चित्त का भी अनुचित विषयों में न फंसने का विश्वास न करे ॥ ३१ ॥ आठो प्रकार के मैथुन से ब्रह्मचर्य की सदैव रक्षा करे। सुन्दरी युवति स्त्रियों का स्मरण, कीर्तन (उन के अङ्ग प्रत्यङ्गों का वर्णन करना, क्रीड़ा (स्त्रियों के साथ खेलना) प्रेक्षण (देखना) एकान्त में बातें करना, संकल्प (स्त्री संग का मनोरथ होना) अध्यवसाय (संग करने का दृढ़ निश्चय) क्रिया की सिद्धि अर्थात् साक्षात् संयोग करना यह आठ प्रकार का मैथुन बुद्धिमान् कहते हैं ॥३३॥ बांस के त्रिदण्ड रखने से संन्यासी

अध्यात्मदण्डयुक्तोयः सत्रिदण्डीतिकथ्यते ॥ ३४ ॥
वाग्दण्डोऽथमनोदण्डः कर्मदण्डस्त्रतेत्रयः ।
यस्यैतेतुत्रयोदण्डाः सत्रिदण्डीतिकथ्यते ॥ ३५ ॥
त्रिदण्डव्यपदेशेन जीवन्तिबहवोनराः ।
यस्तुब्रह्मनजानाति नत्रिदण्डीहिसस्मृतः ॥ ३६ ॥
नाध्येतव्यंनवक्तव्यं नश्रोतव्यंकथञ्चन ।
एतैःसर्वैःसुसंपन्नोयतिर्भवतिनेतरः ॥ ३७ ॥
पारिव्राज्यंगृहीत्वातु यःस्वधर्मेनतिष्ठति ।
श्वपदेनाङ्कयित्वातं राजाशीघ्रंप्रवासयेत् ॥ ३८ ॥
एकोभिक्षुर्यथोक्तस्तु द्वौभिक्षूमिथुनंस्मृतम् ।
त्रयोग्रामःसमाख्यात ऊर्ध्वंतुनगरायते ॥ ३९ ॥
नगरंहिनकर्त्तव्यं ग्रामोवामिथुनंतथा ।
एतत्त्रयंप्रकुर्वाणः स्वधर्माच्च्यवतेयतिः ॥ ४० ॥
राजवार्त्तादितेषांतु भिक्षावार्तापरस्परम् ।

त्रिदण्डी नहीं कहाता किन्तु अध्यात्म विचार से काम क्रोध लोभ को पकड़ के वशमें रखनेसे त्रिदण्डी कहाता है ॥३४॥ तथा द्वितीय प्रकार यह है कि वाणी.मन, और शरीर को दण्ड के समान पकड़ के वश में रखने से भी संन्यासी त्रिदण्डी कहाताहै ॥३५॥ त्रिदंड के वहाने से कि हम त्रिदण्डी संन्यासी सर्वमान्य जगद्गुरुहैं ऐसा प्रसिद्धकरते हुएबहुत से साधु जीविका करतेहैं परन्तु जो ब्रह्मको नहीं जानता वह त्रिदंडी (संन्यासी) नहीं है ॥ ३६ ॥ न पढ़े न उपदेश व्याख्यान करे, न कथा उपदेशादि सुने किन्तु उन से जो युक्त हो वही संन्यासी है अन्य नहीं ॥ ३७ ॥ जो संन्यास लेकर अपने धर्म पर स्थिर न रहे उस के मस्तकपर कुत्ते के पग का दाग देकर शीघ्र ही राजा देश से निकलवा देवे ॥ ३८ ॥ सन्यासी अकेला रहे तो ठीक उचित है दो मिलकर रहे तो मिथुन कहाते हैं। तीन मनुष्यों के संगम को ग्राम कहतेहैं इससे अधिकों का संग नगर कहाता है ॥ ३९ ॥ इस से संन्यासी ग्राम नगर दोनों ही को त्यागे और किसी दूसरे को भी साथ न रक्खे दूसरे का साथी होना मिथुन है। इन तीन को जो संन्यासी करता है वह अपने धर्म से पतित हो जाता है ॥४०॥ क्योंकि एक से अधिक दो आदि के मिलने से राजा की अथवा भिक्षा की बातें परस्पर होती हैं।

स्नेहपैशुन्यमात्सर्यं सन्निकर्षान्नसंशयः ॥ ४१ ॥
लाभपूजानिमित्तंहि व्याख्यानंशिष्यसंग्रहः ।
एतेचान्येचबहवः प्रपञ्चास्तुतपस्विनाम् ॥ ४२ ॥
ध्यानंशौचंतथाभिक्षा नित्यमेकान्तशीलता ।
भिक्षोश्चत्वारिकर्माणि पञ्चमंनोपपद्यते ॥ ४३ ॥
यस्मिन्देशेवसेद्योगी ध्यानयोगविचक्षणः ।
सोऽपिदेशोभवेत्पूतः किंपुनस्तस्यबान्धवाः ॥ ४४॥
तपोजपैःकृशीभूत्वा व्याधितावसथार्हणः ।
वृद्धारोगगृहीताश्च येचान्येविकलेन्द्रियाः ॥ ४५ ॥
नारुजश्चयुवाचैव भिक्षुर्नावसथार्हतः ।
सदूषयतितत्स्थानं वृद्धादीन्पीडयत्यपि ॥ ४६ ॥
नारुजश्चयुवाचैव ब्रह्मचर्याद्विनश्यति ।

प्रम की बातें, चुगली की चर्चा, निन्दा स्तुति, मत्सरता, ये राज वार्तादि कई के मिलने से अवश्य निःसन्देह होती हैं ॥ ४१ ॥ उपदेश व्याख्यान करना कथा सुनाना और बहुत शिष्यों की रखना, इन इत्यादि कामों को संन्यासी लोग धन वस्त्रादि का लाभ और प्रशंसा प्रतिष्ठा होने के लिये करते हैं। जो ऐसे अन्य भी बहुत प्रपञ्च तपस्वी लोगोंको अधोगति में गिराते हैं ॥४२॥ ध्यान करना, शुद्धि करना, भिक्षा मांगकर खाना, और सब से पृथक् एकान्त में ठहरने का स्वभाव, संन्यासी के ये चार कर्म मुख्य तथा नित्य कर्त्तव्य हैं पांचवां सिद्ध नहीं होता ॥ ४३ ॥ ध्यान योगाभ्यास करने में चतुर योगी संन्यासी जिस देश में बसता है। वह देश भी जब पवित्र होजाता है तब उसके कुटुम्बी लोग पवित्र क्यों न होंगे ? ॥ ४४ ॥ तप तथा जप करनेसे कृश हलके शरीर वाले होके जो रोगी हो गये हैं वे किसी छये पटे घर में निवास करें। तथा जो वृद्ध हों, रोग से युक्त हों और जो लूले, लंगड़, अन्धे आदि हो गये हों वेभी किसी घर में बसें ॥ ४५ ॥

जो रोगसे हीन युवा अवस्था का संन्यासी हो वह घर में बसाने योग्य नहीं है। वह उस स्थान को दोष युक्त करता और वृद्ध आदि को दुःख देता है ॥ ४६ ॥ रोग हीन और युवा अवस्था का भिक्षु ब्रह्मचर्य से नष्ट हो जाता

ब्रह्मचर्याद्विनष्टश्च कुलंगोत्रंचनाशयेत् ॥ ४७ ॥
वसन्नावसथेभिक्षुर्मैथुनंयदिसेवते ।
तस्यावसथनाशःस्यात्कुलान्यपिनिकृन्तति ॥ ४८ ॥
आश्रमेतुयतिर्यस्य मुहूर्तमपिविश्रमेत् ।
किंतस्यान्येनधर्मेण कृतकृत्योऽभिजायते ॥ ४९ ॥
संचितंयद्गृहस्थेन पापमामरणान्तिकम् ।
निर्दहत्येवतत्सर्वमेकरात्रोषितोयतिः ॥ ५० ॥
अध्वश्रमपरिश्रान्तं यस्तुभोजयतेयतिम् ।
अखिलंभोजितंतेन त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ५१ ॥
द्वैतंचैवतथाद्वैतं द्वैताद्वैतंतथैवच ।
नद्वैतंनापिचाद्वैतमित्येतत्पारमार्थिकम् ॥ ५२ ॥
नाहंनैवतुसंबंधो ब्रह्मभावेनभावितः ।
ईदृशायांत्ववस्थायामवाप्नं परमंपदम् ॥ ५३ ॥
द्वैतपक्षःसमाख्यातो येद्वैतेतुव्यवस्थिताः ।

है । ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट हुआ अपने कुल और गोत्र को भी नष्ट करदेता है ॥४७॥ किसी के घरमें वसता हुआ संन्यासी यदि मैथुन करे तो–उस घर के स्वामी को और कुलों को जड़मूल से नष्ट करता है ॥ ४८ ॥ जिस के आश्रम में शुद्ध संन्यासी मुहूर्त मात्र दो घड़ी भी विश्राम करे, उसको अन्य धर्म के करने से क्या प्रयोजन है ? क्योंकि वह उस के विश्राम से ही कृतकृत्य हो जाता है ॥ ॥४९॥ अपने देह में गृहस्थ पुरुष ने जो पाप जन्मभर में संचय (इकट्ठा) किया है ॥ उस सब को एक रात भर वसा हुआ भी यति नष्ट कर ही देता है ॥५०॥ मार्ग में चलने के परिश्रम से श्रांत (थके) हुए यति संन्यासी को जो जिमाता है । उस ने जानो चर अचर सब त्रिलोकी को जिमादिया ॥ ५१ ॥ द्वैत (दो जीव ब्रह्म वा प्रकृति पुरुष को पृथक् २ देखना) अद्वैत (केवल एक ब्रह्म को देखना) द्वैत, अद्वैत, दोनों को संसार परमार्थ भेद से ठीक मानना ये तीन पक्ष हैं । न द्वैत है और न अद्वैत है यही पारमार्थिक (सच्चा) ज्ञान है ॥ ५२ ॥ न मैं कोई हूं और न मेरा कुछ है न मेरा किसी से संबंध है किन्तु मैं ब्रह्म रूप हूं ऐसी अवस्था में परम पद प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ जो द्वैत विचार में स्थित हैं उन के लिये द्वैत पक्ष कहा गया है । अद्वैत पक्ष वालों का

अद्वैतानांप्रवक्ष्यामि यथाशास्त्रस्यनिश्चयः ॥ ५४ ॥
अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयंयोनपश्यति ।
अतःशास्त्राण्यधीयन्ते श्रूयन्तेग्रन्थविस्तराः ॥ ५५ ॥
दक्षशास्त्रेयथाप्रोक्तमाश्रमप्रतिपालनम् ।
अधीयन्तेतुयेविप्रास्तेयान्त्यमरलोकताम् ॥ ५६ ॥
इदंतुयःपठेद्भक्त्या श्रृणुयादपियोनरः ।
सपुत्रपौत्रपशुमान् कीर्त्तिंचसमवाप्नुयात् ॥ ५७ ॥
श्रावयित्वात्विदंशास्त्रं श्राद्धकालेऽपियोद्विजः ।
अक्षय्यंभवतिश्राद्धं पितृंश्चैवोपतिष्ठते ॥ ५८ ॥

इति दाक्षे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इति दक्षस्मृतिः समाप्ता ॥

शास्त्रानुसार जैसा निश्चय है उस को कहते हैं ॥ ५४ ॥ इस अद्वैत विषय में जो अपने आत्मा से भिन्न द्वितीय को नहीं देखता इसी से शास्त्रों को पढ़ते और ग्रन्थों के विस्तारों को सुनते हैं ॥ ५५ ॥ दक्ष ऋषि के इस धर्म शास्त्र में कहे आश्रमों के धर्म का प्रतिपालन करते और जो ब्राह्मण इस धर्म शास्त्र को पढ़ते हैं वे देवलोक को प्राप्त होते हैं ॥ ५६ ॥ जो इस शास्त्र को भक्ति से पढ़े अथवा जो अधम वर्ण भी इस को सुने वह मनुष्य पुत्र पौत्र और पशुओं वाला होकर कीर्ति को प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ श्राद्ध के समय इस शास्त्र को जो द्विज सुनाता है। उस का श्राद्ध अक्षय फलदायी होता और पितरों को श्राद्ध का फल प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

यह दक्षस्मृति के पं० भीमसेन शर्म कृत भाषानुवाद में सातवां अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥ और यह स्मृति भी समाप्त हुई ॥

अथ गौतमस्मृतिप्रारम्भः

वेदो धर्ममूलं तद्विदां च स्मृतिशीले ॥१॥ दृष्टो धर्मव्यतिक्रमः साहसं च महतां नतु दृष्टोऽर्थोऽवरदौर्बल्यात्तुल्यबलविरोधे विकल्पः ॥२॥ उपनयनं ब्राह्मणस्याष्टमे नवमे पंचमे वा काम्यं गर्भादिः संख्यावर्षाणां तद्द्वितीयं जन्म ॥३॥ तद्यस्मात्स आचार्यो वेदानुवचनाच्च ॥ ४ ॥ एकादशद्वादशयोः क्षत्रियवैश्ययोः ॥ ५ ॥ आषोडशाद्ब्राह्मणस्यापतिता सावित्री द्वाविंशतेराजन्यस्य द्व्यधिकाया वैश्यस्य ॥ ६ ॥ मौञ्जीज्यामौर्वीसौत्र्यो मेखलाः क्रमेण कृष्णरुरुबस्ताजिनानि

भावार्थः—धर्मका मूल वेद है और वेदको जानने वाले मनु आदि महर्षियों के स्मृति और स्वभाव भी धर्मके मूल हैं ॥ १ ॥ धर्मका व्यतिक्रम (कुछ का कुछ हो जाना) और धर्मबाधक साहस [विना विचारे काम करना] भी देखा जाता है। परन्तु महत्पुरुषों के विचार से दृष्टार्थ (जिस का फल इसी लोक में हो) धर्म उत्तम नहीं है। दृष्टार्थ अदृष्टार्थ दोनों में तुल्य बल विरोध प्रतीत हो तो अवर नाम दृष्टार्थ के निर्बल होने से अदृष्टार्थ को मुख्य जानो ॥ २ ॥ ब्राह्मण का यज्ञोपवीत गर्भस्थिति के समय से आठवें वा नवमें वर्ष में करना चाहिये। यदि ब्रह्मतेज की कामना से उपनयन करना होय तो पांचवें वर्ष में करे। वर्षों की गिनती सर्वत्र गर्भसे लेनी चाहिये। यज्ञोपवीत संस्कार दूसरा जन्म है ॥ ३ ॥ द्वितीय जन्मका दाता आचार्य है। वेद पढ़ाने से भी आचार्य द्वितीय जन्म का पिता है ॥ ४ ॥ ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय का और बारहवें वर्ष में वैश्य का यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ ५ ॥ सोलह वर्ष तक ब्राह्मण बाईस वर्ष तक क्षत्रिय और चौबीस वर्ष तक वैश्य सावित्री नाम अपने २ गुरु मन्त्र से पतित नहीं होते अर्थात् मन्त्रोपदेश के गौण अधिकारी रहते हैं ॥ ६ ॥ ब्राह्मण की मूंज की क्षत्रिय की मूर्वा नामक घास की

वासांसि शाणक्षौमचीरकुतपाः सर्वेषां कार्पासं चाविकृतम् ॥ ७ ॥ काषायमप्येके ॥ ८ ॥ वार्क्षं ब्राह्मणस्य माञ्जिष्ठहारिद्रे इतरयोः ॥ ९ ॥ बैल्वपालाशौ ब्राह्मणस्य दण्डौ ॥१०॥ आश्वत्थपैलवौ शेषे ॥ ११ ॥ यज्ञिया वा सर्वेषाम् ॥ १२ ॥ अपीडितायूपचक्राः सबल्कला मूर्द्धललाटनासाग्रप्रमाणा मुण्डजटिलशिखाजटाश्च ॥ १३ ॥ द्रव्यहस्तउच्छिष्टोऽनिधायाचामेत् ॥ १४ ॥ द्रव्यशुद्धिः परिमार्जनप्रदाहतक्षणनिर्णेजनानि तैजसमार्त्तिकदारवतान्तवानाम् ॥ १५ ॥ तैजसवदुपलमणिशंखशुक्तीनां दारुवदस्थिभूम्योरावपनं च

और वैश्य ब्रह्मचारी की सूत की मेखला नाम कन्धनी बनावे। काले मृग का रुरुमृग का, और बकरे का चर्म, शण अतसी, और पहाड़ी ऊन के वस्त्र क्रम से हों अथवा कोई आचार्य यह कहते हैं कि तीनों वर्णों के ब्रह्मचारियों को कपासके नवीन वस्त्र हों ॥ ७ ॥ कोई आचार्य कहते हैं कि गेरूमें रंगे वस्त्र सब ब्रह्मचारी धारण करें ॥ ८ ॥ वृक्ष की बक्कल का खाखी वा बदामी सुनहरी रंग का वस्त्र ब्राह्मण ब्रह्मचारी का, मजीठ का लाल रंग क्षत्रिय का और हल्दी का पीला रंग वैश्य ब्रह्मचारी के वस्त्रों का होना चाहिये ॥ ९ ॥ बेल वा ढांक का दण्ड ब्राह्मण का हो ॥ १० ॥ पीपल का क्षत्रिय और पीलू [जाल वृक्ष] का दण्ड वैश्य ब्रह्मचारी धारण करे ॥ ११ ॥ अथवा सब वर्ण के ब्रह्मचारी किसी यज्ञिय वृक्ष का दण्ड धारण करें ॥ १२ ॥ और वे तीनों दण्ड फटे टूटे न हों वा यज्ञके यूपस्तम्भ कीसी बनावट के हों, बक्कल सहित हों, ब्राह्मण का दण्ड चूड़ा तक, क्षत्रिय का मस्तक तक और वैश्य का नासिका तक प्रमाण का हो, और तीनों ब्रह्मचारी मुण्ड जटिल, अथवा केवल शिखामात्रजटा रखने वाले हों ॥१३॥ यदि कोई द्रव्य (वस्तु) हाथ में होय और उच्छिष्ट हो जाय तो उस को नीचे रक्खे विना ही आचमन करे ॥ १४ ॥ अब द्रव्यों की शुद्धि कहते हैं-तैजस धातु के पात्रों की मांजने धोने से, मट्टी के पात्रों की फिर अग्नि में पकाने से, लकड़ी के पात्रों की छीलने से, और सूत के वस्त्रों की पछोरने से शुद्धि होती है ॥ १५॥ पत्थर, मणि (मूंगा) शंख, सीपी, इन की शुद्धि तैजस (धातु) के समान मांजने धोने से होती है। हड्डी से बने पदार्थों और भूमिकी शुद्धि काष्ठ के समान छीलने से होती है।

भूमेश्चैलवद्रज्जुविदलचर्म्मणामुत्सर्गो वात्यन्तोपहतानाम् १६ प्राङ्मुखउदङ्मुखो वा शौचमारभेत् ॥ १७ ॥ शुचौ देश आसीनो दक्षिणं बाहुं जान्वन्तरा कृत्वा यज्ञोपवीत्यामणिबन्धनात्पाणी प्रक्षाल्य वाग्यतो हृदयस्पृशस्त्रिश्चतुर्वाऽप-आचामेद् द्विःपरिमृज्यात्पादौ चाभ्युक्षेत् खानिचोपस्पृशेच्छीर्षण्यानि मूर्द्धनि च दद्यात् ॥ १८ ॥ सुप्त्वा भुक्त्वा क्षुत्वा चपुनः ॥ १९ ॥ दन्तश्लिष्टेषु दन्तवदन्यत्र जिह्वाभिमर्शनात् प्राक्च्युतेरित्येके ॥ २० ॥ च्युतेरास्रावविद्यान्निगिरन्नेव तच्छुचिः ॥ २१॥ न मुख्या विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वन्ति ताश्चेदङ्गे निपतन्ति ॥ २२॥ लेपगन्धापकर्षणे शौचममेध्यस्य ॥२३॥ तदद्भिः पूर्वं मृदा च मूत्रपुरीषरेतोविस्रंसनाभ्यवहारसंयोगेषु

भूमि की शुद्धि जोतने से भी होती है। रस्सी बिदल (बांस के पात्र) तथा चर्म पात्रों की शुद्धि वस्त्रों के समान पखारने से होती है। यदि ये सब अत्यन्त भ्रष्ट हो गये हों तो त्याग देवे ॥ १६ ॥ पूर्व को वा उत्तर को मुख करके शौच (मल मूत्र के त्याग) का प्रारंभ करै ॥१७॥ अब आचमन करने की विधि कहते हैं कि शुद्ध देश में बैठा दहिनी भुजा को गोड़ों के बीच करके सव्य यज्ञोपवीत धारण किये हुये गट्टों (पहुंचों) तक दोनों हाथ धोकर मौन हुआ जो हृदय तक पहुंचे इतने जल से तीन वा चार बार आचमन करै पश्चात् दो बार मुख को शुद्ध करै और पगों को भी धोवे। शिर के आंखें, नाक, कान, मुख इन सातों छिद्रों का स्पर्श करै और मूर्द्धा पर भी जल का मार्जन करै ॥ १८ ॥ शयन, भोजन, करके तथा छींक कर फिर आचमन और इन्द्रिय स्पर्श करै ॥१९॥ यदि जिह्वा से स्पर्श न हो तो दांतों में लगा अन्नादि दांतों के समान अशुद्ध नहीं है। कोई आचार्य यह कहते हैं कि जब तक दांतों से पृथक् न हो तब तक दांतों के समान है ॥ २० ॥ और दांतों से पृथक् होने पर आस्राव (मुख से जल गिरना) के समान है इस से उस को निगल लेने पर शुद्ध हो जाता है ॥ २१ ॥ जो मुख के जल की बूंद वा छींटें अपने अंग पर गिरें तो वे अशुद्ध नहीं करतीं ॥ २२ ॥ अशुद्ध वस्तु का लेप और गन्ध दूर कर देने पर अशुद्ध वस्तु के लगी अशुद्धि निवृत्त हो जाती है ॥ २३ ॥ उस अशुद्ध वस्तु को प्रथम

च यत्र चाम्नायो विदध्यात् ॥ २४ ॥ पाणिना सव्यमुपसंगृ-ह्याङ्गुष्ठमधीहि भोइत्यामन्त्रयेत गुरुः ॥ २५ ॥ तत्र चक्षुर्मनः प्राणोपस्पर्शनं दर्भैः प्राणायामास्त्रयः पञ्चदशमात्राः प्राक्कूलेष्वासनं च ओंपूर्वा व्याहृतयः पञ्चसप्तान्ताः ॥ २६ ॥ गुरोः पादोपसंग्रहणं प्रातर्ब्रह्मानुवचने चाद्यन्तयोरनुज्ञातउपविशेत् ॥२७॥ प्राङ्मुखो दक्षिणतः शिष्य उदङ्मुखो वा सावित्रीं चानुवचनमादितो ब्राह्मण आदाने ओंकारस्यान्यत्रापि ॥ २८ ॥ अन्तरागमने पुनरुपसदनश्वनकुलमण्डूकसर्प्पमार्ज्जाराणां त्र्यहमुपवासो विप्रवासश्च ॥ २९ ॥ प्राणायामा घृतप्राशनं

जल से धो कर फिर मट्टी से मांज कर जल से धोवे। यदि मूत्र, विष्ठा लग-जाय वा वीर्य स्खलित हो जाय वा अशुद्ध वस्तु खालेवे इन में जहां वेद वा स्मृतियों में जैसी शुद्धि कही हो वहां वैसी ही मट्टी जल से शुद्धि करे ॥ २४॥ अपने हाथ से शिष्य का दाहिने हाथ का अंगूठा पकड़ कर भोः शिष्य ! तूं पढ़ ऐसे गुरु बुलावे ॥ २५ ॥ शिष्य जब गुरु के पास वेद पढ़ने को बैठे उस से पहिले आखें हृदय और नासिका का कुशों से मार्जन करे फिर पूर्व को जिन का अग्रभाग हो ऐसे कुश बिछा कर उन पर बैठ कर से गुरु मुख से वेद पढ़ने के समय वा अन्यत्र वेदाध्ययन के आरम्भ में अथवा ओंकार के जप के आरम्भ में पन्द्रह अंगुल तक जिन के श्वास वायु की गति हो ऐसे तीन प्राणायाम करे फिर (प्रणव) ओं पूर्वक पांच वा सात व्याहृतियों का उच्चारण करे ॥ २६ ॥ प्रातःकाल वेद पढ़ाने के आरम्भ तथा समाप्ति समय शिष्य खड़ा होकर गुरु के पगों का स्पर्श (व्यत्यस्त हाथों से जिस में दहिने हाथ से दहिना पग और वाम से बांया छुआ जाय) करके खड़ा रहे और गुरु आज्ञा देवें तब बैठ जावे ॥ २७ ॥ गुरु से दक्षिण ओर पूर्व अथवा उत्तर को मुख करके शिष्य बैठ कर प्रथम प्रणव व्याहृति सहित गायत्री मन्त्र का उच्चारण करे ॥ २८ ॥ यदि वेदाध्ययन के समय कुत्ता, न्योला, मेंडक सांप, बिलाव, ये जीव गुरुशिष्य के बीच से निकल जायं तो ब्राह्मण वेदपढ़ना रोक देवे तथा तीन दिन बन में रहकर उपवास करे ॥२९॥ क्षत्रिय और वैश्य

चेतरेषाम् ॥ ३० ॥ श्मशानाध्ययने चैवम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीगौतमीये धर्म्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

प्रागुपनयनात्कामचारवादभक्षोऽहुतोऽब्रह्मचारी यथोपपादमूत्रपुरीषो भवति नास्याचमनकल्पो विद्यतेऽन्यत्रापमार्ज्जनप्रधावनावोक्षणेभ्यो न तदुपस्पर्शनादशौचं नत्वेवैनमग्निहवनबलिहरणयोर्नियुञ्ज्यान्न ब्रह्माभिव्याहारयेदन्यत्र स्वधानिनयनात् ॥ १ ॥ उपनयनादिनियमः ॥ २ ॥ उक्तं ब्रह्मचर्यमग्नीन्धनभैक्षचरणे सत्यवचनमपामुपस्पर्शनम् ॥ ३ ॥

प्राणायाम करके घृत को चाटें ॥३०॥ श्मशान (मरघट) के समीप वेद पढ़ने में भी यही प्रायश्चित्त करें ॥ ३१ ॥

यह गौतम स्मृति के भाषानुवाद में प्रथम अध्याय पूरा हुआ ॥

यज्ञोपवीत से पहिले बाल्यावस्था में बात चीत करने, बोलने, और भोजन में कामचार है (धर्म शास्त्र के अनुसार नियम नहीं) होम और ब्रह्मचर्य के नियम भी उस बालक के लिये नहीं हैं। चाहे जैसे चाहे जिस ओर मुख करके मूत्र पुरीष (मल मूत्र का त्याग) करे। आचमन की रीति भी इस बालक के लिये नहीं है। किन्तु मार्जन करना हाथ पग आदि धोना, और भूमिपर जल को छिड़क के भोजनादि करना उस को भी उचित है। और उस अशुद्ध बालक के स्पर्श से अशुद्धि भी नहीं लगती, इस बालक को अग्निहोत्र तथा वैश्वदेव करने में भी न लगावे। और स्वधानिनयन (पिंडदान) के विना वेद मन्त्रों का उच्चारण भी यज्ञोपवीत से पहिले बालक को न करावे अर्थात् ब्राह्मणादि द्विजों के बालक भी यज्ञोपवीत संस्कार से पहिले शूद्र के तुल्य होते हैं इससे उनको वेद मन्त्र न पढ़ावे न बुलवावे किन्तु स्मृति पुराणादि में लिखे स्तोत्र मन्त्रादि भले ही पढ़ावे और यदि उप नयन से पहिले पिता मर जावे तो वही असंस्कृत पुत्र वेद मन्त्रों द्वारा होने वाले अपने पिता के और्ध्वदेहिक श्राद्ध को करे वहां वेद मन्त्रोच्चारण में उसको दोष नहीं लगेगा यही बात मनु० अ० २ । १७२ में कहा है ॥ १ ॥ यज्ञोपवीत के आरम्भ से द्विज बालक के लिये धर्मशास्त्र में कहे सब नियम हैं ॥ २ ॥ पूर्व कहा ब्रह्मचर्य, अग्नि का प्रज्वालन (समिदाधान) भिक्षा मांगना, सच बोलना, जल से मार्जन आचमनादि करना, उपनयन के पश्चात इन सब को नियम से करे ॥ ३ ॥

एके गोदानादि ॥ ४ ॥ बहिः संध्यार्थंचालिष्ठेत्पूर्वामासीतोत्तरां सज्योतिष्याज्योतिषोदर्शनाद्वाग्यतोनादित्यमीक्षेत ॥ ५ ॥ वर्ज्जयेन्मधुमांसगन्धमाल्यदिवास्वप्नाञ्जनाभ्यञ्जनयानोपानच्छत्रकामक्रोधलोभमोहवाद्यवादनस्नानदन्तधावनहर्षनृत्यगीतपरिवादभयानि गुरुदर्शने कर्णप्रावृतावसक्थिकायाश्रयणपादप्रसारणानि निष्ठीवितहसितविजृम्भितास्फोटनानिस्त्रीप्रेक्षणालम्भने मैथुनशंकायां द्यूतं होनसेवामदत्तादानं हिंसामाचार्यतत्पुत्रस्त्रीदीक्षितनामानि शुष्कां वाचं मद्यं नित्यं ब्राह्मणः ॥६॥ अधःशय्याशायी पूर्वोत्थायी जघन्यसंवेशी वाग्बाहूदरसंयतः ॥७॥ नामगोत्रे गुरोः संमानतो निर्द्दिशेत् ॥८॥

कोई आचार्य इन नियमों को गोदान (१६ सोलह आदि वर्षों में होने वाले केशान्त) संस्कार से आगे कहते हैं ॥ ४ ॥ संध्या के लिये ग्राम से बाहर जाय प्रातःकाल की पहिली संध्या सूर्यके दीखने समय तक खड़े होकर करै और सायंकाल की सूर्य दीखने समय से तारागणों के उदय होने तक बैठ के करे। दोनों सन्ध्या मौन होकर करे और सूर्यनारायण को न देखै ॥ ५ ॥ मदिरा, सहत, मांस, सुगन्ध, (इतर फुलेल आदि लगाना) फूलमाला, दिन में सोना, आंखों में अंजन सुरमा लगाना, शरीर में तैल मलना, यान (सवारी पर चढ़ना,) जूता, छत्री, काम, क्रोध, लोभ, मोह, बाजे (सितार आदि) बजाना,जल में घुस कर स्नान करना, दातौन, हर्ष (आनन्द मानना,) नाचना, गाना, किसी की निन्दा, और भय इन मदिरा आदि सब को ब्रह्मचारी छोड़ देवे । गुरु के देखते कानों को बांधना या शिर कण्ठ में कपड़ा लपेटना, गोड़े उठा कर बैठना, पग फैलाना, थूकना, हंसना, जंभाई लेना, आस्फोटन (किसी अंग को हाथ से बजाना) ताली बजाना, मैथुन की शंका के लिये स्त्रीको देखना व स्पर्श करना, जुआ खेलना, नीच की सेवा करना, विना दिये किसी के वस्तु को लेना, हिंसा करना, आचार्य और गुरु के पुत्र, स्त्री और दीक्षित इन का नाम लेना, सूखी कठोर वाणी बोलना, और भांगादि नशा पीना इन कर्मों को भी ब्राह्मण ब्रह्मचारी नित्य ही त्याग देवे ॥ ६ ॥ गुरु से नीचे भूमि पर सोवे, गुरु से पहिले उठे, गुरु के बैठ जाने पर पीछे बैठे, लेट जाने पर लेटै, वाणी, भुजा, और उदर इन को वश में रक्खे ॥७॥ गुरु का वा उनके गोत्र का नाम जब कभी उच्चारण करने पड़े तो सन्मान सूचक श्रीमान् आदि शब्द लगा के बोले ॥८॥

अर्च्चिते श्रेयसि चैवम् ॥ ९ ॥ शय्यासनस्थानानि विहाय प्रतिश्रवणमभिक्रमणं वचनं नादृष्टेनाधःस्थानासनस्तिर्यग्वा तत्सेवायाम् ॥ १० ॥ गुरुदर्शने चोत्तिष्ठेत्, गच्छन्तमनुव्रजेत्, कर्म्म विज्ञाप्याख्यायाऽहूताध्यायी युक्तः प्रियहितयोस्तद्भार्यापुत्रेषु चैवम् ॥ ११ ॥ नोच्छिष्टाशनस्नपनप्रसाधनपादप्रक्षालनोन्मर्द्दनोपसंग्रहणानि ॥ १२ ॥ विप्रोष्योपसंग्रहणं गुरुभार्याणां तत्पुत्रस्य च ॥ १३ ॥ नैके युवतीनाम् ॥ १४ ॥ व्यवहारप्राप्तेन सार्ववर्णिकं भैक्षचरणमभिशस्तपतितवर्ज्जम् ॥१५॥ आदिमध्यान्तेषु भवच्छब्दः प्रयोज्यो वर्णानुपूर्व्येण॥१६॥

इसी प्रकार पूजा सत्कार के योग्य अन्य उत्तम मान्य पुरुषों का नाम लेने में भी आचरण करे ॥ ९ ॥ गुरु जी जब कुछ कहें तब शय्या, आसन, और स्थान को छोड़के समीप जा कर गुरु के वचन को सुने किन्तु शय्यादि पर बैठा २ बात न करे। यदि गुरु जी खड़े हों तो उनके इधर उधर चलता हुआ बात करे, गुरु से अदृष्ट छिपा हुआ न बोले, गुरु से नीचे स्थलमें खड़ा हो वा बैठे, गुरु की सेवा में तिरछा भी न बैठा रहे ॥ १० ॥ गुरु के देखने पर खड़ा होजाय, और गुरुजी टहलने लगें तो पीछे २ चले, कोई भी काम हो गुरु को जता कर वा कह कर करे विना पूछे कुछ न करे। गुरु जब पढ़ने को बुलावें तब नम्रता से समीप बैठ के पढ़ा करे। गुरु का प्रिय और हित करने में तत्पर रहै। गुरु के स्त्री पुत्रों के साथ भी ऐसा ही बर्त्ताव करे ॥११॥ उच्छिष्ट भोजन, स्नान कराना, प्रसाधन (शृंगार करना) पग धोना, शरीर मलना, वा उबटना, पगों का स्पर्श, ये काम गुरु की स्त्री पुत्रों के कभी न करे ॥१२॥ जब परदेश से आवे तब गुरुपत्नियों और गुरुपुत्रों के भी पगों का स्पर्श करे॥ १३ ॥ कोई आचार्य कहते हैं कि युवति गुरुपत्नी के पाद स्पर्श न करे ॥ १४ ॥ व्यवहार (न्याय) से प्राप्त हुये वस्तु की भिक्षा सब वर्णों से मांग लेवे परन्तु हिंसक वा निन्दित और पतितों को छोड़देवे ॥ १५ ॥ ब्राह्मण के यहां भिक्षा मांगे तब (भवति ! भिक्षां देहि) क्षत्रिय के घर पर (भिक्षां भवति ! देहि) और वैश्यके घर में भिक्षा मांगनेको जावे तब (भिक्षां देहि भवति !) ऐसा वाक्य कहे ॥ १६ ॥

आचार्यज्ञातिगुरुष्वेष्वलाभेऽन्यत्र॥१७॥ तेषां पूर्वं पूर्वं परिहरन्निवेद्य गुरवेऽनुज्ञातो भुञ्जीत ॥ १८ ॥ असंनिधौ तद्भार्यापुत्रसब्रह्मचारिसद्भ्यः ॥ १९ ॥ वाग्यतस्तृप्यन्नलोलुप्यमानस्सन्निधायोदकं स्पृशेत् ॥ २० ॥ शिष्यशिष्टिरवधेनाशक्तो रज्जुवेणुविदलाभ्यां तनुभ्यामन्येन घ्नन् राज्ञा शास्यः ॥२१॥ द्वादशवर्षाण्येकैकवेदे ब्रह्मचर्यं चरेत् प्रतिद्वादशसु सर्वेषु ग्रहणान्तं वा ॥२२॥ विद्यान्ते गुरुरर्थेन निमन्त्र्यः ॥२३॥ ततः कृतानुज्ञातस्य स्नानम् ॥ २४ ॥ आचार्यः श्रेष्ठो गुरूणां मातेत्येके ॥ २५ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यदि आचार्य, अपने कुटुम्बी और जगत् में विशेष मान्य गुरु लोग इन से अन्यत्र निर्वाह योग्य भिक्षा मिल जाय तो इनके घरों से न मांगे ॥ १७ ॥ यदि अन्यत्र भिक्षा न मिले तो भी आचार्यादि पहिले २ को छोड़के अगले २ के घर से मांगे, फिर भिक्षा के अन्न को गुरु के समीप निवेदन कर उन की आज्ञा होने पर भोजन करे ॥१८॥ यदि गुरु जी कहीं गये हों, समीपमें न हों तो गुरुपत्नी, गुरुपुत्र, संग पढ़नेवाले ब्रह्मचारी, और कोई सज्जन पुरुष इनके समीप निवेदन करके भोग लगावे ॥ १९ ॥ प्रथम भोजन को समीप रख कर जल से आचमन करे तब मौन हो कर चंचलता को छोड़ के तृप्त होता हुआ भोजन करे ॥२०॥ गुरु शिष्यको ऐसी ताड़ना करे जिससे वध (हिंसा) न हो, और गुरु अशक्त असमर्थ बीमार हो तो छोटे २ रस्सी, बेत, वांस, से धीरे २ शिक्षा करे जिससे अधिक चोट न लगे। यदि अन्य बड़े कठोर दण्ड से मारे तो राजा गुरुको दण्ड देवे ॥२१॥ एक २ वेदके पढ़नेमें बारह २ वर्ष ब्रह्मचर्य धारण करे। अथवा प्रत्येक बारह वर्ष में जब तक एक २ वेद को पढ़ सके तब तक ब्रह्मचारी रहे ॥ २२ ॥ और विद्या पढ़ने की समाप्ति में धनादि देने के लिये गुरु से प्रार्थना करे कि भगवन्! आज्ञा कीजिये क्या दक्षिणा उपस्थित करूं ॥२३॥ तदनन्तर गुरुकी आज्ञासे ही गृहस्थाश्रम के लिये समावर्त्तन स्नान करे ॥२४॥ सम्पूर्ण गुरुओं में आचार्य (उपनयन कराके साङ्ग वेद पढ़ाने वाला गुरु) श्रेष्ठ है और कोई महर्षि लोग माता को श्रेष्ठ कहते मानते हैं ॥ २५ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में द्वितीय अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तस्याश्रमविकल्पमेके ब्रुवते ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षुर्वैखानस इति तेषां गृहस्थो योनिरप्रजनत्वादितरेषाम् ॥ १ ॥ तत्रोक्तं ब्रह्मचारिण आचार्याधीनत्वमात्रं गुरोः कर्म्मशेषेण जपेत्, गुर्वभावे तदपत्यवृत्तिस्तदभावे वृद्धे सब्रह्मचारिण्यग्नौ वा ॥२॥ एवं वृत्तो ब्रह्मलोकमेवाप्नोति जितेन्द्रियः ॥३॥ उत्तरेषां चैतदविरोधी अनिचयो भिक्षुरूर्ध्वरेता ध्रुवशीलो वर्षासु भिक्षार्थी ग्राममियात ॥४॥ जघन्यनिवृत्तं चरेत् ॥५॥ निवृत्ताशीर्वाक्चक्षुः कर्म्मसंयतः ॥६॥ कौपीनाच्छादनार्थं वासो विभृयात

कोई आचार्य ब्रह्मचारी के इस प्रकार आश्रमों का विकल्प कहते हैं कि वह ब्रह्मचारी, गृहस्थ, भिक्षु (संन्यासी) वैखानस (वानप्रस्थ) इन गृहस्थादि तीनों आश्रमों को स्वीकार करे अथवा निम्न प्रकार जन्म भर केवल ब्रह्मचर्याश्रम ही रक्खे। इन सब आश्रमों का गृहस्थ मूल है क्योंकि अन्य तीनों में सन्तान नहीं होती, गृहस्थ से ही उत्पन्न हो २ के ब्रह्मचारी आदि बनते हैं। इससे गृहस्थ सब का मूल है ॥१॥ और उस प्रथम मुख्य आश्रम में ब्रह्मचारी को आचार्य की आधीनता सेवा करना मात्र ही मुख्य कर्म है। गुरु सेवा के कामों से जितना अवकाश मिले उसमें वेद पाठ वा गायत्री का जप करे। गुरु के स्वर्गवास होने पर सुपात्र हों तो गुरुपुत्रों की सेवामें रहे। उनके भी अभाव में अपने से वृद्ध साध्यायी ब्रह्मचारी को वा अग्नि की सेवा जन्म भर करे ॥२॥ ऐसा वर्त्ताव करता हुआ ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय होने से ब्रह्मलोक को ही प्राप्त होता है ॥३॥ और ब्रह्मचारी का यह काम अगले तीनों [गृहस्थ, भिक्षु, वैखानस] का विरोधी नहीं है। ब्रह्मचारी अन्नादि का संचय न करे, ऊर्द्ध्वरेता [वीर्य जिस का मस्तक तक चढ़ गया हो इस से नीचे को कदापि न गिरे मस्तक में परमोत्तम शक्ति बढ़ जाय] भिक्षा मांग कर खाया करे, वर्षाकाल में ध्रुवशील (चले फिरे नहीं एक स्थान में) रहे, केवल भिक्षा के लिये ग्राम में आवे ॥४॥ नीचों को छोड़ कर उत्तमों से भिक्षा मांगे ॥ ५ ॥ किसी से आशीर्वाद न चाहे, वाणी, नेत्र, अपने हाथ, पांव, आदि को वशमें रक्खे चंचल न करे ॥६॥ कौपीन, और केवल ओढ़नेके वस्त्रको धारणकरे ॥७॥

॥७॥ प्रहीणमेके निर्णेजनाविप्रयुक्तम् ॥८॥ ओषधिवनस्पतीनामङ्गमुपाददीत ॥९॥ न द्वितीयामपहर्त्तुं रात्रिं ग्रामे वसेत् ॥ १० ॥ मुण्डः शिखी वा वर्ज्जयेज्जीववधम् ॥ ११ ॥ समो भूतेषु हिंसाऽनुग्रहयोरनारम्भी ॥१२॥ वैखानसो वने मूलफलाशी तपःशीलः श्रामणकेनाग्निमाधायाग्राम्यभोजी देवपितृमनुष्यभूतर्षिपूजकः सर्व्वातिथिः प्रतिषिद्धवर्ज्जं भैक्षमप्युपयुञ्जीत न फालकृष्टमधितिष्ठेत्, ग्रामं च न प्रविशेत्, जटिलश्चीराजिनवासा नातिशयं भुञ्जीत ॥ १३ ॥ ऐकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधनाद्गार्हस्थ्यस्य ॥ १४ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥

कोई आचार्य कहते हैं कि गुरु के पुराने वस्त्रों को धारण करे जो निर्मल सफेद न हों और धोवी से धुलाये न हों, किन्तु खाखी आदि हों ॥ ८ ॥ अथवा ओषधी वा वनस्पतियों के वक्कल वा पत्ते आदि के वस्त्र बनावे। अथवा इस सूत्र का द्वितीयार्थ यह हो सकता है कि ओषधि वनस्पतियों के कन्द, मूल, फलादि खाके निर्वाह करे भिक्षा भी न मांगे ॥ ९ ॥ दूसरी वार भिक्षा के लिये रात को ग्राम में न वसे ॥ १० ॥ शिर के सब बाल मुंडाया करे, अथवा केवल चोटी रक्खे. जीवों की हिंसा न करे ॥ ११ ॥ सब प्राणियों पर सम उदासीन दृष्टि रक्खे, न किसी को दुःख देवे, और न किसी पर अधिक दया वा कृपा करे। स्वयं दुःख भी न माने न हर्ष माने ॥१२॥ वानप्रस्थ के धर्म ये हैं कि वन में रहता हुआ मूल वा फल खावे, परिश्रम के साथ पंचाग्नि ताप करे, तपस्वी हो, ग्राम का भोजन न करे, पञ्चमहायज्ञों द्वारा देव, पितर, मनुष्य, (अतिथि) ऋषि इन को पूजे, और सबका अतिथि के तुल्य आदर करे, निषिद्धों (निन्दित शूद्रादि वादुराचारियों) को छोड़कर भिक्षा को भी मांग ले, जोते हुए खेत में न वैठे, वा निवास न करे, जोतने से जो पैदा हो उस अन्न को न खावे, ग्राम में भी प्रवेश न करे, वा न वसे, जटाओं को धारण करे, शिर के वाल न मुंडावे। चीर नाम फटे पुराने चिथरे वा मृग चर्म के वस्त्र रक्खे, भोजन में अधिक अन्न वा फलादि को न खावे ॥१३॥ वेद में गृहस्थ का प्रत्यक्ष विधान होने से कोई२ आचार्य लोग यह कहते हैं कि एक गृहस्थाश्रम ही रक्खे वानप्रस्थादि न बने ॥ १४ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥

गृहस्थः सदृशीं भार्यां विन्देतानन्यपूर्वां यवीयसीम् ॥१॥ असमानप्रवरैर्विवाह ऊर्ध्वं सप्तमात् पितृबन्धुभ्यो बीजिनश्च मातृबन्धुभ्यः पञ्चमात् ॥ २ ॥ ब्राह्मो विद्याचारित्रबन्धुशीलसंपन्नाय दद्यादाच्छाद्यालङ्कृतां संयोगमन्त्रः प्राजापत्ये सह धर्म्मं चरतामिति, आर्षे गोमिथुनं कन्यावते दद्यादन्तर्वेद्यृत्विजे दानं दैवोऽलङ्कृत्येच्छन्त्याः स्वयं संयोगो गान्धर्व्वो वित्तेनानतिस्त्रीमतामासुरः प्रसह्यादानाद्राक्षसोऽसंविज्ञानोपसंगमनात्पैशाचः ॥ ३ ॥ चत्वारो धर्म्याः प्रथमाः षडित्येके ॥ ४ ॥

गृहस्थ पुरुष ऐसी स्त्री को विवाहै जो अपने समान उत्तम कुल की हो, जिस की किसी के साथ सगाई न हुई हो, जो ठीक युवती हो ॥ १ ॥ जो अपने प्रवर की न हो, अथवा यदि अपने प्रवरों की भी हो तो पितृकुल की सातवीं से ऊपर पुत्रवाली पीढी की हो, और मातृकुल की पांचवीं पीढी से ऊपर की कन्या से विवाह होसकता है ॥ २॥ विद्यावान्, सदाचारी, भाई बंधु वाले सीधे सच्चे स्वभाव वाले, वर को जो कन्या देना वह पहिला ब्राह्म विवाह है। कपड़ों से आच्छादन और भूषणों से शोभित करके (सह धर्मं चरताम्। तुम दोनों संग संग धर्म करो) ऐसा कह कर जो कन्या दी जाय वह दूसरा प्राजापत्य विवाह है। कन्या के पिता को एक गौ एक बैल वा उन का मूल्य देकर जो कन्या विवाही जाय वह तीसरा आर्ष विवाह है। वेदी के भीतर यज्ञ कर्म करते हुए ऋत्विज् वर को आभूषणों से युक्त कन्या को देना वह चौथा दैव विवाह है। परस्पर स्वयं कन्या की इच्छा से जो दोनों का संयोग हो वह पांचवां गांधर्व विवाह है। कम कन्या वाले मनुष्य को यथाशक्ति धन देकर जो विवाह करे वह छठा आसुर विवाह है। बल पूर्वक मार पीट कर जो कन्या को ले आना वह सातवां राक्षस विवाह है। अज्ञान (बेहोश नशादि खाके पागल हुई) कन्या के साथ संयोग करे वह आठवां पैशाच विवाह है ॥३॥ इन आठों में ब्राह्मण के लिये पहिले चार धर्मानुकूल कर्त्तव्य हैं। कोई आचार्य पहिले छः विवाहों को धर्मानुसार कर्त्तव्य कहते मानते हैं ॥ ४ ॥

अनुलोमानन्तरैकान्तरद्व्यन्तरासु जाताः सवर्णाम्बष्ठोग्रनिषाददौष्मन्तपारशवाः ॥ ५ ॥ प्रतिलोमासु सूतमागधायोगवक्षत्तृवैदेहकचाण्डालाः ॥ ६ ॥ ब्राह्मण्यजीजनत्पुत्रान् वर्णेभ्य आनुपूर्व्यात्, ब्राह्मणसूतमागधचाण्डालान्, तेभ्यएव क्षत्रिया मूर्द्धावषिक्तक्षत्रियधीवरपुल्कसान्, तेभ्यएव वैश्या भृज्जकण्टकमाहिष्यवैश्यवैदेहान्, तेभ्यएव पारशवयवनकरणशूद्रान् शूद्रेत्येके ॥७॥ वर्णान्तरगमनमुत्कर्षापकर्षाभ्यां सप्तमेन पञ्चमेन चाचार्याः ॥८॥ सृष्ट्यन्तरजातानां च प्रति-

---

जिस सन्तान की उत्पत्ति में उत्तम वर्ण का पिता तथा नीचे वर्ण की माता हो वह अनुलोम उत्पत्ति होगी। ब्राह्मण पुरुष से ब्राह्मणी कन्या में अनुलोम अनन्तर हुआ सन्तान ब्राह्मण ही होगा। ब्राह्मण से एक के अन्तर पर वैश्य कन्या में हुआ सन्तान अम्बष्ठ, क्षत्रिय से एक के अन्तर पर शूद्र की कन्या में हुआ उग्र, ब्राह्मण से, शूद्र की कन्या में हुआ निषाद ब्राह्मण से उग्र कन्या में दौष्मन्त और ब्राह्मण से शूद्र की कन्या में पारशव होता है। ये वर्णसंकर अनुलोम से होते हैं ॥ ५ ॥ अब प्रतिलोम नाम नीच वर्ण से उत्तम वर्ण की कन्या में होने वालों को दिखाते हैं—क्षत्रिय से ब्राह्मण की कन्या में हुआ सूत, वैश्य से क्षत्रिय की कन्या में हुआ मागध, शूद्र से वैश्य की कन्या में हुआ आयोगव, शूद्र पुरुष से क्षत्रिय की कन्या में क्षत्ता, वैश्य से ब्राह्मण की कन्या में वैदेहक, और शूद्र से ब्राह्मण की कन्या में हुआ चाण्डाल वर्णसंकर होता है ॥ ६ ॥ ब्राह्मण की कन्या ब्राह्मणी ब्राह्मण पति से ब्राह्मण को, क्षत्रिय से सूत को, वैश्य से मागध को और शूद्र से चाण्डाल को उत्पन्न करती है। क्षत्रिय की कन्या क्षत्राणी, ब्राह्मण से मूर्द्धाभिषिक्त, क्षत्रिय से क्षत्रिय, वैश्य से धीवर, और शूद्र से पुक्कस वा पुल्कस को उत्पन्न करती है। वैश्य की कन्या ब्राह्मण से भृज्जकण्टक, क्षत्रिय से माहिष्य, वैश्य से वैश्य और शूद्र से वैदेह को उत्पन्न करती है। शूद्रकन्या, ब्राह्मण से पारशव, क्षत्रिय से यवन, वैश्य से करण और शूद्र से शूद्र को उत्पन्न करती है यह किन्हीं आचार्यों का मत है ॥ ७ ॥ अनेक आचार्यों का मत यह है कि सातवीं वा पांचवीं पीढ़ी के साथ वर्णसंकर पुरुष अपने पिता की जाति में ऊंच वा नीच हो जाता है ॥८॥ और सृष्ट्यन्तर नाम वर्णसंकरों से जो वर्णसंकर जाति पैदा होतीं वे भी सातवीं वा पांचवीं पीढ़ी

लोमास्तु धर्म्महीनाः शूद्रायां चासमानायां च शूद्रात्पतितवृत्तिरन्त्यः पापिष्ठः ॥ ९ ॥ पुनन्ति साधवः पुत्रास्त्रिपौरुषानार्षाद्दश दैवाद्दशैव प्राजापत्याद्दशपूर्वान्दशापरानात्मानं च ब्राह्मीपुत्रा ब्राह्मीपुत्राः ॥ १० ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ऋतावुपेयात् सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम् ॥१॥ देवपितृमनुष्यभूतर्षिपूजको नित्यस्वाध्यायः ॥ २ ॥ पितृभ्यश्चोदकदानं यथोत्साहमन्यद्भार्यादिरग्निर्दायादिर्वा ॥३॥ तस्मिन् गृह्याणि देवपितृमनुष्ययज्ञाः स्वाध्यायश्च ॥ ४ ॥ बलिकर्म्मा-

---

में अपने २ पिता की जाति में हो जाते हैं। नीच पिता से उत्तम कुल की स्त्री में तथा उत्तम से भी शूद्र कन्या में पैदा हुए धर्महीन होते, उनको धर्म का अधिकार नहीं है। और शूद्र पिता से वैश्यादि की कन्या में होने वाले वर्णसंकर अन्त्यज अत्यन्त पापी और पतित होते हैं ॥ ९ ॥ विधि पूर्वक हुए आर्ष विवाह से सवर्णा स्त्री में उत्पन्न अच्छे सुपुत्र कुल के दीपक साधु पुरुष अपनी तीन पीढ़ी को तार देते हैं। दैव विवाह से तथा प्राजापत्य विवाह से हुआ पुत्र अपने कुल की दश पीढ़ियों को तारने वाला होता और ब्राह्म विवाह से हुए पुत्र दश पिछली और दश अगली पीढ़ियों को तथा अपने को तारने वाले होते हैं ॥ १० ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥

गृहस्थ पुरुष ऋतुकाल में वा ऋतु से भिन्न दिनों में भी निषिद्ध (ऋतु में पहिले चार ग्यारहवें और तेरहवें दिन को तथा अमावस्या, अष्टमी, पौर्णमासी और चतुर्दशी इन निषिद्ध तिथियों को सब दशा में छोड़ के) दिनों को छोड़ के विवाहित पत्नी से समागम करे ॥ १॥ पञ्च महायज्ञों द्वारा देव, पितर, मनुष्य (अतिथि) भूत, ऋषि, इनकी पूजा नित्य करे और नित्य वेदाध्ययन करे ॥ २ ॥ पितरों को जल देना रूप तर्पण नित्य करे। यथाशक्ति यथोत्साह भार्या, और अग्नि आदि की रक्षा करे। असमर्थ रोगी आदि होता अपने दायाद (वारिसों) द्वारा देवपूजनादि करावे ॥ ३ ॥ उस स्थापन किये गृह्याग्नि में अपने शाखा सूत्रानुसार गृह्य कर्म करे। नित्य२ देव, पितृ, और मनुष्य यज्ञ तथा— स्वाध्याय नाम ब्रह्मयज्ञ करे ॥ ४ ॥ अग्नि कुण्ड के समीप में बलिकर्म—भूत यज्ञ

ग्नावग्निर्धन्वन्तरिर्विश्वेदेवाः प्रजापतिः स्विष्टकृदिति होमः ॥ ५ ॥ दिग्देवताभ्यश्च यथा स्वद्वारेषु मरुद्भ्यो गृहदेवताभ्यः प्रविश्य ब्रह्मणे मध्ये अद्भ्य उदकुम्भे आकाशायेत्यन्तरिक्षे नक्तंचरेभ्यश्च सायम् ॥ ६ ॥ स्वस्ति वाच्य भिक्षादानं प्रश्नपूर्वं तु ददातिषु चैवं धर्म्मेषु ॥७॥ समद्विगुणसाहस्रानन्त्यानि फलान्यब्राह्मणब्राह्मणश्रोत्रियवेदपारगेभ्यः ॥८॥ गुर्वर्थनिवेशौषधार्थवृत्तिक्षीणयक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोगवैश्वजितेषु द्रव्यसंविभागो, बहिर्वेदि भिक्षमाणेषु कृतान्नमितरेषु ॥९॥

करे। देवयज्ञ में अग्नि, धन्वन्तरि, विश्वेदेव, प्रजापति, और स्विष्टकृत् इन नामों से अग्नि में हविष्यान्न की पांच आहुति देवे जैसे (१—अग्नये स्वाहा। २-धन्वन्तरये स्वाहा। ३—विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ४—प्रजापतये स्वाहा। ५—अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा) ॥ ५ ॥ फिर भूतयज्ञ में पूर्वादि दिशाओं के इन्द्रादि देवताओं के लिये प्रदक्षिण क्रम से बलि देकर द्वार पर मरुत् देवता के लिये, फिर गृह देवताओं के लिये खेंचे हुए कोष्ठ के बीच में ब्रह्मा के लिये, जल के कुम्भस्थान पर अप् देवता के लिये, आकाश के लिये, अन्तरिक्ष में दिखा के और सायंकाल के बलि कर्म में नक्तंचर देवताओं के लिये बलि धरे ॥ ६ ॥ (इन का विशेष विधान पञ्चमहायज्ञ पद्धति में देखिये) बुलाके (स्वस्ति) ऐसा कहला कर भिक्षा देवे। और इस प्रकार से सभी दान धर्म सुपात्र को अपने यहां सम्मान पूर्वक बुलाकर दिया करे ॥ ७ ॥ ब्राह्मण से भिन्न क्षत्रियादि को भोजनादि दान देने का दान को बराबर फल होता, गुण कर्म हीन मूर्ख ब्राह्मण को देने का द्विगुणा फल, वेद पाठी श्रोत्रिय को देने का हजार गुणा फल और वेद पारग (जिस ने सब वेदों को आद्योपान्त पढ़ा जाना हो ऐसे वेदतत्वार्थ वेत्ता) को दान देनेका अनन्त फल होता है ॥ ८ ॥ गुरु के लिये, किसी ब्राह्मण का घर बनाने के लिये, औषध करने के लिये, जो जीविका के बिना दुःखी हो उस को, यज्ञ करने वाले को, वेदादि शास्त्र पढ़ने वाले विद्यार्थी को, मुसाफिर को, और विश्वजित् यज्ञ के कर्त्ता को, इन सब को वा उन २ कामों के निमित्त धन का दान देना चाहिये। यज्ञ के समय ऋत्विजों को वेदि के भीतर दक्षिणा देकर

प्रतिश्रुत्याप्यधर्म्मसंयुक्ताय न दद्यात् ॥ १० ॥ क्रुद्धहृष्टभीतार्त्त-लुब्धबालस्थविरमूढमत्तोन्मत्तवाक्यान्यनृतान्यपातकानि ॥ ११ ॥ भोजयेत्पूर्वमतिथिकुमारव्याधितगर्भिणीसुवासिनीस्थविरान् जघन्यांश्च ॥ १२ ॥ आचार्यपितृसखीनां च निवेद्य वचनक्रिया ऋत्विगाचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलानामुपस्थाने मधुपर्कः संवत्सरे पुनःपूजिता यज्ञविवाहयोरर्वाग्राज्ञश्च श्रोत्रियस्य ॥ १३ ॥ अश्रोत्रियस्यासनोदके श्रोत्रियस्य तु पाद्यमर्घ्यमन्नविशेषांश्च प्रकारयेन्नित्यं वा संस्कारविशिष्टं मध्यतोऽन्नदानमवैद्ये साधुवृत्ते विपरीते तु तृणोदकभूमिः

मांगने वालों को वेदि से बाहर यथाशक्ति देवे तथा अन्य दीन दुःखियों को पूड़ी मिठाई आदि पक्वान्न देना चाहिये ॥ ९ ॥ अधर्मी को प्रतिज्ञा करने पर भी कुछ नहीं देना चाहिये ॥ १० ॥ क्रोधी, अतिहर्ष में मग्न, भयभीत, दुःख में निमग्न, लोभी, बालक, वृद्ध, अज्ञानी (बेसमझ) नशाबाज, पागल, इन को मिथ्या बोलने पर पाप नहीं लगता है ॥ ११ ॥ गृहस्थ पुरुष पञ्चमहायज्ञों के पश्चात् पहिले अतिथि, बालक, रोगी, गर्भिणी स्त्री, विवाहिता पुत्री, और वृद्ध पुरुष बाबा आदि तथा छोटे भाई आदि इन सब को भोजन कराके तब पाछे स्वयं खावे ॥ १२ ॥ गुरु, पिता, और मित्र इन से निवेदन करे कि भोजन तय्यार है । तब जैसी आज्ञा आचार्य आदि करें वैसा करे अर्थात् इन की आज्ञा लेकर भोजन करे । ऋत्विज, आचार्य, श्वशुर, चाचा, मामा, ये लोग अकस्मात् आवें तो मधुपर्क से पूजन करे । प्रत्येक वर्ष में कई बार मिलें तो यज्ञ और विवाह से भिन्न एक ही बार मधुपर्क विधि से पूजे । यज्ञ में ऋत्विजों का और विवाह में वर का मधुपर्क विधि से पूजन करे । राजा और श्रोत्रिय (वेदपाठी) का भी मधुपर्क विधि से पूजन करे ॥ १३ ॥ अन्य वेदाङ्गादि पढ़े विद्वान् का आसन और जलादि से सत्कार करे और श्रोत्रिय का तो पाद्य अर्घ्य और उत्तमोत्तम भोजनादि से भी सत्कार करे । अथवा उत्तम संस्कारों से सिद्ध किये अन्न के बीच में से लेके नित्य ही गृहस्थ पुरुष अन्न का दान किसी सुपात्र ब्राह्मण को वा वैद्य से भिन्न सदाचारी पुरुष को देवे । कोई साधारण मनुष्य आवे तो भी ठहरने की जगह, बैठने को आसन, और जल

स्वागतमन्ततः पूज्यानत्याशश्च शय्यासनावसथानुव्रज्योपासनानि सदृक्श्रेयसोः समान्यल्पशोऽपि हीने असमानग्रामोऽतिथिरेकरात्रिकोऽधिवृक्षसूर्योपस्थायी कुशलानामयक्षेमारोग्याणामनुप्रश्नोऽन्त्यशूद्रस्याब्राह्मणस्यानतिथिर्ब्राह्मणो यज्ञे संवृतश्चेद् भोजनं तु क्षत्रियस्योर्ध्वं ब्राह्मणेभ्योऽन्यान् भृत्यैः सहानृशंसार्थमानृशंसार्थम् ॥ १४ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पादोपसंग्रहणं गुरुसमवायेऽन्वहम् ॥ १ ॥ अभिगम्य तु विप्रोष्य मातृपितृतद्बन्धूनां पूर्वजानां विद्यागुरूणां तत्तद्गुरूणां

और स्वागत करे। पूज्य पुरुष का भूल से आदर न कर पावे तो भोजन न करे। शय्या (खटिया वा तखत,) आसन, घरकी कोई कोठरी ठहरने को, पीछे चलके पनारना, पास बैठकर प्रेम से बातें करना, इन कामों को (आयु विद्यादि में) अपने बराबर वाले और अपने से बड़े श्रेष्ठ मनुष्य में एकसे ही करे और जो अपने से अवस्थादि में कुछ छोटा भी अतिथ हो उसका भी शय्यादि द्वारा बड़े के तुल्य सत्कार करे। जो अपने गांव से भिन्न गांव का रहने वाला हो और एक रातभर ही (जिस के घर जावे वहां) निवास करे, और वृक्षों के नीचे रहना और सूर्यनारायण का उपस्थान करे वह अतिथ कहाता है। ऐसे अतिथि के आने पश्चात् ब्राह्मण हो तो कुशल है? क्षत्रिय हो तो अनामय है? वैश्य हो तो क्षेम है? और शूद्र हो तो आरोग्य है? ऐसे वाक्यों से पूछे। ब्राह्मण से भिन्न किसी नीच वा शूद्र के यज्ञ में वरण किया हुआ ब्राह्मण भी किसी के यहां अतिथि नहीं माना जायगा। यदि ब्राह्मण के घर पर क्षत्रिय अतिथि आया हो तो ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर उस को भोजन करावे और अन्य वैश्यादि अतिथि आये हों तो दयाधर्म का पालन करने के लिये भृत्यों के साथ उनको भी भोजन करावे ॥ १४ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में पांचवां अध्याय पूरा हुआ ॥

गुरु के सम्बन्ध में गुरु निकट हों तो नित्य २ उनके पादस्पर्श करे ॥१॥ और परदेश से आकर माता, पिता, मामा, चाचा, ज्येष्ठभ्राता, इन सब को संमुख जाकर पादस्पर्श पूर्वक अभिवादन करे। तथा विद्या पढ़ाने वाले गुरु, और

च सन्निपाते परस्य ॥२॥ स्वनाम प्रोच्याहमयमित्यभिवादो ऽज्ञसमवाये स्त्रीपुंयोगेऽभिवादतोऽनियममेके नाविप्रोष्य स्त्री- णाममातृपितृव्यभार्याभगिनीनां नोपसंग्रहणं भ्रातृभार्याणां स्वस्राश्च ॥३॥ ऋत्विक्श्वशुरपितृव्यमातुलानां तु यवीयसां प्रत्युत्थानमनभिवाद्यास्तथान्यः पौर्वः पौरोऽशीतिकावरः शूद्रोऽप्यपत्यसमेनावरोऽप्यार्य्यः शूद्रेण नाम चास्य वर्ज्जयेद् राज्ञश्चाजपः प्रेष्यो भोभवन्निति वयस्यः समानेऽहनि जातो दशवर्षवृद्धः पौरः पञ्चभिः कलाभ रःश्रोत्रियस्सदाचरणास्त्रिभिः,

---

उनर गुरुओं के गुरु एकत्र इकट्ठे हों तो गुरुओं के गुरुओं को अभिवादन करे ॥ २ ॥ अभिवादन की रीति यह है कि " देवशर्माऽहमयमभिवादये" क्षत्रिय हो तो शर्मा के स्थान में वर्मा कहे । विन पढे पुरुष तथा स्त्री पुरुषों के मेल मिलाप के समय स्त्रियों को अभिवादन करने का अवसर हो तो अभिवादन के वाक्य का नियम नहीं है यह किन्ही आचार्यों की राय है कि वहां लोक भाषा में प्रचरित शब्द बोलकर (जिसे वे लोग ठीक समझते हों) अभिवादन करे । विदेश में गये विना नाते रिश्ते की सब स्त्रियों को नित्य२ अभिवादन न करे। परन्तु मामा, चाची, बड़ी भगिनी, बड़ी भौजाई (भावज) और मासु इन सब को तो नित्य२ पादस्पर्श पूर्वक अभिवादन करे ॥ ३ ॥ ऋत्विज, श्वसुर, चाचा, और मामा ये लोग युवावस्था के हों तो आते देख के उठ खड़ा हो किन्तु अभिवादन न करे । तथा अपने ग्राम नगर का निवासी क्षत्रियादि अपने से बड़ा आवे तो भी अभिवादन न करे किन्तु उठके खड़ा हो जावे । ८० अस्सी वर्ष से भीतर के शूद्र को बालक के समान समझे। छोटे भी ब्राह्मणादि द्विज को शूद्र अभिवादन (प्रणाम) करे । जिस को अभिवादन किया जाय उस का नाम नहीं लेना चाहिये । कम बोलने वाला अधिकावस्था का भी राजा का नौकर (भोभव- न्नभिवादये) ऐसा कहके अभिवादन बड़ों को करे । एक ग्राम वा नगर के रहनेवाले गुण कर्महीन साधारण होंतो चाहें वे बराबर आयुवालेहों वा दशवर्ष तक कम ज्या- दा हों तो भी बराबर के माने जावेंगे । बराबर वालों कामा व्यवहार करें । और इन में जो कोई विशेष गुणवान् हो तो वह पांच वर्ष तक बड़ा होने पर बराबर माना जायगा । पांच वर्ष से अधिक बड़ा होगा तो बड़ा

राजन्यो वैश्यकर्म्मा विद्याहीनो दीक्षितस्य प्राक्कुर्यात् ॥४॥ वित्तबन्धुकर्मजातिविद्यावयांसि मान्यानि परबलीयांसि श्रुतं तु सर्वेभ्यो गरीयस्तन्मूलत्वाद्धर्मस्य श्रुतेश्च ॥५॥ चक्रिदशमीस्थोऽनुग्राह्यवधूस्नातकराजभ्यः पथो दानं राज्ञातु श्रोत्रियाय श्रोत्रियाय ॥ ६ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

आपत्कल्पो ब्राह्मणस्याब्राह्मणविद्योपयोगोऽनुगमनं शुश्रूषाऽऽसमाप्तेर्ब्राह्मणो गुरुर्याजनाध्यापनप्रतिग्रहाः सर्वेषां

माना जायगा । यदि स्वग्राम वासी सदाचारी वेदपाठी हो तो तीन वर्ष तक बड़ा होने पर बराबर माना जायगा । तीन से अधिक बड़ा होगा तो मान्य कोटि में बड़ा माना जायगा । यदि कोई क्षत्रिय, वैश्य का व्यापारादि काम करने वाला विद्याहीन हो तो अपने से छोटे भी दीक्षित क्षत्रिय को पहिले प्रणाम करे ॥ ४ ॥ धन, कुटुम्ब; पञ्चमहायज्ञादि कर्म, जाति (वर्ण,) विद्या पढ़ना, और बड़ी अवस्था, ये छः जिस २ के अधिक वा उत्तम हों वे सब मान्य कोटि के हैं । और पहिले २ की अपेक्षा अगला २ अधिक मान्य होगा । जैसे धनी से बड़े कुटुम्ब वाला, उस से उत्तम शास्त्रोक्त कर्मों का करने वाला, उस से भी अधिक मान्य साधारण विद्वान् उससे भी अधिक मान्य १८० वर्ष का वृद्ध होगा । परन्तु वेदका तत्त्ववेत्ता बड़ा विद्वान् हो तो सभी मान्यकोटियों के लोगों से अधिक मान्य होगा । क्योंकि वेद शास्त्र ही धर्म का मूल है । और श्रुति में भी वेदज्ञ विद्वान् को ही सर्वोत्तम लिखा है ॥ ५ ॥ गाड़ीवाला, ९० नब्बे वर्ष का वृद्ध, दया के योग्य, वधू, स्नातक (ब्रह्मचर्य पूरा करने वाला) और राजा इन का विशेष मान्य करके इन के सामने मार्ग से अन्यों को हटजाना चाहिये । परन्तु एक ओर से राजा तथा दूसरी ओर से वेदपाठी स्नातक विद्वान् आता हो तो राजा को चाहिये कि स्नातक के लिये मार्ग को छोड़कर मान्य करे ॥ ६ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

ब्राह्मण को चाहिये कि जब आपत्काल में ब्राह्मण अध्यापक न मिले तो क्षत्रियादि से वेदादि शास्त्र पढ़े तथा पढ़ने के समय तक उस क्षत्रियादि अध्यापक के पीछे २ चलनादि शुश्रूषा करे परन्तु उच्छिष्ट भोजन और पादस्पर्श न करे।

पूर्वः पूर्वो गुरुस्तदलाभे क्षत्रवृत्तिस्तदलाभे वैश्यवृत्तिः॥१॥तस्या पण्यं गन्धरसकृतान्नतिलशाणक्षौमाजिनानि, रक्तनिर्णिक्ते वाससी क्षीरं च सविकारं मूलफलपुष्पौषधमधुमांसतृणोदकापथ्यानि पशवश्च हिंसासंयोगे पुरुषवशाकुमारीवेहतश्च नित्यं भूमिव्रीहियवाजाव्यश्वर्षभधेन्वनडुहश्चैके ॥ २ ॥ विनिमयस्तु रसानां रसैः पशूनां च न लवणाकृतान्नयोस्तिलानां च समेनासमेन तु पक्वस्य संप्रत्यर्थे सर्वधातुवृत्तिरशक्तावशूद्रेण तदप्येके प्राणसंशये तद्वर्णसंकराऽभक्ष्यनियमस्तु प्रा-

यज्ञ कराना, वेदादि पढ़ाना, और दान लेना ये काम ब्राह्मण गुरु के ही हैं। और नीचे २ वर्णों का अपने से ऊंचा २ गुरु भी हो सकता है। जैसे क्षत्रिय का ब्राह्मण, वैश्य का गुरु क्षत्रिय, और शूद्र का गुरु वैश्य होसकता है। वैसे शुद्ध ब्राह्मण के न मिलने पर क्षत्रिय के कर्म करने वाले ब्राह्मण को वा वैश्यवृत्ति करने वाले ब्राह्मण को क्षत्रियादि गुरु करें ॥१॥ यदि ब्राह्मणको आपत्काल में वैश्य के कामों से जीविका करने पड़े तो, केशर चन्दन हींगादि गन्ध द्रव्य, दूध, लवणादि रस, पूरी मिठाई आदि पकाया भोजन, तिल, शण वा शण के कपड़े, अलीस के (मुकटादि) वस्त्र, मृगचर्म, रंगे और धोये वस्त्र, दूध, दही, रबड़ी, पेड़ा, खोयादि, मूल, फल, पुष्प, औषध, महत, मांस, फूंस (पूरा) जल, कुपथ्यकारक वस्तु, जो कसाई के घर जाने सम्भव हों ऐसे पशु, पुरुष, बंध्या गौ वा भैंसी आदि, कुमारी कन्या, गर्भपातिनी गौ आदि, इन सबको कभी भी न बेंचे। पृथिवी, धान, जौ, भेड़, बकरी, ऋषभ—(नये बछड़ा, खिला), काम में चले हुए बैल, इन सबको भी न बेंचे यह किन्हीं आचार्यों का मत है ॥२॥ रसोंका रसोंके साथ और पशुओं का पशुओं के साथ बदला भले ही कर लेवे। परन्तु कच्चे अन्न और लवण का तथा परस्पर तिलों का बदला न करे। तौल में अधिक कमका बदला करना हो तो कच्चे अन्न केसाथ पकाये अन्नका बदला करलिया करे। और जिस कालमें धनके विना तंग असमर्थ हो तब लोहा तांबा पीतल कांसादि सब धातुओं के लेन देन द्वारा जीविका कर लेवे। पर शूद्रके साथ जीविका न करे। और कोई आचार्य कहतेहैं कि प्राण जाने का भय हो तो शूद्र से भी जीविका कर लेवे। परन्तु उन नीच वर्णसंकरों के घर के पकाये अभक्ष्य अन्न को न खाने का

णसंशये ब्राह्मणोऽपि शस्त्रमाददीत राजन्यो वैश्यकर्म्म वैश्यकर्म्म ॥ ३ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

द्वौ लोके धृतव्रतौ राजा ब्राह्मणश्च बहुश्रुतस्तयोश्चतुर्विधस्य मनुष्यजातस्यान्तःसंज्ञानां चलनपतनसर्पणानामायत्तं जीवनं प्रसूतिरक्षणमसंकरो धर्मः ॥ १ ॥ सएष बहुश्रुतो भवति लोकवेदवेदाङ्गविद् वाकोवाक्येतिहासपुराणकुशलस्तदपेक्षस्तद्वृत्तिश्चत्वारिंशता संस्कारैः संस्कृतस्त्रिषु कर्मस्वभिरतः षट्सु वा समयाचारिकेष्वभिविनीतः षड्भिः परिहा-

---

नियम तब भी रक्खे। और प्राण जाने का भय हो तो ब्राह्मण भी शस्त्र (हथियारों) का ग्रहण करे। और प्राण संकट के आपत्काल में राजकुल का क्षत्रिय भी वैश्य के कर्मों द्वारा निर्वाह करना स्वीकार करे ॥ ३ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में सातवां अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

संसार में एक राजा द्वितीय बहुत पढ़ा लिखा वेद शास्त्रवेत्ता विद्वान् ये दोनों ठीक२ अपने नियमों पर बद्ध होने चाहिये। इन्हीं दोनों पर सब मनुष्यों और पश्वादि प्राणीमात्र का चलना फिरना चेष्टा करना आदि रूप जीवनका निर्वाह निर्भरहै। तथा जीवों की उत्पत्ति, रक्षा और धर्म में चपलता न होना भी राजा और विद्वान् ब्राह्मण पर ही निर्भरहै ॥१॥ बहुश्रुत ब्राह्मण वह कहाताहै कि जो लोकव्यवहार में चतुर, वेद-वेदाङ्गों का जाननेवाला, वाकोवाक्य (प्रश्नोत्तर रूप वैदिक ग्रन्थ) इतिहास, पुराण, इन सब में कुशल—अच्छा जानकार हो, इन्हीं वेदादि की अपेक्षा रक्खे, और इन्हीं के द्वारा जिसकी जीविका हो, जिसकी आगे कहे चालीश संस्कारों से शुद्धि हुई हो। वेद का पढ़ाना, यज्ञ कराना और दान देना इन तीन कर्मों में वा वेदाध्यन, यज्ञ करना और दान लेना इनके सहित छः कर्मों में जो तत्पर हो, समयानुकूल आचार विचारों में जो सर्वथा विनय के साथ वर्त्ताव कर्त्ता हो, विद्वान् ब्राह्मण अपने छः कर्मों में तत्पर न हो तो राजा उसका निरादर करे वा अधिक अधर्मी हो तो वध करा देवे। और यदि अपने वेदोक्त कर्मों में तत्पर रहता हो तो मार डालने

र्यो राज्ञा वध्यश्चावध्यश्चादण्ड्यश्चाबहिष्कार्यश्चापरिवाद्यश्चापरिहार्यश्चेति ॥२॥ गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणान्नप्राशनचौडोपनयनं चत्वारि वेदव्रतानि स्नानं सहधर्म्मचारिणीसंयोगः पञ्चानां यज्ञानामनुष्ठानं देवपितृमनुष्यभूतब्रह्मणामेतेषां चाष्टकापार्वणश्राद्धश्रावण्याग्रहायणीचैत्र्याश्वयुजीति सप्त पाकयज्ञसंस्था अग्न्याधेयमग्निहोत्रदर्शपौर्णमासावाग्रयणं चातुर्मास्यनिरूढपशुबन्धसौत्रामणीति सप्त हविर्यज्ञसंस्था अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशी वाजपेयोऽतिरात्रोऽप्तोर्यामइति सप्त सोमसंस्था इ-

---

दण्डदेने, देश निकाला देने, निन्दित करने और तिरस्कार करने योग्य वह नहीं है ॥ २ ॥ अब चालीश संस्कार गिनाते हैं—१-गर्भाधान।२- पुंसवन । ३-सीमन्तोन्नयन । ४-जातकर्म ।५-नामकरण । ६-अन्नप्राशन । ७-चूडाकर्म । ८-उपनयन । चारो वेदों के व्रत९ । १० ११ । १२ । चार वेदारम्भ १३-समावर्त्तन स्नान। १४-विवाह (सहधर्मचारिणी के साथ संयोग) । १५-देवयज्ञ।१६-पितृयज्ञ । १७-मनुष्य (अतिथ) यज्ञ । १८-भूतयज्ञ (बलिकर्म) । १९-ब्रह्मयज्ञ । २०-तीनों अष्टका और एक अन्वष्टका श्राद्ध । २१-सब पार्वण श्राद्ध। २२--पिण्ड पितृयज्ञ वा एकोद्दिष्ट सपाह आदि श्राद्ध । २३-श्रावणी कर्म (उपाकर्म) । २४-आग्रहायणी (मार्गशिर की पौर्णमासी को होने वाला यज्ञ) कर्म । २५ चैत्री (चैत्र की पौर्णमासी का यज्ञ) कर्म । २६—आश्वयुजी (आश्विन की पूर्णमासी का यज्ञ) कर्म । ये अष्टका श्राद्धादि सात पाकयज्ञ कहाते हैं । २७ श्रौतस्मार्त्त अग्नियों का स्थापन और तत्सम्बन्धी पवमानेष्ट्यादि कर्म । २८-श्रौतस्मार्त्त सायं प्रातःकाल का नित्याग्निहोत्र । २९-दर्शपौर्णमास इष्टि । ३०-आग्रयणेष्टिक (नवान्नेष्टि) ३१-चातुर्मास्ययागों के चारो पर्व।३२—निरूढ पशुबन्ध (पशुयाग कर्म यह श्रौत है) कर्म । ३३—सौत्रामणीयज्ञ । अग्न्याधान से लेकर ये सातो हविष्यान्न (चरु पुरोडाशादि से होने वाले) हविर्यज्ञ कहाते हैं । ३४—अग्निष्टोम । ३५—अत्यग्निष्टोम । ३६—उक्थ्य।३७—षोडशी । ३८—वाजपेय । ३९—अतिरात्र । ४०—अप्तोर्याम । ये अग्निष्टोमादि सात

त्येते चत्वारिंशत्संस्कारा: ॥ ३ ॥ अथाष्टावात्मगुणा दया सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूया शौचमनायासो मङ्गलमकार्प्पण्यमस्पृहेति यस्यैते न चत्वारिंशत्संस्कारा नवाष्टावात्मगुणा न स ब्रह्मण: सालोक्यं सायुज्यं च गच्छति ॥ ४ ॥ यस्य तु खलु संस्काराणामेकदेशोऽप्यष्टावात्मगुणा अथ स ब्रह्मण: सालोक्यं सायुज्यं च गच्छति गच्छति ॥ ५ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्याय: ॥ ८ ॥

स विधिपूर्वं स्नात्वा भार्यामधिगम्य यथोक्तान् गृहस्थधर्मान् प्रयुञ्जान इमानि व्रतान्यनुकर्षेत् स्नातको नित्यं शुचि: सुगन्ध: स्नानशील: सति विभवे न जीर्णमलवद्वासा:

सोमयाग कहाते हैं। ये चालीश संस्कार हैं ॥ ३ ॥ अब आत्मा नाम अन्तःकरण (मन) के आठ गुण (धर्म) ये हैं कि-१—सब प्राणियों पर दया करना २—असमर्थ दीन दुःखियों वा अपने आधीन स्त्री पुत्रादि के अनुचित बर्त्ताव को सह लेना। ३—किसी की निन्दा न करना। ४—बाहरी भीतरी शुद्धि करना। ५—परोपकारादि के परिश्रम में कष्ट न मानना। ६-मङ्गल मानना (शोकादि का त्याग) ७—उदारता रखना। ८—तृष्णा को त्याग कर सन्तोष धारण करना। जिस पुरुष के ये चालीश संस्कार न हुये हों और आठो आत्मगुण भी जिस में न हों वह ब्रह्म (परमात्मा) के साथ सालोक्य वा सायुज्य मुक्ति को प्राप्त नहीं होता ॥ ४ ॥ और जिस के चालीश संस्कारों में से थोड़े भी संस्कार यथावत् हुये हों और दयादि आठो धर्म जिस में विद्यमान हों वह भी मोक्ष को अवश्य प्राप्त हो जाता है ॥ ५ ॥
यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में आठवां अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

अब स्नातक (गृहस्थ) पुरुष के नियम धर्म कहते हैं। पहिले गृह्यसूत्रों में लिखे विधान के अनुसार समावर्त्तन (संस्कार) स्नान कर के पश्चात् विधि पूर्वक विवाह करके ठीक शास्त्रोक्त गृहस्थ के धर्मों का पालन करता हुआ इन आगे कहे नियमों को ठीक २ धारण करे। स्नातक पुरुष (वा गृहस्थमात्र) नित्य ही शुद्ध रहे, सुगन्ध (चन्दन केशर इतर आदि) लगावे, नियम से स्नान करे, सम्पत्ति होने पर फटे वा मलिन वस्त्र कदापि धारण

स्यान्न रक्तमलवदन्यधृतं वा वासो बिभृयान्न स्रगुपानहौ निर्णिक्तमशक्तौ न रूढश्मश्रुरकस्मान्नाग्निमपश्च युगपद्धारयेन्नापो मेध्येन संसृजेन्नाञ्जलिना पिबेन्न तिष्ठन्नुद्धृतेनोदकेनाचामेन्न शूद्राशुच्येकपाण्यावर्जितेन न वाय्वग्निविप्रादित्यापो देवता गाश्च प्रति पश्यन् वा मूत्रपुरीषामेध्यान्युदस्येन्नैता देवताः प्रति पादौ प्रसारयेन्न पर्णलोष्टाश्मभि मूत्रपुरीषापकर्षणं कुर्यान्न भस्मकेशनखतुषकपालामेध्यान्यधितिष्ठेन्न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह संभाषेत संभाष्य वा पुण्यकृतो मनसा ध्यायेद्ब्राह्मणेन वा सह संभाषेत ॥ १ ॥ अधेनुं धेनुभव्येति ब्रूयादभद्रं भद्रमिति कपालं भगालमि-

---

न करे, मलिन लाली आदि रंग के तथा अन्य किसी के पहने हुए वस्त्र भी न पहने, अन्य के पहने हुए माला और जूता भी धारण न करे, किसी कारण असमर्थ दशा में अन्य का पहना वस्त्रादि धारण करने ही पड़े तो धोने आदि द्वारा शुद्ध करलेवे। डाढ़ी मूंछे न रखावे किन्तु मुंड़ाता रहे। अकस्मात् अग्नि और जल को एक साथ न ले चले, शुद्ध जल में मल मूत्रादि अपवित्र वस्तु न गिरावे, अंगुली से जल न पीवे, खड़ा हुआ भी जल न पीवे। जलाशय से अलग निकाले जल से आचमन करे। शूद्र वा अशुद्ध मनुष्य के लाये और एक हाथ से लाये जल से भी आचमन न करे। वायु, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जलाशय, देवस्थान, इनकी ओर मुख करके वा इनको देखता हुआ मल, मूत्र, वा अन्य किसी अपवित्र वस्तु का त्याग न करे। और इन वायु आदि देवताओं की ओर को पग भी न पसारे। पत्ते, ढेला, और पत्थर से मल मूत्रों को इधर उधर न चलावे। भस्म, बाल, नख, भूसी, खप्पर, (मट्टी के वर्त्तनों के टुकड़े) और अपवित्र वस्तु इन पर न खड़ा हो और न बैठे। म्लेच्छ, अपवित्र (घृणित) और अधर्मियों के साथ संभाषण न करे। यदि किसी कारण इनके साथ बोलने ही पड़े तो मनसे पुण्यात्मा तपस्वियों का ध्यान करे। अथवा उनके साथ बात करने बाद ब्राह्मण के साथ वार्त्तालाप करे ॥ १ ॥ अधेनु (दूध न देनेवाली गौ) को „ धेनु भव्या" कहे। अभद्र (अकल्याण) को„ भद्र" कपाल को„ भगा-

ति मणिधनुरितीन्द्रधनुः ॥ २॥ गां धयन्तीं परस्मै नाचक्षीत न चैनां वारयेन्न मिथुनीभूत्वा शौचं प्रति विलम्बेत नच तस्मिन् शयने स्वाध्यायमधीयीत न चापररात्रमधीत्य पुनः प्रतिसंविशेन्नाकल्पां नारीमभिरमयेन्न रजस्वलां नचैनां श्लिष्येन्न कन्यामग्निमुखोपधमनविगृह्यवादबहिर्गन्धमाल्यधारणपापीयसावलेखनभार्यासहभोजनाञ्जन्त्यवेक्षणकुद्वारप्रवेशनपादधावनसंदिग्धभोजननदीबाहुतरणवृक्षवृषमारोहणावरोहणप्राणव्यवस्थानि च वर्ज्जयेन्न संदिग्धां नावमधिरोहेत् सर्वतएवात्मानं गोपायेन्न प्रावृत्य शिरोऽहनि पर्यटेत्, प्रावृत्य तु रात्रौ मूत्रोच्चारे च न भूमावनन्तर्द्धाय नाराद्वावस-

---

ल" इन्द्र धनुष् को „ मणिधनुः" ऐसा कहे ॥ २ ॥ गौ को बछड़ा चौंखता हो तो अन्य से न कहे। और बछड़े से गौ को स्वयंभी न हटावे। मैथुन कर के तत्काल शुद्धि करे विलम्ब न करे। मैथुन करने की सेज पर वेदपाठ न करे। रात के चौथे प्रहर में वा आधी रात के पश्चात् वेदपाठ करे तो पीछे फिर न सोवे। असमर्थ बाल्यावस्था की (जिसकी छाती पर कुच न उठे हों) स्त्री से संयोग न करे। रजस्वला स्त्री से भी संयोग न करे। रजस्वला स्त्री को शरीर से भी न लिपटावे तथा स्पर्श भी न करे। कुमारी कन्या से भी (विवाह विधि हुए विना) संयोग न करे। अग्नि को मुख से न धोंके वा न फूंके (परन्तु अग्निको प्रज्वालन के समय बांस की धोंकनी से वा दोनों हाथों के बीच से फूके पंखादि से नहीं।) वैर विरोध पूर्वक किसी से वाद विवाद न करे। कण्ठ से बाहर शिर के जूड़े आदि फूलों आदि की माला धारण न करे। अत्यन्त पापी पुरुष के साथ लिखा पढ़ी आदि व्यवहार कदापि न करे। अपनी पत्नी के साथ भोजन, अंजन सुरमा लगाती हुई को देखना, द्वार से भिन्न खिड़की आदि मार्ग से घर में घुसना, कांसे के पात्र में पग धोना, संदिग्ध भोजन करना, भुजाओं से नदी का तरना, वृक्ष पर वा बैलपर चढ़ना, उतरना, इन को और प्राणों की दुरवस्था करने वाले अन्य कामों को भी त्याग देवे। सन्दिग्ध नौका पर न चढ़े। सब ओर से अपनी रक्षा करे। दिन में शिर को बांध कर न डोले, परन्तु रात में शिर को बांधकर निकले नंगे शिर रात में कहीं न जावे। मल मूत्र त्याग के समय शिर में वस्त्र लपेट कर और सूखे तृण वा ढेलादि

थान्न भस्मकरीषकृष्टच्छायापथिकाम्येषूभे मूत्रपुरीषे दिवा कुर्यादुदङ्मुखः संध्ययोश्च रात्रौ दक्षिणामुखः पालाशमासनं पादुके दन्तधावनमिति वर्ज्जयेत् ॥३॥ सोपानत्कश्चाशनासनशयनाभिवादननमस्कारान् वर्ज्जयेत् ॥ ४ ॥ न पूर्वाह्णमध्यन्दिनापराह्णानफलान्कुर्याद् यथाशक्ति धर्मार्थकामेभ्यस्तेषु च धर्म्मोत्तरः स्यान्न नग्नां परयोषितमीक्षेत न पदासनमाकर्षेन्न शिश्नोदरपाणिपादवाक्चक्षुश्चापलानि कुर्याच्छेदनभेदनविलेखनविमर्दनास्फोटनानि नाकस्मात्कुर्यान्नोपरि वत्सतन्त्रीं गच्छेन्न जलकूले स्यान्न यज्ञमवृतो गच्छेद् दर्शनाय तु कामं, न भक्ष्यानुत्संगे भक्षयेन्न रात्रौ प्रेष्याहृतमुद्धृतस्नेहविलेपनपिण्याकमथितप्रभृतीनि चात्तवीर्याणि ना-

---

की भूमि पर घर के उन पर मल मूत्रका त्याग करे। घर के समीप मल मूत्र का त्याग न करे, भस्म, फूटे कण्डे, जोता खेत, छाया, मार्ग, और रमणीक जगह में मल मूत्र का त्याग न करे। दिन में तथा सायं प्रातः सन्ध्या के समय उत्तर को मुख करके और रात्रि में दक्षिण को मुख करके मल मूत्र का त्याग करे। ढांक की लकड़ी वा पत्तों का बैठने को आसन, (पट्टा) खड़ाम् (पादुका) और दातौन न बनावे ॥ ३॥ भोजन करना, आसन पर बैठना, शय्या पर लेटना, बड़े मान्यों को अभिवादन, और बराबर वालों को नमस्कार इन कामों को जूता पहने हुए न करे ॥४॥ पूर्वाह्ण, मध्यान्ह और अपराह्ण को निष्फल न करे किन्तु उन २ समय के धर्म कृत्यों द्वारा सफल करे। यथाशक्ति धर्म अर्थ और कामना की सिद्धि के लिये समयों को लगावे और तीनों में धर्म को सर्वोपरि सेवन करने का यत्न करता रहे। पराई स्त्री को नंगी न देखे। पग से आसन को न खींचे। शिश्न, (गुप्तेन्द्रिय) उदर, हाथ, पग, वाणी, चक्षु, इन को चपल न रक्खे। बिना प्रयोजन किसी वस्तु का छेदन (दो टुकड़े) भेदन, खोदना, मसलना, बजाना, अकस्मात् न करे। बंधे हुए बछड़े की रस्सी के ऊपर लांघकर न निकले। जलाशय के तट पर न बैठे। बरण हुए वा बुलाये विना किसी के यज्ञ में न जावे। पर देखने को भले ही जावे। खाने योग्य वस्तुओं को गोदी में धर कर न खावे। रात्रि में भृत्य की लायी वस्तु, जिस की चिकनाई निकाल ली हो, विलेपन (उबटन) पिण्याक(पीना-खली)

श्नीयात्, सायं प्रातस्त्वन्नमभिपूजितमनिन्दन् भुञ्जीत न कदाचिद्‌ रात्रौ नग्नः स्वपेत् स्नायाद्वा यच्चात्मवन्तो वृद्धाः सम्यग्विनीता दम्भलोभमोहवियुक्ता वेदविद आचक्षते तत्तमाचरेद् योगक्षेमार्थमीश्वरमधिगच्छेन्नान्यमन्यत्र देवगुरुधार्म्मिकेभ्यः प्रभूतैधोदकयवसकुशमाल्योपनिष्क्रमणमार्य्यजनभूयिष्ठमनलसमृद्धं धार्म्मिकाधिष्ठितं निकेतनमावसितुं यतेत प्रशस्तमाङ्गल्यदेवतायतनचतुष्पथादीन् प्रदक्षिणमावर्तेत ॥ ५ ॥ मनसा वा तत्समग्रमाचारमनुपालयेदापत्कल्पः ॥ ६ ॥ सत्यधर्मार्य्यवृत्तः शिष्टाध्यापकः शौचशिष्टः श्रुतिनिरतः स्यान्नित्यमहिंस्रो मृदुर्दृढकारी दमदा-

---

मट्ठा, इत्यादि (जिन का सार निकाल लिया गया हो) वस्तु न खावे वा न लगावे। सायं प्रातः दोवार सन्ध्याग्नि होत्रादि के पश्चात् पकाये (ताजे) उत्तम अन्न को निन्दा न करता हुआ खावे। रात में नङ्गा कदापि न सोवे और नंगा हो कर स्नान भी न करे। और जो सम्यग् विनय को प्राप्त हुए, दम्भ, लोभ, मोह, (अज्ञान से रहित) वेदवेत्ता आत्मज्ञानी वृद्ध लोगों के उपदेशानुसार आचरण करे। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति (योग) और प्राप्त की रक्षा (क्षेम) के लिये राजा के पास नित्य आया करे। देवता गुरु और धार्मिक लोगों से भिन्न अन्य किसी से कुछ प्रार्थना वा निवेदन न करे। जहां ईंधन, जल, चारा, (घासादि) कुश, पुष्प और निकलने के मार्ग, ये आर्य (द्विज) लोगों से अधिकांश घिरे हों जिस में वायु का प्रवेश हो, जिस में अग्नि स्थापित हो चुका हो, जहां धार्मिक लोग इधर उधर बहुत हों ऐसे घर में निवास करने का यत्न करे। प्रशस्त स्थान, माङ्गलिक वस्तु (गौ) आदि, देवालय और चौराहे आदि जब २ मिलें तब २ इनकी प्रदक्षिणा करे ॥५॥ अथवा ये आचरण आपत्काल में ठीक २ न कर सके तो उस पूर्वोक्त सब आचार का मनसे ही पालन करे ॥६॥ सत्य धर्म पर सदा आरूढ़, श्रेष्ठ सदाचारी आर्यों काला वर्त्ताव करे। शिक्षित उत्तम शील-स्वभाव वालों को वेदादि पढ़ावे। शौच धर्म की ठीक २ शिक्षा करे। वेद के पढ़ने पढ़ाने विचारने में तत्पर रहे। किसी को कभी भी दुःख देने की चेष्टा

नशीलएवमाचारो मातापितरौ पूर्वापरांश्च संबद्धान् दुरितेभ्यो मोक्षयिष्यन् स्नातकः शश्वद्ब्रह्मलोकान्न च्यवते न च्यवते ॥ ७ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥९॥

(इति प्रथमः प्रपाठकः)॥

द्विजातीनामध्ययनमिज्या दानं ब्राह्मणस्याधिकाः प्रवचनयाजनप्रतिग्रहाः पूर्वेषु नियमस्त्वाचार्यज्ञातिप्रियगुरुधनविद्याविनिमयेषु ब्राह्मणः संप्रदानमन्यत्र यथोक्तात् कृषिवाणिज्ये चास्वयं कृते कुसीदंच ॥ १ ॥ राज्ञोधिकं रक्षणं सर्वभूतानां न्याय्यदण्डत्वं बिभृयाद् ब्राह्मणान् श्रोत्रियान् निरुत्साहांश्चाब्राह्मणानकरांश्चोपकुर्वाणांश्च योगश्च विजये भ-

---

न करे। कोमलता के साथ दृढ़ता से धर्म करे। मन को वश में रखता हुआ दानशील हो। इस प्रकार आचरण करता हुआ अपने माता पिता और इधर उधर आगे पीछे के कुटुम्बी तथा सम्बन्धियों को दुराचारों से बचाना चाहता हुआ स्नातक गृहस्थ पुरुष सनातन अविनाशी ब्रह्मलोक को प्राप्त होके फिर च्युत नहीं होता है ॥ ७ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में नवमाध्याय और प्रथम प्रपाठक पूरा हुआ ९ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों द्विजों के लिये वेद वेदाङ्गों का पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना ये तीनों कर्म एकसे हैं। वेदादि पढ़ाना, यज्ञ कराना, दान लेना ये कर्म ब्राह्मण के अधिक हैं। पहिले तीनों (वेदाध्ययनादि) में नियम यह है कि आचार्य, ज्ञाति, प्रिय, गुरु, धन, और विद्या इनके परिवर्त्तन में दान का पात्र ब्राह्मण ही माना जावे परन्तु शास्त्रोक्त कन्यादान लेने आदि को छोड़कर (क्षत्रियादिभी कन्यादि लेवें) यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय खेती और वणिज् व्यापार करें तो स्वयं न करके अन्य भृत्यादि से करावें। और सूद भी न लेवें ॥१॥ क्षत्रिय राजा के उक्त वेदाध्ययनादि तीन से अधिक (खास) काम ये हैं—सब प्राणियों की रक्षा करना, न्यायानुकूल दण्ड देना, वेद वेत्ता वेदपाठी ब्राह्मणों का, निरुत्साही ब्राह्मणों से भिन्न क्षत्रियादि का, और राज कर न देने योग्य परोपकार में तत्पर पुरुषों का, क्षत्रिय राजा सदा ही भरण पोषण करे। विजय होने पर दान पुण्यादि कामों

ये विशेषेण चर्या च, रथधनुर्भ्यां संग्रामे संस्थानमनिवृत्तिश्च न दोषो हिंसायामाहवेऽन्यत्र व्यश्वसारथ्यायुधकृताञ्जलिप्रकीर्णकेशपराङ्मुखोपविष्टस्थलवृक्षाधिरूढदूतगोब्राह्मणवादिभ्यः क्षत्रियश्चेदन्यस्तमुपजीवेत्तद्वृत्तिः स्यात्, जेता लभेत सांग्रामिकं वित्तं वाहनं तु राज्ञउद्धारश्चापृथग्जयेऽन्यत्तु यथार्हं भाजयेद्राजा राज्ञे बलिदानं कर्षकैर्दशममष्टमं षष्ठं वा पशुहिरण्ययोरप्येके पञ्चाशद्भागं विंशतिभागः शुल्कः पण्ये मूलफलपुष्पौषधमधुमांसतृणेन्धनानां षष्ठं तद्रक्षणधर्म्मित्वात्तेषु तु नित्ययुक्तः स्यादधिके न वृत्तिः शिल्पिनो

का योग करे। शत्रु के अकस्मात् चढ़ाई कर देने का भय होने पर विशेष चिन्ता से वर्त्ताव करे। रथ और धनुषादि शस्त्रों के साथ संग्राम के लिये स्थित (खड़ा) होजाय। संग्राम से कदापि न हटे। युद्ध के समय होने वाली हिंसा में वीर पुरुषों को दोष नहीं लगता। परन्तु जिसके घोड़े, सारथि, हथियार, छूट गये वा नष्ट हो गये हों, जो हाथ जोड़ के कहे कि मुझे न मारो, शिर के बाल जिसने खोल दिये हों, जिन ने युद्ध से पीठ फेरी हो, लौटा जाता हो, जो बैठ गया हो, जो सवारी से उतर के भूमि पर खड़ा वा बैठा हो वा वृक्ष पर चढ़ गया हो, दूत, गौ-बैल, ब्राह्मण न होने पर अपने को ब्राह्मण कह देवे, यदि अन्य कोई क्षत्रिय भी हो पर ब्राह्मण के आश्रय से जीविका करे, वा ब्राह्मण के वेदाध्यापनादि कामों से जीविका करता हो ऐसे सवारी से अलग हुए आदि को युद्ध में मारडालने पर हिंसा दोष लगता है। युद्ध में जिस धन को जो राज कर्मचारी जीते वह उसी को मिले। पर घोड़ा, रथ, हाथी, आदि सवारी राजा के ही होंगे चाहे कोई जीते। बहुतों ने मिलकर जो सामान जीता हो उसमें से यथा योग्य सबको राजा हिस्सा बांट देवे और जीते हुए सामान में राजा का भी भाग होगा। खेती करने वाले किसान लोग पैदा किये अन्न में से दशवां, आठवां अथवा छठा भाग राजा को करदिया करें। पशु और सुवर्ण में मूल से अधिक जितना पैदा हो उसमें से पचाशवां भाग राजा को कर मिलना चाहिये। दुकान पर धरके बेचने की साधारण चीजों पर जो लाभ हो उसमें से बीशवां भाग राजा कर लेवे। मूल, फल, पुष्प, औषध, शहद, मांस, फूंस, (पूरा) ईंधन (लकड़ी,) इनके लाभ में से छठा भाग राजा कर लेवे। क्योंकि खेती करनेवाले आदि की रक्षा करना राजा का धर्म

मासिमास्येकैकं कर्म्म कुर्युरेतेनात्मोपजीविनो व्याख्याताः, नौचक्रीवन्तश्च भक्तं तेभ्यो दद्यात् पण्यं वणिग्भिरर्घापचये न देयं प्रणष्टमस्वामिकमधिगम्य राज्ञे प्रब्रूयुर्विख्याप्य राज्ञा संवत्सरं रक्ष्यमूर्ध्वमधिगन्तुश्चतुर्थं राज्ञः शेषं स्वामी रिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषु ब्राह्मणस्याधिकं लब्धं क्षत्रियस्य विजितं निर्विष्टं वैश्यशूद्रयोर्निध्यधिगमो राजधनं न ब्राह्मणस्याभिरूपस्याब्राह्मणो व्याख्यातः षष्ठं लभेतेत्येके चौरहृतमुपजित्य यथास्थानं गमयेत् कोशाद्वा दद्याद्रक्ष्यं

है। इससे प्रजा की रक्षा में राजा नित्य अधिकता से दत्तचित्त रहे। बढ़ई लुहार आदि कारीगर लोगों से तथा मज़दूर लोगों से राजा कर न लेवे किन्तु प्रत्येक महिने में एक२ दिन उनसे बेगारि में अपना काम करालेवे। नौका और गाड़ी इक्का चलाने वालों से भी कर न लेकर महिने२ में एक दिन काम करालेवे। परन्तु कारीगरादि को उस दिन अपनी पाकशाला से भोजन करावे। यदि वैश्य लोगों को मूल में घटी पड़े लाभ कुछ न हो तो राजा उन से कुछ भी कर न लेवे। यदि किसी का माल असबाब खो गया हो तो प्रजा के लोग वा राज कर्मचारी (पुलिसादि) जिनको पड़ा दीखे वे राज दरबार में जाकर हवाला करें। तब राजा उस सामान के लिये विज्ञापन दे देवे तथा डुग्गडुगिया पिटा देवे औ एक वर्ष तक उसकी रक्षा करे। पश्चात् यदि किसी का वह माल निकले तो प्रमाण मिलने पर उसको मिले। अन्यथा एक वर्ष के बाद जिसको पड़ा मिला हो उसको चौथाई देकर शेष राजा का होना चाहिये। उस माल का मालिक राजा है। चाहे किसी का हक़ समझे उसे देवे वा बेंचे वा किन्हीं को बांट देवे वा दान करदे अथवा स्वयं रखलेवे। अथवा जो धन कहीं अकस्मात् अधिक मिले वह ब्राह्मण का हो। युद्ध में जीता हुआ क्षत्रिय को मिले। सेवा वा परिश्रम से प्राप्त हुआ धन वैश्य शूद्रों का भाग है। पृथिवी में कहीं कोश (खज़ाना) निकले तो वह राजाका धन है। यदि गुणवान् धर्मनिष्ठ ब्राह्मण को कोश मिले तो राजा न लेवे। किन्तु ब्राह्मण से भिन्न को मिला कोश राजा का होगा। और कोई आचार्य यह कहते हैं कि उस ब्राह्मण के कोश से भी राजा छठा भाग ले लेवे। किसी का धन चोर ले गये हों तो चोरों से छीन कर जिसका हो उसी को राजा दिलावे। यदि चोरों का पता न लगे

बालधनमाव्यवहारप्रापणाद्वासमावृत्तेर्वा ॥२॥ वैश्यस्याधिकं कृषिवणिक्पाशुपाल्यकुसीदम् ॥ ३ ॥ शूद्रश्चतुर्थो वर्णएक जातिस्तस्यापि सत्यमक्रोधः शौचमाचमनार्थे पाणिपादप्रक्षालनमेवैके श्राद्धकर्म्म भृत्यभरणं स्वदारवृत्तिः परिचर्या चोत्तरेषां तेभ्यो वृत्तिं लिप्सेत जीर्णान्युपानच्छत्रवासःकूर्चान्युच्छिष्टाशनं शिल्पवृत्तिश्च यं चायमाश्रयते भर्तव्यस्तेन क्षीणोऽपि तेन चोत्तरस्तदर्थोऽस्य निचयः स्यादनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मन्त्रः पाकयज्ञैः स्वयं यजेतेत्येके ॥ ४ ॥

तो राजा अपने कोश (खजाने) से उतना धन उस को दिलावे कि जिसका जितना धन चोरी गया हो। नाबालिग के वा ब्रह्मचारी के धन वा रियासत को राजा तब तक रक्षा करे कि जब तक वह बड़ा सम्हालने योग्य न हो अथवा समावर्तन न करे ॥ २ ॥ पहिले कहे वेदाध्ययनादि तीन कर्मों से अधिक वैश्य के निम्न लिखित काम हैं। खेती, व्यापार, पशुपालन, (गोरक्षा) और सूद (व्याज) लेना ॥ ३ ॥ शूद्र चौथा वर्ण एकजाति है अर्थात् उपनयनादि संस्कार न होने से द्विजाति नहीं होता। उस के लिये भी सत्य बोलना क्रोध का त्याग आचमन के लिये हाथ पांव धोना, इतना ही कर्म शूद्र का है यह कोई आचार्य कहते हैं। वेदमन्त्रों को छोड़ के स्मार्त वा पौराणिक मन्त्रादि से श्राद्ध करना, स्त्रीपुत्रादि का पालन पोषण करना, अपने द्वार पर रहना, ब्राह्मणादि तीनों वर्णों की सेवा करना, उन्ही से अपने निर्वाहार्थ जीविका लिया करे। द्विजों के पुराने जूता, छाता, वस्त्र, और झाडू आदि वस्तु ले लेवे। द्विजों के चौके में बचा भोजन लेलिया करे। तथा मकान घर बनाना अथवा चित्रकारी आदि कारीगरी के कामों से जीविका करे। जिस द्विजकी सहायता शूद्र चाहे उसीको इस का भरण पोषण अपना काम लेके कर्तव्य है। उसी अपने धनहीन भी मालिक की सेवा से ही शूद्र बड़ा प्रतिष्ठित बन सकता है। उसी मालिक के लिये शूद्र अपने सर्वस्व को माने। शूद्र के लिये देवता के नाम के साथ (नमः) पद लगा लेना ही परमोत्तम मन्त्र शास्त्रानुकूल है। जैसे (शिवाय नमः। विष्णवे नमः। देव्यै नमः । गणपतये नमः। अग्नये नमः। सोमाय नमः) इत्यादि मन्त्रों द्वारा पकाये भात आदि हविष्यान्न से स्वयं होम यज्ञ शूद्र किया करे यह कोई आचार्य कहते हैं ॥ ५ ॥

सर्वे वोत्तरोत्तरं परिचरेयुरार्यानार्ययोर्व्यतिक्षेपे कर्मणः साम्यं साम्यम् ॥ ५ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

राजा सर्व्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्ज्जं साधुकारी स्यात् साधुवादी त्रय्यामान्वीक्षिक्यां चाभिविनीतः शुचिर्जितेन्द्रियो गुणवत्सहायोऽपायसंपन्नः समः प्रजासु स्याद्धितं चासां कुर्वीत, तमुपर्यासीनमधस्तादुपासीरन्नन्ये ब्राह्मणेभ्यस्तेऽप्येनं मन्येरन्, वर्णानाश्रमांश्च न्यायतोऽभिरक्षेच्चलतश्चैनान्स्वधर्म्मे एव स्थापयेद् धर्म्मस्योंऽशभाग्भवतीति विज्ञायते। ब्राह्मणं च पुरोदधीत विद्याभिजनवाग्रूपवयःशीलसंपन्नं न्यायवृत्तं तपस्विनं

सब वर्ण अपने २ से ऊपर २ वर्ण की सेवा करें जैसे साधारण मूर्ख ब्राह्मण विद्वानों की, क्षत्रिय ब्राह्मणों की, वैश्य क्षत्रियों की, और शूद्र वैश्यों की सेवा करें। क्योंकि ब्राह्मणादि और शूद्रादि का अधिक संसर्ग होने से लौट पौट हो कर दोनों के कर्म एक से हों विशेष हानि होगी ॥ ५ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में दशवां अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

ब्राह्मण को छोड़कर राजा सबका ईश्वर है। राजा अच्छे निर्दोष काम करे। सत्य और कोमल भाषण करे। तीनों वेदों की त्रयीविद्या और न्याय शास्त्र का अच्छा जानने वाला राजा हो. विनीत स्वभाव रक्खे, पवित्र रहे, जितेन्द्रिय हो, गुणवान् पुरुषों को अपना सहायक बनावे, उन्हीं से सलाह सम्मति करे, दानशील हो, प्रजाओं पर समदृष्टि रक्खे, प्रजाओं का हित किया करे, ऊपर गद्दी पर बैठे (विराजमान) उस राजा से नीचे सब प्रजा के लोग (ब्राह्मणों को छोड़कर) बैठा करें। ब्राह्मणलोग भी राजाका मान्य कियाकरें। वर्णों और आश्रमों की राजा न्यायधर्म से सदा रक्षा करे। यदि ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्यादि आश्रम अपने कर्त्तव्य से च्युत होते हों तो उनको अपने२ धर्म पर ही स्थापित करे। यदि वर्ण तथा आश्रम अधर्मस्थ हो जांय तो उस अधर्म का भाग राजा को भी लगता है यह वेद में लिखा है। अच्छी वाणी, अच्छेरूप, अच्छी अवस्था और अच्छे स्वभाव वाले, जिसका वर्त्ताव आचार विचार न्यायानुकूल धर्म युक्त हो ऐसे कुलीन तपस्वी विद्वान् ब्राह्मण

तत्प्रसूतः कर्म्माणि कुर्वीत, ब्रह्मप्रसूतं हि क्षत्रमृध्यते न व्यथत इति च विज्ञायते। यानि च दैवोत्पातचिन्तकाः प्रब्रूयुस्तान्याद्रियेत तदधीनमपि ह्येके, योगक्षेमं प्रतिजानते शान्तिपुण्याहस्वस्त्ययनायुष्यमङ्गलसंयुक्तान्याभ्युदयिकानि विद्वेषिणां संवलनमभिचारद्विषद्व्याधिसंयुक्तानि च शालाग्नौ कुर्याद् यथोक्तमृत्विजोऽन्यानि, तस्य व्यवहारो वेदो धर्म्मशास्त्राण्यङ्गान्युपवेदाः पुराणं देशजातिकुलधर्म्माश्चाम्नायैरविरुद्धाः प्रमाणं कर्षकवणिक्पशुपालकुसीदकारवः स्वे स्वे वर्गे तेभ्यो यथाधिकारमर्थान् प्रत्यवहृत्य धर्म्मव्यवस्था न्या-

को राजा गुरु नियत करे। उसकी प्रेरणा आज्ञा वा सलाह सम्मति से राज्य के प्रबन्ध सम्बन्धी सब काम किया करे। क्योंकि वेद से यह जाना गया है कि ब्राह्मण की आज्ञा प्रेरणा से चलने वाला हो क्षत्रिय राजा बढ़ता है और दुःखी वा पीड़ित नहीं होता। और जिन बातों को दैवी उत्पातों (शकुनों) के चिन्तक (जानने वाले ज्योतिषी आदि) लोग कहें उन विचारों का भी आदर करे माने। कोई आचार्य कहते हैं कि दैवोत्पात चिन्तकों के आधीन राजा रहे क्योंकि वे दैवज्ञ लोग योगक्षेम की सम्भावना होने की प्रतिज्ञा कर सकते हैं। उत्पात दीखने पर शान्तिकरण पुण्याहवाचन स्वस्ति वाचन, आयुष्यकारी और माङ्गल्य संयुक्त वेद शास्त्रोक्त आभ्युदयिक कामों को तथा शत्रुओं को दबाने के लिये मारणप्रयोग अथवा उनको व्याधिरोग लगा देने के काम स्थापित किये यज्ञशाला के अग्नि में करे करावे। और राजा के ऋत्विज् लोग शास्त्रोक्त अन्य काम भी शत्रुओं को दबाने तथा अपने राजा की रक्षा के लिये करें। वेद, धर्मशास्त्र, वेद के छः अङ्ग चार उपवेद, और इतिहास पुराण इन ग्रन्थों के अनुकूल राजा का व्यवहार होना चाहिये। देश धर्म, जातिधर्म, और कुल धर्म ये वेदादि शास्त्रों से विरुद्ध न होने पर प्रमाण कोटि में माने जायंगे। किसान, वैश्य, पशुपालक (गोपाल जाति) सूद लेनेवाले और सुनार लुहार आदि कारीगर इन सब को अपने२ वर्ग में स्थापित रक्खे। अर्थात् अपने [illegible] कर्म को छोड़कर कोई अन्य वर्ग में सम्मिलित होने की चेष्टा न करे। उन२ की [illegible] शक्ति के अनुसार धनादि पदार्थ लेकर राजा धर्म

याधिगमे तर्कोऽभ्युपायस्तेनाभ्यूह्य यथास्थानं गमयेद् विप्रतिपत्तौ त्रयीविद्यावृद्धेभ्यः प्रत्यवहृत्य निष्ठां गमयेत्तथाह्यस्य निःश्रेयसं भवति, ब्रह्म क्षत्रेण संपृक्तं देवपितृमनुष्यान् धारयतीति विज्ञायते, दण्डोदमनादित्याहुस्तेनादान्तान् दमयेद्वर्णाश्रमाश्च स्वकर्म्मनिष्ठाः प्रेत्य कर्मफलमनुभूय ततः शेषेण विशिष्टदेशजातिकुलरूपायुःश्रुतवित्तवृत्तसुखमेधसो जन्म प्रतिपद्यन्ते, विष्वञ्चो विपरीता नश्यन्ति तानाचार्योपदेशो दण्डश्च पालयते तस्माद्राजाचार्यावनिन्द्यावनिन्द्यौ॥१॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

की व्यवस्था करे। न्याय की बात खोजने के लिये तर्क ही मुख्य उपाय है। उस तर्क से ऊहा करके राजा यथोचित व्यवस्था करे। यदि तर्क से भी किसी विषय का निर्णय न हो किन्तु विरोध ही सब पक्षों में दीख पड़े तो तीनों वेद सम्बन्धी त्रयी विद्या में बड़े बूढ़े विद्वान् ब्राह्मणों के निकट जाकर व्यवस्था मांगे अर्थात् उनकी राय से फैसला कर देवे। ऐसा करने से राजा का परम कल्याण होता है। क्षत्रत्व से मिला हुआ ब्रह्मत्व—देव, पितर, और मनुष्यों को धारण करता है यह वेद से जाना गया है। दमन (वशी) करने अर्थ से दण्ड शब्द बना है ऐसा आचार्य लोग कहते हैं। उस दण्ड के द्वारा राजा अदान्तों (अपने आपेसे बाहर होने वाले दुराचारियों) को वशीभूत करे। ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्यादि आश्रम अपने २ धर्म कर्म में तत्पर रहते हुए मरणानन्तर अपने कर्मों से स्वर्ग भोग फल को दीर्घ कालतक अनुभव करके शेष बचे पुण्य के बल से उत्तम२ देश, जाति कुलों में सुरूपवान्, दीर्घायुवाले, विद्यावान्, श्रीमान्, सदाचारी, बुद्धिमान् और सुख के सामान से युक्त हुए जन्म लेते हैं। सब वर्णाश्रमों से विपरीत दुराचारादि में चलने वाले नष्ट होते दुःख भोगते हैं। उनकी गुरु लोगों वा आचार्यों का (धर्मशास्त्रोक्त) उपदेश और राजा का दण्ड रक्षा करता है। इससे राजा और वेद के विद्वान् आचार्यों की निन्दा कदापि न करे ॥ १ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में ग्यारहवां अध्याय पूरा हुआ ॥११।

शूद्रो द्विजातीनभिसंधायाभिहत्य च वाग्दण्डपारुष्याभ्यामङ्गेन मोच्यो येनोपहन्यादार्यस्त्र्यभिगमने लिङ्गोद्धारः स्वग्रहरणं च गोप्ता चेद् वधोऽधिकोऽथास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणमुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेद आसनशयनवाक्पथिषु समप्रेप्सुर्दण्ड्यः शतम् ॥१॥ क्षत्रियो ब्राह्मणाक्रोशे दण्डपारुष्ये द्विगुणमध्यर्द्धं वैश्यो ब्राह्मणस्तु क्षत्रिये पञ्चाशत्तदर्धं वैश्ये न शूद्रे किंचित्,ब्राह्मण राजन्यवत् क्षत्रियवैश्यावष्टापाद्यं स्तेयकिल्विषं शूद्रस्य द्विगुणोत्तराणीतरेषां प्रतिवर्णं विदुषोऽतिक्रमे दण्डभूयस्त्वं

शूद्र पुरुष यदि ब्राह्मणादि द्विजों के निकट आके वा संकेत करके गाली देवे धमकावे वा लकड़ी आदि से मारे पीटे तो जिस अङ्ग से वह अपराध करे राजा उसी अंग को कटवा देवे। यदि द्विजों की स्त्रियों के साथ शूद्र व्यभिचार करे तो लिङ्गेन्द्रिय को कटवा देवे और उस शूद्र का धनादि पदार्थ छीन लेवे (जुर्माना करदे) यदि वह अपनी रक्षा करता हो तो राजा वध करा देवे। यदि समझ पूर्वक वेद को सुनता हो तो शीशा और जस्ता पिघला कर कानों में डलवा देवे। यदि वेद का स्वयं उच्चारण करे तो शूद्र की जिह्वा कटवादेवे यदि शूद्र ने वेदों को कण्ठस्थ किया हो तो शिर कटवा के मरवा डाले। यदि आसन, शय्या (सेज,) वाणी बोलने और मार्ग में चलने की बराबरी ब्राह्मणादि के साथ शूद्र करे तो राजा उस पर सौ रुपये दण्ड (जुर्माना) करे ॥१॥ यदि क्षत्रिय ब्राह्मण को गाली दे वा धमकावे, निन्दा करे तो दो सौ रुपये दण्ड (जुर्माना) करे। यदि वैश्य, ब्राह्मण की निन्दादि करे तो १५०) डेढ़ सौ रु० दण्ड (जुर्माना) करे। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय की निन्दादि करे तो ५०) रु० दण्ड, वैश्य की निन्दादि करे तो २५) रु० दण्ड देवे और शूद्र की निन्दादि करे तो कुछ भी दंड राजा न देवे। क्षत्रिय तथा वैश्य यदि शूद्र की निन्दादि करें धमकावें तो ब्राह्मण और राजा के तुल्य उन को भी कुछ दण्ड न देवे। चोरी के अपराध में जितना (अठगुणा) शूद्र को दोष लगता है तब १६ गुणा वैश्य को ३२ गुणा क्षत्रिय को और ६४ गुणा दोष ब्राह्मण को लगता है। विद्वान् का तिरादर करने पर शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण इन को क्रमशः अधिक २ दंड हो-

फलहरितधान्यशाकादाने पञ्चकृष्णलमल्पे पशुपीडिते स्वामिदोषः पालसंयुक्ते तु तस्मिन् पथि क्षेत्रेऽनावृते पालक्षेत्रिकयोः पञ्च माषा गवि षडुष्ट्रे खरेऽश्वमहिष्योर्दशाजाविषु द्वौ द्वौ सर्वविनाशे शतं, शिष्टाकरणे प्रतिषिद्धसेवायां च नित्यं चेलपिण्डादूर्ध्वं स्वहरणञ्च,गोऽग्न्यर्थे तृणमेधान्वीरुद्वनस्पतीनां च पुष्पाणि स्ववदाददीत, फलानि चापरिवृतानां कुसीदवृद्धिर्धर्म्या विंशतिः पञ्च माषकी मासं नातिसांवत्सरीमेके चिरस्थाने द्वैगुण्यं प्रयोगस्य मुक्ताभिर्न वर्द्धते दित्सतोऽवरुद्धस्य च चक्रकालवृद्धिः कारिताकायिकाऽधिभो-

---

ना चाहिये। अर्थात् शूद्र से अधिक वैश्य को और सब से अधिक दंड ब्राह्मण को हो। फल, हरा धान्य और शाकों के चुराने पर चार रत्ती सुवर्ण का दंड (जुर्माना) करे। पशुओं के द्वारा खेत की थोड़ी हानि हो तो पशु के मालिक का दोष होगा। यदि चरवाहा (ग्वालिया) साथ में हो तो ग्वालिया का दोष होगा। यदि मार्ग के पास २ खेत हो और खेत का बाड़ा न खिंचा हो तो खेत के मालिक और ग्वालिया दोनों का अपराध माना जायगा। यदि गौ वा बैल ने खेत को उजाड़ा हो तो पांच मासे, ऊंट से उजड़ा हो तो छः मासे, गधा, घोड़ा, और भैंसी ने खेत उजाड़ा हो तो दश २ मासे और भेड़ बकरियों ने खेत चर लिया हो तो दो दो मासे सुवर्ण का दंड (जुर्माना) पशु के मालिक पर होना चाहिये। यदि सब खेत बिलकुल खा लिया हो तो सौ १०० मासे सुवर्ण का राजा दंड देवे। यदि ब्राह्मणादि अपना २ शास्त्रोक्त कर्म न करें और निषिद्ध हिंसा चोरी आदि कर्म करें तो निर्वाहमात्र भोजन वस्त्र छोड़के उनका शेष धनादि हरलेना चाहिये। गौ और अग्नि की रक्षा के लिये घास, ईंधन, लता, और वनस्पतियों की फूल पत्ती अपने पदार्थ के तुल्य ले आवे उस में अपराध वा चोरी नहीं है। जिस बाग बगीचे का बाड़ा न खिंचा हो उन वृक्षों के फल तोड़ लाने में भी दोष नहीं है। मूलका बीशवां हिस्सा सूद लेना धर्मानुकूल है (इस में प्रति मास १) सैकड़ा सूद पड़ेगा) महिने २ सूद लेतो पांच मासे सुवर्ण सैकड़ा पर लेवे। अधिक नहीं। कोई आचार्य कहते हैं कि वार्षिक सूद नियत करके लिया करें। यदि ऋणी पर बहुत काल तक सूद सहित धन रहे तो जितना मूल धन दिया हो उस से द्विगुण तक सब लेवे अधिक नहीं। वृद्धियों के देते जाने पर धन का कर्जा नहीं बढ़ता है। यदि नियत सूद न चुकाता जाय किन्तु रोके

गाश्च कुसीदं पशूपजलोमक्षेत्रशतवाह्येषु नातिपञ्चगुणमजडापौगण्डधनं दशवर्षभुक्तं परैः सन्निधौ भोक्तुरश्रोत्रियप्रव्रजितराजन्यधर्मपुरुषैः पशुभूमिस्त्रीणामनतिभोगे रिक्थभाजि ऋणं प्रतिकुर्युः । प्रातिभाव्यवणिक्शुल्कमद्यद्यूतदण्डान् पुत्रा नाध्याभवेयुः । निध्यं वाधियाचितावक्रीताधयो नष्टाः सर्वा न निन्दिता न पुरुषापराधेन, स्तेनः प्रकीर्णकेशो मुसली राजानमियात् कर्म्म चक्षाणः पूतो वधमोक्षाभ्यामघ्नन्ने-

---

रहे तो सूद पर सूद लेने का सिलसिला चलकर चक्र वृद्धि कहाती है । ऋणी ने जो स्वयं नियत की हो कि मैंने इतना लिया उस पर इतना अधिक दूंगा यह कारिता वृद्धि है । जितने अधिक काल ऋण रहे उतने काल बराबर सूद बढ़ता ही जाय, मूल से दूना तक लेने का नियम न रहे यह कालवृद्धि (कालिका) कहाती है । जिस सूद के बदले शरीर से नियत दिनों तक कोई काम कर देना ठहरे वह कायिका वृद्धि है । और जो किसी वस्तु के नियत काल तक वर्त्तलेने से दी जाय वह अधिकभोगा वृद्धि कहाती है । ये सब वृद्धि (सूद लेने के तरीके) निकृष्ट (बुरी) हैं । पशु (भेड़ा आदि के) लोम-ऊन और सैकड़ों बार ऋणी का खेत जोत लेने से पांच गुण से अधिक वृद्धि (सूद) नहीं होता । जो पुरुष बौरा (पागल) वा अज्ञान (नाबालिग) न हो किन्तु अपने होश में ठीक हो उस का खेत आदि दश वर्ष तक जिस के अधिकार में रहे आगे उसी का होजाता है । परन्तु वेदपाठी, संन्यासी, राजपुरुष और धर्मनिष्ठ पुरुष जिसके पदार्थ को दश वर्ष भी भोगे तो भी उन का नहीं होता । पशु भूमि और स्त्री का अतिभोग अर्थात् हानि न होने से निमित्त कुटुम्बी वा अन्य मेली लोग ऋणदाता के ऋण को चुका देवें । जामिनी, वाणिज्य का कर, मद्य और द्यूत (जुआ) सम्बन्धी दण्ड पिता के अभाव में पुत्रों पर नहीं होना चाहिये । कोश का धन, मांगा हुआ, और खरीदा हुआ वस्तु ये सब जिस को सौंपे जायं उस पुरुष का अपराध न होने पर नष्ट हो जायं अर्थात् खोजावें तो जिसे मिलें वह अपराधी नहीं माना जायगा । जिस ब्राह्मण ने सुवर्ण चुराया हो वह अपने शिर के बाल खोल कर मूसल हाथ में लेके राजा के पास अपना अपराध कहता हुआ जावे । राजा के मारने वा छोड़देने से अपराध

नस्वी राजा न शारीरो ब्राह्मणदण्डः कर्म्मवियोगविख्यापन-
विवासनाङ्ककरणान्यप्रवृत्तौ प्रायश्चित्ती स चौरसमः, स-
चिवो मतिपूर्वं प्रतिगृहीतोऽप्यधर्म्मसंयुक्ते पुरुषशक्त्यपरा-
धानुबन्धविज्ञानाद्दण्डनियोगोऽनुज्ञानं वा वेदवित्समवाय-
वचनाद्वेदवित्समवायवचनात् ॥ २ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

विप्रतिपत्तौ साक्षिणि मिथ्यासत्यव्यवस्था बहवः स्यु-
रनिन्दिताः स्वकर्म्मसु प्रात्ययिका राज्ञां च निष्प्रीत्यनभितापा-
श्चान्यतरस्मिन्नपि शूद्रा ब्राह्मणस्त्वब्राह्मणवचनादनुरो-
ध्योऽनिबन्धश्चेन्नासमवेताः पृष्टाः प्रब्रूयुरवचनेऽन्यथावचने च

छूट जाता है। राजा यदि न मारे तो अपराधी होता है। ब्राह्मण को मार-
डालने का दण्ड नहीं होना चाहिये। इसलिये राजा को चाहिये कि उसे
ब्राह्मण के वेदाध्ययनादि कामों से वियुक्त करे, महापातकी होने का विज्ञा-
पन देदे, वा देश निकाले का दण्ड देवे अथवा दाग देकर सुवर्ण की चोरी का
चिन्ह करदेवे। यदि राजा इन में से कुछ भी न करे तो चोर के समान अ-
पराधी होता है। मन्त्री को विचार पूर्वक परीक्षा करके नियत करने पर भी
पीछे अधर्म संयुक्त प्रतीत हो तो पुरुष शक्ति के अपराध का परिणाम सोच
कर मन्त्री को भी दण्ड देवे। अथवा वेदवेत्ताओं के सम्बन्धी वचन वा आज्ञा
से उस को दण्ड न दे कर मन्त्री पद से च्युत करने की आज्ञा देवे॥ २॥
यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में बारहवां अध्याय पूरा हुआ॥१२॥

किसी मामले में परस्पर विरुद्ध दोनों पक्ष प्रतीत होते हों तो झूठ सत्य
का निर्णय साक्षी पर जाने। वे साक्षी लोग अपने २ धर्म कर्म में श्रद्धा विश्वास
रखने वाले लोक में प्रतिष्ठित हों निन्दित न हों। राजा के साथ जिन का न प्रेम हो
न डरते हों तथा वादी प्रतिवादी दोनों में किसी से जिनका विशेष मेल न हो न
विरोध हो ऐसे बहुत मनुष्य साक्षी हों। किसी पक्ष में भले ही शूद्र भी साक्षी
हों। ब्राह्मण से भिन्न साक्षी के वचन की अपेक्षा ब्राह्मण साक्षी के कथन का
विशेष अनुरोध करे। यदि साक्षियों में परस्पर मेल हो तो पृथक् २ पूछे बिना
साक्षी लोग कुछ न कहें। साक्षी लोग असमात में कुछ भी न कहें वा मिथ्या

दोषिणः स्युः, स्वर्गः सत्यवचने विपर्यये नरकः ॥ १ ॥ अनिबन्धैरपि वक्तव्यं पीडाकृते निबन्धः प्रमत्तोक्ते च साक्षिसभ्यराजकर्तृषु दोषो धर्म्मतन्त्रपीडायां शपथैर्नैके सत्यकर्म्मणा तद्देवराजब्राह्मणसंसदि स्यादब्राह्मणानां पञ्च पश्वनृते साक्षी दश हन्ति गोऽश्वपुरुषभूमिषु दशगुणोत्तरान् सर्वं वा भूमौ हरणे नरको भूमिवदप्सु मैथुनसंयोगे च पशुवन्मधुसर्पिषो, गोवद्वस्त्रहिरण्यधान्यब्रह्मसु यानेष्वश्ववन्मिथ्यावचने याप्यो दण्डयश्च साक्षी नानृतवचने दोषो जीवनं चेत्तदधीनं नतु पापीयसो जीवनं राजा प्राड्विवाको ब्राह्मणो वा शास्त्रवित्।

कहें तो दोनों हालत में दोषी होते हैं। सत्य बोलने पर साक्षियों को स्वर्ग और मिथ्या बोलने से नरक प्राप्त होता है ॥१॥ कुछ प्राप्ति का निबन्ध न होने पर भी साक्षी ठीक देनी चाहिये। निबन्ध, पीड़ा (दुःख) करने वाला होता है। प्रमाद से मिथ्या कहने से राजसभा में अन्याय हो तो साक्षी सभासद्, राजा और अधर्म करने वाला ये चारो अपराधी होते हैं। किन्हीं आचार्यों का मत है कि धर्म को धक्का लगने का भय हो तो शपथ (कसम) से निश्चय करे। सत्य धर्म कर्म की कसम ब्राह्मण से करावे सो देवस्थान राजसभा और ब्राह्मणों की सभा में शपथ करावे। ब्राह्मण से भिन्न साक्षियों से कहे कि-जो पुरुष पशुओं विषयक गवाही में झूठ बोलता है वह अपने कुल की पांच हत्या का दोषी होता, गौ के विषय में झूठ बोलने पर दश हत्या का दोषी, घोड़े के विषय में झूठ बोलने पर सौ हत्या का, मनुष्य के विषय में हजार हत्या का, और भूमि के विषय में झूठ बोलने पर दशहजार हत्या का दोषी होता है। अथवा भूमि विषयक झूठ में सब कुटुम्ब की हत्या का दोषी होता। भूमि के चुराने पर नरक होता और भूमि विषयक झूठ गवाही के तुल्य जल के विषय में और मैथुन संयोग के विषय में मिथ्या गवाही देने से दोष लगता है। शहद और घी के विषय में पशुओं के तुल्य,वस्त्र, सुवर्ण, अन्न, और वेद विषय में गौ के तुल्य, सवारियों (रथादि) के विषय में घोड़े के तुल्य दोष लगता है। यदि गवाह मनुष्य का मिथ्या कहना सिद्ध हो जावे तो उसे निकाल देवे और दण्ड करे। यदि उस मनुष्य की गवाही देने से ही जीविका हो तो मिथ्या भाषण में भी राजदण्ड का अपराधी नहीं है। परन्तु ऐसे पापी गवाह की जीविका भी वास्तव में जीविका नहीं है । राजा (हाकिम) वकील,

प्राड्विवाको मध्यो भवेत्,संवत्सरं प्रतीक्षेत प्रतिभार्यां धेन्वनडुत्स्त्रीप्रजननसंयुक्तेषु शीघ्रमात्ययिके च सर्वधर्म्मेभ्यो गरीयः प्राड्विवाके सत्यवचनं सत्यवचनम् ॥ २ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

शावमाशौचं दशरात्रमनृत्विग्दीक्षितब्रह्मचारिणां सपिण्डानामेकादशरात्रं क्षत्रियस्य द्वादशरात्रं वैश्यस्यार्द्धमासमेकमासं शूद्रस्य तच्चेदन्तः पुनरापतेत्तच्छेषेण शुद्ध्येरन्, रात्रिशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिर्गोब्राह्मणहतानामन्वक्षं राजक्रोधाच्चयुद्धे प्रायोनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बन्धनप्रपतनैश्चे-

---

और शास्त्रों का जानने वाला ब्राह्मण ये लोग किसी धनी से घूंस लेकर मिथ्या न्याय न करें। अदालत में वकील मध्यस्थ हो। किसी स्त्री का मुकद्दमा हो और उसका अपराधिनी होना सिद्ध न हो तो एक वर्ष तक उसकी निगरानी करे। गौ, बैल, स्त्री के सन्तानोत्पत्ति (व्यभिचार से हो) और अत्याचार सम्बन्धी मुकद्दमों का शीघ्र फैसला करना अन्य सब धर्मों से श्रेष्ठ है। अदालत में सत्य बोलने का विशेष भार वकीलपर होना चाहिये अर्थात् सत्य वक्ताओं में प्रसिद्ध परीक्षित पुरुष वकालत करने के लिये राजनियम से नियत होने चाहिये ॥ २ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में तेरहवां अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

अथ मृतक अशुद्धि का विचार दिखाते हैं। ऋत्विज, दीक्षित (जिन ने यज्ञ में दीक्षा ली हो) और ब्रह्मचारी इन को छोड़के अन्य सामान्य मनुष्य लोग दश दिन तक मृत सूतक मानें। अन्य सपिण्ड के लोग ग्यारह दिन, क्षत्रिय बारह दिन, वैश्य पन्द्रह दिन और एक मास तक शूद्र लोग मरण सूतक मानें। यदि एक के मरने की शुद्धि होने से पहिले उसी कुटुम्ब का अन्य कोई मरजावे तो पहिले के साथ ही अगले की भी शुद्धि कर लेवें। यदि पहिले की शुद्धि में एक रात्रि भर बाकी हो तो दो दिन में शुद्धि करें। यदि पहिले सूतक के अन्तिम दिन प्रातःकाल द्वितीय मृत्यु हो तो तीन दिन अशुद्धि मानें। जो पुरुष गौ-तथा ब्राह्मण ने मार डाले हों, जो गाड़ी से दब के मरे हों, जो राजाओं के क्रोध से हुए युद्ध में कट के मरे, जो प्रायः नाशक—शस्त्रों से, अग्नि में जल कर, विष खाकर, जल में डूब कर, फांसी लगा कर, वा किसी ऊंचे मकाना-

स्वच्छन्दानां पिण्डनिवृत्तिः सप्तमे पञ्चमे वा, जननेऽप्येवं मातापित्रोस्तन्मातुर्वा गर्भमाससमा रात्रीः स्रंसने गर्भस्य त्र्यहं वा श्रुत्वा चोर्ध्वं दशम्याः पक्षिण्यसपिण्डे योनिसंबन्धे सहाध्यायिनि च सब्रह्मचारिण्येकाहं श्रोत्रिये चोपसंपन्ने प्रेतोपस्पर्शने दशरात्रमाशौचमभिसंधाय चेदुक्तं वैश्यशूद्रयोरार्तवीर्वा पूर्वयोश्च त्र्यहं वाऽऽचार्यतत्पुत्रस्त्रीयाज्यशिष्येषु चैवमवरश्चेद्वर्णः पूर्वं वर्णमुपस्पृशेत् पूर्वो वाऽवरं तत्र शवोक्तमाशौचं, पतितचण्डालसूतिकोदक्याशवस्पृष्टितत्स्पृष्ट्युपस्पर्शने सचैलोदकोपस्पर्शनाच्छुध्येच्छवानुगमे च शुनश्च यदुपहन्यादित्येके,उदकदानं सपिण्डैः कृतचूडस्य तत्स्त्रीणां

दि से गिर कर अपनी इच्छा पूर्वक मरे हों उन को सातवें वा पांचवें वर्ष पिण्ड देना निवृत्त हो जाता है अर्थात् आगे उन के नाम से पिण्ड नहीं देना चाहिये। जन्म सूतक में भी इसी मरण सूतक के समान शुद्धि जानो। सन्तानोत्पत्ति में माता पिता दोनों को वा केवल माता को ही अशुद्धि लगती है। गर्भपात होने पर जितने महीनों का गर्भ गिर जाय उतने दिन में शुद्धि करे। विदेश में दश दिन बाद सूतक जान पड़े तो तीन दिन में शुद्धि करे। यदि सपिण्ड से भिन्न कुटुम्बी वा नातेदारों का सूतक दश दिन बाद सुने तो दो दिन एक रात में शुद्धि करे। और साथ २ पढ़ने वाले वा साथ में जो ब्रह्मचारी रहा हो तथा श्रोत्रिय (वेदपाठी) के स्वर्गवास में एक दिन रात में शुद्धि करे। जान कर मुर्दा का स्पर्श करने वाला दश दिन सूतक माने। वैश्य शूद्रों का सूतक पूर्व में कह चुके हैं। रजस्वला स्त्रियां का तथा सूतकी ब्राह्मण क्षत्रियों का स्पर्श करके तीन दिन में शुद्धि करे। गुरु,गुरुपुत्र, गुरुपत्नी,यजमान और शिष्य के देहान्त में भी तीन दिन सूतक माने। सूतक में नीच वर्ण का पुरुष उत्तम वर्ण का वा उत्तम वर्ण नीच का स्पर्श करे तो शव सूतक के समान अशुद्धि जानो। पतित (ब्रह्महत्यादि पातकी) चाण्डाल, सूतिका स्त्री, रजस्वला, मुर्दा का स्पर्श करने वाला और उस स्पर्श कर्त्ता का छूने वाला, इन पतितादि का स्पर्श करने पर सचैल स्नान करने पर शुद्ध होता है मुर्दा के संग जाने और हाथ से कुत्ते को मारने पर भी सचैल स्नान करे यह किन्हीं आचार्यों का मत है। जिस का चूडाकर्म संस्कार हो गया हो उस के मरने

चानतिभोगएके प्रदत्तानामधःशय्यासनिनो ब्रह्मचारिणः सर्व्वे न मार्ज्जयेरन्न मांसं भक्षयेयुराप्रदानात्प्रथमतृतीयपञ्चमसप्तमनवमेषूदकक्रिया वाससां च त्यागः, अन्त्येत्वन्त्यानां दन्तजन्मादि मातापितृभ्यां तूष्णीं माता, बालदेशान्तरितप्रव्रजितासपिण्डानां सद्यः शौचं, राज्ञां च कार्यविरोधाद् ब्राह्मणस्य च स्वाध्यायानिवृत्त्यर्थं स्वाध्यायानिवृत्त्यर्थम् ॥१॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ श्राद्धममावास्यायां पितृभ्यो दद्यात्, पञ्चमीप्रभृति वाऽपरपक्षस्य यथाश्रद्धं सर्वस्मिन्वा द्रव्यदेशब्राह्मणसन्निधाने

पर कुटुम्बी सपिण्ड के लोग जलदान करें। बिना विवाही कन्याओं को जलदान का अधिकार नहीं यह किन्हीं का मत है। कन्यादान हो जाने पर मरें तो जल दिया जाय। सूतक मानने वाले सब लोग दश दिन तक नीचे पृथिवी पर सोवें, बैठें, ब्रह्मचारी रहें, स्नान तथा मार्जनादि शुद्धि न करें, और मांस न खावें कि जब तक प्रथम, तृतीय, पञ्चम, सप्तम और नवम दिनों में जलदान करें। और उसी दिन वस्त्रों का भी त्याग करें। शूद्रादि नीचों की शुद्धि के अन्तिम (महिने के पूरे होने पर) दिन वस्त्रों का त्याग और जलदान होना चाहिये। दांत उगने से लेकर चूडाकर्म तक बालक के मरने पर माता पिता दोनों वा केवल माता अशुद्धि मानने के समय मौन रहें। अन्य कुटुम्बी लोग तत्काल शुद्धि करलें। देशान्तर में सपिण्ड का बालक, संन्यासी और सात पीढ़ी से ऊपर कुटुम्बी इन सब के मरने पर तत्काल ही शीघ्र शुद्धि करलें। राजकार्यों की हानि न होने के अनुरोध से राजा को और नित्य नियम से वेदाध्यायन करने वाले ब्राह्मण को वेदाध्ययन का नियम न बिगड़ने के विचार से तत्काल शुद्धि कर लेनी चाहिये ॥ १ ॥

यह गौतमीय धर्म शास्त्र के भाषानुवाद में चौदहवां अध्याय पूरा हुआ ॥१४॥

अब श्राद्ध का विचार दिखाते हैं। प्रत्येक अमावस्या को पितरों के लिये पार्वण श्राद्ध विधि से पिण्ड देने चाहियें। वा कृष्ण पक्ष की पञ्चमी से लेकर श्राद्ध करे। अथवा श्राद्ध का सामान, श्राद्ध के योग्य देश (स्थान) और विद्वान् रूप व ब्राह्मण जब मिल जांय तभी श्रद्धानुसार सभी तिथियों में श्राद्ध करे।

वा कालनियमः शक्तितः प्रकर्षे गुणसंस्कारविधिरन्नस्य नवावरान् भोजयेदयुजो यथोत्साहं वा ब्राह्मणान् श्रोत्रियान् वाग्रूपवयःशीलसंपन्नान् युवभ्यो दानं प्रथममेके पितृवन्न च तेन मित्रकर्म्म कुर्यात्, पुत्राभावे सपिण्डा मातृसपिण्डाः शिष्याश्च दद्युस्तदभावे ऋत्विगाचार्यौ ॥ तिलमाषव्रीहियवोदकदानैर्मासं पितरः प्रीणन्ति, मत्स्यहरिणरुरुशशकूर्म्मवराहमेषमांसैः संवत्सरं, गव्यपयःपायसैर्द्वादश वर्षाणि,वार्ध्रीणसेन मांसेन कालशाकलोहखड्गमांसैर्मधुमिश्रैश्चानन्त्यम् ॥१॥ न भोजयेत् स्तेनक्लीबपतितनास्तिकतद्वृत्तिवीरहाग्रेदि-

---

काल का नियम और अन्न को विशेष शुद्धि सावधानी से बनाने का विचार तो विशेष कर मानना चाहिये। श्राद्ध में नौ से कम १। ३। ५। ७ ऐसे विषम संख्या वालों को वा वाणी,रूप,अवस्था,और स्वभाव जिनके अच्छे हों ऐसे वेदपाठी अनियतब्राह्मणों को अपनी शक्ति उत्साह के अनुसार भोजन करावे। कोई आचार्य कहते हैं कि जो युवावस्था में मरे हों उनके नाम के ब्राह्मणों को पहिले जिमावे। जिन ब्राह्मणों का श्राद्ध में पूजन करे उनके साथ मित्रवत् बराबरी का व्यवहार कभी न करे किन्तु उनका सर्व पूज्यमाना करे। जिन के कोई पुत्र न हो उन के लिये अपने सपिण्डी वा माता के सपिण्डी अथवा शिष्य लोग श्राद्ध करें। यदि इन में भी कोई न हो तो ऋत्विक् वा गुरु उनका श्राद्ध करें। तिल माष (उड़द) धान, जौ और जल से किये श्राद्ध से एक मास तक पितर तृप्त होते, मछली, हिरण, रोज, शश (खरगोश,) कछुआ, भैंसा, और मेढ़ा इनके मांस से एक वर्षतक, गौ के दूध, पायस (खीर) और बड़े२ कानों वाले बकरे के मांस से बारह वर्षतक, उस २ ऋतु के शाक, लाल बकरा, गैंडा, इनके शहद मिले मांस के पिण्डों से अनन्त कालतक पितरों की तृप्ति होती है ॥ १ ॥ (जिन द्विज लोगों के लिये मांस खाने का निषेध है उनके लिये मांस के पिण्ड देने का भी निषेध ही जानो। क्योंकि (यदन्नःपुरुषोभवतितदन्नास्तस्य देवताः) जिस२ अन्न को जो२ खाता हो वही अपने२ देवों तथा पितरों को देवे यह परम सिद्धान्त है। इस के अनुसार (निषेध होने पर भी) जो मांसाहारी हैं उन्हीं को युगान्तरों में भी मांस पिण्ड देने का विधान जानो। और कलि में तो सभी के लिये मांस के पिण्डों का निषेध ही है) चोर, नपुंसक, नास्तिक, नास्तिकता के कामों से जीविका करनेवाला, पतित, वीर पुरुष की

धिषूदिधिषूपतिस्त्रीग्रामयाजकाजपालोत्सृष्टाग्निमद्यपकुचर-कूटसाक्षिप्रातिहारिकानुपपतिर्यस्य च कुण्डाशी सोमविक्रय्य-गारदाही गरदावकीर्णिगणप्रेष्यागम्यागामिहिंस्रपरिवित्ति-परिवेत्तृपर्याहितपर्याधातृत्यक्तात्मदुर्बलाः कुनखिश्यावदन्त-श्वित्रिपौनर्भवकितवाजपराजप्रेष्यप्रातिरूपकशूद्रापतिनिरा-कृतिकिलासिकुसीदिवणिक्शिल्पोपजीविज्यावादित्रतालनृ-त्यगीतशीलान् पित्राचाकामेन विभक्तान् शिष्यांश्चैके संगोत्रांश्च ॥२॥

हत्या करनेवाला, जिसके मौजूद होते ही स्त्री ने अन्य पुरुष करलिया हो, वा जिसने अन्य की विवाहिता स्त्री को रखलिया हो, स्त्री को और गांवभर के मनुष्यों को एक साथ यज्ञ करानेवाला, भेड़ बकरी पालनेवाला, जिसने स्थापन किये अग्नि को त्यागा हो, मद्य पीनेवाला, जिसका चाल चलन अच्छा न हो, झूठ गवाही देनेवाला, जिसकी स्त्री का दूसरा जार पति हो, कुंडे में भोजन करने-वाला, यज्ञ में सोम बेचने वाला, घर में आग लगाने वाला, विष देनेवाला, ब्रह्मचारी होकर जो व्यभिचारकरे. सभा का नौकर, अगम्या स्त्री से गमन कर-नेवाला, हिंसक, ज्येष्ठ भाई से पहिले जो अपना विवाह करे वा अग्निहोत्र लेवे वह, और उसका जेठा भाई, जो सब ऊंच नीचों से सब प्रकार का दान लेवे, जो सब वेश्यादि नीच स्त्रियों से भी व्यभिचार करे, जिसने अपने शरणा-गतों वा दुर्बल अनाथ पुत्रादि को त्यागा हो, जिसके नख विगड़े हों, दांत काले हों, श्वेतकुष्ठी, जो अन्य की स्त्री में पैदा हुआ हो, जुवारी, बकरियों का पालने वाला, राजा का नौकर, बहुरुपिया, शूद्रा स्त्री का पति, जिसका अनादर खण्डन होता हो, किलासि (एक प्रकार का कुष्ठी.) सूद लेनेवाला, पंसारी आदि की दुकान करने वाला, कारीगर, धनुषवाण चलाने-बाजे ताल बजाने-नाचने और गाने के स्वभाववाला, पिता की आज्ञा वा इच्छा के विना जिनने विभाग (बांट) किया हो ऐसे उक्तप्रकार के चोरी आदि काम करने वाले ब्राह्मणों को श्राद्ध में भोजन न करावे। और कोई आचार्य कहते हैं कि अपने गोत्र के लोगों और अपने शिष्यों को भी श्राद्ध में भोजन न करावे ॥२॥

भोजयेदूर्ध्वं त्रिभ्यो गुणवन्तम् ॥३॥ सद्यः श्राद्धी शूद्रा तल्पगस्तत्पुत्रपुरीषे मासं नयति पितृंस्तस्मात्तदहर्ब्रह्मचारी स्यात्,श्वचण्डालपतितावेक्षणे दुष्टं तस्मात् परिश्रिते दद्यात्, तिलैर्वा विकिरेत्, पङ्क्तिपावनो वा शमयेत्, पङ्क्तिपावनाः षडङ्गविज्ज्येष्ठसामगस्त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णः पञ्चाग्निः स्नातको(मन्त्रब्राह्मणविद्)धर्म्मज्ञो ब्रह्मदेयानुसंतानइति हविःषु चैवं दुर्बलादीन् श्राद्धएवैके श्राद्धएवैके ॥ ४ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

तीनसे ऊपर पांच वा सात सुपात्रों को अथवा इतने न मिलें तो एक ही गुणवान् तपस्वी विद्वान् धर्मात्मा को भोजन करावे ॥३॥ यदि श्राद्ध करने वाला उसी दिन वेश्यादि शूद्रा स्त्री से संयोग करे तो उस शूद्रा से होने वाले पुत्रों की विष्ठा में श्राद्ध कर्त्ता के पितर एक मास तक बसते हैं। इस से श्राद्धकर्त्ता पुरुष श्राद्ध के दिन ब्रह्मचारी रहे। कुत्ता, चाण्डाल, और पतित लोग श्राद्धान्न को देखलें तो दूषित हो जाता है। इस से घेरी हुई एकान्त जगह में श्राद्ध के भोजन और पिण्डदान करे। वा श्राद्ध स्थान के सब ओर तिल बिखेर देवे अथवा पङ्क्तिपावन ब्राह्मण श्राद्ध में हो तो अन्यकृत दोष को शान्त कर देता। १-वेद के छहो अंगों को जानने पढ़ाने वाला। २-सामवेद के आरण्यक भाग को पढ़ा। ३-यजुर्वेद के अध्वर्यु कर्म का ज्ञाता याज्ञिक। ४-जो उपनिषदों में कही तीन प्रकार की मधु विद्या का विद्वान् हो। ५-ऋग्वेद सम्बन्धी होताओं के कर्म का जानने वाला याज्ञिक। ६-गार्हपत्यादि श्रौतस्मार्त पञ्चाग्नियों को विधिपूर्वक स्थापित करके अग्निहोत्र नित्य करने वाला। ७-ब्रह्मचर्याश्रम में पूर्ण वेदाध्ययन करके जिस ने समावर्त्तन किया हो। ८-मन्त्रभाग और ब्राह्मणभाग वेद को जानने वाला। ९-धर्म का मर्म जानने वाला धर्मनिष्ठ। १०-और विधिपूर्वक हुए ब्राह्म विवाह से उत्पन्न सन्तान। ये दशप्रकार के ब्राह्मण पङ्क्तिपावन कहाते हैं। देवताओं सम्बन्धी ब्रह्मभोज में भी इसीप्रकार उत्तम निकृष्ट ब्राह्मणों की परीक्षा जानो। किन्हीं आचार्यों का मत है कि दुर्बलादि निषिद्ध ब्राह्मणों का श्राद्ध में ही त्याग करे किन्तु दैवकर्मों में परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है ॥ ४ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में पन्द्रहवां अध्याय पूरा हुआ ॥

श्रवणादि वार्षिकं प्रौष्ठपदीं वोपाकृत्याधीयीत छन्दां स्यर्ध पञ्चमासान् पञ्च दक्षिणायनं वा ब्रह्मचार्युत्सृष्टलोमा न मांसं भुञ्जीत द्वैमास्यो वा नियमो, नाधीयीत वायौ दिवा पांसुहरे कर्णश्राविणि नक्तं वाणभेरीमृदङ्गगजार्त्तशब्देषु च श्वशृगालगर्दभसंह्रादे लोहितेन्द्रधनुर्नीहारेष्वभ्रदर्शने चापर्त्तौ मूत्रित उच्चरिते निशासन्ध्योदकेषु वर्षति चैके वलीकसंतानआचार्यपरिवेषणे ज्योतिषोश्च भीतो यानस्थः शयानः प्रौढपादः श्मशानग्रामान्तमहापथाशौचेषु पूतिगन्धान्तःशवदिताकीर्त्तिशूद्रसन्निधाने सूतके चोद्गारे ऋग्यजुषं च सामशब्दे यावदाकालिका निर्घातभूमिकम्पराहुदर्शनोल्का-

---

श्रावणी पौर्णमासी को वा भाद्रपद की पौर्णमासी को उपाकर्म करके साढ़ेचार महिने वा दक्षिणायन के पांच महिनों में सब बालों का मुण्डन करा के ब्रह्मचारी रहता हुआ नियम से वेदों को पढ़े । मांस न खावे । अथवा दो महिनेतक ही वेदाध्ययन का नियम करे । और निम्न लिखित समयों में वेद न पढ़े किन्तु वेदाध्ययन का अनध्याय रक्खे—दिन में आंधी (तूफान आवे) चले, रात के समय कानों में वायु का शब्द सुन पड़े, बाजा, नक्कारा, मृदङ्ग, हाथी, और रोगी का चिल्लाना इन बाजा आदि का शब्द होने पर, कुत्ता, शृगाल (गीदड़) गधा, इन का शब्द होने पर, दिशाओं में लाली, इन्द्र धनुष, और कुहिरा पड़ा जबदीखे, वर्षा से भिन्न समय बद्दल होने पर, जब पेशाब करे वा शौच (मलत्याग) करे तब शुद्धि करने से पहिले, रात में, दो सन्ध्याओं के समय, जल के बीच, कोई कहते हैं कि वर्षते समय भी, छप्पर (छादन) छावने उठाने के समय, जब गुरु के पास सभालगी हो, वा जब सूर्य-चन्द्रमा के सब ओर घेरा खिंचा दीखे, ऐसे आंधी आदि के समय वेद का अनध्याय रक्खे । जब भय लगे, सवारी में बैठा, लेटा हुआ, और पग फैला के भी वेद को न पढ़े । श्मशान (मरघट) में, गांव नगर के समीप, जहां बहुत मनुष्य चलते हों ऐसे बड़े मार्ग के समीप, अशुद्धि के समय, जहां दुर्गन्ध अधिक हो, जिस ग्राममें मुर्दा पड़ा हो उसकी हद्द (सीमा) में, चाण्डाल तथा शूद्र के समीप, सूतक के समय, वमन करके वेद न पढ़े । सामवेद

स्तनयित्नुवर्षविद्युतः प्रादुष्कृताग्निष्वनृतौ विद्युति नक्तं चापररात्रात्त्रिभागादिप्रवृत्तौ सर्वमुल्काविद्युत्सममित्येकेषाम् ॥ १ ॥ स्तनयित्नुरपराह्णेऽपि प्रदोषे सर्वं नक्तमर्द्धरात्रादहश्चेत्सज्योतिर्विषयस्थे च राज्ञि प्रेते विप्रोष्य चान्योन्येन सह संकुलोपाहितवेदसमाप्तिच्छर्दिश्राद्धमनुष्ययज्ञभोजनेष्वहोरात्रममावास्यायां च द्व्यहं वा कार्तिकी फाल्गुन्याषाढी पौर्णमासी तिस्रोऽष्टकास्त्रिरात्रमन्यामेके अभितो वार्षिकं सर्वैर्वर्षविद्युत्स्तनयित्नुसन्निपाते प्रस्यन्दिन्यूर्ध्वं भोजनादुत्सवे प्राधीतस्य च निशायां चतुर्मुहूर्तं नित्यमेके

की ध्वनि में ऋग्वेद यजुर्वेद को न पढ़े। जब आकाश में अकस्मात् उत्पात का शब्द हो, भूकम्प हो, जब राहु का उपद्रव दीखे, जब बड़ा उल्कापात हो, सन्ध्याओं में वा वर्षा से भिन्न काल में बादल गर्जे–मेघ वर्षे–बिजुली चमके वा रात में विद्युत् गिरे तब एक दिन रात वेद का अनध्याय करे। आधी-रात से लेके रात के तीसरे प्रहर में वेद को न पढ़े। किन्हीं आचार्यों का मत है कि उल्कापात और विद्युत् का भयंकर शब्द होने पर सभी समय अर्थात् वर्षा में भी वेद का अनध्याय करे ॥ १ ॥ यदि अपराह्ण (दोपहरबाद) में वा सन्ध्या के समय बादल गर्जे तो रात्रि भर वेद न पढ़े। यदि दो पहर से पहिले गर्जे तो सन्ध्या तक न पढ़े। जिस राजा के राज्य में रहता हो उस का स्वर्गवास होने पर, विदेश में आकर परस्पर एक दूसरे के साथ असम्भव मेल के समय, वेद समाप्ति पर, वमन के समय, श्राद्ध के समय, अतिथि बन के अन्य के घर भोजन करने पर इन अवसरों में एक दिन रात वेद न पढ़े। चतुर्दशी, अमावस्या, कार्त्तिक, फाल्गुन, आषाढ़ महिनों की पौर्णमासी, (इन्हीं पौर्णमासियों में चातुर्मास्ययागों के तीन पर्व होते हैं) तीनों अष्टका श्राद्धों में तीन दिन तक, इन चतुर्दश्यादि में वेद को न पढ़े। कोई आचार्य कहते हैं कि वर्षा ऋतु के आदि अन्त में वर्षा, बिजुली की चमक और गर्जना एक साथ हों वा बूंदें पड़ती हों, भोजन के ऊपर, तथा उत्सव के समय भी वेद को न पढ़े। पढ़े हुए वेद का रात्रि के पहिले प्रहर में ही पाठ

नगरे मानसमप्यशुचि श्राद्धिनामाकालिकमकृताम्नश्राद्धिकसं योगेऽपि प्रतिविद्यं च यावत्स्मरन्ति यावत्स्मरन्ति ॥ २ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

प्रशस्तानां स्वकर्म्मसु द्विजातीनां ब्राह्मणो भुञ्जीत, प्रतिगृण्हीयाच्चैधोदकयवसमूलफलमध्वभयाभ्युद्यतशय्यासनावसथयानपयोदधिधानाशफरिप्रियङ्गुस्त्रङ्मार्गशाकान्यप्रणोद्यानि सर्व्वेषां पितृदेवगुरुभृत्यभरणे चान्यवृत्तिश्चेन्नान्तरेण शूद्रान्,पशुपालक्षेत्रकर्षककुलसंगतकारपितृपरिचारका भोज्या न्ना वणिक् चाशिल्पी,नित्यमभोज्यं केशकीटावपन्नं रजस्वलाकृष्णशकुनिपदोपहतं भ्रूणघ्नावेक्षितं गवोपघ्रातं भावदुष्टं

करे। गांव वा नगर में, तथा मनमें ग्लानि होने पर नित्य ही अनध्याय करे। श्राद्ध करनेवाला एक दिन रात वेद न पढ़े। यदि श्राद्ध सम्बन्धी कच्चा अन्न सीधा लेवे तो भी वेद का अनध्याय करे। प्रत्येक वेद में जितना२ कहा हो उतना अनध्याय माने ॥ २ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में सोलहवां अध्याय पूरा हुआ॥१६॥

ब्राह्मण पुरुष उन द्विजातियों के घरपर भोजन करे जो अपनेर शास्त्रोक्तकर्मों में प्रशंसा पाये हों। और ईंधन, जल, भुसा, मूल, फल' शहद, अभय, नये बने हुए तयार–खटिया, आसन, घर' सवारी, (रथादि) दूध, दही, भुनेजौ, मछली, ककुनी' माला, मार्ग, और हरे शाक इन पदार्थों को जो कोई प्रीति श्रद्धा से देवे तो पितर, देव और गुरुकी पूजार्थ तथा स्त्री पुत्रादि की रक्षार्थ सब के ले लेवे निषेध न करे। यदि अध्यापनादि द्वारा अन्य जीविका निर्वाह के लिये हो तो शूद्रों को छोड़कर अतिशूद्रादि से न लेवे। गोपाल, किसान, कुलका संगी, पिता का सेवक और जो कारीगरी को छोड़ के अन्य प्रकार की दुकान करता हो ऐसे शूद्रों का भी कच्चा अन्न ब्राह्मण को भक्ष्य है। जिस पकाये भोजन में बाल वा कीड़े गिर गये हों, रजस्वला स्त्री ने छू लिया हो, काले पक्षी के पग जिसमें लग गये हों, भ्रूण (गर्भ) हत्या करने वाले ने जिसे देखा हो, गौ वा बैलने सूंघा हो, जिसको किसी ने दूषित कहा हो वा जिस के दूषित होने में शंका हो गयी हो, जो दही को छोड़ के धरा रहने से ख-

शुक्तं केवलमदधि पुनःसिद्धं पर्युषितमशाकभक्ष्यस्नेहमांसम-धून्युत्सृष्टपुंश्चल्यभिशस्तानपदेश्यदण्डिकतक्षकदर्यबन्धनि-कचिकित्सकमृगयुवार्युच्छिष्टभोजिगणविद्विषाणामपाङ्क्ता-नां प्राग्दुर्बलाद्वृथान्नाचमनोत्थानव्यपेतानि समासमा-भ्यां विषमसमे पूजान्तरानर्चितं च गोश्च क्षीरमनिर्दशा-याः सूतके चाजामहिष्योश्च नित्यमाविकमपेयमौष्ट्रमेकशफं च स्यन्दिनीयमसूसन्धिनीनां च याश्च व्यपेतवत्साः प-ञ्चनखाश्चाशल्यकशशकश्वाविद्गोधाखड्गकच्छपाउभयतोद-त्केशलोमैकशफकलविङ्कप्लवचक्रवाकहंसाः काककङ्कगृ-

---

टाय गया हो' फिर से पकाया, धरा हुआ (बासी), ये उक्त सब पक्वान्न अभक्ष्य हैं। परन्तु शाक, भक्षण के योग्य घी तैलादि स्नेह, मांस और मिष्टान्न ये धरे हुए भी अभक्ष्य नहीं हैं। जो अन्न किसी ने छोड़ वा फेंक दिया हो, निन्दितका, यह न ज्ञात हो कि यह किसके यहां का है, संन्यासीका, बढ़ई, कंजूस, कैदी, वैद्य, वधिक, वारी, जूठन खानेवाला, इन निन्दितादि का, बन्दे का, विद्वेषी (शत्रुओं)का और बिरादरी से छेके हुओं का अन्न अभक्ष्य है। अपने आश्रित वा घरके रोगी आदि से पहिले भोजन न करे। जिस में से पंच महायज्ञ न हुए हों ऐसा वृथान्न, पांति में कोई भी अन्न का आचमन (ओ-मसृतापिधानमसि स्वाहा) मन्त्र से कर ले तब वा कोई पांति में से उठ जावे तब वा जब पांति के लोग भोजन करना छोड़ देवें तब भी भोजन न करे। जहां बराबर वालों में पक्षपात से आदर की विषमता की जाय वा ऊंच नीचों का तुल्य आदर किया जाय वहां भी भोजन न करे। जहां पहिले की अपेक्षा आदर कम हो, वा आदर के साथ जहां भोजन न कराया जाय वहां भी न खावे। ब्याने पर सूतक समय दश दिन के भीतर गौ भैंस तथा बकरी का दूध न खावे, भेड़ी, उंटनी, घोड़ी, ऋतुमती वा जिसका दूध थनों में से चूता हो, जो दो बच्चों से ब्यावे, जो गर्भवतीगौ आदि हो और दूध देवे, जिस गौ आदि का बच्चा मरगया हो इन भेड़ी आदि का दूध न खाना चाहिये। सेही, शश (खरहा), गोधा (गोह), गैंठा, और कछुआ को छोड़कर बाकी पांच नखोंवाले, दोनों ओर दांतोंवाले, केशों के तुल्य बड़े २ लोमोंवाले, एक खुर वाले, कलविङ्क (गवरापक्षी) प्लव (जल में तरनेवालेपक्षी) चकवा, हंस, कौवा, कंक (जिस के पंखों को बाण में लगाते हैं) गीध, और श्येन पक्षी,

अश्येना जलजा रक्तपादतुण्डा ग्राम्यकुक्कुटसूकरी धेन्वनडुहौ चापन्नदावसन्नवृथामांसानि किसलयवयाकुलसूननिर्यासलोहितान्यश्चनाःश्वनिहतदारुवकबलाकाद्रुद्रुटिट्टिभमान्धातृ नक्तंचरा अभक्ष्याः ॥१॥ नभक्ष्याः प्रतुदा विकिरा जालपादा मत्स्याश्चाविकृतावध्याश्चय धर्मार्थेऽव्यालहता दृष्टदोषवाक्प्रशस्तान्यभ्युक्ष्योपयुञ्जीतोपयुञ्जीत ॥ २ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अस्वतन्त्रा धर्म्मे स्त्री नातिचरेद्भर्त्तारं वाक्चक्षुःकर्म्मसंयताऽपभिरपत्यलिप्सुर्देवराद्गुरुप्रसूतान्नर्त्तुमतीयात्पिण्डगोत्र-

---

जल में पैदा हुए मछली आदि, जिनके पंजे वा चौंच लाल हों, गांव का मुरगा, गांव का सूअर, गौ, बैल, स्वयं मरे, वनके अग्नि से जलके मरे। इन सब पशुनआदि का मांस नहीं खाना चाहिये। यज्ञादि को छोड़ केवल खाने के लोभ से प्राप्त किया मांस भी अभक्ष्य है। पत्तों का रसादि, स्वयं मारे का मांस, वृक्षों का लाल गोंद, गोदने से निकला गोंद, कुत्ते ने मारी शिकार, कठफुरवा (दारुवक), बगला, रोमीजीव, टिटुहिया. मान्धाता-पक्षी, और रात्रि में विचरने वाले चमनीदड़ आदि ये सब अभक्ष्य हैं ॥ १ ॥ जो चोंच से मार २ के जीवों को खाते, नखों से बिखेर २ के जो खाते, जिन के पग जाल के तुल्य हैं और सब मछलियां भी अभक्ष्य हैं। जिनके शरीर में विकार हो और जो अवध्य हैं उन का भी मांस न खावे। यज्ञादि धर्म के लिये जो पशुपक्षी विधिपूर्वक मारे गये हों, जिन को सांप ने न काटा हो, जिन में शास्त्र से वा प्रत्यक्ष से कोई दोष न देखा गया हो और वाणी से जो प्रशस्त हों ऐसे जीवों के मांस को देवता तथा पितरों का पूजन समर्पण करके उपयोग में लावे ॥ २ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में सत्रहवां अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

धर्मविषय में स्त्री स्वतन्त्र नहीं है, वाणी, चक्षु, और हाथ पांव की चेष्टा को वशीभूत नियम बद्ध रखती हुई पति की आज्ञाका उलंघन न करे। पति के अभाव में सन्तान को चाहती हो तो देवर, गुरुपुत्र वा पिण्ड गोत्र ऋषि जिन के एक ही हों ऐसे पति के कुल के कोई पुरुष अथवा पति के कुल के किसी पुरुष से ऋतुकाल में वीर्यदान लेकर सन्तान उत्पन्न कर लेवे। कोई

ऋषिसंबन्धिभ्योऽपि योनिमात्राद्वा, नादेवरादित्येके, नातिद्वितीयं, जनयितुरपत्यं समयादन्यत्र जीवतश्च क्षेत्रे परस्मात्तस्य द्वयोर्वा रक्षणाद्भर्तुरेव नष्टे भर्तरि षाड्वार्षिकं क्षपणं श्रूयमाणेऽभिगमनं प्रव्रजिते तु निवृत्तिः प्रसङ्गात्तस्य द्वादशवर्षाणि ब्राह्मणस्य विद्यासंबन्धभ्रातरि चैवं ज्यायसि यवीयान्कन्याग्न्युपयमनेषु षडित्येके त्रीन्कुमार्यृतूनतीत्य स्वयं युज्येतानिन्दितेनोत्सृज्य पित्र्यानलङ्कारान् प्रदानं प्रागृतोरप्रयच्छन् दोषी प्राग्वाससः प्रतिपत्तेरित्येके द्रव्या-

आचार्य कहते हैं कि देवर से भिन्न पुरुष के साथ नियोग न करे। पति से अन्य दूसरे नियुक्त का उलंघन करके किसी तीसरे से स्त्री संग न करे। नियोग के नियत समय से भिन्न काल में नियुक्त के साथ स्त्री संग करे तो वह सन्तान उत्पादक नियुक्त पुरुष का होगा। और पति के जीवित रहते ही यदि अन्य किसी पुरुष से सन्तान उत्पन्न हो तो वह सन्तान उस उत्पादक का वा दोनों का माना जायगा (अर्थात् बीज के स्वत्व से उत्पादक का और क्षेत्र के स्वत्त्व से क्षेत्र वाले का होगा) यदि स्त्री का पति उस की रक्षा भी करे तो उसी का सन्तान होगा। किसी स्त्री का पति कहीं विदेश में चला जाय और पता न हो कि कहां गया तो छः वर्ष तक उस की बाट देखे कालक्षेप करे। यदि सुन पड़े कि अमुक ग्राम वा नगर में है तो पति के समीप स्त्री चली-जावे। यदि वह पति संन्यासी हो गया हो तो फिर उस के पास न जावे। योनि सम्बन्धी वा विद्या सम्बन्धी बड़े भाई ब्राह्मण के कहीं अज्ञात निकल जाने पर छोटा भाई कन्या के स्वीकार, अग्नि स्थापन और विवाह करने के लिये बारह वर्ष तक वा किन्हीं आचार्यों के मतसे छः वर्ष तक बाट देखे। यदि ऋतुमती होने से पहिले पिता वा पितृस्थानी चाचा भ्रातादि कन्या का विवाह न करदें तो तीन वार ऋतुमती होने पश्चात् पिता के दिये आभूषणों का त्याग करके स्वयं किसी अनिन्दित सत्पात्र वर के साथ विधिपूर्वक विवाह कर लेवे। ऋतुमती होने से पहिले विवाह न करे तो पितादि को पाप दोष लगता है। और कोई आचार्य कहते हैं कि वस्त्र में दाग लगने से पहिले ही विवाह न करने पर पाप लगता है। कन्या का विवाह करने के

दानं विवाहसिध्यर्थं धर्म्मतन्त्रप्रसंगे च शूद्रादन्यत्रापि शूद्राद् बहुपशोर्हीनकर्म्मणः शतगोरनाहिताग्नेः सहस्रगोर्वा सोमपात् सप्तमीं चाभुक्त्वाऽनिचयायाप्यहीनकर्मभ्य आचक्षीत राज्ञा पृष्टस्तेन हि भर्तव्यः श्रुतशीलसंपन्नश्चेद्धर्म्मतन्त्रपीडायां तस्याकरणेऽदोषोऽदोषः ॥१॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

द्वितीयः प्रपाठकश्च पूर्णः ॥

उक्तो वर्णधर्म्मश्चाश्रमधर्म्मश्चाथ खल्वयं पुरुषो येनकर्म्मणा लिप्यते यथैतदयाज्ययाजनमभक्ष्यभक्षणमवद्यवदनं

लिये वा दान पुण्यादि धर्मकार्यों के निमित्त शूद्र से भी धन ले लेवे। तथा अन्य कामों में भी बहुत पशुओंवाले शूद्र से वा सैकड़ों गौओं वाले धर्म कर्म हीन अनाहिताग्नि (जिसने विधिपूर्वक अग्नि स्थापन करके अग्निहोत्र नहीं लिया ऐसे) द्विज से वा सात पीढ़ी से जिसके घर में अग्निष्टोमादि सोमयाग होते आये हों ऐसे द्विज से धन लेलवे। और स्वयं न खावे न जोड़कर पास रक्खे, किन्तु तत्काल किसी धर्म के काम में लगा देवे तो ऐसे काम के लिये धर्म कर्महीन नीच पुरुषों से भी धनादि लेलेवे। यदि विद्वान् गृहस्थ से राजा पूछे तो धर्मादि जिस काम के लिये जितना धनादि अपेक्षित हो सो ठीक२ कह देवे। राजा को उचित है कि गृहस्थ ब्राह्मण वेदवेत्ता तथा सीधा सच्चा स्वभाववाला हो तो उसका भरण पोषण अवश्य करे। यदि धर्मसम्बन्धी किसी काम के करने में शरीर को अत्यन्त कष्ट पहुंचना सम्भव हो तो उसके न करने में दोष नहीं लगेगा ॥१॥ इस१८ वें अध्याय में जो नियोग का विषय है सो यह नियोग राजा वेन का चलाया है। उसके बाद में ऋषियों तथा आचार्यों ने जोर धर्मशास्त्र प्रकाशित वा प्रवृत्त किये उनसब में राजा के अनुरोध से नियोग लिखा गया है। इन सब बीशो२० धर्मशास्त्रों में मानव धर्मशास्त्र मुख्य वा श्रेष्ठ है। जब उसमें इस वेन राजप्रचारित नियोग का खण्डन किया गया तो सभी धर्मशास्त्रों में वही खण्डन काफी है॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में अठारहवां अध्याय पूरा हुआ ॥१८॥

वर्णों और आश्रमों का धर्म कहा गया। अब यह विचार किया जाता है कि यह ब्राह्मणादि मनुष्य जिस २ कर्म से लिप्त नाम पापी अपराधी होता है जैसे कि जिसको यज्ञादि का अधिकार नहीं उस शूद्रादि को यज्ञ कराना, अभक्ष्य का भक्षण, न कहने योग्य मिथ्या भाषणादि करना,

शिष्टस्याक्रिया प्रतिषिद्धसेवनमिति, तत्र प्रायश्चित्तं कुर्यान्न कुर्यादिति, मीमांसन्ते न कुर्यादित्याहुर्नहि कर्म्म क्षीयत इति। कुर्यादित्यपरे पुनस्तोमेनेष्ट्वापुनःसवनमायान्तीति विज्ञायते व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा तरति सर्वं पाप्मानं, तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजतेऽग्निष्टुताभिशस्यमानं, याजयेदिति च॥१॥ तस्य निष्क्रयणानि जपस्तपो होम उपवासो दानमुपनिषदो वेदान्ताः सर्व्वच्छन्दःसु संहिता मधून्यघमर्षणमथर्वशिरो रुद्राः पुरुषसूक्तं राजनरौहिणे सामनी बृहद्रथन्तरे पुरुषगतिर्महानाम्न्यो महावैराजं महादिवाकीर्त्यं ज्येष्ठसाम्नामन्यतमद्

शास्त्र में कहे सन्ध्यादि कर्म न करना, और निषिद्ध हिंसादि को करना इत्यादि के लिये प्रायश्चित्त करे वा न करे ऐसी मीमांसा नाम सन्देह करते हैं। इसमें पूर्वपक्षी कहते हैं कि प्रायश्चित्त न करे क्योंकि किया हुआ कर्म अपना फल दिये विना क्षीण (नष्ट) नहीं होता। इसीपर यह जनश्रुति चली है कि- (अवश्यमेवभोक्तव्यं कृतंकर्मशुभाशुभम्।) परन्तु उत्तर पक्ष के ऋषि तथा आचार्य कहते हैं कि प्रायश्चित्त अवश्य करे। क्योंकि श्रुति में लिखा है कि स्तोमयज्ञ करके फिर सोमयागादि का अधिकारी हो जाता है। व्रात्यस्तोमयज्ञ करके सब पापों से पार हो जाता है और जो अश्वमेध यज्ञ करता है वह ब्रह्महत्या के महापातक से भी मुक्त होजाता है। और चोरी व्यभिचार आदि से दूषित निन्दित द्विज को अग्निष्टुत् यज्ञ करावे॥ १॥ उन यज्ञों के करने की सामर्थ्य सर्वसाधारण लोगों को नहीं हो सकती इसलिये यज्ञादि के प्रत्याम्नाय नाम प्रतिनिधि प्रायश्चित्तरूप शुभ कर्त्तव्य ये हैं कि-जप, तप, होम, उपवास, दानकरना, इनका आगे क्रम से विशेष व्याख्यान करते हैं। उपनिषद्रूप वेदान्त ग्रन्थों का पाठ करना, गायत्र्यादि सब छन्दों में वेद संहिताओं का श्रद्धाभक्ति से अभ्यास, मधुमती (मधुवाता०) इत्यादि तीन ऋचा, अघमर्षणसूक्त, अथर्वशीर्ष, रुद्राध्याय, पुरुष सूक्त, राजन और रौहिण दोनों साम, बृहद्रथन्तरसाम, पुरुषगति, महानाम्नीऋचा, महावैराज, महादिवाकीर्त्य, ज्येष्ठ सामों में से कोई एक साम, बहिष्पवमान सूक्त, कूष्माण्डसूक्त, पवमानसूक्त, इनमें से किसी

बहिष्पवमानं कूष्माण्डानि पावमान्यः सावित्रीचेति पावनानि ॥ २ ॥ पयोव्रतता शाकभक्षता फलभक्षता प्रसृतयावको हिरण्यप्राशनं घृतप्राशनं सोमपानमिति च मेध्यानि ॥३॥ सर्व्वे शिलोच्चयाः सर्वाः स्रवन्त्यः पुण्या ह्रदास्तीर्थानि ऋषिनिवासा गोष्ठपरिस्कन्दा इति देशाः ॥ ४ ॥ ब्रह्मचर्यं सत्यवचनं सवनेषूदकोपस्पर्शनमार्द्रवस्त्रताऽधःशायिकाऽनाशक इति तपांसि ॥५॥ हिरण्यं गौर्वासोऽश्वो भूमिस्तिला घृतमन्न मिति देयानि ॥ ६ ॥ संवत्सरः षण्मासाश्चत्वारस्त्रयो द्वावेकश्चतुर्विंशत्यहो द्वादशाहः षडहस्त्र्यहोऽहोरात्रइति काला एतान्येवानादेशे विकल्पेन क्रियेरन् ॥७॥ एनस्सु गुरुषु गुरूणि

का वा कई का बहुत कालतक नियम से निरन्तर श्रद्धा के साथ अभ्यास करे तो पापों से मुक्त होजाता है (यह सब जप का व्याख्यान है) ॥ २ ॥ केवल दूध, वा शाक, फल, एक उलटे हाथ में जितना एकवार में भराजाय उतना कुलत्थ (खुरथी,) अन्न एक दिन में खाना, इन दूध आदि के व्रतों से, तथा सुवर्ण, गोघृत वा सोमपान रसायन कल्प के विधान से खाना ये सब मेधानाम बुद्धि को शुद्ध करनेवाले और जप तप के सहायक हैं ॥३॥ सब पहाड़, सब सोता झरना वा नदियां, पवित्र कुण्ड वा तीर्थ (तालाव) ऋषियों के रहने की तपोभूमि, किसी से सुरक्षित गोशाला ये सब स्थान जप तप के समय निवास के योग्य उपयोगी हैं ॥ ४ ॥ जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी रहना, सत्यबोलना, सायं प्रातः काल और मध्यान्ह में तीनोंवार स्नान करना, गीले वस्त्र पहनना, भूमिपर लेटना सोना, कुछभी भोजन न करना ये सब तप कहाते हैं ॥ ५ ॥ सुवर्ण, गौ, वस्त्र, घोड़ा, भूमि, तिल' घी'अन्न, इन पदार्थों का सुपात्र धर्म निष्ठ विद्वान् ब्राह्मण को देना मुख्यदान है । इससे भी पाप कटते हैं ॥६॥ जहां प्रायश्चित्त का कोई समय नियत न किया हो वहां एक वर्ष छः मास,चारमास, तीनमास, दोमास, एकमास, चौबीशदिन, बारहदिन, छःदिन, तीनदिन, एकदिनरात, इन में से किसी एक नियत समय तक उक्त जप पाठादि प्रायश्चित्त करे ॥ ७ ॥ पापों के अधिक बड़े२ होनेपर अधिक दिनों तक और छोटे२ वा कम पापोमें

लघुषु लघूनि कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति सर्वप्रायश्चित्तं सर्वप्रायश्चित्तम् ॥ ८ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अथ चतुःषष्टिषु यातनास्थानेषु दुःखान्यनुभूय तत्रेमानि लक्षणानि, भवन्ति ब्रह्महार्द्रकुष्ठी, सुरापः श्यावदन्तो, गुरुतल्पगः पङ्गुः, स्वर्णहारी कुनखी, श्वित्री वस्त्रापहारी, दर्दुरी तेजोपहारी, मण्डली स्नेहापहारी क्षयी तथा, अजीर्णवान न्नापहारी, ज्ञानापहारी मूकः, प्रतिहन्ता गुरोरपस्मारी, गोघ्नो जात्यन्धः, पिशुनः पूतिनासः, पूतिवक्त्रस्तु सूचकः, शूद्रोध्यापकःश्वपाकस्त्रपुसीसचामरविक्रयी,मद्यप एकशफविक्रयी, मृगव्याधः कुण्डाशी,भृतकश्चैलिको वा नक्षत्री चार्बुदी नास्तिको रङ्गोपजीव्यभक्ष्यभक्षी गण्डरी ब्रह्मपरुषतस्कराणां

थोड़े दिनों तक प्रायश्चित्त करे। कृच्छ्र अतिकृच्छ्र और चान्द्रायण ये सब पापों के प्रायश्चित्त हैं ॥ ८ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में उन्नीशवां अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

अब नरक दुःख भोग के चौंसठ स्थानों में प्राणी दुःखों का अनुभव करके फिर मनुष्य योनि में जन्म लेता है उसके ये निम्न चिन्ह होते हैं। ब्रह्महत्या करनेवाला-गलित कुष्ठी होता, मद्यपानी के श्याम (काले) दांत होते, गुरुपत्नी गामी पङ्गु (लंगड़ा) होता, सुवर्ण का चोर-बिगड़े नखोंवाला होता, वस्त्र चुरानेवाला-श्वेत कुष्ठी, दीपकादि प्रकाश का चुरानेवाला दादकारोगी, घी तैलादि चिकनाई चुरानेवाला-मण्डल (चकत्तेयुक्त) कुष्ठी तथा क्षयी (तपेदिक़) रोगवाला होता है। अन्न चुराने वाला अजीर्णरोगी, ज्ञान (विद्या) का चोर-गूंगा, बदले में गुरु को पीटनेवाला मृगीरोगयुक्त, गोहत्यारा-जन्मान्ध, चुगल पीनसरोगी वा दुर्गन्ध युक्त नासिकावाला, निन्दक-मुखमें दुर्गन्धिवाला, शूद्र को वेद पढ़ानेवाला-चाण्डाल, रांगा शीशा और चंवर बेचनेवाला-मद्यपानी, एक (जुड़े) खुरवाले पशुओं को बेचने वाला-बहेलिया, कूंडे में खानेवाला-वैतनिक नौकर (दास) वा धोबी, शास्त्र को जाने बिना नक्षत्रों की खगोल विद्या का अभिमानी-अर्बुद (मांसपिण्डका) रोगी, नास्तिक

देशिकः पिशुनः षण्डो महापथिको गण्डिकश्चाण्डाली पुल्कसीगोष्ववकीर्णी मध्वामेही धर्म्मपत्नीषु स्यान्मैथुनप्रवर्त्तकः खल्वाटसगोत्रसमयस्त्र्यभिगामी श्लीपदी पितृमातृभगिनीस्त्र्यभिगाम्यावीजितस्तेषां कुब्जकुण्ठमण्डव्याधितव्यङ्गदरिद्राल्पायुषोऽल्पबुद्धयश्चण्डपण्डशैलूषतस्करपरपुरुषप्रेष्यपरकर्म्मकराः खल्वाटवक्राङ्गसंकीर्णाः क्रूरकर्म्माणःक्रमशश्चान्त्याश्चोपपद्यन्ते तस्मात्कर्तव्यमेवेह प्रायश्चित्तं विशुद्धैर्लक्षणैर्जायन्ते धर्म्मस्य धारणादिति धर्म्मस्यधारणादिति॥१॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

त्यजेत्पितरं राजघातकं शूद्रयाजकं वेदविप्लावकं भ्रूणहनं

रंगों द्वारा जीविका करने वाला, अभक्ष्य भक्षण कर्त्ता—गण्डमाला का रोगी, ब्रह्मद्रोही तथा चोरों का उपदेशक—संकुचित तथा नपुंसक, निन्दित मार्ग में चलने वाला—गण्डरोगी। चाण्डाली, पुल्कसी और गौ के साथ मैथुन करनेवाला मधु प्रमेह युक्त होता, धर्मपत्नी स्त्रियों में मैथुन की प्रवृत्ति करने वाला—खल्वाट (गंजा), अपने गोत्र की स्त्री से संग करने वाला- श्लीपदी (हाथी पांव का) रोगी, पिता की बहिन (फूफी) माता की बहिन (मौसी) से संग करने वाला अत्यल्पवीर्य युक्त होता है। प्रयोजन यह कि उक्त दुष्कर्मों के वैसे २ अनिष्ट फल जन्मान्तरों में प्राणियों को होते हैं। और ऐसे पापी लोग विशेष कर जन्मान्तरों में कुब्ज (कुबड़े) आलसी, मण्डल—कोढ़ी, नित्यरोगी, शत्रु के नौकर, वा दास खल्वाट (गंजे,) वक्राङ्ग (टेढ़ अंगों वाले,) सकुचे क्रूर—कठोर निर्दयी—हिंसाकर्मोंवाले क्रम से होते हैं। और चमार चाण्डालादि नीचों में जन्म लेते हैं। इसलिये प्रायश्चित्त अवश्य ही करने चाहिये जिस से जन्मान्तरों में धर्म के धारण करने से शुद्ध चिन्हों से युक्त उत्तम पुरुषात्माओं में जन्म होता है ॥ १ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में बीशवां अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

पुत्र को चाहिये कि राजा का वध करने, शूद्र को यज्ञ कराने, वेद को डुबाने, अभिचार करके गर्भ पात करने, भील आदि नीचों के साथ सहवास करने और नीचों की स्त्रियों से संयोग करने वाले पिता को त्याग देवे। उस

यश्चान्त्यावसायिभिः सह संवसेदन्त्यावसायिन्या वा तस्य विद्यागुरून्योनिसंबन्धांश्च सन्निपात्य सर्वाण्युदकादीनि प्रेतकर्म्माणि कुर्य्युः पात्रं चास्य विपर्यस्येयुः ॥ १ ॥ दासः कर्मकरो वाऽवकरादमेध्यपात्रमानीय दासीघटात् पूरयित्वा दक्षिणाभिमुखः पदा विपर्यस्येदमुमनुदकं करोमीति नामग्राहं तं सर्वेऽन्वालभेरन् प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा विद्यागुरवो योनिसंबन्धाश्च वीक्षेरन्नप उपस्पृश्य ग्रामं प्रविशन्ति ॥२॥ अतऊर्ध्वं तेन संभाष्य तिष्ठेदेकरात्रं जपन्सावित्रीमज्ञानपूर्वं ज्ञानपूर्वं चेत्त्रिरात्रम्॥३॥यस्तु प्रायश्चित्तेन शुध्येत्तस्मिन् शुद्धे शातकुम्भमयं पात्रं पुण्यतमाद्ध्रदात् पूरयित्वा स्रवन्तीभ्यो वा तत एनमुपस्पर्शयेयुः ॥४॥ अथास्मै तत्पात्रं दद्युस्तत्सं-

---

पिता के विद्या गुरुओं और कुटुम्बियों को एकत्र करके जलदानादि प्रेतकर्म उस के लिये (उस के जीवित रहते ही तिलाञ्जलि दे देवें) करें तथा निम्न-रीति से जलपात्र को फेंके ॥ १ ॥ कहार वा किसी शूद्र नौकर द्वारा घूरे पर से मट्टी का अशुद्ध पात्र मगाकर कहारिन के घड़े से उस में जल भर के अप-सव्य हो दक्षिण को मुखकर (अमुम्—अनुदकं करोमि) इस मन्त्र के अमुं शब्द के स्थान में पिता का द्वितीयान्त नाम बोलता हुआ उस जल भरे घड़े को पग से मारके फेंक देवे, साथ ही विद्यागुरु और कुटुम्बी लोग चोटी की गांठ खोल कर अपसव्य हुए उस घड़े को फेंकते हुए पुत्र का पीछे देखते हुए हाथ से स्पर्श करें। पश्चात् जल का स्पर्श करके गांव को सब चले आवें ॥ २ ॥ इस कृत्य के पश्चात् विना जाने जो कोई उस पतितके साथ संभाषण करे तो वह गा-यत्री का जप करता हुआ एक रातभर खड़ा रहे। यदि जान कर उस के साथ संभाषण करे तो तीन दिन गायत्री का जप करता हुआ प्रायश्चित्त करे ॥३॥ यदि राजा की हत्यादि करने वाला वह पतित प्रायश्चित्त करके शुद्ध हो जावे तो उस के शुद्ध हो जाने पर सुवर्ण के पात्रको किसी पवित्र कुण्ड वा बहती हुई नदियों से भर के विद्यागुरु और कुटुम्बी लोग उस प्रायश्चित्ती का अभिषेक करें ॥४॥ इस के बाद वह सुवर्ण का पात्र उस प्रायश्चित्ती को देदेवें। वह उस

प्रतिगृह्य जपेत्, ओं–शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तं शिवमन्तरिक्षम्। यो रोचनस्तमिह गृण्हामीत्येतैर्यजुर्भिस्तरत्समन्दीभिः पावमानीभिः कूष्माण्डैश्चाज्यं जुहुयाद्धिरण्यं ब्राह्मणाय वा दद्याद् गामाचार्य्याय ॥५॥ यस्य च प्राणान्तिकं प्रायश्चित्तं स मृतः शुध्येत्तस्य सर्वाण्युदकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्युरेतदेव शान्त्युदकं सर्वेषूपपातकेषु सर्वेषूपपातकेषु ॥ ६ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे एकविंशोध्यायः ॥ २१ ॥

ब्रह्महसुरापगुरुतल्पगमातृपितृयोनिसंबन्धगस्तेननास्तिकनिन्दितकर्माभ्यासिपतितात्याग्यपतितत्यागिनः पतिताः पातकसंयोजकाश्च तैश्चाब्दं समाचरन् ॥१॥ द्विजातिकर्मभ्यो हानिः पतनं परत्र चासिद्धिस्तामेके नरकं त्रीणि प्रथमा-

---

सुवर्णके पात्र को हाथ में लेकर (ओं शान्ताद्यौः०) इत्यादि मन्त्रका जप करे। तदनन्तर (तरत्समन्दी०) सूक्त, पावमानी ऋचाओं, तथा कूष्माण्डसूक्तों से घृत का होम करे। अथवा सुपात्र ब्राह्मण को सुवर्ण का दान और गुरु को गौ दान देवे ॥ ५ ॥ जिस अपराधी का प्रायश्चित्त ऐसा हो कि जिस में उस का प्राणान्त हो जाय तो वह मर कर शुद्ध होता है। उन के तिलाञ्जलि आदि सब मृतक कर्म पुत्रादि कुटुम्बियों को शास्त्रानुकूल करने चाहिये यही सब उपपातकों में शान्ति का जल उस के लिये है ॥ ६ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में इक्कीशवां अध्याय पूरा हुआ ॥२१॥

ब्रह्महत्यारा, मद्यपीने वाला, गुरु पत्नी से व्यभिचार कर्त्ता, माता और पिता के कुल की स्त्रियों से गमन करने वाला, सुवर्ण का चोर, नास्तिक (वेदनिन्दक,) निन्दित (छलकपटादि) कर्मों को जो बार २ करे, जो पतित को न त्यागे, जो पतित नहीं हुआ उसे त्याग देवे, जो निर्दोष को पातक लगावे, और जो एक वर्ष तक पतितों का संग करे ये सब पतित कहाते हैं ॥ १ ॥ ब्राह्मणादि द्विज अपने २ कर्मों से हीन हो जायं अपने कर्मों के अधिकारी न रहें यही पतित होना कहाता है। इन को जन्मान्तर में सिद्धि नहीं होती। इसी असिद्धि को कोई आचार्य नरक होना कहते हैं। ब्रह्महत्या, सुरा (मद्य) पान, सुवर्ण की चोरी इन तीन महापातकों का प्रायश्चित्त नहीं है यह मनुजी की राय है। कोई आचार्य कहते हैं कि गुरुपत्नी को छोड़ के अन्य

न्यनिर्द्देश्यानीति मनुर्न स्त्रीषु गुरुतल्पगः पततीत्येके भ्रूणहनि ॥२॥ हीनवर्णसेवायां च स्त्रीपतति कौटसाक्ष्यं राजगामि पैशुनं गुरोरनृताभिशंसनं महापातकसमानि,अपाङ्क्त्यानां प्राग्दुर्ब लाद्गोहन्तब्रह्मोज्झतन्मन्त्रकृदवकीर्णिपतितसावित्रीकेषूप-पातकं याजनाध्यापनादृत्विगाचार्यौ पतनीयसेवायां च हेया-वन्यत्र हानात्पतति तस्य च प्रतिग्रहीतेत्येके न कर्हिचिन्मा-तापित्रोरवृत्तिर्दायं तु न भजेरन् ब्राह्मणाभिशंसने दोषस्ता-वान् द्विरनेनसि दुर्बलहिंसायामपि मोचने शक्तश्चेत् ॥ ३ ॥

स्त्रियों से व्यभिचार करने पर मनुष्य पतित नहीं होता (अर्थात् गुरु पत्नी गमन की अपेक्षा कम-थोड़ा पाप लगता है परन्तु गुरुपत्नी गामी महापातकी होने से अवश्य पतित हो जाता है) परन्तु व्यभिचार के पश्चात् भ्रूण हत्या करे तो अवश्य ही पतित होता है ॥२॥ भ्रूण (गर्भ) हत्या करने और अपने से नीच वर्ण के पुरुष की सेवा (उस के साथ रहने संयोग) करने से स्त्री भी पतित होजाती है । जान कर झूंठी गवाही,राजा से किसी का ऐसा झूंठा अपराध कहना जिस से राजा उसे मरवाडाले, जानकर गुरु के साथ मिथ्या भाषण करना ये कर्म महापातकों के समान हैं । दुर्बल को छोड़ के जाति-पांति से बाहर किये हुओं में-गोहत्यारा,वेद का त्यागी,वन का भेली सलाही, ब्रह्मचर्य नियम में रहते समय व्यभिचार कर्त्ता, और संस्कार हीन व्रात्य ये सब मुख्य उपपातकी हैं । अनधिकारियों को यज्ञ कराने, पढ़ाने, और पतित होने योग्य किसी श्रीमान् की सेवा में रहने से ऋत्विज् और आचार्य (गुरु) त्यागने योग्य होते हैं । जो इन दोनों को न त्यागे वह भी पतित हो जाता है । पतित का दान लेने वाला भी पतित होता है यह किन्हीं आचार्यों का मत है । पुत्र ऐसा कभी न करे कि पतित हुए माता पिता को भोजन वस्त्र न दे किन्तु भोजन वस्त्र से उन की रक्षा तवभी करे परन्तु पतित माता पिता का धनादि पुत्र न लेवे । ब्राह्मण की निन्दा करने में भी जाति से पतित होने का दोष लगता है, यदि ब्राह्मण निर्दोष होतो उस की निन्दा में द्विगुण दोष लगता है । यदि क्षमा करने में समर्थ हो वा क्षमाका मौका (अवसर) हो तो निर्बल दीन असमर्थ की हिंसा करने में भी दूना पाप लगता है । ॥ ३ ॥

अभिक्रुद्ध्यावगोरणं ब्राह्मणस्य वर्षशतमस्वर्ग्यं निघाते सहस्रं लोहितदर्शने यावतस्तत्प्रस्कन्द्य पांसून् संगृह्णीयात्संगृह्णीयात्४

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

प्रायश्चित्तमग्नौ सक्तिर्ब्रह्मघ्नस्त्रिरवच्छादि तस्य लक्ष्यं वा स्याज्जन्ये शस्त्रभृताम् ॥१॥ खट्वाङ्गकपालपाणिर्वा द्वादशसंवत्सरान् ब्रह्मचारी भैक्षाय ग्रामं प्रविशेत् स्वकर्माचक्षाणः पथोऽपक्रामेत्संदर्शनादार्यस्य स्थानासनाभ्यां विहरन् सवनेषूदकोपस्पर्शी शुध्येत्, प्राणलाभे वा तन्निमित्ते ब्राह्मणस्य द्रव्यापचये वा त्र्यवरं प्रतिरोद्धाऽश्वमेधावभृथे वान्ययज्ञे-

---

क्रोध करके ब्राह्मण पर गुर्रावे तो १०० वर्ष, ब्राह्मण को पीटे तो १००० वर्ष और यदि ऐसा मारे जिस में खून गिरने लगे तो मट्टी के जितने परमाणु ब्राह्मण के रुधिर से भीगें उतने ही वर्षों तक उस पापी को नरक भोगना पड़ता है ॥ ४ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में बाईसवां अध्याय पूरा हुआ ॥

अब ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त कहते हैं। १-अपनी इच्छा से आंखें बन्द कर नीचे को शिर कर २ के अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि में तीनवार गिर २ कर जल जावे। २-विद्वान् ब्राह्मण के हाथ में धनुषबाण वा बन्दूक देकर सहर्ष उन के हाथ से अनेक मनुष्यों के सामने गोली खाकर मर जावे ॥१॥ अथवा ३-एक खटिया का पांव (सथवा) और मनुष्य की खोपड़ी हाथ में लेकर बारह वर्ष तक ब्रह्मचारी रहता हुआ वन में वा एकान्त जंगल में कुटी बनाकर निवास करे। भिक्षा मांगने के लिये एक वार नित्य अपने पाप को कहता हुआ गांव में जाया करे। भिक्षा के लिये जाते आते समय रास्ता में कोई द्विज मिले तो मार्ग से हट जावे। अपने स्थान और आसन के इधर उधर भ्रमण करे कहीं अन्यत्र न जावे। सायं, प्रातः और मध्याह्न काल में तीनो वार स्नान करे इस प्रकार बारह वर्ष के प्रायश्चित्त से शुद्ध होता है। ४-अथवा ब्रह्महत्या करने वाला किसी ब्राह्मण को मृत्यु से बचावे। ५-यदि किसी ब्राह्मण के धन को चोर ले जाते हों तो सच्चे मन से तीनवार चोरों से धन छीन लेने की चेष्टा करे यदि न भी छीन पावे तो भी शुद्ध हो जाता है ६-राजा के अश्वमेध वा अन्य यज्ञ समाप्ति के अवभृथ स्नान के समय राजा तथा विद्वानों

ऽप्यग्निष्टुदन्तश्चेत्सृष्टश्चेद्ब्राह्मणवधे ॥२॥ हत्वाप्यात्रेयीं चव गर्भं चाविज्ञाते ॥३॥ ब्राह्मणस्य राजन्यवधे षड्वार्षिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यं ऋषभैकसहस्राश्च गा दद्यात् ॥४॥ वैश्ये त्रैवार्षिकं ऋषभैकशताश्च गा दद्यात्॥५॥ शूद्रे संवत्सरं ऋषभैकादशाश्च गा दद्यादनात्रेय्यां चैवं गां च ॥६॥ शूद्रवन्मण्डूकनकुलकाकाण्यश्वहरमूषिकाश्च ॥७॥ हिंसासु चास्थिमतां सहस्रं हत्वाऽनस्थिमतामनडुद्भारंच ॥८॥ अपिवाऽस्थिमतामेकैकस्मिन् किंचित् किंचिद्द्यात् ॥९॥षण्डे च पलालभारः सीसमा-

के सामने अपना दोष प्रकट करके सब के साथ स्नान करे तो पाप से छूट जाता है। १-यदि मार डालने की मनसा से न मारा हो और ब्राह्मण मर गया हो तो किसी यज्ञ में भीतरी श्रद्धा से अग्नि की स्तुति वा अग्निष्टुत् नामक यज्ञ करने से शुद्ध हो जाता है ॥ २ ॥ ब्रह्महत्या करने वाला इन सात प्रकार के प्रायश्चित्तों में से देश, काल, शक्ति और अपराध की योग्यतानुसार कोई एक प्रायश्चित्त करे। ब्राह्मण पुरुष से ब्राह्मणी में स्थापित अज्ञात (जिस में स्त्री वा पुरुष के चिन्ह न प्रकट हुए हों ऐसे) गर्भ को और रजस्वला ब्राह्मणी के मार डालने पर भी यही उक्त प्रायश्चित्त है ॥ ३ ॥ यदि ब्राह्मण किसी क्षत्रिय का वध करे तो ब्रह्मचारी रहता हुआ छः वर्ष व्रत करे अथवा उक्त प्रायश्चित्तों में से आधा प्रायश्चित्त करे। तथा एक बैल और हजार १००० गौओं का दान करे ॥ ४ ॥ यदि ब्राह्मण किसी वैश्य को मार डाले तो ब्रह्मचर्य के सहित तीन वर्ष प्रायश्चित्त करके एक बैल तथा सौ गौ दक्षिणा में देवे ॥ ५ ॥ यदि ब्राह्मण किसी शूद्र का वध करे तो एक वर्ष प्रायश्चित्त और एक बैल दश गौ दक्षिणा में देवे। रजस्वला से भिन्न ब्राह्मणी के वध में भी यही व्रत करे तथा एक गौ एक बैल दक्षिणा में देवे ॥ ६ ॥ मेंडक, न्योला, कौवा, भेड़, घोड़े को देकर वापस लेने वाला, और मूषिक इन को मारने पर शूद्र की हत्या में कहे प्रायश्चित्त करे ॥ ७ ॥ गिरगिटादि हड्डी वाले छोटे २ एक हजार १००० जीवों की हत्या करने और विना हड्डी वाले दंश मशकादि एक गाड़ी भर मारे तो शूद्र हत्या का व्रत करे ॥ ८ ॥ अथवा हड्डी वाले एक २ जीव की हत्या मध्ये किंचित् २ दान करे ॥ ९ ॥ नपुंसक जीव की हत्या में एक बोझा, पलाल एक माशा

थकश्च वराहे घृतघटः सर्प्पे लोहदण्डः ब्रह्मबन्ध्वां च ल्लनायां जीवो वैजिके न किंचित् तल्पान्नधनलाभवधेषु पृथग्वर्षाणि द्वे परदारे त्रीणि श्रोत्रियस्य द्रव्यलाभे चोत्सर्गो यथास्थानं वा गमयेत् प्रतिषिद्धमनःसंयोगे सहस्रवाक्चेदग्न्युत्सादिनिराकृत्युपपातकेषु चैवं स्त्री चातिचारिणी गुप्ता पिण्डंतु लभेताप्यमानुषीषु गोवर्ज्जं स्त्रीकृते कूष्माण्डैर्घृतहोमो घृतहोमः१०

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

सुरापस्य ब्राह्मणस्योष्णामासिञ्चेयुः सुरामास्ये मृतः

शीमा, सुअर के मारने में एक घड़ा घी, सांप के मारने में लोहे का डंडा, निन्दित कुलटा ब्राह्मणी के मारने पर भी लोह दण्ड का दान देवे। बीज सम्बन्धी जीव के भुंजा ने आदि द्वारा नाश होने पर कुछ प्रायश्चित्त नहीं है। शय्या, अन्न, धन के लेने देने में अज्ञान से किसी मनुष्य का मृत्यु होतो भिन्न २ यथोचित वर्षों प्रायश्चित्त होगा। परस्त्री की हत्या में दो वर्ष, वेदपाठी की स्त्री की हत्या में तीन वर्ष प्रायश्चित्त करे। कहीं पड़ा हुआ धन मिले तो धर्म खाते में उस का दान कर देवे अथवा ज्ञात होजाय कि अमुक का है तो उसीके घर पहुंचा देवे। शास्त्रविरुद्ध निषिद्ध कामों में जो मनको लगावे और वर्जने पर सहस्रों विरुद्ध बातें कहे, जिस ने स्थापित अग्नि का और वेदाध्ययन का त्याग किया हो। इत्यादि उपपातकों में और व्यभिचारिणी स्त्री ये उचित प्रायश्चित्त न करें तो घर से निकाल दिये जावें, खाने को भोजन भी इन को न मिले। पर जो स्त्री पीछे भी अपनी यथावत् रक्षा कर ले तो उस को अन्न भोजन मात्र मिला करे। मनुष्य स्त्री से भिन्न गौ को छोड़ के जो पुरुष अन्य पश्वादि से मैथुन करे वह कूष्माण्ड सूक्तों द्वारा अग्नि में घृत का होम प्रायश्चित्त करे ॥ १० ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में तेईसवां अध्याय पूरा हुआ ॥२३॥

अब मद्य पीने का प्रायश्चित्त कहते हैं। मदिरा को अत्यन्त गर्म अग्निवर्ण कर के जानकर मद्यपीनेवाले ब्राह्मण के मुख में उसकी राय से प्रायश्चित्त देनेवाले लोग छोड़ें उससे मरकर वह शुद्ध होता है। यदि अज्ञान से मद्य पीलिया

शुद्ध्येदमत्या पाने पयो घृतमुदकं वायुं प्रति त्र्यहं तप्तानि स कृच्छ्रस्ततोऽस्य संस्कारः ॥ १ ॥ मूत्रपुरीषरेतसां च प्राशने श्वापदोष्ट्रखराणां चाङ्गस्य ग्राम्यकुक्कुटशूकरयोश्च गन्धाघ्राणे सुरापस्य प्राणायामो घृतप्राशनं च पूर्वैश्च दष्टस्य ॥ २॥ तल्पे लोहशयने गुरुतल्पगः शयीत सूर्मीं ज्वलन्तीं वा श्लिष्येल्लिङ्गं वा सवृषणमुत्कृत्याञ्जलावाधाय दक्षिणाप्रतीचीं दिशं व्रजेदजिह्ममाशरीरनिपातान्मृतः शुध्येत् ॥ ३॥ सखिसयोनिसगोत्राशिष्यभार्यासु स्नुषायां गवि च गुरुतल्पसमोऽवकर इत्येके, श्वभिः खादयेद्राजा निहीनवर्णगमने स्त्रियं

हो तो दूध, घी, जल, और वायु इन को तीन २ दिन गर्म कर २ पीवे इस बारह दिन के व्रत का नाम तप्त कृच्छ्र है। इस के बाद उस का फिर उपनयन संस्कार कराया जावे ॥ १ ॥ अज्ञान से विष्ठा, मूत्र, और वीर्य के खालेने पर भी वही तप्त कृच्छ्र और पुनःसंस्कार होना चाहिये। तथा श्वापद, ऊंट, गधा, गांव का मुरगा और गांव के सुवर का मांस खाने पर भी वही पूर्वोक्त प्रायश्चित्त जानो। यज्ञ करने वाले ब्राह्मण को यदि मद्य पीने वाले का गन्ध लगजाय तो तीन बार प्राणायाम करके गोघृत खावे तब शुद्ध होता है। तथा जिस को श्वापदादि काटे वह भी यही प्रायश्चित्त करे ॥ २ ॥ जिस ने गुरुपत्नी से गमन किया हो वह लोहे की खटिया को अत्यन्त गर्म करके उसपर लेटजावे। अथवा लोहेकी स्त्री अनवा के अग्निमें अत्यन्त तपाके उसको जोर से लिपट जावे। अथवा अण्डकोशों सहित उपस्थेन्द्रिय को काट के दोनों हाथ की अंजली में धरके दक्षिण पश्चिम के बीचकी नैर्ऋत दिशाको अबतक शरीर न गिर जाय सीधा चला जावे लौट कर पीछे भी न देखे इस प्रकार मर जाने पर शुद्ध होता है ॥ ३ ॥ मित्र की पत्नी, सगी बहन, अपने गोत्र की स्त्री, और शिष्य की स्त्री, पुत्र बधू, और गौ इन से संयोग करना गुरुपत्नी के संयोग के तुल्य महापातक है। कोई आचार्य यह कहते हैं कि उक्त स्त्रियों से गमन करने वाले को कूड़ा करकट के समान त्याग देना योग्य है, फिर कभी जाति पांति में न लेवें। यदि उच्च कुलकी स्त्री अपने पतिका निरादर

प्रकाशं पुमांसं घातयेद्वुयथोक्तं वा गर्दभेनावकर्णी निर्ऋतिं चतुष्पथे यजेत तस्याजिनमूर्ध्वबालं परिधाय लोहितपात्रः सप्त गृहान् भैक्षं चरेत् कर्माचक्षाणः संवत्सरेण शुध्येत् ॥४॥ रेतस्कन्दने भये रोगे स्वप्नेऽग्नीन्धनभैक्षचरणानि सप्तरात्रं कृत्वाऽऽज्यहोमः साभिसन्धेर्वा रेतस्याभ्यां सूर्याभ्युदिते ब्र ह्मचारी तिष्ठेदहरभुञ्जानोऽभ्यस्तमिते च रात्रिं जपन् सावि त्रीमशुचिं दृष्ट्वाऽऽदित्यमीक्षेत प्राणायामं कृत्वाऽमेध्यप्राशने वाऽभोज्यभोजने निष्पुरीषीभावस्त्रिरात्रावरमभोजनं सप्तरात्रं वा स्वयं शीर्णान्युपयुञ्जानः फलान्यनतिक्रामन् प्राक्पञ्चनखे-

---

करके किसी नीच वर्णसे संयोग करे तो राजा बहुत से जन समुदाय में उस पापिनी को शिकारी कुत्तोंसे चिथवा डाले । और उस नीच पापी कोभी जन समुदाय में कटवादे वा तपाई हुई लोहेकी खटिया पर लिटाके जलवादेवे । जो ब्राह्मणादि द्विज किसी व्रत में ब्रह्मचारी रहने का पूर्व संकल्प करके बीच में स्त्री संयोग करे वह अवकीर्णी कहाता है । वह अवकीर्णी पुरुष काने गर्दभ से चौराहे पर निर्ऋति देवता का रात में यज्ञ करे । ऊपर को बाल करके उस के चर्म को ओढ़कर लालपात्र हाथ में लिये अपने पाप को कहता हुआ एक वर्ष तक सात घर से भिक्षा मांग के खावे तब शुद्ध होता है ॥ ४ ॥ वीर्यपात होने पर, भय, रोग और दुःस्वप्न के समय ब्रह्मचारी के नियम और चिन्ह धारण करके सात दिन तक भिक्षा मांगकर भोजन और समिदाधान ठीक नियम से करता हुआ सामान्यार्थ वाले मन्त्र से वा (यजु० अ० १९ । ९६) के (रेतोमूत्रं०) इत्यादि दो मन्त्रों से घी का होम करे । भोजन कुछ न करके दिन में खड़ा रहे और सूर्यास्त होने पर रात्रि में सावित्री गायत्री का जप करता हुआ खड़ा रहे । अशुद्ध वस्तु के दीखने पर प्राणायाम करके सूर्य । नारायण का दर्शन करे । अपवित्र वा अभक्ष्य वस्तु के खालेने पर कम से कम तीन दिन भोजन न करे और विरेचक वस्तु खाकर मल को निकाल देवे अथवा नियम का उल्लङ्घन न करता हुआ सात दिन तक वृक्ष से स्वयं गिरे हुए केवल फलों को खाकर प्रायश्चित्त करे । पांच नखों वाले श्वाविधादि पांच को छोड़ के अन्य जीवों का मांस खावे तो उस का वमन करके गोमूत्र का प्राशन करे । गाली देने, झूठ बोलने और किसी को मारने पीटने पर

भ्यश्छर्द्दिनो घृतप्राशनं आक्रोशानृतहिंसासु त्रिरात्रं परम-
न्तपःसत्यवाक्ये वारुणीपावमानीभिर्होमो विवाहमैथुननिर्म-
र्मसंयोगेष्वदोषमेकेऽनृतं न तु खलु गुर्वर्थेषु यतः सप्त पुरुषा-
न्नितश्च परतश्च हन्ति मनसापि गुरोरनृतं वदन्नल्पेष्व-
प्यर्थेष्वन्त्यावसायिनीगमने कृच्छ्राब्दोऽमत्या द्वादशरात्रमु-
दक्यागमने त्रिरात्रं त्रिरात्रम् ॥ ५ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥

रहस्यं प्रायश्चित्तमविख्यातदोषस्य चतुर्ऋचं तरत्सम-
न्दीत्यप्सु जपेदप्रतिग्राह्यं प्रतिजिघृक्षन् प्रतिगृह्य वाऽभोज्यं
बुभुक्षमाणः पृथिवीमावपेदृत्वन्तरारममाण उदकोपस्पर्शना-
च्छुद्धिमेके स्त्रीषु पयोव्रतो वा दशरात्रं घृतेन द्वितीयम

अपराधी मनुष्य सत्य बोलने में परम तप वा पुण्य मानता हुआ सत्य कहे
तो वरुण देवता वाली और पावमानी ऋचाओं से तीन दिन तक होम
करे। विवाह और मैथुन की सिद्धि वा प्राप्ति के लिये मिथ्या भाषण में दोष
नहीं यह किन्हीं आचार्यों का मत है। परन्तु गुरु के किसी छोटे प्रयोजन
वा काम में भी झूठ न बोले क्योंकि आगे पीछे अपनी सात २ पीढ़ी कुल
का वह मनुष्य नाश करता है जो गुरु से झूठ बोलता है। किसी अन्त्य-
ज नीच स्त्री से जान कर संग करे तो एक वर्ष तक कृच्छ्रव्रत करे और बिना
जाने संग करे तो बारह दिन एक कृच्छ्रव्रत करे। तथा रजस्वला स्त्री से ग-
मन करे तो तीन दिन प्रायश्चित्त करे ॥ ५ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में चौबीसवां अध्याय पूरा हुआ ॥२४॥

जिन का दोष प्रसिद्ध न हुआ हो ऐसे गुप्त पापों का प्रायश्चित्त (ऋ-
ग्वेद अष्ट० ७ अ० १। व० १५ तरत्समन्दी०) इत्यादि चार ऋचाओं का जल
में खड़े होकर जप करे। न लेने योग्य दान को लेना चाहता हुआ वा ले कर
तथा अभक्ष्य वस्तु को खाना चाहता हुआ थोड़ी सी पृथिवी का दान करे।
यदि ऋतु काल से भिन्न समय स्त्री से रमण करे तो कोई आचार्य स्नान
करने मात्र से शुद्धि मानते हैं। स्त्रियों में गर्भपात करने पर पहिले दश-
दिन तक दूध का व्रत करे, फिर दूसरे दश दिन तक गोघृत ही खावे, फिर
तीसरे दश दिन तक केवल जल पीके रहे। फिर प्रातःकाल दश दिन

द्भिस्तृतीयं द्विवादिस्वेकभक्तको जलक्लिन्नवासा लोमानि, नखानि, त्वचं, मांसं, शोणितं, स्नायु,अस्थि,मज्जानमिति होम आत्मनो मुखे मृत्योरास्ये जुहोमीत्यन्ततः ॥ १ ॥ सर्वेषामेतत्प्रायश्चित्तं भ्रूणहत्यायाः ॥ २ ॥ अथान्यउक्तो नियमोऽग्ने त्वं पारयेति महाव्याहृतिभिर्जुहुयात्कूष्माण्डैश्चाज्यं तद्व्रतएव वा ब्रह्महत्यासुरापानस्तेयगुरुतल्पेषु प्राणायामैः स्नानोऽघमर्षणं जपेत् सममश्वमेधावभृथेन सावित्रीं वा सहस्रकृत्व आवर्तयन् पुनीते हैवात्मानमन्तर्जले वाऽघमर्षणं त्रिरावर्त्तयन् पापेभ्यो मुच्यते मुच्यते ॥ ३ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

तदाहुः कतिधाऽवकीर्णी प्रविशतीति मरुतः प्राणेनेन्द्रं बलेन

एक एकवार खाय, जल में भिगो ये हुए वस्त्र पहना करे और (लोमानि स्वाहा) इत्यादि मन्त्रों से आठ आहुति घी का होम करके (आत्मनो० जुहोमि स्वाहा) इससे अन्त की आहुति देवे ॥ १ ॥ जो कोई भ्रूणहत्या करे उन सभों का यही प्रायश्चित्त है ॥२॥ इनके अनन्तर अन्य नियम यह कहा है कि (अग्ने त्वं पारया ऋ०अ०अ०१ सू०१८९ । मं०२) इस ऋचा के साथ तीन महाव्याहृति लगाकर और कूष्माण्ड मन्त्रों से घी का होम करे । तथा ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्ण की चोरी, और गुरुपत्नीगमन इन महापातकों में भी उसी पूर्वोक्त दश दिन दूध का व्रतादि कर के स्नान करने पश्चात् प्राणायामों के साथ अघमर्षण सूक्त का जप करे तो यह कार्य अश्वमेध सम्बन्धी अवभृथ स्नान के तुल्य पापों का नाश करनेवाला है। वा नित्य नियम से एक हजार गायत्री का जप करता हुआ अपने को पवित्र ही कर लेता है । अथवा नित्य२ जलाशय के भीतर डुबकी लगाके अघमर्षण सूक्त की तीन आवृत्ति करे तो पापों से छूट जाता है ॥ ३५ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में पच्चीशवां अध्याय पूरा हुआ ॥ २५॥

अब यह कहते हैं कि किस२ प्रकार से अवकीर्णी (ब्रह्मचर्य व्रत के भीतर व्यभिचार करनेवाले) का तेज घटता है वा हानि होती है । मरुत् देवतां में

बृहस्पतिं ब्रह्मवर्चसेनाग्निमेवेतरेण सर्वेणेति सोऽमावास्यायां निश्यग्निमुपसमाधाय प्रायश्चित्ताज्याहुतीर्जुहोति कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामकामाय स्वाहा,कामाभिदुग्धोऽस्म्यभिदुग्धोऽस्मि कामकामाय स्वाहेति समिधमाधायानुपर्युक्ष्य यज्ञवास्तु कृत्वोपस्थाय संमासिञ्चन्त्वित्यनेतया त्रिरुपतिष्ठेत। त्रय इमे लोका एषां लोकानामभिजित्याअभिक्रान्त्या इत्येतदेवैकेषां कर्म्माधिकृत्य पूतइव स्यात्सइत्थं जुहुयादित्थमनुमन्त्रयेद् वरो दक्षिणेति॥१॥ प्रायश्चित्तमविशेषाद्नाऽर्जवपैशुनप्रतिषिद्धाचारानाद्यप्राशनेषु ॥ २॥ शूद्रायां च रेतः सिक्त्वाऽयोनौ च दोषवति कर्म्मण्यभिसन्धिपूर्वेऽप्यलिङ्गाभिरपउपस्पृशेद्वारुणीभिरन्यैर्वा पवित्रैः प्रतिषिद्ध-

---

ाधशक्ति, इन्द्र देवतामें बल, बृहस्पति में ब्रह्म तेज और अन्य सब शक्तियां अग्नि देवता में खिंचकर चली जाती हैं। इसलिये वह अवकीर्णी पुरुष अमावस्या को रात के समय अग्नि को स्थापित करके (कामाव०) इत्यादि दो मन्त्रों से दो प्रायश्चित्ताहुति होम करके अग्नि में प्रजापति के ध्यानपूर्वक समिधा चढ़ाके द्वितीयवार ईशान कोण से लेकर प्रदक्षिण पर्युक्षण कर यज्ञशाला की कल्पना करके गृहाभिमानी देवता का उपस्थान (गृहामा०) इत्यादि मन्त्रों से करके (संमासिञ्चन्तु०) इस ऋचा से तीन बार स्तुति करे। किन्हीं आचार्यों का मत है कि (त्रयइमेलोका०) इत्यादि श्रुति से उपस्थान करे। जो पुरुष मानस, वाचिक, कायिक रूप से अधिकांश शुद्ध हो वही इस उक्त प्रकार से होम और अनुमन्त्रण वा उपस्थान करे और दक्षिणा में ऋत्विजों को सुवर्णादि धन देवे ॥ १ ॥ कठोरता, चुगली, निन्दा, शास्त्र में निषेध किये काम को करने और अभक्ष्य के भक्षण में ॥२॥ तथा शूद्रा स्त्री के साथ संग करके और योनि से भिन्न स्थल में वीर्य पात करके तथा आसक्ति या आग्रह के साथ किसी दोष युक्त काम में प्रवृत्त होकर अप् (जलवाचक) चिन्ह जिनमें हो वा वरुण देवतावाली ऋचाओं से अथवा अन्य पवित्र मन्त्रों से होमादि प्रायश्चित्त करे। वाणी तथा मनके द्वारा निषिद्ध आचरण करनेपर पांच वा सब व्याहृतियोंद्वारा जल का आचमन करे और (अहश्चमा०) मन्त्र से

वाङ्मनसयोरपचारे व्याहृतयः संख्याताः पञ्च सर्वास्वपो-वाचामेदहश्च मादित्यश्च पुनातु स्वाहेति प्रातः, रात्रिश्च मा वरुणश्च पुनात्विति सायमष्टौ वा समिधआदध्याद्देवकृत-स्येति हुत्वैवं सर्वस्मादेनसो मुच्यते मुच्यते ॥ ३ ॥

इति गौतमीये धर्म्मशास्त्रे षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अथातः कृच्छ्रान् व्याख्यास्यामो हविष्यान्प्रातराशान् भुक्त्वा तिस्रो रात्रीर्नाश्नीयादथापरं त्र्यहं नक्तं भुञ्जीत, अथापरं त्र्यहं न कंचन याचेदथापरं त्र्यहमुपवसेत्तिष्ठेदहनि रात्रावासीत क्षिप्रकामः सत्यं वदेदनार्यैर्न संभाषेत रौरवयौधाजिने नित्यं प्रयुञ्जीतानुसवनमुदकोपस्पर्शनमापोहिष्ठेति तिसृभिः पवित्रवतीभिर्मार्जयेत्, हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाइत्यष्टाभिः॥१॥ अथोदकतर्पणम्—ओंनमोहमाय मोहमाय

प्रातःकाल तथा (रात्रिश्चमा०) मन्त्र से सायंकाल में होम करे। अथवा दो मन्त्र ये और (देवकृतस्यै० यजु० अ०८। १३) के छः मन्त्र इन सब से आठ समिधा अग्नि में चढ़ावे ऐसा करने से सब पापों से मुक्त हो जाता है॥३॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में छब्बीसवां अध्याय पूरा हुआ ॥

अब यहां से आगे कृच्छ्रव्रतों का व्याख्यान करेंगे। प्रातःकाल पहिले प्रारम्भ के दिन हविष्यान्न भोजन करके आगे तीन रात्री बीतने तक कुछ भोजन न करे। इसके पश्चात् तीन दिन रात्रि में भोजन करे। इसके पश्चात् तीन दिन किसी से कुछ याचना करके न खावे किन्तु यदि बिना मांगे जो मिले वही खा लेवे। इस के बाद तीन दिन उपवास करे कुछ न खावे, दिन में खड़ा रहे रात में बैठा रहे। शीघ्र ही पाप निवृत्ति और शुभफल प्राप्ति चाहता हो तो सत्य ही बोले और शूद्रादि नीचों के साथ संभाषण न करे। रुरु (रोज) और योध नामक मृगों के चम वस्त्र की जगह ओढ़े। सायं प्रातः और मध्याह्न में तीनों वार (आपोहिष्ठा०) इत्यादि तीन मन्त्रों से स्नान करे और (हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः०) इत्यादि आठ मन्त्रों से नित्य मार्जन करे ॥ १ ॥ फिर (ओं नमोहमाय०) इत्यादि मन्त्रों को पढ़ता हुआ प्रत्येक नमः

संहमाय धुन्वते तापसाय पुनर्वसवे नमोनमो मौञ्ज्यायोर्म्याय वसुविन्दाय सर्वविन्दाय नमोनमः पाराय सुपाराय महापाराय पारयिष्णवे नमोनमो रुद्राय पशुपतये महते देवाय त्र्यम्बकायैकचराधिपतये हराय शर्वायेशानायोग्राय वज्रिणे घृणिने कपर्दिने नमोनमः सूर्यायादित्याय नमोनमो नीलग्रीवाय शितिकण्ठाय नमो नमः कृष्णाय पिङ्गलाय नमो नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय वृद्धायेन्द्राय हरिकेशायोर्ध्वरेतसे नमो नमः सत्याय पावकाय पावकवर्णाय नमो नमः कामाय कामरूपिणे नमोनमो दीप्ताय दीप्तरूपिणे नमोनमस्तीक्ष्णाय तीक्ष्णरूपिणे नमोनमः सौम्याय सुपुरुषाय महापुरुषाय मध्यमपुरुषायोत्तमपुरुषाय नमोनमो ब्रह्मचारिणे नमोनमश्चन्द्रललाटाय नमोनमः कृत्तिवाससे पिनाकहस्ताय नमोनम इति ॥ २ ॥ एतदेवादित्योपस्थानमेता एवाज्याहुतयो द्वादशरात्रस्यान्ते चरुं श्रपयित्वैताभ्यो देवताभ्यो जुहुयात्—अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा, इन्द्राग्निभ्यामिन्द्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे प्रजापतयेऽग्नये स्विष्टकृत इति ॥ ३ ॥ ततो ब्राह्मणतर्पणम् ॥४॥ एतेनैवातिकृच्छ्रो व्याख्यातो यावत्सकृदाददीत तावदश्नीयादब्भक्षस्तृतीयः स कृ-

---

के साथ जल से शिव जी के लिये देवतर्पण करे ॥ २ ॥ इन्हीं मन्त्रों से सूर्योपस्थान तथा इन्हीं से घी की आहुति देवे यहां तक का सब कृत्य प्रतिदिन करे। कृच्छ्र व्रत के बारहवें दिन समाप्ति में गृह्यसूत्रोक्त विधि से चरु पकाकर (अग्नये स्वाहा) इत्यादि मन्त्रों से चरु की दश आहुति देवे ॥ ३ ॥ इस के पश्चात् ब्राह्मणों को भोजनादि से तृप्त करे ॥ ४ ॥ इसी क्रम से अतिकृच्छ्र व्रत का व्याख्यान जानो। उस में इतनी विशेषता है कि बीच के छः दिनों में जो भोजन कहा है सो उतना ही एक दिन में खावे कि जितना एक बार में मुख में खासके अर्थात् एक ग्रास मात्र एक दिन में भोजन करे तथा आगे पीछे तीन २ दिन सर्वथा उपवास करे। और जिस में बीच के

च्छ्रातिकृच्छ्रः ॥५॥ प्रथमं चरित्वा शुचिः पूतः कर्मण्यो भवति, द्वितीयं चरित्वा यत्किंचिदन्यन्महापातकेभ्यः पापं कुरुते तस्मान्मुच्यते, तृतीयं चरित्वा सर्वस्मादेनसो मुच्यते। अथैतांस्त्रीन् कृच्छ्रान् चरित्वा सर्वेषु वेदेषु स्नातो भवति सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति यश्चैवं वेद यश्चैवं वेद ॥ ६ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अथातश्चान्द्रायणं तस्योक्तो विधिः कृच्छ्रे वपनं व्रतं चरेत् श्वोभूतां पौर्णमासीमुपवसेत्–आप्यायस्व,संतेपयांसि, नवोनव,इति चैताभिस्तर्पणमाज्यहोमो हविषश्चानुमन्त्रणमुपस्थानं चन्द्रमसो यद्देवा देवहेलनमिति चतसृभिराज्यं जुहुयात, देवकृतस्येति चान्ते समिद्भिः–ओंभूर्भुवः स्वस्तपः,-

छः दिनों में भी केवल जल ही पीकर रहे वह कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत कहाता है ये तीन प्रकार के कृच्छ्र कहाते हैं ॥ ५ ॥ पहिले कृच्छ्रव्रत को करने से शुद्ध पवित्र हुआ धर्म के यज्ञादि शुभ कर्म करने योग्य होता है। द्वितीय अतिकृच्छ्रव्रत का अनुष्ठान करके जो कुछ महापातकों से भिन्न उपपातकादि किये वा करता है उन सब से मुक्त हो जाता है। और तीसरे कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत का अनुष्ठान करके छोटे बड़े सभी पापोंसे मुक्त शुद्ध निर्दोष होजाता है। और यदि इन तीनों कृच्छ्रों का एक साथ क्रमशः अनुष्ठान करे तो सब वेदों में निष्णात निपुण होता अर्थात् सब वेदों के पढ़ने के पुण्य फल का भागी होता, सब देवता उसको जानते और कृपादृष्टि करते हैं। और जो इन कृच्छ्रों की ऐसी महिमा को यथार्थ जानता है उस को भी यही फल प्राप्त होता है ॥६॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में सत्ताईसवां अध्याय पूरा हुआ ॥२७॥

अब चान्द्रायण व्रत का जैसा विधान धर्मशास्त्रकारों ने कहा माना है सो कहते हैं। चतुर्दशी के दिन चान्द्रायण करने वाला केश श्मश्रु सब का मुण्डन कराके केवल शिखामात्र रक्खे। और उसीदिन उपवास करे और (आप्यायस्वसमेतु० । सन्तेपयांसि० यजु० अ० १२ । ११२ । ११३ । नवो नवो भवति० ऋ० अ० ८ अ० ३ व० २३) इन तीन मन्त्रों से पौर्णमासी के दिन चन्द्रमा देवता के लिये तर्पण, घी का होम, हविष्य का अनुमन्त्रण, (अर्थात् हविष्य

सत्यं,यशः, श्रीरूपं गोरोजस्तेजः पुरुषो धर्म्मः शिवश्शिवइत्ये तैर्ग्रासानुमन्त्रणं प्रतिमन्त्रं मनसा नमः स्वाहेति वा, सर्वं ग्रासप्रमाणमास्याविकारेण चरुभैक्षसक्तुकणयावकपयोदधिघृतमूलफलोदकानि हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि पौर्णमास्यां पञ्चदश ग्रासान् भुक्त्वैकापचयेनापरपक्षमश्नीयादमावास्यायामुपोष्यैकोपचयेन पूर्वपक्षं विपरीतमेकेषाम् ॥ १ ॥ एष चान्द्रायणो मासो मासमेकमाप्त्वा विपापो विपाप्मा सर्वमेनो हन्ति द्वितीयमाप्त्वा दशपूर्वान्दशावरानात्मानं वैकविंशं

वस्तु को देखते हुए मन्त्र पढ़ना) और उपस्थान करे । तदनन्तर (यद्देवादेव० यजु० अ० २० । १४—१७) इन चार मन्त्रोंसे घी का होम करके (देवकृतस्यैनसो० यजु० अ० ८ । १३) के छः मन्त्रों द्वारा समिधाओं का होम करके (ओं भूः०) इत्यादि प्रकार—भूः, भुवः, स्वः, तपः, सत्यम्, यशः, श्रीः, रूपम्, गीः, ओजः, तेजः, पुरुषः, धर्मः, शिवः, शिवः, इन प्रत्येक के साथ ओं लगाकर एक २ को पढ़ २ क्रम से १५ ग्रासों को देखे । और प्रत्येक ग्रास को खाते समय (नमः स्वाहा) ऐसा मन से कहता जावे । जिस में मुख की स्वाभाविक दशा में विकार न हो (अधिक फैलाने न पड़ें) वही एक ग्रास का प्रमाण जानो । चरु, (भात) भिक्षा का अन्न, जौ का सत्तू, कण, कुलत्थ, गौ के दूध, दही, घी, मूल, फल, जल, ये सब व्रत में खाने योग्य हविष्यान्न हैं । इन में अगला २ श्रेष्ठ है । पौर्णमासी को पन्द्रह ग्रास खाकर आगे कृष्णपक्ष की प्रत्येक प्रतिपदादि तिथियों में एक २ ग्रास घटाता जावे । प्रतिपदा को १४ द्वितीया को १३ इत्यादि प्रकार, चतुर्दशी को एक ग्रास खाकर अमावास्या को निराहार उपवास करे । फिर शुक्ल प्रतिपदा से एक २ ग्रास बढ़ाता जाय पौर्णमासी को फिर १५ ग्रास खावे (यही पिपीलिका मध्य चान्द्रायण व्रत कहाता है) किन्हीं ऋषियों का मत है कि कृष्णपक्ष में एक २ ग्रास बढ़ाकर शुक्ल पक्ष में घटावे (यही यवमध्य चान्द्रायण व्रत है) ॥ १ ॥ यह चान्द्रायण एक मासका कहाता है । एक मास व्रत करके पापों से मुक्त होकर सब मलिनता वा अपराधों को नष्ट करता, द्वितीय चान्द्रायण व्रत करके अपने कुल की दश पिछली दश अगली और इक्कीसवें अपने को तथा जिस पङ्क्ति

पङ्क्तीश्च पुनाति संवत्सरमाप्त्वा चन्द्रमसः सलोकतामा-प्नोत्याप्नोति ॥ २ ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

ऊर्ध्वं पितुः पुत्रा ऋक्थं भजेरन् निवृत्ते रजसि मातुर्जीवति चेच्छति सर्व्वं वा पूर्वजस्येतरान्बिभृयात् पितृवत् ॥ १ ॥ विभागे तु धर्मवृद्धिर्विंशतिभागो ज्येष्ठस्य मिथुनमुभयतोदद्युक्तो रथो गोवृषः काणखोरकूटखञ्जा मध्यमस्यानेकश्चेदविर्धान्यायसी गृहमनोयुक्तं चतुष्पदांचैकैकं यवीयसः समं चेतरत्सर्व्वं द्व्यंशी वा पूर्वजः स्यादेकैकमितरेषामेकैकं वा धनरूपं काम्यं पूर्व्वः पूर्वो लभेत दशतः पशूनां नैकशफोनेकशफानां वृषभोऽधिको ज्येष्ठस्य ऋषभषोडशा ज्यैष्ठिनेयस्य

में वह उस को पवित्र कर देता है। और एक वर्ष तक चान्द्रायण व्रत करे तो मरणानन्तर चन्द्रलोक सम्बन्धी स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ २ ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में अट्ठाईसवां अध्याय पूरा हुआ ॥२८॥

पिता का स्वर्गवास होने वा संन्यासादि द्वारा पृथक् होनेपर पुत्रलोग पिता के धनादि का विभागकर लेवें। अथवा पिता के जीवित विद्यमान रहते भी जब माता का रजोधर्म होना बन्द होजावे तब पिता की इच्छा वा आज्ञा हो तो विभाग करलें। अथवा ज्येष्ठ भ्राता सब धन का मालिक रहे और अन्य सब भाइयों का पिता के तुल्य भरण पोषण करे ॥ १ ॥ यदि सब भाई विभाग करें तो धर्मानुकूल ज्येष्ठ भाई को धन का बीसवां भाग, एक२ घोड़ा घोड़ी युक्तरथ और एक बैल इतना अधिक मिलना चाहिये। काणा, लगड़ा, और एक हृष्ट पुष्ट बैल मध्यम-(मझिले) भाई को अधिक, यदि मझिले भाई कई हों तो भेड़ें, धान्य (गेंहू आदि) लोहे के वस्तु, और घर इनमें जोर अधिक हों उन में से सब बीच के भाइयों को यथा सम्भव अधिक मिले और एक२ बैल सहित गाड़ी छोटे को अधिक दी जावे। इससे भिन्न जो सामान रहा वह सब को बराबर मिले। अथवा दो भाग ज्येष्ठ भाई लेवे तथा अन्य सबको एक२ भाग मिले। अथवा छोटे२ भाई की अपेक्षा एक२ धनरूप-मूल्य वान् अंश बड़े२ सब को अधिक मिले। अथवा दश घोड़े और बैलों में से एक बैल ज्येष्ठ भाई को अधिक दिया जावे। सबसे बड़ी पिता की स्त्री के बड़े पुत्र को एक बैल तथा १५ अन्य पशु अधिक मिलें। अथवा उसकी बराबर हो उ-

समं वा ज्यैष्ठिनेयेन यवीयसां प्रतिमातृ वा स्ववर्गे भागविशेषः ॥ २ ॥ पितोत्सृजेत् पुत्रिकामनपत्योऽग्निं प्रजापतिं चेष्ट्वाऽस्मदर्थमपत्यमिति संवादाभिसन्धिमात्रात्पुत्रिकेत्येकेषां तत्संशयान्नोपयच्छेदभ्रातृकाम् ॥ ३ ॥ पिण्डगोत्रर्षिसंबन्धाऋक्थं भजेरन् स्त्री चानपत्यस्य बीजं वा लिप्सेद् देवरवत्यन्यतो जातमभागम् ॥४॥ स्त्रीधनं दुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानां च भगिनी शुल्कं सोदर्याणामूर्ध्वं मातुः पूर्वं चैके ॥ ५ ॥ संसृष्टविभागः प्रेतानां ज्येष्ठस्य संसृष्टिनि प्रेतेऽसंसृष्टि ऋक्थभाक् विभक्तजः पित्र्यमेव ॥ ६ ॥ स्वयम-

---

सके छोटे सहोदर भाइयों को मिले। अथवा प्रत्येक माता के ज्येष्ठ २ भाई को पिता यथोचित अधिक भाग देवे ॥ २ ॥ जिसके कोई पुत्र न हो किन्तु कन्या हो वह अग्नि और प्रजापति देवता के लिये आहुति देकर संकल्प करे कि इस कन्या को मैं पुत्र के स्थान में करता हूं जो पुत्र इस में होगा वही मेरा श्राद्धादि कर्म करेगा। कोई आचार्य कहते हैं कि (इकरारनामा) न करने पर मनसे मान लेने मात्र से भी कन्या उसकी पुत्रिका हो जाती है कि जिसके कोई पुत्र न हो। इसी कारण पिता की पुत्रिका हो जाने की शंका से उस कन्या से विवाह न करे जिसके कोई भाई न हो ॥ ३ ॥ जिसके पुत्र कन्या कोई भी न हो उसके धनादि को उसके सपिण्डवाले, वा सगोत्री अथवा वेद विद्या सम्बन्धी गुरु शिष्यादि लेवे और उसकी स्त्री को भी पति का धनादि मिलना चाहिये। अथवा स्त्री के कोई खास देवर हो तो वह नियोग विधि से वीर्य दान ले लेवे। अन्य गैर मनुष्य से सन्तान पैदा करे तो वह धन का भागी न होगा ॥ ४ ॥ जो माता का निज का स्त्रीधन हो उसको लेने का अधिकार बिना विवाही या विवाहित दीन दुःखित लड़कियों का है। और सहोदर बहन के विवाह में कन्या के माता पिता ने जो धन लिया हो वह भी माता के मरने पर उन्हीं लड़कियों का होगा। कोई आचार्य कहते हैं कि माता की विद्यमानता में ही वह धन लड़कियों का हो जाता है ॥५॥ विभाग हो जाने पर फिर से जिनने साझे में कोई व्यापार किया हो उनके मरजाने पर ज्येष्ठ भाई को उनका भाग मिलेगा। यदि ज्येष्ठ भी साझीदार हो के साथ ही समाप्त हो गया हो तो जो साझीदार नहीं थे उन अन्य भाइयों को वह भाग मिलना चाहिये। भाइयों का विभाग होजाने पर जो अन्य पुत्र उत्पन्न हो तो उसको वही धन का भाग मिलेगा जो पिता के अधिकार में हो ॥६॥ वैद्य भाई ने पैदा किये धन में से अपने अवैद्य भाइयों को भलेंही भाग न

र्जितमवैद्येभ्यो वैद्यः कामं न दद्यात् ॥७॥ अवैद्याः समं विभजेरन् ॥८॥ पुत्रा औरसक्षेत्रजदत्तकृत्रिमगूढोत्पन्नापविद्धा ऋक्थभाजः कानीनसहोढपौनर्भवपुत्रिकापुत्रस्वयंदत्तक्रीता गोत्रभाजश्चतुर्थांशिनश्चौरसाद्यभावे ब्राह्मणस्य राजन्यापुत्रो ज्येष्ठो गुणसंपन्नस्तुल्यांशभाग्ज्येष्ठांशहीमन्यद्राजन्यावैश्यापुत्रसमवाये स यथा ब्राह्मणीपुत्रेण क्षत्रियाच्चेच्छूद्रापुत्रोऽप्यनपत्यस्य शुश्रूषुश्चेल्लभेत वृत्तिमूलमन्तेवासिविधिना सवर्णापुत्रोऽप्यन्यायवृत्तो न लभेतैकेषां ब्राह्मणस्याऽनपत्यस्य श्रोत्रिया ऋक्थं भजेरन् राजेतरेषां जडक्लीबौ भर्तव्यावपत्यं जडस्य भागार्हं शूद्रापुत्रवत् प्रतिलोमास्तूदकयोगक्षेमकृतान्ने-

---

देवें उसमें न्यायानुसार उनका अधिकार नहीं है ॥७॥ वैद्य से भिन्न भाई अन्य मार्ग से प्राप्त धन का बराबर विभाग कर लेवें ॥८॥ १–औरस–(विवाहिता स्त्री में उत्पन्न) २–क्षेत्रज–(वाग्दानानन्तर पति के मरने पर देवर से उत्पन्न) ३–दत्त (गोद लिया) ४–कृत्रिम–(अपने किसी सजातीय गुण दोषज्ञ सुलक्षण पुत्र गुणयुक्त को पुत्र नियत करे) ५–गूढोत्पन्न (जिसकी स्त्री में किसी अज्ञात पुरुष से उत्पन्न हुआ) ६–अपविद्ध (माता पिता वा अन्य किसी ने त्याग दिया हो–और वनादि में जिस को पड़ा मिले तो वह उसी का है) ये छः पुत्र पिता के धनके भागी हैं। कानीन (विवाह से पहिले कन्या में उत्पन्न) सहोढ (विवाह के समय जो गर्भ में हो) पौनर्भव (पुनर्भू स्त्री ने अन्य पुरुष से उत्पन्न किया) पुत्री का पुत्र, स्वयंदत्त (जिस के माता पिता न रहे हों वा उन ने अकारण त्याग दिया हो तब जिसके शरण में वह आवे) क्रीत (जिसके माता पिता को धनादि देकर लिया हो) ये सब कानीनादि अपने गोत्र के माने जावें और अन्यों की अपेक्षा चतुर्थांश के भागी हैं। ब्राह्मण पुरुष से ब्राह्मणी में उत्पन्न कोई पुत्र न हो तो क्षत्रिया स्त्री में उत्पन्न पुत्र शुभगुण संयुक्त हो तो ज्येष्ठ माना जाय और बराबर भाग उसको मिले। परन्तु क्षत्रिया, वैश्या दोनों स्त्रियों के पुत्र ब्राह्मण से हों तो ज्येष्ठांश का अधिक भाग किसी को न मिलेगा। यदि क्षत्रिय पुरुष से विवाहित वैश्य स्त्री में उत्पन्न हो तो वह ज्येष्ठांश का भागी होगा। जिस द्विज के कोई अन्य पुत्र न हो तो विवाहित शूद्रा स्त्री का पुत्र यदि शिष्य के समान पिता की सेवा शुश्रूषा करता हो तो भोजनादि निर्वाह मात्र जीविका मिलने का अधिकारी है। और किन्हीं आचार्यों का मत है कि सवर्णा स्त्री से उत्पन्न हुआ भी पुत्र कुमार्गी हो तो उसको कुछ भी भाग न मिलना चाहिये। जिस ब्राह्मण के कोई सन्तान वा समीपी वारिस (दायभागी) न हो उसका धन वेदपाठी ब्राह्मणों को मिलना चाहिये।

ष्वविभागः स्त्रीषु च संयुक्तास्वनाज्ञाते दशावरैः शिष्टैरूहवद्भिरलुब्धैः प्रशस्तं कार्यम् ॥ ९ ॥ चत्वारश्चतुर्णां पारगा वेदानां प्रागुत्तमात्त्रयआश्रमिणः पृथग्धर्मविदस्त्रयएतान् दशावरान् पारषदित्याचक्षते, असंभवे चैतेषामश्रोत्रियो वेदविच्छिष्टो विप्रतिपत्तौ यदाह यतोऽयमप्रभवो भूतानां हिंसानुग्रहयोगेषु धर्म्मिणां विशेषेण स्वर्गं लोकं धर्मविदाप्नोति ज्ञानाभिनिवेशाभ्यामिति धर्म्मो धर्म्मः ॥ १० ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

समाप्ता चेयं गौतमसंहिता ॥

क्षत्रियादि निर्वंश मनुष्यों का धन राजा लेवे। मूढ़ और नपुंसक सन्तानों को भोजन वस्त्रादि निर्वाहमात्र मिलना चाहिये। पर जड़ (मूढ़) का पुत्र अच्छा हो तो उसको धनका दायभाग मिलना चाहिये। नीचे वर्ण से उत्तम वर्ण की स्त्री में उत्पन्न हुए प्रतिलोम सन्तानों को शूद्रा पुत्र के समान भोजनादि के निर्वाहमात्र जीविका मिले। जल देने, श्रामदनी लेने, कोशकी रक्षा करने पकाये अन्न में और विवाहित स्त्रियों में से भाग लेने का अधिकार प्रतिलोमादि से हुए सन्तानों को नहीं है। यदि प्रायश्चित्तादि किसी विषय में हुए सन्देहका निर्णय धर्मशास्त्रों से न जानाजाय तो विधि पूर्वक गुरु मुखसे वेद पढ़े तर्कशास्त्र में प्रवीण निर्लोभी दश विद्वान् मिलके जो निर्णय करें वही प्रशस्त जानो ॥९॥ आद्योपान्त चारों वेदों को पढ़ने जानने वाले चार (ये चारों उत्तम कोटिमें) ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तीन उत्तम आश्रमी और तीन स्मार्तादि धर्म को भिन्न २ अंगोंमें यथावत् जानने वाले इन दश विद्वानों की दशावरा धर्मसभा कहाती है। इन दश का मिलना असम्भव हो तो यद्यपि विधिपूर्वक जिसने वेद को न पढ़ा हो पर वेद का मर्म जानता हो अन्य शास्त्रों में शिक्षित हो ऐसा एक ही पुरुष धर्मविषयक परस्पर विरुद्ध दो पक्षोंमें जो कुछ कहे वही ठीक माना जावे क्योंकि वेदोक्त धर्म के अभाव में प्राणियों की स्थिति नहीं रह सकती न उत्पत्ति हो सकती है किन्तु प्रलय का मौका आ जाता है। हिंसा और दया के विभागों के लिये धर्मात्माओं में विशेष कर वेदोक्त धर्म का जानने वाला हो धर्मज्ञान और धर्म में तत्पर होने के कारण स्वर्गलोक को प्राप्त होता है। इसलिये वेद ही धर्म है ॥ १० ॥

यह गौतमीय धर्मशास्त्र के ब्राह्मणसर्वस्व मासिक पत्रसम्पादक पं० भीमसेन शर्म कृत भाषानुवाद में उनतीशवां अध्याय पूरा हुआ ॥

और यहगौतमसंहिता भी समाप्त हुई ॥ ओं शान्तिः ॥ ३ ॥

श्रीगणेशायनमः ॥

अथशातातपस्मृतिप्रारम्भः

प्रायश्चित्तविहीनानां महापातकिनांनृणाम् ।
नरकान्तेभवेज्जन्म चिन्हाङ्कितशरीरिणाम् ॥ १ ॥
प्रतिजन्मभवेत्तेषां चिन्हंतत्पापसूचितम् ।
प्रायश्चित्तेकृतेयाति पश्चात्तापवतांपुनः ॥ २ ॥
महापातकजंचिन्हं सप्तजन्मनिजायते ।
उपपापोद्भवंपञ्च त्रीणिपापसमुद्भवम् ॥ ३ ॥
दुष्कर्मजानृणांरोगा यान्तिचोपक्रमैःशमम् ।
जप्यैःसुरार्चनैर्होमैर्दानैस्तेषांशमोभवेत् ॥ ४ ॥
पूर्वजन्मकृतंपापं नरकस्यपरिक्षये ।
बाधतेव्याधिरूपेण तस्यजप्यादिभिःशमः ॥ ५ ॥
कुष्ठंचराजयक्ष्माच प्रमेहोग्रहणीतथा ।

जिन ने प्रायश्चित्त नहीं किया ऐसे महापातकी मनुष्यों का नरक भोग के अन्त में महापातकों के चिन्हों से युक्त मनुष्य योनि में जन्म होता है ॥१॥ पातक को जताने वाले चिन्ह जन्म २ में उन लोगों के होते हैं। बार २ प्रायश्चित्त और पश्चात्ताप करने से वे चिन्ह छूट जाते हैं ॥ २ ॥ महापातक का चिन्ह सात जन्म तक, उपपातक का पांच जन्म तक, और अन्य साधारण पापों का चिन्ह तीन जन्म तक प्रकट होता है ॥ ३ ॥ निन्दित कर्म से पैदा हुये रोग उपक्रमों आगे कहे (उपायों) से शांत होते हैं। उन रोगों की शांति जप, देवताओं का पूजन, होम, और दान, देने से होती है ॥ ४ ॥ पूर्व जन्म में किया पाप नरक भोगने के अन्त में व्याधि रूप होकर दुःख देता है। उस की शान्ति जप आदि से करे ॥ ५ ॥ कुष्ठ, राजयक्ष्मा (क्षयी–तपेदिक) संग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र (सूजाक) मृगी, खांसी, अतीसार, और

मूत्रकृच्छ्राश्मरीकासा अतीसारभगन्दरौ ॥ ६ ॥
दुष्टव्रणंगण्डमाला पक्षाघातोऽक्षिनाशनम् ।
इत्येवमादयोरोगा महापापोद्भवाःस्मृताः ॥ ७ ॥
जलोदरंयकृत्प्लीहा शूलशोफव्रणानिच ।
श्वासाजीर्णज्वरच्छर्दि भ्रममोहगलग्रहाः ॥ ८ ॥
रक्तार्बुदविसर्पाद्या उपपापोद्भवागदाः ।
दण्डापतानकश्चित्र वपुःकम्पविचर्चिकाः ॥ ९ ॥
वल्मीकपुण्डरीकाद्या रोगाःपापसमुद्भवाः ।
अर्शआद्यानृणांरोगा अतिपापाद्भवन्तिहि ॥ १० ॥
अन्येचबहवोरोगा जायन्तेवर्णसंकरात् ।
उच्यन्तेचनिदानानि प्रायश्चित्तानिवैक्रमात् ॥११॥
महापापेषुसर्वस्वं तदर्द्धमुपपातके ।
दद्यात्पापेषुषष्ठांशं कल्प्यंव्याधिबलाबलम् ॥ १२ ॥
अथसाधारणंतेषु गोदानादिषुकथ्यते ॥ १३ ॥

भगंदर ॥ ६ ॥ वा भयंकर फोड़ा, दुष्टघाव, गंडमाला, पक्षाघात, और नेत्रों का नाश इत्यादि रोग महापापों से पैदा होने वाले कहे हैं ॥७॥ सूजन को लिये फोड़े,जलोदर,यकृत् (दहिनी ओर पेट में मांस का गोला) प्लीहा (तिल्ली) शूल, मांस, अजीर्ण, ज्वर, वमन, भ्रम, मोह, (मूर्छा) गलग्रह (गले का पकड़ना) ॥ ८ ॥ रक्तार्बुद, विसर्प, इत्यादि रोग उपपातकों से पैदा होते हैं। दंडापतानक, (दंडे के समान शरीर तन जाय) कंपना, श्वेतकुष्ठ, खाज ॥ ९ ॥ वल्मीक, (गंड) पुंडरीक, (दाद का भेद) आदि रोग साधारण पापों से होते हैं। और अर्श (बवासीर) आदि रोग मनुष्यों को अतिपाप करने से होते हैं ॥ १० ॥ अन्य भी बहुत से रोग अनेक पापों के घाल मेल से होते हैं। उन के निदान कारण और प्रायश्चित्त क्रम से कहते हैं ॥ ११ ॥ महापातकों में सब धन उपपातकों में उससे आधा और अन्य पापों में अपने सब धनका छठा भाग दान करे उन में भी व्याधि की न्यूनाधिकता देख कर न्यूनाधिक की कलपना करे ॥१२॥ अब गोदान आदि में साधारण विचार कहते हैं॥१३॥

गोदानेवत्सयुक्तागौः सुशीलाचपयस्विनी ।
सर्वस्वंयत्रदेयंस्यात्तत्रइच्छायदानहि ॥ १४ ॥
गोशतंतुयदादद्यात् सर्वालङ्कारभूषितम् ।
वृषदानेशुभोऽनड्वा उज्वलाम्बरःसकांचनः ॥१५॥
धौरेयंहेमसंयुक्तं दद्याद्वस्त्रसमन्वितम् ।
दशधेनुसमंपुण्यं प्रवदन्तिमनीषिणः ॥ १६ ॥
निवर्तनानिभूदाने दशदद्याद्द्विजातये ।
दशहस्तेनदण्डेन त्रिंशद्दण्डंनिवर्त्तनम् ॥ १७ ॥
दशतान्येवगोचर्म्म दत्वास्वर्गेमहीयते ।
सुवर्णशतनिष्कन्तु तदर्द्धार्द्धप्रमाणतः ॥ १८ ॥
अश्वदानेमृदुश्लक्ष्णमश्वंसोपस्करंदिशेत् ।
महिषींमाहिषेदाने दद्यात्स्वर्णाम्बरान्विताम् ॥१९॥
दद्याद्गजंमहादाने सुवर्णफलसंयुतम् ॥ २० ॥
लक्षसंख्याहंणंपुष्पं प्रदद्याद्दैवतार्चने ।

जहां सर्वस्व देने का मौका हो और सब देने की इच्छा न हो तो दरिद्र दशा में दूध देती हुई सुशीला बछड़ा से युक्त एक गौ का दान करने से सर्वस्व दान का फल जानो ॥ १४ ॥ यदि सम्पन्न होतो वस्त्र तथा आभूषणों से शोभायमान सौ गौओं का दान करे । बैल देने के अवसर पर श्वेत वस्त्र और सुवर्ण युक्त शुभ चिन्हों वाले बैल का दान करे ॥ १५ ॥

यदि सुवर्ण और वस्त्र सहित हृष्ट पुष्ट धुरंधर बैल का दान करे तो विद्वान् लोग दश गोदान के बराबर पुण्य कहते हैं ॥ १६ ॥ पृथ्वी के दान में ब्राह्मण को दश निवर्तन भूमि देवे, दश हाथ के दंड से तीश दंड का एक निवर्तन होता है ॥ १७ ॥ दश निवर्तन को गोचर्म कहते हैं, इस गोचर्म प्रमाण भूमिका दान देकर मनुष्य स्वर्ग में पुजता है । सौ निष्क (तोला) के चौथाई २५ निष्क को सुवर्ण कहते हैं ॥ १८॥ घोड़े के दान में कोमल श्लक्ष्ण चिकने वा सुन्दर घोड़े को चढ़ने की सामग्री सहित देवे । भैंस के दान में सुवर्ण और वस्त्रों सहित भैंस को देवे ॥ १९ ॥ महादान में सुवर्ण और फल सहित हाथी को देवे ॥ २० ॥ देवता के- पूजन में पजा के निमित्त एक लाख फूल

दद्याद्द्विजसहस्राय मिष्टान्नंद्विजभोजने ॥ २१ ॥
रुद्रजाप्यंलक्षपुष्पैः पूजयित्वाचत्र्यम्बकम् ।
एकादशजपेद्रुद्रान्दशांशंगुग्गुलैर्घृतैः ॥ २२ ॥
हुत्वाभिषेचनंकुर्यान्मन्त्रैर्वरुणदैवतैः ।
शान्तिकेगणशान्तिश्च ग्रहशान्तिकपूर्विका ॥ २३ ॥
धान्यदानेशुभंधान्यं खारीषष्टिमितंस्मृतम् ।
वस्त्रदानेपट्टवस्त्र द्वयंकर्पूरसंयुतम् ॥ २४ ॥
दशपञ्चाष्टचतुर उपवेश्यद्विजान्शुभान् ।
तेषामनुज्ञयासर्वं प्रायश्चित्तमुपक्रमेत् ॥ २५ ॥
विधायवैष्णवंश्राद्धं संकल्प्यनिजकाम्यया ।
धेनुंदद्याद्द्विजातिभ्यो दक्षिणांचापिशक्तितः ॥२६॥
अलंकृत्ययथाशक्ति वस्त्रालङ्करणैर्द्विजान् ।
याचेद्दण्डप्रमाणेन प्रायश्चित्तंयथादितम् ॥ २७ ॥
तेषामनुज्ञयाकृत्वा प्रायश्चित्तंयथाविधि ।

और ब्राह्मणों के भोजन में एक सहस्र ब्राह्मणों को मिष्टान्न देवे ॥२१॥ रुद्र देवता के जप में एक लक्ष फूलों से महादेव जी का पूजन करके ग्यारह रुद्रों का जप करे तथा गुग्गुल और घी से दशांश ॥ २२ ॥ होम करके वरुण देवता वाले मन्त्रों से अभिषेक करे और शांति के कर्म मे ग्रहों की शांति करके गण देवताओं की शान्ति करे ॥ २३ ॥ अन्न के दानमें साठ मन शुभ जौ चावल गेहूं अन्न देना कहा है। वस्त्र के दान में कपूर सहित रेशम के दो वस्त्र (धोती दुपट्टा, देने कहे हैं ॥२४ ॥ दश, पांच, आठ, अथवा चार, श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणों को बैठा कर उन की आज्ञा से सब प्रकार के प्रायश्चित्त का आरम्भ करे ॥ २५ ॥ विष्णु श्राद्ध करके अपनी कामना के अनुसार संकल्प करके ब्राह्मणों को गौ और शक्ति के अनुसार दक्षिणा देवे ॥ २६ ॥
अपनी शक्ति के अनुसार वस्त्र और आभूषण द्वारा ब्राह्मणों को शोभायमान करके उन से दण्ड (पाप) के प्रमाणानुसार शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त को मांगे ॥२७॥ उन की आज्ञा से विधि पूर्वक प्रायश्चित्त करके फिर प्रायश्चित्त की पूर्ति के

पुनस्तान्परिपूर्णार्थं मर्च्चयेद्विधिवद्द्विजान् ॥ २८ ॥
दद्याद्व्रतानिनामानि तेभ्यःश्रद्धासमन्वितः ।
संतुष्टाब्राह्मणादद्युरनुज्ञांव्रतकारिणे ॥ २९ ॥
जपच्छिद्रंतपश्छिद्रं यच्छिद्रंयज्ञकर्मणि ।
सर्वंभवतिनिश्छिद्रं यस्यचेच्छन्तिब्राह्मणाः ॥ ३० ॥
ब्राह्मणायानिभाषन्ते मन्यन्तेतानिदेवताः ।
सर्वदेवमयाविप्रा नतद्वचनमन्यथा ॥ ३१ ॥
उपवासोव्रतंचैव स्नानंतीर्थफलंतपः ।
विप्रैस्सम्पादितंयस्य सम्पन्नंतस्यतत्फलम् ॥ ३२ ॥
सम्पन्नमितियद्वाक्यं वदन्तिक्षितिदेवताः ।
प्रणम्यशिरसाधार्य्यमग्निष्टोमफलंलभेत् ॥ ३३ ॥
ब्राह्मणाजङ्गमंतीर्थं निर्मलंसार्वकामिकम् ।
तेषांवाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्तिमलिनाजनाः ॥ ३४ ॥

लिये उन ब्राह्मणों का विधिवत् पूजन करे (अर्थात् जब प्रसन्न संतुष्ट हो कर (संपूर्णमस्तु) ऐसा आशीर्वाद देवें तो कार्य सुफल होता है) ॥ २८ ॥ प्रायश्चित्ती पुरुष अपने किये व्रत और नामों का श्रद्धा पूर्वक ब्राह्मणों से निवेदन करै वा समर्पण करे कि यह सब आप लोगों का ही है । तब संतुष्ट हुए ब्राह्मण व्रत के करने वाले पुरुष को आज्ञा देवें कि तुम्हारा व्रत सुफल हो ॥ २९ ॥ जप, तप, यज्ञ कर्म, इन में जो छिद्र (न्यूनता) होती है वह सब ब्राह्मणों की आज्ञा से पूर्ण हो जाती है ॥ ३० ॥ जो बात शुद्ध ब्राह्मण कहते हैं उसे देवता भी मानते हैं क्योंकि ब्राह्मण सब देवताओं के रूप हैं इस से उन का वचन अन्यथा [झूठा] नहीं हो सकता ॥३१॥ उपवास, व्रत, स्नान, तीर्थ का फल, ये सब जिसके ब्राह्मणों ने सुफल कह दिये उस को इन का फल सिद्ध होजाता है ॥ ३२ ॥ जिस कर्म में भूमिके देवता ब्राह्मण (सम्पन्नम्) सिद्ध हुआ यह वाक्य कहदें उस वाक्य को प्रणाम करके जो शिर पर धारण करता है वह अग्निष्टोम यज्ञ के फल को प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ संपूर्ण कामनाओं के देने वाले ब्राह्मण लोग निर्मल जंगम (चेतन) तीर्थ हैं उन के वाक्य रूपी जल से ही मलिन जन शुद्ध होजाते हैं ॥ ३४ ॥

तेभ्योऽनुज्ञामभिप्राप्य प्रतिगृह्यतथाशिषः ।
भोजयित्वाद्विजान्शक्त्या भुञ्जीतसहबन्धुभिः ॥३५॥

इति शातातपीये धर्मशास्त्रे कर्म्मविपाके साधारणविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ब्रह्महानरकस्यान्ते पाण्डुकुष्ठीप्रजायते ।
प्रायश्चित्तंप्रकुर्वीत सतत्पापशान्तये ॥ १ ॥
चत्वारःकलशाःकार्याः पञ्चरत्नसमन्विताः ।
पञ्चपल्लवसंयुक्ताः सितवस्त्रेणसंयुताः ॥ २ ॥
अश्वस्थानादिमृद्युक्तास्तीर्थोदकसुपूरिताः ।
कषायपञ्चकोपेता नानाविधफलान्विताः ॥ ३ ॥
सर्व्वौषधिसमायुक्ताः स्थाप्याःप्रतिदिशंद्विजैः ।
रौप्यमष्टदलंपद्मं मध्यकुम्भोपरिन्यसेत् ॥ ४ ॥
तस्योपरिन्यसेद्देवं ब्रह्माणंचचतुर्मुखम् ।

उन ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर उन के आशीर्वाद को ग्रहण करके और अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराकर अपने बन्धुओं सहित स्वयं भोजन करे ॥ ३५ ॥

यह शातातपीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में कर्मविपाक विषयक साधारण विधि रूप प्रथमाध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

ब्रह्महत्यारा पुरुष नरक भोग के अन्त में श्वेत कुष्ठी होता है इस लिये वह पुरुष उस पाप के शान्त्यर्थ प्रायश्चित्त करे॥१॥ पांचों रत्न पांच पल्लव और श्वेत वस्त्रों से युक्त चार तांबे के कलश लीपे हुये शुद्ध स्थल में स्थापित करे॥२॥ गाशाला घुड़शालादि की मात मट्टी कलशों के नीचे धरे तथा तीर्थों के जल से कलशों को भरे और पांच कषाय (कसैली वस्तु) और अनेक प्रकार के फलों से संयुक्त करे ॥३॥ सब औषधियों से युक्त करके पूर्वादि चारों दिशाओं में उनको स्थापित करे और मध्य में स्थापित किये पांचवें कलश पर चांदी का आठ दल का कमल रक्खे ॥ ४ ॥ उस कमल पर छः मासे सुवर्ण से बनायी

पलार्द्धार्द्धप्रमाणेन सुवर्णेनविनिर्मितम् ॥ ५ ॥
अर्च्चयेत्पुरुषसूक्तेन त्रिकालंप्रतिवासरम् ।
यजमानःशुभैर्गन्धैः पुष्पैर्धूपैर्यथाविधि ॥ ६ ॥
पूर्वादिकम्भेषुततो ब्राह्मणा ब्रह्मचारिणः ।
पठेयुःस्वस्ववेदांस्त ऋग्वेदप्रभृतीञ्शनैः ॥ ७ ॥
दशांशेनततोहोमो ग्रहशान्तिपुरःसरम् ।
मध्यकुम्भेविधातव्यो घृताक्तैस्तलव्रीहिभिः ॥ ८ ॥
द्वादशाहमिदंकर्म्म समाप्यद्विजपुङ्गवः ।
भद्रपीठेयजमानमभिषिञ्चेद्यथाविधि ॥ ९ ॥
ततोदद्याद्यथाशक्ति गोभूहेमतिलादिकम् ।
ब्राह्मणेभ्यस्तथादेयमाचार्य्यायथाविधि ॥ १० ॥
आदित्यावसवोरुद्रा विश्वेदेवामरुद्गणाः ।
प्रीताःसर्वेव्यपोहन्तु ममपापंसुदारुणम् ॥ ११ ॥

चार मुखों वाली ब्रह्मा जी की प्रतिमा स्थापित करे ॥ ५॥ यजमान पुरुष प्रति दिन तीनों काल में पुरुष सूक्त (सहस्र शीर्षा०) इत्यादि मन्त्रों द्वारा सुन्दर गन्ध, पुष्प, धूपों से ब्रह्मा जी का विधिवत् पूजन करे ॥ ६ ॥ साथ ही पूर्वादि दिशाओं में स्थापित चारों घटों के समीप चार ब्रह्मचारी ब्राह्मण ऋग्वेद आदि अपने २ वेदों को सावधान चित्त होके पढ़ें। [illegible] पूर्व में ऋग्वेद, दक्षिण में यजुः, पश्चिम में साम और उत्तर में अथर्ववेद [illegible] पाठ करें ॥ ७ ॥ फिर ग्रहशांति पूर्वक मध्यस्थकलश के समीप दशांश [illegible] मिले तिल और व्रीहि धानों से करै ॥८॥ बारह दिन में उत्तम धर्म [illegible] इस कर्म को समाप्त करा के कल्याणकारी पीढ़ा (आरामचौकी) प[illegible] हुये यजमान का विधि पूर्वक अभिषेक करै ॥९॥ फिर शक्ति के अनुसार गौ, भूमि, सुवर्ण, तिल इन पदार्थों का दान ब्राह्मणों को और आचार्य गुरु को यजमान श्रद्धा से देवे ॥१०॥ १२ आदित्य ८ वसु ११ रुद्र १३ विश्वेदेव और ४९ मरुद्गण ये सब गण देवता मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे दारुण कठिन भयंकर पाप को निवृत्त करें ॥ ११ ॥

इत्युदीर्यमुहुर्भक्त्या तमाचार्यंक्षमापयेत् ।
एवंविधानेविहिते श्वेतकुष्ठीविशुद्धयति ॥ १२ ॥
कुष्ठीगोवधकारीस्यान्नरकान्तेऽस्यनिष्कृतिः ।
स्थापयेद्घटमेकन्तु पूर्वोक्तद्रव्यसंयुतम् ॥ १३ ॥
रक्तचन्दनलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पाम्बरान्वितम् ।
रक्तकुम्भन्तुतंकृत्वा स्थापयेद्दक्षिणांदिशम् ॥ १४ ॥
ताम्रपात्रंन्यसेत्तत्र तिलचूर्णेनपूरितम् ।
तस्योपरिन्यसेद्देवं हेमनिष्कमयंयमम् ।
यजेत्पुरुषसूक्तेन पापंमेशाम्यतामिति ॥ १५ ॥
सामपारायणंकुर्यात्कलशेतत्रसामवित् ।
दशांशंसर्षपैर्हुत्वा पावमान्यभिषेचने ॥ १६ ॥
विहितेधर्म्मराजानमाचार्य्यायनिवेदयेत् ॥ १७ ॥
यमोऽपिमहिषारूढो दण्डपाणिर्भयावहः ।

इस प्रकार भक्ति श्रद्धा से बार२ प्रार्थना करके गुरु जी से अपराध क्षमा करावे। ऐसा विधान करने से श्वेत कुष्ठी शुद्ध होजाता है ॥ १२ ॥ गोहत्या करनेवाला नरक भोग के अन्त जन्मान्तर में कुष्ठी होता है। उस समय निम्न प्रायश्चित्त करे–पूर्वोक्त पांचरत्नादि सहित एक कलश स्थापित करे ॥१३॥ उस पर लालचन्दन का लेपन कर कण्ठ में लालवस्त्र लपेटे। ऊपर लाल पुष्प धरे। इस प्रकार कलश को रक्तवर्ण करके पूजन स्थान के दक्षिणभाग में स्थापित करे ॥ १४ ॥ कूटे हुए तिलों से भरा तांबे का पात्र उस कलश के ऊपर धरे उसके ऊपर एक तोला सुवर्ण से बनायी यमराज देवता की प्रतिमा स्थापित करके मेरा पाप शान्त हो, ऐसी प्रार्थना करके पुरुष सूक्त से यमदेवता का पूजन करे ॥१५॥ सामवेदी विद्वान् कलश के समीप में सामवेद का पारायण करे। इस प्रकार बारह दिन त्रिकाल पूजन करके अन्त में सर्षप–सरसों द्वारा दशांश का होम कर पावमानी ऋचाओं से ब्राह्मण लोग यजमान का अभिषेक करें ॥ १६ ॥ यह विधान होजाने पर धर्मराज की प्रतिमा आचार्य को देदेवे ॥ १७ ॥ दण्ड हाथ में लिये भैंसापर सवार दक्षिण दिशा के स्वामी भयंकर यमराज मेरे पाप को

दक्षिणाशापतिर्देवो ममपापंव्यपोहतु ॥ १८ ॥
इत्युच्चार्य्यविसृज्यैनं मासंसद्भक्तिमाचरेत् ।
ब्रह्मगोवधयोरेषा प्रायश्चित्तेननिष्कृतिः ॥ १९ ॥
पितृहाचेतनाहीनो मातृहान्धःप्रजायते ।
नरकान्तेप्रकुर्वीत प्रायश्चित्तंयथाविधि ॥ २० ॥
प्राजापत्यानिकुर्वीत त्रिंशच्छाखाविधानतः ।
व्रतान्तेकारयेन्नावं सौवर्णीपलसंमिताम् ॥ २१ ॥
कुम्भंरौप्यमयंचैव ताम्रपात्राणिपूर्ववत ।
निष्कहेम्नातुकर्तव्यो देवःश्रीवत्सलाञ्छनः ॥ २२ ॥
पट्टवस्त्रेणसवेष्ट्य पूजयेत्तांविधानतः ।
नावंद्विजायतांदद्यात्सर्वोपस्करसंयताम् ॥ २३ ॥
वासुदेव! जगन्नाथ !सर्वभूयाशयस्थित ! ।
पातकार्णवमग्नंमां तारयप्रणतार्त्तिहृत् ॥ २४ ॥
इत्युदीर्य्यप्रणम्याथ ब्राह्मणायविसर्जयेत् ।
अन्येभ्योऽपियथाशक्ति विप्रेभ्योदक्षिणांददेत् ॥ २५ ॥

निवृत्त करें ॥१८॥ऐसा उच्चारण करके देवता का विसर्जन कर एकमास उत्तम भक्ति से आचरण करे । ब्रह्महत्या और गोहत्या का यह प्रायश्चित्त है ॥ १९ ॥ पिता को मारनेवाला महा मूढ़ जड़ तथा माता को मारनेवाला नरकभोग की समाप्ति में जन्मान्ध होता है इससे विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करे ॥ २० ॥ अपनी वेद शाखा के विधान से प्रथम तीश प्राजापत्य व्रत करे । व्रत की समाप्ति में चार तोला सुवर्ण की एक नौका बनवावे ॥ २१ ॥ एक कलश चांदी का और पूर्ववत् चार कलश तांबे के स्थापित करे और एक तोला सुवर्ण की एक प्रतिमा विष्णु भगवान् की बनवावे ॥ २२ ॥ फिर रेशमी वस्त्र से भगवत्प्रतिमा को आच्छादित करके विधि से पूजन करे फिर सब सामग्री सहित उस नौका को सुपात्र ब्राह्मण को दानकर देदेवे ॥२३॥ फिर प्रार्थना करे कि हे सब प्राणियों के हृदय में स्थित जगत् के नाथ वासुदेव भगवान्! भक्त दुःखहारी आप पाप समुद्र में डूबे हुए मुझे पार करो ॥ २४ ॥ ऐसा बार२ कह कर प्रणाम करके उस प्रतिमा को सुपात्र ब्राह्मण को विसर्जन पूर्वक दान कर देवे । तथा अन्य ब्राह्मणों को भी यथाशक्ति दक्षिणा देवे ॥ २५ ॥

हत्वावैबालकंसुप्तं स्वसृजातंचमूलजम् ।
तेनसंजायतेवन्ध्या मृतवत्साचनारकी ॥ २६ ॥
तत्पातकविनाशाय यथाकार्यंप्रयत्नतः ।
सौवर्णंबालकंकृत्वा दद्याद्दोलासमन्वितम् ॥ २७ ॥
अनड्वाहंततोदद्याद् वस्त्रद्वयसमन्वितम् ।
तत्पातकविनिर्मुक्ता पश्चाद्भवतिपुत्रिणी ॥ २८ ॥
पिताबन्दीकृतोयेन निबद्धोलोहशृङ्खलैः ।
चिरंकष्टतरंभुक्त्वा मृतस्तत्रैवमन्दिरे ॥ २९ ॥
तेनपापेनपापात्मा पतितोरौरवार्णवे ।
नरकान्तेभवेच्चिन्हं पङ्गुर्मूकोविचेतनः ॥ ३० ॥
तस्यपापविनिर्मुक्त्यै पिताकार्योहिरण्मयः ।
पितरंरथमारूढं विप्रायप्रतिपादयेत् ॥ ३१ ॥
स्वसृघातीतुबधिरो नरकान्तेप्रजायते ।

बहनोई के द्वारा भगिनी से उत्पन्न हुए अपने सोते हुए भागिनेय (भानेज) बालक को जो मारडाले वह नरक भोग के बाद वन्ध्या स्त्री अथवा जो सन्तान हों वे मरजावें ऐसी होती है ॥ २६ ॥ उस पातक के विनाशार्थ जो प्रायश्चित्त यत्न पूर्वक करना चाहिये सो कहते हैं। एक सुवर्ण का बालक बनाके हिंडोले सहित दान करे ॥ २७ ॥ फिर दो वस्त्रों सहित एक बैल का दान करे। इस प्रायश्चित्त से उस पातक से मुक्त हुई पुत्रवती होजाती है ॥ २८ ॥ जिस पुरुष ने अपने पिता को लोहे की सांकरों से बांधकर कैद किया हो और वह बहुत काल तक अत्यन्त कष्ट भोग कर उसी हवालात में मरगया हो ॥ २९ ॥ वह पापी पुत्र उस महापाप से रौरव नरक में पड़ता है फिर नरक भोग के अन्त में मनुष्य जन्म होने पर लंगड़ा, मूक (गूंगा) तथा मूढता के चिन्ह युक्त होता है ॥ ३० ॥ उस पापसे छूटने के लिये वह अपने पिता की सुवर्ण की प्रतिमा बनवा कर और रथ में बैठा कर रथ सहित पिता की प्रतिमा को सुपात्र ब्राह्मण को दान कर देवे ॥३१ ॥ भगिनी को मारडालने वाला नरक भोगने पश्चात् मनुष्य जन्म होने पर बधिर होता है और भाई का वध करने पर

मूकोभ्रातृवधेचैव तस्येयंनिष्कृतिःस्मृता ॥ ३२ ॥
तेनकार्यंविशुद्ध्यर्थं यतिचान्द्रायणं व्रतम् ।
व्रतान्तेपुस्तकंदद्यात्सुवर्णपलसंयुतम् ॥ ३३ ॥
इमंमन्त्रंसमुच्चार्य्य ब्रह्माणींतांविसर्जयेत् ।
सरस्वति ! जगन्मातः ! शब्दब्रह्माधिदैवते ! ॥ ३४ ॥
दुष्कर्म्मकारिणंपापं पाहिमांपरमेश्वरि ! ।
बालघातीचपुरुषो मृतवत्सःप्रजायते ॥ ३५ ॥
ब्राह्मणोद्वाहनंचैव कर्तव्यंतेनशुद्धये ।
श्रवणंहरिवंशस्य कर्तव्यंचयथाविधि ॥ ३६ ॥
महारुद्रजपंचैव कारयेच्चयथाविधि ।
षडङ्गैकादशैरुद्रैः रुद्रःसमभिधीयते ॥ ३७ ॥
रुद्रैस्तथैकादशभिर्महारुद्रःप्रकीर्तितः ।
एकादशभिरेतैस्तु अतिरुद्रश्चकथ्यते ॥ ३८ ॥
जुहुयाच्चदशांशेन पूर्वोक्ताज्याहुतीस्तथा ।

नरकान्त में मूक (गूंगा) होता है उस का प्रायश्चित्त निम्न लिखित है ॥३२॥ उस को अपनी शुद्धि के लिये यतिचान्द्रायण (मध्यान्ह में एकवार एकमास तक आठ ग्रास भोजनरूप) व्रत करना चाहिये। फिर व्रतकी समाप्ति में चार तोला सुवर्ण सहित वेद की पुस्तक पर सरस्वती देवता का यथाविधि पूजन करके उस का दान करे ॥३३॥ फिर इस आगे लिखे मन्त्र (सरस्वति०) का उच्चारण करके सरस्वती देवी का विसर्जन करे कि हे शब्दब्रह्मरूप वेद की अधिष्ठात्री जगत् की माता परमेश्वरी सरस्वती ! दुष्कर्म करने वाले मुझ पापी की रक्षा करो॥३४॥ बालक की हत्या करनेवाले पुरुष के सन्तान हो २ कर मर जाते हैं ॥३५ उसको अपनी शुद्धि के लिये ब्राह्मणों को कन्धेपर बैठा कर ले चलना आदि सेवा करनी चाहिये। और हरिवंशपुराण का विधिपूर्वक श्रद्धा से श्रवण करे॥३६॥ और वह विधिपूर्वक महारुद्र जप करावे। षडङ्ग की ग्यारह रुद्री का पाठ रुद्र कहाता ॥ ३७ ॥ ग्यारह रुद्रों का (रुद्री के १२१ पाठ) महारुद्र कहाता और इन ग्यारह महारुद्रों का एक अतिरुद्र कहाता है ॥ ३८ ॥ महारुद्र वा

एकादशस्वर्णनिष्काः प्रदातव्याश्चदक्षिणाः ॥ ३९ ॥
पलान्येकादशतथा दद्याद्वित्तानुसारतः ।
अन्येभ्योऽपियथाशक्ति द्विजेभ्योदक्षिणांदिशेत् ॥४०॥
स्नापयेद्दम्पतीपश्चान्मन्त्रैर्वरुणदैवतैः ।
आचार्यायप्रदेयानि वस्त्रालङ्करणानिच ॥ ४१ ॥
गोत्रहापुरुषःकुष्ठो निर्वंशश्चोपजायते ।
सचपापविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यशतंचरेत् ॥ ४२ ॥
व्रतान्तेमेदिनींदत्त्वा शृणुयादथभारतम् ।
स्त्रीहन्ताचातिसारीस्यादश्वत्थान्रोपयेद्दश ॥ ४३ ॥
विप्रस्यबालकंहत्वा संहृतंरत्नकाञ्चनम् ।
तेनैवजायतेमृत्युः पुत्राणांचपुनःपुनः ॥ ४४ ॥
तादृक्कर्मविनाशाय कार्यंतेनैवयत्नतः ।
वृषोहैमेनसंयुक्तो दातव्योवस्त्रसंयुतः ॥ ४५ ॥

अतिरुद्र का दशांश होम करे और पूर्वोक्त घी की आहुतियों से भी होम करे तथा ग्यारह तोला सुवर्ण दक्षिणा में देवे ॥ ३९ ॥ यदि श्रीमान् हो तो ४४ चवालीश तोला सुवर्ण दक्षिणा देवे । जप पाठ करनेवालों से भिन्न सुपात्र ब्राह्मणों को भी यथाशक्ति दक्षिणा देवे ॥ ४० ॥ पश्चात् कुलका पुरोहित वरुण देवतावाले मन्त्रों से यजमान और पत्नी को स्नान करावे । तथा प्रायश्चित्त कर्त्ता अपने आचार्यों को वस्त्र और आभूषण देवे ॥४१॥ अपने गोत्री पुरुष की हत्या करनेवाला पुरुष नरकान्त में कुष्ठी और निर्वंश होता है । वह पाप से शुद्ध होने के लिये सौ प्राजापत्य व्रत करे ॥ ४२॥ फिर व्रत के अन्त में पृथिवी का दान देकर श्रद्धा से महाभारत का श्रवण करे । स्त्री हत्यारा अतीसार का रोगी होता है वह पीपल के दश वृक्षों को लगावे ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण के बालक को मार डाले और उसके सुवर्ण रत्नादि आभूषण लेलेवे तो नरकान्त में होने वाले मनुष्य जन्मों में वार २ उत्पन्न हो २ कर उसके पुत्र मरते हैं कोई जीवित नहीं रहता ॥ ४४ ॥ उस पाप के नाशार्थ उस पापी को यत्न के साथ सुवर्ण तथा वस्त्रों से युक्त बैल का दान करना चाहिये ॥ ४५ ॥ शङ्कर की गौ

दद्याच्चशर्कराधेनुं भोजयेच्चशतंद्विजान् ॥ ४६ ॥
राजहाक्षयरोगीस्याद्देषातस्यचनिष्कृतिः ।
गोभूहिरण्यमिष्टान्नजलवस्त्रप्रदानतः ॥ ४७ ॥
घृतधेनुप्रदानेन तिलधेनुप्रदानतः ।
इत्यादिनाक्रमेणैव क्षयरोगःप्रशाम्यति ॥ ४८ ॥
रक्तार्बुदीवैश्यहन्ता जायतेसचमानवः ।
प्राजापत्यानिचत्वारि सप्तधान्यानिचोत्सृजेत् ॥ ४९ ॥
दण्डापतानकयुतः शूद्रहन्ताभवेन्नरः ।
प्राजापत्यंसकृच्चैव दद्याद्धेनुंसदक्षिणाम् ॥ ५० ॥
कारूणांचवधेचैव रूक्षभावःप्रजायते ।
तेनतत्पापशुद्ध्यर्थं दातव्योवृषभःसितः ॥ ५१ ॥
सर्वकार्येष्वसिद्धार्थो गजघातीभवेन्नरः ।
प्रासादंकारयित्वातु गणेशप्रतिमांन्यसेत् ॥ ५२ ॥
अथवागणनाथस्य मन्त्रंलक्षमितंजपेत् ।

बनाकर दान करे और १०० ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥४६॥ राजहत्या करने वाला-क्षयी रोगयुक्त होता, उस का प्रायश्चित्त यह है कि गौ, भूमि, सुवर्ण, मिष्टान्न, (लड्डूआदि) जल, और वस्त्रों के दान से ॥ ४७ ॥ घी की धेनु और तिलों की गौ बनाकर देने से इत्यादि क्रम से दान करने पर क्षयी रोग शान्त होजाताहै ॥ ४८ ॥ वैश्य को मारनेवाला नरजन्म में रक्तार्बुद रोगी होता है वह चार प्राजापत्य व्रत करके सप्तधान्य (सतनजा) का दान करे ॥ ४९ ॥ शूद्र हत्या करनेवाला जन्मान्तर में दण्डापतानक रोगयुक्त होता, वह एक प्राजापत्य व्रत करके एक गौ दक्षिणा देवे ॥ ५० ॥ कारीगरों का वध करनेपर शरीर में रूखापन होता है उस अपराधी को अपने उस पाप की शुद्धि के लिये श्वेत बैल का दान करना चाहिये ॥५१॥ हाथी की हत्या करने वाला जो कुछ काम करता है वही सिद्ध नहीं होता सभी निष्फल जाते हैं। वह एक ऊंचा मन्दिर बनवाकर गणेशजी की प्रतिमा की स्थापना करावे ॥५२॥ अथवा गणेश जी के मन्त्र का एक लक्ष जप करे वा करावे और गण देवतों की शान्तिपूर्वक अपूपों

दशांशहोमश्चापूपैर्गणशान्तिपुरस्सरः ॥ ५३ ॥
उष्ट्रे विनिहतेचैव जायतेविकृतस्वरः ।
सतत्पापविशुद्ध्यर्थं दद्यात्कर्पूरजंफलम् ॥ ५४ ॥
अश्वेविनिहतेचैव वक्रकण्ठःप्रजायते ।
शतंफलानिदद्याच्च चन्दनान्यघनुत्तये ॥ ५५ ॥
महिषीघातनेचैव कृष्णगुल्मःप्रजायते ।
स्वशक्त्याचमहींदद्याद्रक्तवस्त्रद्वयंतथा ॥ ५६ ॥
खरेविनिहतेचैव खररोमाप्रजायते ।
निष्कत्रयस्यप्रकृतिं संप्रदद्याद्धिरण्मयीम् ॥ ५७ ॥
तरक्षौनिहतेचैव जायतेकेकरेक्षणः ।
दद्याद्रत्नमयींधेनुं सतत्पातकशान्तये ॥ ५८ ॥
शूकरेनिहतेचैव दन्तुरोजायतेनरः ।
सदद्यात्तुविशुद्ध्यर्थं घृतकुम्भंसदक्षिणम् ॥ ५९ ॥
हरिणेनिहतेखञ्जः शृगालेतुविपादकः ।
अश्वस्तेनप्रदातव्यः सौवर्णोनिष्कसम्मितः ॥ ६० ॥

द्वारा दशांश होम करे ॥ ५३ ॥ ऊंट की हत्या करने पर तोतला होता है वह उस पाप की शुद्धि के लिये कपूर से प्रकट हुए फल का दान करे ॥ ५४ ॥ घोड़े के मारनेपर टेढ़े कण्ठवाला होता है वह पाप निवृत्त के लिये सौ फल और चन्दन का दान करे ॥ ५५ ॥ भैंसि की हत्या करने पर काला गुल्मरोग होता है वह पुरुष अपनी शक्ति के अनुसार भूमि का और दो लाल वस्त्रों का दान करे ॥ ५६ ॥ गधे के मारडालने पर गधे के से रोमोंवाला पुरुष जन्मान्तर में होता है वह तीन निष्क (अशर्फी) की गर्दभ प्रतिमा बनाकर दान करे ॥ ५७ ॥ चीते की हत्या करने पर जन्मान्तर में भेंड़ी वा टेढ़ी निगाहवाला होता है। वह उस पाप की शुद्धि के लिये रत्नों की गौ बनाकर दान करे ॥ ५८ ॥ सूकर की हत्या करने पर मनुष्य जन्मान्तर में बड़दन्ता होता है वह अपनी शुद्धि के लिये घी से भरा घड़ा दक्षिणा सहित दान करे ॥५९॥ हरिण की हत्याकरने वाला लंगड़ा और शृगाल (गीदड़) की हत्या करनेवाला एक पग का होता है। उसको एक तोला सुवर्ण का घोड़ा बनवाकर दान करना चाहिये ॥ ६० ॥

अजाभिघातनेचैव अधिकाङ्गःप्रजायते ।
अजातेनप्रदातव्या विचित्रवस्त्रसंयुता ॥ ६१ ॥
उरभ्रेनिहतेचैव पाण्डुरोगःप्रजायते ।
कस्तूरिकापलंदद्याद् ब्राह्मणायविशुद्धये ॥ ६२ ॥
मार्जारेनिहतेचैव जायतेपिङ्गलोचनः ।
तेनवैदूर्यरत्नानि दातव्यानिस्वशक्तितः ॥ ६३ ॥
जायतेचक्रपादस्तु निहतेशुनिमानवः ।
निष्कद्वयमितंदद्यान्नकुलंसविशुद्धये ॥ ६४ ॥
शशकेनिहतेचैव कुब्जकर्णस्तुजायते ।
निष्कत्रयमितंदद्यात्ससुवर्णविशुद्धये ॥ ६५ ॥
नकुलस्याभिहनने जायतेवक्रमण्डलम् ।
शय्यांदद्यात्सविप्राय सोपधानांसतूलिकाम् ॥ ६६ ॥
शयालुःसर्पहादद्याल्लोहदण्डंसदक्षिणम् ।
कुब्जोमूषकहादद्यात्सप्रधान्यंसकाञ्चनम् ॥ ६७ ॥

बकरी की हत्या करने पर छङ्गा आदि अधिक अङ्गवाला वह जन्मता है इ-
लिये वह कई रंगवाले वस्त्र सहित बकरी का दान करे ॥ ६१ ॥ मेढ़ा की ह-
त्या करने पर जन्मान्तर में पाण्डुरोग होता है उस पाप की शुद्धि के लिये
चार तोला कस्तूरी ब्राह्मण को दान करे ॥ ६२ ॥ बिलाव के मारडालने पर
पीली आंखोंवाला जन्मान्तर में होता है। उस को अपनी शक्ति अनुसार
वैदूर्य रत्नों का दान करना चाहिये ॥ ६३ ॥ कुत्ते की हत्या करने पर मनुष्य
चक्र (पहिये जैसे) पगवाला होता है वह दो तोला सुवर्ण का न्योला बना
कर अपनी शुद्धि के लिये दान करे ॥ ६४ ॥ शश (खरहा) के मारने पर कुबड़े
कान वाला जन्मान्तर में होता है, वह अपनी शुद्धि के लिये तीन तोला सुवर्ण
का दान करे ॥ ६५ ॥ न्योला के मारने पर जन्मान्तर में वक्रमण्डल रोग होता
है इस से वह तोशक तकिया सहित नयी खटिया का दान करे ॥६६॥ सांप
को मारने वाले को निद्रा अधिक तर घेरे रहती है। इस से वह दक्षिणा स-
हित लोहे के दण्ड का दान करे। मूषक को मारने वाला कुबड़ा होता है वह
सुवर्ण दक्षिणा सहित सतनजा का दान करे ॥ ६७ ॥

मयूरघातनेचात्र जायतेकृष्णमण्डलम् ।
निष्कत्रयमितोदेयस्तेनस्वर्णमयःशिखी ॥ ६८ ॥
हंसघातीभवेद्यस्तु तस्यस्याच्छ्वेतमण्डलम् ।
रौप्यंपलत्रयमितं हंसंदद्याद्विशुद्धये ॥ ६९ ॥
कुक्कुटेनिहतेचैव वक्रनासःप्रजायते ।
पारावतंससौवर्णं प्रदद्यान्निष्कमात्रकम् ॥ ७० ॥
शुकसारिकयोर्घाती नरःस्खलितवाग्भवेत् ।
सच्छास्त्रपुस्तकंदद्यात्सविप्रायसदक्षिणाम् ॥ ७१ ॥
वकघातीदीर्घनासो दद्याद्गांधवलप्रभाम् ।
काकघातीकर्णहीनो दद्याद्गामसितप्रभाम् ॥ ७२ ॥
हिंसायांनिष्कृतिरियं ब्राह्मणेसमुदाहृता ।
तदर्द्धार्द्धप्रमाणेन क्षत्रियादिष्वनुक्रमात् ॥ ७३ ॥
क्षत्रियोमृगयांकुर्वन् मृगान्निघ्नन्नदुष्यति ।

मोर के मारने पर कृष्ण मण्डल रोग होता है उस को तीन तोले सुवर्ण का मोर बनवा के दान करना चाहिये ॥ ६८ ॥ जो हंस की हत्या करें उस के जन्मान्तर में श्वेतमण्डल रोग होता है वह अपनी शुद्धि के लिये बारह तोला चांदी का हंस बनवा के दान करे ॥ ६९ ॥ मुर्गा की हत्या करने पर जन्मान्तर में टेढ़ी नासिका वाला होता है । वह एक तोला सुवर्ण का कबूतर बना के दान करे ॥ ७० ॥ तोता और मैना का मारनेवाला पुरुष गूंगा होता है । वह दक्षिणा सहित सत्शास्त्र के पुस्तक का दान ब्राह्मण को देवे ॥ ७१ ॥ बगुला का मारनेवाला बड़ीनाकवाला होता है वह श्वेत गौ का दान करे । कौवे का मारनेवाला बधिर (बहरा) होता वह काली गौ का दान करे ॥ ७२ ॥ यहां तक ब्राह्मण के लिये हिंसा का प्रायश्चित्त कहा गया है । उससे आधा क्षत्रिय को तथा चौथाई प्रायश्चित्त वैश्य को करना चाहिये ॥७३॥ क्षत्रिय पुरुष वन जङ्गल में मृगादि की शिकार करता हुआ दूषित नहीं होता । युद्ध के मैदान में प्राप्त जो क्षत्रिय उस का जो धर्म है उस से वह भले

तस्ययुद्धाङ्गणगतो योधर्मस्तेनमापयेत् ॥ ७४ ॥
गजादिकान्सप्तदश सप्तसप्तोत्तरान्क्रमात् ।
निघ्नन्नवाप्नोतिनरश्चिह्नानिकथितानिच ।
मयूराद्यास्तथासप्त चतुर्दशोत्तरान्क्रमात् ॥ ७५ ॥
गर्भपातकरीनारी स्वदेहेभोगलिप्सया ।
सप्तजन्मावधिर्यावन्नरकान्तेहसन्तिका ॥ ७६ ॥
तत्पातकविनाशाय बालंकुर्याद्धिरण्मयम् ॥ ७७ ॥
इति शातातपीये धर्मशास्त्रे कर्म्मविपाके हिंसादि
प्रायश्चित्तविधिर्नाम द्वितीऽयोध्यायः ॥ २ ॥
सुरापःश्यावदन्तःस्यात् प्राजापत्याष्टकंचरेत् ।
शर्करायास्तुलाःसप्त दद्यात्पापविशुद्धये ॥ १ ॥
जपित्वातुमहारुद्रं दशांशंजुहुयात्तिलैः ।

हो हिंसा करे ॥ ७४ ॥ हाथी आदि सत्रह परिगणितों को युद्ध में न मारे (मनु० ७ । ९१–९३ तक में १७ को मारने का निषेध है) और पिछले ब्राह्मणादि सात २ को मारता हुआ क्षत्रिय भी पूर्वोक्त चिह्नों वाला जन्मान्तर में होता है (इसी अ० २ के ५२ श्लोक से लके हाथी आदि १७ के बध के प्रायश्चित्त कहे हैं उन को क्षत्रिय भी शिकार आदि में न मारे) ६८ श्लोक से लेकर कहे मोर आदि सात और उस से पहिले गिनाये चौदह को क्षत्रिय भी यदि मारेगा तो उस को भी पाप लगेगा और जन्मान्तर में वैसे २ चिह्नों वाला होगा ॥ ७५ ॥ अपने शरीर में काम भोग का सुख चाहती हुई नारी यदि गर्भपात करे तो सात जन्मों तक अगीठी बनती है ॥ ७६ ॥ उस पातक को नष्ट करने के लिये सुवर्ण का बालक बना कर वस्त्र सहित ब्राह्मण को दान करे ॥ ७७ ॥

यह शातातपीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में हिंसादिकर्मविपाक सम्बन्धी
प्रायश्चित्तविधायक द्वितीयाध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

सुरा पीनेवाला ब्राह्मण नरक भोग के पश्चात् मनुष्य जन्म में काले दांतवाला होता वह अपने पातक की शुद्धि के लिये आठ प्राजापत्य व्रत और सातपंसेरी शक्कर का दान करे ॥ १ ॥ फिर महारुद्र (रुद्री के १२१ पाठ) जप

ततोऽभिषेकःकर्तव्यो मन्त्रैर्वरुणदैवतैः ॥ २ ॥
मद्यपोरक्तपित्तीस्यात्सदद्यात्सर्पिषोघटम् ।
मधुनोऽर्द्धघटंचैव सहिरण्यंविशुद्धये ॥ ३ ॥
अभक्ष्यभक्षणाच्चैव जायतेक्रिमिकोदरः ।
यथावत्तेनशुद्ध्यर्थमुपोष्यंभीष्मपञ्चकम् ॥ ४ ॥
उदक्यावीक्षितंभुक्त्वा जायतेक्रिमिलोदरः ।
गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेणैवशुद्ध्यति ॥ ५ ॥
भुक्त्वाचास्पृश्यसंयुक्तो जायतेक्रिमिलोदरः ।
त्रिरात्रंवैष्णवंकृत्वा सततपातकशान्तये ॥ ६ ॥
श्वमार्जारादिभिःस्पृष्टं भुक्त्वादुर्गन्धवान्भवेत् ।
पीत्वात्रिरात्रंगोमूत्रं भोजयेद्ब्राह्मणत्रयम् ॥ ७ ॥
अनिवेद्यसुरादिभ्यो भुञ्जानोजायतेनरः ।
भोजयेत्त्रिशतान्विप्रान्सहस्रंतुप्रमाणतः ॥ ८ ॥
परान्नविघ्नकरणादजीर्णमभिजायते ।

करा के घृत मिले तिलों से दशांश होम करे। फिर वरुण देवतावाले मन्त्रों से यजमान का अभिषेक विद्वान् लोग करें ॥ २ ॥ मद्य पीनेवाला जन्मान्तर में रक्त पित्त रोगयुक्त होता है वह अपनी शुद्धि के लिये एक घड़ा भरघी और आधा घड़ा शहद का सुवर्ण सहित दान करे ॥ ३ ॥ अभक्ष्य भक्षण करने से जन्मान्तर में उदरकृमि रोग युक्त होता है। वह अपनी शुद्धि के लिये भीष्मपञ्चक के (कार्तिक शुक्ल ११ एकादशी से पौर्णमासी तक) पांच दिन यथावत् उपवास करे ॥ ४ ॥ रजस्वला के देखे हुए का भोजन करने पर पेट में कृमि रोगवाला होता है। वह गोमूत्र सहित कुलत्थ को तीनदिन तक खाता हुआ व्रत करे तो शुद्ध होता है ॥५॥ स्पर्श न करने योग्य चाण्डालादि के मेल में भोजन करने पर उदर कृमिरोग युक्त होता है। वह उस पातक की शान्ति के लिये विष्णुभगवान् की पूजा उपासना का व्रत तीन दिन करे ॥ ६ ॥ कुत्ता बिल्ली आदि का छुआ भोजन करके दुर्गन्ध युक्त होता है। वह तीन दिन तक गोमूत्र पीकर उपवास करके तीन ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥७॥ जो देवतादि को भोग वा देवयज्ञादि न करके भोजन करता है वह नास्तिक होता, वह एक हजार वा तीनसौ ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥८॥ अन्यके भोजन में वि-

लक्षहोमंसकुर्वीत प्रायश्चित्तंयथाविधि ॥ ९ ॥
मन्दोदराग्निर्भवति सतिद्रव्येकदन्नदः ।
प्राजापत्यत्रयंकुर्याद् भोजयेच्चशतंद्विजान् ॥ १० ॥
विषदःस्याच्छर्दिरोगी दद्याद्दशपयस्विनीः ।
मार्गहापादरोगीस्यात्सोऽश्वदानंसमाचरेत् ॥ ११ ॥
पिशुनोनरकस्यान्ते जायतेश्वासकासवान् ।
घृतंतेनप्रदातव्यं सहस्रपलसम्मितम् ॥ १२ ॥
धूर्त्तोऽपस्माररोगीस्यात्सतत्पापविशुद्धये ।
ब्रह्मकूर्चत्रयंकृत्वा धेनुंदद्यात्सदक्षिणाम् ॥ १३ ॥
शूलीपरोपतापेन जायतेतत्प्रमोचने ।
सोऽन्नदानंप्रकुर्वीत तथारुद्रंजपेन्नरः ॥ १४ ॥
दावाग्निदायकश्चैव रक्तातीसारवान्भवेत् ।
तेनोदपानंकर्त्तव्यं रोपणीयस्तथावटः ॥ १५ ॥
सुरालयेजलेवापि सकृद्विष्ठांकरोतियः ।

घ्न करने से अजीर्ण रोगी होता है। वह विधिपूर्वक एक लाख आहुति गायत्री से घी मिले तिलों का होम करे ॥९॥ द्रव्य नाम धन सम्पत्ति अच्छी होने पर भी निकृष्ट अन्न का दान करने वाला मन्दाग्नि रोग युक्त होता है वह तीन प्राजापत्य व्रत करके सौ १०० ब्राह्मण जिमावे ॥ १० ॥ विष देने वाला जन्मान्तर में वमन रोगी होता है। वह दूध देती हुई दश गौओं का दान करे। मार्ग को नष्ट करने वाला पगों में रोगी होता है वह घोड़े का दान करे ॥ ११ ॥ चुगली निन्दा करनेवाला नरक भोग के अन्त में श्वास कास (दमा) का रोगी होता है उसको एक मन भर ४० सेर घी का दान करना चाहिये ॥१२॥ जुआ खेलने वाला मृगी रोग युक्त होता है वह उस पाप की शुद्धि के लिये पराशरस्मृति के ११वें अ० में कहे तीन ब्रह्म कूर्च व्रत करके दक्षिणा सहित दूध देने वाली गौ का दान करे ॥ १३ ॥ अन्यों को दुःख देने वाला जन्मान्तर में शूल रोग युक्त होता है वह उस को छुड़ाने के लिये अन्न का दान और रुद्रों का पाठ करे ॥ १४ ॥ वन में आग लगाने वाला रक्तातीसार (रुधिर के दस्त) रोग युक्त होता है वह वटका वृक्ष लगावे और प्याऊ बैठावे ॥ १५ ॥ देव मन्दिर में वा जलाशय में एक बार भी

गुदरोगोभवेत्तस्य पापरूपःसुदारुणः ॥ १६ ॥
मासंसुरार्चनेनैव गोदानद्विनयेनतु ।
प्राजापत्येनचैकेन शाम्यन्तिगुदजारुजः ॥ १७ ॥
गर्भस्तम्भकरीनारी काकवन्ध्याप्रजायते ।
तयाकार्यंप्रयत्नेन गोदानंविधिपूर्वकम् ॥ १८ ॥
गर्भपातनजारोगा यकृत्प्लीहजलोदराः ।
तेषांप्रशमनार्थाय प्रायश्चित्तमिदंस्मृतम् ॥ १९ ॥
एतेषुदद्याद्विप्राय जलधेनुंविधानतः ।
सुवर्णरूप्यताम्राणां पलत्रयसमन्विताम् ॥ २० ॥
प्रतिमाभङ्गकारीच व्रणकायःप्रजायते ।
संवत्सरत्रयंसिंचेदश्वत्थंप्रतिवासरम् ॥ २१ ॥
उद्वाहयेत्तमश्वत्थं स्वगृह्योक्तविधानतः ।
तत्रसंस्थापयेद्देवं विघ्नराजंसुपूजितम् ॥ २२ ॥
दुष्टवादीखण्डितःस्यात्सवैदद्याद्द्विजातये ।

जो मल मूत्र त्याग करे उस के गुदेन्द्रिय में पाप रूप भयङ्कर रोग होता है ॥ १६ ॥ एक महीने तक देवता का पूजन करने, दो गौ देने, और एक प्राजापत्य व्रत करने से गुदा के रोग शान्त होते हैं ॥ १७ ॥ गर्भस्थिति को रोकने वाली स्त्री काक वन्ध्या होती है। उस को यत्न के साथ विधि पूर्वक गोदान करने चाहियें ॥ १८ ॥ गर्भपात कराने से यकृत्-प्लीह-जलोदर रोग होते हैं उन की शान्ति के लिये आगे प्रायश्चित्त यह कहते हैं कि ॥१९॥ इन यकृत् आदि रोगों की शान्ति के लिये चार २ तोला सुवर्ण, चांदी और तांबा से युक्त विधि पूर्वक जल धेनु ब्राह्मण को देवे ॥ २० ॥ प्रतिमा को तोड़ने वाले के शरीर में अधिकांश फोड़ा फुंसी होते हैं वह पुरुष तीन वर्ष तक प्रति दिन पीपल वृक्ष के मूल में जल दिया करे ॥ २१ ॥ और अपने गृह्यसूत्रोक्त विधि से उस पीपल का विवाह करे। तथा उस पीपल के नीचे विघ्नों के राजा गणेश जी देवता का स्थापन करके पूजन करे ॥ २२ ॥ दुष्ट वचन बोलने वाला खण्डित (अङ्गहीन) होता है। वह दो घड़े दूध सहित आठ तोला चांदी

रूप्यंपलद्वयंदुग्धं घटद्वयसमन्वितम् ॥ २३ ॥
खल्वाटःपरनिन्दायां धेनुंदद्यात्सकाञ्चनाम् ।
परोपहासकृत्काणः सगांदद्यात्समौक्तिकाम् ॥ २४ ॥
सभायांपक्षपातीच जायतेपक्षघातवान् ।
निष्कत्रयमितंहेम सदद्यात्सत्यवर्त्तिनाम् ॥ २५ ॥
इति शातातपोये धर्मशास्त्रे कर्मविपाके प्रकीर्णप्रा-
यश्चित्तं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥
कुलघ्नोनरकस्यान्ते जायतेविप्रहेमहृत् ।
सतुस्वर्णशतंदद्यात्कृत्वाचान्द्रायणत्रयम् ॥ १ ॥
औदुम्बरीताम्रचौरो नरकान्तेप्रजायते ।
प्राजापत्यंसकृत्वैवं ताम्रंपलशतंदिशेत् ॥ २ ॥
कांस्यहारीचभवति पुण्डरीकसमन्वितः ।
कांस्यंपलशतंदद्यादुपोष्यदिवसंनरः ॥ ३ ॥
रीतिहृत्पिङ्गलाक्षःस्यादुपोष्यहरिवासरम् ।

सुपात्र ब्राह्मण को दान देवे ॥ २३ ॥ अन्य की निन्दा करने पर गञ्जा होता है तब सुवर्ण सहित दूध वाली गौ का दान करे । अन्यों का उपहास (नकलादि) करने वाला काणा (एकाक्ष) होता है वह मोतियों सहित गौ का दान करे ॥ २४ ॥ सभा में पक्षपात करने वाला पक्षाघात रोग युक्त होता है । वह सत्य के आचरणी सुपात्र ब्राह्मणों को तीन तोला सुवर्ण का दान करे ॥ २५ ॥

यह शातातपीय धर्मशास्त्र के कर्मविपाक विषय में मिश्रित प्राय-
श्चित्त वर्णन तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

ब्राह्मण का सुवर्ण चुराने वाला नरक भोग के अन्त में कुलघ्न (जिस से आगे कुल न चले) होता है। वह तीन चान्द्रायण व्रत करके सौ १०० अशर्फी सुवर्ण का दान करे ॥१॥ तांबे को चुराने वाला नरक भोग के अन्त में औदुम्बरी रोग युक्त होता है । वह प्राजापत्य व्रत करके चार सेर तांबे के पात्रों का दान करे ॥२॥ कांसे को चुरानेवाला पुण्डरीकरोग युक्त होता है वह एक दिन उपवास करके कांसे के चारसेर पात्रों का दान करे ॥ ३ ॥ पीतल चुरानेवाला पीली आंखों से युक्त

गुडधेनुःप्रदातव्या तेनतद्दोषशान्तये ॥ ११ ॥
लोहहारीचपुरुषो जायतेचर्मरोगवान् ।
लोहंपलशतंदद्यादुपोष्यसतुवासरम् ॥ १२ ॥
तैलचोरस्तुपुरुषोभवेत्कण्ड्वादिपीडितः ।
उपोष्यसतुविप्राय दद्यात्तैलघटद्वयम् ॥ १३ ॥
आमान्नहरणाच्चैव दन्तहीनःप्रजायते ।
सदद्यादश्विनौहेमनिष्कद्वयविनिर्मितौ ॥ १४ ॥
पक्वान्नहरणाच्चैव जिह्वारोगःप्रजायते ।
गायत्र्याःसजपेल्लक्षं दशांशंजुहुयात्तिलैः ॥ १५ ॥
फलहारीचपुरुषो जायतेव्रणिताङ्गुलिः ।
नानाफलानामयुतं सदद्याच्चद्विजन्मने ॥ १६ ॥
ताम्बूलहरणाच्चैव श्वेतौष्ठःसंप्रजायते ।
सदक्षिणांप्रदद्याच्च विद्रुमस्यद्वयंवरम् ॥ १७ ॥
शाककहारीचपुरुषो जायतेनीललोचनः ।

उदर में गुल्मरोग युक्त होता है उसको अपने दोष की शान्ति के लिये गुड़ धेनु का दान करना चाहिये ॥ ११ ॥ लोहा चुरानेवाला पुरुष चर्मरोगवाला होता है वह एक दिन उपवास करके चार सेर लोहे का दान करे ॥ १२ ॥ तेल चुरानेवाला पुरुष खुजली के रोगादि से पीड़ित होता है वह दिनभर उपवास करके दो घड़े तेल ब्राह्मण को दान करे ॥ १३ ॥ कच्चा अन्न चुरानेवाला दांतों से हीन होता है । वह आठ तोला सुवर्ण से अश्विनी कुमार देवों की प्रतिमा बनाके दान करे ॥ १४ ॥ पकाया अन्न चुराने से जीभ में रोग होता है वह एक लाख गायत्री का जप करके घी युक्त तिलों से दशांश होम करे ॥ १५ ॥ फल चुरानेवाला अंगुलियों में फोड़ा फुंसी युक्त होता है वह अनेक प्रकार के दशहजार फलों का दान ब्राह्मण को देवे ॥ १६ ॥ पान (ताम्बूल) चुराने से श्वेत ओठोंवाला होता है वह दो उत्तम मूंगा (प्रवाल) दक्षिणा देवे ॥ १७ ॥ शाक चुरानेवाला पुरुष नीली आंखों से युक्त होता है । वह ब्राह्मण को दो महा-

ब्राह्मणायप्रदद्याद्वै महानीलमणिद्वयम् ॥ १८ ॥
कन्दमूलस्यहरणाद्ध्रस्वपाणिःप्रजायते।
देवतायतनंकार्य्यमुद्यानंतेनशक्तितः ॥ १९ ॥
सौगन्धिकस्यहरणाद्दुर्गन्धाङ्गःप्रजायते।
सलक्षमेकंपद्मानां जुहुयाज्जातवेदसि ॥ २० ॥
दारुहारीचपुरुषः खिन्नपाणिःप्रजायते।
सदद्याद्विदुषेशुद्धौ काश्मीरजपलद्वयम् ॥ २१ ॥
विद्यापुस्तकहारीच किलमूकःप्रजायते।
न्यायेतिहासंदद्यात्स ब्राह्मणायसदक्षिणम् ॥ २२ ॥
वस्त्रहारीभवेत्कुष्ठी संप्रदद्यात्प्रजापतिम्।
हेमनिष्कमितंचैव वस्त्रयुग्मंद्विजातये ॥ २३ ॥
ऊर्णाहारीलोमशःस्यात् सदद्यात्कंबलान्वितम्।
स्वर्णनिष्कमितंहेम वन्हिंदद्याद्द्विजातये ॥ २४ ॥
पट्टसूत्रस्यहरणान्निर्लोमाजायतेनरः।

नील मणि दक्षिणा में देवे ॥ १८ ॥ कन्द तथा मूलों के चुराने पर छोटे२ हाथों वाला होता है उसको यथाशक्ति देव मन्दिर और बगीचा लगवाना चाहिये ॥१९॥ सुगन्धि की चोरी करने से दुर्गन्धि अङ्गों से युक्त होता है। वह एक लाख कमलों का अग्नि में होम करे ॥ २० ॥ काष्ठ की चोरी करनेवाले के हाथों में खेद हुआ करता है वह विद्वान् को आठ तोला मणि हीरादि का दान करे ॥ २१ ॥ विद्या के पुस्तक को चुरानेवाला निश्चयकर मूक (गूंगा) होता है वह न्याय और इतिहास के पुस्तकों का दक्षिणा सहित दान करे ॥ २२ ॥ वस्त्र चुरानेवाला कुष्ठरोगी होता है वह चार तोला सुवर्ण से प्रजापति की प्रतिमा बनाकर दो वस्त्रों सहित ब्राह्मण को दान करे ॥ २३ ॥ ऊन चुराने वाला शरीर पर बहुत रोम युक्त होता है वह चार तोले सुवर्ण से अग्नि देवता की प्रतिमा बनाकर एक कम्बल सहित ब्राह्मण को दान देवे ॥ २४ ॥ रेशम का वस्त्र चुराने से मनुष्य सर्वथा लोमों से रहित होता है वह अपनी शुद्धि के

तेनधेनुःप्रदातव्या विशुद्ध्यर्थंद्विजन्मने ॥ २५ ॥
औषधस्यापहरणे सूर्यावर्त्तःप्रजायते ।
सूर्यायार्घ्यःप्रदातव्यो माषंदेयंचकाञ्चनम् ॥ २६ ॥
रक्तवस्त्रप्रवालादि हारीस्याद्रक्तवातवान् ।
सवस्त्रांमहिषींदद्यान्मणिरागसमन्विताम् ॥ २७ ॥
विप्ररत्नापहारीचाप्यनपत्यःप्रजायते ।
तेनकार्य्यंविशुद्ध्यर्थं महारुद्रजपादिकम् ॥ २८ ॥
मृतवत्सोदितःसर्वो विधिरत्रविधीयते ।
दशांशहोमःकर्त्तव्यः पालाशेनयथाविधि ॥ २९ ॥
अनड्वान्वस्त्रसंयुक्तः पलार्द्धार्द्धंचकाञ्चनम् ।
निर्धनेनप्रकर्त्तव्यं द्विजस्यमुच्यतेक्षणात् ॥ ३० ॥
ब्राह्मणस्यधनंलोभाद्योनार्पयतिमूढधीः ।
निर्वंशोजायतेतस्य दद्याद्दशपयस्विनीः ॥ ३१ ॥

लिये ब्राह्मण को गौ का दान देवे ॥ २५ ॥ औषधों के चुराने पर सूर्यावर्त्त नामक शिर के रोगसे युक्त होता है वह सूर्यनारायण को नित्य अर्घ्य दिया करे और एक माषा सुवर्ण का दान करे ॥२६॥ वस्त्र और मूगादि सुर्ख पदार्थों को चुरानेवाला वातरक्त रोग युक्त होता है वह रक्तमणि और रक्तवस्त्र सहित भैंसी का दान करे ॥ २७ ॥ ब्राह्मण के रत्न (उत्तम) पदार्थों को चुरानेवाला सन्तान हीन निर्वंशी होता है उसको अपनी शुद्धि के लिये महारुद्र (पीछे कहे १२१ रुद्री के पाठ) करने चाहिये ॥ २८ ॥ जिसके पुत्र मर२ जाते हैं उसके लिये जो श्लोक ३७ से ४१ तक अ० २ में विधान कह चुके हैं वही सब यहां करे और ढांककी समिधाओं को घृताक्त कर २ उनसे दशांश होम करे ॥२९॥ और प्रायश्चित्ती मनुष्य निर्धन हो तो एक तोला सुवर्ण और वस्त्र सहित एक बैल का दान करे तो ब्राह्मण के अपराध से मुक्त होजाता है ॥ ३० ॥ जो मूढ़ पुरुष धरोहर में रक्खे ब्राह्मण के धनको लोभ से मारलेता है वह निर्वंशी होजाता है इससे वह दूध देती हुई दश गौओं का सुपात्र ब्राह्मणों को दान देवे ॥३१॥

देवस्वहरणाच्चैव जायतेविविधोज्वरः ।
ज्वरोमहाज्वरश्चैव रौद्रोवैष्णवएवच ॥ ३२ ॥
ज्वरेरौद्रंजपेत्कर्णं महारुद्रंमहाज्वरे ।
अतिरौद्रंजपेद्रौद्रे वैष्णवेतद्द्वयंजपेत् ॥ ३३ ॥
नानाविधद्रव्यचौरो जायतेग्रहणीयुतः ।
तेनान्नोदकवस्त्राणि हेमदेयंचशक्तितः ॥ ३४ ॥
माषतिललोहहारी गजचर्माप्रजायते ।
माषद्वयमितांदद्याद् धेनुंद्विपतिलान्विताम् ॥ ३५ ॥

इति शातातपीये धर्मशास्त्रे कर्मविपाके स्तेयप्रायश्चित्तं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

मातृगामीभवेद्यस्तु लिङ्गंतस्यविनश्यति ।
चाण्डालीगमनेचैव हीनकोशःप्रजायते ॥ १ ॥
तस्यप्रतिक्रियांकर्त्तुं कुम्भमुत्तरतोन्यसेत् ।

देव पूजा सम्बन्धी धनके चुरानेसे रौद्र ज्वर, वैष्णवज्वर, इत्यादि अनेक प्रकार का ज्वर अपराधी को होता है ॥ ३२ ॥ साधारण ज्वर में अपराधी के निकट रुद्री के ११ पाठ, महाज्वर में महारुद्र (रुद्री के १२१ पाठ) रौद्रज्वर में अतिरौद्र (रुद्री के १३३१ पाठ) और वैष्णवज्वर में महारुद्र अतिरुद्र दोनों का अनुष्ठान करावे। पीछे तदनुसार दशांश का होम कराया जाय ॥ ३३ ॥ अनेक प्रकार के द्रव्यों को चुरानेवाला संग्रहणीरोग युक्त होताहै उसको अन्न, जल, वस्त्र और सुवर्ण का यथाशक्ति दान करना चाहिये ॥ ३४ ॥ उड़द, तिल और लोहे को चुरानेवाला हाथी के तुल्य चर्म रोगवाला होता है वह दो मासे सुवर्ण की धेनु को हाथी से स्पर्श करावे तिलों सहित दान करे ॥ ३५ ॥

यह शातातपीय धर्मशास्त्र के कर्मविपाक विषय में चोरी का प्रायश्चित्तरूप चतुर्थोऽध्याय पूरा हुआ ॥

माता से गमन करनेवाले का नरक भोगके अन्त में होनेवाले मनुष्य जन्म में लिङ्गेन्द्रिय नष्ट होजाता है। और चाण्डाली से गमन करने पर अण्डकोशों से हीन उत्पन्न होता है ॥ १ ॥ उस पाप की निवृत्ति के लिये पूजन स्थान

कृष्णवस्त्रसमाच्छन्नं कृष्णमाल्यविभूषितम् ॥ २ ॥
तस्योपरिन्यसेद्देवं कांस्यपात्रेधनेश्वरम् ।
सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मितंनरवाहनम् ॥ ३ ॥
यजेत्पुरुषसूक्तेन धनदंविश्वरूपिणम् ।
अथर्ववेदविद्विप्रो ह्याथर्वणंसमाचरेत् ॥ ४ ॥
सुवर्णपुत्तिकांकृत्वा निष्कविंशतिसंख्यया ।
दद्याद्विप्रायसंपूज्य निष्पापोऽहमितिब्रुवन् ॥ ५ ॥
निधीनामधिपोदेवः शंकरस्यप्रियस्सखा ।
सौम्याशाधिपतिःश्रीमान् ममपापंव्यपोहतु ॥ ६ ॥
इमंमन्त्रंसमुच्चार्य्य आचार्य्यायथाविधि ।
दद्याद्देवंहीनकोशो लिङ्गनाशेविशुद्धये ॥ ७ ॥
गुरुजायाभिगमनान्मूत्रकृच्छ्रःप्रजायते ।
तेनापिनिष्कृतिःकार्य्या शास्त्रदृष्टेनकर्म्मणा ॥ ८ ॥

के उत्तरभाग में एक कलश स्थापित करे उसको कालेवस्त्र और काले फूलों की माला से शोभित करे॥२॥ उस कलश के समीप में एक कांसे के पात्र में कुबेर देवता की प्रतिमा चौबीश तोला सुवर्ण की बनवाके (जो मनुष्य पर सवार हो ऐसी प्रतिमाको) स्थापित करे ॥३॥ फिर सर्वरूप कुबेर देवता का पुरुष सूक्त से पूजन करे । और अथर्ववेदी ब्राह्मण अथर्व का पाठ भी वहीं करे ॥४॥ फिर अस्सी तोला सुवर्ण की एक पुतली(कुबेर देव की प्रतिमा) बनाकर उसका सम्यक् पूजन करके 'मैं निष्पाप होऊं' ऐसा कहता हुआ निम्न रीति से ब्राह्मण को दान कर देवे ॥५॥ सब खजानों के मालिक, शंकर भगवान् के प्रियमित्र, उत्तर दिशा के स्वामी श्रीमान् कुबेरदेव मेरे पाप को नष्ट करें ॥६॥ अण्डकोशों से हीन होने वा लिङ्गेन्द्रिय हीन होने के अपराध से मुक्त होने के लिये (निधीनामधिपो०) इस मन्त्र का उच्चारण करके देव प्रतिमा का विधि पूर्वक आचार्य को दान कर देवे ॥ ७ ॥ गुरुपत्नी के साथ गमन करने से मूत्र कृच्छ्र रोग से युक्त होता है । उस को धर्म शास्त्रोक्त कर्म द्वारा प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ८ ॥

स्थापयेत्कुम्भमेकन्तु पश्चिमायांशुभेदिने ।
नीलवस्त्रसमाच्छन्नं नीलमाल्यविभूषितम् ॥ ९ ॥
तस्योपरिन्यसेद्देवं ताम्रपात्रेप्रचेतसम् ।
सुवर्णनिष्कषट्केन निर्म्मितंयादसाम्पतिम् ॥ १० ॥
यजेत्पुरुषसूक्तेन वरुणंविश्वरूपिणम् ।
सामविद्ब्राह्मणस्तत्र सामवेदंसमाचरेत् ॥ ११ ॥
सुवर्णपुत्तिकांकृत्वा निष्कविंशतिसंख्यया ।
दद्याद्विप्रायसंपूज्य निष्पापोऽहमितिब्रुवन् ॥ १२ ॥
यादसामधिपोदेवो विश्वेषामपिपावनः ।
संसाराब्धौकर्णधारो वरुणःपावनोऽस्तुमे ॥ १३ ॥
इमंमन्त्रंसमुच्चार्य आचार्याययथाविधि ।
दद्याद्देवमलङ्कृत्य मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये ॥ १४ ॥
स्वसुतागमनेचैव रक्तकुष्ठंप्रजायते ।
भगिनीगमनेचैव पीतकुष्ठंप्रजायते ॥ १५ ॥
तस्यप्रतिक्रियांकर्त्तुं पूर्वतःकलशंन्यसेत् ।

किसी शुभ दिन पूजन स्थान के पश्चिम भाग में एक कलश नीले वस्त्र और नीले फूलों से शोभित करके स्थापित करे ॥ ९ ॥ उस कलश के ऊपर तांबे के पात्र में २४ तोला सुवर्ण से बनायी जल के अधिष्ठाता वरुण देवता की प्रतिमा स्थापित करे ॥ १० ॥ फिर विश्वरूपी वरुण देव का पुरुष सूक्त के मन्त्रों से पूजन करे और साथ ही सामवेदी ब्राह्मण सामगान करे ॥ ११ ॥ फिर अस्सी तोला सुवर्ण की प्रतिमा वरुण देवता की बनाके उस का सम्यक् पूजन करके (मैं निष्पाप हो जाऊं) ऐसा कहता हुआ निम्न रीति से ब्राह्मण गुरु को प्रतिमा का दान करे ॥ १२ ॥ सब को पवित्र करने वाले जल के अधिष्ठाता, संसार समुद्र से पार करने वाले (मल्लाह) वरुण देव मुझ को पवित्र करने वाले हों ॥ १३ ॥ इस मन्त्र का उच्चारण करके मूत्रकृच्छ्र की शान्ति के अर्थ पुष्पादि से भूषित देव प्रतिमा को विधि पूर्वक गुरु के लिये देवे ॥१४॥ अपनी पुत्री से गमन करने पर जन्मान्तर में रक्त कुष्ठी होता और भगिनी से गमन करने पर पीत कुष्ठी होता है ॥१५॥ उस का प्रायश्चित्त करने के लिये

पीतवस्त्रसमाच्छन्नं पीतमाल्यविभूषितम् ॥ १६ ॥
तस्योपरिन्यसेत्स्वर्ण पात्रेदेवंसुरेश्वरम् ।
सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मितंवज्रधारिणम् ॥ १७ ॥
यजेत्पुरुषसूक्तेन वासवंविश्वरूपिणम् ।
यजुर्वेदंतत्रसाम ऋग्वेदंचसमापयेत् ॥ १८ ॥
सुवर्णपुत्तिकांकृत्वा सुवर्णदशकेनतु ।
दद्याद्विप्रायसंपूज्य निष्पापोऽहमितिब्रुवन् ॥ १९ ॥
देवानामधिपोदेवो वज्रांकुलिशकेतनः ।
शतयज्ञःसहस्राक्षः पापंममनिकृन्ततु ॥ २० ॥
इमंमन्त्रंसमुच्चार्य्य आचार्य्यायथाविधि ।
दद्याद्देवंसहस्राक्षं स्वपापस्यापनुत्तये ॥ २१ ॥
भ्रातृभार्याभिगमनाद् गलत्कुष्ठंप्रजायते ।
स्वबधूगमनेचैव कृष्णकुष्ठंप्रजायते ॥ २२ ॥
तेनकार्यंविशुद्ध्यर्थं प्रागुक्तस्यार्द्धमेवहि ।

पीले वस्त्र और पीली फूल मालाओं से भूषित एक कलश पूजन स्थान के पूर्वभाग में स्थापित करे ॥१६॥ उस कलश के ऊपर सुवर्ण के पात्र में २४ तोला सुवर्ण से बनायी वज्रधारी इन्द्र देवता की प्रतिमा को स्थापित करे ॥१७॥ फिर विश्वरूपी इन्द्रदेव का पुरुष सूक्त से पूजन करे, साथही उस २ वेद के ज्ञाता ब्राह्मण लोग वहां ऋग्, यजुः—सामवेद का पाठ करें ॥ १८ ॥ और दश तोला सुवर्ण की एक प्रतिमा इन्द्रदेवता की बनाके ' मैं निष्पाप होऊं ' ऐसा कहता हुआ वह प्रतिमा सम्यक् पूजन करके निम्न प्रकार ब्राह्मण गुरु को देवे ॥ १९ ॥ देवों के स्वामी, सौ यज्ञ करने वाले, सहस्रों चक्षु वाले, वज्र चिन्ह युक्त वज्रधारी इन्द्रदेव मेरे पाप को नष्ट करें ॥ २० ॥ अपने पाप के नाशार्थ इस मन्त्र का उच्चारण करके इन्द्रदेव की प्रतिमा विधि पूर्वक आचार्य को देवे ॥२१॥ भाई की पत्नी से गमन करे तो गलत्कुष्ठ और पुत्र वधू से गमन करे तो जन्मान्तर में काला कुष्ठ प्रकट होता है ॥ २२ ॥ उस को अपनी शुद्धि

दशांशहोमःसर्वत्र घृताक्तैःक्रियतेतिलैः ॥ २३ ॥
स्वाम्यङ्गनाभिगमनाज्जायतेदद्रुमण्डलम् ।
कृत्वालोहमयींधेनुं पलषष्टिप्रमाणतः ॥ २४ ॥
कार्पासभाण्डसंयुक्तां कांस्यदोहांसवत्सिकाम् ।
दद्याद्विप्रायविधिवदिमंमन्त्रमुदीरयेत् ।
सुरभिर्वैष्णवीमाता ममपापंव्यपोहतु ॥ २५ ॥
विश्वस्तभार्यागमने गजचर्माप्रजायते ।
तस्यपापविनाशाय प्रायश्चित्तंविधीयते ॥ २६ ॥
कृत्वारौप्यमयींधेनुं निष्कृतिंविश्वसंख्यया ।
तस्यपापस्यनाशाय छत्रोपानहसंयुताम् ॥ २७ ॥
मातुःसपत्निगमने जायतेचाश्मरीगदः ।
सतुपापविशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तंसमाचरेत ॥ २८ ॥
दद्याद्विप्रायविदुषे मधुधेनुंयथोदितम् ।

के लिये पूर्व कहे पुत्री गमन के प्रायश्चित्त से आधा करना चाहिये और सभी जप पाठों में घृत मिले तिलों से दशांश होम तो करना ही चाहिये ॥ २३ ॥ स्वामी (मालिक) की स्त्री से सेवक गमन करे तो जन्मान्तर में मण्डलाकार (चकत्तेवाली) दाद होती है। वह तीन सेर लोहे की गौ बनवाके, बिनौले, बर्तन, कांसे का दोहनी और बछड़े सहित गौ (सुरभि०) मन्त्रोच्चारण पूर्वक विधि के साथ ब्राह्मण को दान देवे कि विष्णु देवता सम्बन्धिनी सुरभि गौ माता मेरे पाप को नष्ट करे ॥२४।२५॥ अपना विश्वास रखनेवाले की पत्नी से गमन करे तो जन्मान्तर में हाथी के से चर्मवाला होताहै। उस पाप का प्रायश्चित्त यह है कि ॥२६॥ नौ तोला चांदी की प्रायश्चित्त रूप गौ बनाकर उस पाप के नाशार्थ छाता और जूता सहित दान करे ॥२७॥ अपनी सौतेली माता से गमन करे तो जन्मान्तर में पथरीरोग होता है। वह पुरुष उसका निम्न प्रायश्चित्त करे ॥ २८ ॥ विद्वान् ब्राह्मण को शहद की गौ शास्त्रविध्यनुकूल दान

तिलद्रोणशतंचैव हिरण्येनसमन्वितम् ॥ २९ ॥
पितृष्वस्त्रभिगमनाद्दक्षिणांशव्रणीभवेत् ।
तेनापिनिष्कृतिःकार्या अजादानेनशक्तितः ॥ ३० ॥
मातुलान्यांतुगमने पृष्ठकुब्जःप्रजायते ।
कृष्णाजिनप्रदानेन प्रायश्चित्तंसमाचरेत् ॥ ३१ ॥
मातृष्वस्त्रभिगमने वामाङ्गेव्रणवान्भवेत् ।
तेनापिनिष्कृतिःकार्या सम्यग्दासीप्रदानतः ॥ ३२ ॥
पितृव्यपत्नीगमनात्कटिकुष्ठंप्रजायते ।
निष्कृतिस्तेनकर्त्तव्या कन्यादानेनयत्नतः ॥ ३३ ॥
यद्गम्यासुसंयोगात्प्रायश्चित्तमुदीरितम् ।
तदेवमुनिभिःप्रोक्तं नियतंतत्सुतास्वपि ॥ ३४ ॥
मृतभार्याभिगमने मृतभार्यःप्रजायते ।
तत्पातकविशुद्ध्यर्थं द्विजमेकंविवाहयेत् ॥ ३५ ॥
सगोत्रस्त्रीप्रसंगेन जायतेचभगन्दरः ।

देवे और सुवर्ण के सहित २५ मन तिलों का दान करे ॥ २९ ॥ फूफी (बुआ) के साथ गमन करे तो शरीर के दहिने भाग में फोड़े फुंसी होते हैं । वह यथाशक्ति बकरियों के दान द्वारा प्रायश्चित्त करे ॥३०॥ मामी के साथ गमन करे तो कुबड़ी पीठवाला होता वह कृष्ण मृगचर्मों के दान द्वारा प्रायश्चित्त करे॥३१॥ मौसी के साथ गमन करे तो शरीर के वामभाग में फोड़ा फुंसीयुक्त होता है वह दासी के दान द्वारा प्रायश्चित्त करे ॥ ३२ ॥ चाची के साथ गमन करे तो कटि भाग में कुष्ठरोगयुक्त होता है वह कन्याओं के दान द्वारा प्रायश्चित्त करे ॥ ३३ ॥ जिन२ अगम्यास्त्रियोंके साथ संग करने से जो२ प्रायश्चित्त कहा गया है। उन२ स्त्रियों की पुत्रियोंके साथ गमन करने पर भी ऋषियों ने वही२ प्रायश्चित्त कहा है॥३४॥ मृत पुरुष की स्त्री के साथ गमन करे तो जन्मान्तर में उसकी भी पत्नी मर जाया करती है । उस पाप की शुद्धि के लिये एक ब्राह्मण का विवाह करावे ॥३५॥ अपने गोत्र की स्त्री से गमन करे तो जन्मान्तर में भगन्दर रोग होता है ।

तेनापिनिष्कृतिःकार्या महिषीदानयत्नतः ॥ ३६ ॥
तपस्विनीप्रसंगेन प्रमेहीजायतेनरः ।
मासंरुद्रजपःकार्यो दद्याच्छक्त्याचकाञ्चनम् ॥ ३७ ॥
दीक्षितस्त्रीप्रसंगेन जायतेदुष्टरक्तरुक् ।
सपातकविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यानिषट्चरेत् ॥ ३८ ॥
प्राणनाथंपरित्यज्य देवरंसेवतेध्रुवम् ।
गुदमध्येभवेद्व्याधी रशनावामदुःसहा ।
तयाकार्यंप्रयत्नेन गोदानंहेमसम्मितम् ॥ ३९ ॥
गोविन्दगोपीजनवल्लभेशः कंसासुरघ्नस्त्रिदशेशवन्द्यः ।
गोदानतृप्तःकुरुतेदयालुरीशाननाथादपितारिवर्गः ॥ ४० ॥
श्रोत्रियस्त्रीप्रसंगेन जायतेनासिकाव्रणी ।
आचरेत्सविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यञ्चतुष्टयम् ॥ ४१ ॥
स्वजातिजायागमने जायतेहृदयव्रणी ।
तत्पापस्यविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यद्वयंचरेत् ॥ ४२ ॥
धात्र्युत्तरस्त्रीगमनाज्जायतेमस्तकव्रणः ।

वह भैंसियों के यथाशक्ति दान द्वारा प्रायश्चित्त करे ॥३६॥ तपस्विनी स्त्री के साथ संगकरे तो प्रमेह रोग युक्तहोता है वह एक मास तक रुद्री का पाठ दशांश होम और यथाशक्ति सुवर्ण का दान करे ॥३७॥ दीक्षित पुरुष की स्त्री से संग करे तो रक्तविकार रोगयुक्त होता है वह छः प्राजापत्य व्रत प्रायश्चित्त करे ॥३८॥ जो स्त्री अपने पति को छोड़के देवर से संग करती है उस के गुदेन्द्रिय में रोग होता और असह्यपीड़ा होती है वह स्त्री बड़े यत्न से सुवर्ण सहित गोदान बार२ करे ॥३९॥ गोविन्द गोपीजनों के प्रियस्वामी कंसासुर के हन्ता, देवताओं के स्वामी इन्द्र के भी पूजनीय, ईशान दिशा के स्वामी महादेव जी से भी विशेषकर जिन का वर्ग तारनेवाला है ऐसे कृष्ण भगवान् गोदान से तृप्त हुए प्रायश्चित्ती पर दयाकरते हैं ॥ ४० ॥ वेदपाठी की स्त्री के साथ संग करे तो प्रायः नासिका में फोड़ा फुंसी होते हैं । वह अपनी शुद्धि के लिये चार प्राजापत्य व्रत करे ॥४१॥ अपने वर्ण की स्त्री से संग करे तो हृदय में प्रायः फोड़ा फुंसी होते हैं । उस पाप की शुद्धि के लिये दो प्राजापत्य व्रत करे ॥ ४२ ॥ धायी के साथ संग

सपातकविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यंसमाचरेत् ॥ ४३ ॥
पशुयोनौचगमने मूत्राघातःप्रजायते ।
तिलपात्रद्वयंचैव दद्यादात्मविशुद्धये ॥ ४४ ॥
अश्वयोनौचगमनाद् भुजस्तम्भःप्रजायते ।
सहस्रकलशैःस्नानं मासंकुर्याच्छिवस्यच ॥ ४५ ॥
आसुरीअलसीदासी चर्मकारीचनर्त्तकी ।
रजकीभिःसमंभोगात्पतन्तिपितृभिःसह ॥ ४६ ॥
उपोष्यैकादशींशुद्धां जागरंकारयेन्निशि ।
तस्यपापविशुद्ध्यर्थं दद्यादेकांपयस्विनीम् ॥ ४७ ॥
एतेदोषानराणांस्युर्नरकान्तेनसंशयः ।
स्त्रीणामपिभवन्त्येते तत्तत्पुरुषसंगमात् ॥ ४८ ॥

इति शातातपीये धर्मशास्त्रे कर्मविपाके अगम्यागमन प्रायश्चित्तं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

करे तो मस्तक में प्रायः फोड़ा फुंसी होतेहैं यह उस पातक की शुद्धि के लिये एक प्राजापत्य व्रत करे ॥ ४३ ॥ पशुजाति के संग मैथुन करने से मूत्राघात रोग होता है। उसकी शुद्धि के लिये तिलों से भरके दो पात्र दान करे ॥ ४४ ॥ घोड़ी के साथ मैथुन करने से भुजा जकड़ने का रोग होताहै। इसके लिये एक महिने तक एक हजार कलशों से शिवजी को स्नान करावे ॥ ४५ ॥ आसुरी (राक्षसी) अलसी (आलसिनी) दासी, चर्मकारी, नटिनी, वा वेश्या, और धोबिनि इन के साथ संग करने से अपने पितरों के सहित पतित हो जाते हैं ॥ ४६ ॥ इस के लिये जो अन्य तिथि से विद्ध न हो ऐसी शुद्ध एकादशी को उपवास करके रात भर जागरण करे और उस पाप से शुद्ध होने के लिये एक दूध देती गौ का दान करे ॥ ४७ ॥ इस अध्याय में कहे दोष नरक भोग के अन्तमें उन २ पापोंसे पुरुषों के निस्सन्देह होते ही हैं । और जिन २ स्त्रियों के संग से पुरुषों को दोष दिखाए हैं उन्हीं २ के पुरुषों से संग करने वाली स्त्रियों को भी वे २ पाप दोष लगते हैं इस से उन को भी उक्त प्रायश्चित्त ही करना चाहिये ॥ ४८ ॥

यह शातातपीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में कर्मविपाक सम्बन्धी अगम्यागमन प्रायश्चित्तरूप पांचवां अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

अश्वशूकरशृङ्गयद्रि द्रुमादिशकटेनच ।
भृग्वग्निदारुशस्त्राश्मविषोद्बन्धनजैर्मृताः ॥ १ ॥
व्याघ्रादिगजभूपालचोरवैरिवृकाहताः ।
काष्ठशल्यमृतायेच शौचसंस्कारवर्जिताः ॥ २ ॥
विसूचिकान्नकवलदवातीसारतोमृताः ।
डाकिन्यादिग्रहैर्ग्रस्ता विद्युत्पातहताश्चये ॥ ३ ॥
अस्पृश्याअपवित्राश्च पतिताःपुत्रवर्जिताः ।
पञ्चत्रिंशत्प्रकारैश्च नाप्नुवन्तिगतिंमृताः ॥ ४ ॥
पित्राद्याःपिण्डभाजःस्युस्त्रयोलेपभुजस्तथा ।
ततोनान्दीमुखाःप्रोक्तास्त्रयोप्यश्रुमुखास्त्रयः ॥ ५ ॥
द्वादशैतेपितृगणास्तर्पिताःसन्ततिप्रदाः ।
गतिहीनाःसुतादीनां सन्ततिंनाशयन्तिते ॥ ६ ॥
दशव्याघ्रादिनिहता गर्भंनिघ्नन्त्यमीक्रमात् ।

घोड़ा, सुवर, सींगों वाले पशुओं ने मारे, पर्वत तथा वृक्षादि से गिरके, गाड़ी से पिचल के मरे, पर्वत की शिला, अग्नि, लकड़ी, शस्त्र, पत्थर, विष, और फांसी से मरे ॥ १ ॥ बाघ आदि, हाथी, राजा, चोर, शत्रु, भेड़िया, इन ने जिन को मारा, काष्ठ वा कांटे से घाव हो कर मरे जो शुद्धि तथा उपनयनादि संस्कारों से हीन रहते हुए मरे हों ॥ २ ॥ हैजा द्वारा, अन्न से, गले में ग्रास अटक जाने से, बन के अग्नि से, अतीसार (अधिक दस्तों के होने से) डाकिनी आदि से, ग्रहों (राहु आदि) से ग्रस्त (पकड़े हुए), बिजली पड़ने से, ॥ ३ ॥ स्पर्श न करने योग्य वा अपवित्र दशा (विष्ठा मूत्रादि में पड़के) में, पतित होके और पुत्रहीन हो कर जो मरे हों इन पैंतीश ३५ प्रकारों से मरे मनुष्यों की अच्छी गति नहीं होती है ॥ ४ ॥ पितादि तीन (पिता,पितामह, प्रपितामह,) पिण्डों के भागी, उन से पहिले तीन लेप भागी, उनसे पहिले तीन नान्दीमुखश्राद्धभागी और उन से भी पहिले तीन अश्रुमुख पितर कहाते हैं ॥५॥ ये बारह पितृगण श्राद्ध तर्पणादि से तृप्त हुये पुत्रादि की सन्तति बढ़ाते हैं । और श्राद्धादि न किये जावें तो वे ही पुत्रादि की सन्तति को नष्ट करते हैं ॥ ६ ॥ इसी अ० में कहे व्याघ्रादि दश के द्वारा मरे हुए पितर

द्वादशास्त्रादिनिहता आकर्षन्तिचबालकम् ॥ ७ ॥
विषादिनिहताघ्नन्ति दशसुद्वादशस्वपि ।
वर्षैकबालकंकुर्यादनपत्योऽनपत्यताम् ॥ ८ ॥
व्याघ्रेणहन्यतेजन्तुः कुमारीगमनेनच ।
विषदश्चैवसर्पेण गजेनन्नृपदुःखकृत् ॥ ९ ॥
राज्ञाराजकुमारघ्नश्चोरेणपशुहिंसकः ।
वैरिणामित्रभेदीच वकवृत्तिर्वृकेणतु ॥ १० ॥
गुरुघातीचशय्यायां मत्सरीशौचवर्जितः ।
द्रोहीसंस्काररहितः शुनानिःक्षेपहारकः ॥ ११ ॥
नरोविहन्यतेऽरण्ये शूकरेणचपाशिकः ।
कृमिभिःकृत्तवासाश्च कृमिणाचनिकृन्तनः ॥ १२ ॥
शृङ्गिणाशङ्करद्रोही शकटेनचसूचकः ।

क्रम से गर्भ को नष्ट करते हैं। और शस्त्रादि १२ से मरेहुए बालक को गर्भ में से खींचते (गर्भ को गिरा देते) हैं ॥ ७ ॥ विष खाने आदि से मरे दश तथा बारह वर्ष के बालक को भी नष्ट करते हैं। और निर्वंशी मरे पितर अपने २ कुल के एक वर्ष के बालक को नष्ट करते वा अन्यों को भी निर्वंश कर देते हैं ॥ ८ ॥ कुमारी कन्या से जो संग करता है वह जन्मान्तर में व्याघ्रसे मारा जाता है। विष देने वाला सांप से और राजा को दुःख देने वाला हाथी से मारा जाता है ॥ ९ ॥ राजकुमार को मार डालने वाला राजा की आज्ञा से, पशुहिंसक चोर से, मित्रों में फूट विरोध कराने वाला वैरी से, वकवृत्ति (अन्य का माल मारने में बगुला कासा ध्यान लगाने वाला) भेड़िया से मारा जाता है ॥१०॥ गुरु की हत्या करने वाला शय्या (खटिया) पर, मत्सरता करने वाला–अशुद्ध दशा में, द्रोह करने वाला–संस्कार हीन दशा में और धरोहर मारने वाला कुत्ते के काटने से मरता है ॥११ फांसी देने वाला–बन में सुअर से माराजाता, कपड़ा फाड़ने वाला–कीड़ों से मरता, गांठ काटने वाला कीड़े के काटने से मरता है ॥१२॥ शंकर भगवान् का द्रोही–शींग वाले से, निन्दक–गाड़ी से दबकर, भूमि चुराने वाला–पर्वत से गिर के, और यज्ञ में हानि

भृगुणामेदिनीचौरो वन्हिनायज्ञहानिकृत् ॥ १३ ॥
दवेनदक्षिणाचोरः शस्त्रेणश्रुतिनिन्दकः ।
अश्मनाद्विजनिन्दाकृद्विषेणकुमतिप्रदः ॥ १४ ॥
उद्बन्धनेनहिंस्रःस्यात् सेतुभेदीजलेनतु ।
द्रुमेणराजदन्तहृदतिसारेणलोहहृत् ॥ १५ ॥
गोग्रासहृद्विषूचिकया कवलैर्द्विजान्नहृत् ।
भ्रामेणराजपत्नीहृदतिसारैर्निष्क्रियः ॥ १६ ॥
शाकिन्याद्यैर्म्रियते स्वदर्पात्कार्यकारकः ।
अनध्यायेऽप्यधीयानो म्रियतेविद्युतातथा ॥ १७ ॥
अस्पृश्योऽस्पृश्यसंगीच वान्तमाश्रित्यशास्त्रहृत् ।
पतितोऽपत्यविक्रेताऽनपत्योद्विजवस्त्रहृत् ॥ १८ ॥
विक्रेताघातकश्चैव द्वावेतौतुल्यावृतौ ।
घातकश्चैवहत्यायां रोग्विरोग्विाचविक्रयी ॥ १९ ॥
अथतेषांक्रमेणैव प्रायश्चित्तं विधीयते ।

वा विघ्न करने वाला -अग्नि में जल कर मरता है ॥१३॥ दक्षिणा चुरानेवाला-दावाग्नि से, वेदनिन्दक-शस्त्र से, ब्राह्मणनिन्दक-पत्थर से, और बुरे काम को सिखाने वाला विष से मारा जाता है ॥ १४ ॥ हिंसक-फांसी से, बांध तोड़ने वाला-जल में डूब के, हाथीदांत का चुराने वाला-वृक्ष से गिर के, और लोहे के वर्तनों का चोर-दस्त होने द्वारा मरता है ॥१५॥ गौ का ग्रास (पहिली रोटी) खालेने वाला-विसूचिका (हैजा) से, ब्राह्मणार्थ समर्पित भोजन वा अन्न को मारलेने वाला-ग्रास अटकने से, राजपत्नी को भगा ले जाने वाला -भ्रमरोग से, और निकम्मा-अतीसार (दस्तों के) रोग से मरता है ॥ १६ ॥ अपने दर्प से काम करने वाला शाकिनी आदि लगने से मरता, अनध्याय के दिन वेद पढ़ने वाला विद्युत् गिरने से मरता है ॥ १७ ॥ स्पर्श न करने योग्य का संगी--अस्पृश्य (मलमूत्रादि से लिप्त) दशामें, शास्त्र को चुराने वाला-पतित होके, और ब्राह्मण के वस्त्र चुराने वाला- निर्वंशी सन्तान हीन होकर मरता है ॥ १८ ॥ सन्तान वेंचने और मार डालने वाला दोनों तुल्य अपराधी हैं। घातक तो हत्या में और वेंचने वाला सन्तान स्वामी धनको भोगताहुआ सन्तान को ही भोगता है ॥ १९ ॥ अब हम चोड़े आदि से मरने वालों के

कारयेन्निष्कमात्रंतु पुरुषंप्रेतरूपिणम् ॥ २० ॥
चतुर्भुजंदण्डहस्तं महिषासनसंस्थितम् ।
पिष्टैःकृष्णतिलैःकुर्य्यात्पिण्डंप्रस्थप्रमाणतः ॥ २१ ॥
मध्वाज्यशर्करायुक्तं स्वर्णकुण्डलसंयुतम् ।
अकालमूलंकलशं पञ्चपल्लवसंयुतम् ॥ २२ ॥
कृष्णवस्त्रसमाच्छन्नं सर्वौषधिसमन्वितम् ।
तस्योपरिन्यसेद्दिव्यं पात्रंधान्यफलैर्युतम् ॥ २३ ॥
सप्तधान्यन्तुसफलं तत्रतत्संमुखंन्यसेत् ।
कुम्भोपरिचांविन्यस्य पूजयेत्प्रेतरूपिणम् ॥ २४ ॥
कुर्यात्पुरुषसूक्तेन प्रत्यहंदुग्धतर्पणम् ।
षडङ्गांश्चजपेद्रुद्रान् कलशेनप्रवेदवित् ॥ २५ ॥
यमसूक्तेनकुर्वीत यमपूजादिकंतथा ।
गायत्र्याश्चैवकर्तव्यो जपःस्वात्मविशुद्धये ॥ २६ ॥

यथित क्रम से ही कहतेहैं कि घोड़े आदि अपमृत्यु से मरने पर प्रेतरूपी यम देव की चार तोला सुवर्ण की एक प्रतिमा बनावे उसमें चार भुजाहों हाथ में दण्ड हो, भैंसे पर सवार हो । फिर काले तिलों को पीस कर ढाईपात्र का एक पिण्ड बनावे ॥ २१ ॥ उस पिण्ड में शहद घी और शक्कर भी मिली हो, सुवर्ण के कुण्डल भी उस पिण्ड पर धरे । जो तले में काला न हो ऐसे एक कलश को स्थापित करके उस पर पांच पल्लव (पत्ते) धरे ॥ २२ ॥ काले वस्त्र से उस कलश को ढांप कर सर्वौषध (सब जो आदि) उस पर धरे । और जो चांवलादि धान्य तथा फलों से भरके एक पात्र कलश के ऊपर धरके उस पर ऊपर लिखी यम देवता की मूर्त्ति को स्थापित करे ॥ २३ ॥ और ऋतु फलों सहित सात धान्य (सतनजा) वहां देवमूर्त्ति के सामने धरे । इस प्रकार कलश पर स्थापित किये प्रेतरूपी यमराज का निम्न रीति से पूजन करे ॥२४॥ अपसव्य होके पुरुषसूक्त के मन्त्रों द्वारा दूध से प्रतिदिन यमराज का तर्पण करे अर्थात् मूर्त्ति पर प्रत्येक मन्त्रान्त में दूध चढाया करे और इस के साथ ही एक वेदपाठी ब्राह्मण कलश के समीप में षडङ्ग रुद्री का पाठ कियाकरे ॥२५॥ और वेदोक्त यमसूक्त से यमराज का नित्य पूजन करे और अपनी शुद्धि के लिये वहां कलश के समीप में गायत्री का जप भी करता कराता रहे ॥ २६ ॥

ग्रहशान्तिकपूर्वंच दशांशंजुहुयात्तिलैः ।
अज्ञातनामगोत्राय प्रेतायसतिलोदकम् ॥
प्रदद्यात्पितृतीर्थेन पिण्डंमन्त्रमुदीरयेत् ॥ २७ ॥
इमंतिलमयंपिण्डं मधुसर्पिःसमन्वितम् ।
ददामितस्मैप्रेताय यःपीडांकुरुतेमम ॥ २८ ॥
सजलान्कृष्णकलशांस्तिलपात्रसमन्वितान् ।
द्वादशप्रेतमुद्दिश्य दद्यादेकंचविष्णवे ॥ २९ ॥
ततोऽभिषिञ्चेदाचार्यो दम्पतीकलशोदकैः ॥
शुचिर्वरायुधधरो मन्त्रैर्वरुणदैवतैः ॥ ३० ॥
यजमानस्ततोदद्यादाचार्यायसदक्षिणाम् ।
ततोनारायणबलिः कर्तव्यःशास्त्रनिश्चयात् ॥ ३१ ॥
एषसाधारणविधिरगतीनामुदाहृतः ।
विशेषस्तुपुनर्ज्ञेयो व्याघ्रादिनिहतेष्वपि ॥ ३२ ॥
व्याघ्रेणनिहतेप्रेते परकन्यांविवाहयेत् ।

फिर ग्रहशान्ति पूर्वक घी मिले तिलों से दशांश होम करे और तिलों तथा जल के सहित पूर्वोक्त तिलों के पिण्ड को (इमंतिल०) मन्त्र पढ़कर अपसव्य हो दक्षिण को मुखकर अज्ञात नाम गोत्र वाले मृतपुरुष के नाम से पितृतीर्थ-द्वारा छोड़े ॥ २७ ॥ शहद और घी से युक्त तिल स्वरूप इस पिण्ड को मैं उस प्रेत के लिये देता हूं कि जो मुझ को पीड़ित करता है ॥ २८ ॥ जिन पर तिलों से भरा एक २ पात्र रक्खा हो ऐसे जल से भरे काले रंगेहुए बारह कलश प्रेत के उद्देश से दान करे । और एक कलश विष्णु के नाम से दान करे ॥ २९ ॥ तदनन्तर अच्छा शस्त्र धारण किये वा स्वच्छ को हाथ में लिये पवित्र हुआ आचार्य पुरुष यजमान स्त्री पुरुषों का कलश के जल से वरुणदेवतावाले मन्त्रों द्वारा अभिषेक करे ॥ ३० ॥ फिर यजमान दक्षिणा सहित वह प्रतिमा आचार्य को दे देवे । तदनन्तर शास्त्र के निश्चय से नारायणबलि करे ॥ ३१ ॥ यह अच्छी गति न होने वाले अपमृत्यु से मरों के लिये साधारण विधान कहा गया है । अब व्याघ्रादि से मरे हुओं के विषय में भिन्न २ विशेष विधान दिखाते हैं ॥३२॥ व्याघ्र से मरे प्रेत के निमित्त अन्य किसी की कन्या का विवाह

सर्पदंशेनागबलिर्देयःसर्वेषुकाञ्चनम् ॥ ३३ ॥
चतुर्निष्कमितंहेम गजंदद्याद्गजेहते ।
राज्ञाविनिहतेदद्यात्पुरुषन्तुहिरण्मयम् ॥ ३४ ॥
चौरेणनिहतेधेनुं वैरिणानिहतेवृषम् ।
वृकेणनिहतेदद्याद्यथाशक्तिचकाञ्चनम् ॥ ३५ ॥
शय्यामृतेप्रदातव्या शय्यातूलीसमन्विता ॥
निष्कमात्रंसुवर्णस्य विष्णुनासमधिष्ठिता ॥ ३६ ॥
शौचहीनेमृतेचैव द्विनिष्कस्वर्णजंहरिम् ।
संस्कारहीनेचमृते कुमारंचविवाहयेत् ॥ ३७ ॥
शुनाहतेचनिःक्षेपं स्थापयेन्निजशक्तितः ।
शूकरेणहतेदद्यान्महिषंदक्षिणान्वितम् ॥ ३८ ॥
कृमिभिश्चमृतेदद्याद् गोधूमान्द्विजातये ।
शृङ्गिणाचहतेदद्याद् वृषभंवस्त्रसंयुतम् ॥ ३९ ॥
शकटेनमृतेदद्याद् द्रव्यंसोपस्करान्वितम् ।

अपने व्यय से करा देवे । सांप के काटने से मरने पर सब अमियों में किंचित् किंचित् सुवर्ण धरके सांपों के लिये बलि देवे ॥ ३३ ॥ हाथी से मारेजाने पर सोलह तोला सुवर्ण का हाथी बनाकर दान करे। राजाज्ञा से मारे गये पर सुवर्ण का पुरुष बनाके दान करे ॥ ३४ ॥ चौर से मृत्यु होने पर गोदान, और शत्रु से मारे जाने पर बैल का दान करे। भेड़िया से मारेजाने पर यथाशक्ति सुवर्ण का दान करे ॥३५॥ खटिया पर मरजाने पर चार तोला सुवर्ण से बनायी तोसक तकिया सहित खटिया पर स्थापित की विष्णुभगवान् की मूर्त्ति का दान करे ॥ ३६ ॥ अशुद्ध दशा में मरने पर आठ तोला सुवर्ण की विष्णु मूर्त्ति का दान करे। संस्कारहीन दशा में मरने पर ब्राह्मण कुमार का विवाह अपने व्यय से करावे ॥ ३७ ॥ कुत्ते के काटने से मरने पर अपनी शक्ति के अनुसार धर्म के लिये किसी के यहां धन जमा करे । सूकर से मृत्यु होने पर दक्षिणा सहित भैंसा का दान करे ॥ ३८ ॥ कृमियों से मरने पर ब्राह्मण को गेहूं का दान करे। और सींगवाले पशु से मृत्यु हो तो वस्त्र सहित बैल का दान करे ॥ ३९ ॥ गाड़ी से दब के मरने पर सामग्री सहित धन का दान करे। पहाड़ से गिर कर मरने पर धान्य पर्वत का दान करे (जो चांवलादि अन्न का

भृगुपातेमृतेचैव प्रदद्याद्धान्यपर्वतम् ॥ ४० ॥
अग्निनानिहतेकार्यमग्निदानंस्वशक्तितः ।
दारुणानिहतेचैव कर्तव्यासदनेसभा ॥ ४१ ॥
शस्त्रेणनिहतेदद्यान्महिषींदक्षिणान्विताम् ।
अश्मनानिहतेदद्यात्सवत्सांगांपयस्विनीम् ॥ ४२ ॥
विषेणचमृतेदद्यान्मेदिनींहेमनिर्मिताम् ।
उद्बन्धनमृतेचापि प्रदद्याद्गांपयस्विनीम् ॥ ४३ ॥
मृतेजलेनवरुणं हैमंदद्याद्द्विनिष्ककम् ।
वृक्षंवृक्षहतेदद्यात्सौवर्णंस्वर्णसंयुतम् ॥ ४४ ॥
अतिसारमृतेलक्षं सावित्र्याःसंयतोजपेत् ।
शाकिन्यादिमृतेचैवं जपेद्रुद्रंयथोचितम् ॥ ४५ ॥
कासरोगमृतेवापि कृच्छ्राब्दिकव्रतंचरेत् ।
विद्युत्पातेननिहते विद्यादानंसमाचरेत् ।
अस्पर्शेचमृतेकार्यं वेदपारायणंतथा ॥ ४६ ॥
सच्छास्त्रपुस्तकंदद्याद्वान्तमास्त्रित्यसंस्थिते ।

इतना ऊंचा ढेर लगावे जिस के पार खड़ा मनुष्य दूसरे पार से न दीखे उस को धान्य पर्वत कहते हैं) ॥ ४० ॥ अग्नि से मरने पर यथाशक्ति सुवर्ण वा दीपादि प्रकाश का दान करे । काष्ठसे मरने पर धर्मशाला वा व्याख्यानसभा बनवा देवे ॥ ४१ ॥ शस्त्र से मरने पर दक्षिणा सहित भैंस का दान करे । पत्थर से मरने पर बछड़ा सहित दूध देती गौ का दान करे ॥ ४२ ॥ विष से मरने पर सुवर्ण से जटित पृथिवी का, और फांसी से मरने पर दूध देती गौ का दान करे ॥ ४३ ॥ जल से मरने पर आठ तोला सुवर्ण से बनी वरुणदेवता की प्रतिमा का, और वृक्ष से मरने पर यथाशक्ति सुवर्ण से बनाये सुवर्ण दक्षिणा सहित वृक्ष का दान करे ॥ ४४ ॥ अतीसार (दस्त हो कर) से मरने पर नियम बद्ध हो कर एक लक्ष गायत्री का जप करे । शाकिनी आदि की बाधा से मरने पर रुद्री के यथोचित ११ पाठ और दशांश होम करे ॥ ४५ ॥ खांसी के रोग से मृत्यु होने पर एक वर्ष तक कृच्छ्रव्रत करे । बिजली गिरने से मरने पर विद्या दान करे और स्पर्श न करने योग्य दशा में मरे तो वेद का पारायण करे ॥ ४६ ॥ वमन हो कर मरे तो सत् शास्त्र के पुस्तक का दान

पातित्येन मृतेकुर्यात्प्राजापत्यानिषोडदश ॥ ४७ ॥
मृतेचापत्यरहिते कृच्छ्राणांनवतिंचरेत् ।
निष्कत्रयमितंस्वर्णं दद्यादश्वंहयाहते ॥ ४८ ॥
कपिनानिहतेदद्यात् कपिंकनकनिर्मितम् ।
विसूचिकामृतेस्वादु भोजयेच्चशतंद्विजान् ॥ ४९ ॥
तिलधेनुःप्रदातव्या कण्ठेऽन्नकवलैर्मृते ।
केशरोगमृतेचापि अष्टौकृच्छ्रान्समाचरेत् ॥ ५० ॥
एवंकृतेविधानेन विदध्यादौर्ध्वदैहिकम् ।
ततःप्रेतत्वनिर्मुक्ताः पितरस्तर्पितास्तथा ॥ ५१ ॥
दद्युःपुत्रांश्चपौत्रांश्च आयुरारोग्यसंपदः ॥ ५२ ॥
इतिशातातपप्रोक्तो विपाकःकर्मणामयम् ।
शिष्यायशरभङ्गाय विनयात्परिपृच्छते ॥ ५३ ॥

इति शातातपीये धर्मशास्त्रे कर्मविपाके अगतिप्रायश्चित्तनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इति शातातपस्मृतिः समाप्ता ॥

श्रीरस्तु

करे । पतित होने से मरे तो सोलह प्राजापत्य व्रत करे ॥४७॥ सन्तान रहित होके मरे तो ९० नब्बे कृच्छ्र व्रत करे । घोड़े से मरे तो १२ तोला सुवर्ण का घोड़ा बना के दान करे ॥ ४८ ॥ वानर से मरे तो सुवर्ण का वानर बनाकर दान करे । और हैजा से मरे तो सौ १०० ब्राह्मणों को स्वादिष्ठ भोजन करावे ॥४९॥ कण्ठ में अन्न का ग्रास अटकने से मरे तो तिलधेनु का दान करे और बालों के रोग से मरे तो आठ कृच्छ्र व्रत करे ॥५०॥ ऐसा करके विधिपूर्वक मृतक के श्राद्धादि कर्म करे । तिस से प्रेतयोनि से छूटते और पितृगण भी तृप्त होते हैं ॥ ५१ ॥ तृप्त हुए पितर पुत्र, पौत्र, आयु, नीरोगता और सम्पत्ति अपने कुटुम्बियों को देते हैं ॥ ५२ ॥ यह महर्षि शातातप ने विनय पूर्वक पूछते हुए अपने शरभङ्ग नामक शिष्य से कर्मोंका फल कहा है ॥५३॥

यह शातातपीय धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में कर्म विपाक मध्ये अगति प्रायश्चित्त निरूपण नाम छठा अध्याय पूरा हुआ ॥६॥ तथा यह शातातप स्मृति भी समाप्त हुई ॥ ओं शान्तिः ॥ ३ ॥

श्रीगणेशायनमः ॥

अथवासिष्ठस्मृतिप्रारम्भः॥

अथातः पुरुषनिःश्रेयसार्थं धर्मजिज्ञासा ॥ १ ॥ ज्ञात्वा चानुतिष्ठन्धार्मिकः प्रशस्यतमो भवति लोके प्रेत्य च स्वर्गं लोकं समश्नुते ॥२॥ श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः ॥३॥ तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम् ॥ ४ ॥ शिष्टः पुनरकामात्मा ॥५॥ अगृह्यमाणकारणो धर्मः ॥६॥ आर्यावर्त्तः प्रागादर्शात्प्रत्यक्कालकवनादुदक्पारियात्राद् दक्षिणेन हिमवत उत्तरेण विन्ध्यस्य ॥७॥ तस्मिन्देशे ये धर्मा ये चाचारास्ते सर्वे प्रत्येतव्याः ॥८॥ नत्वन्ये प्रतिलोमकल्पधर्माणः ॥९॥ एतदार्यावर्त्तमित्याचक्षते ॥१०॥ गङ्गायमुनयोरन्तरेऽप्येके ॥ ११ ॥ यावद्वा कृष्ण-

---

अब वसिष्ठस्मृति का प्रारम्भ किया जाता है ॥ सुखाभिलाषी होने से मनुष्य के कल्याणार्थ धर्म के जानने की इच्छा करनी चाहिये ॥ १ ॥ धर्मको जानकर सेवन करता हुआ मनुष्य लोक में प्रामाणिक धर्मात्मा कहाता हुआ अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होता और जन्मान्तर में स्वर्ग का सुख भोगता है ॥२॥ श्रुति (वेद) तथा स्मृति (धर्मशास्त्र) में विधान किया कर्त्तव्य–धर्म कहाता है ॥३॥ जिसका प्रमाण श्रुति स्मृति में नहो उसके लिये शिष्ट लोगों का आचार ही प्रमाण है ॥४॥ निःस्पृह निर्लोभ निष्काम पुरुष शिष्ट कहाते हैं ॥ ५ ॥ जो काम लोभादिकारणके विना ही किया जाय वही धर्म है ॥६॥ आदर्श से पूर्व' कालक वन से पश्चिम, पारियात्रसे उत्तर, हिमालय से दक्षिण और विन्ध्याचल से उत्तर में जो देश है वह आर्यावर्त्त कहाताहै ॥७॥ उस आर्यावर्त्त देश में जो २ धर्म और आचार हैं वेसब प्रतीति (विश्वास करने) योग्य हैं ॥ ८ ॥ अन्य प्रान्तीय धर्म प्रतिलोम उलटी कल्पना से युक्त होने से विश्वास के योग्य नहीं हैं ॥९॥ इस देश को (आर्यावर्त्तम्) ऐसा कहते हैं ॥१०॥ कोई आचार्य गंगा यमुना के बीच को आर्यावर्त्त कहते हैं ॥११॥ और कोई आचार्य कहते

मृगो विचरति तावद्ब्रह्मवर्चसमित्यन्ये ॥१२॥ अथापि भाल्लविनो निदाने गाथामुदाहरन्ति ॥ १३ ॥

पश्चात्सिन्धुर्विहरिणी सूर्यस्योदयनंपुरः ।
यावत्कृष्णोऽभिधावति तावद्वै ब्रह्मवर्चसम् ॥ १४ ॥
त्रैविद्यवृद्धायंब्रूयुर्धर्मंधर्मविदोजनाः ।
पवनेपावनेचैव सधर्मोनात्रसंशयः । इति ॥१५॥
देशधर्मजातिधर्मकुलधर्मान् श्रुत्यभावादब्रवीन्मनुः ॥१६॥

सूर्याभ्युदितः सूर्याभिनिर्मुक्तः कुनखी श्यावदन्तः परिवित्तिः परिवेत्ताऽग्रेदिधिषूर्दिधिषूपतिर्वीरहा ब्रह्मोज्झइत्येनस्विनः १७ पञ्च महापातकान्याचक्षते ॥१८॥ गुरुतल्पं सुरापानं भ्रूणहत्यां ब्राह्मणसुवर्णापहरणं पतितसंयोगश्च ॥१९॥ ब्राह्मेण वा यौनेन

हैं कि जहां तक कृष्ण (कर्षायल) हिरण स्वभाव से विचरते हैं वहां तक के प्रदेशों में ब्रह्मतेज होने से धर्म की भूमि है ॥ १२ ॥ और भी भाल्लवी शाखाध्यायी ऋषि लोग प्राचीन गाथा का उदाहरण देते हैं कि—॥१३॥ पश्चिम में विहार करती हुई सिन्धु नदी, पूर्व में सूर्य नारायण के उदय का स्थान और जहांतक कृष्ण मृग स्वभाव से विचरता है वहां तक ब्रह्मतेज (यज्ञियभूमि) है ॥ १४ ॥ तीनों वेद की विद्या में जो वृद्ध (विशेष जानकार) हैं वे धर्म का तत्त्व जानने वाले विद्वान् लोग जिस धर्मको कहें उसके पावन होने वा शोधक होने में सन्देह नहीं है ॥१५॥ देशधर्म, जातिधर्म, कुल धर्मों को श्रुति में न होने से मनुजी ने कहा है ॥१६॥ सूर्य के उदय तथा अस्त होने के समय जो सन्ध्यादि न करे, बिगड़े नखों वाला, काले दांतों वाला, जेठभाई से पहिले अपना विवाह करने तथा अग्निहोत्र लेने वाला—परिवेत्ता, उसका बड़ाभाई परिवित्ति, जिस के आगे (विद्यमान रहते) ही स्त्री ने दूसरा पति कर लिया हो वह अग्रेदिधिषू और उसका द्वितीयपति—दिधिषूपति, स्थापित अग्नि को त्यागने वाला, और वेदाध्ययन को त्यागने वाला ब्राह्मण ये सब पापी कहाते हैं ॥१७॥ पांच महा पातक विद्वान् लोग कहते हैं ॥१८॥ गुरुपत्नीगमन, सुरापीना, भ्रूण (ब्राह्मण से ब्राह्मणी में हुए गर्भ की) हत्या करना, ब्राह्मण का सुवर्ण चुराना, और इन पतितों के साथ सम्बन्ध करना ॥१९॥ वह सम्बन्ध वेदादि के पढ़ने पढ़ाने

वा ॥२०॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥२१॥

संवत्सरेणपतति पतितेनसहाऽऽचरन् ।

याजनाध्यापनाद्यौनान्नतुयानासनाशनात् । इति ॥२२॥

योऽग्नीनपविध्येद् गुरुं च यः प्रतिजघ्नुयान्नास्तिको नास्तिकवृत्तिः सोमं च विक्रीणीयादित्युपपातकानि ॥ २३ ॥ तिस्रो ब्राह्मणस्य भार्या वर्णानुपूर्व्येण,द्वे राजन्यस्य,एकैका वैश्यशूद्रयोः ॥ २४ ॥ शूद्रामप्येके मन्त्रवर्जं तद्वत् ॥ २५ ॥ तथा न कुर्यात् ॥ २६ ॥ अतो हि ध्रुवः कुलापकर्षः प्रेत्य चास्वर्गः ॥ २७ ॥ षड्विवाहाः ॥ २८ ॥ ब्राह्मो दैव आर्षो गान्धर्वः क्षात्रो मानुषश्चेति ॥ २९ ॥ इच्छत उदकपूर्वं यां दद्यात्स ब्राह्मः ॥ ३० ॥ यज्ञतन्त्रे वितत ऋत्विजे कर्म कुर्वते

तथा विवाह करने इन दो प्रकार से पतित करता है ॥ २० ॥ इस पर प्रत्योक्त प्रमाण कहते हैं कि—॥ २१ ॥ पतित को यज्ञ कराने, वेद पढ़ाने और उसकी कन्या से विवाह करने से एक वर्ष में पतित होजाता है । परन्तु एक सवारी नौकादि में, वा सभादि में पतित के साथ चलने बैठने तथा एक पङ्क्ति में भोजन करने से पतित नहीं होता । किन्तु उसमें भी कुछ पाप अवश्य लगता है ॥२२॥

जो स्थापित अग्नियों को नष्ट करे, गुरु को त्यागे वा विरोध करे, वेद का निन्दक, नास्तिकताके कामों से जीविका करने वाला, और जो यज्ञ में सोम को बेंचे वे सब उपपातकी कहाते हैं ॥ २३ ॥ ब्राह्मणी,क्षत्रिया, वैश्या ये तीन ब्राह्मण की पत्नी, क्षत्रिया, वैश्या दो क्षत्रिय की,वैश्य तथा शूद्र की अपने २ वर्ण की एक २ स्त्री हो (ब्राह्मण क्षत्रिय कामी हों तो उन को सवर्णा से भिन्न उक्त स्त्रियों से विवाह करना व्यभिचार से अच्छा मध्यम कोटि है । और एक सवर्णा से विवाह करना सर्वथा उत्तम है) ॥ २४ ॥ कोई आचार्य कहते हैं कि ब्राह्मणादि वेद मन्त्रों के विना शूद्र कन्या से भी चाहें तो विवाह करलें ॥ २५ ॥ सो वैसा न करे ॥ २६ ॥ क्योंकि शूद्र कन्या के साथ विवाह करने से अवश्य ही कुल बिगड़ता और जन्मान्तर में स्वर्ग प्राप्त नहीं हो सकता ॥ २७ ॥ विवाह छः हैं ॥ २८ ॥ ब्राह्म१ । दैव२ । आर्ष३ । गान्धर्व४ । क्षात्र५ । मानुष६ ॥२९॥ इच्छा करते हुये योग्य वर को हाथ में जल लेके संकल्प पूर्वक जिस कन्या को देवे वह ब्राह्म विवाह कहाता है ॥३०॥ अनेक विध अङ्गाङ्गिभाव से

कन्यां दद्यादलङ्कृत्य तं दैवमित्याचक्षते ॥३१॥ गोमिथुनेन चाऽऽर्षः ॥ ३२ ॥ सकामां कामयमानः सदृशीं यो निरुह्यात्स गान्धर्वः ॥ ३३ ॥ यां बलेन सहसा प्रमथ्य हरन्ति स क्षात्रः ॥ ३४ ॥ पणित्वा धनक्रीतां स मानुषः ॥ ३५ ॥ तस्माद्दुहितृमतेऽधिरथं शतं देयमितीह क्रयो विज्ञायते॥ ३६ ॥ या पत्युः क्रीता सत्यथान्यैश्चरतीति ह चातुर्मास्येषु ॥ ३७ ॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥ ३८ ॥

विद्याप्रणष्टापुनरभ्युपैति जातिप्रणाशेत्विहसर्वनाशः ।
कुलापदेशेनहयोपिपूज्यस्तस्मात्कुलीनांस्त्रियमुद्वहन्तिइति॥३९॥

त्रयो वर्णा ब्राह्मणस्य वशे वर्त्तेरन् ॥४०॥ तेषां ब्राह्मणो धर्मान्प्रब्रूयात् ॥४१॥

विस्तार के साथ यज्ञ में ऋत्विज् का काम करते हुये वर को वस्त्राभूषणों से सहित कन्या को देवे उस को दैव विवाह कहते हैं ॥ ३१ ॥ एक गौ एक बैल वा उन का मूल्य वा कुछ न्यूनाधिक धन वर से लेकर कन्या देना आर्ष विवाह है ॥ ३२ ॥ कन्या वर दोनों की परस्पर कामना से अपने वर्ण की सदृश कन्या का ग्रहण करना गान्धर्व विवाह कहाता है ॥ ३३ ॥ जिस को बल पूर्वक विना विचारे रोकने वालों से युद्ध कर मार पीट के हर लाना यह क्षात्र विवाह है ॥ ३४ ॥ मूल्य ठहरा कर कन्या को खरीद लेना मानुष विवाह कहाता है ॥ ३५ ॥ श्रुति में लिखा है कि जिस से कन्या वाले को रथ सहित सौ धन (स्वर्ण मुद्रादि) देवे इस लिख से कन्या का खरीदना जाना जाता है (परन्तु अन्य रीति से कार्य न होने पर यह निकृष्ट पक्ष है) ॥ ३६ ॥ और चातुर्मास्ययागों के प्रकरण में यह लिखा है कि " जो पति की खरीदी हुई अन्य पुरुषों से संग करती है (वह पापिनी नीच है) „ इस से भी उक्त अभिप्राय ही प्रकट होता है ॥ ३७ ॥ अब अन्य श्लोक भी उदाहरण में कहते हैं ॥३८॥ पढ़ी हुई विद्या नष्ट हो जाय तो फिर भी पढ़ना हो सकता है पर नीच स्त्री से जो जाति (वंश) का नाश (नीचता) हो जाय तो सभी नष्ट हुआ जानो । क्योंकि अच्छी नसल रूप कुलीनताके बढ़ाने से घोड़ा भी प्रशंसा के योग्य होता है इस कारण कुलीन स्त्री से विवाह करे ॥३९॥ क्षत्रियादि तीनों वर्ण ब्राह्मण के आधीन रहें ॥४०॥ उन सब को यथाधिकार ब्राह्मण धर्मोपदेश करे ॥ ४१ ॥

तं राजाचानुशिष्यात् ॥ ४२ ॥ राजा तु धर्मेणानुशासत् षष्ठंषष्ठं धनस्य हरेत् ॥ ४३ ॥ अन्यत्र ब्राह्मणात् ॥ ४४ ॥ इष्टापूर्तस्य तु षष्ठमंशं भजति-इति ह ब्राह्मणो वेदमाढ्यं करोति, ब्राह्मणआपदउद्धरति, तस्माद् ब्राह्मणोऽनाद्यः ॥४५॥ सोमोऽस्य राजा भवतीति ह प्रेत्य चाऽऽभ्युदयिकमिति ह विज्ञायते ॥ ४६ ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः ॥१॥ त्रयो वर्णा द्विजातयो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः ॥२॥ तेषां मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जीबन्धने ॥३॥ तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्यउच्यते ॥४॥ वेदप्रदानात्पितेत्याचार्यमाचक्षते ॥ ५ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥६॥ द्वयमु वै ह पुरुषस्य रेतो ब्राह्मणस्योर्ध्व-

---

और ब्राह्मण को अपने धर्म पर चलानेवाला राजा शासक रहे ॥ ४२ ॥ राजा धर्मानुकूल सबकी रक्षा वा शासन करता हुआ धन के लाभ में से छठा२ भाग कर लेवे ॥ ४३ ॥ परन्तु ब्राह्मण से कुछ भी कर न लेवे ॥ ४४ ॥ धर्म सम्बन्धी श्रौत स्मार्त ब्राह्मण के किये कराये कर्मों का छठा भाग पुण्य फल राजा को मिलता है। ब्राह्मण वेद को मुख्य मान के ग्रहण करता वा पढ़ाता है तथा आपदाओं से बचाता है जिससे ब्राह्मण का अन्न धनादि राजा न लेवे ॥४५॥ वेद में लिखा है कि (सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानामधिराजा) ब्राह्मण का राजा सोम होता है। और मर कर भी ब्राह्मण सुख देनेवाला है यह भी वेद से जाना जाता है ॥ ४६ ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में प्रथमाध्याय पूरा हुआ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ये चार वर्ण कहाते हैं ॥१॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीन वर्ण द्विजाति हैं ॥२॥ उनका पहिला जन्म माता से और द्वितीय जन्म उपनयन संस्कार से होता है ॥३॥ उस द्वितीय जन्म में माता सावित्री मन्त्र और आचार्य पिता माना जाता है ॥४॥ वेद को देने से आचार्य को पिता कहते हैं ॥५॥ इस में श्रुति का उदाहरण कहते हैं कि-॥ ६ ॥ "ब्राह्मण पुरुष के शरीर में सन्तानोत्पादन की शक्ति दो प्रकार की है। एक नाभि से ऊपर

नाभेरर्वाचीनमन्यद्यद्दूर्ध्वं नाभेस्तेनास्यानौरसी प्रजा जायते ॥७॥ यदुपनयति जनन्यां जनयति यत्साधु करोति ॥८॥ अथ यदर्वाचीनं नाभेस्तेनेहास्यौरसी प्रजा जायते ॥९॥ तस्माच्छ्रोत्रियमनूचानमप्रजोऽसीति न वदन्तीति ॥१०॥ हारीतोऽप्युदाहरति ॥ ११ ॥

नह्यस्यविद्यतेकर्म किंचिदामौञ्जिबन्धनात् ।
वृत्त्याशूद्रसमोज्ञेयो यावद्वेदेनजायत । इति ॥१२॥

अन्यत्रोदककर्मस्वधापितृसंयुक्तेभ्यः ॥१३॥

विद्याहवैब्राह्मणमाजगाम गोपायमाशेवधिस्तेऽहमस्मि ।
असूयकायाऽनृजवेऽयताय नमांब्रूयावीर्यवतीतथास्याम् ॥१४॥
यआतृणत्त्यवितथेनकर्मणा बहुदुःखंकुर्वन्नमृतंसंप्रयच्छन् ।

के भाग हृदयादि में, द्वितीय नाभि से नीचे के भाग में, उनमें जो नाभि से ऊपर के भाग में शक्ति है उस से अनौरसी (वीर्य से न होनेवाली) शिष्यरूप द्वितीय जन्म की प्रजा होती है ॥७॥ कि जो उपनयन संस्कार करता है तथा जो स्त्री में उत्पन्न करता है ये दोनों ही जन्म अच्छे करता है ॥ ८ ॥ अब जो इस आचार्य की नाभि से नीचे की शक्ति है उससे औरसी (वीर्य सेचन द्वारा) प्रजा होती है ॥ ९ ॥ तिस से उत्तम कक्षा का वेद को पढ़ने जानने वाला पुरुष सन्तान हीन हो तो भी उससे ऐसा न कहें कि तुम निर्वंश हो" ॥१०॥ महर्षि हारीत भी कहते हैं कि ॥ ११ ॥ उपनयन संस्कार से पहिले द्विजभावी बालक के लिये किसी वेदोक्त कर्म का अधिकार नहीं है। जबतक संस्कार—उपनयन न हो तबतक उसके साथ शूद्र का सा वर्त्ताव करना चाहिये ॥१२॥ परन्तु संस्कार हीन दशा में दैवयोगसे पिता के मर जानेपर उस के हाथ से जलदान और पितरों की सपिण्डी आदि के स्वधापूर्वक पिण्डदानमें संस्कार हीन बालक को भी अधिकार है ॥१३॥ विद्या रूप को धारण करके ब्राह्मण के निकट आयी और कहने लगी कि हे ब्राह्मण! तू मेरी रक्षा कर मैं तेरा कोश(खजाना)हूं। निन्दक, कठोरवादी, लम्पट, शिष्यको मुझे न देवेगा तो मैं अपना प्रभाव वा फल दिखानेवाली होऊंगी ॥१४॥ जो आचार्य स्वयं बहुत दुःख करता कष्ट सहता और शिष्यको अमृत पिलाता हुआ वेदाध्यापनरूप सत्यकर्मकी पवित्रध्वनिसे शिष्यके दोनों

तम्मन्येतपितरंमातरंच तस्मैनद्रुह्येत्कतमच्चनाह ॥ १५ ॥
अध्यापितायेगुरुंनाऽऽद्रियन्ते विप्रावाचामनसाकर्मणावा ।
यथैवतेनगुरोर्भोजनीयास्तथैवतान्नभुनक्तिश्रुतंतत् ॥१६॥
यमेवविद्याःशुचिमप्रमत्तं मेधाविनंब्रह्मचर्योपपन्नम् ।
यस्तेनद्रुह्येत्कतमच्चनाह तस्मैमांब्रूयानिधिपायब्रह्मन्! ॥१७॥
दहत्यग्निर्यथाकक्षं ब्रह्मपृष्ठमनादृतम् ।
नब्रह्मतस्मैप्रब्रूयाच्छक्त्यमानमकुर्वते । इति॥ १८ ॥

षट् कर्माणि ब्राह्मणस्य॥१९॥ अध्ययनमध्यापनं यजनं-याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति॥२०॥ त्रीणि राजन्यस्य ॥२१॥ अध्ययनं यजनं दानं च शस्त्रेण च प्रजापालनं स्वधर्मस्तेन जीवेत् ॥२२॥ एतान्येव त्रीणि वैश्यस्य, कृषिर्वाणिज्यं पाशुपाल्यं कुसीदं च ॥ २३ ॥

काल भर देता तथा शिष्य के मानस वाचिक कायिक दोषों को नष्ट कर देता है । उस को पिता माता माने उस से कभी द्रोह न करे। क्योंकि उस ने वेद के साथ क्या उत्तम शिक्षा नहीं कही ? अर्थात् सभी कुछ कह दिया है ॥१५॥ जो पढ़ाये हुए ब्राह्मण शिष्य मन वाणी तथा शरीर से गुरु को आदर नहीं करते वे जैसे गुरु की रक्षा करने योग्य नहीं होते वैसे ही पढ़ा हुआ वेद शास्त्र भी उन की रक्षा नहीं करता है ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मण ! जिस को तुम शुद्ध, अप्रमादी, ब्रह्मचर्य से युक्त और बुद्धिमान् जानो और जो तुम से कदापि द्रोह वा विरोध न करे हे ब्रह्मन् उसी विद्या कोश के रक्षक शिष्य के लिये मेरा कथन करो ॥ १७ ॥ जैसे अग्नि घास को जला देता वैसे गुरु का अनादर करने वाले के पूछ को तथा अध्यापक को भी वेद भस्म करता है । इस से यथाशक्ति सम्मान न करने वाले शिष्य को वेद नहीं पढ़ाना चाहिये ॥१८॥ ब्राह्मण के छः कर्म धर्मानुकूल हैं ॥ १९ ॥ वेद का पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञादि कर्म करना, कराना, दान देना, लेना ॥ २० ॥ तीन कर्म क्षत्रिय के हैं ॥ २१ ॥ वेद का पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, और शस्त्रों के द्वारा प्रजा की रक्षा करना क्षत्रिय का निज (खास) धर्म है उससे ही अपनी जीविका करे ॥२२॥ ये ही वेदाध्ययनादि तीन कर्म वैश्य के धर्मसंचयार्थ हैं और खेती, वाणिज्य, पशुरक्षा, और सूद लेना ये वैश्य के निज कर्म हैं ॥ २३ ॥

एतेषां परिचर्या शूद्रस्य ॥ २४ ॥ अनियता वृत्तिः ॥ २५ ॥ अनियतकेशवेशाः सर्वेषां मुक्तशिखावर्जम् ॥२६॥ अजीवन्तः स्वधर्मेणानन्तरां पापीयसीं वृत्तिमातिष्ठेरन् ॥२७॥ न तु कदाचिज्ज्यायसीम् ॥२८॥ वैश्यजीविकामास्थाय पण्येन जीवन्तोऽश्मलवणमणिशाणकौशेयक्षौमाजिनानि च तान्तवं रक्तं सर्वं च कृतान्नं पुष्पमूलफलानि च गन्धरसा उदकं चौषधीनां रसः सोमश्च शस्त्रं विषं मांसं च क्षीरं च सविकारमयस्त्रपु जतु सीसं च ॥२९॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ३० ॥

सद्यः पततिमांसेन लाक्षयालवणेनच ।

त्र्यहेणशूद्रोभवति ब्राह्मणःक्षीरविक्रयात् । इति ॥३१॥

ग्राम्यपशूनामेकशफाः केशिनश्च सर्वे चारण्याः पशवो वयांसि

ब्राह्मणादि द्विजों की सेवा करना शूद्र का कर्म है ॥ २४ ॥ शूद्र की जीविका नियत नहीं है कि यही करे ॥ २५ ॥ केशों के रखने का नियम सभी वर्णों का नहीं है कि कौन कितने केश रक्खे । परन्तु शिखा सब रक्खें । और शूद्र की शिखा खुली रहा करे ॥ २६ ॥ अपने धर्म से जीविका न होसकती हो तो अपने २ से नीचे वर्ण की वह जीविका सब ब्राह्मणादि करें जिस में अधिक पाप न होवे ॥ २७ ॥ परन्तु नीचे २ वर्ण अपने से ऊंचे २ वर्ण की जीविका कदापि न करें ॥ २८ ॥ यदि ब्राह्मणादि आपत्काल में वैश्य वृत्ति का सहारा लेकर दुकान से जीविका करें तो पत्थर, लवण, मणि (मूगादि,) शण–रेशम -अतसी के वस्त्र, मृगादि के चर्म, रंगे हुये सूत के वस्त्र, सब प्रकार का पकाया अन्न, फल, पुष्प, मूल, गन्ध (केशरादि,) रस, (खटाई आदि,) जल, औषधियों के रस,यज्ञादि में सोमलता, शस्त्र, विष (संखिया हरतालादि,) मांस, दूध, दही, खोयादि, लोहा, रांगा, जस्ता, शीशा, इन सब को ब्राह्मण न बेंचे ॥ २९ ॥ और भी श्लोक का प्रमाण कहते हैं कि–॥ ३० ॥ मांस, लाख, और लवण बेंचने से ब्राह्मण शीघ्र ही पतित हो जाता और दूध वा दूध के विकार दही आदि को बेंचने से तीन दिन में पतित होजाता है ॥ ३१॥ गांव के पशुओं में जुड़े खुरों वाले (एकशफ) भेड़ आदि केशों वाले पशु और सब वन के पशु सब पक्षी, बड़ी डाढ़ों वाले

दंष्ट्रिणश्च ॥३२॥ धान्यानां तिलानाहुः ॥३३॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥३४॥ भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुतेतिलैः। कृमीभूतः श्वविष्ठायां पितृभिःसहमज्जति। इति ॥३५॥ कामं वा स्वयं कृष्योत्पाद्य तिलान्विक्रीणीरन् ॥३६॥ तस्मात्साण्डाभ्यां सनस्योताभ्यां प्रावप्रातराशात्कर्षी स्यात् ॥ ३७ ॥ निदाघेऽपः प्रयच्छेत् ॥३८॥ नातिपीडयंल्लाङ्गलं प्रवीरवत्सुशेवं सोमपित्सरु। तदुद्वपति गामविं चाजानश्वानश्वतरखरोष्ट्रांश्च प्रफर्व्यंच पीवरींप्रस्थावद्रथवाहनमिति ॥३९॥ लाङ्गलं प्रवीरवद्वीरवत्सु मनुष्यवदनडुद्वत्सुशेवं कल्याणनासिकं कल्याणीह्यस्य नासिका नासिकयोद्वपति दूरेऽपविद्धयति,सोमपित्सरु सोमो

कुत्तादि इन को भी ब्राह्मण न पालें न बेंचे ॥ ३२ ॥ धान्यों में तिलों को न बेंचे ॥३३॥ इस पर श्लोकका प्रमाण कहते हैं ॥३४॥ भोजन, उबटन और ब्राह्मण को वा श्राद्ध तर्पण होमादि में दान, इन तीन से भिन्न अन्य जो कुछ काम तिलों से जो कोई करता है वह मनुष्य कुत्ते की विष्ठा में कृमि होकर अपने पितरों के सहित डूबता है ॥ ३५ ॥ परन्तु किसान ब्राह्मण स्वयं अपने खेत में उत्पन्न किये तिलों को भले हीं बेंचा करे ॥ ३६ ॥ तिससे जिन को बधिया न किया गया हो ऐसे अण्ड कोशों वाले नाथे हुये बैलों द्वारा मध्यान्ह के भोजन से पहिले खेत को जोता करे ॥ ३७ ॥ ग्रीष्म (गर्मी वा विशेष घाम) के दिनों में बीच में भी बैलों को जल पिलावे ॥ ३८ ॥ बैलों को अत्यन्त पीड़ित (तंग) न करे (लाङ्गलंप्रवीर०) इत्यादि वेद संहिता का मन्त्र है। शुक्ल यजुर्वेद सं० अ० १२ । मं० ७१ भी यही मन्त्र है। पर इसके पाठ से अन्तर है इससे अन्य किसी शाखा का यह मन्त्र यहां लिखा गया है। (रथवाहनम्) तक मन्त्र का पाठ है ॥ ३९ ॥ उक्त मन्त्र का अर्थरूप ही ४० सूत्रस्थ ब्राह्मण श्रुति लिखी गयी है-यथा (लाङ्गलम्) हल (प्रवीरवत्) जिसको चलानेवाले मनुष्य और बैल प्रकृष्ट वीर हृष्ट पुष्ट हों (सुशेवम्) कल्याण करनेवाला नासिका स्थानी फाला जिसमें लगा है। इस हलकी नासिका (फाल) कल्याण सुख करनेवाली इसलिये है कि उस से अन्नोत्पत्ति द्वारा

ह्यस्य प्राप्नोति,तत्त्सरु तदुद्वपति गाश्चाविंचाजा नश्वानश्व-तरखरोष्ट्रांश्च प्रफर्व्यं च पीवरीं दर्शनीयां कल्याणीं च प्रथमयुवतीम् ॥४०॥ कथं हि लाङ्गलमुद्वपेदन्यत्र धान्यविक्रयात् ॥४१॥ रसा रसैर्महतो हीनतो वा निमातव्या नत्वेव लवणं रसैः॥४२॥ तिलतण्डुलपक्वान्नं विद्या मनुष्याश्च विहिताः परिवर्तकेन ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणराजन्यौ वार्द्धुषान्नं नाद्याताम् ॥ ४४ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ४५ ॥

समर्घंधान्यमुद्धृत्य महार्घंयःप्रयच्छति ।
सवैवार्धुषिकोनाम ब्रह्मवादिषुगर्हितः ॥

मनुष्यों तथा पशुओं की जीवन रक्षा होती है वह हल उसी नासिका से (उद्वपति) पृथवी को खोदना भीतर से वेधन करता उखाड़ता है (सोमपित्सरु) सोमयागादि का अवसर भी यजमान को कृषि द्वारा अन्नादि की प्राप्ति से होता है। त्सरु नाम मुठिया (पकड़ने का स्थान) दबाने से वह ऊपर को मट्टी उखाड़ता है। वह हल (गामविम्०) गौ, भेड़, बकरी बकरा, घोड़ा, खिच्चर, गधा, ऊंटों को (प्रफर्व्यंचपीवरीम्) फुर्ती से चलनेवाली पुष्ट अंगों से युक्त मोटी २ प्रथम युवती (ओसर) गौ आदिको तथा (प्रस्यावद्रथवाहनम्) अच्छे दौड़नेवाले रथ नाम बग्घी के घोड़े आदि को प्राप्त कराता है ॥ ४० ॥ इसके द्वारा उत्पन्न किये धान्य को बेंचना अच्छा नहीं है ॥ ४१ ॥ अधिक वा कम रसों से रसों को बदला भले ही कर लेवें। परन्तु किसी भी रस के बदले में लवण का लेन देन न करे ॥ ४२ ॥ तिल, चावल, पक्वान्न (पूरी मिठाई आदि) विद्या, और मनुष्यों का बदला भले ही कर लेवें। जैसे तिलों के बदले चावल वा चावलों के बदले तिल लेलेवें वा पक्वान्न देकर तिल चावल ले लेवें। किसी प्रकार की विद्या अन्य किसी को सिखा देवें उस के बदले अन्य किसी विद्या को सीख लेवें इत्यादि ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, दोनों सूद लेनेवाले का अन्न न खावें ॥४४॥ इस पर श्लोक प्रमाण कहतेहैं कि—॥४५॥ जो किसानादि से सस्ता अन्न लेकर फिर उसको मंहगा करके देता है वह वार्द्धुषिक (सूदखोर) कहाता और वह वेदमतावलम्बियों में निन्दित है। सूद लेनेवाला और ब्रह्महत्यारा इन दोनों को तराजू में तौला गया तो ब्रह्म हत्यारा हलका होने से उठगया और वार्द्धुषिक पाप से

वार्धुषिंब्रह्महन्तारं तुलयासमतोलयत् ।
अतिष्ठद्भ्रूणहाकोट्यां वार्धुषिर्नव्यकम्पत ॥इति॥४६॥

कामं वा परिलुप्तकृत्याय पापीयसे दद्याताम् ॥ ४७ ॥ द्विगुणं हिरण्यं त्रिगुणं धान्यम् ॥४८॥ धान्येनैव रसा व्याख्याताः ॥ ४९ ॥ पुष्पमूलफलानि च ॥ ५० ॥ तुलाधृतमष्टगुणम् ॥ ५१ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ५२ ॥

राजाऽनुमतभावेन द्रव्यवृद्धिंविनाशयेत् ।
पुनाराजाभिषेकेण द्रव्यवृद्धिंचवर्जयेत् ॥ ५३ ॥
द्विकंत्रिकंचतुष्कंच पञ्चकंचशतंस्मृतम् ।
मासस्यवृद्धिंगृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥५४॥
वसिष्ठवचनप्रोक्तां वृद्धिंवार्धुषिकेशृणु ।
पञ्चमाषास्तुविंशत्या एवंधर्मोनहीयते । इति ॥५५॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वितीयाऽध्यायः ॥ २ ॥

भारी होने के कारण हिला भी नहीं (जो अन्य के सुख दुःख का कुछ विचार न करके अतिलोभ में ग्रस्त होकर अन्याय से तिगुना चौगुना तक लेता है उसी की यहां निन्दा जानो) ॥ ४६ ॥ और जो पुरुष धर्म कर्म से हीन पापी हो उसको भले ही ब्राह्मण क्षत्रिय भी वृद्धि (सूद) के लिये धन देवें॥४७॥ परन्तु सुवर्ण चांदी रुपया पैसा चाहें जितने दिनों वा वर्षों में मिलें दूने से अधिक न लेवें और तिगुना तक अन्न लेवैं ॥ ४८ ॥ रसों को भी तिगुने तक ही लेवें ॥ ४९ ॥ पुष्प, मूल, फल भी तिगुने तक ही लेवें ॥ ५० ॥ परन्तु तौलकर दिया घी बहुत काल में आवे तो अठगुणा लेवे ॥ ५१ ॥ इसमें श्लोक प्रमाण कहते हैं ॥ ५२ ॥ राजा बहुत भद्र पुरुषों की अनुमति से द्रव्य के सूद को गरीबों पर सर्वथा त्याग देवे । और फिर राजा अभिषेकोत्सव के साथ भी धन की वृद्धि (सूद) को खैरात में छोड़ देवे ॥ ५३ ॥ ब्राह्मण प्रति सैकड़ा २) ३) ४) ५) रु० मासिक प्रतिमास ब्राह्मणादि वर्णों से क्रमशः सूद ले सकता है । यह मत किन्हीं आचार्यों का है ॥ ५४ ॥ परन्तु वार्द्धुषिक के लिये महर्षि वसिष्ठ ने जितनी वृद्धि (सूद) लेनी कही है सो सुनो कि प्रतिमास प्रत्येक बीसीपर पांच मासे सूद लिया जाय तो धर्म की हानि इस में नहीं है ॥ ५५ ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में द्वितीयाध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

अश्रोत्रिया अननुवाक्या अनग्नयो वा शूद्रधर्माणो भवन्ति ॥ १ ॥ मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥ २॥

योऽनधीत्यद्विजोवेदमन्यत्रकुरुतेश्रमम् ।
सजीवन्नेवशूद्रत्वमाशुगच्छतिसान्वयः ॥ ३ ॥
नानृग्ब्राह्मणोभवति नवणिङ्नकुशीलवः ।
नशूद्रप्रेषणंकुर्वन्नस्तेनोनचिकित्सकः ॥ ४ ॥
अव्रताह्यनधीयाना यत्रभैक्षचराद्विजाः ।
तंग्राममंदण्डयेद्राजा चोरभक्तप्रदोहिसः ॥ ५ ॥
चत्वारोऽपित्रयोवापि यद्ब्रूयुर्वेदपारगाः ।
सधर्मइतिविज्ञेयो नेतरेषांसहस्रशः ॥ ६ ॥
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।

जिन ब्राह्मणों ने न पूरा वेद पढ़ा, न उसका अनुवाकादि कुछ भाग पढ़ा और न अग्निस्थापन करके अग्निहोत्र लिया वे शूद्रों के तुल्य धर्मों वाले हो जाते हैं ॥१॥ इस पर मनु जी का श्लोक उदाहरण में कहते हैं ॥ २ ॥ जो द्विज पुरुष वेद को न पढ़के अन्य ग्रन्थों में वा अन्य कामों में श्रम करता है । वह अपने जीवित ही कुटुम्ब (स्त्री पुत्रादि) सहित शूद्रवत् हो जाता है ॥३॥ वेद को न पढ़ने जानने, वणिज् व्यापार करने, राजा रईसादि की मिथ्या प्रशंसा करने, (राय भाट आदि के काम करनेवाले) शूद्र रईसों की नौकरी करने, चोरी करने और चिकित्साद्वारा जीविका करनेवाले (ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होने पर भी) ब्राह्मण नहीं रहते या पतितों के तुल्य नीच हो जाते हैं ॥४॥ जिनके सन्ध्यादि कर्म का नियम नहीं और न वेदादि शास्त्र पढ़ते हैं किन्तु ब्राह्मण नाम से भिक्षा मांगकर खाते हैं ऐसे ब्राह्मण जिस गांव में बसते हों वह गांव चोरों को भाग देनेवाला है ऐसा मानकर राजा उस ग्राम को दण्ड देवे ॥ ५ ॥ वेद के तत्त्वज्ञानी चार या तीन भी विद्वान् ब्राह्मण धर्मांश में जो कहें उसको ही धर्म जाने किन्तु अन्य हजारों मूर्ख भी मिलकर जिसे अच्छा कहें वह धर्म नहीं है ॥ ६ ॥ वेदादि विद्या (गुणों) और सन्ध्यादि कर्मों से हीन, ब्राह्मणजाति में होनेमात्र से जीविका करनेवाले सहस्रों

सहस्रशःसमेतानां परिषत्त्वंनविद्यते ॥ ७ ॥
यंवदन्तितमोमूढा मूर्खाधर्ममतद्विदः ।
तत्पापंशतधाभूत्वा तद्वक्तॄनधिगच्छति ॥ ८ ॥
श्रोत्रियायैवदेयानि हव्यकव्यानिनित्यशः ।
अश्रोत्रियायदत्तंहि पितॄन्नैतिनदेवताः ॥ ९ ॥
यस्यचैवगृहेमूर्खो दूरेचैवबहुश्रुतः ।
बहुश्रुतायदातव्यं नास्तिमूर्खेव्यतिक्रमः ॥ १० ॥
ब्राह्मणातिक्रमोनास्ति मूर्खेवेदविवर्जिते ।
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य नहिभस्मनिहूयते ॥ ११ ॥
यश्चकाष्ठमयोहस्ती यश्चचर्ममयोमृगः ।
यश्चविप्रोऽनधीयानस्त्रयस्तेनामधारकाः ॥ १२ ॥
विद्वद्भोज्यान्यविद्वांसो येषुराष्ट्रेषुभुञ्जते ।
तान्यनावृष्टिमृच्छन्ति महद्वाजायतेभयम् । इति ॥१३॥

इकट्ठे होने पर भी वह सभा नहीं हो सकती ॥७॥ अज्ञानान्धकार में ग्रस्त धर्म का मर्म न जानने वाले मूर्ख ब्राह्मण जिस धर्म का निर्णय कर कहते हैं वह सैकड़ों प्रकार का पाप होकर उन धर्म वक्ता मूर्खों को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ देवता और पितरों सम्बन्धी भोजनादि दान नित्य२ सदैव वेदपाठी ब्राह्मणों को ही देना चाहिये । क्योंकि वेदपाठी से भिन्न ब्राह्मणों को दिया भोजनादि पितरों और देवों को प्राप्त नहीं होता ॥ ९ ॥ जिस के घर में वा अति समीप मूर्ख ब्राह्मण वसता हो और बड़ा विद्वान् दूर वसता हो तो विद्वान् को देना चाहिये क्योंकि मूर्ख का उलंघन वा अपमान नहीं माना जायगा ॥ १० ॥ वेद वेदाङ्गादि न पढ़े मूर्ख ब्राह्मण का उलंघन ब्राह्मण के उलंघन में नहीं गिना जायगा । क्योंकि जलते हुए अग्नि को छोड़के भस्म में होम नहीं किया जाता है ॥११॥ जो काष्ठ का हाथी जो चाम का हरिण और जो मूर्ख ब्राह्मण ये तीनों नाम ही मात्र हाथी आदि हैं असल में नहीं हैं ॥ १२ ॥ जिन राज्यों में विद्वानों को भोजन कराने योग्य उत्तम पदार्थों को अविद्वान् मूर्ख लोग भोगते हैं उनमें सूखा पड़ती दुर्भिक्ष होते वा भयङ्कर दुर्घटना उपस्थित होती हैं ॥१३॥

अप्रज्ञायमानं वित्तं योऽधिगच्छेद्राजा तद्धरेदधिगन्त्रे षष्ठमंशं प्रदाय ॥ १४ ॥ ब्राह्मणश्चेदधिगच्छेत् षट्कर्मसु वर्त्तमानो न राजा हरेत् ॥ १५ ॥ आततायिनं हत्वा नात्र प्राणच्छेत्तुः किंचित्किल्विषमाहुः ॥ १६ ॥ षड्विधास्त्वाततायिनः ॥१७॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ १८ ॥

अग्निदोगरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।
क्षेत्रदारहरश्चैव षडेतेआततायिनः ॥ १९ ॥
आततायिनमायान्तमपिवेदान्तपारगम् ।
जिघांसन्तंजिघांसीयान्नतेनब्रह्महाभवेत् ॥ २० ॥
स्वाध्यायिनंकुलेजातं योहन्यादाततायिनम् ।
नतेनभ्रूणहासस्यान्मन्युस्तंमन्युमृच्छति । इति ॥२१॥

कहीं अज्ञात गड़ा हुआ धन जिस को मिले उस को उस धन का छठा भाग देकर शेष को राजा ले लेवे ॥ १४ ॥ यदि वेदादि को पढ़ने पढ़ाने आदि अपने छः कर्मों में तत्पर ब्राह्मण को अज्ञात धन मिले तो राजा को कुछ नहीं लेना चाहिये ॥ १५ ॥ आततायी को मार डालने पर मारनेवाले को हत्या का कुछ भी पाप नहीं लगता ऐसा ऋषि लोग कहते हैं ॥ १६ ॥ छः प्रकार के मनुष्य आततायी होते हैं ॥ १७ ॥ इस पर श्लोक प्रमाण कहते हैं ॥ ॥ १८ ॥ १–आग लगाने वाला, २–विष देने वाला, ३–हाथ में शस्त्र लेके मारने को जो आता हो, ४–धन का नाश करने वा छीनने लूटने वाला, ५–खेतका सर्वथा नाश करने वाला और ६–किसी की स्त्री को बलात्कार हरने वा जबरदस्ती से स्त्री का धर्म बिगाड़ने वाला ये छः आततायी कहाते हैं ॥ १९ ॥ आततायी हो कर यदि वेद वेदान्त का पूर्ण विद्वान् ब्राह्मण भी आता हो तो अपने को मार डालना चाहते हुए उस आततायी को विना विचारे ही मार डाले क्योंकि ऐसी दशा में ब्रह्महत्या का पाप नहीं लगेगा ॥२०॥ वेदपाठी कुलीन ब्राह्मण आततायी को जो मारडाले तो उस से मारने वाला ब्रह्महत्यारा नहीं होता क्योंकि वहां क्रोध का क्रोध से युद्ध माना जाता है ॥ २१ ॥

त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णवांश्चतुर्मेधा वाजसनेयी षडङ्गविद्ब्रह्मदेयानुसंतानश्छन्दोगो ज्येष्ठसामगो मन्त्रब्राह्मणविद्यः स्वधर्मानधीते यस्य दशपुरुषं मातृपितृवंशः श्रोत्रियो विज्ञायते विद्वांसः स्नातकाश्चैते पङ्क्तिपावना भवन्ति२२

चातुर्विद्योविकल्पीच अङ्गविद्धर्मपाठकः ।
आश्रमस्थास्त्रयोमुख्याः परिषत्स्याद्दशावरा ॥ २३ ॥
उपनीय तु यः कृत्स्नं वेदमध्यापयेत्सआचार्यः ॥ २४ ॥

यस्त्वेकदेशं स उपाध्यायो यश्च वेदाङ्गानि ॥२५॥ आत्मत्राणे वर्णसंकरे वा ब्राह्मणवैश्यौ शस्त्रमाददीयाताम् ॥२६॥ क्षत्रियस्य

यजुर्वेद को पढ़ने जानने और उस के नियम व्रतों को करने वाला त्रिणाचिकेत, पञ्चाग्नि-श्रौतस्मार्त्त अग्निहोत्र करने वाला, ऋग्वेद के होतृ कर्म को पढ़ने जानने और तदुक्त नियम व्रतों को करने वाला-त्रिसुपर्णवान्, चारो वेद में जिस की बुद्धि चलती हो, वाजसनेयी संहिता को पढ़ने जानने वाला, वेद के छः अङ्गों का विद्वान्, ब्राह्म विवाह से उत्पन्न, सामवेदी, सामवेद के आरण्यक भाग का विद्वान्-ज्येष्ठसामग, मन्त्र ब्राह्मण दोनों वेदभागों का ज्ञाता, जो अपने वर्ण तथा आश्रम के धर्मों को विशेष कर पढ़ता जानता हो, जिस के माता पिता के वंश में दश पीढ़ी से वेद के पढ़ने की परम्परा चली आयी हो, ब्रह्मचर्य समाप्त करके गृहस्थ बने विद्वान्, ये त्रिणाचिकेतादि ब्राह्मण पङ्क्तिपावन कहाते हैं (जिस पांति में बैठते हैं उसे पवित्र कर देते हैं)॥ २२ ॥ चारो वेद के पढ़ने जानने वाले चार विद्वान्, नैयायिक, वेदाङ्गों का पढ़ने जानने वाला, मीमांसा वा धर्मशास्त्रों का पढ़ने जानने वाला, अपने २ आश्रम के धर्म को यथावत् सेवन करने वाले ब्रह्मचारी,गृहस्थ,वानप्रस्थ, ये तीनों मुख्याश्रमी इन दश पुरुषों की दशावरा धर्मसभा कहाती है ॥२३॥ जो यज्ञोपवीत संस्कार करा के पूर्ण वेद को पढ़ावे वह आचार्य कहाता है ॥२४॥ जो वेद के किसी भाग को और व्याकरणादि अङ्गों को पढ़ावे वह उपाध्याय कहाता है ॥ २५ ॥ अपनी रक्षा के लिये वा जब राजादि के अत्याचार से वर्णसंकरता का प्रचार बढ़ता हो तो ऐसे अवसरों में ब्राह्मण तथा वैश्यों को हथियार हाथ में लेना चाहिये ॥ २६ ॥ और प्रजा की रक्षा का भार

तु तन्नित्यमेव रक्षणाधिकारात् ॥ २७ ॥ प्राग्वोदग्वाऽऽसीनः प्रक्षाल्य पादौ पाणी चाऽऽमणिबन्धनात् ॥२८॥ अङ्गुष्ठमूलस्योत्तरतो रेखा ब्राह्मं तीर्थं तेन त्रिराचामेदशब्दवद् द्विः परिमृज्यात् ॥२९॥ खान्यद्भिः संस्पृशेत् ॥३०॥ मूर्द्धन्यपो निनयेत् ॥ ३१ ॥ सव्ये च पाणौ व्रजंस्तिष्ठञ्शयानः प्रणतो वा नाऽऽचामेत् ॥३२॥ हृदयङ्गमाभिरद्भिरबुद्बुदाभिरफेनाभिर्ब्राह्मणः कण्ठगाभिः क्षत्रियः शुचिः ॥३३॥ वैश्योद्भिः प्राशिताभिस्तु स्त्रीशूद्रौ स्पृष्टाभिरेवच ॥३४॥ पुत्रदारादयोऽपि गोस्तर्पणाः स्युः ॥ ३५ ॥ न वर्णगन्धरसदुष्टाभिर्याश्च स्युरशुभागमाः ॥३६॥ न मुख्या विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वन्त्यनङ्गे श्लिष्टाः ॥३७॥ सुप्त्वा भुक्त्वा पीत्वा क्षुत्वा रुदित्वा स्नात्वा चाऽऽचान्तः

का अधिकार होने से क्षत्रिय पुरुषों को तो सदा नित्य ही शस्त्र अपने साथ रखने चाहिये ॥ २७ ॥ दोनों पगों और मणिबन्धस्थान (पहुंचों) तक दोनों हाथों को धोकर पूर्व वा उत्तर को मुख कर बैठा हुआ ॥ २८ ॥ अंगुष्ठ के मूल के उत्तर भाग में ब्राह्मतीर्थ कहाता है उस ब्राह्मतीर्थ से तीन वार ऐसे आचमन करे जिस में शब्द न हो फिर दोवार जल से मुख को शुद्ध करे ॥ २९ ॥ मुख, नासिका, चक्षु और श्रोत्ररूप छिद्रों का जल हाथ में लगाकर के स्पर्श करे ॥३०॥ फिर मस्तक पर जल छिड़के ॥ ३१ ॥ चलता, खड़ा, लेटा, वा तिर्छा झुका हुआ और वाम हाथ से आचमन न करे ॥ ३२ ॥ फेन जिस में न हो ऐसे हृदय तक पहुंचने वाले जल के आचमन से ब्राह्मण तथा कण्ठ तक पहुंचने वाले जल के आचमन से क्षत्रिय शुद्ध होता है ॥३३॥ मुख के भीतर तक पहुंचने वाले जल से वैश्य और स्त्री तथा शूद्र ओष्ठों में जल के स्पर्श मात्र आचमन से शुद्ध होते हैं ॥३४॥ स्त्री पुत्रादि भी आचमन तथा इन्द्रिय स्पर्शादि द्वारा इन्द्रियाभिमानी देवताओं को तृप्त करने वाले हों ॥ ३५ ॥ रूप रस तथा गन्ध जिस का विगड़ा हो वा जो अपवित्र मार्ग से आता हो ऐसे जल से आचमनादि न करे ॥ ३६ ॥ यदि अंग पर न पड़ें तो मुख से झरने वाली थूक की छींटे मनुष्य को उच्छिष्ट वा अशुद्ध नहीं करती हैं ॥३७॥ सोना, खाना, पीना, छींकना, रोना, और स्नान करना

पुनराचामेत् ॥३८॥ वासश्च परिधायौष्ठौ च संस्पृश्य यत्रालोमकौ न श्मश्रुगतो लेपः ॥३९॥

दन्तवद्दन्तसक्तेषु यच्चान्तर्मुखेभवेत् ।
आचान्तस्यावशिष्टंस्यान्निगिरन्नेवतच्छुचिः ॥ ४० ॥
परानथाऽऽचामयतः पादौयाविप्रुषोगताः ।
भूम्यास्तास्तुसमाःप्रोक्तास्ताभिर्नोच्छिष्टभाग्भवेत् ॥४१॥
प्रचरन्नभ्यवहार्य्येषूच्छिष्टंयदिसंस्पृशेत् ।
भूमौनिःक्षिप्यतद्द्रव्यमाचान्तःप्रचरेत्पुनः ॥४२॥
यद्यन्मीमांस्यं स्यात्तत्तदद्भिः संस्पृशेत् ॥ ४३ ॥
श्वहताश्चमृगावन्याः पातितंचखगैःफलम् ।
बालैरनुपरिक्रान्तं स्त्रीभिराचरितंचयत् ॥ ४४ ॥
प्रसारितंचयत्पण्यं येदोषाःस्त्रीमुखेषुच ।

इन कामों को करके पहिले किया हो तो भी फिर से आचमन करे ॥३८॥ वस्त्र धारण कर, (बदल के) तथा जहां बाल नहीं जमते वहां ओठों का स्पर्श करके भी आचमन करे और मूंछों में लगी जूठन वा कफ शुद्ध नहीं माना जायगा उस को धोकर भी आचमन करना चाहिये ॥ ३९ ॥ विधि पूर्वक आचमन कर लेने पर दांतों में वा मुख में कहीं खाये हुये शेष अन्नादि का अंश जान पड़े तो उस से वह मनुष्य उच्छिष्ट नहीं माना जायगा किन्तु निगलते ही शुद्ध हो जाता है ॥ ४० ॥ अन्य लोगों को जल पिलाते वा आचमन कराते समय पगों पर जो जल के छींटे पड़ जावें उन को पृथिवी की धूलि के समान कहा है उन से मनुष्य अशुद्ध नहीं होता है ॥४१॥ भोजन करने योग्य पकाये अन्नादि को ले जाते हुये यदि किसी उच्छिष्ट को छूलेवे तो उस भोज्य वस्तु को भूमि पर रख कर आचमन करके फिर लेजावे ॥ ४२ ॥ जिस २ वस्तु के अशुद्ध होने न होने में शंका हो जावे उस २ को शुद्ध जल से स्पर्श वा प्रक्षालन कर लेवे ॥ ४३ ॥ कुत्तों ने मारे वन के मृग, पक्षियों ने उच्छिष्ट करके वृक्षों से गिराये फल, हाथ आदि धोये बिना भी बालकों ने ग्रहण किये—पकड़े भोज्य वस्तु, स्त्रियों ने किये आचरण वा कोई काम, ॥ ४४ ॥ बेंचने के लिये दुकान पर नीच पुरुष ने भी फैलाये पदार्थ, स्त्रियों के मुख में जो दोष हैं, मक्खी तथा मच्छर नील का स्पर्श करके भी जिस भोज्य वस्तु पर बैठ गये

मशकैर्मक्षिकाभिश्च नीलीयेनोपहन्यते ॥ ४५ ॥
क्षितिस्थाश्चैवयाआपो गवांतृप्तिकराश्चयाः ।
परिसंख्यायतान्सर्वान् शुचीनाहप्रजापतिः । इति ॥४६॥
लेपगन्धापकर्षणे शौचममेध्यलिप्तस्याद्भिर्मृदा च ॥ ४७ ॥ तैजसमृन्मयदारवतान्तवानां भस्मपरिमार्जनप्रदाहतक्षणनिर्णेजनानि ॥ ४८ ॥ तैजसवदुपलमणीनां मणिवच्छङ्खशुक्तीनां दारुवदस्थ्नां रज्जुविदलचर्मणां चैलवच्छौचम् ॥ ४९ ॥ गोवालैः फलमयानां गौरसर्षपकल्केन क्षौमजानाम् ॥ ५० ॥ भूम्यास्तु संमार्जनप्रोक्षणोपलेपनोल्लेखनैर्यथास्थानं दोषविशेषात्प्रायत्यमुपैति ॥ ५१ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ५२ ॥
खननाद्दहनाद्वर्षाद् गोभिराक्रमणादपि ।

और उसमें से कुछ खा भी लिया हो, ॥४५॥ शुद्ध एकान्त भूमि में ठहरा जल, और जिस को पीकर गौएं तृप्त हो सकें उतना थोड़ा भी शुद्ध जल, इन कुत्तों ने मारे मृगादि सब को गिन्ती करके प्रजापति नाम ब्रह्मा जी ने शुद्ध कहा है ॥४६॥ अशुद्ध हुए वस्तु की मट्टी और जल से इतनी शुद्धि करे जिस से उस का लेप और दुर्गन्ध सर्वथा मिट जावे ॥ ४७ ॥ अशुद्ध हुये कांसे पीतल आदि तैजस पदार्थों की भस्म से मांज कर धोने से, मिट्टी के पात्रों को फिर से अग्नि में पकाने पर, काष्ठ के पात्रादि का अशुद्धांश छील डालने से, और सूत के वस्त्रादि को धोने से शुद्धि होती है ॥ ४८ ॥ पत्थर और मणि मूंगादि के पात्रादि की शुद्धि तैजस पात्रादि के तुल्य, मणि के तुल्य शंख तथा सीपी की शुद्धि, काष्ठ पात्रादि के तुल्य हाथी दांतादि के पात्रादि की शुद्धि, रस्सी, बेंत और चर्म पात्रादि की शुद्धि सूत के वस्त्रों के तुल्य कही है ॥ ४९ ॥ गौ के वालों से फल रूप पदार्थों की, श्वेत सर्षों के औटाये रस से अलसी के मुकटादि वस्त्रों की शुद्धि होती है ॥ ५० ॥ झाड़ने बुहारने, सींचने, लीपने और अशुद्धांश को खोद कर निकाल देने वा गोड़ देने से भूमि की शुद्धि होती है। अर्थात् जहां जैसा दोष भूमि में लगा हो वैसे हो एक वा कई झाड़ने आदि उपायों से पृथिवी ठीक शुद्ध होजाती है ॥ ५१ ॥ इसपर श्लोक कहते हैं ॥ ५२ ॥ खोदने, अग्नि जलाने, वर्षने वा सींचने, गौओं के बसने और पांचवें लीपने से

चतुर्भिःशुध्यतेभूमिः पञ्चमाच्चोपलेपनात् । इति ॥५३॥
रजसाशुध्यतेनारी नदीवेगेनशुध्यति ।
भस्मनाशुध्यतेकांस्यं ताम्रमम्लेनशुध्यति ॥ ५४ ॥
मद्यैर्मूत्रैःपुरीषैर्वा श्लेष्मपूयाश्रुशोणितैः ।
संस्पृष्टंनैवशुध्येत पुनःपाकेनमृन्मयम् ॥ ५५ ॥
अद्भिर्गात्राणिशुध्यन्ति मनःसत्येनशुध्यति ।
विद्यातपोभ्यांभूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेनशुध्यति ॥ ५६ ॥
अद्भिरेव काञ्चनं पूयते तथा राजतम् ॥ ५७ ॥ अङ्गुलिकनिष्ठिकामूले दैवं तीर्थम् ॥५८॥ अङ्गुल्यग्रे मानुषम् ॥ ५९ ॥ पाणिमध्यआग्नेयम् ॥ ६० ॥ प्रदेशिन्यङ्गुष्ठयोरन्तरा पित्र्यम् ॥ ६१ ॥ रोचन्तइति सायंप्रातरग्नीनभिपूजयेत् ॥ ६२ ॥ स्वदितमिति पित्र्येषु ॥ ६३ ॥ संपन्नमित्याभ्युदयिकेषु ॥ ६४ ॥
इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अशुद्ध हुई भूमि शुद्ध होजाती है ॥ ५३ ॥ रजोधर्म होजाने पर स्त्री, प्रवाह के वेग से नदी, भस्म से मांजने पर कांसे के पात्र, और खटाई से तांबे के पात्र शुद्ध होजाते हैं ॥५४॥ मद्य, मल, मूत्र, थूक, पीब, और रुधिर ये सब वा कोई जिसमें रक्खे गये हों ऐसा मट्टी का पात्र फिर से अग्नि में पकाने से भी शुद्ध नहीं हो सकता ॥ ५५ ॥ शरीर के हाथ पांव आदि अङ्ग जल से, सत्यभाषण करने से मन, विद्याभ्यास और तप करने से सूक्ष्म शरीर वा जीवात्मा और तत्त्वज्ञान होने से बुद्धि शुद्ध होती है ॥ ५६ ॥ सुवर्ण और चांदी के पात्रादि केवल जल से धोने पर शुद्ध होजाते हैं ॥ ५७ ॥ छोटी अंगुलि के मूल में दैवतीर्थ कहाता है ॥ ५८ ॥ अंगुलियों के अग्र भाग में मनुष्य तीर्थ है ॥ ५९ ॥ हथेली के बीच में आग्नेय तीर्थ है ॥ ६० ॥ प्रदेशिनी और अंगूठा के बीच में पितरों को जल देने का तीर्थ है ॥ ६१ ॥ (रोचन्ते) ऐसा कहकर सायं प्रातःकाल गार्हपत्यादि अग्नियों का पूजन करें ॥ ६२ ॥ श्राद्धादि पितृ सम्बन्धी कामों में भोजन किये ब्राह्मणों से (स्वदितम्) ऐसा कहे ॥ ६३ ॥ आभ्युदयिक विवाहादि कामों में (संपन्नम्) ऐसा कहे ॥ ६४ ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र में तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

प्रकृतिविशिष्टं चातुर्वर्ण्यं संस्कारविशेषाच्च ॥ १ ॥
ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यःकृतः ।
ऊरूतदस्ययद्वैश्यः पद्भ्यांशूद्रोऽअजायत,

इति निगमो भवति ॥ २ ॥ गायत्र्या छन्दसा ब्राह्मणमसृजत त्रिष्टुभा राजन्यं जगत्या वैश्यं न केनचिच्छन्दसा शूद्रमित्यसंस्कार्यो विज्ञायते ॥ ३ ॥ सर्वेषां सत्यमक्रोधो दानमहिंसा प्रजननं च ॥ ४ ॥ पितृदेवतातिथिपूजायां पशुं हिंस्यात् ॥ ५ ॥

मधुपर्केचयज्ञेच पितृदैवतकर्म्मणि ।
अत्रैवचपशुंहिंस्यान्नान्यथेत्यब्रवीन्मनुः ॥ ६ ॥
नाकृत्वाप्राणिनांहिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।

स्वभाव से नाम जन्म से और गर्भाधानादि संस्कार विशेष से चारो वर्ण ब्राह्मणादि माने जाते हैं ॥ १ ॥ इस विराट् पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य और पगों से शूद्र उत्पन्न हुआ इस वेद के प्रमाण से उत्पत्ति से ही ब्राह्मणादि वर्ण सिद्ध हैं ॥ २ ॥ गायत्री सावित्री के साथ मुख से ब्राह्मण को, त्रिष्टुप् सावित्री के साथ भुजा से क्षत्रिय को, जगती सावित्री के साथ जंघा से वैश्य को और किसी छन्द के बिना ही पगों से शूद्र को विराट् पुरुष ने उत्पन्न किया इस से शूद्र संस्कार के योग्य नहीं है। और यह भी श्रुति से सिद्ध है कि ब्राह्मणादि का वह २ पृथक् २ स्वभाव सिद्ध भिन्न २ गुरु मन्त्र होना चाहिये ॥ ३ ॥ सत्यभाषण, क्रोध का त्याग, दान देना, हिंसा न करना और किसी को दुःख न देना तथा विवाह करके सन्तानों को उत्पन्न करना ये सत्यभाषणादि चारो वर्णो के सामान्य धर्म हैं ॥४॥ पितर देवता और अतिथियों की पूजा में शास्त्रोक्त विधि से पशु हिंसा करे (परन्तु यह कलियुग में लोक विक्रुष्टादि दोषहोने से वर्जित है) ॥५। मधुपर्क, यज्ञ, (अग्निष्टोमादि) अष्टका श्राद्धादि पितृ कर्म, और देव कर्म इन्हीं में पशु की हिंसा करे यह मनु जी ने कहा है ॥ ६ ॥ प्राणियों की हिंसा किये बिना कहीं भी मांस प्राप्त नहीं हो सकता और प्राणियों का वध

नचप्राणिवधःस्वर्ग्यस्तस्माद्यागेवधोऽवधः ॥ ७ ॥

अथापि ब्राह्मणाय वा राजन्याय वाऽभ्यागताय वा महोक्षं वा महाजं वा पचेदेवमस्यातिथ्यं कुर्वन्तीति ॥ ८ ॥ उदकक्रियामशौचं च द्विवर्षात्प्रभृति मृत उभयं कुर्यात् ॥९॥ दन्तजननादित्येके ॥ १० ॥ शरीरमग्निना संयोज्याऽनवेक्षमाणा अपोऽभ्यवयन्ति ॥ ११ ॥ सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वन्ति ॥ १२ ॥ अयुग्मा दक्षिणामुखाः ॥ १३ ॥ पितॄणां वा एषा दिग् या दक्षिणा ॥ १४ ॥ गृहान्व्रजित्वा स्वस्तरे त्र्यहमनश्नन्त आसीरन् ॥१५॥ अशक्तौ क्रीतोत्पन्नेन वर्तेरन्, दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥ १६ ॥ मरणात्प्र-

---

करना दुःख का हेतु है। इस से यज्ञ में पशुओं का वध करना हिंसा नहीं है। और अन्यत्र जहां हिंसा अवश्य है वहां न मारे ॥७॥ और भी श्रुति में लिखा है कि आये हुए ब्राह्मण, वा क्षत्रिय-राजा, वा अतिथि के लिये बड़े बैल, वा बड़े बकरा को पकावे, ऐसे ही इस ब्राह्मणादि का अतिथि सत्कार करते हैं ॥ ८ ॥ दो वर्ष से ऊपर आयु वाले बालक के मरने पर अशुद्धि मानना और तिलांजलि देना दोनों काम करें ॥ ९ ॥ कोई आचार्य कहते हैं कि दांत निकलने बाद बालक के मरनेपर शुद्धि माने और तिलांजलि करे ॥ १० ॥ अन्त्येष्टि के समय चिता पर मुर्दा शरीर में अग्नि लगाकर पीछे को न देखते हुए लौटकर जलाशय में स्नान करें ॥ ११ ॥ बायां हाथ दहिने के ऊपर लगा के एक अंजुली जल मृतके नाम से जलाशय के तटपर अपसव्य होकर छोड़ें ॥१२॥ जल देते समय एक धोती मात्र वस्त्र हो अंगोछा कन्धे पर न हो और दक्षिण को मुखकर के जल देवें ॥ १३ ॥ यह दक्षिण दिशा पितरोंकी है ॥ १४ ॥ फिर घर पर जाकर चटाई वा पयाल के बिछौना पर दिन तथा रात में तीन दिन रात कुछ न खाते हुये बैठें किन्तु खटिया पर न बैठें न लेटें ॥१५॥ भोजन किये बिना न रह सकें तो किसी से मूल्यद्वारा खरीदकर खावें स्वयं घर का कोई न पकावे। सात पीढ़ी के मनुष्यों को दश दिन तक मृतक की अशुद्धि माननी कही है ॥ १६ ॥ मरने के समय से लेकर दिनों की गणना करें अर्थात् थोड़ी

भृति दिवसगणना सपिण्डता तु सप्तपुरुषं विज्ञायते ॥ १७ ॥ अप्रत्तानां स्त्रीणां त्रिपुरुषं त्रिदिनं विज्ञायते ॥१८॥ प्रत्तानामितरे कुर्वीरंस्तांश्च तेषां जननेप्येवमेव निपुणां शुद्धिमिच्छतां मातापित्रोर्बीजनिमित्तत्वात् ॥१९॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ २० ॥

नाशौचंसूतकेपुंसः संसर्गंचेन्नगच्छति ।
रजस्तत्राशुचिज्ञेयं तच्चपुंसिनविद्यते ॥ इति ॥ २१ ॥

तच्चेदन्तःपुनरापतेच्छेषेण शुध्येरन् ॥२२ ॥ रात्रिशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः ॥ २३ ॥

ब्राह्मणोदशरात्रेण पक्षमात्रेणभूमिपः ।
विंशतिरात्रेणवैश्यः शूद्रोमासेनशुद्ध्यति ॥ २४ ॥

अत्राप्युदाहरन्ति ॥ २५ ॥

आशौचेशौद्रकेयस्तु सूतकेवापिभुक्तवान् ।

रात्रि शेष रहे मृत्यु हो तो पहिला दिन पूरा गिना जाय और सात पीढ़ी के मनुष्यों में सपिण्डता मानी जाती है ॥१७॥ विना विवाही कन्याके मृत्यु में तीन पीढ़ी तक सपिण्डता और तीन दिन अशुद्धि माननी चाहिये ॥१८॥ विवाहित कन्याओं के मरण का सूतक पति के कुलवाले मानें। कन्या पुत्रों के जन्म होने पर भी इसी उक्त प्रकार अच्छी शुद्धि चाहते हुए सूतक शुद्धि करें क्योंकि माता पिता दोनों बीज के निमित्त हैं ॥ १९ ॥ इस पर श्लोक भी कहते हैं ॥ २० ॥ जन्म सूतक में पुरुष यदि सूतिका वा उसके पास जाने वालों से संपर्क न करे तो उसको अशुद्धि नहीं लगती क्योंकि सूतिका स्त्री की मलिनता ही वहां अपवित्रता है और वह पुरुष में नहीं है ॥२१॥ वह मरण सूतक वा जन्म सूतक एक के पूरे न होने से पहिले ही द्वितीय मरण वा जन्म होजाय तो पहिले की समाप्ति के साथ दोनों की शुद्धि कर लें ॥ २२ ॥ यदि पहिले सूतक की एक रात्रि शेष हो तो दो दिन और शुद्धि के दिन प्रातःकाल अन्य मरण जन्म हो तो तीन दिन का सूतक बढ़ा देवें ॥ २३ ॥ दश दिन में ब्राह्मण, पन्द्रह दिन में क्षत्रिय, बीस दिन में वैश्य और एक मास में शूद्र शुद्ध होता है ॥ २४ ॥ यहां भी श्लोक का उदाहरण कहते हैं ॥ २५ ॥ शूद्र के जन्म सूतक वा मरण सूतक में जिस ने भोजन किया हो वह

सगच्छेन्नरकंघोरं तिर्यग्योनिषुजायते । इति ॥२६॥
अनिर्दशाहेपक्वान्नं नियोगाद्यस्तुभुक्तवान् ।
कृमिर्भूत्वासदेहान्ते तद्विष्ठामुपजीवति ॥ २७ ॥

द्वादश मासान्द्वादशार्द्धमासान्वाऽनश्नन्संहितामधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते ॥ २८ ॥ ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सपिण्डानां त्रिरात्रमाशौचं, सद्यः शौचमिति गौतमः ॥ २९ ॥ देशान्तरस्थे प्रेते ऊर्ध्वं दशाहाच्छ्रुत्वैकरात्रमाशौचम् ॥ ३० ॥ आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्म्रियेत पुनः संस्कारं कृत्वा शववच्छौचमिति गौतमः ॥ ३१ ॥ यूपचितिश्मशानरजस्वलासूतिकाशुचीनुपस्पृश्यसशिराअभ्युपेयादप इति॥३२॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अस्वतन्त्रा स्त्री पुरुषप्रधाना ॥ १ ॥ अनग्निरनुदक्या वा

घोर नरक भोगने पश्चात् तिर्यग्योनि में जन्म लेता है ॥ २६ ॥ ब्राह्मण के सूतक में दश दिन बीतने से पहिले जिसने निमन्त्रित होने से पक्वान्न खाया हो वह मरने पर कृमि होकर उस सूतकवाले की विष्ठा को भोगता है ॥२७॥ वह मनुष्य बारह महिने वा छः महिने तक अन्न को छोड़के केवल दुग्धापान करता हुआ वेद की संहिता का पाठ करे तो पवित्र होजाता है ऐसा शास्त्र से जाना है ॥ २८ ॥ दो वर्ष से कम के बालक के मरने वा गर्भपात होने पर सपिण्डों की शुद्धि तीन दिन में होती है । पर गौतम का मत है कि तत्काल शुद्धि कर लेवें ॥ २९ ॥ देशान्तर में मृत्यु होने पर दश दिन के पश्चात् सुने तो एक दिन रात शुद्धिमाने ॥ ३० ॥ आहिताग्नि अग्निहोत्री पुरुष यदि विदेश में गया हुआ मरजावे तो उसकी हड्डियों का फिर से विधिपूर्वक दाह करके मुर्दों के तुल्य सूतक शुद्ध करे यह महर्षि गौतम कहते हैं ॥ ३१ ॥ यूप, चिता, श्मशान, रजस्वला, सूतिका, और अशुद्ध चाण्डालादि का स्पर्श करके शिर डुबोने सहित जल में डुबकी लगावे ॥ ॥३२ ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पुरुष नाम पति के आधीन रहने वाली स्त्री हो स्वतन्त्र न रहे ॥ १ ॥ स्त्री-अग्निस्थापन-अग्निहोत्र तथा जल देने में अनधिकारिणी और मिथ्या

अनृतमिति विज्ञायते ॥ २ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ३ ॥

पितारक्षतिकौमारे भर्त्तारक्षतियौवने ।
पुत्राश्चस्थाविरेभावे नस्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति ॥ ४ ॥

तस्या भर्तुरभिचार उक्तः प्रायश्चित्तरहस्येषु ॥५॥ मासिमासिरजोह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥६॥ त्रिरात्रं रजस्वलाऽशुचिर्भवति,सा नाञ्ज्यान्नाभ्यञ्ज्यान्नाप्सु स्नायात्, अधःशयीत, दिवा न स्वप्यात्,नाग्निं स्पृशेत्,न रज्जुं सृजेन्न दन्तान्धावयेन्न मांसमश्नीयान्न ग्रहान्निरीक्षेत,न हसेन्न किंचिदाचरेत्,न खर्वेण पात्रेण पिबेन्नाञ्जलिना वा पिबेत्,लोहितायसेन वा॥७॥ विज्ञायतेहीन्द्रस्त्रिशीर्षाणंत्वाष्ट्रं हत्वा पाप्मना गृहीतो महत्तमाधर्मसंबद्धोऽहमित्येवमात्मानममन्यत,तं सर्वाणि भूतान्यभ्याक्रोशन् भ्रूणहन्भ्रूणहन्भ्रूणहन्निति, स स्त्रिय उपाधावत्,

---

है ऐसा श्रुति से जाना जाता है ॥ २ ॥ और भी शास्त्र प्रमाण कहते हैं ॥ ३ ॥ बाल्यावस्था में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र लोग रक्षा करें ऐसे तीनों अवस्था में स्त्री स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ उन स्त्री का पति से वियोग प्रायश्चित्त और रहस्य नाम एकान्त में रहने के प्रश्नों में कहा है ॥ ५ ॥ प्रत्येक मास में निकलने वाला आर्त्तव रक्त स्त्रियों के पापों को नष्ट करता रहता है ॥ ६ ॥ रजस्वला स्त्री तीन दिन तक अशुद्ध रहती है वह आंखों में अञ्जन, तैल मर्दन और जल में स्नान न करे, पृथिवी पर लेटे सोवे, दिन को न सोवे, अग्नि का स्पर्श न करे, रस्सी न बटे, दांतों को न मांजे, मांस न खावे, ग्रह नक्षत्रों को न देखे, न हंसे, न कुछ काम करे, छोटे पात्र से वा अञ्जुलि से जलादि न पीवे, और लाल पात्र से वा लोहे के पात्र से भी जलादि न पीवे ॥७॥ शास्त्र से जाना जाता है कि इन्द्रदेव तीन शिर वाले त्वष्टा के पुत्र वृत्रासुर को मारके पाप ग्रस्त हो कर महान् अधर्म से सम्बद्ध मैं हूं ऐसा अपने को मानते हुए । उन इन्द्र से सब प्राणियों ने चिल्ला २ कर कहा कि तुम भ्रूणहा ३ हो ऐसा तीनवार कहा तब वे इन्द्रदेव स्त्रियों के समीप गये और जाकर कहा कि इस मेरी ब्रह्महत्या का तृतीयांश

अस्यै मे ब्रह्महत्यायै तृतीयं भागं गृह्णीतेति गत्वैवमुवाच,ता अब्रुवन्, किन्नोऽभूदिति, सोऽब्रवीद्वरं वृणीध्वमिति,ता अब्रुवन्नृतौ प्रजां विन्दामहाइति,काममाविजनितोः संभवामइति (यथेच्छयाऽऽप्रसवकालात्पुरुषेण सह मैथुनभावेन संभवामइति) एषोऽस्माकं वरस्तथेन्द्रेणोक्तास्ताः प्रतिजगृहुस्तृतीयं भ्रूणहत्यायाः ॥ ८ ॥ सेषा भ्रूणहत्या मासिमास्याविर्भवति ॥ ९ ॥ तस्माद्रजस्वलान्नं नाश्नीयात् ॥ १० ॥ अतश्च भ्रूणहत्याया एतैषा रूपं प्रतिमुच्याऽऽस्ते कञ्चुकमिव ॥ ११ ॥ तदाहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ १२ ॥ अञ्जनाभ्यञ्जनमेवास्या न प्रतिग्राह्यं,तद्धि स्त्रियाअन्नमिति ॥ १३ ॥ तस्मात्तस्यास्तत्र न च मन्यन्ते ॥ १४ ॥ आचारायाश्च योषित इति सेयमुपयाति ॥ १५ ॥

उदक्यास्त्वासतेयेषां येचकेचिदनग्नयः ।

तुम लोग लेलो । तब स्त्रियों ने कहा कि तब हम को क्या फल मिलेगा ? । तब इन्द्रदेवता ने कहा कि वर मांगो । तब स्त्रियों ने कहा कि ऋतुकाल होने पर हमारे गर्भस्थिति द्वारा सन्तान हुआ करें और सन्तानोत्पत्ति होने से पहिले गर्भकाल में भी हम पतिका सहवास संयोग यथेच्छ कर सकें (अर्थात् इच्छा पूर्वक प्रसव काल पर्यन्त पति के साथ मैथुन भाव से संयोग करें रुकावट वा हानि न हो) यही हम लोगों का वर है । जब इन्द्रदेव ने ऐसा वरदान स्त्रियों को दिया तब उनने इन्द्र की भ्रूणहत्या का तृतीयांश दोष ग्रहण किया ॥ ८ ॥ सो वही भ्रूणहत्या स्त्रियों के मासिक रजोधर्मरूप से प्रतिमास प्रकट होती है ॥ ९ ॥ तिस से रजस्वला स्त्री का अन्न वा उस का छुआ न खावे ॥ १० ॥ इस से यह स्त्री रजोधर्म की समाप्ति में भ्रूणहत्या के कलङ्क को सांप की केंचुली के समान त्याग के निर्मल शुद्ध होती है ॥ ११ ॥ सो ब्रह्मवादी सज्जन महर्षि लोग कहते हैं कि ॥१२॥ इस स्त्रीके अञ्जन और उबटन को पुरुष न लेवे क्योंकि वही स्त्री का अन्न वा भोजन है ॥१३॥ तिस से उस स्त्री का रजोधर्मकाल में मान्य नहीं करते ॥ १४ ॥ आचार वाली शुद्ध हुई स्त्री का मान्य करे तब वह समीप आती है ॥ १५ ॥ जिन घरों में कु-

कुलंचाश्रोत्रियंयेषां सर्वेतेशूद्रधर्मिणः । इति ॥१६॥
इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

आचारःपरमोधर्मः सर्वेषामितिनिश्चयः ।
हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्यचेहचनश्यति ॥ १ ॥
नैनंतपांसिनब्रह्म नाग्निहोत्रंनदक्षिणाः ।
हीनाचारमितोभ्रष्टं तारयन्तिकथंचन ॥ २ ॥
आचारहीनंनपुनन्तिवेदा यद्यप्यधीताःसहषड्भिरङ्गैः ।
छन्दांस्येनंमृत्युकालेत्यजन्ति नीडंशकुन्ताइवजातपक्षाः ॥३॥
आचारहीनस्यतुब्राह्मणस्य वेदाःषडङ्गास्त्वखिलाःसयज्ञाः ।
कांप्रीतिमुत्पादयितुंसमर्था अन्धस्यदाराइवदर्शनीयाः ॥४॥
नैनंछन्दांसिवृजिनात्तारयन्ति मायाविनंमाययावर्त्तमानम् ।
द्वेऽप्यक्षरेसम्यगधीयमाने पुनातितद्ब्रह्मयथावदिष्टम् ॥५॥

मारी कन्या ऋतुमती होती हो, जिनने अग्निहोत्र नहीं लिया, और जिनके कुलमें कोई श्रोत्रिय न हो वे सब शूद्रधर्मी ब्राह्मण कहे वा मानेजाते हैं ॥१६॥
यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में पांचवां अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

सब वर्णों के लिये आचार ही परमोत्तम धर्म है यह निश्चय जानो । जिसका अन्तःकरण निकृष्ट आचार से युक्त है वह इस लोक परलोक दोनों में नष्ट होता है ॥ १ ॥ तप करना, वेद पढ़ना, अग्निहोत्र लेना और दान दक्षिणा देना इत्यादि काम धर्म से भ्रष्ट आचार से हीन पुरुष को कदापि दुःख सागर से पार नहीं करते ॥ २ ॥ यदि छहो वेदाङ्गों के सहित वेदों को पढ़ा हो तो भी वे वेद आचारहीन पुरुष को पवित्र नहीं करते । पढ़े हुए वेद मृत्यु के समय इसको ऐसे ही त्याग देते हैं कि जैसे पंख निकल आने पर पक्षियों के बच्चे घोंसलों को छोड़के उड़जाते हैं॥३॥ आचार हीन ब्राह्मण को पढ़े जाने हुए छहो वेदाङ्ग, और यज्ञ विधि सहित जानेहुए चारों वेद क्या प्रीति वा प्रसन्नता कर सकते हैं? अर्थात् कुछ नहीं । जैसे अन्धे को अपनी रूपवती पत्नी के रूप से कुछ भी प्रसन्नता वा आनन्द नहीं होता वैसे ही आचार हीन को वेदों से कुछ सुख नहीं मिलता ॥ ४ ॥ छल कपट के साथ वर्त्ताव करनेवाले मायावी पुरुष को पढ़े हुए वेद पाप से पार नहीं करते । परन्तु शुद्धाचारी पुरुष वेद के दो अक्षर भी सम्यक् श्रद्धा तथा शुद्धि से पढ़े तो वेही उसको पवित्र कर देते हैं ॥ ५ ॥ दुराचारी पुरुषलोक में निन्दित, निरन्तर दुःखी

दुराचारोहिपुरुषो लोकेभवतिनिन्दितः ।
दुःखभागीचसततं व्याधितोऽल्पायुरेवच ॥ ६ ॥
आचाराल्लभतेधर्ममाचाराल्लभतेधनम् ।
आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारोहन्त्यलक्षणम् ॥ ७ ॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि यःसदाचारवान्नरः ।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतंवर्षाणिजीवति ॥ ८ ॥
आहारनिर्हारविहारयोगाः सुसंवृताधर्मविदातुकार्याः ।
वाग्बुद्धिकार्याणितपस्तथैव धनायुषीगुप्ततमेतुकार्ये ॥९॥
उभेमूत्रपुरीषेतु दिवाकुर्यादुदङ्मुखः ।
रात्रौकुर्याद्दक्षिणास्य एवंह्यायुर्नहीयते ॥ १० ॥
प्रत्यग्निंप्रतिसूर्यंच प्रतिगांप्रतिचद्विजम् ।
प्रतिसोमोदकंसंध्यां प्रज्ञानश्यतिमेहतः ॥ ११ ॥
ननद्यांमेहनंकार्यं नभस्मनिनगोमये ।
नवाकृष्टेनमार्गेच नोप्तेक्षेत्रेनशाड्वले ॥ १२ ॥

रोगी और अल्पावस्थावाला होता है ॥ ६ ॥ शुद्ध आचरण होने से धर्म, धन, लक्ष्मी शोभा प्रतिष्ठा सब प्राप्त होती और आचार अलक्षण का नाश कर देता है ॥ ७ ॥ सब सुरूप आदि लक्षणों से हीन होने पर भी जो पुरुष सदाचारी श्रद्धालु और किसी की निन्दा करने वाला नहीं, वह सौ वर्ष जीवित रहता है ॥ ८ ॥ भोजन खाना—पीना—चलना फिरना मिलना इत्यादि काम धर्मज्ञ पुरुष को मध्यम कोटि के नियम बद्ध करने चाहिये । वाणी तथा बुद्धि के काम, तप, धन, और आयु इन सब को गुप्त सुरक्षित रक्खे ॥ ९ मल मूत्र का त्याग दिन में उत्तर को मुख करके और रात्रि में दक्षिण को मुख करके करे ऐसा करने से आयु क्षीण नहीं होता ॥ १० ॥ अग्नि, सूर्य, गौ, ब्राह्मण, चन्द्रमा, जलाशय, सन्ध्या, इन सबके सामने मुख करके प्रस्राव (पेशाब) करनेवाले की बुद्धि नष्ट होजाती है ॥ ११ नदी, भस्म, गोबर, जोते हुए खेत, मार्ग, बोये खेत और जमी हुई घास इन नदी आदि में प्रस्राव (पेशाब) न करे ॥१२॥

॥

छायायामन्धकारेवा रात्रावहनिवाद्विजः ।
यथासुखमुखःकुर्यात्प्राणबाधाभयेषुच ॥ १३ ॥
उद्धृताभिरद्भिः कार्यं कुर्यात्स्नानमनुद्धृताभिरपि ॥ १४ ॥
आहरेन्मृत्तिकांविप्रः कूलात्ससिकतांतथा ।
अन्तर्जलेदेवगृहे वल्मीकेमूषिकस्थले ॥
कृतशौचावशिष्टाच नग्राह्याःपञ्चमृत्तिकाः ॥ १५ ॥
एकालिङ्गेकरेतिस्र उभाभ्यांद्वेतुमृत्तिके ।
पञ्चापानेदशैकस्मिन्नुभयोःसप्तमृत्तिकाः ॥ १६ ॥
एतच्छौचंगृहस्थस्य द्विगुणंब्रह्मचारिणः ।
वानप्रस्थस्यत्रिगुणं यतीनांतुचतुर्गुणम् ॥ १७ ॥
अष्टौग्रासामुनेर्भक्तं वानप्रस्थस्यषोडश ।

बादलादि की छाया में, तथा अन्धकार के समय राति हो वा दिन हो और जहां प्राणों के जाने का भय हो तब जिधर को शुभीता दीखे उसी ओर मुख करके मल मूत्र का त्याग कर लेवे॥१३॥ जलाशय से पृथक् निकाले हुए जल से अन्य सब काम करने चाहिये किन्तु जलाशय के भीतर नहीं परन्तु स्नान जलाशय के भीतर भी कर सकता है ॥ १४ ॥ ब्राह्मण हाथ मांजने आदि के लिये जलाशय के तट से बालू मट्टी लेवे । औ जलके भीतर से, देवस्थान से, बिलसे, मूषिक रहने के स्थान से और किसी के हाथ वा वर्त्तनादि मांजने से बची यह पांच प्रकार की मट्टी शुद्धि के लिये न लेवे ॥ १५ ॥ केवल पेशाब के समय लिङ्गेन्द्रिय को एक बार मट्टी जलसे शुद्ध कर एक हाथ को तीन बार तथा दोनों हाथों को दोबार मट्टी जल से धोवे । मल त्याग के समय भी एकबार लिङ्गेन्द्रिय को और पांचबार गुदेन्द्रिय को मट्टी जल लगार के शुद्ध करके एक वाम हाथ को दशबार और दोनों हाथों को सातबार मट्टी जल लगा २ के शुद्ध करे ॥ १६ ॥ यह शुद्धि गृहस्थ के लिये कही है इस से दूनी ब्रह्मचारी, तिगुणी वानप्रस्थ, और चौगुणी शुद्धि संन्यासी करे ॥ १७ ॥ मुनि वा संन्यासी लोगों का भोजन आठ ग्रास, वानप्रस्थ का सोलह ग्रास, गृहस्थ का बत्तीस

द्वात्रिंशच्च गृहस्थस्य अमितंब्रह्मचारिणः ॥ १८ ॥
अनड्वान्ब्रह्मचारीच आहिताग्निश्चतेत्रयः ।
भुञ्जानाएवसिद्ध्यन्ति नैषांसिद्धिरनश्नताम् ॥१९॥
तपोदानोपहारेषु व्रतेषुनियमेषुच ।
इज्याध्ययनधर्मेषु योनाऽऽसक्तःसनिष्क्रियः ॥ २० ॥
योगस्तपोदमोदानं सत्यंशौचंदयाश्रुतम् ।
विद्याविज्ञानमास्तिक्य मेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥ २१ ॥
येशान्तदान्ताःश्रुतिपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाःप्राणिवधान्निवृत्ताः।
प्रतिग्रहेसंकुचिताग्रहस्तास्तेब्राह्मणास्तारयितुंसमर्थाः ॥२२॥
नास्तिकःपिशुनश्चैव कृतघ्नोदीर्घरोषकः ।
चत्वारःकर्मचाण्डाला जन्मतश्चापिपञ्चमः ॥ २३ ॥
दीर्घवैरमसूयाच असत्यंब्रह्मदूषणम् ।

ग्रास और ब्रह्मचारी को अपरिमित ग्रास (जितनी भूख हो) भोजन करना चाहिये ॥ १८ ॥ बैल, ब्रह्मचारी तथा अग्निहोत्री ब्राह्मण ये तीनों भोजन में त्रुटि न करें (अर्थात् अधिक उपवासादि न करें) भोजन करते हुए ही ये तीनो सिद्धि को प्राप्त होते हैं किन्तु लंघन उपवास करते हुए उक्त तीनों की सिद्धि नहीं है ॥ १९ ॥ जो ब्राह्मणादि द्विज तप करने, दान देने, गुरु आदि मान्यों की भेंट पूजा करने, व्रत, नियम, यज्ञ, वेदाध्ययन और अहिंसा दयादि धर्म इनमें से किसी काम में तत्पर नहीं वही निकम्मा है ॥ २० ॥ योगाभ्यास, तप, मनका दमन, दान, सत्यभाषण, शुद्धि, दया, शास्त्राध्ययन, वेदान्त (तत्त्वज्ञान) का अभ्यास, विज्ञान (लौकिक व्यवहार का ज्ञान) आस्तिकता ये सब जिसमें हों वही ब्राह्मण है अर्थात् योगाभ्यासादि ब्राह्मणत्व के लक्षण नाम चिन्ह हैं ॥२१ ॥ मन को वशीभूत करनेवाले दान्त, श्रुतियों (वेदों) से जिनके कान भरे गये हों, जितेन्द्रिय, हिंसा से निवृत्त, दान लेने में जिनने हाथ को सकोड़ रक्खा हो ऐसे ब्राह्मण अन्यों को तार देने में समर्थ होते हैं ॥ २२ ॥ नास्तिक, चुगल, कृतघ्न (अपना उपकार करनेवाले की हानि करनेवाला) बहुत कालतक क्रोध को न त्यागनेवाला ऐसे चारो ब्राह्मणादि कर्म से चाण्डाल हैं और पांचवां चाण्डाल जन्म से होता है ॥ २३ ॥ बहुत कालतक वैर रखना, निन्दा करना

पैशुन्यंनिर्दयत्वंच जानीयाच्छूद्रलक्षणम् ॥ २४ ॥
किंचिद्वेदमयंपात्रं किंचित्पात्रंतपोमयम् ।
पात्राणामपितत्पात्रं शूद्रान्नंयस्यनोदरे ॥ २५ ॥
शूद्रान्नरसपुष्टाङ्गो ह्यधीयानोऽपिनित्यशः ।
जुह्वन्वाऽपिजपन्वाऽपि गतिमूर्ध्वांनविन्दति ॥ २६ ॥
शूद्रान्नेनोदरस्थेन यःकश्चिन्म्रियतेद्विजः ।
सभवेत्सूकरोग्राम्यस्तस्यवाजायतेकुले ॥ २७ ॥
शूद्रान्नेनतुभुक्तेन मैथुनंयोऽधिगच्छति ।
यस्यान्नंतस्यतेपुत्रा नचस्वर्गार्हकोभवेत् ॥ २८ ॥
स्वाध्यायोत्थंयोनिमन्तंप्रशान्तं वैतानस्थंपापभीरुंबहुज्ञम् ।
स्त्रीषुक्षान्तंधार्मिकंगोशरण्यं व्रतैःक्षान्तंतादृशंपात्रमाहुः ॥२९॥
आमपात्रेयथान्यस्तं क्षीरंदधिघृतंमधु ।

मिथ्या भाषण, ब्राह्मण वा वेद को दोष लगाना, चुगली करना, निर्दयी होना इन सबको शूद्र के लक्षण जानो अर्थात् ऐसे लक्षण ब्राह्मणादि में हों तो जान लो कि उसकी उत्पत्ति में संकरतादि दोष है ॥ २४ ॥ कोई सदा ही वेद के पढ़ने विचारने में तत्पर वेदरूप सुपात्र और कोई प्रायः तप करनेवाला तपस्वी सुपात्र कहाता है परन्तु सब में उत्तम सुपात्र वह है जिसके पेट में शूद्र का अन्न न जाता हो ॥ २५ ॥ शूद्र के अन्न से हुए रस से जिसका शरीर हृष्ट पुष्ट हुआ है वह भले ही नित्य२ वेद पढ़ता हो, अग्निहोत्र करता और गायत्र्यादि का जप भी भले ही करता हो तो भी स्वर्ग को प्राप्त नहीं होता ॥२६॥ शूद्र का अन्न पेट में विद्यमान होते हुए जो ब्राह्मण मरता है वह जन्मान्तर में या तो गांव का सुअर होता अथवा उसी यजमान शूद्र के कुल में उत्पन्न होता है ॥ २७ ॥ शूद्र का अन्न खाकर जो मैथुन करता है तो जिसका अन्न खाया उसी के वे पुत्र होते हैं और वह स्वर्ग को जाने योग्य नहीं होता ॥२८॥ वेद के स्वाध्याय से बढ़े हुए, शान्तिशील, कुलीन, श्रौतस्मार्त्त अग्निहोत्री, पापों से डरनेवाले, बहुतजाननेवाले, स्त्रियों में क्षमा शील, धर्मात्मा, गो सेवा में तत्पर, व्रत करर के कृश दुबले हुए ऐसे ब्राह्मण को ऋषि लोग सुपात्र कहते हैं ॥ २९ ॥ जैसे मट्टी के कच्चे पात्र में गिराये हुए दूध दही घी शहद आदि

विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्चपात्रंरसाश्चते ॥ ३० ॥

एवंगांचहिरण्यंच वस्त्रमश्वंमहींतिलान् ।

अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवतिदारुवत् ॥ ३१ ॥

नाङ्गनखवाद्यं कुर्यान्ननखैश्च भोजनादौ ॥३२॥ न चापोऽञ्जलिना पिबेत् ॥३३॥ न पादेन पाणिना वा जलमभिहन्यान्न जलेन जलम् ॥ ३४ ॥ नेष्टकाभिः फलानि पातयेत् ॥ ३५ ॥ न फलेन फलं न कल्केन कुहको भवेत् ॥३६॥ न म्लेच्छभाषां शिक्षेत ॥ ३७ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ३८ ॥

नपाणिपादचपलो ननेत्रचपलोभवेत् ।

नचाङ्गचपलोविप्र इतिशिष्टस्यगोचरः ॥ ३९ ॥

पारंपर्यागतोयेषां वेदःसपरिबृंहणः ।

तेशिष्टाब्राह्मणा ज्ञेयाःश्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥४०॥

यन्नसन्तंनचासन्तं नाश्रुतंनबहुश्रुतम् ।

वस्तु पात्र के निर्बल होने से वह पात्र और दूध आदि रस नष्ट होजाते हैं ॥ ३० ॥ ऐसे ही गौ सुवर्ण वस्त्र घोड़ा भूमि और तिल आदि पदार्थों का दान लेता हुआ मूर्ख ब्राह्मण काष्ठ के तुल्य भस्म होजाता है ॥ ३१ ॥ शरीर के अङ्गों तथा नखों को न बजावे । दांतों से नखों को न काटे ॥ ३२ ॥ अञ्जलि से जल न पीवे ॥ ३३ ॥ पांव वा हाथ से जल को न पीटे न ताड़ना करे और न जल से जल की ताड़ना करे ॥३४॥ ईंटों से फलों को न गिरावे ॥३५॥ फल से फल को झाड़के न गिरावे दम्भ वा पाप में तत्पर हो के धर्म से शून्य न होवे ॥३६॥ फारसी आदि म्लेच्छ भाषा को न सीखे ॥३७॥ इस पर श्लोक कहते हैं ॥३८॥ हाथ पांव आंखें तथा शरीर के अन्य अङ्गों द्वारा चपलता दिखाने वाला ब्राह्मण न हो, यही शिष्ट होने का मार्ग है ॥ ३९ ॥ जिन के यहां कुल परम्परा से वेद वेदाङ्गों के पढ़ने जानने की परिपाटी निष्कारण धर्म बुद्धि से चली-आती है वे श्रुति को ही साक्षात्प्रमाण मानने वाले ब्राह्मण शिष्ट कहाते हैं ॥ ४० ॥ जो कोई धनादि के होने न होने को, विद्वान् अविद्वान् को और सदाचारी दुराचारी को कुछ नहीं जानता इत्यादि को अभेद दृष्टि से देखता

नसुवृत्तंनदुर्वृत्तं वेदकश्चित्सब्राह्मणोब्राह्मण ॥इति ॥४१॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

चत्वार आश्रमा ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थपरिव्राजकाः ॥ १ ॥ तेषां वेदमधीत्य वेदौ वा वेदान्वाऽविशीर्णब्रह्मचर्यो यमिच्छेत्तमावसेत् ॥ २ ॥ ब्रह्मचार्याचार्यं परिचरेत् ॥ ३ ॥ आशरीरविमोक्षात् ॥ ४ ॥ आचार्यप्रमीतेऽग्निं परिचरेत् ॥५॥ विज्ञायते हि तत्राग्निराचार्यइति ॥ ६ ॥ संयतवाक्चतुर्थषष्ठाष्टमकालभोजी भैक्षमाचरेत् ॥ ७ ॥ गुर्वधीनो जटिलः शिखाजटो वा गुरुं गच्छन्तमनुगच्छेत् ॥ ८ ॥ आसीनं च तिष्ठञ्शयानं चासीन उपासीत ॥ ९ ॥ आहूताध्यायी सर्वं लब्धं निवेद्य तदनुज्ञया भुञ्जीत ॥ १० ॥ खट्वाशयनदन्तप्रक्षालनाञ्जनाभ्यञ्जनोपानच्छत्रवर्जी तिष्ठेदहनि रात्रावासीत

शान्तस्वरूप पूर्णतत्त्वज्ञानी वैराग्यवान् पूरा वा उत्तम कोटिका ब्राह्मण है ॥४१॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ये चार आश्रम कहाते हैं ॥१॥ प्रथम एक दो वा तीनों वेदों को अङ्गों सहित पढ़ जानके ब्रह्मचर्य जिस का स्खलित न हुआ हो ऐसा हो कर जिस आश्रम में रहने की इच्छा हो उसी में ठहरे ॥ २ ॥ यदि ब्रह्मचारी रहे तो आचार्य की सेवा करे इसी में अपने इष्ट की पूर्ण सिद्धि माने ॥ ३ ॥ जीवन भर गुरुसेवा करे ॥ ४ ॥ गुरु का स्वर्गवास हो जाने पर अग्नि की सेवा करे ॥ ५ ॥ क्योंकि श्रुति में लिखा है कि (तेरा आचार्य अग्नि है) ॥६॥ वाणी को वश में रक्खे । चौथे छठे वा आठव प्रहर में एकवार भोजन करे ॥ ७ ॥ गुरु के अधीन रहे । सब जटा रक्खे वा केवल शिखामात्र रक्खे । चलते हुए गुरु जी के पीछे २ चला करे ॥८॥ गुरु बैठे हों तब खड़ा रहे और लेटे हों तो बैठाहुआ उपासना करे ॥ ९ ॥ पढ़ने को गुरु बुलावें तब जा कर गुरु के समीप में पढ़े । प्राप्त हुए भिक्षादि सब पदार्थों को गुरु की सेवा में निवेदन करके गुरु की आज्ञा होने पर भोजन करे ॥१०॥ खटिया पर सोना, दातौन करना, आंखों में अञ्जन, शरीर में तैल लगाना, जूता और छाता इन सब का त्याग रक्खे । विशेष कर दिनमें खड़ा रहे रात्रि

॥ ११ ॥ त्रिःकृत्वोऽभ्युपेयादपोऽभ्युपेयादपः । इति ॥१२॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

गृहस्थो विनीतक्रोधहर्षो गुरुणाऽनुज्ञातः स्नात्वाऽसमानार्षामस्पृष्टमैथुनां यवीयसीं सदृशीं भार्यां विन्देत ॥१॥ पञ्चमीं मातृबन्धुभ्यः सप्तमीं पितृबन्धुभ्यः ॥ २ ॥ वैवाह्यमग्निमिन्धीत ॥ ३ ॥ सायमागतमतिथिं नावरुन्ध्यात् ॥४॥ नास्यानश्नन् गृहे वसेत् ॥ ५ ॥

यस्यनाश्नातिवासार्थी ब्राह्मणोगृहमागतः ।
सुकृतंतस्ययत्किंचित्सर्वमादायगच्छति ॥ ६ ॥
एकरात्रंतुनिवसन्नतिथिर्ब्राह्मणःस्मृतः ।
अनित्यंहिस्थितोयस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ ७ ॥
नैकग्रामीणमतिथिं विप्रंसांगतिकंतथा ।

में बैठा रहा करे ॥ ११ ॥ सायं प्रातःकाल और मध्यान्ह में तीनोंकाल जलाशय के निकट जा कर शौचाचमनादिपूर्वक सन्ध्योपासनादि क्रिया करे ॥१२॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में सातवां अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

यदि वह गृहस्थाश्रम में रहे तो गुरु की आज्ञा से समावर्त्तन स्नान करके अधिक क्रोध हर्षका त्याग करताहुआ रागद्वेष रहित होके जिसका किसी पुरुष से संग न हुआ हो जो अपने गोत्र की न हो ऐसी युवति अपने तुल्य कुल सम्पत्तिआदि वाली स्त्री से विवाह करे ॥१॥ मातृकुल की पांचवीं पीढ़ी की अथवा पितृ कुल की सातवीं पीढ़ी की कन्या से भी विवाह हो सकता है ॥ २ ॥ फिर गृह्याग्नि को विवाह की वेदी से ला कर विधिपूर्वक स्थापित करे ॥ ३ ॥ सायंकाल में आये अभ्यागत का अनादर न करे ॥ ४ ॥ विना भोजन किया अतिथि गृहस्थ के घर पर भूंखा न पड़ा रहे ॥ ५ ॥ जिस के घर में ठहरने को आया ब्राह्मण भोजन मिले विना भूंखा रहता है । वह गृहस्थ के जन्मभर में किये सब पुण्य को लेजाता है ॥ ६ ॥ एक दिन निवास करने से अनित्य स्थिति होने के कारण ब्राह्मण अतिथि कहाता है ॥ ७ ॥ अपने ही गांव में रहने वाला तथा पहिले से मेली मिलापी ब्राह्मण अतिथि नहीं क-

नसुवृत्तंनदुर्वृत्तं वेदकश्चित्सब्राह्मणोब्राह्मण ॥इति ॥४१॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

चत्वार आश्रमा ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थपरिव्राजकाः ॥ १ ॥ तेषां वेदमधीत्य वेदौ वा वेदान्वाऽविशीर्णब्रह्मचर्यो यमिच्छेत्तमावसेत् ॥ २ ॥ ब्रह्मचार्याचार्यं परिचरेत् ॥ ३ ॥ आशरीरविमोक्षात् ॥ ४ ॥ आचार्ये प्रमीतेऽग्निं परिचरेत् ॥५॥ विज्ञायते हि तत्राग्निराचार्यइति ॥ ६ ॥ संयतवाक्चतुर्थषष्ठाष्टमकालभोजी भैक्षमाचरेत् ॥ ७ ॥ गुर्वधीनो जटिलः शिखाजटो वा गुरुं गच्छन्तमनुगच्छेत् ॥ ८ ॥ आसीनं च तिष्ठञ्शयानं चासीन उपासीत ॥ ९ ॥ आहूताध्यायी सर्वं लब्धं निवेद्य तदनुज्ञया भुञ्जीत ॥ १० ॥ खट्वाशयनदन्तप्रक्षालनाञ्जनाभ्यञ्जनोपानच्छत्रवर्जी तिष्ठेदहनि रात्रावासीत

शान्तस्वरूप पूर्णतत्त्वज्ञानी वैराग्यवान् पूरा वा उत्तम कोटिका ब्राह्मण है ॥४१॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ये चार आश्रम कहाते हैं ॥१॥ प्रथम एक दो वा तीनों वेदों को अङ्गों सहित पढ़ जानके ब्रह्मचर्य जिस का स्खलित न हुआ हो ऐसा हो कर जिस आश्रम में रहने की इच्छा हो उसी में ठहरे ॥ २ ॥ यदि ब्रह्मचारी रहे तो आचार्य की सेवा करे इसी में अपने इष्ट की पूर्ण सिद्धि माने ॥ ३ ॥ जीवन भर गुरुसेवा करे ॥ ४ ॥ गुरु का स्वर्गवास हो जाने पर अग्नि की सेवा करे ॥ ५ ॥ क्योंकि श्रुति में लिखा है कि (तेरा आचार्य अग्नि है) ॥६॥ वाणी को वश में रक्खे। चौथे छठे वा आठवें प्रहर में एकबार भोजन करे ॥ ७ ॥ गुरु के अधीन रहे। सब जटा रखावे वा केवल शिखामात्र रक्खे। चलते हुए गुरु जी के पीछे २ चला करे ॥८॥ गुरु बैठे हों तब खड़ा रहे और लेटे हों तो बैठाहुआ उपासना करे ॥ ९ ॥ पढ़ने को गुरु बुलावें तब जा कर गुरु के समीप में पढ़े। प्राप्तहुए भिक्षादि सब पदार्थों को गुरु की सेवा में निवेदन करके गुरु की आज्ञा होने पर भोजन करे ॥१०॥ खटिया पर सोना, दातौन करना, आंखों में अञ्जन, शरीर में तैल लगाना, जूता और छाता इन सब का त्याग रक्खे। विशेष कर दिनमें खड़ा रहे रात्रि

॥ ११ ॥ त्रिःकृत्वोऽभ्युपेयादपोऽभ्युपेयादप: । इति ॥१२॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

गृहस्थो विनीतक्रोधहर्षो गुरुणाऽनुज्ञातः स्नात्वाऽसमानार्षामस्पृष्टमैथुनां यवीयसीं सदृशीं भार्यां विन्देत ॥१॥ पञ्चमीं मातृबन्धुभ्यः सप्तमीं पितृबन्धुभ्यः ॥ २ ॥ वैवाह्यमग्निमिन्धीत ॥ ३ ॥ सायमागतमतिथिं नावरुन्ध्यात् ॥४॥ नास्यानश्नन् गृहे वसेत् ॥ ५ ॥

यस्यनाश्नातिवासार्थी ब्राह्मणोगृहमागतः ।
सुकृतंतस्ययत्किंचित्सर्वमादायगच्छति ॥ ६ ॥
एकरात्रंतुनिवसन्नतिथिर्ब्राह्मणःस्मृतः ।
अनित्यंहिस्थितोयस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ ७ ॥
नैकग्रामीणमतिथिं विप्रंसांगतिकंतथा ।

में बैठा रहा करे ॥ ११ ॥ सायं प्रातःकाल और मध्यान्ह में तीनोंकाल जलाशय के निकट जा कर शौचाचमनादिपूर्वक सन्ध्योपासनादि क्रिया करे ॥१२॥
यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में सातवां अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

यदि वह गृहस्थाश्रम में रहे तो गुरु की आज्ञा से समावर्त्तन स्नान करके अधिक क्रोध हर्षका त्याग करताहुआ रागद्वेष रहित होके जिसका किसी पुरुष से संग न हुआ हो जो अपने गोत्र की न हो ऐसी युवति अपने तुल्य कुल सम्पत्तिआदि वाली स्त्री से विवाह करे ॥१॥ मातृकुल की पांचवीं पीढ़ी की अथवा पितृ कुल की सातवीं पीढ़ी की कन्या से भी विवाह हो सकता है ॥ २ ॥ फिर गृह्याग्नि को विवाह की वेदी से ला कर विधिपूर्वक स्थापित करे ॥ ३ ॥ सायंकाल में आये अभ्यागत का अनादर न करे ॥ ४ ॥ विना भोजन किया अतिथि गृहस्थ के घर पर भूखा न पड़ा रहे ॥ ५ ॥ जिस के घर में ठहरने को आया ब्राह्मण भोजन मिले विना भूखा रहता है । उस गृहस्थ के जन्मभर में किये सब पुण्य को लेजाता है ॥ ६ ॥ एक दिन निवास करने से अनित्य स्थिति होने के कारण ब्राह्मण अतिथि कहाता है ॥ ७ ॥ अपने ही गांव में रहने वाला तथा पहिले से मेली मिलापी ब्राह्मण अतिथि नहीं क-

कालेप्राप्तेअकालेवा नास्यानश्नन्गृहेवसेत् ॥ ८ ॥

श्रद्धाशीलोऽस्पृहयालुरलमग्न्याधेयाय नानाहिताग्निः स्यात् ॥९॥ अलं च सोमपानाय नासोमयाजी स्यात् ॥ १० ॥ युक्तः स्वाध्याये प्रजनने यज्ञे च ॥ ११ ॥ गृहेष्वभ्यागतं प्रत्युत्थानासनशयनवाक्सूनृताऽनसूयाभिर्मानयेत् ॥१२॥ यथाशक्ति चान्नेन सर्वभूतानि ॥ १३ ॥

गृहस्थ एवयजते गृहस्थस्तप्यतेतपः ।
चतुर्णामाश्रमाणांतु गृहस्थस्तुविशिष्यते ॥ १४ ॥
यथानदीनदाःसर्वे समुद्रेयान्तिसंस्थितिम् ।
एवमाश्रमिणःसर्वे गृहस्थेयान्तिसंस्थितिम् ॥ १५ ॥
यथामातरमाश्रित्य सर्वेजीवन्तिजन्तवः ।
एवंगृहस्थमाश्रित्य सर्वेजीवन्तिभिक्षवः ॥ १६ ॥

होता है। अतिथि पुरुष समय कुसमय कभी आने पर विना भोजन किये गृहस्थ के घर पर भूखा न बसे ॥ ८ ॥ निर्लोभ श्रद्धालु गृहस्थ अग्निस्थापन करने योग्य होता है। गृहस्थ पुरुष अनाहिताग्नि न रहे। किन्तु यथासम्भव अग्नि को अवश्य स्थापन करे ॥९॥ और वैसा गृहस्थ सोमयाग करने योग्य भी होता है इस से सोमयाग (अग्निष्टोमादि) भी करे ॥१०॥ वेदाध्ययन में यज्ञ करने में और सन्तानों के उत्पन्न करने में तत्पर रहे ॥ ११ ॥ अपने घर पर आये अभ्यागत को देखके उठना, आसन देना, लेटने को शय्या देना, कोमल वाणी बोलना और स्तुति प्रशंसा करना इत्यादि प्रकार से उसका मान्य करे ॥१२॥ यथाशक्ति अन्न देकर अन्य प्राणियों का भी आदर करे ॥१३॥ गृहस्थ ही यज्ञ करता, और गृहस्थ तप करता है इस कारण चारो आश्रमों में विशेष कर गृहस्थ उत्तम है ॥ १४ ॥ जैसे सब नद और नदियां इधर उधर चलती हुईं समुद्र में आ कर ठहरती हैं वैसे ही जहां तहां घूमते हुए सब साधु संन्यासी ब्रह्मचारी गृहस्थ के यहां आ कर ठहर जाते हैं ॥१५॥ जैसे सब जीव अपनी अपनी माता का आश्रय लेकर जीवित रहते हैं। ऐसे ही सब भिक्षुक लोग गृहस्थ का आश्रय लेकर भोजनादि से जीविका निर्वाह करते हैं ॥१६॥

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी । ऋतौ च गच्छन्विधिवच्च जुह्वन्ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात्, ब्रह्मलोकादिति ॥ १७ ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

वानप्रस्थो जटिलश्चीराजिनवासा ग्रामं च न प्रविशेत् ॥१॥ न फालकृष्टमधितिष्ठेत् ॥२॥ अकृष्टं मूलफलं संचिन्वीत, ऊर्ध्वरेताः क्षमाशयः ॥ ३ ॥ मूलफलभैक्षेणाऽऽश्रमागतमतिथिमभ्यर्चयेत् ॥ ४ ॥ दद्यादेव न प्रतिगृह्णीयात् ॥ ५ ॥ त्रिषवणमुदकमुपस्पृशेत् ॥६॥ श्रावणकेनाग्निमाधायाऽऽहिताग्निः स्याद्वृक्षमूलिकः ॥ ७ ॥ ऊर्ध्वं षड्भ्यो मासेभ्योऽनग्निरनिकेतः ॥ ८ ॥ दद्याद्देवपितृमनुष्येभ्यः स गच्छेत्स्वर्गमानन्त्यमानन्त्यम् ॥ ९ ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

यज्ञोपवीत, एक जलपात्र गृहस्थ नित्य साथ रक्खे नीच वा पतितों के अन्न का त्याग रक्खे, नित्य वेदाध्ययन करे, ऋतुकालमें पत्नीसे संग करे और शास्त्रोक्त विधि से नित्य होम करे ऐसा गृहस्थ ब्राह्मण ब्रह्मलोक को जन्मान्तर में प्राप्त होता है फिर वहां से च्युत नहीं होता ॥ १७ ॥

यह वासिष्ठ धर्म शास्त्र के भाषानुवाद में आठवां अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

वानप्रस्थ पुरुष जटाधारी, फटे चिथरा वस्त्र वा मृग चर्म को ओढ़, गांव में न घुसे ॥ १ ॥ हलसे जोती हुई भूमि पर न बैठे लेटे ॥ २ ॥ बिन जोती भूमि से उत्पन्न हुए मूल तथा फलों को भोजन के लिये लाया करे । ऊर्ध्वरेता (जिसका वीर्य नीचे को कदापि न गिरे) रहे पृथिवी पर सोया लेटा करे ॥३॥ कन्द मूल फल रूप भिक्षा से अपने आश्रम पर आये अतिथि का सत्कार करे ॥ ४ ॥ दिया ही करे किसी से कुछ न लेवे ॥ ५॥ सायं प्रातःकाल और मध्याह्न में तीनोंकाल स्नान सन्ध्यादि कृत्य किया करे ॥ ६ ॥ श्रावणक द्वारा अग्निस्थापन करके आहिताग्नि हो जावे । वृक्षों की जड़ों पर वृक्षों के नीचे निवास किया करे ॥ ७ ॥ फिर छः महिनों के बीतने पर अग्नि और एक स्थान का निवास त्याग देवे ॥८॥ देवयज्ञ, पितृयज्ञ, और अतिथियज्ञ द्वारा देव पितर और मनुष्यों को दिया करे तो वह अनन्त मोक्ष के आनन्द को प्राप्त होता है ॥ ९॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में नवम अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

परिव्राजकः सर्वभूताभयदक्षिणां दत्त्वा प्रतिष्ठेत ॥ १ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ २ ॥

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वाचरतियोमुनिः ।
तस्यापिसर्वभूतेभ्यो नभयंजातुविद्यते ॥ ३ ॥
अभयंसर्वभूतेभ्यो दत्त्वायस्तुनिवर्तते ।
हन्तिजातानजानांश्च द्रव्याणिप्रतिगृह्यच ॥ ४ ॥
संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकंनसंन्यसेत् ।
वेदसंन्यसनाच्छूद्रस्तस्माद्वेदंनसंन्यसेत् ॥ ५ ॥
एकाक्षरंपरंब्रह्म प्राणायामः परन्तपः ।
उपवासात्परंभैक्षं दयादानाद्विशिष्यते ॥ ६ ॥

मुण्डोऽममोऽपरिग्रहः सप्तागाराण्यसंकल्पितानि चरेद्भैक्षं विधूमे सन्नमुसले ॥ ७ ॥ एकशाटीपरिवृतोऽजिनेन

अब इस दशम अध्याय में संन्यास धर्म कहते हैं । संन्यासी होता हुआ ब्राह्मण सब प्राणियों को निर्भयरूप दक्षिणा देकर एक स्थान वा संसार के पदार्थों से प्रस्थान करे ॥ १ ॥ यहां श्लोक प्रमाण कहते हैं ॥ २ ॥ सब प्राणियों को अभयदान देकर जो मुनि संन्यासी विचरता है उसको भी सब प्राणियों से कदापि कहीं भय नहीं है ॥ ३ ॥ सब प्राणियों को अभय दान देकर जो निवृत्ति मार्ग में चलता है। वह द्रव्यादि को ग्रहण करके भी होचुके वा होनेवाले सब दोषों को नष्ट कर देता है ॥ ४ ॥ विरक्त संन्यासी पुरुष संसार के सब कामों को त्याग देवे परन्तु एक वेद का त्याग न करे क्योंकि वेद का त्याग करने से शूद्र होजाता है तिससे वेद को न त्यागे ॥ ५ ॥ एक अक्षर ओंकार परमोत्तम वेद है, प्राणायाम उत्तम तप है । भिक्षा मांगकर परिमित सूक्ष्म भोजन करना उपवास करने से अच्छा और दान धर्म से दया बड़ी है ॥ ६ ॥ संन्यासी शिर के तथा डाढ़ी मूंछों के सब बाल मुंडाया करे, ममता को त्यागे, संसारी सुख के पदार्थों का संचय वा रक्षा न करे, गृहस्थों के घरों में धानादि कूटने पीसने खाने पकाने के समाप्त होजाने पर पहिले से जिनका संकल्प न किया हो ऐसे सात घरों से संन्यासी पकाये अन्न की भिक्षा मांगलावे और एकान्त में जाकर खावे ॥ ७ ॥ कौपीन (लंगोट) के ऊपर एक धोती संन्यासी पहने उसी में से आधी ओढ़ लिया करे, अथवा मृग चर्म से आ-

वा गोप्रलूनैस्तृणैर्वेष्टितशरीरः स्थण्डिलशाय्यनित्यां वसतिं वसेत् ग्रामान्ते देवगृहे शून्यागारे वृक्षमूले वा मनसा ज्ञानमधीयमानः ॥ ८ ॥ अरण्यनित्यो न ग्राम्यपशूनां संदर्शने विहरेत् ॥ ९ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ १० ॥

अरण्यनित्यस्यजितेन्द्रियस्य सर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्त्तकस्य ।
अध्यात्मचिन्तागतमानसस्य ध्रुवाह्यनावृत्तिरुपेक्षकस्येति ११

अव्यक्तलिङ्गो व्यक्ताचारः, अनुन्मत्त उन्मत्तवेषः॥१२॥
अथाप्युदाहरन्ति ॥ १३॥

नशब्दशास्त्राभिरतस्यमोक्षो नचापिलोकग्रहणेरतस्य ।
नभोजनाच्छादनतत्परस्य नचापिरम्यावसथप्रियस्य ॥१४
नचोत्पातनिमित्ताभ्यां ननक्षत्राङ्गविद्यया ।

रीर को ढांपे । गौओं के खाने से बची घास शरीर में लपेटे । स्थण्डिल भूमि भागपर सोवे । किसी एक स्थान में अधिक दिनों तक न बसे, गांव के समीप में, देवस्थान (शिवालय आदि) में, किसी शून्य घर में, अथवा वृक्षों के नीचे इनमें से किसी अनुकूल निर्विघ्न स्थान में मन से तत्त्वज्ञान का स्मरण वा पाठ करता हुआ बसे ॥ ८ ॥ नित्य ही एकान्त वन आदि में रहे । गांव के पशुओं के देखने में सम्पन्न भ्रमण न करे ॥ ९ ॥ इस पर श्लोक का प्रमाण कहते हैं ॥ १० ॥ सब इन्द्रियों को उनर के विषय भुगाने द्वारा प्रसन्न करने से निवृत्त हुए जितेन्द्रिय हो के नित्य एकान्त में बसनेवाले, अध्यात्म चिन्ता में जिस का मन लगा हो ऐसे उपेक्षावृत्तिवाले संन्यासी को मोक्ष से पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ११ ॥ महात्मा पन के चिन्ह प्रकट न करे पर शुद्ध आचार प्रकट रक्खे, ऊपरी वेष से उन्मत्त जान पड़े, अर्थात् उन्मत्तों कासा वेष रक्खे और भीतरी विचारों में उन्मत्त न रहे ॥ १२ ॥ इस पर श्लोकों का प्रमाण कहते हैं ॥ १३ ॥ व्याकरण के पढ़ने पढ़ाने, वाद विवाद में, तथा संसारी मनुष्यों को प्रसन्न रखने में, अच्छे भोजन वस्त्रों की प्राप्ति में, अच्छे घर में निवास करने में, तत्पर संन्यासी का मोक्ष नहीं हो सकता है ॥ १४ ॥ उत्पात (होने वाली भयंकर घटना) बताने, काम सिद्ध होने के निमित्त बताने, ज्योतिष

नानुशासनवादाभ्यां भिक्षांलिप्सेतकर्हिचित् ॥ १५ ॥
अलाभेनविषादीस्याल्लाभंचैवनहर्षयेत् ।
प्राणयात्रिकमात्रःस्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥१६॥
नकुट्यांनोदकेसङ्गो नचैलेनत्रिपुष्करे ।
नाऽऽगारेनासनेनाऽन्ने यस्यवैमोक्षवित्तमः । इति ॥१७॥

ब्राह्मणकुले वा यल्लभेत तद्भुञ्जीत, सायंप्रातर्मधुमांसपरिवर्जम् ॥ १८ ॥ यतीन्साधून्वा गृहस्थान्सायंप्रातश्चलपयेत् ॥ १९ ॥ ग्रामे वा वसेत् ॥ २० ॥ अजिह्मोऽशरणाऽसङ्कुसुको नचेन्द्रियसंयोगं कुर्वीत केनचित ॥ २१ ॥ उपेक्षकः सर्वभूतानां हिंसानुग्रहपरिहारेण ॥ २२ ॥ पैशुन्यमत्सराभिमानाहंकाराश्रद्धानार्जवात्मस्तवपरगर्हादम्भलोभमोहक्रोधाऽसू-

---

विद्या, वा ब्रह्म विद्या, धर्मादि का उपदेश और वाद विवाद करने द्वारा संन्यासी उत्तम भिक्षादि मिलने की इच्छा कदापि न करे ॥ १५ ॥ भिक्षादि न मिलने पर दुःख न माने और भिक्षादि के लाभ का हर्ष भी न करे प्राणों के निर्वाहमात्र के लिये कुछ थोड़ा सा अन्न जैसा मिले खालिया करे । इतना तथा ऐसा ही भोजनादि मिले ऐसा विचार न रक्खे ॥ १६ ॥ ॥ उत्तम कुटी, जलाशय, वस्त्र, स्वर्ग, उत्तम स्थान (बगीची आदि) उत्तम आसन इत्यादि किसी में भी जो आसक्त नहीं वह यति ठीकर मोक्ष पथ को जाननेवाला है ॥१७॥ अथवा ब्राह्मण के घर से मद्य मांस का अंश छोड़के अन्य जो मिलजाय वही सायंप्रातः होकर खा लेवे ॥ १८ ॥ साधु यतियों और अच्छे गृहस्थों को सायं प्रातःकाल अपनी मङ्गलमूर्ति के दर्शन देके शुभकरे ॥ १९ ॥ अथवा ग्राम में वसे ॥ २० ॥ कुटिलता न करे, चित्त वा शरीर की चंचलता त्यागे, किसी का सहारा न लेवे और किसी विषयके साथ इन्द्रियों का संग न करे ॥२१॥ किसी को दुःख देने वा अनुग्रह की चेष्टा न करता हुआ सब प्राणियों से उदासीन भाव रक्खे ॥२२॥चुगली मत्सरता,अभिमान, अहंकार, अश्रद्धा अविश्वास, कठोरता निर्दयता, आत्मश्लाघा (अपनी प्रशंसा) परनिन्दा, दम्भ, लोभ, मोह, क्रोध, अन्य के शुभ गुणों में भी दोषारोप करना रूप असूया, इन चुगली आदि का सर्वथा

यावितर्जनं सर्वाश्रमिणां धर्म इष्टः ॥ २३ ॥ यज्ञोपवीत्युदककमण्डलुहस्तः शुचिर्ब्राह्मणो वृषलान्नवर्जी न हीयते ब्रह्मलोकाद्ब्रह्मलोकादिति ॥ २४ ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

षडर्घा भवन्ति, ऋत्विग् विवाह्यो राजा पितृव्यमातुलस्नातकाश्च ॥ १ ॥ वैश्वदेवस्य सिद्धस्य सायंप्रातर्गृह्याग्नौ जुहुयात् ॥ २ ॥ गृहदेवताभ्यो बलिं हरेत् ॥ ३ ॥ श्रोत्रियायाऽऽगताय भागं दत्त्वा ब्रह्मचारिणे वाऽनन्तरं पितृभ्यो दद्यात् ॥ ४ ॥ ततोऽतिथिं भोजयेत्, श्रेयांसं श्रेयांसमानुपूर्व्येण स्वगृह्याणां कुमारबालवृद्धतरुणप्रभृतींस्ततोऽपरान्गृह्यान् ॥ ५ ॥

परित्याग करना चारो आश्रम वाले ब्राह्मणादि का परम कर्त्तव्य है ॥ २३ ॥ यज्ञोपवीत धारण किये, जल सहित कमण्डलु हाथ में लिये, शूद्रादि नीचों का अन्न न खाने वाला शुद्ध ब्राह्मण ब्रह्मलोक को प्राप्त होके वहां से च्युत नहीं होता है ॥ २४ ॥

यह वसिष्ठ प्रोक्त धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में दशवां
अध्याय पूरा हुआ ॥ १०

ऋत्विज, विवाह के समय वर, राजा, चाचा, मामा, और ब्रह्मचर्य को समाप्त करने वाला स्नातक ये छः पुरुष मधुपर्क विधि से पूजा करने योग्य होते हैं ॥ १ ॥ विश्वेदेवों के निमित्त पकाये नैत्यिक भोजन में से सायंप्रातः काल अपने गृह्यसूत्रोक्त मन्त्रों से गृह्याग्नि में देवयज्ञ नामक होम करे ॥ २ ॥ तदनन्तर गृहाभिमानी पूर्वदिशादि के इन्द्रादि देवताओं के लिये बलि नाम ग्रास धरना रूप भूतयज्ञ करे ॥ ३ ॥ आये हुए वेदपाठी ब्राह्मण को वा भिक्षार्थ आये ब्रह्मचारी को भाग देकर पश्चात पितरों को बलि देवे वा इसी अवसर में पितरों को जल देना रूप तर्पण करे (इस तर्पण में देवयज्ञ ऋषियज्ञ और पितृयज्ञ तीनों के अंग संमिलित जानो) ॥ ४ ॥ तदनन्तर अतिथि को भोजन करावे। उन में भी जो २ विशेष मान्य हों उन २ को पहिले २ क्रमशः भोजन कराके अपने घर के कुमार बालक, वृद्ध, और तरुण आदि को क्रम से जिमावे। तदनन्तर घरके अन्य लोगों को जिमावे ॥ ५ ॥ कुत्ता, चाण्डाल, पतित और

श्वचाण्डालपतितवायसेभ्यो भूमौ निर्वपेत् ॥६॥ शूद्रायोच्छिष्टमनुच्छिष्टं वा दद्यात् ॥७॥ शेषं दम्पती भुञ्जीयाताम् ॥८॥ सर्वोपयोगेन पुनःपाकः ॥९॥ यदि निरुप्ते वैश्वदेवेऽतिथिरागच्छेद्विशेषेणास्मा अन्नं कारयेत् ॥१०॥ विज्ञायते हि ॥ ११ ॥ वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहम् । तस्मादपआनयन्त्यन्नं वर्षाभ्यस्तां हि शान्तिं जना विदुरिति ॥१२॥ तं भोजयित्वोपासीताऽऽसीमान्तमनुव्रजेत्, आऽनुज्ञानाऽद्वा ॥ १३॥ अपरपक्ष ऊर्ध्वं चतुर्थ्याः पितृभ्यो दद्यात्पूर्वेद्युर्ब्राह्मणान्सन्निपात्य यतीन् गृहस्थान् साधून् वा परिणतवयसोऽविकर्मस्थाञ् श्रोत्रियानशिष्यानन्तेवासिनः शिष्यानपि गुणवतो भोजयेत् ॥१४॥ विलग्नशुक्लवलीबानधश्यावदन्तकुष्ठिकुनखिवर्जम् ॥१५॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ १६ ॥

काक श्वन के नाम से भूमि पर एक २ ग्रास धरे ॥६॥ शूद्रको उच्छिष्ट वा जो उच्छिष्ट नहो वैसा भोजन यथेच्छ देवे ॥७॥ शेष बचे अन्नको स्त्री पुरुष खावें ॥८॥ यदि सभी भोजन अन्यों को देने में ही चुक जावे तो फिर से अपने लिये पकावे ॥ ९ ॥ यदि वैश्वदेव करलेने पर अतिथि आजावे तो विशेष कर उन के लिये भोजन करावे ॥ १० ॥ श्रुति से जाना जाता है कि ॥११॥ "अतिथि ब्राह्मण वैश्वानर के रूप से गृहस्थ के घर पर आता है। उन के सत्कारार्थ जल और अन्न गृहस्थ लोग उपस्थित करते हैं। एक वर्ष अभ्यास की अतिथि सेवा परम शान्ति सुख देने वाली होती ऐसा विद्वान् लोग जानते मानते हैं" ॥ १२ ॥ उस अतिथि को भोजन कराके समीप बैठे। जब अतिथि चले तो गांव की सीमातक पीछे २ चले अथवा जहां से लौटने की आज्ञा करे वहां से लौट आवे ॥ १३ ॥ कृष्ण पक्ष में चतुर्थी तिथि के पश्चात् पितरों का श्राद्ध करे। श्राद्ध से पहिले दिन यति, गृहस्थ, साधु शुभकर्मी, शिष्यों से भिन्न समीपवर्त्ती वा वृद्ध ब्राह्मणों को अथवा गुणी विद्वान् शिष्यों को भी निमन्त्रित करके श्राद्धकाल में भोजन करावे ॥ १४ ॥ विषयी, श्वेतकुष्ठी, नपुंसक, अन्धे, काले दांतों वाले, कुष्ठी और जिन के नख विगड़े हों ऐसों को श्राद्ध में भोजन न करावे ॥ १५ ॥ इस पर श्लोक भी प्रमाण में कहते हैं कि

अथचेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैःपङ्क्तिदूषणैः ।
अदूष्यन्तंयमःप्राह पङ्क्तिपावनएवसः ॥ १७ ॥
श्राद्धेनोद्वासनीयानि उच्छिष्टान्यादिनक्षयात्
श्च्योतन्तेहिसुधाधारास्ताःपिबन्त्यकृतोदकाः ॥ १८ ॥
उच्छिष्टंनप्रमृज्यात्तु यावन्नास्तमितोरविः ।
क्षीरधारास्ततोयान्ति,अक्षय्याः पङ्क्तिभागिनः ॥१९॥
प्राक्संस्कारप्रमीतानां स्ववंश्यानामितिश्रुतिः ।
भागधेयंमनुःप्राह उच्छिष्टोच्छेषणेउभे ॥ २०॥
उच्छेषणंभूमिगतं विकिरंल्लेपसोदकम् ।
अन्नंप्रेतेषुविसृजेदप्रजानामनायुषाम् ॥ २१ ॥
उभयोःशाखयोर्मुक्तं पितृभ्योऽन्नंनिवेदितम् ।
तदन्तरंप्रतीक्षन्ते ह्यसुरादुष्टचेतसः ॥ २२ ॥
तस्मादशून्यहस्तेन कुर्यादन्नमुपागतम् ।

॥१६॥ यदि वेदवेत्ता ब्राह्मण अङ्गहीन होना आदि पङ्क्ति में दूषित शरीर वाला भी हो तो भी महर्षि यमने उसको निर्दोष पङ्क्तिपावन ही कहा है ॥१७॥ श्राद्ध में भोजन कराये ब्राह्मणों की जूठन को सूर्यास्त होने समय तक न उठावे। क्योंकि अमृत की धारा झरती हैं उनको वे पितर पीते हैं जिन ने जल दान नहीं किया ॥ १८ ॥ जब तक सूर्य अस्त नहीं तब तक उच्छिष्ट को उठाके स्थान की शुद्धि न करे क्योंकि उस से अक्षय दूध की धारा पङ्क्तिभागी पितरों को प्राप्त होती हैं ॥ १९ ॥ पिण्ड बनाये अन्नका शेष लेप और ब्राह्मणों के भोजन का उच्छिष्ट ये दोनों-उपनयन संस्कार होने से पहिले मरे अपने वंशवालों के भाग मनुजी ने कहे हैं ॥२०॥ पात्र में लिया वा भूमि पर गिरा उच्छेषणभाग को निर्वंश होकर कम आयु में मरों के अन्नको जल सहित प्रेतों के निमित्त छोड़े ॥ २१ ॥ दोनों ओर की अंगुलियों से छोड़े पितरों को निवेदन किये अन्न के पात्र में पहुंचने से पहिले दुष्ट विचार वाले असुर लोग बीच में मारखाने की प्रतीक्षा करते हैं ॥ २२ ॥ तिस से कुश हाथ में ले कर कुशों के सहारे से अन्न का निवेदन करे। अथवा भोजन का स्पर्श करके दोनों प्रकार के शेष

भोजनंवासमालभ्य तिष्ठेतोच्छेषणेउभे ॥ २३ ॥
द्वौदैवेपितृकृत्येत्रीनेकैकमुभयत्रवा ।
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि नप्रसज्येतविस्तरे ॥ २४ ॥
सत्क्रियांदेशकालौच शौचंब्राह्मणसम्पदः ।
पञ्चैतान्विस्तरोहन्ति तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥ २५ ॥
अपिवाभोजयेदेकं ब्राह्मणंवेदपारगम् ।
श्रुतशीलोपसंपन्नं सर्वालक्षणवर्जितम् ॥ २६ ॥
यद्येकंभोजयेच्छ्राद्धे दैवंतत्रकथंभवेत् ।
अन्नंपात्रेसमुद्धृत्य सर्वस्यप्रकृतस्यतु ॥ २७ ॥
देवतायतनेकृत्वा ततःश्राद्धंप्रवर्त्तयेत् ।
प्रास्येदग्नौतदन्नंतु दद्याद्वाब्रह्मचारिणे ॥ २८ ॥
यावदुष्णंभवत्यन्नं यावदश्नन्तिवाग्यताः ।
तावद्धिपितरोऽश्नन्ति यावन्नोक्ताहविर्गुणाः ॥२९॥

भागों की यथास्थान रक्षा करे ॥२३॥ विश्वेदेव सम्बन्धी दो और तीन पितृ ब्राह्मणों को वा दोनों में एक २ ब्राह्मण को भोजन करावे। धनाढ्य हो तो भी अधिक विस्तृत पांति को भोजन कराने को तत्पर न हो ॥२४॥ क्योंकि सत्कार, देश, काल, शुद्धि और सुपात्र ब्राह्मणों का मिलना इन पांचों को बहुतों का भोजन कराना नष्ट करता है जिस से श्राद्ध में बड़ी पांति करने की चेष्टा न करे ॥२५॥ अथवा वेद पारंगत, शास्त्राभ्यासी, सौम्य स्वभाव युक्त, सब कुलक्षणों से रहित, धर्म कर्म निष्ठ एक ही ब्राह्मण को श्राद्ध में भोजन करावे ॥ २६ ॥ यदि एक ही ब्राह्मण को श्राद्ध में जिमावे तो वही एक विश्वेदेवों और पितरों दोनों के लिये कैसे होगा ? । इसका समाधान यह है कि पकाये हुए सब अन्न में से विश्वेदेवों के निमित्त एक पात्र में अन्न परोस कर ॥ २७ ॥ किसी देवस्थान मन्दिरादि में सुरक्षित रख कर श्राद्ध करे पश्चात् उस विश्वेदेवों के भोजन को अग्नि में होम करदे वा किसी ब्रह्मचारी को देदेवे ॥ २८ ॥ जब तक भोजन गर्म रहता और जबतक निमन्त्रित ब्राह्मण मौन हो कर भोजन करते हैं तथा जबतक भोज्य पदार्थों के गुण वर्णन नहीं कहेगये तभी तक ब्राह्मणों के साथ पितर लोग भोजन करते हैं ॥२९॥

हविर्गुणानवक्तव्याः पितरोयावदतर्पिताः ।
पितृभिस्तर्पितैःपश्चाद् वक्तव्यंशोभनंहविः ॥ ३० ॥
नियुक्तस्तुयदाश्राद्धे दैवेमांसंसमुत्सृजेत् ।
यावन्तिपशुरोमाणि तावन्नरकमृच्छति ॥ ३१ ॥
त्रीणिश्राद्धेपवित्राणि दौहित्रःकुतपस्तिलाः ।
त्रीणिचात्रप्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥ ३२ ॥
दिवसस्याष्टमेभागे मन्दीभवतिभास्करः ।
सकालःकुतपोनाम पितॄणांदत्तमक्षयम् ॥ ३३ ॥
श्राद्धंदत्त्वाचभुक्त्वाच मैथुनंयोऽधिगच्छति ।
भवन्तिपितरस्तस्य तन्मासंरेतसोभुजः ॥ ३४ ॥
यस्ततोजायतेगर्भो दत्त्वाभुक्त्वाचपैतृकम् ।
नसविद्यांसमाप्नोति क्षीणायुश्चैवजायते ॥ ३५ ॥

जबतक पितृगण तृप्त नहीं तबतक हविष्य भोज्य पदार्थों के गुण वर्णन न करे। पितरों के तृप्त होजाने पश्चात् कहे कि हविष्यान्न बहुत उत्तम बना है ॥ ३० ॥ जब श्राद्धमें निमन्त्रण स्वीकार करके यजमान के यहां किसी कारण मांस बनाया परोसा जाय और उस को त्याग देवे तो पशु के शरीर में जितने रोम होते उतने वर्षों तक नरक में बसता है ॥ ३१ ॥ श्राद्ध में तीन वस्तु विशेष पवित्र होते हैं एक दौहित्र (पुत्री का पुत्र) द्वितीय कुतप (दिन का आठवां भाग) और तिल। तथा शुद्धि, क्रोधका त्याग और शीघ्रता न करना ये तीनों ठीक २ करे तो प्रशंसा के योग्य श्राद्ध होगा ॥ ३२ ॥ दिन के आठवें भाग में चार घड़ी दिन शेष रहे सूर्य का तेज मन्द हो जाता है उस चार घड़ी काल को कुतप कहते हैं उस काल में पितरों के निमित्त श्राद्ध करने से अक्षय फल होता है ॥ ३३ ॥ श्राद्ध जिमाने वाला तथा जीमने वाला इन में से जो कोई श्राद्ध की समाप्ति में उसी दिन मैथुन करता है उस के पितर उस एक महीने तक वीर्य को खाने वाले होते हैं ॥ ३४ ॥ श्राद्ध में भोजन करने कराने वालों के उसी दिन किये मैथुन से जो सन्तान होता है वह विद्या को समाप्त नहीं कर पाता और थोड़ी आयु में नष्ट हो जाता है ॥ ३५ ॥

पिजापितामहश्चैव तथैवप्रपितामहः ।
उपासतेसुतंजातं शकुन्ताइवपिप्पलम् ॥ ३६ ॥
मधुमांसैश्चशाकैश्च पयसापायसेनवा ।
एषनोदास्यतिश्राद्धं वर्षासुचमघासुच ॥ ३७ ॥
संतानवर्द्धनंपुत्र मुद्यतंपितृकर्मणि ।
देवब्राह्मणसंपन्नमभिनन्दन्तिपूर्वजाः ॥ ३८ ॥
नन्दन्तिपितरस्तस्य सुवृष्टैरिवकर्षकाः ।
यद्गयास्थोददात्यन्नं पितरस्तेनपुत्रिणः ॥ ३९ ॥
श्रावण्याग्रहायण्योश्चान्वष्टक्यां च पितृभ्यो दद्याद् द्रव्यदेशब्राह्मणसन्निधाने वा,न कालनियमः ॥४०॥ अवश्यं च

पिता पितामह और प्रपितामह ये तीनों उत्पन्न हुए पुत्र के शरीर पर रहते हुए ऐसे ही वाट देखतेहैं कि जैसे पीपल आदि वृक्षों पर रहते हुए पक्षी लगने वाले फलों की आशा रखतेहैं ॥३६॥ कि सहत, मांस, शाक, दूध, खीर, वा खोया से यह सन्तान हमारे लिये पिण्ड देगा श्राद्ध करेगा। और विशेषकर वर्षा ऋतु के मघा नक्षत्र में दिया श्राद्ध विशेष सन्तोष जनक होताहै ॥ ३७ ॥ देवता और ब्राह्मण से युक्त, पितरों के श्राद्धकर्म में उद्यत अपने कुल की सन्तति बढ़ाने वाले पुत्र को उनके पूर्वज लोग धन्यवाद देते हैं कि तू कुलतारक कुलदीपक [illegible]न को तारनेवाला है ॥ ३८ ॥ जैसे अच्छी वर्षा होने से किसान लोग प्रसन्न [illegible] होते वैसे उस सुपुत्र के पितर लोग आनन्द मानते हैं। जो गया क्षेत्र [illegible]कर पितृश्राद्ध करता है पितर लोग उससे अपने को पुत्रवाला मानते [illegible] ॥ ३९ ॥ श्रावण तथा मार्ग शीर्ष महिने की पौर्णमासी, माघ कृष्ण पक्ष की [illegible] अन्वष्टका में पितरों का श्राद्ध करे। अथवा जब कभी श्राद्ध के यो- [illegible] शास्त्रोक्त उत्तम स्थान और सुपात्र ब्राह्मण प्राप्त हों तभी श्राद्ध करे काल [illegible] नियम होने पर भी साधनों की ठीकर प्राप्ति ही उत्तम कक्षा के श्राद्ध का [illegible] इस कारण काल नियम से साधन संचय बलवान् है। ४० ॥ ग्राम्य या [illegible] अग्नियों का विधिपूर्वक स्थापन अवश्यमेव करे । दर्शेष्टि, पौर्ण- [illegible], आग्रयण (नवान्नेष्टि) वैश्वदेवपर्व–वरुणप्रघासपर्व–साकमेधपर्व–

ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत, दर्शपर्णमासाग्रयणेष्टिचातुर्मास्यपशुसोमैश्च यजेत नैयमिकं ह्येतदृणसंस्तुतं च ॥ ४१ ॥ विज्ञायते हि त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् ब्राह्मणो जायते । इति ॥ ४२ ॥ यज्ञेन देवेभ्यः, प्रजया पितृभ्यः, ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्य इत्येष वाऽनृणो यज्वा यः पुत्री ब्रह्मचर्यवानिति ॥ ४३ ॥ गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयीत, गर्भैकादशेषु राजन्यं, गर्भद्वादशेषु वैश्यम् ॥४४॥ पालाशो बैल्वो वा दण्डो ब्राह्मणस्य, नैयग्रोधः क्षत्रियस्य वा, औदुम्बरो वा वैश्यस्य ॥४५॥ केशसंमितो ब्राह्मणस्य, ललाटसंमितः क्षत्रियस्य, घ्राणसंमितो वैश्यस्य ॥४६॥ मौञ्जी रशना ब्राह्मणस्य, धनुर्ज्या क्षत्रियस्य, शणतान्तवी वैश्यस्य ॥ ४७ ॥ कृष्णाजिनमुत्तरीयं ब्राह्मणस्य, रौरवं क्षत्रि-

---

शुनासीरीयपर्व ये चारों चातुर्मास्य, निरूढपशुयाग, और सोमयाग (अग्निष्टोम) इतने यज्ञ नियम से करे क्योंकि इन सबका करना ऋण चुकाने की प्रशंसा में परिगणित है ॥ ४१ ॥ श्रुति में लिखा है कि "द्विजत्व के संस्कार को प्राप्त हुआ ब्राह्मण तीन प्रकार के ऋणों से ऋणी होजाता है,, ॥ ४२ ॥ यज्ञों के द्वारा देवों का, पुत्रोत्पत्ति द्वारा पितरों का, और ब्रह्मचर्याश्रम के नियम धर्म पालन द्वारा पितरों का ऋण चुकावे, यज्ञों का करनेवाला, पुत्रोंवाला और ब्रह्मचर्याश्रम युक्त होने पर तीनों ऋणों से मुक्त हुआ मोक्ष का पूर्णाधिकारी होजाता है ॥४३ ॥ गर्भ से आठवें वर्ष ब्राह्मण का, गर्भ से ग्यारहवें वर्ष क्षत्रिय का, और गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य के बालक का उपनयन संस्कार करे ॥ ४४ ॥ पलाश (ढांक) का वा बिल्व का दण्ड ब्राह्मण ब्रह्मचारी का, (वट बरगद) का क्षत्रिय ब्रह्मचारी का और गूलर का दण्ड वैश्य ब्रह्मचारी का होवे ॥ ४५ ॥ चोटी की बराबर ऊंचा ब्राह्मण का, मस्तक तक क्षत्रिय का और नासिका के मूल तक वैश्य ब्रह्मचारी का दण्ड रखना चाहिये ॥ ४६ ॥ मूंज की मेखला (करधनी) ब्राह्मण की, धनुर्ज्या क्षत्रिय की और शण की मेखला वैश्य ब्रह्मचारी के लिये होवे ॥४७॥ काला (कर्षायल) मृगचर्म ब्राह्मण को, रुरु (रोज) मृग का क्षत्रिय को और बैल वा बकरे का चर्म वैश्य ब्रह्मचारी को दुपट्टा के स्थान

यस्य,गव्यं बस्ताजिनं वा वैश्यस्य ॥ ४८ ॥ शुक्लमहतं वासो ब्राह्मणस्य,माञ्जिष्ठं क्षत्रियस्य,हारिद्रं कौशेयं वैश्यस्य,सर्वेषां वा तान्तवमरक्तम् ॥ ४९ ॥ भवत्पूर्वां ब्राह्मणो भिक्षां याचेत,भवन्मध्यां राजन्यो,भवदन्त्यां वैश्यः ॥ ५० ॥ आषोडशाद्ब्राह्मणस्य नातीतः कालः ॥ ५१ ॥ आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य ॥५२॥ आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य ॥५३॥ अतऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ॥ ५४ ॥ नैनानुपनयेन्नाध्यापयेन्न याजयेन्नैभिर्विवाहयेयुः ॥ ५५ ॥ पतितसावित्रीक उद्दालकव्रतं चरेत् ॥५६॥ द्वौ मासौ यावकेन वर्तयेत्,मासं पयसा,अर्धमासमामिक्षयाऽष्टरात्रं घृतेन, षड्रात्रमयाचितेन, त्रिरात्रमब्भक्षो

में ओढ़ने को देवे ॥४८॥ जो किसी थान में से फाड़ा न हो किन्तु कोरा सहित विना हुआ सफेद वस्त्र ब्राह्मण का, मजीठ से रंगा लाल वस्त्र क्षत्रिय का और हल्दी से रंगा पीला रेशमी वस्त्र वैश्य ब्रह्मचारी का हो अथवा तीनों ब्रह्मचारियों को बिना रंगे कपास के वस्त्र दिये जावें ॥ ४९ ॥ ब्राह्मण ब्रह्मचारी (भवति!भिक्षांदेहि) क्षत्रिय (भिक्षांभवति! देहि) और वैश्य ब्रह्मचारी (भिक्षां देहि भवति !) ऐसा वाक्य बोल कर अपनी २ माता से प्रथम भिक्षा मांगे ॥ ५० ॥ सोलह वर्ष के आयु तक ब्राह्मण के उपनयन संस्कार का काल अतीत नहीं होता ॥५१॥ बाईस वर्षतक क्षत्रिय के संस्कार का काल है ॥५२॥ और चौबीस वर्ष तक वैश्य के संस्कार का समय है ॥ ५३ ॥ इस से उपरान्त तीनों ही अपने २ सावित्री गुरुमन्त्र से पतित हो जाते हैं ॥ ५४ ॥ तब उन पतित हुए ब्राह्मणादि का न यज्ञोपवीत संस्कार करावे, न वेद पढ़ावे, न यज्ञ करावे और न उन के साथ कन्या का विवाह करे ॥ ५५ ॥ वह पतित सावित्रीक ब्राह्मणादि पुरुष निम्न रीति से उद्दालक व्रत करे ॥५६॥ प्रथम दो महिने तक जौ का यावक खाता हुआ एकान्त में रहे। एक मास तक दूध से रहे पन्द्रह दिन तक आमिक्षा (गर्म दूधमें दही डालने से फटा दूध) से, आठ दिन घी के घी से, छः दिन तक विन मांगे जो मिले उस से, तीनदिन तक जलमात्र पीकर और एक दिनरात निर्जल उपवास करे । इसप्रकार चार महीने तथा

ऽहोरात्रमपुवसेत् ॥ ५७ ॥ अश्वमेधावभृथं वा गच्छेत् ॥५८॥ व्रात्यस्तोमेन वा यजेद्वायजेत् ॥ ५९ ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथातः स्नातकव्रतानि ॥१॥ स न किंचिद्याचेतान्यत्र राजान्तेवासिभ्यः ॥२॥ क्षुधा परीतस्तु किंचिदेव याचेत कृतमकृतं वा, क्षेत्रं गामजाविकमन्ततो हिरण्यं धान्यमन्नं वा, न तु स्नातकः क्षुधाऽवसीदेदित्युपदेशः ॥३॥ न मलिनवाससा सह संवसेत, न रजस्वलया, नायोग्यया, नकुलं कुलंस्यात् ॥४॥ वत्सतन्त्रीं विततान्नातिक्रामेत् ॥५॥ नोद्यन्तमादित्यं पश्येत् ॥ ६ ॥ नास्तमयन्तम् ॥ ७ ॥ नाप्सु मूत्रपुरीषे कुर्यात् ॥ ८ ॥ न निष्ठीवेत् ॥ ९ ॥ परिवेष्टितशिरा भूमिमयज्ञियैस्तृणैरन्तर्धाय मूत्र-

---

तीन दिन (१२३ दिन) एकान्त में भजन पूजन करता हुआ व्रत करे ॥५७॥ अथवा अश्वमेध यज्ञ के अवभृथ स्नान के समय ब्राह्मणों की आज्ञा से सब के साथ स्नान करके शुद्ध होता है ॥ ५८ ॥ अथवा व्रात्यस्तोम यज्ञ करे ॥ ५९ ॥ यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में ग्यारहवां अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

अब ब्रह्मचर्य व्रत को समाप्त कर गृहस्थ होने वाले स्नातक के लिये नियम कहते हैं ॥१॥ वह स्नातक राजा और अपने शिष्यों से भिन्न अन्य किसी से कुछ न मांगे ॥२॥ यदि क्षुधा से पीड़ित हो तो पकाया वा कच्चा थोड़ा अन्न मांगलेवे । अन्त में यदि कुछ न मिले तो खेत–गौ–बकरी–भेड़, सुवर्ण धान्य अन्न इत्यादि जो मिले मांग लेवे किन्तु भूखों मरता हुआ दुःख न भोगे यही उस के लिये शास्त्र का उपदेश है ॥ ३ ॥ मलिन वस्त्रोंवाली, रजस्वला और बाल्यावस्था की अयोग्य स्त्री के साथ सहवास (संग) न करे । नकुल को कुल ऐसा व्यवहार करे ॥ ४ ॥ विस्तृत फैली हुई बछड़े की रस्सी को लांघकर न निकले ॥ ५ ॥ उदय होते हुए सूर्य को न देखे ॥ ६ ॥ अस्त होते समय भी सूर्य को न देखे ॥ ७ ॥ जल में मल मूत्र का त्याग न करे ॥ ८ ॥ जल में न थूके ॥ ९ ॥ शिर पर अंगोछा लपेट कर यज्ञ में काम न आनेवाले सूखे तृणों को

पुरीषे कुर्यात् ॥ १० ॥ उदङ्मुखश्चाहनि नक्तं दक्षिणामुखः सन्ध्यामासीतोत्तरामुदाहरन्ति ॥ ११ ॥

स्नातकानांतुनित्यंस्यादन्तर्वासस्तथोत्तरम् ।
यज्ञोपवीतेद्वेयष्टिः सोदकश्चकमण्डलुः ॥ १२ ॥
अप्सुपाणौचकाष्ठेच कथितःपावकःशुचिः ।
तस्मादुदकपाणिभ्यां परिमृज्यात्कमण्डलुम् ॥ १३ ॥
पर्यग्निकरणंह्येतन्मनुराहप्रजापतिः ।
कृत्वाचावश्यकर्माणि आचामेच्छौचवित्तमः ।इति ॥१४॥

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत ॥१५॥ तूष्णीं साङ्गुष्ठं कृत्स्नग्रासं ग्रसेत् ॥ १६ ॥ न च मुखशब्दं कुर्यात् ॥ १७ ॥ ऋतुकालाभिगामी स्यात् पर्ववर्जं स्वदारेषु ॥१८॥ अतिर्यगुपेयात्॥१९॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ २० ॥

भूमि पर बिछाकर उन पर मल मूत्र का त्याग करे ॥ १० ॥ दिन में उत्तर को और रात्रि में दक्षिण को मुख करके मल मूत्र त्याग करे। सन्ध्याओं के समय भी उत्तर को मुख कर मलमूत्र त्याग ऐसा ऋषि लोग कहते हैं ॥११॥ स्नातक पुरुषों के एक भीतरी और दूसरा ऊपरी वस्त्र नित्य (प्रत्येक समय) साथ रहे। दो यज्ञोपवीत धारण करे,एक बांस की छड़ी और जल सहित एक कमण्डलु भी साथ रक्खे ॥१२॥ जल में, हाथ में, और काष्ठ में पवित्र अग्नि व्याप्त कहा है तिस से जल सहित हाथों से कमण्डलु को शुद्ध करे ॥ १३ ॥ प्रजापति मनु जीने इस कृत्य को पर्यग्निकरण कर्म कहा है। अवश्य कर्त्तव्य कर्मों को करने बाद शौच धर्म का तत्त्व जानने वाला ब्राह्मण आचमन कियाकरे ॥१४॥ पूर्व को मुख करके भोजन किया करे ॥ १५ ॥ मौन होके भोजन करे। अङ्गुष्ठ सहित पूरा ग्रास मुख में दिया करे ॥ १६ ॥ भोजन करते समय मुख से (चप चप आदि) शब्द न करे ॥ १७ ॥ अमावास्या अष्टमी पौर्णमासी चतुर्दशी इन पर्वतिथियों को छोड़ के ऋतु काल में अपनी विवाहिता पत्नी से संग करे ॥ १८ ॥ तिर्छा होकर संग न करे किन्तु सीधा बैठ के करे ॥ १९ ॥ यहां श्लोक भी प्रमाण में कहते हैं कि ॥२०॥ जो पुरुष अपनी विवा-

यस्तुपाणिगृहीताया आस्येकुर्वीतमैथुनम् ।
भवन्तिपितरस्तस्य तन्मासंरेतसोभुजः ॥ २१ ॥
यास्यादनित्यचारेण रतिःसाऽधर्मसंश्रिता ॥ २२ ॥

अपि च काठके विज्ञायते ॥२३॥ अपि नः श्वोविजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयीरन्निति स्त्रीणामिन्द्रदत्तो वर इति ॥२४॥ न वृक्षमारोहेत् ॥२५॥ न कूपमवरोहेत् ॥२६॥ नाग्निं मुखेनोपधमेत् ॥२७॥ नाग्निं ब्राह्मणं चान्तरेण व्यपेयात् ॥२८॥ नाग्न्योर्न ब्राह्मणयोरननुज्ञाप्य वा भार्य्यया सह नाश्नीयादवीर्य्यवदपत्यं भवतीति वाजसनेयके विज्ञायते ॥ २९ ॥ नेन्द्रधनुर्नाम्ना निर्दिशेत् ॥ ३० ॥ मणिधनुरिति ब्रूयात् ॥ ३१ ॥ पालाशमासनं पादुके दन्तधावनमिति वर्जयेत् ॥ ३२ ॥ नोत्सङ्गे भक्षयेन्न सन्ध्यायां भुञ्जीत ॥३३॥ वैणवं दण्डं धारयेद्रुक्म-

---

हित पत्नी के मुख में मैथुन करे उस के पितर उस एक महिने तक उस का वीर्य खाने वाले होते हैं ॥ २१ ॥ जो उपस्थेन्द्रिय से भिन्न अन्य मार्ग में रति करे वह अधर्म सम्बन्धी कर्म है ॥ २२ ॥ और भी वेद की कठ शाखा में लिखी श्रुति से जाना जाता है कि ॥ २३ ॥ कल बालक पैदा होगा और आज एक दिन पहिले स्त्रियां पतियों के साथ शयन करें यह स्त्रियों को इन्द्रदेवता ने वरदान दिया है ॥ २४ ॥ स्नातक गृहस्थ वृक्ष पर न चढ़े ॥ २५ ॥ कूप में न घुसे ॥ २६ अग्नि को मुख से न फूंके ॥ २७ ॥ अग्नि और ब्राह्मण को छूके वा अनादर करके कोई काम न करे ॥२८॥ स्वीकार कराये बिना अग्नियों और ब्राह्मणों के मध्य में पत्नी के साथ भोजन न करे । ऐसा करने से निर्बल पराक्रम हीन सन्तान होता है यह वाजसनेय श्रुति से जाना जाता है ॥ २९ ॥ इन्द्रधनुः ऐसा नाम लेकर किसी को न दिखावे ॥ ३० ॥ किन्तु उस को 'मणिधनुः' ऐसा कहे ॥ ३१ ॥ ढाक का लकड़ी का पट्टा चौकी, खड़ाऊं, और दातौन न बनावे ॥ ३२ ॥ गोदी में अन्न को धर के वा मातादि की गोदी में बैठकर तथा सन्ध्या के समय भोजन न करे ॥ ३३ ॥ बांस की छड़ी और सु-

कुण्डले च ॥३४॥ न बहिर्मालां धारयेदन्यत्र रुक्ममय्याः ३५ सभा समवायांश्च वर्जयेत् ॥ ३६ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥३७॥

अप्रामाण्यंचवेदानामार्षाणांचैवकुत्सनम् ।
अव्यवस्थाचसर्वत्र एतन्नाशनमात्मनः । इति ॥ ३८ ॥

नावृतो यज्ञं गच्छेत् ॥ ३९॥ यदि व्रजेत्प्रदक्षिणं पुनरा-व्रजेत् ॥४०॥ अधिवृक्षसूर्यमध्वानं न प्रतिपद्येत ॥४१॥ नावं च सांशयिकीं नाधिरोहेत् ॥४२॥ बाहुभ्यां न नदीं तरेत् ॥४३॥ उत्थायापररात्रमधीत्य न पुनः प्रतिसंविशेत् ॥४४॥ प्राजापत्ये मुहूर्त्ते ब्राह्मणः कांश्चिन्नियमाननुत्तिष्ठेदनुतिष्ठेदिति ॥४५॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथातः स्वाध्यायोपाकर्म्म श्रावण्यां पौर्णमास्यां प्रौष्ठ-पद्यां वाऽग्निमुपसमाधाय कृताधानो जुहोति देवेभ्य ऋषिभ्य-

---

वर्णो के कुण्डल नित्य धारण करे ॥ ३४ ॥ सुवर्ण को छोड़कर अन्य पुष्पादि की माला बाहर केशादि में न धारण करे किन्तु कण्ठ में भले ही धारण करे ॥ ३५॥ मनुष्यों की सभादि भीड़ में न जावे ॥३६ ॥ यहां श्लोक का भी प्रमाण कहते हैं कि ॥ ३७ ॥ वेदों का प्रमाण न मानना, ऋषि प्रोक्त धर्मशास्त्रादि की निन्दा करना, किसी बात पर स्थिर न रहना ये आत्मा नाम अपने नाश के लक्षण हैं ॥३८॥ वरण किये विना किसी के यज्ञ में न जावे ॥३९॥ यदि जावे तो प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करिके लौट आवे ॥ ४० ॥ वृक्ष पर चढ़ के सूर्य को न देखे और सूर्य के सामने मार्ग में न चले ॥ ४१ ॥ डूबने वा टूटने के सन्देह वाली नौका पर न चढ़े ॥ ४२ ॥ भुजाओं के द्वारा तर के नदी के पार न जावे वा नदी को न तरे ॥ ४३ ॥ आधी रात के पश्चात् उठ कर वेदादि का पाठ करके फिर न सोवे ॥ ४४ ॥ ब्राह्ममुहूर्त्त अर्थात् चार घड़ी रात रहे से ब्राह्मण किन्हीं शौच स्नान सन्ध्योपासनादि नियमों का अनुष्ठान अवश्य करे यह न बने तो किसी प्रकार प्रातःस्मरणादि ही करे ॥ ४५ ॥

यह वासिष्ठ धर्म शास्त्र के भाषानुवाद में बारहवां अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

अब वेदाध्ययन के उपाकर्म का विचार दिखाते हैं। श्रावण वा भादों की पौर्णमासी को जिस ने अग्नियोंका विधि पूर्वक आधान किया हो वह पुरुष अपने सामने अग्नि को स्थापन करके आघारादि सामान्य विधि

श्छन्दोभ्यश्चेति ॥ १ ॥ ब्राह्मणान्स्वस्तिवाच्य दधि प्राश्य ततोऽध्यायानुपाकुर्वीरन् ॥ २ ॥ अर्धपञ्चममासानर्द्ध-षष्ठान्वाऽतऊर्ध्वं शुक्लपक्षेष्वधीयीत कामं तु वेदाङ्गानि ॥३॥ तस्यानध्यायाः ॥ ४ ॥ संध्यास्तमिते सन्ध्यास्वन्तःशवदिवा-कीर्त्येषु नगरेषु कामं गोमयपर्युषिते परिलिखिते वा श्मशानान्ते शयानस्य श्राद्धिकस्य ॥ ५ ॥ मानवं चात्र श्लोक-मुदाहरन्ति ॥ ६ ॥

फलान्यापस्तिलान्भक्ष्यान्यच्चान्यच्छ्राद्धिकंभवेत् ।

प्रतिगृह्याप्यनध्यायः पाण्यास्याब्राह्मणाःस्मृताः॥इति॥७॥

धातवः पूतिगन्धप्रभृतावीरिणे, वृक्षमारूढस्य नावि सेनायां च भुक्त्वा चाऽऽर्द्रपाणेर्वाणशब्दे चतुर्दश्याममावास्या-

---

पूर्वक देवों ऋषियों और छन्दों के नाम से प्रधान आहुति करे ॥ १ ॥ ब्राह्मणों का स्वस्ति वाचन करा और दधि प्राशन करके अध्यायों का उपाकरण (प्रारम्भ) करें ॥२॥ साढ़े चार वा साढ़ेपांच महिने निरन्तर वेदाध्ययन करके पश्चात् उत्सर्ग करके शुक्ल पक्षों में वेदों को और वेदाङ्गों को शुक्लकृष्ण दोनों पक्षों में यथेच्छ पढ़ा करे ॥३॥ उस वेद के अनध्याय ये निम्न लिखित हैं ॥४॥ सायं प्रातः काल में सूर्यनारायण के अस्त होते वा उदय होते समय, गांव वा मुहल्ले में मुर्दा के विद्यमान होते, चाण्डालादि के समीप, और नगरों के भीतर वेद को न पढ़े। पहिले दिन का गोबर पड़ा होने, वा सब ओर खोदी भूमि पर रुचि हो तो पढ़े। श्मशान में वा श्मशान के समीप वेद को न पढ़े। लेटा हुआ, श्राद्ध करने बाद वा श्राद्ध में भोजन करके भी न पढ़े ॥५॥ यहां मनु जी का श्लोक प्रमाण में कहते हैं कि ॥६॥ फलों, जल, तिलों तथा भक्ष्य पदार्थों का और श्राद्ध सम्बन्धी वस्तु का दान लेकर वेद को न पढ़े क्योंकि हाथ ही जिनका मुख है ऐसे ब्राह्मण माने गये हैं ॥ ७ ॥ शरीर के धातु रुधिरादि के निकलने पर अथवा वात पित्त कफ के कोप में, दुर्गन्धादि से घृणित स्थान में, ऊषर भूमि में, वृक्ष पर चढ़के, नौका में बैठा हुआ, भोजन करके, गीले हाथ होने पर, बाण का शब्द होने पर, चतुर्दशी, अमावस्या, अष्टमी, अष्टका, गांठों को आसन पर लगा के,

यामष्टम्यामष्टकासु प्रसारितपादोपस्थंकृतस्योपाश्रितस्य च गुरुसमीपे मैथुनव्यपेतायां वाससा मैथुनव्यपेतेनानिर्णिक्तेन ग्रामान्ते छर्दितस्य मूत्रितस्योच्चारितस्य ऋगयजुषां च सामशब्दे वाऽजीर्णे निर्घाते भूमिचलने चन्द्रसूर्योपरागे दिङ्नादपर्वतनादकम्पपातेषूपलरुधिरपांशुवर्षेष्वाकालिकम् ॥ ८ ॥ उल्काविद्युत्समासे त्रिरात्रम् ॥ ९ ॥ उल्काविद्युत्स ज्योतिषम् ॥ १०॥ अपर्त्तावाकालिकमाचार्ये प्रेते त्रिरात्रमाचार्यपुत्रशिष्यभार्यास्वहोरात्रम् ॥११॥ ऋत्विग्योनिसंबन्धेषु च गुरोः पादोपसंग्रहणं कार्यम् ॥ १२ ॥ ऋत्विक्श्वशुरपितृव्यमातुलाननवरवयसः प्रत्युत्थायाभिवदेत् ॥ १३ ॥ येचैव

किसी की गोदी में बैठकर, गुरु जनों के समीप में, मैथुन किये आसन वा शय्या पर, वा मैथुन कर चुकी स्त्री के निकट, मैथुन करने समय के वस्त्र पहन के, ग्राम के समीप, वमन करने पर, मल मूत्र त्याग के बाद शुद्धि किये बिना, वेद को न पढे । सामवेद की उच्च ध्वनि होने पर ऋग्वेद यजुर्वेद को न पढे। आकाश में शब्द होने पर, भूमि के चलने पर, चन्द्रग्रहण वा सूर्यग्रहण के समय, दिशाओं में वा पर्वत में गूंजने का शब्द हो वा पर्वत कांपे, वा पर्वत का कुछ भाग गिरे ,पत्थर, रुधिर, तथा धूलि बर्षने पर इन सब हालतों में एक दिन रात वेद का अनध्याय रक्खे ॥ ८ ॥ उल्कापात और विजली का गिरना साथर हो तो तीन दिन वेद न पढ़े ॥ ९ ॥ और उल्कापात वा बिजली का प्रबल भयंकर शब्द होने पर उसी दिन वा रात भर का अनध्याय करे ॥ १० ॥ उल्कापात वा विजली का शब्द वर्षा से भिन्न ऋतु में होतो एक दिन रात (उपद्रव के समय से अगले दिन उसी समय तक) अनध्याय करे । गुरु का स्वर्ग वास होने पर तीन दिन तथा गुरु के पुत्र शिष्य और गुरुपत्नी के मरने पर एक दिन रात वेद न पढ़े ॥ ११ ॥ ऋत्विज् तथा माता श्वशुरादि के मरने पर भी एक दिन रात का अनध्याय करे । ऋत्विज् वा श्वशुरादि में भी जो गुरु हो अर्थात जिस के पास वेदादि पढ़ा हो तो उस के पगों को छूना चाहिये ॥ १२ ॥ ऋत्विज, श्वशुर, चाचा, मामा, ये सब अपने से अधिक आयु के हों तो इन को आता देख के खड़ा हो जाय और अभिवादन करे ॥१३॥ जिन के

पादग्राह्यास्तेषां भार्या गुरोश्च मातापितरौ यो विद्यादभिवन्दितुमहमयंभोइति ब्रूयाद्यश्च न विद्यात् प्रत्यभिवादमामन्त्रिते स्वरोऽन्त्यः प्लवते सन्ध्यक्षरमप्रगृह्यमायावभावं चाऽऽपद्यते यथा भो भाविति ॥ १४ ॥ पतितः पिता त्याज्यो माता तु पुत्रे न पतति ॥ १५ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ १६ ॥

उपाध्यायाद्दशाऽऽचार्य आचार्याणांशतंपिता ।
पितुर्दशशतंमाता गौरवेणातिरिच्यते ॥ १७ ॥
भार्याःपुत्राश्चशिष्याश्च संसृष्टाःपापकर्मभिः ।
परिभाष्यपरित्याज्याः पतितोयोऽन्यथात्यजेत् ॥१८॥
ऋत्विगाचार्यावयाजकानध्यापकौ हेयावन्यत्र हाना-

पग छूने उचित हैं उन की स्त्रियों को भी अभिवादन करे और गुरु के माता पिता को भी अभिवादन करे। जो (वैयाकरण होने से) अभिवादन करना जानता हो वह (अभिवादये देव शर्माऽहंभोः) ऐसा कहे । और जो पुरुष अभिवादन के प्रत्युत्तर (जिस के सम्बोधन में अन्त्य स्वर प्लुत होना और प्रगृह्य संज्ञा न होने पर एकार ओकारादि सन्ध्यक्षर को आय् आव् आदेश होना है जैसे भो इति । भाविति) को नहीं जानता उस मान्य को भी शास्त्र विधि से अभिवादन न करे किन्तु लोक भाषा में बोलकर पाद स्पर्श कर लेवे ॥ १४ ॥ पतित हुए पिता को पुत्र त्याग देवे परन्तु पुत्र के लिये माता पतित नहीं होती अर्थात् पतित हुई माता को भी भोजन वस्त्रादि देके पुत्र रक्षा वा सेवा करता रहे ॥१५॥ यहां श्लोक का भी प्रमाण कहते हैं कि॥१६॥ अध्यापक वा उपाध्याय से दश गुणी मान प्रतिष्ठा आचार्य की, आचार्य से सौ गुणा मान्य पिता का और पिता से हजार गुणा मान्य माता का करना चाहिये और इस से भी जितना अधिक गौरव माता का करे सो सब उचित ही जानो ॥ १७ ॥ स्त्री पुत्र और शिष्य लोग यदि विशेष कर पाप कर्मों से युक्त हों तो उन से कहदे (नोटिस दे देवे) कि तुम लोग अब आगे ऐसा मत करो तथा पिछले किये का प्रायश्चित्त करलो ऐसा सुना देने पर भी न मानें तो उन को त्याग देवे । बिना सुनाये त्यागे तो त्यागने वाला भी पतित हो जाता है ॥ १८ ॥ ऋत्विज् यज्ञ न करासके वा किसी कारण से न

त्पतति ॥ १९ ॥ पतितोत्पन्नः पतितो भवतीत्याहुरन्यत्र स्त्रियाः ॥ २० ॥ सा हि परगामिनी तामरिक्थामुपेयात् ॥ २१ ॥

गुरोर्गुरौसन्निहिते गुरुवद्वृत्तिरिष्यते ।

गुरुवद्गुरुपुत्रस्य वर्तितव्यमितिश्रुतिः ॥ २२ ॥

शस्त्रं विषं सुरा चाप्रतिग्राह्याणि ब्राह्मणस्य ॥२३॥ विद्या वित्तं वयः संबन्धः कर्म च मान्यम् ॥२४॥ पूर्वः पूर्वो गरीयान् स्थविरबालातुरभारिकस्त्रीचक्रिवतां पन्थाः समागमे परस्मै देयः ॥ २५ ॥ राजस्नातकयोः समागमे राज्ञा स्नातकाय देयः ॥ २६ ॥ सर्वैरेव च वध्वा उह्यमानायै ॥ २७ ॥ तृणभूम्यग्न्युदकवाक्सूनृतानसूयाः सतां गृहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन कदाचनेति ॥ २८ ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

करावे तथा जो आचार्य वेद को न पढ़ावे उन दोनों को त्याग देना चाहिये। न त्यागे तो पतित हो जाता है ॥ १९ ॥ पतित से उत्पन्न हुआ भी पुत्री को छोड़ कर पतित होता है ऐसा ऋषि लोग कहते मानते हैं ॥ २० ॥ वह स्त्री पतित को प्राप्त हुई इस से उसके साथ के वस्त्राभूषणादि धन को त्याग के केवल कन्या को स्वीकार करे ॥ २१ ॥ गुरु के गुरु भी समीपस्थ हों तो उन के साथ गुरु कासा वर्त्ताव करे और गुरुपुत्र के साथ भी गुरु के तुल्य वर्त्ताव करे ॥ २२ ॥ शस्त्र, विष और मद्य इन को ब्राह्मण दान में न लेवे ॥ २३ ॥ विद्या, कर्म, अवस्था, कुटुम्ब, और धन ये पांच मान्य के स्थान हैं ॥ २४ ॥ इन में पर २ की अपेक्षा पूर्व २ का अधिक मान्य करे। वृद्ध, बालक, रोगी, बोझावाला, स्त्री और गाड़ीवाला इन का समागम होने पर पिछले २ के लिये रास्ता देना चाहिये ॥ २५ ॥ राजा और स्नातक के समागम में राजा स्नातक के लिये मार्ग छोड़े ॥ २६ ॥ तत्काल विवाह हो कर आई वहू के लिये सभी तृणादि मार्ग छोड़ें ॥ २७॥ कुशासन वा चटाई, भूमि, अग्नि, जल, कोमल वाणी, निन्दा का त्याग, सत्पुरुषों के घर में इन आसनादि मिलने का कदापि अभाव नहीं होता अर्थात् जिनके घर पर आये हुये का आसनादि मिलने द्वारा अवश्य सत्कार हो, वे ही सत्पुरुष हैं ॥ २८ ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में तेरहवां अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

अथातो भोज्याभोज्यं च वर्णयिष्यामः ॥१॥ चिकित्सक-मृगयुपुंश्चलीदण्डिकस्तेनाभिशस्तषण्डपतितानामन्नमभोज्यम् ॥ २ ॥ कदर्यदीक्षितबद्धातुरसोमविक्रयितक्षकरजकशौण्डिकसूचकवार्द्धुषिकचर्मावकृत्तानां शूद्रस्य चास्त्रभृतश्चोपपतेर्यश्चोपपतिं मन्यते, यश्च गृहान्दहेत् यश्च वधार्हं नापहन्यात्, को भक्ष्यत इति ॥ ३ ॥ वाचाभिघुष्टं गणान्नं गणिकान्नं चेति ॥४॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ५ ॥

नाश्नन्ति श्ववतोदेवा नाश्नन्तिवृषलीपतेः।
भार्याजितस्यनाश्नन्ति यस्यचोपपतिर्गृहे । इति ॥ ६ ॥

एधोदकयवसकुशलाजाभ्युद्यतयानावसथसफरीप्रियङ्गुस्रगान्धमधुमांसानीत्येतेषां प्रतिगृह्णीयात् ॥ ७ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ८ ॥

अब हम चौदहवें अध्याय में भक्ष्याभक्ष्य का विचार दिखाते हैं ॥१॥ वैद्य, व्याधा, व्यभिचारिणी स्त्री, लाठी आदिसे पशु हत्या करने वाला, चोर, निन्दित, नपुंसक और पतित इन सबका अन्न अभक्ष्य है ॥ २ ॥ कंजूस, दीक्षित, कैदी, रोगी, सोम बेंचने वाला, बढ़ई, धोबी, मद्य बनाने बेंचने वाला कलवार, चुगल, व्याज लेनेवाला-सूदखोर, शूद्र, शस्त्रधारी, जो अन्य जीवित पुरुष की पत्नी से संग करता हो, जो अपनी स्त्रीके जार को मानता (स्वीकार करता) हो, जो घरों में आग लगावे, और जो बध करने योग्य को न मारडाले, इन का अन्न कोई न खावे ॥ ३ ॥ वाणी से निन्दित, चन्दा का, और वेश्या का अन्न भी अभक्ष्य है ॥४॥ और भी श्लोक का प्रमाण कहते हैं कि ॥५॥ कुत्ता पालने वाले, वेश्यागामी, स्त्री की आज्ञा में चलने वाले, अर्थात् जिनको स्त्री ने जीत लिया हो और जिस की स्त्री का दूसरा पति जार पुरुष हो इन सब के होमादि को देवता लोग ग्रहण नहीं करते ॥ ६ ॥ ईंधन, जल, भूसा, कुश, धान वा खीलें, नये बने हुए-सवारी, घर, मछली, कंगुनी, माला, चावल, शहद, और मांस इन पदार्थों को वैद्यादि निन्दितों सेभी लेलेवे ॥७॥ इस विषय में श्लोकका भी प्रमाण कहते हैं कि ॥८॥ माता पितादि मान्य और स्त्री पुत्रादि दुःखित हों तो उन के निर्वाहार्थ और देवता तथा अतिथियों के

गुरून्भृत्यांश्चोज्जिजहीर्षन्नर्चिष्यन्देवतातिथीन् ।
सर्वतःप्रतिगृह्णीयान्नतुतृप्येत्स्वयंततः । इति ॥ ९ ॥

न मृगयोरिषुचारिणः परिवर्ज्यमन्नम् ॥ १०॥ विज्ञायते ह्यगस्त्यो वर्षसाहस्रिके सत्रे मृगयां चकार, तस्याऽऽसंस्तु रसमयाः पुरोडाशा मृगपक्षिणां प्रशस्तानाम् ॥११ ॥अपि ह्यत्र प्राजापत्यान्श्लोकानुदाहरन्ति ॥ १२ ॥

उद्यतामाहृतांभिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम् ।
भोज्यांप्रजापतिर्मेने अपिदुष्कृतकारिणः ॥ १३ ॥
श्रद्दधानैर्नभोक्तव्यं चोरस्यापिविशेषतः ।
नत्वेवबहुयाज्यस्य यश्चोपनयतेबहून् ॥ १४॥
नतस्यपितरोऽश्नन्ति दशवर्षाणिपञ्चच ।
नचहव्यंवहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥ १५ ॥
चिकित्सकस्यमृगयोः शल्यहस्तस्यपापिनः ।

पूजन के लिये सब किसी से अन्न को ग्रहण करले परन्तु उसको स्वयं न खावे तो दोष नहीं लगता है ॥९॥ धनुष बाण लेकर विचरने वाले व्याधा का अन्न वर्जित नहीं ॥ १० ॥ क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि अगस्त्य ऋषि ने हजार वर्ष के सत्र यज्ञ में प्रशस्त मृगों और पक्षियों की शिकार की, उस के रस रूप पुरोडाश बनाये गये । (यह किन्हीं का मत है । अगस्त्य महर्षि ने तपो बल के प्रभाव से दोष को नष्ट किया इस से साधारण व्याध के अन्न में कुछ दोष रहेगा । इस कारण दशवां सत्र एक देशी कल जानो)॥ ११ ॥ इस भक्ष्या भक्ष्य विषय में प्रजापति के कहे श्लोक कहते हैं कि॥ १२॥ दाता ने पहिले से न कहा हो कि अमुक वस्तु तुम को मैं दूंगा और अकस्मात् विना मांगें लाकर सामने धर दे तो ऐसी भिक्षा दुष्कर्मी पुरुषकी भी भोजन वा ग्रहण करने योग्य है ॥ १३ ॥ धर्म में श्रद्धा रखने वाले ब्राह्मणों को चोरों का, एक साथ बहुतों को यज्ञ कराने तथा एक साथ बहुतों का उपनयन कराने वाले का अन्न नहीं खाना चाहिये ॥ १४ ॥ जो पुरुष उस अकस्मात् आयी पूर्वोक्त भिक्षा का तिरस्कार करता है उस के श्राद्ध को पितर लोग १५ पन्द्रह वर्ष तक स्वीकार नहीं करते और उस के हविष्यांश को अग्नि देवता ओं में नहीं पहुंचाता ॥ १५ ॥ वैद्य, व्याधा, भाला व शूल हाथ लिये पापी

षण्डस्यकुलटायाश्च उद्यतापिनगृह्यतइति ॥ १६ ॥
उच्छिष्टमगुरोरभोज्यं,स्वमुच्छिष्टोपहतं च ॥ १७ ॥ यद्-
शनं केशकीटोपहतं च॥१८॥कामंतु केशकीटानुद्धृत्याद्भिः
प्रोक्ष्यभस्मनाऽवकीर्य वाचा प्रशस्तमुपभुञ्जीत ॥१९॥ अपिह्य-
त्र प्राजापत्यान् श्लोकानुदाहरन्ति ॥ २० ॥

त्रीणिदेवाःपवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ।
अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्चवाचाप्रशस्यते ॥ २१ ॥
देवद्रोण्यांविवाहेषु यज्ञेषुप्रकृतेषुच ।
काकैःश्वभिश्चसंस्पृष्टमन्नंतन्नविसर्जयेत् ॥ २२ ॥
तस्मादन्नमुद्धृत्य शेषंसंस्कारमर्हति ।
द्रवाणांप्लावनेनैव घनानांप्रोक्षणेनतु ।

हत्यारा, हिजड़ा, और व्यभिचारिणी स्त्री इन की अकस्मात् आयी भिक्षा को भी ग्रहण न करे ॥ १६ ॥ गुरु से भिन्न का उच्छिष्ट, अपना उच्छिष्ट और जिस में उच्छिष्ट का मेल हो गया हो ऐसा अन्न अभक्ष्य है ॥ १७ ॥ जिस भोजन में बाल वा कीड़ा पड़ गये हों वह भी अभक्ष्य है ॥ १८ ॥ जिस में वालादि पड़-गये उस में से बालों और कीड़ों को निकाल कर जल सेचन कर भस्म विखेर के वाणी से मन्त्रों (पितुंनुस्तोषं०) द्वारा प्रशस्तुति किये अन्न को भले ही खावे तब दोष नहीं लगता है ॥ १९ ॥ और भी प्रजापति के कहे श्लोकों का उदाहरण देते हैं कि ॥२०॥ देवता लोगों ने ब्राह्मणों के लिये तीन प्रकार के पदार्थ पवित्र कहे हैं–एक जिस में विना देखी जाती कोई अशुद्धि हो,द्वितीय मन्त्र पूत जल से वा धोने आदि द्वारा जो पवित्र किया गया हो और तीसरा वाणी से जिस की प्रशंसा की गयी हो ॥ २१ ॥ देव द्रोणी अर्थात् दश सेर आदि के भोजन से जहां देव पूजा की जाय, विवाहों में तथा अन्य यज्ञों में बहुत से पकाये अन्न के ढेर में कौवा वा कुत्ता मुख लगा देवें तो उस अन्न का त्याग न करे ॥ २२ ॥ किन्तु उस में से उच्छिष्टांश अन्न को निकाल कर शेष अन्न की शुद्धि कर लेवे । यदि पतले कढ़ी आदि हों तो हिलोरने से, कड़े रोटी पूरी आदि की कुशों द्वारा मार्जन से शुद्धि होती है । और बिल्ली का

मार्जारमुखसंस्पृष्टं शुचिरेवहितद्भवेत् ॥ २३ ॥
अन्नं पर्युषितं भावदुष्टं सकृल्लेखं पुनःसिद्धमाममांसं पक्वं च कामं तु दध्ना घृतेनाभिघारितमुपयुञ्जीत ॥ २४ ॥ अपिह्यत्र प्राजापत्यान् श्लोकानुदाहरन्ति ॥ २५ ॥

हस्तदत्तास्तुयेस्नेहा लवणव्यञ्जनानिच ।
दातारंनोपतिष्ठन्ति भोक्ताभुङ्क्तेचकिल्विषम् ॥ २६ ॥
प्रदद्यान्नतुहस्तेन नाऽऽयासेनकदाचन, इति ॥ २७ ॥

लशुनपलाण्डुकवकगृञ्जनश्लेष्मातवृक्षनिर्यासलोहितव्रश्चनश्वकाकावलीढशूद्रोच्छिष्टभोजनेषु कृच्छ्रातिकृच्छ्रइतरेऽप्यन्यत्र मधुमांसफलविकर्षेष्वग्राम्यपशुविषयः ॥२८॥ संधिनीक्षीरमवत्साक्षीरं गोमहिष्यजानामनिर्दशाहानामन्तर्नाव्यु-

---

मुख भोज्यान्न में लग गया होतो वह अन्न शुद्ध ही है ॥ २३ ॥ बासी पहिले दिन का धरा हुआ, जिस में ग्लानि वा शंका हो गयी हो, एक वार किसी जान वरने पंजा मार दिया हो, फिर से पकाया, कच्चा मांस, वा पकाया मांस ये सब अभक्ष्य हैं। परन्तु बासे धरे हुये अन्नादि को दही वा घी से संस्कार करके भले ही खालेवे ॥ २४ ॥ और भी यहां प्रजापति के श्लोक उदाहरण में कहते हैं कि॥२५॥ घी आदि स्नेह, लवण और दही आदि व्यञ्जन ये सब हाथ पर दिये जांय तो देने वाले को दुर्लभ हो जाते और इन को खाने वाला पाप को खाता है अर्थात् भोजन करते हुये को लवण घृतादि हाथ पर नहीं देने चाहिये किन्तु पात्र वा पत्तल पर धर देवे ॥२६॥ और देने वाला भी उक्त पदार्थों को हाथ से न देवे और लोभ में आकर कष्ट मानताहुआ भी कदापि दान न देवे॥२७॥ लहसन, प्याज, कठफून, गाजर, शलगम, लसोड़ा, (लभेड़ा) वृक्षों का गोंद, लाल गोंद, वृक्षों के गोदने से निकला रस वा दूध, कुत्ते कौवे का चाटा हुआ अन्नादि, और शूद्र का उच्छिष्ट इन सब को खालेने पर कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत करे तथा शहत मांस और जिन से फलों की हानि हो ऐसे वृक्षों के फूल वा कली आदि को छोड़ के अन्य अभक्ष्यों में भी यही कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत जानो और वह मांस ग्राम के पशुओं से भिन्न जंगल का जानो ॥ २८ ॥ गाभिन गौ का, जिस का बच्चा मर गया हो, तथा गौ भैंस बकरी का ब्याने पर दश दिन के भीतर का दूध, नौका का जल, ये सब अभक्ष्य हैं। पुआ,

दकमपूपधानाकरम्भसक्तुवटकतैलपायसशाकानि शुक्तानि वर्जयेत्, अन्यांश्च क्षीरयवपिष्टविकारान् ॥ २९ ॥ श्वाविच्छल्लकशशकच्छपगोधाः पञ्चनखानां भक्ष्याः ॥३०॥ अनुष्ट्राः पशूनामन्यतोदतश्च मत्स्यानां वा चेटगवयशिशुमारनक्रकुलीरा विकृतरूपाः ॥ ३१ ॥ सर्पशीर्षाश्च ॥ ३२ ॥ गौरगवयशरभाश्चानुद्दिष्टाः ॥ ३३ ॥ तथा धेन्वनडुहौ मेध्यौ वाजसनेयके विज्ञायेते ॥ ३४ ॥ खगडे तु विवदन्त्यग्राम्यशूकरे च ॥ ३५ ॥ शकुनानां च विघुविविष्किरजालपादाः ॥ ३६ ॥ कलविङ्कप्लवहंसचक्रवाकभासवायसपारावतकुक्कुटसारङ्गपाण्डुकपोतक्रौञ्चक्रकरगृध्रश्येनबकबलाकमद्गुटिट्टिभमान्धातृनक्तं

भुंजे पकाये जौ, दही में मिले सत्तू, केवल सत्तू, तेल के बड़े, पायस–खीर, और पकाये शाक ये सब धरे रहने से खटाय जाने पर अभक्ष्य हैं। तथा दूध, जौ और पिट्ठी के अन्य विकार भी खटाये हुए अभक्ष्य हैं ॥ २९ ॥ पांच नख वाले जीवों में श्वावित्, शल्लक, (दो प्रकार की सेही उन के अवान्तर भेद में दो अवान्तर जाति हैं) शश, कच्छप, और गोधा (गोह) ये पांच भक्ष्य हैं (यह परिसंख्या विधि राग से सर्वत्र प्राप्त मांस भक्षण के अन्यों में परिवर्जनार्थ है। अर्थात् हिंसाजनक होने से सभी मांस भक्षण त्याज्य है यदि सब का त्याग जो कोई न कर सके तो पांच पञ्चनख वालों में प्रवृत्ति रहने से कम दोष लगेगा अर्थात् निर्दोष फिर भी न होगा) ॥ ३० ॥ ऊंट को छोड़ के एक ओर दांतों वाले, चेट, गवय, शिशुमार, नाका, कुलीर इन नामों वाले विकृत भयंकर रूप धारी, ॥ ३१ ॥ सांप के जैसे शिर वाले ये चेट आदि नामक जल जन्तु परिसंख्या विधि से भक्ष्य हैं ॥३२॥ गौर मृग, गवय (नीलगाव) और शरभ नामक जङ्गल के जीव भक्ष्यों में उद्दिष्ट नहीं हैं ॥ ३३ ॥ गौ बैल मेध्य नाम मेधा के अनुकूल हैं ऐसा वाजसनेय श्रुति से जाना जाता है ॥३४॥ गैंडा और वन के सुअर के भक्ष्य होने न होने में विवाद करते हैं ॥ ३५ ॥ पक्षियों में विघुवि, विष्किर, जालपाद् नामक पक्षी भी अभक्ष्य हैं ॥ ३६ ॥ कलविङ्क, प्लव, हंस, चकवाक, भास, कौवा, परेवा, मुर्गा, सारङ्ग, श्वेतकबूतर, क्रौञ्च, क्रकर, गीध, श्येन, बगुला, बलाका, मद्गु, टिटुहिया, मान्धाता, चमगीदर,

चरदार्वाघाटचटकरैलातकहारीतखञ्जरीटग्राम्यकुक्कुटशुकसारिकाकोकिलक्रव्यादा ग्रामचारिणश्चाग्रामचारिणश्चेति ॥ ३७ ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

(शोणितशुक्रसंभवः पुरुषो मातापितृनिमित्तकः)॥ १ ॥ तस्य प्रदानविक्रयत्यागेषु मातापितरौ प्रभवतः ॥ २ ॥ न-त्वेकं पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा ॥ ३ ॥ स हि संतानाय पूर्वेषाम् ॥ ४ ॥ न स्त्री दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वाऽन्यत्रानुज्ञाना-द्भर्तुः ॥ ५ ॥ पुत्रं प्रतिग्रहीष्यन् बन्धूनाहूय राजनि चावेद्य निवेशनस्य मध्ये व्याहृतिभिर्हुत्वा दूरेबान्धवं बन्धुसन्नि-कृष्टमेव प्रतिगृह्णीयात् ॥ ६ ॥ संदेहे चोत्पन्ने दूरेबान्धवं शूद्रमिव स्थापयेत् ॥ ७ ॥ विज्ञायते ह्येकेन बहूंस्त्रायत-

---

कठफोरवा, चिड़िया, रैलातक, हारीत, खञ्जरीट, गांव का मुर्गा, तोता, मैना, कोइल, कच्चा मांस खाने वाले तथा गांव वा वन में रहने वाले ये उक्त सब पक्षी अभक्ष्य हैं ॥ ३७ ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में चौदहवां अध्याय पूरा हुआ ॥१४॥

माता पिता जिस के निमित्त कारण हैं ऐसे रजवीर्य से सन्तान का शरीर बना है ॥ १ ॥ उस सन्तान को किसी के लिये दे देने, बेच देने और त्याग देने का अधिकार माता पिता को है (परन्तु सन्तान का बेचना काम अच्छा नहीं किन्तु निन्दित पाप कर्म है। यह बात प्रसंगानुसार धर्म शास्त्रों में लिखी है) ॥ २ ॥ किसी के एक ही पुत्र होतो उसे पिता किसी को दान करके न देवे और लेने वाला भी न लेवे ॥ ३ ॥ क्योंकि वही आगे पूर्वजों का कुल चलाने वाला होगा ॥ ४ ॥ पति की आज्ञा के विना माता अपने सन्तान का दान किसी को न देवे और किसी के सन्तान का दान भी न लेवे ॥ ५ ॥ दत्रिम वा दत्तक पुत्र को लेना चाहता हुआ पुरुष राजा के दरबार में आवेदन पत्र (दरखास्त) देके, कुटुम्बियों को बुलाकर, घर के बीच कुण्ड में व्याहृतियों से होम करके, उन के कुटुम्बी दूर हों तो कुटुम्बियों के सामने ही उस पुत्र को स्वीकार करे ॥ ६ ॥ जिस के माता पितादि कुटुम्बी दूर देश में हों ऐसे पुत्र को ले लेने पर उस की शुद्ध उत्पत्ति में सन्देह हो जाय तो उसे शूद्र के तुल्य अपने घर में रक्खे ॥ ७ ॥ श्रुति से आ-

इति ॥८॥ तस्मिंश्चेत् प्रतिगृहीत औरसः पुत्र उत्पद्येत, चतुर्थभागभागी स्याद्दत्तकः ॥९॥ यदि नाभ्युदयिकेषु युक्तः स्याद् वेदविप्लाविनः सव्येन पादेन प्रवृत्ताग्रान् दर्भान् लोहितान् वोपस्तीर्य पूर्णपात्रमस्मै निनयेत् ॥ १० ॥ नेतारं चास्य प्रकीर्णकेशा ज्ञातयोऽन्वालभेरन्नपसव्यं कृत्वा गृहेषु स्वैरमापद्येरन्नत ऊर्ध्वं ते न धर्मयेयुस्तद्धर्माणस्तं धर्मयन्तः ॥११॥ पतितानां तु चरितव्रतानां प्रत्युद्धारः ॥१२॥ अथाप्युदाहरन्ति॥१३॥

अग्रेऽभ्युद्धरतां गच्छेत् क्रीडन्निव हसन्निव ।
पश्चात्पातयतां गच्छेच्छोचन्निव रुदन्निव ॥ १४ ॥

आचार्यमातृपितृहन्तारस्तत्प्रसादाद्वयाद्वा, एषा तेषां

ना जाता है कि एक से बहुतों की रक्षा करे ॥ ८ ॥ उस दत्तक पुत्र के ले लेने पर यदि औरस पुत्र उत्पन्न हो जाय तो दत्तक पुत्र पिता के चतुर्थांश का भागी होगा ॥ ९ ॥ यदि वह दत्तक पुत्र शास्त्रोक्त कर्मों में तत्पर न हो किन्तु अधर्मादि कर्मों में प्रवृत्त हो निषेध करने पर भी न माने उलटा वेदविरोधी वेद को डुबाने वाला हो उस के लिये दक्षिणाग्र फैलाये कुशों वा लोहित तृणों पर एक जल से भरे मट्टी के पात्र को बायें पग से ढरका देवे ॥१०॥ चोटी तथा शिर के बाल खोले बिखेरे हुए अपसव्य करके कुटुम्बी लोग उस जल पात्र ढरकाने वाले का अन्वारम्भ (कुशों द्वारा वा दहिने हाथ से स्पर्श) करें। फिर निरपेक्ष घर को लौट आवें इस के उपरान्त उस के साथ धर्म का व्यवहार रखते वा उस को धर्माचरण कराते हुए कुछ भी आचरण न करें (यह जीवित हो उस को तिलाञ्जलि देने की रीति दिखायी है) ॥ ११ ॥ यदि धर्म से पतित हुए उक्त प्रकार के मनुष्य प्रायश्चित्त कर लें तो उन के साथ ऐसा न करके जाति में मिला लेना चाहिये ॥१२॥ इस पर श्लोक का प्रमाण भी कहते हैं कि॥१३॥ अन्यों का उद्धार वा उपकार करने वालों में क्रीड़ा करता तथा हसता आनन्द मानता हुआ सा सब से आगे चले और किसी को पतित करके नीचे गिराते हुओं में शोक मनाता और रोता हुआ सा सब से पीछे चले ॥ १४ ॥ गुरु, माता, और पिता को जो ताड़ना करें उन का प्रायश्चित्त

प्रत्यापत्तिः ॥ १५॥ पूर्णाब्दात् प्रवृत्ताद्वा काञ्चनं पात्रं माहेयं वा पूरयित्वाऽऽपोहिष्ठेति मन्त्रेणाद्भिरभिषिञ्चति ॥ १६ ॥ सर्वएवाभिषिक्तस्य प्रत्युद्धारः पुत्रजन्मना व्याख्यातो व्याख्यत इति ॥ १७ ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे पञ्चदशोध्यायः ॥ १५ ॥

अथ व्यवहाराः ॥ १॥ राजमन्त्री सदःकार्य्याणि कुर्य्यात् ॥ २ ॥ द्वयोर्विवदमानयोर्न पक्षान्तरं गच्छेत् ॥ ३ ॥ यथासन्नमपराधो ह्यन्ते नापराधः ॥४॥ समः सर्वेषु भूतेषु यथासनमपराधो ह्याद्यवर्णयोर्विद्यान्ततः ॥५॥ संपन्नं च रक्षद्राजबालधनान्यप्राप्तव्यवहाराणां प्राप्तकाले तु तद्दद्यात् ॥६॥

लिखितंसाक्षिणोभुक्तिः प्रमाणंत्रिविधंस्मृतम् ।

गुरु आदि की प्रसन्नता से वा भय से निम्नलिखित जानो ॥ १५ ॥ वर्ष की समाप्ति के दिन से वा नये संवत्सर के आरम्भ से व्रत का आरम्भ करके सुवर्ण के वा मट्टी के पात्र को जल से भर के उस से अपना अभिषेक (आपोहिष्ठा०) मन्त्र पढ़ २ कुशों द्वारा तब तक करे ॥ १६ ॥ कि जब तक उस पात्र का सब जल अभिषेक में चुक जावे इसी से उस के पाप का उद्धार हो जाता है । जिस का व्याख्यान पुत्र जन्म के साथ किया गया जानो ॥ १७ ॥ यह श्रीवासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में पन्द्रहवां अध्याय पूरा हुआ ॥१५॥

अब व्यवहारों की व्यवस्था कहते हैं ॥ १ ॥ राजा का मन्त्री (दीवान) सभा के कार्य करे ॥ २ ॥ विवाद करने वाले मुद्दई मुद्दाले दोनों में से किसी एक के पक्ष की ओर न झुके ॥ ३ ॥ धनादि के लोभ से एक पक्ष में झुकना अपराध है । पक्षपात के त्याग में अपराध नहीं है ॥ ४ ॥ न्याय कर्त्ता सब प्राणियों पर समदृष्टि रक्खे एक का पक्ष करने में पाप लगता है । ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों वर्णों के न्याय में विद्या पुस्तकों द्वारा विचार करे ॥ ५ ॥ छोटे राजाओं के न रहने पर व्यवहार की मर्यादा से अनभिज्ञ (नाबालिग) राजपुत्रों की धन सम्पत्तियों की रक्षा करता हुआ उन के समर्थ (१८ वर्ष के) हो जाने पर उन की सम्पत्ति सौंप देवे ॥ ६ ॥ समक्षमुख का लेख होना, कोई

धनस्वीकरणंपूर्वं धनीधनमवाप्नुयात्,इति ॥ ७ ॥

मार्गक्षेत्रयोर्विसर्गे तथा परिवर्तनेन तरुणगृहेष्वर्थान्तरेषु त्रिपादमात्रम् ॥ ८॥ गृहक्षेत्रविरोधे सामन्तप्रत्ययः॥९॥ सामन्तविरोधे लेख्यप्रत्ययः ॥ १० ॥ प्रत्यभिलेख्यविरोधे ग्रामनगरवृद्धश्रेणिप्रत्ययः ॥ ११ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ १२ ॥

पैतृकंक्रीतमाधेयमन्वाधेयंप्रतिग्रहम् ।
यज्ञादुपगमोवेणिस्तथाधूमशिखाष्टमी,इति ॥१३ ॥

तत्रभुक्तानुभुक्तदशवर्षम् ॥ १४॥अन्यथाऽप्युदाहरन्ति॥१५॥

आधिःसीमाबालधनं निक्षेपोपनिधिःस्त्रियः ।

साक्षी (गवाहों) का होना, और भोग होना, यह तीन प्रकार का प्रमाण विवाद के निर्णय में अपेक्षित है । धन लेने वाला ऋणी प्रथम स्वीकार करे तो धनी को उस का धन दिलाया जावे ॥ ७ ॥ मार्ग तथा खेत के छोड़ने तथा बदलने से नये घरों में अर्थान्तर करलेने पर अर्थात् घर के स्थान में खेत वा खेत की जगह घर हो जाने पर घर वाले को उस का तीन भाग मूल्य मिले ॥ ८ ॥ घर और खेत के विवाद में विरोध होतो सामन्त (नंबरदार) की बात मानी जाय ॥९॥ कई नम्बरदार हों और वे परस्पर विरुद्ध कहें तो लेख जिस का मिले वह माना जाय ॥१०॥ लेख में भी विरोध होतो गांव तथा नगरके वृद्ध लोगों की बात ठीक मानी जाय ॥११॥ इसपर भी श्लोक प्रमाण कहते हैं कि ॥१२॥ जिसके पिताका हो, जिसने खरीदा हो, जिसने स्थापित किया, जिसने जीर्णोद्धार किया, जिसको दान में मिला, यज्ञ की दक्षिणा में जिसको मिला, जिसकी हद्द में हो और कोइलादि चिन्ह मिलें । ये आठ रीति निर्णय करने की हैं कि जिसके पिता का होना आदि सिद्ध हो वह वस्तु उसी का जानो ॥१३॥ अन्यके पदार्थ को भी जिसने दश वर्ष तक भोगा तथा फिर२ भोग किया तब उसी का होजाता है ॥ १४ ॥ इस पर अन्य प्रकार से भी श्लोक प्रमाण कहते हैं कि ॥ १५ ॥ गिर्वी रक्खा वस्तु, सीमा,बालक का धन,गिनाय के दिया वा ताले में बन्द बक्सादि में रक्खा धरोहर, स्त्रियां, (दासी) राजा का धन और वेद पाठी का धन ये सब जिसके यहां वहुत काल भी रहें तो भी अन्य के काम में

राजस्वंश्रोत्रियद्रव्यं नसंभोगेनहीयन्ते ॥ १६ ॥

प्रहीणद्रव्याणि राजगामीनि भवन्ति ॥ १७ ॥ ततोऽन्यथा राजा मन्त्रिभिः सह नागरैश्च कार्य्याणि कुर्य्यात् ॥१८॥ वेधसो वा राजा श्रेयान् गृध्रपरिपारं स्यात् ॥ १९ ॥ गृध्रपरिवारं वा राजा श्रेयान् ॥ २० ॥ गृध्रपरिवारं स्यान्न गृध्रो गृध्रपरिवारं स्यात् परिवाराद्धि दोषाः प्रादुर्भवन्ति स्तेयहारविनाशनं तस्मात् पूर्वमेव परिवारं पृच्छेत् ॥२१॥ अथ साक्षिणः ॥ २२॥ श्रोत्रियोरूपवान् शीलवान् पुण्यवान् सत्यवान् साक्षिणः सर्वेषु सर्वएव वा ॥ २३ ॥

स्त्रीणांसाक्ष्यंस्त्रियःकुर्यु र्द्विजानांसदृशाद्विजाः ।
शुद्राणांसन्तःशूद्राश्च,अन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥ २४ ॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥ २५ ॥

प्रातिभाव्यंवृथादानं साक्षिकंशौरिकंचयत् ।

आने मात्र से ये अन्य के नहीं हो जाते हैं ॥ १६ ॥ जिसका कोई दायभागी न हो ऐसे नष्ट हुए मनुष्य का धन राजा के काम में जाना चाहिये ॥ १७ ॥ जिससे अन्य प्रकार राजा मन्त्रियों और नगर के सभ्य मनुष्यों के साथ राज कार्यों को करे ॥ १८ ॥ अथवा गीध पक्षी के समान परिवारवाला राजा विधाता से भी अच्छा होता है । इससे गृध्रपरिवार हो ॥१९॥ गृध्रपरिवार राजा कल्याणकारी है ॥२०॥ गृध्रपरिवार हो पर लालची न हो उदार प्रकृति रहे । लालची परिवार से ही चोरी लूट और विनाशादि दोष होते हैं इससे पहिले ही सब कामों में भाई बन्धुओं की सलाह सम्मति पूछकर काम करे ॥ २१ ॥ अब साक्षियों के विषय का विचार करते हैं ॥ २२ ॥ वेद पाठी, सुरूपवान्, सुशील, पुण्यात्मा, सत्यवादी, सब वर्णों में से साक्षी किये जावें वा सभी प्रकार के साक्षी हों तो बुरों से अच्छों की परीक्षा होगी ॥ २३ ॥ स्त्रियों की गवाही स्त्रियां ही देवें । तथा द्विजों के साक्षी उन्हीं २ के तुल्य द्विज होवें । शूद्रों के साक्षी अच्छे प्रतिष्ठित शूद्र और अन्त्यजों के गवाह भी अन्त्यज ही होने चाहिये ॥ २४ ॥ और भी श्लोक का प्रमाण कहते हैं कि ॥ २५ ॥ किसी की जामिनी करना, किसी को व्यर्थ देने की प्रतिज्ञा, साक्षी, शूरता सम्बन्धी, दण्ड (जुर्माना)

दण्डशुल्कावशिष्टंच नपुत्रोदातुमर्हति, इति ॥ २६ ॥
ब्रूहिसाक्षिन्यथातत्त्वं लम्बन्तेपितरस्तव ।
तववाक्यमुदीक्षाणाउत्पतन्तिपतन्तिच ॥ २७ ॥
नग्नोमुण्डःकपालीच भिक्षार्थीक्षुत्पिपासितः ।
अन्धःशत्रुकुलेगच्छेद्यःसाक्ष्यमनृतंवदेत् ॥ २८ ॥
पञ्चपश्वनृतेहन्ति दशहन्तिगवानृते ।
शतमश्वानृतेहन्ति सहस्रंपुरुषानृते ॥ २९ ॥
व्यवहारेमृतेदारे प्रायश्चित्तंकुलस्त्रियाः ।
तेषांपूर्वपरिच्छेदाच्छिद्यन्तेऽत्रापवादिभिः ॥ ३० ॥
उद्वाहकालेरतिसंप्रयोगे प्राणात्ययेसर्वधनापहारे ।

और पिछला बाकी कर, इन सब पिताके प्रारम्भ किये कामों का पता के न रहने पर पुत्र उत्तर दाता नहीं है ॥२६॥ साक्षीसे न्यायाधीश वा अदालत की ओर से नियत हुआ वकील ऐसा कहे कि–हे साक्षिन्! जैसा तुम जानते हो वैसा ठीक २ सत्य कहो क्योंकि तुम्हारे वाक्य की प्रतीक्षा करते (बाटदेखते) हुए तुम्हारे पितर लोग बीच में लटक रहे हैं। यदि तुम सत्य बोले तो उस सत्य के प्रभाव से तुम्हारे पितर लोग ऊपर के स्वर्गलोकों में प्राप्त हो जांयगे और यदि मिथ्या बोले तो नीचे नरक में गिराये जावेंगे ॥२७॥ आंखों से अन्धा होके नंगा, मुंडा हुआ, भूख प्यास से पीड़ित, खप्पर हाथ में लेकर भिक्षा मांगता हुआ शत्रु के घर पर जाकर वह पुरुष दीनता दिखाता है कि जो झूठी गवाही देवे ॥ २८ ॥ साक्षी वा मध्यस्थ पुरुष यदि अन्य पशुओं के विषय में मिथ्या कहे तो पांच, गौ के विषय में झूठ कहे तो दश, घोड़ा के विषय में मिथ्या कहे तो सौ १०० और मनुष्य के विषय में मिथ्या साक्षी देवे तो १००० एक सहस्र हत्या का अपराधी होता है ॥ २९ ॥ व्यवहार में, स्त्री के मरने पर और कुलस्त्री का प्रायश्चित्त इन का पूर्व से सम्बन्ध नष्ट किया जाय अर्थात् साथ में न रक्खा जाय तो निन्दक लोग उन सम्बन्धनाशकों का छेदन वा उपहास आक्षेपादि द्वारा करते हैं। अर्थात् व्यवहारादि में पूर्व (असलियत) सत्य के साथ सम्बन्ध तोड़ना बड़ा पाप है ॥ ३० ॥ परन्तु कन्या के विवाह के लिये, मैथुन के विषय में, प्राण जाने के अवसरमें, सब धनका नाश होता

विप्रस्यचार्थेह्यनृतंवदेयुः पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥३१॥
स्वजनस्यार्थेयदिवार्थहेतोः पक्षाश्रयेणैववदन्तिकार्य्यम् ।
तेशब्दवंशस्यकुलस्यपूर्वान् स्वर्गस्थितांस्तानपिपातयन्ति,
अपिपातयन्ति । इति ॥ ३२ ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

ऋणमस्मिन्सन्नयति अमृतत्वंचगच्छति ।
पितापुत्रस्यजातस्य पश्येच्चेज्जीवतोमुखम् ॥ १ ॥

(1) अनन्ताः पुत्रिणां लोका नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति श्रूयते ॥ २ ॥ प्रजाः सन्त्वपुत्रिणइत्यभिशापः ॥ ३ ॥ प्रजाभिरग्नेअमृतत्त्वमश्यामित्यपि निगमो भवति ॥ ४ ॥

पुत्रेणलोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते ।

हो वहां, और गौ ब्राह्मण की रक्षाके लिये इन पांच मौकों पर मनुष्य भले ही जानकर भी मिथ्या बोले क्योंकि ये पांचों मिथ्या भाषण पातकों में ऋषि लोगों ने नहीं कहे हैं ॥३१॥ जो लोग अपने स्त्री पुत्रादि के लिये, वा धनादि के लोभ से अथवा पक्षपात के हठ से किसी काम को मिथ्या कहते हैं वे लोग वेद के अध्ययनादि जन्य पुण्य से स्वर्ग को प्राप्त हुये अपने पूर्वजों को भी स्वर्ग से गिरा देते अर्थात् नरक में पहुंचाते हैं ॥ ३२ ॥
यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में सोलहवां अध्याय पूरा हुआ ॥१६॥

पिता यदि उत्पन्न हुए अपने जीवित पुत्र का मुख देखलेवे तो परंपरा से चले देव ऋषि पितरों के तीन ऋण चुकाने का भार पिता से उतर के पुत्र पर आजाता और पिता मोक्ष का अधिकारी वा मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ पुत्र वालों को अनन्त स्वर्गलोक प्राप्त होते हैं । निर्वंशी के लिये स्वर्ग प्राप्त नहीं होता यह श्रुति में लिखा है ॥२॥ "तेरी सन्तति वा कुल पुत्रहीन हो" यह शाप श्रुति में लिखा है इस से भी सिद्ध है कि सन्तति के विना उस के कुल की अधोगति शाप से हो जाती है ॥ ३ ॥ "हे अग्ने ! मैं प्रजा नाम सन्तानों के द्वारा मोक्षानन्द को भोगूं" यह भी वेद मन्त्र का प्रमाण है इस से भी पुत्रोत्पत्ति से मोक्ष होना सिद्ध है ॥ ४ ॥ पुत्र के उत्पन्न होने से स्वर्गादि लोकों को जीत लेता, पौत्र के उत्पन्न होने से अनन्त सुख भोगता और पुत्र का पौत्र अर्थात् प्रपौत्र (पन्ती) उत्पन्न हो जाने से आदित्य मण्डल

अथपुत्रस्यपौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोतिविष्टपम्, इति ॥ ५ ॥

क्षेत्रिणः पुत्रो जनयितुः पुत्रइति विवदन्ते ॥ ६ ॥ तत्रो-भयथाप्युदाहरन्ति ॥ ७ ॥

यद्यन्यगोषुवृषभो वत्सानांजनयेच्छतम् ।

गोमिनामेवतेवत्सा मोघंस्यन्दितमार्षभम्, इति ॥ ८ ॥

अप्रमत्तारक्षततन्तुमेतं मावःक्षेत्रेपरबीजानिवाप्सुः ।
नजनयितुःपुत्रोभवतिसंपरायेमोघंवेत्ताकुरुतेतन्तुमेतमिति ॥९॥

बहूनामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्नरः ।

सर्वेतेतेनपुत्रेण पुत्रवन्तइतिश्रुतिः ॥ १० ॥

बह्वीनामेकपत्नीनामेकापुत्रवतीयदि ।

सर्वास्तास्तेनपुत्रेण पुत्रवत्यइतिश्रुतिः ॥ ११ ॥

के स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ अन्य की स्त्री में जो अन्य पुरुष से पुत्र उत्पन्न होता है वह स्त्री वाले का पुत्र है वा बीज जिस का पड़ा उस का है इस पर दोनों पक्ष वाले विवाद करते हैं ॥६॥ उन में दोनों प्रकार के उदाहरण (प्रमाण) श्लोकों द्वारा देते हैं कि ॥ ७ ॥ यदि अन्य की गौओं में किसी का बैल सौ बछड़े भी पैदा करे तो वे सब बछड़े गौ वाले के होंगे। और बैल का वीर्य सेचन व्यर्थ ही होगा। अर्थात् बैल वाले को कुछ फल नहीं मिलेगा ॥ ८ ॥ हे मनुष्यो ! प्रमाद को छोड़ कर इस सन्तान की रक्षा करो तुम्हारे खेत (स्त्री) में अन्य लोग बीज न बोयें (तभी शुद्ध सन्तान होंगे। अन्य के बीज से खेत के दूषित हो जाने पर सन्तति बिगड़ जायगी, अर्थात् खेत की रक्षा द्वारा सन्तति की रक्षा करो) पैदा करने (बीज) वाले का पुत्र नहीं होता और अन्य के बीज से पैदा हुए पुत्र को जो क्षेत्र (स्त्री) वाला प्राप्त होता है वह जन्मान्तर में अपने दुबोने वाले को पुत्र बनाता है ॥ ९ ॥ एक पिता से उत्पन्न हुए अनेक भाइयों में एक भी पुत्रवान् हो तो उसी एक पुत्र से सब भाई पुत्र वाले हो जाते हैं यह श्रुति में लिखा है ॥१०॥ एक पुरुष की कई स्त्रियां हों तो उनमें एक स्त्री के उत्पन्न हुए पुत्रसे सब पुत्र-वाली हो जाती हैं क्योंकि वही एक उन सब पिता चाचाओं तथा सब माताओं के स्वत्व का दायभागी और पिण्ड देने वाला होगा ॥ ११ ॥ पुराने

द्वादशइत्येव पुत्राः पुराणदृष्टाः ॥१२॥ स्वयमुत्पादितः स्वक्षेत्रे संस्कृतायां प्रथमः ॥ १३ ॥ तदलाभे नियुक्तायां क्षेत्रजो द्वितीयः ॥ १४॥ तृतीयः पुत्रिका विज्ञायते ॥ १५ ॥ अभ्रातृका पुंसः पितृनभ्येति प्रतोचीनं गच्छति पुत्रत्वम् ॥ १६ ॥ तत्र श्लोकः ॥ १७ ॥

अभ्रातृकांप्रदास्यामि तुभ्यंकन्यामलङ्कृताम् ।
अस्यांयोजायतेपुत्रः समेपुत्रोभवेदिति ॥ १८ ॥

पौनर्भवश्चतुर्थः ॥ १९ ॥ या कौमारं भर्त्तारमुत्सृज्यान्यैः सह चरित्वा तस्यैव कुटुम्बमाश्रयति सा पुनर्भूर्भवति ॥२०॥ या च क्लीबंपतितमुन्मत्तं वा भर्त्तारमुत्सृज्यान्यं पतिं विन्दते मृते वा सा पुनर्भूर्भवति ॥ २१ ॥ कानीनः पञ्चमः ॥ २२ ॥

लोगों ने वा पुराण ग्रन्थों में बारह ही प्रकार के पुत्र देखे जाने वा माने जाते हैं ॥१२॥ अपनी विवाहिता पत्नी में स्वयं उत्पन्न किया पहिला औरस ॥१३॥ औरस के न होने पर नियुक्त स्त्री में उत्पन्न किया द्वितीय क्षेत्रज ॥ १४ ॥ पुत्री में होने वाले सन्तान को अपना दायभागी स्वीकार करना तीसरा ॥१५॥ श्रुति वेद में लिखा है कि "जिस के कोई भाई नहीं होता ऐसी कन्या पति के घर जाकर पति के मेल से आप ही पुत्र भाव को प्राप्त होती और फिर उलटी आ कर पिता की दायभागिनी बनती तथा पिण्ड देके पिता को संसार से पार करती है"॥१६॥ उसमें श्लोक भी प्रमाण है ॥१७॥ कन्या का पिता वरसे कहता है कि विना भाई वाली वस्त्रों तथा आभूषणों से शोभित कन्या मैं तुम को दूंगा। इस कन्या में जो पुत्र उत्पन्न होगा वह मेरा पुत्र हो ॥१८॥ पुनर्भू (जिस ने पहिले पति को त्याग के अन्य पति कर लिया हो) से उत्पन्न प्रथम पतिका चौथा पौनर्भव पुत्र कहाता है ॥ १९ ॥ जो स्त्री अपने कुमारपति को त्याग कर अन्य पुरुषों के साथ सब प्रकार का व्यवहार करके उसी पहिले पति का फिर सहारा लेवे वह स्त्री पुनर्भू कहाती है ॥२०॥ और जो स्त्री नपुंसक पतित वा उन्मत्त हुए वा मर जाने पर अपने पति को त्याग के अन्य पति को प्राप्त होती वह भी पुनर्भू कहाती है ॥ २१ ॥ विवाह से पहिले कन्या में पैदा हुआ पांचवां कानीन पुत्र कहाता है ॥२२॥ जो विना विवाही पिता के घर में काम

या पितृगृहेऽसंस्कृता कामादुत्पादयेत्, मातामहस्य पुत्रो भवतीत्याहुः ॥ २३ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ २४ ॥

अप्रत्तादुहितायस्य पुत्रंविन्देततुल्यतः ।

पुत्रीमातामहस्तेन दद्यात्पिण्डंहरेद्धनम्, इति ॥ २५ ॥

गृहे च गूढोत्पन्नः षष्ठः ॥ २६ ॥ इत्येते दायादा बान्धवास्त्रातारो महतो भयादित्याहुः ॥ २७ ॥ अथादायादबन्धूनां सहोढएव प्रथमो या गर्भिणी संस्क्रियते तस्यां जातः सहोढः पुत्रो भवति ॥ २८ ॥ दत्तको द्वितीयो यं मातापितरौ दद्याताम् ॥२९॥ क्रीतस्तृतीयस्तच्छुनःशेपेन व्याख्यातम् ॥३०॥ हरिश्चन्द्रो हवै राजा सोऽजीगर्तस्य सौयावसेः पुत्रं चिक्राय ॥ ३१ ॥ स्वयं क्रीतवान् स्वयमुपागतश्चतुर्थः, तच्छुनःशेपेन व्याख्यातम् ॥ ३२ ॥ शुनःशेपो हवै यूपे नियुक्तो देवतास्तु-

---

वश होकर किसी से पुत्र को उत्पन्न करे वह कानीन अपने मातामह—नाना का पुत्र होता ऐसा ऋषि लोग कहते हैं ॥२३॥ और भी श्लोक का प्रमाण कहते हैं कि॥ २४ ॥ विना विवाही जिस की पुत्री अपने तुल्य पुरुष से पुत्र को प्राप्त होतो नाना उस पुत्र से पुत्र वाला हो जाता है वह कानीन पुत्र अपने नाना का पिण्डदान करे और धन का दायभागी (वारिस) बने ॥ २५ ॥ अपने घर में गुप्त रूप से उत्पन्न हुआ गूढोत्पन्न छठा पुत्र है ॥२६॥ ये छहो पुत्र पिता के धन के दायभागी और बड़े भय से बचाने वाले हैं ऐसा ऋषि लोग कहते हैं ॥ २७ ॥ अब अदायाद (जो पिता के धन में हक़दार नहीं उन) पुत्रों में पहिला सहोढ कहाता है। जो स्त्री गर्भवती हो तब जिस के साथ गर्भिणी का विवाह हो उस स्त्री से उत्पन्न हुआ सहोढ पुत्र होता है ॥२८॥ माता पिता ने जिस को दे दिया वह उस का द्वितीय दत्तक पुत्र कहाता है ॥२९॥ धन देकर मोल लिया तीसरा क्रीत पुत्र कहाता है कि जैसे शुनःशेप ऋषि हुए ॥३०॥ हरिश्चन्द्र नामक राजा हुआ था उस ने सूयवस के सन्तान अजीगर्त के पुत्र शुनःशेप को द्रव्य देकर खरीद लिया ॥ ३१ ॥ स्वयं राजा ने खरीदा और शुनःशेप अपनी इच्छा से स्वयं राजा के निकट आगया, इस से चौथा क्रीत पुत्र शुनःशेप के साथ व्याख्यात जानो ॥ ३२ ॥ फिर शुनःशेप यज्ञ के यूपस्तम्भ में बांधा गया, वहां उस ने मन्त्रों द्वारा देवता

ष्टाव, तस्येह देवताः पाशं विमुमुचुः, तमृत्विजऊचुर्ममैवायं पुत्रोऽस्त्विति,तान् ह न संपेदे ते संपादयामासुरेषएव यं कामयेत तस्य पुत्रोऽस्त्विति, तस्य ह विश्वामित्रो होताऽऽसीत्तस्य पुत्रत्वमियाय ॥ ३३ ॥ अपविद्धः पञ्चमो यं मातापितृभ्यामपास्तं प्रतिगृह्णीयात् ॥ ३४ ॥ शूद्रापुत्रएव षष्ठो भवतीत्याहुः ॥ ३५ ॥ इत्येतेऽदायादा बान्धवाः ॥३६॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ३७ ॥ यस्य पूर्वेषां षण्णां न कश्चिद्दायादः स्यादेते तस्य दायं हरेरन्निति ॥ ३८ ॥ अथ भ्रातॄणां दायविभागः ॥ ३९ ॥ द्व्यंशं ज्येष्ठो हरेद्,गवाश्वस्य चानुदशमम् ॥ ४० ॥ अजावयो गृहं च कनिष्ठस्य ॥ ४१ ॥ कार्ष्णायसं गृहोपकरणानि च मध्यमस्य ॥४२॥ मातुः पारिणेयं स्त्रियो विभजेरन्॥४३॥

ओं की स्तुति की, इस संसार में उस शुनःशेप को देवताओं ने बन्धनों से मुक्त किया, उस यजमान राजा से ऋत्विज् लोगों ने पृथक् कहा कि यह मेरा पुत्र हो जाय यह मेरा हो इत्यादि। उन ऋत्विजों के पास शुनःशेप नहीं गया, तब ऋत्विजों ने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि यह बालक हम सब में जिस के पास रहने की कामना करे उसी का पुत्र हो जाय। उस राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में ऋग्वेदी काम के चार होताओं में प्रधान होता ऋत्विज् ब्रह्मर्षि विश्वामित्र हुए थे उन का पुत्र शुनःशेप बना ॥ ३३ ॥ जिस को माता पिता ने त्याग दिया वा फेंक दिया उस को जो लाकर रक्षा करे उस का वह पांचवां अपविद्ध पुत्र कहाता है ॥ ३४ ॥ और शूद्रा का पुत्र छठा होता है ॥ ३५ ॥ ये छः अदायाद पुत्र हैं ॥ ३६ ॥ और भी ऋषि लोग कहते हैं कि ॥ ३७ जिस पुरुष के पूर्व कहे औरसादि छहों में से कोई भी दायभागी पुत्र न हो उस के धन को ये छहो ले सकते हैं ॥३८॥ अब भाइयों का दायभाग दिखाते हैं ॥ ३९ ॥ ज्येष्ठ भाई दो हिस्सा लेवे और गौ घोड़ों में से दशवां हिस्सा अधिक लेवे ॥ ४० ॥ भेड़ बकरी और घर इन के दो भाग छोटा भाई लेवे ॥ ४१ ॥ लोहादि काले वस्तु तथा घर के अन्य सामान को संझला भाई दो भाग लेवे ॥ ४२ ॥ माता के पास अपने विवाह के समय का जो आभूषणादि होवें उन में सब बहुओं को बराबर भाग मिले ॥ ४३ ॥

यदि ब्राह्मणस्य ब्राह्मणीक्षत्रियावैश्यासु पुत्राः स्युस्त्र्यंशं ब्राह्मण्याः पुत्रो हरेत्, द्व्यंशं राजन्यायाः पुत्रः सममितरे विभजेरन् ॥४४॥ येन चैषां स्वयमुत्पादितं स्याद् द्व्यंशमेव हरेत् ॥ ४५ ॥ अनंशास्त्वाश्रमान्तरगताः ॥ ४६ ॥ क्लीबोन्मत्तपतिताश्च ॥ ४७ ॥ भरणं क्लीबोन्मत्तानाम् ॥४८॥ प्रेतपत्नी षण्मासान् व्रतचारिण्यक्षारलवणं भुञ्जानाऽधःशयीतोर्ध्वं षड्भ्यो मासेभ्यः स्नात्वा श्राद्धं च पत्ये दत्त्वा विद्याकर्मगुरुयोनिसंबन्धान् सन्निपात्य पिता भ्राता वा नियोगं कारयेत्तपसे ॥४९॥ न सोन्मत्तामवशां व्याधितां वा नियुञ्ज्यात् ॥५०॥ ज्यायसीमपि षोडशवर्षाणि, नचेदामयावी स्यात्॥५१॥

यदि ब्राह्मण की ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या ये तीनों वर्ण की विवाहित स्त्रियां हों और उन सब में पुत्र उत्पन्न हुए हों तो तीन भाग ब्राह्मणी के पुत्र को, दो भाग क्षत्रिया के पुत्र को मिलें और बाकी बचे पुत्र बराबर भाग बांट लेवें ॥ ४४ ॥ इन पुत्रों में से जिस ने जितना धनादि स्वयं पैदा किया हो उस में से भी वह दो ही भाग लेवे ॥ ४५ ॥ गृहाश्रम से भिन्न आश्रम में गये भाई लोग पिता के धन में दायभागी नहीं हैं ॥ ४६ ॥ नपुंसक, उन्मत्त (पागल) और पतित भाई भी दायभागी नहीं हैं ॥ ४७ ॥ नपुंसक और उन्मत्तों को भी भोजन वस्त्र मिलना चाहिये ॥ ४८ ॥ मरे हुए पुरुष की पत्नी छः महिने तक खार और लवण को छोड़ कर हविष्य भोजन करती हुई व्रत करके पृथ्वी पर सोवे छः महिने के उपरान्त स्नान कर पति का श्राद्ध करके, पति को विद्या पढ़ाने और कर्म कराने वाले गुरु लोगों और पति के भाई आदि की सभा करके सबकी राय होतो स्त्री के लिये सन्तान की विशेष अपेक्षा होने पर स्त्री का पिता वा भाई तप के लिये नियोग करा देवे (कि उत्पन्न हुआ सन्तान मृत पिता का स्थानापन्न होकर श्राद्धादि कर्म रूप तप करेगा) ॥४९॥ यदि वह मृत पुरुष की पत्नी उन्मत्त (पागल) स्वेच्छा चारिणी अथवा रोगिणी होतो वह पितादि नियोग न करावे ॥ ५० ॥ यदि उन्मत्तादि न हो किन्तु ज्येष्ठ हो तो भी सोलह वर्ष की आयु से पहिले नियोग न करावे। और जिस से नियोग कराना चाहे वह भी रोगी न हो ॥ ५१ ॥ नियुक्त पु-

प्राजापत्ये मूहूर्त्ते पाणिग्राहवदुपचरेत् ॥ ५२ ॥ अन्यत्र संप्रहास्याद् वाक्पारुष्याद् दण्डपारुष्याच्च ॥५३॥ ग्रासाच्छादनस्नानानुलेपनेषु प्राग्गामिनी स्यात् ॥ ५४ ॥ अनियुक्तायामुत्पन्न उत्पादयितुः पुत्रो भवतीत्याहुः ॥ ५५ ॥ स्याच्चेन्नियोगिनो रिक्थम् ॥ ५६॥ लोभान्नास्ति नियोगः ॥ ५७ ॥ प्रायश्चित्तं वाऽप्युपनियुञ्ज्यादित्येके ॥५८ ॥ कुमार्य्यृतुमती त्रीणि वर्षाण्युपासीतोर्ध्वं त्रिभ्यो वर्षेभ्यः पतिं विन्देत्तुल्यम् ॥ ५९ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ६० ॥

पितुःप्रमादात्तुयदीहकन्या वयःप्रमाणंसमतीत्यदीयते ।
साहन्तिदातारमुदीक्षमाणा कालातिरिक्तागुरुदक्षिणेव ॥६१॥
प्रयच्छेन्नग्निकांकन्यामृतुकालभयात्पिता ।

रूप चार घड़ी रात रहे विवाहित पति के तुल्य नियुक्ता स्त्री से व्यवहार करे ॥ ५२ ॥ परन्तु स्त्री के साथ उपहास वा किसी प्रकार की बात चीत न करे । न धमकावे और किसी अनुचित को देख कर मृत पति के तुल्य नियुक्त पुरुष को पीटने का भी अधिकार नहीं है ॥ ५३ ॥ भोजन वस्त्र स्नान और अनुलेपन इन कामों में पूर्व मृत पति के ध्यान से चलने वाली हो अर्थात् नियुक्त को पति मान भोजनादि न करे ॥५४॥ नियुक्त न हुई अन्य की स्त्री में उत्पन्न किया पुत्र उत्पादक पुरुष का होगा ऐसा ऋषि लोग कहते हैं ॥५५॥ यदि नियुक्ता स्त्री में उत्पन्न पुत्र भी उत्पादक का हो तो वह नियुक्त पिता के धन का भागी होगा ॥ ५६ ॥ काम भोगादि के लालच से नियोग नहीं है ॥ ५७ ॥ लोभ से नियोग करने में कोई आचार्य प्रायश्चित्त करना कहते हैं ॥ ५८॥ यदि पिता वा भाई कन्या का विवाह न करें और वह ऋतुमती (रजस्वला) होने लगे तो तीन वर्ष तक रजस्वला होती हुई पितादि की बाट देखे । तीन वर्ष के उपरान्त अपने तुल्य योग्य वर से स्वयं विवाह कर लेवे ॥ ५९ ॥ इस पर श्लोकों का भी प्रमाण कहते हैं कि ॥ ६० ॥ गृहस्थाश्रम में पिता के प्रमाद से यदि कन्या ऋतुमती होने पर विवाही जाती है तो वह कन्या विवाह की बाट देखती हुई कन्यादान करने वाले का नाश करती है । जैसे बिदुने का समय निकल जाने पर गुरु को दी दक्षिणा शिष्य का नाशक करती है ॥ ६१ ॥ रजस्वला होने का अवसर आने से पहिले ऋतुमती होने के भय

ऋतुमत्यांहितिष्ठन्त्यां दोषःपितरमृच्छति ॥ ६२ ॥
यावत्त्वकन्यामृतवःस्पृशन्ति तुल्यैःसकामामभियाच्यमानाम्।
भ्रूणानितावन्तिहतानिताभ्यां मातापितृभ्यामितिधर्मवादः॥६३
अद्भिर्वाचाचदत्तायां म्रियेतादौवरोयदि ।
नचमन्त्रोपनीतास्यात् कुमारीपितुरेवसा ॥ ६४ ॥
बलाच्चेत्प्रहृताकन्या मन्त्रैर्यदिनसंस्कृता ।
अन्यस्मैविधिवद्देया यथाकन्यातथैवसा ॥ ६५ ॥
पाणिग्राहेमृतेबाला केवलंमन्त्रसंस्कृता ।

से पिता कन्या का दान कर देवे । यदि ऋतुमती होती हुई विवाह से पहिले पिता के घर पर कन्या रहे तो पिता को दोष लगता है ॥ ६२ ॥ कामना रखती हुई कन्या को चाहने वाले योग्य वरों के विद्यमान होते हुए भी जितने मास तक पिता के न देने से कन्या रजस्वला होती रहे उतनी ही गर्भहत्याओं का पाप कन्या के माता पिता को लगता है यह धर्मशास्त्रकारों का कथन है ॥६३॥ हाथ में जल लेके वा वाणीमात्र से टीका लगन सब हो गयी हो अथवा कन्या दान भी पिताने कर दिया हो परन्तु मन्त्रों के साथ पति ने पाणिग्रहण न किया हो तथा सप्तपदी न हुई हो और ऐसे अवसर में यदि वर पति मर जावे तो वह पिता की अविवाहिता कुमारी कन्या ही मानी जायगी । इस दशा में पिता अन्य वर के साथ उसका विधिपूर्वक विवाह कर देवे ॥ ६४ ॥ मन्त्रों द्वारा विवाह संस्कार होनेसे पहिले यदि किसीने बल पूर्वक कन्या को हर लिया (लेगया) हो तो विधिपूर्वक वह कन्या अन्य वर को देदेनी चाहिये क्योंकि जैसी कन्या होती वैसी ही वह है ॥ ६५ ॥ और यदि पाणिग्रहण तक भी मन्त्रों द्वारा संस्कार हो गया हो किन्तु सप्तपदी न हुई हो और उसने किसी के साथ संग भी न किया हो या किसी ने बल पूर्वक भी दूषित न की हो तो भी उस का अन्य वर के साथ विवाह संस्कार हो सकता है (सब धर्मशास्त्रों का निचोड़ सिद्धान्त यह है कि यदि मन से वर का स्वीकार हो जाने पर भी अन्य वर के साथ विवाह न हो तो उत्तम कोटि है उदाहरण सावित्री है । वाग्दान (टीका लगुन) हो जाने पर अन्यवर के साथ विवाह होना, मध्यम कोटि है । जिस के उदाहरण संप्रति अनेक हैं। और कन्यादान तथा पाणिग्रहण तक भी हो जाने पर सप्तपदी से पहिले अन्यवर के साथ विवाह होना

साचेदक्षतयोनिःस्यात् पुनःसंस्कारमर्हति । इति ॥ ६६ ॥ प्रोषितपत्नी पञ्चवर्षाण्युपासीतोर्ध्वं पञ्चभ्यो वर्षेभ्यो भर्तृसकाशं गच्छेत् ॥ ६७ ॥यदि धर्मार्थाभ्यां प्रवासं प्रत्यनुकामा न स्याद् यथाप्रेतएवं वर्त्तितव्यं स्यात् ॥ ६८ ॥ एवं ब्राह्मणी पञ्च प्रजाताऽप्रजाता चत्वारि,राजन्या प्रजाता पञ्चाऽप्रजाता त्रीणि,वैश्या प्रजाता चत्वार्यप्रजाता द्वे,शूद्रा प्रजाता त्रीण्यप्रजातैकम् ॥ ६९ ॥ अत ऊर्ध्वं समानोदकपिण्डजन्मर्षिगोत्राणां पूर्वः पूर्वो गरीयान् ॥ ७० ॥ नतु खलु कुलीने विद्यमाने परगामिनी स्यात् ॥७१॥ यस्य पूर्वेषां षण्णां न कश्चिद्दायादः

निकृष्ट कोटि है । इस से आगे शास्त्र मर्यादा से द्वितीय विवाह कदापि नहीं हो सकता किन्तु सप्तपदी के बाद में अन्य के साथ विवाह करना विवाहित स्त्रियों के अन्य व्यभिचार के तुल्य वह भी व्यभिचार नाम जार कर्म माना जायगा) ॥ ६६ ॥ विदेश में गये पुरुष की पत्नी पांच वर्ष तक अपने पति की वाट देखे उस के उपरान्त पति के समीप देशान्तर में चली जावे ॥६७॥ यदि धर्म वा धन के कारण पति का विदेश जाना न चाहती हो और वह चला ही जावे तो पति के मर जाने पर विधवा होने के समान विधवाओं के धर्म का पालन करे ॥ ६८ ॥ इसी प्रकार ब्राह्मणी के कोई सन्तान हो त । पाच वर्ष तक और सन्तान न हुआ हो तो चार वर्ष तक विदेश गये पति की वाट देख कर विदेश को जावे । क्षत्रिया स्त्री सन्तान वाली हो तो पांच वर्ष तक तथा सन्तान न हुए हों तो तीन वर्ष तक वाट देखे । वैश्या स्त्री सन्तान वाली हो तो चार वर्ष तक तथा विना सन्तान की हो तो दो वर्ष तक वाट देखे । और शूद्रा स्त्री सन्तान वाली हो तो तीन वर्ष और विना सन्तान की हो तो एक वर्ष तक विदेश गये प[illegible] की वाट देख कर पति के समीप चली जावे । ब्राह्मणी आदि स्त्रियों में क्रमशः धर्म के न्यूनाधिक भाव से काम भी न्यूनाधिक सतावेगा यह आशय धर्म शास्त्र कारने दिखाया जताया है ॥ ६९ ॥ समानोदक, सपिण्ड, और एक गोत्र इन में पर २ की अपेक्षा पूर्व २ के साथ सम्बन्ध वा मेल होना अन्तरङ्ग होने से श्रेष्ठ है ॥ ७० ॥ कुलीन समानोदकादि पुरुष के विद्यमान होते हुए स्त्री अन्य के साथ नियोगादि न करे ॥ ७१ ॥ जिस पुरुष के पूर्वोक्त छः पुत्रों में से कोई भी दायभागी न हो

स्यात् सपिण्डाः पुत्रस्थानीया वा तस्य धनं विभजेरन् ॥ ७२ ॥ तेषामलाभआचार्यान्तेवासिनौ हरेयाताम् ॥ ७३ ॥ तयोरलाभे राजा हरेत् ॥ ७४ । नतु ब्राह्मणस्य राजा हरेत् ॥ ७५ ॥ ब्रह्मस्वं तु विषं घोरम् ॥ ७६ ॥

नविषंविषमित्याहुर्ब्रह्मस्वंविषमुच्यते ।
विषमेकाकिनंहन्ति ब्रह्मस्वंपुत्रपौत्रकम् । इति ॥७७॥
त्रैविद्यसाधुभ्यः संप्रयच्छेदिति ॥ ७८ ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

शूद्रेण ब्राह्मण्यामुत्पन्नश्चाण्डालो भवतीत्याहुः,राजन्यायां वैणो वैश्यायामन्त्यावसायी ॥१॥ वैश्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नो रामको भवतीत्याहुः, राजन्यायां पुल्कसः ॥२॥ राजन्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नः सूतो भवतीत्याहुः ॥३॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ४ ॥॥

उस के धनादि को पुत्र के स्थानापन्न वा सपिण्ड के मनुष्य आपस में बांट कर लेलेवें ॥ ७२ ॥ यदि सपिण्ड नाम सात पीढी में भी कोई न हो तो गुरु और शिष्य लोग उस के धनादि को लेवें ॥ ७३ ॥ यदि गुरु शिष्य भी नहीं तो उस का धन राजा लेवे ॥ ७४ ॥ परन्तु ब्राह्मण का धन राजा न लेवे ॥ ७५ ॥ ब्राह्मण का धन लेना घोर विष है ॥ ७६ ॥ विष को विद्वान् लोग विष नहीं कहते किन्तु ब्राह्मण का धन विष कहाता है । क्योंकि विष एक मनुष्य को मारता है और ब्राह्मण का धन पुत्र पौत्रादि सहित सब कुल का नाश कर देता है ॥ ७७ ॥ इस से लावारिस ब्राह्मण के धन को राजा तीनों वेदों के जानने वाले सुपात्र ब्राह्मणों को दे देवे ॥ ७८ ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में सत्रहवां अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

शूद्र पुरुष से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुआ चाण्डाल है ऐसा ऋषि लोग कहते हैं । शूद्र से क्षत्रिया कन्या में हुआ वेण और शूद्र पुरुष से वैश्य स्त्री में अन्त्यावसायी नामक नीच सन्तान पैदा होता है ॥ १॥ वैश्य पुरुष से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुआ रामक, और वैश्य से क्षत्रिय कन्या में पैदा हुआ पुल्कस जाति होता ऐसा कहते हैं ॥ २ ॥ क्षत्रिय पुरुष से ब्राह्मणी में पैदा हुआ सूत होता ऐसा कहते हैं ॥ ३ ॥ और भी श्लोक का प्रमाण कहते हैं कि ॥ ४ ॥ नीच पुरुष

छन्नोत्पन्नास्तुयेकेचित् प्रातिलोम्यगुणाश्रिताः ।
गुणाचारपरिभ्रंशात् कर्मभिस्तान्विभावयेत् । इति ॥५॥

एकान्तरद्व्यन्तरत्र्यन्तरानुजाता ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यैरम्बष्ठोग्रनिषादा भवन्ति ॥ ६ ॥ शूद्रायां पारशवः पारयन्नेव जीवन्नेव शवो भवतीत्याहुः ॥ ७ ॥ शवइति मृताख्या ॥८॥ एके वै तच्छ्मशानं ये शूद्रास्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम् ॥ ९ ॥ अथापि यमगीतान् श्लोकानुदाहरन्ति ॥१०॥

श्मशानमेतत्प्रत्यक्षं येशूद्राःपापचारिणः ।
तस्माच्छूद्रसमीपेच नाध्येतव्यंकदाचन ॥ ११ ॥
नशूद्रायमतिंदद्यान्नोच्छिष्टंनहविष्कृतम् ।
नचास्योपदिशेद्धर्मं नचास्यव्रतमादिशेत् ॥ १२ ॥
यश्चास्योपदिशेद्धर्मं यश्चास्यव्रतमादिशेत् ।

से उत्तम वर्ण की स्त्री में प्रतिलोम के द्वारा प्रच्छन्न गुप्त रूप से जो उत्पन्न होते उन गुण कर्मों के आचार से भ्रष्ट पुरुषों को कर्मों से परीक्षा करके जाने कि यह अमुक से पैदा हुआ है जैसे हिंसाशील सन्तान हो तो जानो व्याधा वा कसाई आदि हिंसक से पैदा हुआ है ॥५॥ ब्राह्मण से वैश्य की स्त्री में अम्बष्ठ, क्षत्रिय से शूद्र कन्या में उग्र और वैश्य शूद्र की कन्या में निषाद नामक जाति उत्पन्न होती है (मनु० अ० १० में ब्राह्मण से शूद्र कन्या में निषाद की उत्पत्ति लिखी है) ॥६॥ शूद्र कन्या में पैदा हुआ निषाद जीवित रहता हुआ उसी जन्म में मुर्दा के तुल्य अशुद्ध होता इससे उस को पारशव भी कहते हैं ॥ ७ ॥ शव यह मृत शरीर का नाम है ॥ ८ ॥ कोई आचार्य कहते हैं कि—शूद्र श्मशान के तुल्य अपवित्र है इस से शूद्र के समीप वेद को न पढ़े ॥९॥ और भी महर्षि यम के कहे श्लोकों का प्रमाण कहते हैं ॥ १० ॥ जो पापाचारी शूद्र हैं वे प्रत्यक्ष ही श्मशान (मरघट) हैं तिस से शूद्र के समीप में कदापि वेद को न पढ़े ॥ ११ ॥ शूद्र को न अच्छी धर्म की सम्मति देवे न जूठन देवे और न होम का शेष देवे । न इस को धर्म करने का उपदेश करे और न कृच्छ्रादि व्रतों का उपदेश करे (यह निषेध धर्म के विरोधी शूद्रों के लिये जानो क्यों कि धर्म के प्रेमी वा श्रद्धालु शूद्रों के लिये स्मार्त्त तथा पौराणिक धर्म का उपदेश करना विहित भी है) ॥ १२ ॥ जो पुरुष शूद्र को धर्म तथा व्रत करने का उपदेश करता है

सोऽसंवृतंतमोघोरं सहतेनप्रपद्यते, इति ॥ १३ ॥
व्रणद्वारेकृमिर्यस्य संभवेतकदाचन ।
प्राजापत्येन शुद्ध्येत हिरण्यं गौर्वासो दक्षिणा, इति ॥१४॥
नाग्निं चित्वा रामामुपेयात् ॥ १५ ॥ कृष्णवर्णा या रा-
मा रमणायैव न धर्माय न धर्मायेति ॥ १६ ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रेऽष्टादशाध्यायः ॥ १८ ॥

स्वधर्मो राज्ञः पालनं भूतानां तस्यानुष्ठानात्सिद्धिः ॥१॥ भयकारुण्यहान जरामर्यं वै तत् सत्रमाहुर्विद्वांसस्तस्माद्गार्हस्थ्यानैयमिकेषु पुरोहितं दध्यात् ॥ २॥ विज्ञायते ॥ ३ ॥ ब्रह्मपुरोहितो राष्ट्रं वृध्नोतीति ॥ ४ ॥ उभयस्य पालनासामर्थ्याच्च देशधर्मजातिकुलधर्मान् सर्वानेवैताननुप्रविश्य राजा चतुरो वर्णान् स्वधर्मे स्थापयेत् ॥५॥ तेष्वपचरत्सु दण्डं

वह उस शूद्र के सहित विस्तृत घोर अन्धकार रूप नरक को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ जिस ब्राह्मण के फोड़े में कदाचित् कीड़े पड़ जावें वह प्राजापत्य व्रत करके सुवर्ण, गौ और वस्त्र दक्षिणा में देवे तब शुद्ध होता है ॥ १४ ॥ अग्नि-चयन यज्ञ करके सुन्दरी स्त्री से फिर संग न करे ॥ १५ ॥ काले वर्ण की सुन्दरी स्त्री रमण के लिये ही हो सकती है किन्तु उस को पत्नी बना कर दान यज्ञादि धर्म कृत्य न करे ॥ १६ ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में अठारहवां अध्याय पूरा हुआ ॥१८॥

सब प्राणियों की रक्षा करना राजा का निज धर्म है उसी निज धर्म के ठीक २ धर्मानुकूल करने से राजा की सिद्धि होती है ॥ १ ॥ वृद्ध होके मरण पर्यन्त सेवन करने को राजा का यह राजधर्म रूप सत्र यज्ञ विद्वानों ने कहा है कि जिस में भय तथा दया दोनों का त्याग है । तिस से गृहाश्रम के नित्य नैमित्तिक वेदशास्त्रोक्त काम करने के लिये राजा एक विद्वान् को पुरोहित नियत करे । राजा को अग्निहोत्रादि का अवकाश न होने से राज पुरोहित ही उन कामों को राजा की ओर से किया करे ॥ २ ॥ श्रुति से जाना जाता है कि ॥ ३ ॥ अथर्ववेदी राजपुरोहित के ठीक योग्य होने पर राज्य की उन्नति होती है ॥ ४ ॥ अपना निज धर्म तथा वेदाध्ययन, यज्ञ करना, दान देना, इस दोनों प्रकारके धर्मकी रक्षा एक से न होसकने के कारण पुरोहित सहित करे और देश धर्म जाति धर्म, और कुल धर्म इन सब में प्रवेश (यथोचितज्ञान) करके चारो वर्णों को अपने २ धर्म पर स्थापित करे ॥ ५ ॥ ये ब्राह्मणादि वर्ण

धारयेत्॥६॥ दण्डस्तु देशकालधर्मवयोविद्यास्थानविशेषैर्हि सा-क्रोशयोः कल्प्यआगमाद्दृष्टान्ताच्च ॥ ७ ॥ पुष्पफलोपगान्पा-दपान्न हिंस्यात्कर्षणकरणार्थं चोपहन्यात् ॥८॥ गार्हस्थ्याङ्-गानां च मानोन्माने रक्षिते स्याताम् ॥ ९ ॥ अधिष्ठानान्न-निर्हारः स्वार्थानां,मानमूल्यमात्रं नैहारिकं स्यात्॥१०॥ महा-महयोः स्थानात् पथः स्यात् ॥ ११ ॥ संयाने दशवाहवाहिनी द्विगुणकारिणी स्यात् ॥ १२ ॥ प्रत्येकं प्रयास्यः पुमान् ॥१३॥ पुंसां शतावराध्यं चाऽऽहवयेद्व्यर्थाः स्त्रियः स्युः ॥ १४ ॥ क-रा अष्टौ कृष्णलमाषसुवर्णमध्यधरणपलपादकार्षापणाः स्यु-

---

यदि अपने २ धर्म से च्युत होते हों तो दण्ड देकर ठीक धर्म की व्यवस्था करे ॥ ६ ॥ देश, काल, धर्म, अवस्था, विद्या और स्थान इन सब की विशेषताओं का हिंसा होने तथा रोने चिल्लाने के विषय में विचार करके शास्त्र द्वारा और लौकिक दृष्टान्तों से दण्ड की भिन्न २ न्यूना-धिक कल्पना करे ॥ ७ ॥ फल फूल देनेवाले वृक्षों को न कटवावे परन्तु खेती कराने के उपयोगी वृक्षों को भलेही कटावे ॥ ८ ॥ गृहाश्रम सम्बन्धी प-दार्थों की तौल नाप ठीक सुरक्षित रक्खे ॥ ९ ॥ अपने नगर के व्यापारी आदि से अन्नादिका नियत भाग राज कर में न लेवे किन्तु उस भाग का मूल्य नि-यत करके उतनार धन उनर से लिया करे ॥ १० ॥ देवस्थान पाठशाला धर्म शालादि के धन पर, श्मशान (मरघट) और मार्ग (सड़क) इनका महसू-ल वा इनपर कर (टैक्स) राजा न लेवे ॥ ११ ॥ युद्ध के लिये यात्रा करे तब (८१ रथ। ८१ हाथी। २४३ सवार और ४०५ पैदल सिपाही इतनी फौज को एक वाहिनी कहते हैं) ऐसी बीश पलटनें लेकर युद्ध में चढ़ाई करे ॥ १२ ॥ फौज में प्रत्येक मनुष्य तथा हाथी घोड़ादि हृष्ट पुष्ट नीरोग परिश्रमी हो ॥१३॥ ऐसी रीति युक्ति से युद्ध करावे जिसमें सौसे भी बहुत कम योद्धा मारे जावें। जिनसे विधवा होकर उनर की स्त्रियों का जन्म व्यर्थ न होवे ॥ १४ ॥ कृष्णल, माष, सुवर्ण, मध्य, धरण, पल, पाद, कार्षापण ये आठ प्रकार के तौल वा-चक कर हैं। वस्तुओं के न्यूनाधिक लाभ देखकर भिन्न२ कर नियत करे। जल-

निरुदकस्तरोमोष्योऽकरः श्रोत्रियो राजपुमाननाथप्रव्रजितबालवृद्धतरुणप्रदातारः प्रागगामिकोः कुमार्यो मृतपत्न्यश्च॥१५॥ बाहुभ्यामुत्तरञ्छतगुणं दद्यात् ॥ १६ ॥ नदीकक्षवनदाहशैलोपभोगा निष्कराः स्युस्तदुपजीविनो वा दद्युः ॥१७ ॥ प्रति मासमुद्वाहकरं त्वागमयेद्राजनि च प्रेते दद्यात्प्रासङ्गिकम् ॥ १८ ॥ एतेन मातृवृत्तिर्व्याख्याता ॥ १९ ॥ राजमहिष्याः पितृव्यमातुलान् राजा बिभृयात्तद्बन्धूंश्चान्यांश्च ॥ २० ॥ राजपत्न्यो ग्रासाच्छादनं लभेरन् ॥ २१ ॥ अनिच्छन्त्यो वा प्रव्रजेरन् ॥ २२ ॥ क्लीबोन्मत्तान्राजा बिभृयात्तद्गामित्वाद्व्यवस्य ॥ २३॥ शुल्के चापि मानवं श्लोकमुदाहरन्ति ॥२४॥ नभिन्नकार्षापणमस्तिशुल्के नशिल्पवृत्तौनशिशौनदूते ।

हीन खेत, वर्षा से डूबनेवाले खेत, और जिनके अन्न को चोर लेजाते हों ऐसे खेतोंपर कर न लेवे। वेद पाठी, तथा राजकर्मचारियों से भी कर न लेवे। अनाथ, साधु संन्यासी, बालक, वृद्ध, और ब्रह्मचारियों को भोजनादि देनेवाले, कुमारी स्त्री और जिन के पति मरगये हों ऐसी विधवाओं से भी कर नहीं लेना चाहिये ॥ १५ ॥ भुजाओं के द्वारा नदी के पार आनेवाला सौगुणा दण्ड देवे ॥ १६ ॥ नदी का कछार, जलनेवाले बनके खेत और पर्वत के खेतों पर कर न बांधे वा कछार आदि से जिनकी जीविका हो उन लोगों से प्रति मास उचित कर लिया करे ॥ १७ ॥ विवाहों पर भी यथोचित कर लिया करे। और राजा का स्वर्गवास होने पर वा किसी उत्सव पर प्रजा को भोजनादि प्रसङ्गानुसार दिया करे ॥ १८ ॥ इससे राजा में माता कासा वर्त्ता सिद्ध होता है कि सन्तान लोग धनादि लाके माता को देवें और माता फिर उन्हीं को खिलावे ॥ १९॥ राज महिषी (मुख्य रानी) के चाचा, मामा, भाई, तथा अन्य कृपापात्रों का राजा भरण पोषण करे ॥ २० ॥ राजा की अन्य स्त्रियों को भोजन वस्त्रादि मिला करे ॥ २१ ॥ यदि राजपत्नी भोजन वस्त्र न चाहें तो भलेही विरक्त होकर तप करें ॥ २२ ॥ नपुंसक (हिजड़ों) और पागलों की राजा रक्षा करे क्योंकि उनके धनादि का मालिक राजा ही है ॥ २३ ॥ महसूल लेने में भी मनुजी के श्लोक का प्रमाण देते हैं ॥ २४ ॥ महसूल में फूटा रुपया नहीं लेवे। कारीगरी, बालक, दूत, भिक्षावृत्ति, चोरी वा लूट से बच,

नभैक्षलब्धेनहृतावशेषे नश्रोत्रियेप्रव्रजितेनयज्ञे,इति ॥ २५ ॥ स्तेनोऽनुप्रवेशान्नदुष्यते शस्त्रधारी सहोढो व्रणसंपन्नो व्यपदिष्टस्त्वेकेषां दण्ड्योत्सर्गे राजैकरात्रमुपवसेत् ,त्रिरात्रं पुरोहितः ॥२६॥ कृच्छ्रमदण्डयद्दण्डने पुरोहितस्त्रिरात्रं राजा॥२७॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ २८ ॥

अन्नादेभ्रूणहामार्ष्टि पत्यौभार्याऽपचारिणी ।
गुरौशिष्यश्चयाज्यश्च स्तेनोराजनिकिल्विषम् ॥२९॥
राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वापापानिमानवाः ।
निर्मलाःस्वर्गमायान्ति सन्तःसुकृतिनोयथा ॥ ३० ॥
एनोराजानमृच्छति उत्सृजन्तंसकिल्विषम् ।
तंचेद्घातयतेजारा हन्तिधर्मेणदुष्कृतम् , इति ॥ ३१ ॥
राज्ञामात्ययिकेकार्ये सद्यःशौचंविधीयते ।

वेदपाठी, संन्यासी और यज्ञ इन सब पर महसूल वा कर न लेवे ॥ २५ ॥ विवाह के समय गर्भवती जो कन्या उससे उत्पन्न सहोढ सन्तान शस्त्रधारी तथा रोगी हो तथा चोर के तुल्य किसी के घरमें घुसे तो दोष नहीं है। और किन्हीं के मत से दोष युक्त भी कहा गया है । दण्ड के योग्य मनुष्य को सजा न करके छोड़ देवे तो एक दिन राजा और तीन दिन राजपुरोहित उपवास करे ॥२६॥ दण्ड देने योग्य को दण्ड देने पर पुरोहित कृच्छ्र व्रत करे और राजा तीन दिन उपवास करे ॥२७॥ और भी श्लोकों का प्रमाण कहते हैं कि ॥२८॥ भ्रूणहत्या करनेवाला पुरुष उस का अन्न खाने वाले पर, व्यभिचारिणी स्त्री अपने पति पर, शिष्य और यजमान गुरु पर और चोर राजा पर अपना पाप शुद्ध करता नाम छोड़ता है । अर्थात् भ्रूण हत्यारे आदि का पाप उस का अन्न खाने वाले को, स्त्री का पाप पति को, शिष्य और यजमान का पाप गुरु पुरोहित को और चोर का पाप राजा को लगजाता है ॥२९॥ जिन मनुष्यों को उन के पापों का दण्ड राजा ठीक २ देता है वे लोग शुद्ध निर्दोष हुए पुण्यात्मा सज्जनों के समान अन्त में स्वर्ग को प्राप्त होते हैं । यदि फिर २ उन कामों को न करें तो ॥ ३० ॥ अपराधी को विना दण्ड दिये छोड़ देने से उस का पाप राजा को लगता है । और यदि उस पापी को राजा मरवा डाले तो धर्म के द्वारा पाप का नाश करता है ॥ ३१ ॥ राजाओं को मृत्यु संबन्धी कार्य में तत्काल शुद्धि

तथाऽनात्ययिकेनित्यं कालएवात्रकारणम्, इति ॥३२॥

यमगीतंचात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥ ३३ ॥

नाघदोषोऽस्तिराज्ञांवै व्रतिनांनचसत्रिणाम् ।

ऐन्द्रंस्थानमुपासीना ब्रह्मभूताहितेसदा,इति,हितेसदा,इति॥३४॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अनभिसंधिकृते प्रायश्चित्तमपराधे ॥१॥ अभिसंधिकृते ऽप्येके ॥ २ ॥

गुरुरात्मवतांशास्ता राजाशास्तादुरात्मनाम् ।

इहप्रच्छन्नपापानां शास्तावैवस्वतोयमः,इति ॥ ३ ॥

तत्र च सूर्याभ्युदयतः सन्नहस्तिष्ठेत् ॥ ४ ॥ सावित्रीं च जपेत् ॥५॥ एवं सूर्याभिनिर्मुक्तो रात्रावासीत ॥ ६ ॥ कुनखी श्यावदन्तस्तु कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत् ॥७॥ परिवित्तिः कृच्छ्रं

करलेने का विधान शास्त्र में कहा है । वैसे ही पुत्र जन्मादि में भी तत्काल ही शुद्धि करे । इस में काल ही कारण है ॥ ३२ ॥ यहां महर्षि यमराज के कहे श्लोक का प्रमाण कहते हैं कि ॥ ३३ ॥ राजाओं को व्रतधारियों और सत्रयज्ञ के ऋत्विजों को सूतक का दोष नहीं लगता है । क्योंकि ये सब इन्द्रदेवता के स्थान पर बैठे हुए सदा ब्रह्मस्वरूप ही हैं ॥ ३४ ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में उन्नीशवां अध्याय पूरा हुआ ॥१९॥

भूल में विना समझे किये अपराध में प्रायश्चित्त कर्त्तव्य है ॥ १ ॥ इच्छा पूर्वक किये पाप का भी प्रायश्चित्त कोई आचार्य कहते है ॥ २ ॥ जो विषयी नहीं किन्तु सीधे सच्चे हैं उनका शिक्षक गुरु, दुष्टों का शिक्षक राजा और इस जन्म में जिन के अनेक बड़े २ गुप्त पाप होते हैं उन के शिक्षक यमराज होते हैं ॥ ३ ॥ उस प्रायश्चित्त में सूर्यनारायण के उदयकाल से ले कर दिन में खड़ा हुआ जप करे ॥ ४ ॥ सावित्री का जप करे ॥५॥ इसीप्रकार सूर्य के अस्त होने समय से लेकर रात में बैठा हुआ जप करे यह सब प्रायश्चित्तों के लिये है ॥६॥ बिगड़े नखों वाला और काले दांतों वाला बारह दिन कृच्छ्र व्रत करे ॥ ७ ॥ जिस छोटे भाई ने बड़े से पहिले विवाह किया उस का बड़ा भाई बारह दिन तक कृच्छ्र व्रत करके ठहर जावे पश्चात् उस नियत की कन्या

द्वादशरात्रं चरित्वा निर्विशेत तां चैवोपयच्छेत् ॥ ८ ॥ अथ परिविविदानः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरित्वा तस्मै दत्त्वा पुनर्निर्विशेत तामेवोपयच्छेत् ॥९॥ अग्रेदिधिषूपतिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत तां चैवोपयच्छेत् ॥१०॥ दिधिषूपतिः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरित्वा तस्मै दत्त्वा पुनर्निविशेत् ॥ ११ ॥ वीरहणं परस्ताद्वक्ष्यामः ॥ १२ ॥ब्रह्मोज्झः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनरुपयुञ्जीत वेदमाचार्यात् ॥ १३ ॥ गुरुतल्पगः सवृषणं शिश्नमुत्कृत्याञ्जलावाधाय दक्षिणामुखो गच्छेत् ॥१४॥ यत्रैव प्रतिहन्यात्तत्र तिष्ठेदाप्रलयम् ॥ १५ ॥ निष्कालको वा घृताभ्यक्तस्तप्तां सूर्मिं परिष्वजेन्मरणात्पूतो भवतीति विज्ञा-

---

से विवाह कर लेवे ॥८॥ और उस का छोटा भाई परिवेत्ता कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दोनों व्रत बारह २ दिन करके अपनी स्त्री को बड़े भाई को समर्पण करके ठहर जावे पश्चात् बड़े भाई की आज्ञा होने पर उसी स्त्री को स्वीकार करलेवे ॥ ९ ॥ ज्येष्ठ भगिनी का विवाह होने से पहिले छोटी भगिनी से विवाह करने वाला पुरुष दिधिषूपति कहाता है और ज्येष्ठ भगिनी के साथ पीछे से विवाह करने वाला अग्रेदिधिषूपति कहाता वह बारह दिन तक कृच्छ्र व्रत करके ठहर जावे फिर उसी स्त्री का स्वीकार करे ॥ १० ॥ और छोटी के साथ विवाह करने वाला बारह २ दिन तक कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दोनों व्रत करके उस ज्येष्ठ भगिनी के पति को अपनी स्त्री समर्पित करके ठहर जावे पीछे उसकी आज्ञा से स्वीकार करे॥ ११॥ विधि से स्थापित किये अग्नि को त्यागने वाले के विषय में आगे प्रायश्चित्त कहेंगे ॥१२॥ पढ़ेहुए वेद को भुला देने वाला पुरुष बारह दिन तक कृच्छ्र व्रत करके भूलेहुए वेद को फिर गुरुमुख से पढ़ लेवे ॥१३॥ गुरुपत्नी से संग करने वाला पुरुष अण्डकोशों सहित लिङ्गेन्द्रिय को काटकर दोनों हाथों की अञ्जुली में धरके दक्षिण दिशा को बराबर चला जावे ॥१४॥ जब कुछ भी न चला जाय अर्थात् अत्यन्त थक जावे तब वहीं प्राणान्त होने तक खड़ा रहे ॥१५॥ अथवा उक्तरीति से प्राणान्त न हो तो लोहे की प्रतिमा को अत्यन्त तपाकर अपने शरीर में घृत लगाके उस लोह की प्रतिमा से लिपट जावे ऐसे जल कर मरजाने से शुद्ध निष्पाप हो जाता है यह श्रुति से जाना

यते ॥१६॥ आचार्य्यपुत्रशिष्यभार्य्यासु चैवम्॥ १७ ॥ योनिषु च गुर्वीं सखीं गुरुसखीमपपात्रां पतितां च गत्वा कृच्छ्राब्दपादं चरेत् ॥ १८ ॥ एतदेव च चाण्डालपतितान्नभोजनेषु,ततः पुनरुपनयनं, वपनादीनां तु निवृत्तिः ॥ १९ ॥ मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥ २० ॥

वपनंमेखलादण्डो भैक्षचर्य्याव्रतानिच ।
निवर्त्तन्तेद्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि,इति ॥ २१ ॥

मत्या मद्यपाने त्वसुरायाश्चाज्ञाने कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ घृतं प्राश्य पुनःसंस्कारश्च ॥२२॥ मूत्रशकृच्छुक्राभ्यवहारेषु चैवम्॥२३॥

मद्यभाण्डेस्थिताआपो यदिकश्चिद्द्विजःपिबेत् ।
पद्मोदुम्बरबिल्वपलाशानामुदकं पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ २४ ॥ अभ्यासेतु सुराया अग्निवर्णां तां द्विजः

गया है ॥१६॥ आचार्य की, पुत्र की, और शिष्य की पत्नी से गमन करने पर भी यही प्रायश्चित्त है ॥१७॥ मित्र की पत्नी, गुरु के मित्र की पत्नी, अन्त्यज नीच की, और पतित स्त्री से संग करके तीन मास तक कृच्छ्र व्रत करे ॥१८॥ चाण्डाल और पतितों के अन्न के भोजनों में भी यही प्रायश्चित्त है उस प्रायश्चित्त के बाद मुण्डन कराये विना ही फिर से उपनयन संस्कार करावे ॥ १९ ॥ इस विषय में मनु जी के श्लोक का प्रमाण भी कहते हैं कि ॥ २० ॥ शिर मुंड़ाना, मेखला, दण्ड, भिक्षा मांगना, और रस त्यागादि नियम, ये सब काम द्विजों का पुनः संस्कार होने के समय निवृत्त हो जाते हैं अर्थात् फिर से उपनयन करने में मुण्डनादि की आवश्यकता नहीं है ॥ २१ ॥ पदार्थों को सड़ाकर बनाया मादक (नशाकारी) वस्तु अनेक प्रकार का मद्य कहाता है। गुड़, आटा और महुआ से बनी सुरा कहाती है। उसमें सुरा वा असुरा को न जानकर मद्य के पीने पर कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र दोनों व्रत कर तथा घी का प्राशन करके फिर से उपनयन संस्कार करके शुद्ध होता है ॥ २२ ॥ विष्ठा, मूत्र और वीर्य के खालेने पर भी यही उक्त प्रायश्चित्त जानो ॥ २३ ॥ मद्य के पात्र में रक्खे हुए जल को यदि कोई द्विज पीले तो कमल, गूलर, बेल (विल्व) और ढाक के पत्तों को उबाल के निकाले जलमात्र को पीकर तीन दिन रात व्रत करने से शुद्ध हो जाता है ॥ २४ ॥ बहुत दिनों तक नित्य के अभ्यास से सुरा पीवे तो द्विज

पिबेन्मरणात्पूतो भवतीति ॥२५॥ भ्रूणहनं वक्ष्यामो ब्राह्मणं हत्वा भ्रूणहा भवत्यविज्ञातं च गर्भमविज्ञाता हि गर्भाः पुमांसो भवन्ति॥२६॥तस्मात् पुंस्कृत्याऽऽजुहुतीति, भ्रूणहाग्निमुपसमाधाय जुहुयादेताः ॥ २७ ॥ लोमानि मृत्योर्जुहोमि लोमभिर्मृत्युं वासय, इति प्रथमाम् ॥२८॥ त्वचं मृत्योर्जुहोमि त्वचा मृत्युं वासय,इति द्वितीयाम् ॥२९॥ लोहितं मृत्योर्जुहोमि लोहितेन मृत्युं वासय, इति तृतीयाम् ॥३०॥ मांसं मृत्योर्जुहोमि मांसेन मृत्युं वासय, इति चतुर्थीम् ॥ ३१ ॥ स्नावानि मृत्योर्जुहोमि स्नावभिर्मृत्युं वासय, इति पञ्चमीम् ॥ ३२ ॥ मेदो मृत्योर्जुहोमि मेदसा मृत्युं वासय, इति षष्ठीम् ॥३३॥ अस्थीनि मृत्योर्जुहोमि अस्थिभिर्मृत्युं वासय, इति सप्तमीम् ॥ ३४ ॥ मज्जानं मृत्योर्जुहोमि मज्जभिर्मृत्युं वासय, इत्यष्टमीमिति ॥३५॥

पुरुष अग्निवर्णा सुरा पीकर मरजाने पर शुद्ध होता है ॥२५॥ अब भ्रूण हत्यारे का विचार कहते हैं। ब्राह्मण को तथा अविज्ञात (कि पुत्र है वा पुत्री ऐसा चिन्ह न बन पाने से नहीं जाना गया ऐसे) ब्राह्मणी के गर्भ को गिरा के मनुष्य भ्रूण हत्यारा होता है। क्योंकि अविज्ञात गर्भ-पुरुष माने जाते हैं यह धर्मशास्त्रकारों की माननीय राय है ॥ २६ ॥ तिससे " पुरुष सम्बन्धी क्रिया से भ्रूणहत्या के प्रायश्चित्त में होम करते हैं,, ऐसा श्रुति में कहा है। भ्रूणहत्यारा अग्नि को सामने स्थापित करके आघारादि सामान्य विधिपूर्वक निम्न लिखित आहुति करे ॥ २७ ॥ (लोमानि०—वासय—स्वाहा) इस प्रकार ३५ सूत्र तक कही आठो आहुति स्वाहान्त मन्त्र बोलकर घी से करे। अर्थ--मृत्यु के लिये लोमों को होमता हूं। हे अग्नि देव ! लोमों के साथ मृत्यु को बसाओ! यह मेरी वाणी सत्य हो ॥ २८ ॥ इसी प्रकार त्वचा, रुधिर, मांस, स्नायु (नाड़ी नसें) मेद, अस्थि (हड्डी) और मज्जा इन सब का मृत्यु के लिये होम और इन के साथ मृत्यु का निवास दिखाना होम के मन्त्रों का आशय है। अर्थात् होम करनेवाला कहे कि मेरे शरीर के लोमादि भाग (बहुधा) मरण समय में मृत्यु के साथी बनें, और मृत्यु का निवास उन्हीं के साथ रहे किन्तु मृत्यु मुझ पर कृपा कर मेरे साथ आगे को सम्बन्ध तोड़ देवे तो मैं अमृत मोक्ष का अधिकारी बनूं ॥ ३०-३५ ॥ राजा को वा ब्राह्मण की रक्षा के

राजार्थे ब्राह्मणार्थे वा संग्रामेऽभिमुखमात्मानं घातयेत्त्रिरजितो वाऽनपराद्धः पूतो भवतीति ॥३६॥ विज्ञायते हि ॥३७॥ निरुक्तं ह्येनः कनीयो भवतीति ॥३८॥ तथाऽप्युदाहरन्ति॥३९॥

पतितंपतितेत्युक्त्वा चौरंचौरेतिवापुनः ।

वचसातुल्यदोषःस्यान् मिथ्याद्विर्दोषतांव्रजेत्,इति ॥४०॥

एवं राजन्यं हत्वाऽष्टौ वर्षाणि चरेत्, षड्वैश्यं, त्रीणि शूद्रं, ब्राह्मणीं चात्रेयीं हत्वा, सवनगतौ च राजन्यवैश्यौ ॥ ४१ ॥ आत्रेयीं वक्ष्यामो–रजस्वलामृतुस्नातामात्रेयीमाहुः ॥ ४२ ॥ अत्र ह्येष्यदपत्यं भवतीति ॥ ४३ ॥ अनात्रेयीं राजन्यहिंसायां राजन्यां वैश्यहिंसायां वैश्यां शूद्रहिंसायां शूद्रां हत्वा संवत्सरम् ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणसुवर्णहरणे प्रकीर्य केशान् राजानमभिधावेत् स्तेनोऽस्मि भोः शास्तु मां भवानिति तस्मै

लिये संमुख युद्ध करता अपना घात करा देवे । ऐसा तीन वार युद्ध करने पर भी शत्रुओं से न जीता जाय (न मरे) तो भी निरपराध हुआ शुद्ध होजाता है ॥ ३६ ॥ श्रुति में भी कहने से जाना जाता है कि ॥ ३७ ॥ प्रकाशित प्रसिद्ध किया अपराध घटजाता है ॥ ३८ ॥ वैसा भी श्लोक का प्रमाण कहते हैं कि ॥ ३९ ॥ पतित को पतित और चोर को चोर ऐसा कहकर निकृष्ट शब्द के बोलने से वाणीमात्र का दोष लगता है । परन्तु जो चोरादि नहीं उसको चोरादि मिथ्या कहे तो वक्ता को द्विगुणा दोष लगता है ॥ ४० ॥ इसी प्रकार क्षत्रिय को मारके आठ वर्ष, वैश्य को मारके छः वर्ष, यज्ञप्राप्त–क्षत्रिय, वैश्य, रजस्वला हो के शुद्ध हुई ब्राह्मणी और शूद्र को मारकर तीन वर्षतक कृच्छ्रव्रत प्रायश्चित्त करे ॥ ४१ ॥ रजस्वला होकर ऋतुकाल में स्नान की ब्राह्मणी को आत्रेयी कहते हैं ॥ ४२ ॥ क्योंकि इस ब्राह्मणी में अभीष्ट सन्तान उत्पन्न होता है॥४३॥ जो तत्काल रजस्वला न हो चुकी हो ऐसी क्षत्रिय कन्या को मारकर क्षत्रिय हिंसा में, वैश्य स्त्री को मारने पर वैश्यहिंसा में और वैसी शूद्रा स्त्री को मार कर शूद्रहत्या मध्ये एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत प्रायश्चित्त करे ॥४४॥ ब्राह्मण का सुवर्ण चुराने पर द्विज मनुष्य केशों को बिखेरे हुए बलपूर्वक दौड़ता हुआ राजा के पास जावे और राजा से कहे कि" स्तेनोऽस्मि भोःशास्तुमां भवान्,, मैं चोर

राजौदुम्बरं शस्त्रं दद्यात्तेनात्मानं प्रमापयेन्मरणात् पूतो भवतीति विज्ञायते ॥ ४५ ॥ निष्कालको वा घृताक्तो गोमयाग्निना पादप्रभृत्यात्मानमभिदाहयेन्मरणात्पूतो भवतीति विज्ञायते ॥ ४६ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ४७ ॥

पुराकालात्प्रमीतानां पापाद्विविधकर्मणाम् ।
पुनरापन्नदेहानामङ्गंभवतितच्छृणु ॥ ४८ ॥
स्तेनःकुनखीभवति श्वित्रीभवतिब्रह्महा ।
सुरापःश्यावदन्तस्तु दुश्चर्मागुरुतल्पगः, इति ॥ ४९ ॥

पतितसंप्रयोगं च ब्राह्मेण वा यौनेन वा यास्तेभ्यः सकाशान्मात्रा उपलब्धास्तासां परित्यागस्तैश्च न संवसेदुदीचीं दिशं गत्वाऽनश्नन् संहिताध्ययनमधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते ॥ ५० ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ५१ ॥

हूं आप मुझ को दण्ड दीजिये । तब राजा उसके हाथ में गूलर वृक्ष का सोटा लट्ठ देवे उससे अपने को मारडाले मरजाने से पवित्र होता ऐसा श्रुति से जाना जाता है ॥ ४५ ॥ यदि उक्तरीति से न मरे तो शरीर में घी लगा कर कण्डों के अतिप्रज्वलित अग्नि में अपने शरीर को जलाकर भस्म करे । इस प्रकार मर जाने से आगे को पवित्र हो जाते हैं ऐसा श्रुति से जाना जाता है ॥ ४६ ॥ और भी श्लोक का प्रमाण कहते हैं कि ॥ ४७ ॥ नाना प्रकार के प्रबल दुष्कर्मों सम्बन्धी पापों से क्षीणायु होकर मृत्यु के समय से पहिले ही मरे मनुष्यों का जन्मान्तर में जैसा शरीर होता है सो सुनो ॥ ४८ ॥ ब्राह्मण के सुवर्ण को चुरानेवाले के नख बिगड़े हुए होते, ब्रह्म हत्यारा श्वेत कुष्ठी होता, मद्य पीनेवाले के काले दांत होते और गुरुस्त्रीगामी की त्वचा बिगड़ी होती है ॥ ४९ ॥ ऐसे पतितों के साथ वेदादि शास्त्रों के पठन पाठन रूप से वा विवाहरूपसे जो कोई मेल मिलाप सम्बन्ध करे उसने जो कुछ धनादि पदार्थ का अंश पतितों से लिया हो उसका प्रथम त्याग करे और फिर उनके साथ न बसे। फिर उत्तर दिशा में एकान्त शुद्ध स्थल में जाकर उपवास पूर्वक वेद की संहिता को पारायण रूप से पढ़ता हुआ पवित्र होता है यह श्रुति से जाना जाता है ॥ ५० ॥ और भी श्लोक का प्रमाण कहते हैं कि ॥ ५१ ॥ शरीर को

शरीरपरितापेन तपसाध्ययनेनच ।
मुच्यतेपापकृत्पापाद्दानाच्चापिप्रमुच्यते,इति
विज्ञायते, इति विज्ञायते ॥ ५२ ॥
इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

शूद्रश्चेद् ब्राह्मणीमभिगच्छेद्वीरणैर्वेष्टयित्वा शूद्रमग्नौ प्रास्येत् ॥ १॥ ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषा समभ्यज्य नग्नां कृष्णं खरमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत्पूता भवतीति विज्ञायते ॥ २ ॥ वैश्यश्चेद् ब्राह्मणीमभिगच्छेल्लोहितदर्भैर्वेष्टयित्वा वैश्यमग्नौ प्रास्येत् ॥ ३॥ ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नग्नां गौरखरमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते ॥ ४ ॥ राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेच्छरपत्रैर्वेष्टयित्वा राजन्यमग्नौ प्रास्येत्, ब्राह्मण्याः शिरोवपनं कारयित्वा सर्पिषासमभ्यज्य नग्नां रक्तं खरमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत् पूता भवतीति

तपाने कष्ट देने रूप तपसे, वेदाध्ययन से और सुपात्रों को दिये दान से पाप करनेवाला पुरुष पाप से छूट जाता है । यह बात श्रुति से जानी जाती है ॥५२॥
यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में बीसवां अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

यदि शूद्र ब्राह्मणी से व्यभिचार करे तो राजा उसको गांडर से लपेटकर प्रज्वलित अग्नि में डलवादेवे ॥ १ ॥ और ब्राह्मणी का शिर मुंडा के सब शरीर में घी लगाकर नंगी करके काले गधेपर चढ़वा के बड़ी चौड़ी सड़क से निकाले जिस दशा को सब कोई देखे तो शुद्ध होजाती यह श्रुति से जाना जाता है ॥ २ ॥ यदि वैश्य पुरुष ब्राह्मणी से संग करे तो लाल दाभों से लपेटकर उस वैश्य को प्रज्वलित अग्नि में फेंक देवे ॥ ३ ॥ और ब्राह्मणी का शिर मुंडवा के शरीर में घी लगाकर सफेद गधे पर नंगी चढ़ा के बड़ी सड़क से निकाले तो पवित्र होजाती ऐसा जाना जाता है ॥ ४ ॥ यदि क्षत्रिय पुरुष ब्राह्मणी से व्यभिचार करे तो शरपते से लपेटकर प्रज्वलित अग्नि में डलवा देवे और ब्राह्मणी का शिर मुंडवा के शरीर में घी लगाकर नंगी कर लाल गधे पर च-

विज्ञायते ॥ ५॥ एवं वैश्यो राजन्यायां शूद्रश्च राजन्यावैश्यायाः ॥ ६ ॥ मनसा भर्तुरतिचारे त्रिरात्रं यावकं क्षीरौदनं वा भुञ्जानाऽधःशयीतोऽर्ध्वं त्रिरात्रादप्सु निम्नगायाः सावित्र्या अष्टशतेन शिरोभिर्जुहुयात्, पूता भवतीति विज्ञायते ॥ ७ ॥

वाक्सम्बन्ध एतदेव मासं चरित्वोर्ध्वं मासादप्सु निम्नगायाः सावित्र्याश्चतुर्भिरष्टशतैः शिरोभिर्जुहुयात्पूता भवतीति विज्ञायते ॥८॥ व्यवाये तु संवत्सरं घृतपटं धारयेत् ॥ ९ ॥ गोमयगर्त्ते कुशप्रस्तरे वा शयीतोर्ध्वं संवत्सरादप्सु निम्नगायाः सावित्र्यास्त्र्यष्टशतेन शिरोभिर्जुहुयात्पूता भवतीति विज्ञायते ॥ १० ॥

व्यवायेतीर्थगमने धर्मेभ्यस्तुनिवर्तते ।

हुता के बड़ी सड़क से निकाले तो पवित्र होजाती है यह जाना जाता है॥५॥ इसी प्रकार वैश्य पुरुष क्षत्रिया स्त्री से तथा शूद्र पुरुष क्षत्रिया और वैश्या स्त्री से व्यभिचार करे तो पूर्वोक्त प्रकार से ही दोनों का प्रायश्चित्त जानो ॥ ६ ॥ यदि द्विज स्त्री मन से दूसरे पुरुष की चाहना द्वारा पति का उलंघन वा तिरस्कार करे तो तीन दिन तक दूध भात और कुलत्थ खाती हुई भूमि पर सोवे। तीन दिन के उपरान्त नदी के जल में सावित्री के शिरोमन्त्र (आपोज्योती०) एक सौ आठ मन्त्रों से घी की आहुति करे तो पवित्र हो जाती है ऐसा श्रुति से जाना जाता है॥७॥ यदि वाणी द्वारा अन्य पुरुष से संयोग की बात करे वा पति का अनादर वा आज्ञा का उलङ्घन करे वा गाली आदि कठोर बोले तो पूर्वोक्त ७ वें मन्त्र में कहा व्रत एक मास तक करके नदी के जल में सावित्री (तत्सवितुः०) मन्त्र के शिरो मन्त्र (ओम्–आपोज्योती०) से ४३२ आहुति घी की छोड़े तो शुद्ध हो जाती है यह श्रुति से जाना जाता है ॥ ८ ॥ यदि द्विज स्त्री पर पुरुष से संग करे तो एक वर्ष तक घी लगाये वस्त्र धारण करे (अथवा केवल घी लगा कर नंगी रहे अथवा घृत नाम जल से भीगे वस्त्र धारण करे) ॥९॥ गोबर के गढ़े में वा कुशों के बिछौना पर सोया करे । एक वर्ष के पश्चात् सावित्री के शिरो मन्त्र (आपोज्योती०) से नदी के जल में ३२४ आहुति घी की छोड़े तो पवित्र होती ऐसा जाना जाता है ॥ १० ॥ मैथुन में विशेष कर प्रवृत्त होने तथा तीर्थयात्रा करने वाला अन्य सब

चतस्रस्तु परित्याज्याः शिष्यगागुरुगाचया ॥ ११ ॥
पतिघ्नी च विशेषेण जुङ्गितोपगता च या ॥ १२ ॥
याब्राह्मणीसुरापी नतांदेवाःपतिलोकंनयन्ति ।
इहैवसाचरतिक्षीणपुण्याऽप्सुलुगभवतिशुक्तिकावा ॥१३॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रियःशूद्रेणसंगताः ।
अप्रजाताविशुद्ध्यन्ति प्रायश्चित्तेननेतराः ॥
प्रतिलोमंचरेयुस्ताः कृच्छ्रंचान्द्रायणोत्तरम् ॥ १४ ॥
पतिव्रतानांगृहमेधिनीनां सत्यव्रतानांचशुचिव्रतानाम् ।
तासांतुलोकाःपतिभिःसमाना,गोमायुलोकाव्यभिचारिणीनाम्१५
पतत्यर्धंशरीरस्य यस्यभार्यासुरांपिबेत् ।
पतितार्द्धशरीरस्य निष्कृतिर्नविधीयते ॥ १६ ॥
ब्राह्मणश्चेदप्रेक्षापूर्वं ब्राह्मणदारानभिगच्छेदनिवृत्तध-

नियम धर्मों से रहित हो जाता है। तथापि मनुष्य को पुत्र शिष्यों की स्त्री, पितादि गुरुओं की पत्नी, पतिका घात करने वाली और वर्जित नीच के साथ संग करने वाली इन चार प्रकार की स्त्रियों को विशेष कर त्यागना चाहिये परन्तु पाप सब के साथ व्यभिचार करने में है॥ ११ । १२ ॥ जो ब्राह्मणी सुरा (मद्य) पीने वाली होती है उस को देवता लोग पति के साथ स्वर्ग में नहीं घुसने देते। वह पुण्य का नाश हो जाने से इसी मर्त्यलोक में विचरती है। जल में डुबकी लगाने वाली पक्षिणी वा सीपी होती है॥ १३ ॥ जिन के कोई सन्तान न हुआ हो ऐसी ब्राह्मणी, क्षत्रिय, वैश्य, की स्त्रियां शूद्र से संग करें तो प्रायश्चित्त से शुद्ध हो सकती हैं किन्तु जिन के सन्तान हो चुके वे शुद्ध नहीं हो सकतीं। वे स्त्रियां उलटा कृच्छ्र व्रत करके चान्द्रायण व्रत करें ॥ १४ ॥ शुद्ध पवित्रता से रहने वालीं, सत्य बोलने वालीं, और पतिव्रता होने से घर को पवित्र करने वालीं स्त्रियों को अपने पतियों के सहित स्वर्ग प्राप्त होता, और व्यभिचारिणी स्त्रियों को शृगाल योनि मिलती है ॥ १५ ॥ जिस द्विज की स्त्री मद्य पीती है उस का आधा शरीर पतित हो जाता है और जिस के शरीर का आधा भाग पतित हो गया उस के शुद्ध होने का प्रायश्चित्त नहीं है ॥ १६ ॥ ब्राह्मण पुरुष यदि विना विचारे किसी ब्राह्मण की स्त्री से

र्मकर्मणः कृच्छ्रो निवृत्तधर्मकर्मणोऽतिकृच्छ्रः ॥ १७ ॥ एवं राजन्यवैश्ययोः ॥१८॥ गां चेद्धन्यात्तस्याश्चर्मणाऽऽर्द्रेण परिवेष्टितः षण्मासान् कृच्छ्रं तप्तकृच्छ्रं वा तिष्ठेत् ॥१९॥ तयोर्विधिः ॥ २० ॥ त्र्यहं दिवा भुङ्क्ते नक्तमश्नाति वैत्र्यहम् । त्र्यहमयाचितव्रतस्त्र्यहं न भुङ्क्त इति कृच्छ्रः ॥२१॥

त्र्यहमुष्णंपिबेदापस्त्र्यहमुष्णंपयः पिबेत् ।
त्र्यहमुष्णंघृतंपीत्वा वायुभक्षःपरंत्र्यहम् ॥२२॥
इति तप्तकृच्छ्रः ॥ २३ ॥ ऋषभवेहतौ च दद्यात् ॥ २४ ॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥ २५ ॥

त्रयएव पुरारोगाईर्ष्या अनशनंजरा ।
पृषद्धस्तनयंहत्वा अष्टानवतिमाहरेत्,इति ॥ २६ ॥
श्वमार्जारनकुलसर्पदर्दुरमूषकान् हत्वा कृच्छ्रं द्वादश

संग करे और अपने धर्म कर्म में भी तत्पर रहे तो एक कृच्छ्र व्रत करे । और धर्म का नियम छोड़के वैसा किया हो तो अतिकृच्छ्र व्रत करे ॥ १७ ॥ इसी प्रकार क्षत्रिय तथा वैश्य पुरुष अपने २ वर्ण की स्त्रियों से गमन करें तो भी पूर्वोक्तरीति से ही प्रायश्चित्त जानो ॥१८॥ यदि कोई पुरुष गौ को मारडाले तो उस के गीले चर्म को ओढ़के छःमास तक कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्र व्रत करे ॥ १९ ॥ उन दो व्रतों का विधान यह है कि ॥ २० ॥ तीन दिन तक दिन में, तीन दिन तक रात में,परिमित एकवार भोजन करे । तीन दिन विना मांगे जो मिले वही एकवार खावे और तीन दिन निराहार उपवास करे यह एक कृच्छ्र व्रत कहाता है ॥ २१ ॥ तीन दिन गर्म जल, तीन दिन गर्म दूध, तीन दिन गर्म घी और तीन दिन वायु मात्र भक्षण करे ॥ २२ ॥ इस बारह दिन के व्रत को तप्तकृच्छ्र कहते हैं ॥ २३ ॥ गर्भवती होने के समय बर्दाने से जिस का गर्भ गिर जाता हो ऐसी गर्भ को गिराने वाली वेहत् गौ और एक बैल व्रत के अन्त में दक्षिणा देवे ॥ २४ ॥ और भी श्लोक का प्रमाण कहते हैं कि ॥ २५ ॥ तीन रोग पहिले वा मुख्य हैं एक ईर्ष्या, २–उपवास, ३–बुढ़ापा । बूंदों का मारने वाला सन्तान को मार कर अट्ठानवे लेलेवे (?) ॥ ॥ २६ ॥ कुत्ता, बिल्ली, न्योला, सांप, मेंडक, मूषा, इन को मारकर बारह दिन

रात्रं चरेत्किंचिद्दद्यात् ॥ २७ ॥ अनस्थिमतां तु सत्त्वानां गोचर्ममात्रं राशिं हत्वा कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत्किंचिद्दद्यात् ॥ २८ ॥ अस्थिमतां त्वेकैकम् ॥ २९ ॥ योऽग्नीनपविध्येत्कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनराधानं कारयेत् ॥ ३० ॥ गुरोश्चालीकनिर्बन्धः सचैलं स्नातो गुरुं प्रसादयेत्प्रसादात्पूतो भवतीति विज्ञायते ॥ ३१ ॥ नास्तिकः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा विरमेन्नास्तिक्यात् ॥३२॥ नास्तिकवृत्तिस्त्वतिकृच्छ्रम् ॥ ३३ ॥ एतेन सोमविक्रयी व्याख्यातः ॥ ३४ ॥ वानप्रस्थो दीक्षाभेदे कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा महाकक्षे वर्धयेत् ॥ ३५ ॥ भिक्षुकैर्वानप्रस्थवत्सोमवृद्धिवर्जं स्वशास्त्रसंस्कारश्च स्वशास्त्रसंस्कारश्चेति ॥ ३६ ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

कृच्छ्रव्रत करे और कुछ दान भी देवे ॥ २७ ॥ विना हड्डी वाले जीवों को एक बैल के चाम में जितने भरे जावें उतने मारकर बारह दिन कृच्छ्रव्रत करे और कुछ थोड़ा दान भी करे ॥ २८ ॥ तथा हड्डी वाले एक २ के मारने में भी उतना ही प्रायश्चित्त करे ॥२९॥ जो पुरुष स्थापित किये अग्नियों (गार्हपत्यादि) को नष्ट करे अर्थात् त्यागे वह बारह दिन कृच्छ्रव्रत करके फिर से अग्नियों को विधिपूर्वक स्थापित करे ॥ ३० ॥ गुरु के साथ मिथ्या भाषण वा छल कपट का व्यवहार करनेवाला सचैल स्नान करके गुरुको प्रसन्न करे तो पवित्र होता यह श्रुति से जाना जाता है ॥ ३१ ॥ नास्तिकपन का कोई काम करे तो बारह दिन का कृच्छ्रव्रत करके नास्तिकता से उपराम (चित्तनिवृत्ति) कर लेवे ॥३२॥ नास्तिकी जीविका करे तो अतिकृच्छ्र व्रत करे ॥३३॥ सोम बेचनेवाले के लिये भी यही प्रायश्चित्त जानो ॥ ३४ ॥ वानप्रस्थ अपने आश्रम के नियमों को तोड़े तो किसी बड़े कछार में बारह दिन कृच्छ्रव्रत कर के फिर अपने नियम धर्म को बढ़ावे ॥ ३५ ॥ संन्यासियों को लोभ और धर्मादि की वृद्धि का विचार छोड़ के अपना नियम तोड़ने पर वानप्रस्थ के तुल्य प्रायश्चित्त और अपने मोक्ष शास्त्र के संस्कारों को बढ़ाना चाहिये ॥ ३६ ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में इक्कीशवां अध्याय पूरा हुआ ॥

अथ खल्वयं पुरुषो मिथ्या व्याकरोत्ययाज्यं वा याजयति,अप्रतिग्राह्यं वा प्रतिगृह्णाति,अनन्नं वाऽश्नाति, अनाचरणीयमेवाऽऽचरति,तत्र प्रायश्चित्तं कुर्यान्न कुर्य्यादिति मीमांसन्ते,न कुर्य्यादित्याहुर्नहि कर्म क्षीयतइति, कुर्यादित्येव तस्मात्-श्रुतिनिदर्शनात्तरति सर्वं पाप्मानं तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजतइति ॥ १ ॥ वाचाऽभिशस्तो गोसवेनाग्निष्टुता यजेत॥२॥ तस्य निष्क्रयणानि जपस्तपो होम उपवासो दानमुपनिपदो वेदादयो वेदान्ताः सर्वच्छन्दः संहिता मधून्यघमर्षणमथर्वशिरो रुद्राः पुरुषसूक्तं राजनरौहिणे सामनो कूष्माण्डानि पावमान्यः सावित्री चेति पावनानि ॥ ३ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ४ ॥

वैश्वानरीव्रतपतीं पवित्रेष्टिंतथैवच ।
सकृद्ऋतौप्रयुञ्जानः पुनातिदशपूरुषम्,इति ॥ ५ ॥

इसके बाद यह विचार करते हैं कि यह मनुष्य मिथ्या बोलता, अनधिकारी नीचों को यज्ञ कराता, अनुचित निषिद्ध दान को लेता,अभक्ष्य पदार्थों को खाता और प्रायः निन्दित शास्त्र विरुद्ध आचरण करता है। उन सब अंशों में प्रायश्चित्त करे ? वा न करे ऐसी मीमांसा करते हैं। पूर्वपक्षी कहते हैं कि प्रायश्चित्त न करे क्योंकि विना भोगे किया कर्म क्षीण नहीं होता। उत्तर पक्षवाले कहते हैं कि प्रायश्चित्त अवश्य करे क्योंकि श्रुति में लिखा है कि "जो पुरुष अश्वमेध यज्ञ करता है उसके सब पाप छूट जाते हैं। और ब्रह्म हत्या के पाप से भी मुक्त हो जाता है,, ॥१॥ वाणी से निन्दित अर्थात् अति कठोर आदि आचरण करने से निन्दित पुरुष गोसव अग्निष्टुत् यज्ञ करे ॥२॥ उन यज्ञों के प्रत्याम्नाय वा प्रतिनिधि—जप, तप, होम, उपवास, दान, उपनिषद्-वेदादि-वेदान्त, सब छन्द, संहिता, मधुऋचा, अघमर्षण, अथर्वशिरः, रुद्राध्याय, वा रुद्रसूक्त, पुरुष सूक्त, राजन्-रौहिण दोनों साम, कूष्माण्ड सूक्त, पवमान सूक्त, और सावित्री मन्त्र ये सब पावन हैं। इन का जप पाठ शुद्ध होके एकान्त में श्रद्धा से करे ॥ ३ ॥ और भी श्लोक का प्रमाण कहते हैं कि ॥ ४ ॥ वैश्वानरी, व्रतपती, और पवित्रा इष्टि को प्रत्येक ऋतु में एक बार करे तो दश पीढ़ी को पवित्र करता है ॥ ५ ॥

उपवासन्यायेन पयोव्रतता फलभक्षता प्रसृतयावको हिरण्यप्राशनं सोमपानमिति मेध्यानि ॥ ६ ॥ सर्वे शिलोच्चयाः सर्वाः स्रवन्त्यः पुण्या ह्रदास्तीर्थान्यृषिनिवासगोष्ठपरिष्कन्धा इति देशाः ॥ ७ ॥ संवत्सरो मासश्चतुर्विंशत्यहो द्वादशाहः षडहस्त्र्यहोऽहोरात्रइति कालाः ॥८॥ एतान्येवानादेशे विकल्पेन क्रियेरन्, एनःसु गुरुषु गुरूणि लघुषु लघूनि ॥९॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति सर्वप्रायश्चित्तिः सर्वप्रायश्चित्तिरिति ॥ १० ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

ब्रह्मचारी चेत्स्त्रियमुपेयादरण्ये चतुष्पथे लौकिकेऽग्नौ रक्षोदैवतं गर्दभं पशुमालभेत, नैर्ऋतं वा चरुं निर्वपेत, तस्य जुहुयात्कामाय स्वाहा, कामकामाय स्वाहा, निर्ऋत्यै स्वाहा, रक्षोदेवताभ्यः स्वाहेति ॥ १ ॥ एतदेव रेतसः प्रयत्नोत्सर्गे

उपवास की रीति से दूध का व्रत, केवल फल खाना, मुट्ठी भर कुलत्थ, सुवर्ण, सोमपान, इनमें से किसी एक को कुछ नियत काल तक सेवन करते हुए व्रत करना बुद्धि को शुद्ध करता है ॥ ६ ॥ सब पर्वत, सब नदियां, तालाव, तीर्थ, ऋषियों के निवास स्थान, गोशाला, बड़े २ प्राचीन नामी वृक्ष वटपीपलादि ये सब पवित्र देश हैं॥७॥ एक वर्ष, एक महिना, २४ दिन, बारह दिन, छः दिन, तीन दिन, और एक दिन ये प्रायश्चित्त के काल हैं ॥ ८ ॥ इन्हीं में से किसी नियत काल तक विकल्प से अर्थात् किसी अपराध में किसी काल तक प्रायश्चित्त वहां करें कि जहां काल का नियम न किया हो । बड़े पापोंमें बड़ा प्रायश्चित्त और छोटे पापों में छोटा प्रायश्चित्त करे ॥ ९ ॥ कृच्छ्र, अति कृच्छ्र, और चान्द्रायण ये सभी अपराधों पर प्रायश्चित्त हैं ॥ १० ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में बाईसवां अध्याय पूरा हुआ ॥२२॥

यदि ब्रह्मचारी पुरुष किसी स्त्री से वन में संग करे तो चौराहे पर लौकिक अग्नि में राक्षस देवता वाले गर्दभ पशु का आलम्भन करे । अथवा निर्ऋति देवता का विधि पूर्वक चरु बना कर आघारादि पूर्वक (कामाय स्वाहा) इत्यादि चार आहुति देवे ॥ १ ॥ प्रयत्न के साथ वीर्य के निकाल देने, दिन को सोने अथवा अन्य नियमों के टूटने पर भी समावर्त्तन के समय तक

दिवा स्वप्ने व्रतान्तरेषु वा ऽऽसमावर्त्तनात्तिर्यग्योनिव्यवाये॥२॥ शुक्लमृषभं दद्यात् ॥ ३ ॥ गां गत्वा शूद्रावधेन दोषो व्याख्यातः ॥४॥ ब्रह्मचारिणः शवकर्मणा व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोः ॥५॥ स चेद् व्याधीयीत कामं गुरोरुच्छिष्टं भेषजार्थं सर्वं प्राश्नीयात् ॥६॥ गुरुप्रयुक्तश्चेन्म्रियेत त्रीन्कृच्छ्रांश्चरेद् गुरुः ॥ ७ ॥ ब्रह्मचारी चेन्मांसमश्नीयादुच्छिष्टभोजनीयं कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥ ८ ॥ श्राद्धसूतकभोजनेषु चैवम् ॥ ९ ॥ अकामतोपनतं मधु वाजसनेयके न दुष्यतीति विज्ञायते ॥१०॥ यआत्मत्याग्यभिशस्तो भवति सपिण्डानां प्रेतकर्मच्छेदः ॥ ११ ॥ काष्ठलोष्ठजलपाषाणशस्त्र विषरज्जुभिर्यआत्मानमवसादयति,स आत्महा भवति ॥१२॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ १३ ॥

यही प्रायश्चित्त करे। यदि पशुस्त्री गौ आदि से मैथुन करे तो ॥२॥ उक्त होम के पश्चात् श्वेत बैल दक्षिणा में देवे ॥ ३ ॥ गौ के साथ मैथुन करे तो पूर्व कहे शूद्रा स्त्री के वध का प्रायश्चित्त करे ॥४॥ माता पिता के मरण को छोड़ के अन्य के मरने पर ब्रह्मचारी को सूतक का दोष नहीं लगता है ॥ ५ ॥ यदि ब्रह्मचारी रोगी हो जाय तो दवाई के विचार से केवल गुरु का उच्छिष्ट मात्र भोजन करे ॥ ६ ॥ गुरु की प्रेरणा से यदि ब्रह्मचारी मर जावे तो गुरु तीन कृच्छ्रव्रत करके प्रायश्चित्त करे ॥ ७ ॥ ब्रह्मचारी यदि मांस खा लेवे तो उच्छिष्ट भोजनांश द्वारा बारह दिन तक कृच्छ्रव्रत करके प्रायश्चित्त को समाप्त करे ॥ ८ ॥ किसी के श्राद्ध और सूतक में ब्रह्मचारी भोजन करे तो भी यही उक्त प्रायश्चित्त करे ॥ ९ ॥ विना कामना के ब्रह्मचारी का वीर्य निकल जाय तो मधु वाजसनेय श्रुति से जाना जाता है कि दोष नहीं लगता ॥१०॥ जो निन्दित पुरुष स्वयं आत्मघात करके मरे उस का सपिण्डों को प्रेतनिवृत्त्यर्थ पिण्डदानादि कर्म नहीं करना चाहिये ॥ ११ ॥ काष्ठ से दब के, मट्टी से दब के, जल में डूब के, पत्थरों से पिच कर वा दब के, शस्त्र से शिर काट कर, विष खाके, और फांसी लगा के जो पुरुष अपनी हत्या करता है वह आत्मघाती होताहै ॥१२॥ और भी श्लोक का प्रमाण कहतेहैं कि ॥ १३ ॥

यआत्मत्यागिनःकुर्यात्स्नेहात्प्रेतक्रियांद्विजः ।
सतप्तकृच्छ्रसहितं चरेच्चान्द्रायणव्रतम्,इति ॥१४॥

चान्द्रायणं परस्ताद्वक्ष्यामः ॥१५ ॥ आत्महननाध्यवसाये त्रिरात्रम् ॥ १६ ॥ जीवन्नात्मत्यागी कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत्,त्रिरात्रं ह्युपवसेन्नित्यं स्निग्धेन वाससा प्राणानात्मनि चाऽऽयम्य त्रिः पठेदघमर्षणमिति ॥ १७ ॥ अपि वैतेन कल्पेन गायत्रीं परिवर्त्तयेत् । अपिवाऽग्निमुपसमाधाय कूष्माण्डैर्जुहुया द्घृतम् ॥१८॥ यच्चान्यन्महापातकेभ्यः सर्वमेतेन पूयत इत्यथाप्याचामेत् ॥ १९ ॥ अग्निश्चमामन्युश्चेति प्रातर्मनसापापं ध्यात्वोंपूर्वाः सत्यान्ता व्याहृतीर्जपेदघमर्षणं वा पठेत् ॥२०॥ मानुषास्थिस्निग्धं स्पृष्ट्वा त्रिरात्रमाशौचमस्निग्धे त्वहोरात्रम् ॥ २१ ॥ शवानुगमने चैवम् ॥ २२ ॥

जो पुत्रादि द्विज पुरुष आत्महत्या करने वाले का स्नेह प्रीति मान के प्रेत कर्म करे वह तप्त कृच्छ्र सहित चान्द्रायण व्रत करे ॥ १४ ॥ चान्द्रायण व्रत आगे कहेंगे ॥ १५ ॥ आत्महत्या करने का निश्चय मात्र किया हो तो तीन दिन व्रत करे ॥१६॥ आत्महत्या के लिये विष खाकर वा फांसी आदि लगा कर भी किसी कारण मृत्यु न हो जीवित हो रहे तो बारह दिन कृच्छ्रव्रत करे पश्चात तीन दिन पृथक् उपवास करे, नित्य गीले वस्त्र पहन कर प्राणायाम करता हुआ तीन वार अघमर्षण सूक्त पढ़े ॥१७॥ अथवा उक्त पन्द्रह १५ दिन व्रत के समय गायत्री का निरन्तर जप करे । अथवा विधि पूर्वक अग्नि को सामने रख के प्रति दिन कूष्माण्ड मन्त्रों द्वारा घी से होम करे ॥ १८ ॥ महापातकों से भिन्न जो कुछ अपराध किये हों वे सभी इस (१७। १८ सूत्रों में कहे १५ दिन के) प्रायश्चित्त से दूर हो जाते हैं। निम्न रीति से प्रति दिन आचमन करे ॥ १९ ॥ मन से पाप का ध्यान करके (अग्निश्चमा०) मन्त्र से आचमन करे फिर ओं पूर्वक सात व्याहृतियों को अथवा अघमर्षण सूक्त को पढ़े ॥ २० ॥ मनुष्य की गीली हड्डी का स्पर्श करके तीन दिन अशुद्धि और सूखी हड्डी का स्पर्श करे तो एक दिन रात सूतक के तुल्य अशुद्धि मान कर रहे पीछे सूतक के तुल्य शुद्धि करे ॥ २१ ॥ मुर्दा के साथ मरघट तक जावे तो मुर्दा का स्पर्श करने पर तीन दिन तथा स्पर्श न करने पर एक दिन सूतक माने ॥ २२ ॥

अधीयानानामन्तरागमने त्वहोरात्रमभोजनम्,त्रिरात्रमभिषेको विवासश्चान्योन्येन ॥ २३ ॥ श्वमार्जारनकुलशीघ्रगाणामहोरात्रम् ॥ २४ ॥ श्वकुक्कुटग्राम्यसूकरकङ्कगृध्रभासपारावतमानुषकाकोलूकमांसादने सप्तरात्रमुपवासो निष्पुरीषभावो घृतप्राशः पुनःसंस्कारश्च ॥ २५ ॥

ब्राह्मणस्तुशुनादष्टो नदींगत्वासमुद्रगाम् ।
प्राणायामशतंकृत्वा घृतंप्राश्यततःशुचिः। इति ॥ २६ ॥
कालोऽग्निर्मनसःशुद्धिरुदकार्कावलोकनम् ।
अविज्ञानंचभूतानां षड्विधाशुद्धिरिष्यते,इति ॥२७॥

श्वचाण्डालपतितोपस्पर्शने सचेलं स्नातः सद्यः पूतो भवतीति विज्ञायते ॥ २८ ॥ पतितचाण्डालशववहने त्रिरात्रं वाग्यता अनश्नन्त आसीरन्, सहस्रपरमं वा तदभ्यसन्तः पूता भवन्तीति विज्ञायते ॥ २९ ॥

वेदशास्त्र पढ़ते पढ़ाते हुए गुरु शिष्य के बीच से कोई निकले तो एक दिन रात उपवास करें। तीन दिन अभिषेक करें तथा गुरु शिष्य दोनों तीन दिन दूर २ रहें ॥ २३ ॥ कुत्ता, बिलाव, न्योला, वा कोई दौड़ता हुआ वेदाध्यापन के समय गुरु शिष्य के बीच से निकल जावे तो दोनों गुरु शिष्य एक दिन रात उपवास करें ॥ २४ ॥ कुत्ता, मुर्गा, गांव का सुवर, चील्ह, गीध, भास, परेवा, गांव का कौवा, उल्लू, इन का मांस खा लेने पर सात दिन उपवास करे, उदर से मल की शुद्धि, और घी खावे तथा फिर से उपनयन संस्कार करे॥२५॥ यदि ब्राह्मण को कुत्ते ने काटा हो तो गंगा जी वा समुद्र तक गयी अन्य नदी पर जाके स्नान के पश्चात् सौ प्राणायाम कर घी खाके शुद्ध होता है ॥ २६ ॥ काल बीतना, अग्नि, मन की शुद्धि, जलाशय का दर्शन, सूर्यनारायण का दर्शन, और प्राणियों को न जानना देखना निर्जन एकान्त का वास ये छः प्रकार शुद्धि के साधारण हैं॥२७॥कुत्ता, चाण्डाल और पतित का स्पर्श करे तो सचैल स्नान करने से तत्काल शुद्ध हो जाता है यह श्रुति से जाना गया है ॥२८॥ पतित, चाण्डाल और मुर्दा को उठा के ले जाने पर मौन हुए तीन दिन बिना कुछ खाते हुए बैठे रहें। और (सहस्र परमं०) मन्त्र का जप करें तो शुद्ध होते यह श्रुति से जाना जाता है ॥ २९ ॥ निन्दित निषिद्ध पुरुषों को

एतेनैव गर्हिताध्यापकयाजका व्याख्याताः, दक्षिणात्यागाच्च पूता भवन्तीति विज्ञायते ॥ ३० ॥ एतेनैवाभिशस्तो व्याख्यातः ॥ ३१ ॥ अथापरं भ्रूणहत्यायां द्वादशरात्रमब्भक्षो द्वादशरात्रमुपवसेत् ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणमनृतेनाभिशंस्य पतनीयेनोपपतनीयेन वा मासमब्भक्षः शुद्धवतीरावर्तयेत् ॥ ३३ ॥ अश्वमेधाऽवभृथे वा गच्छेत् ॥ ३४ ॥ एतेनैव चाण्डालीव्यवायो व्याख्यातः ॥ ३५ ॥ अथापरः कृच्छ्रविधिः साधारणो व्यूढः ॥ ३६ ॥

अहःप्रातरहर्नक्तमहरेकमयाचितम् ।
अहःपराकंतत्रैकमेवंचतुरहौपरौ ॥ ३७ ॥
अनुग्रहार्थंविप्राणां मनुर्धर्मभृतांवरः ।
बालवृद्धातुरेष्वेवं शिशुकृच्छ्रमुवाचह ॥ ३८ ॥
अथ चान्द्रायणविधिः ॥ ३९ ॥

वेद पढ़ाने तथा यज्ञ कराने वालों को भी यही प्रायश्चित्त है । और नीचों से दक्षिणा का त्याग करें तो पवित्र हो जाते हैं ऐसा जाना गया है ॥ ३० ॥ इसी के तुल्य निन्दित का प्रायश्चित्त जानो ॥ ३१ ॥ और भ्रूण हत्या करने पर बारह दिन जल मात्र पी कर रहे तथा बारह दिन सर्वथा उपवास करे इस चौबीश दिन के व्रत से भी शुद्ध होता है ॥३२॥ ब्राह्मण की झूठी निन्दा करे तो महापातक वा उपपातक के तुल्य दोष लगता है उस के लिये एक मास तक जलमात्र पीकर व्रत करता हुआ शुद्धवती (एतोविन्द्रं स्तवाम० । सामसं० उत्तरार्चिके अ० १२ खं० ३) इत्यादि तीन ऋचाओं का वार २ जप करे ॥३३॥ अथवा अश्वमेध यज्ञ के अवभृथ स्नान में विद्वानों की आज्ञा लेकर सम्मिलित हो ॥३४॥ इसी के तुल्य चाण्डाली स्त्री के साथ संग करने पर भी प्रायश्चित्त करे ॥३५॥ अब असमर्थ वृद्ध बालकादि के लिये कृच्छ्र व्रत का छोटा साधारण विधान दिखाते हैं ॥३६॥ एक दिन प्रातःकाल, एक दिन सायंकाल, और एक दिन अयाचित भोजन करे तथा एक दिन सर्वथा उपवास करे । ऐसे चार दिन का यह कृच्छ्र व्रत कहाता है इसी के अनुसार तप्त कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र भी चार २ दिन के जानो ॥३७॥ धर्म को धारण करने वालों में श्रेष्ठ मनु जी ने बालक, वृद्ध, रोगी, और साधारण निर्बल ब्राह्मणों पर कृपा दृष्टि करके यह शिशु कृच्छ्र व्रत कहा है ॥ ३८ ॥ अब चान्द्रायण व्रत का विधान दिखाते हैं ॥३९॥

मासस्यकृष्णपक्षादौ ग्रासानद्याच्चतुर्दश ।
ग्रासाऽपचयभोजीस्यात्पक्षशेषंसमापयेत् ॥ ४० ॥
एवंहिशुक्लपक्षादौ ग्रासमेकंतुभक्षयेत् ।
ग्रासोपचयभोजीस्यात्पक्षशेषंसमापयेत् ॥ ४१ ॥
अत्रैवगायेत्सामानि अपिवाव्याहृतीर्जपेत् ।
एषचान्द्रायणोमासः पवित्रमृषिसंस्तुतः ॥ ४२ ॥
अनादिष्टेषुसर्वेषु प्रायश्चित्तंविधीयतेविधीयत, इति ॥४३॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथातिकृच्छ्रः ॥ १ ॥ त्र्यहं प्रातस्तथासायमयाचितं पराकइति कृच्छ्रः ॥ २ ॥ यावत्सकृदाददीत तावदश्नीयात्पूर्ववत्सोऽतिकृच्छ्रः ॥ ३ ॥ अब्भक्षः स कृच्छ्रातिकृच्छ्रः ॥ ४ ॥

महीने के प्रारम्भ में कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को चौदह ग्रास खावे फिर द्वितीयादि तिथियों में एक २ ग्रास घटाता जावे । अमावास्या को निराहार उपवास करे ॥४०॥ इसी प्रकार शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को एक ग्रास खावे फिर द्वितीयादि तिथियों में एक २ ग्रास बढ़ाता जाय पौर्णमासी को १५ ग्रास खाकर व्रत समाप्त करे ॥ ४१ ॥ चन्द्रमा की कलाओं के घटने बढ़ने के साथ ग्रासों को घटाना बढ़ाना कहा है । इस व्रत में सामवेद का गान अथवा व्याहृतियों का जप अवश्य करे । यह चान्द्रायण महीने भर का व्रत ऋषियों ने पवित्र कहा है ॥४२॥ जिन पापों का कोई प्रायश्चित्त न कहा हो उन सब में चान्द्रायण का ही विधान जानो ॥ ४३ ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में तेईशवां अध्याय पूरा हुआ ॥२३॥

अब अतिकृच्छ्र व्रत का विधान दिखाते हैं ॥ १ ॥ तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल, तीन दिन बिन मांगे जो मिले सो खावे और अन्त में तीन दिन उपवास करे यह तो १२ दिन का पूर्वोक्त कृच्छ्र व्रत कहाता है ॥ २ ॥ इसी क्रम से नौ दिन तक जितना अन्न एक बार में मुख में आसके उतना ही खावे अन्त में तीन दिन उपवास करे वह बारह दिन का अतिकृच्छ्र व्रत कहाता है ॥ ३ ॥ नौ दिन केवल जल पी के रहे और अन्त में तीन दिन निर्जल निराहार रहे यह कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत कहाता है ॥४॥ कृच्छ्र व्रतों

कृच्छ्राणां व्रतरूपाणि ॥ ५ ॥ श्मश्रुकेशान्वापयेद्भ्रुवोऽक्षिलोमशिखावर्जं नखान्निकृत्यैकवासा अनिन्दितभोजी सकृद्भैक्षमनिन्दितं त्रिषवणमुदकोपस्पर्शी दण्डी सकमण्डलुः स्त्रीशूद्रसंभाषणवर्जी स्थानाऽऽसनशीलोऽहस्तिष्ठेद्रात्रावासीतेत्याह भगवान् वसिष्ठः ॥ ६ ॥ स तद्यदेतद्धर्मशास्त्रं नापुत्राय नाशिष्याय नासंवत्सरोपिताय दद्यात् ॥७॥ सहस्रं दक्षिणा ऋषभैकादश गुरुप्रसादो वा गुरुप्रसादो वेति ॥ ८ ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अविख्यापितदोषाणां पापानांमहतांतथा ।
सर्वेषांचोपपापानां शुद्धिंवक्ष्याम्यशेषतः ॥ १ ॥
आहिताग्नेर्विनीतस्य वृद्धस्यविदुषोऽपिवा ।
रहस्योक्तंप्रायश्चित्तं पूर्वोक्तमितरेजनाः ॥ २ ॥

के नियम दिखाते हैं ॥ ५ ॥ भौंह, आंखें, उदर-भुजादि के लोम तथा चोटी को छोड़ कर प्रथम डाढ़ी मूंछें और शिर के बालों को मुंड़ावे। फिर नख कटवाके स्नान कर एक धोती मात्र पहिने हुए, दिनरात में एकवार शुद्ध अनिन्दित भोजन करे, शुद्ध एकान्त में निवास करे, सायं, प्रातः और मध्यान्ह में तीनों बार स्नान करे, दण्ड कमण्डलु आदि ब्रह्मचारी के चिन्ह रक्खे, स्त्री तथा शूद्रादि नीचों से संभाषण न करे, रहने के स्थान और आसन से दूर कहीं न जावे। दिन में खड़ा होके तथा रात्रि में बैठ कर प्रायः जप करता रहे। यह भगवान् वसिष्ठ महर्षि ने कहा है ॥ ६ ॥ वह अध्यापक ब्राह्मण इस महार्ष वसिष्ठ प्रोक्त धर्मशास्त्र को जो विधिपूर्वक शिष्य नहीं हुआ, वा जो एक वर्ष तक निकट में न रहे वा जो पुत्र न हो, ऐसों को यह शास्त्र न पढ़ावे का न उपदेश करे ॥ ७ ॥ सहस्र स्वर्ण मुद्रा वा सहस्र गौ अथवा दश गौ एक बैल गुरु को शिष्य दक्षिणा देवे अथवा गुरु वैसे ही सन्तुष्ट हों तो भले ही दक्षिणा न लेवें और अधिकारी शिष्य को शास्त्रों का विद्वान् करें ॥८॥
यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में चौबीशवां अध्याय पूरा हुआ ॥२४॥

जिन के दोष प्रकट नहीं हुए ऐसे छिपे हुए पापों की, तथ बड़े प्रबल महापापों की, और सब उपपातकों की पूरी २ शुद्धि आगे कहते हैं ॥ १ ॥ नम्रभाव से वर्तने वाला आहिताग्नि (अग्निहोत्री,) वृद्ध, तथा ,विद्वान् इन के लिये एकान्त में करने योग्य प्रायश्चित्त पूर्व कहा गया। अन्य लोग ॥२॥

प्राणायामैःपवित्रैश्च दानैर्होमैर्जपैस्तथा ।
नित्ययुक्ताःप्रमुच्यन्ते पातकेभ्योनसंशयः ॥ ३ ॥
प्राणायामाःपवित्राणि व्याहृतीःप्रणवंतथा ।
पवित्रपाणिरासीनो ब्रह्मनैत्यकमभ्यसेत् ॥ ४ ॥
आवर्त्तयेत्सदायुक्तः प्राणायामान्पुनःपुनः ।
आलोमाग्रान्नखाग्राच्च तपस्तप्यतुउत्तमम् ॥ ५ ॥
निरोधाज्जायतेवायु र्वायोरग्निर्हिजायते ।
तापेनाऽऽपोऽथजायन्ते ततोऽन्तःशुध्यतेत्रिभिः ॥ ६॥
नतांतीव्रेणतपसा नस्वाऽध्यायैर्नचेज्यया ।
गतिंगन्तुंद्विजाःशक्ता योगात्संप्राप्नुवन्तियाम् ॥ ७ ॥
योगात्संप्राप्यतेज्ञानं योगोधर्मस्यलक्षणम् ।
योगःपरंतपोनित्यं तस्माद्युक्तःसदाभवेत् ॥ ८ ॥
प्रणवेनित्ययुक्तःस्याद् व्याहृतीषुचसप्तसु ।
त्रिपदायांचगायत्र्यां नभयंविद्यतेक्वचित् ॥९ ॥

प्राणायाम, पवमान सूक्तादि के अभ्यास, सुपात्रों को दान, होम,गायत्र्यादि के जप, इन कामों में नित्य ही श्रद्धा भक्ति से तत्पर रहते हुए पातकों से छूट जाते हैं इस में सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥ हाथ में पवित्री वा कुश ले कर पूर्वाभिमुख बैठा हुआ प्राणायाम करके प्रणव और व्याहृतियों के उच्चारण पूर्वक पवमान सूक्तादि रूप वेद का श्रद्धा से नित्य २ अभ्यास करे ॥ ४ ॥ सदा ही तत्पर रहता हुआ श्रद्धा से प्राणायामों की वार २ नित्य आवृत्ति करे । लोमों के अग्रभाग और नखों के अग्रभाग तक सब शरीर से उत्तम तप करे ॥ ५ ॥ प्राण की गति के रोकने से शरीर में वायु बढ़ता, वायु से अग्नि प्रकट होता वा बढ़ता, और अग्नि के ताप से जल बढ़ता है तिस से तीनों तत्त्वों से अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है ॥ ६ ॥ तीव्र तप से, नियत वेदाध्ययन रूप स्वाध्याय से, और यज्ञों के करने से ब्राह्मण लोग उस उत्तम गति को प्राप्त नहीं होते कि जिस गति को प्राणायामादि योगाभ्यास से प्राप्त हो सकते हैं ॥७॥ योग से ज्ञान प्राप्त होता, योग धर्म का चिन्ह है, योग नित्य ही परम तप है, तिस कारण अपना हित चाहने वाला प्राणायामादि योग में नित्य तत्पर हो ॥८॥ प्रणव,सात व्याहृति,और तीन पाद की गायत्री,इन के जप में जो ब्राह्मण श्रद्धा भक्ति से निरन्तर नित्य तत्पर रहे उस के लिये कहीं भय नहीं है ॥९॥

प्रणवाद्यास्तथावेदाः प्रणवेपर्यवस्थिताः ।
वाङ्मयंप्रणवःसर्वं तस्मात्प्रणवमभ्यसेत् ॥ १० ॥
एकाक्षरंपरंब्रह्म पावनंपरमंस्मृतम् ।
सर्वेषामेवपापानां संकरेसमुपस्थिते ॥ ११ ॥
अभ्यासोदशसाहस्रः सावित्र्याःशोधनंमहत् ॥१२॥
सव्याहृतिंसप्रणवां गायत्रींशिरसासह ।
त्रिःपठेदायतप्राणः प्राणायामःसउच्यतेसउच्यतइति ॥१३॥
इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥
प्राणायामान्धारयेत्त्रीन्यथाविध्यतन्द्रितः ।
अहोरात्रकृतंपापं तत्क्षणादेवनश्यति ॥ १ ॥
कर्मणामनसावाचा यदन्हाकृतमेनसम् ।
आसीनःपश्चिमांसन्ध्यां प्राणायामैर्व्यपोहति ॥ २ ॥
कर्मणामनसावाचा यद्रात्र्याकृतमेनसम् ।
उत्तिष्ठन्पूर्वसन्ध्यान्तु प्राणायामैर्व्यपोहति ॥ ३ ॥
प्राणायामैर्यआत्मानं संयम्याऽऽस्तेपुनःपुनः ।

प्रणव को आदि ले कर वेद चलते हैं अर्थात् प्रणव से वेदों की उत्पत्ति हुई, प्रणव में ही वेदों की स्थिति है। और वाणी का विषय शब्दमात्र सब प्रणव स्वरूप ही है जिस से प्रणव का निरन्तर अभ्यास करे॥ १० ॥ सब प्रकार के पापों का घाल मेल होकर बड़ा संघट्ट हो जाने पर, पर ब्रह्मस्वरूप एकाक्षर प्रणव का अभ्यास करना परम पवित्र माना गया है ॥११॥ दश हजार गायत्री का एकान्त में शुद्धि के साथ श्रद्धा पूर्वक जप करना परम शुद्धि करने वाला है अर्थात् इस से अधिकांश पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १२ ॥ प्रणव, व्याहृति और शिरोमन्त्र इन सब के सहित गायत्री को प्राणगति रोक कर तीन बार पढ़े इसी को प्राणायाम कहते हैं ॥ १३ ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में पच्चीशवां अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

निरालस हो के विधि पूर्वक तीन प्राणायाम नित्य करे तो दिन रात में किया पाप तत्क्षण नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥ मन, वाणी तथा शरीर से जो कुछ अपराध दिन भर में किया उस को सायंकाल की सन्ध्या में बैठ कर प्राणायाम करता हुआ नष्ट कर देता है ॥ २ ॥ इसी प्रकार मन, वाणी तथा शरीर से रात्रि में किये दोषों को प्रातःकाल की सन्ध्या में खड़ा हुआ प्राणायामों से नष्ट करदेता है ॥३॥ जो पुरुष अपने शरीरेन्द्रियों को प्राणायामों की

संदध्याच्चाधिकैर्वाऽपि द्विगुणैर्वापरंतुयः ॥ ४ ॥
सव्याहृतिकाःसप्रणवाः प्राणायामास्तुषोडश ।
अपिभ्रूणहनंमासात् पुनन्त्यहरहःकृताः ॥ ५ ॥
जप्त्वाकौत्समपेत्येद्वासिष्ठंचप्रतीत्यृचम् ।
माहित्रंशुद्धवत्यश्च सुरापोऽपिविशुध्यति ॥ ६ ॥
सकृज्जप्त्वाऽस्यवामीयं शिवसंकल्पमेवच ।
सुवर्णमपहृत्यापि क्षणाद्भवतिनिर्मलः ॥ ७ ॥
हविष्पान्तीयमभ्यस्य नतमंहइतीतिच ।
सूक्तंचपौरुषंजप्त्वा मुच्यतेगुरुतल्पगः ॥ ८ ॥
अपिवाप्सुनिमज्जानस्त्रिर्जपेदघमर्षणम् ।
यथाऽश्वमेधावभृथस्तादृशंमनुरब्रवीत् ॥ ९ ॥
आरम्भयज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टादशभिर्गुणैः ।
उपांशुःस्याच्छतगुणः साहस्रोमानसःस्मृतः ॥ १० ॥

रस्सी से बांध कर बार २ बैठता है तथा जो अधिक द्विगुण वा और भी अधिक अभ्यास करता ॥४॥ अर्थात् व्याहृति और प्रणव के सहित यदि सोलह प्राणायाम नियम से विधि पूर्वक नित्य करे तो एक मास में ब्रह्महत्या का महापातक भी छुटा कर शुद्ध निर्दोष कर देते हैं ॥ ५ ॥ (अपनः शोशुचदघं० ऋ०मं० १ । सू० ९७) यह कौत्स सूक्त (प्रतिस्तोमेभिरुषसं० ऋ०७।५।२७) यह वासिष्ठ सूक्त (महित्रीणामवोऽस्तु०ऋ०८।८।४२) यह माहित्र सूक्त (एतोन्विन्द्रं०ऋ०६।६।३१) ये शुद्धवती तीन ऋचा इन का जप करने से मद्यपान के दोष से मुक्त हो जाता है॥६॥ (अस्यवामस्य० ऋ० मं० १ । सू० १६४) सूक्त तथा (यज्जाग्रतो दूर० यजु०अ०३४।१-६) छः मन्त्र शिवसंकल्प सूक्त के एक बार जप करने से सुवर्ण की चोरी के दोष से शीघ्र ही मुक्त होता है ॥७॥ (हविष्पान्त० ऋ० ८।४।१०) सूक्त (नतमंहोनदुरितं०ऋ०८।७।१३) सूक्त (इति वा०ऋ०८।६।२६) सूक्त और (सहस्र शीर्षा० ऋ० ८ । ४ । १७) पुरुष सूक्त इन सब का जप करने से गुरुपत्नी गमन के दोष से भी मुक्त हो जाता है ॥ ८ ॥ अथवा जल में डुबकी लगा के तीन बार अघमर्षण सूक्त का जप करे । जैसे अश्वमेध यज्ञ का अवभृथ स्नान सर्व पाप नाशक है वैसा ही मनु जी ने अघमर्षण को कहा है ॥ ९ ॥ अग्नि में आरम्भ होने वाले यज्ञों से जप यज्ञ दश गुणा श्रेष्ठ है । धीरे २ उच्चारण किया उपांशु जप सौ गुणा और मानस जप सहस्र गुणा उत्तम है ॥१० ॥

येपाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः ।
सर्वेतेजपयज्ञस्य कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ११ ॥
जप्येनैवतुसंसिध्येद्ब्राह्मणोनात्रसंशयः ।
कुर्य्यादन्यन्नवाकुर्य्यान्मैत्रोब्राह्मणउच्यते ॥ १२ ॥
जापिनांहोमिनांचैव ध्यायिनांतीर्थवासिनाम् ।
नपरिवसन्तिपापानि येचस्नाताःशिरोव्रतैः ॥ १३ ॥
यथाऽग्निर्वायुनाधूतो हविषाचैवदीप्यते ।
एवंजप्यपरोनित्यं ब्राह्मणःसंप्रहीप्यते ॥ १४ ॥
स्वाध्यायाध्यायिनांनित्यं नित्यंचप्रयतात्मनाम् ।
जपतांजुह्वतांचैव विनिपातोनविद्यते ॥ १५ ॥
सहस्रपरमांदेवीं शतमध्यांदशावराम् ।
शुद्धिकामःप्रयुञ्जीत सर्वपापेष्वपिस्थितः ॥ १६ ॥
क्षत्रियोबाहुवीर्य्येण तरेदापदमात्मनः ।
धनेनवैश्यशूद्रौतु जपैर्होमैर्द्विजोत्तमः ॥ १७ ॥

पकाये अन्न से होने वाले देवयज्ञ,भूत यज्ञ,पितृयज्ञ,नृयज्ञ, येचार पाकयज्ञ और अग्निहोत्र दर्शपौर्णमासादि विधियज्ञ ये सब ठीक २ किये जप यज्ञ के षोडशांश के तुल्य भी नहीं हैं ॥ ११ ॥ ब्राह्मण केवल ठीक २ किये जप से ही सिद्ध हो जाता है । वह चाहे अन्य कुछ करे वा न करे वह सब का मित्र होता है ॥ १२ ॥ निरन्तर जप, होम, ध्यान करने वाले, तीर्थों में जाकर बसने वाले और नित्य नियम से प्रातः स्नान सन्ध्या करने वालों के शरीरेन्द्रियों में पाप नहीं ठहरते ॥ १३ ॥ जैसे वायु और हविष्य घृतादि से प्रज्वलित अग्नि का तेज बढ़ता है वैसे जप के द्वारा ब्राह्मण का तेज नित्य २ बढ़ताजाता है ॥१४॥ जो नित्य जितेन्द्रिय रहते, जो नित्य नियम से विधि पूर्वक वेदाध्ययन करते तथा नित्य २ जप होम करते हैं उन के यहां अकालमृत्यु आदि विपत्ति नहीं आती हैं ॥ १५ ॥ सब पापों में स्थित रहता हुआ भी अधिक से अधिक १००० गायत्री का, मध्यकक्षा में १०० का, और निकृष्ट दशा में १० गायत्री का जप अवश्य ही नित्य २ करता रहे ॥ १६ ॥ क्षत्रिय पुरुष अपने बाहुबल से विपत्तियोंसे बचे, वैश्य तथा शूद्र धनादि के द्वारा दुःखों को हटावें और ब्राह्मण जप होमों के द्वारा सब दुःखों को हटाता रहे ॥ १७ ॥ जैसे रथ के

यथाऽश्वारथहीनाःस्युरथोवाऽश्वैर्विनायथा ।
एवंतपस्त्वविद्यस्य विद्यावाऽप्यतपस्विनः ॥ १८ ॥
यथाऽन्नंमधुसंयुक्तं मधुवाऽन्नेनसंयुतम् ।
एवंतपश्चविद्याच संयुक्तंभेषजंमहत् ॥ १९ ॥
विद्यातपोभ्यांसंयुक्तं ब्राह्मणंजपनैत्यकम् ।
सदाऽपिपापकर्माणमेनोनप्रतियुज्यते,एनोनप्रतियुज्यते,इति २०

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

यद्यकार्यशतंसाग्रं कृतंवेदश्चधार्य्यते ।
सर्वंतत्तस्यवेदाग्निर्दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥ १ ॥
यथावातबलोवन्हिर्दहत्यार्द्रानपिद्रुमान् ।
तथादहतिवेदाग्निः कर्मजंदोषमात्मनः ॥ २ ॥
हत्वाऽपिसइमांल्लोकान् भुञ्जानोऽपियतस्ततः ।

विना घोड़े वा घोड़ों के विना रथ व्यर्थ रहता है वैसे ही विना विद्या के धर्मानुष्ठान वा विना धर्मानुष्ठान रूप तप के विद्वान् होना मात्र निरर्थक है ॥ १८॥ जैसे मिष्ट मिला हुआ अन्न वा अन्न मिला हुआ शर्करादि मीठा स्वादिष्ठ होता वैसे ही तप नाम धर्मानुष्ठान और विद्या दोनों हों तो सब पापों की परम औषध है ॥ १९ ॥ विद्या और धर्म कर्मानुष्ठान रूप तप से युक्त नित्य जप करने वाले, सदा पाप कर्म करते हुये भी ब्राह्मण को पाप दोष नहीं लगता है (चाहे यों कहलो कि पाप पुण्य दोनों बराबर हो जाने से वह पापी नहीं होता अर्थात् संसार में रहते हुए मनुष्य से बहुत बचने पर भी कुछ अपराध अवश्य होते हैं इस से जप होमादि सब हालत में करना अच्छा है। परन्तु पापों से बचता हुआ धर्म करे तो सब से अच्छा है) ॥ २० ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में छब्बीशवां अध्याय पूरा हुआ ॥२६॥

यदि ब्राह्मणादि नये २ अकर्तव्य सैकड़ों अपराध भी करता हो पर वेद को नियम से पढ़ता पढ़ाता हो तो उसके उन सब पापों को वेद का ज्ञान रूप अग्नि ईंधन के तुल्य भस्म कर देता है ॥ १ ॥ जैसे वायु से प्रबल हुआ प्रज्वलित अग्नि वन के गीले वृक्षों को भी जला देता है। वैसे ही वेद रूप अग्नि भी कर्मों से हुए अन्तःकरण के दोषों को भस्म कर देता है ॥ २ ॥ इन मनुष्यादि प्राणियों का हनन कर के भी तथा उचित अनुचित का अन्न खाता हुआ भी ऋग्वेद को

ऋग्वेदंधारयन्विप्रो नैनःप्राप्नोतिकिञ्चन ॥ ३ ॥
नवेदबलमाश्रित्य पापकर्मरतिर्भवेत् ।
अज्ञानाच्चप्रमादाच्च दह्यतेकर्मनेतरत् ॥ ४ ॥
तपस्तप्यतियोऽरण्ये मुनिर्मूलफलाशनः ।
ऋचमेकांचयोऽधीते तच्चतानिचतत्समम् ॥ ५ ॥
इतिहासपुराणाभ्यां वेदंसमुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयंप्रहरिष्यति ॥ ६ ॥
वेदाभ्यासोऽन्वहंशक्त्या महायज्ञक्रियाक्रमः ।
नाशयन्त्याशुपापानि महापातकजान्यपि ॥ ७ ॥
वेदोदितंस्वकंकर्म नित्यंकुर्यादतन्द्रितः ।
तद्धिकुर्वन्यथाशक्त्या प्राप्नोतिपरमांगतिम् ॥८॥
याजनाध्यापनाद्यौनात्तथैवासत्प्रतिग्रहात् ।
विप्रेपुनभवेद्दोषो ज्वलनार्कसमोहिसः ॥ ९ ॥

कण्ठस्थ पाठ करता हुआ ब्राह्मण किंचित् भी पाप को प्राप्त नहीं होता ॥३॥ परन्तु ब्राह्मण वेदाध्ययन के बल का आश्रय लेकर समझ पूर्वक पाप कर्म कदापि न करे कि मेरे पाप वेदाध्ययन के बल से नष्टहो जांयगे । ऐसा भरोसा न रक्खे । क्योंकि अज्ञान वा भूल से किया अपराध वेदाध्ययन से नष्ट होता है अन्य नहीं ॥ ४ ॥ जो पुरुष मूल फल खाता हुआ मौन हो कर वन में तप करता है और जो गांव वा घर में रहता हुआ एक गायत्री मात्र का जप करता है वे दोनों बराबर हैं ॥ ५ ॥ इतिहास पुराणों को देखने द्वारा वेदार्थ ज्ञान को बढ़ावे । क्योंकि अल्पशास्त्रांश देखने जानने वाले से वेद डरता है कि मुझ पर यह मनुष्य प्रहार करेगा ॥ ६ ॥ प्रति दिन नियम से यथा शक्ति वेदाभ्यास करना और क्रम से पञ्चमहायज्ञ करना इतने ही कर्म महापातक सम्बन्धी पापों को भी शीघ्र नाश करते हैं ॥ ७ ॥

वेद में कहे अपने कर्म को ब्राह्मण आलस्य छोड़ के नित्य२ करे यथाशक्ति केवल वेदोक्त कर्म को करता हुआ ही परमगति को अन्त में प्राप्त होजाता है ॥ ८ ॥ यज्ञ कराने, वेदादि पढ़ाने, क्षत्रियकन्यादि के साथ विवाह करने और अयोग्य का दान लेने से तपस्वी तेजस्वी विद्वान् ब्राह्मणों को दोष विशेष नहीं लगता क्योंकि ब्राह्मण अग्नि तथा सूर्य के समान है ॥ ९ ॥ भोज्य अभोज्य

शङ्कास्थानेसमुत्पन्ने भोज्याभोज्यान्नसंज्ञके ।
आहारशुद्धिंवक्ष्यामि तन्मेनिगदतःशृणु ॥ १० ॥
अक्षारलवणांरूक्षां पिबेद्ब्राह्मींसुवर्चलाम् ।
त्रिरात्रंशङ्खपुष्पींच ब्राह्मणःपयसासह ॥ ११ ॥
पालाशंबिल्वपत्राणि कुशान्पद्मानुदुम्बरान् ।
क्वाथयित्वापिबेदापस्त्रिरात्रेणंवशुध्यति ॥ १२ ॥
गोमूत्रंगोमयंक्षीरं दधिसर्पिःकुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च श्वपाकमपिशोधयेत् ॥ १३ ॥
गोमूत्रंगोमयंचैव क्षीरंदधिघृतंतथा ।
पञ्चरात्रंतदाहारः पञ्चगव्येनशुध्यति ॥ १४ ॥
यवान्विधिनोपयुञ्जानः प्रत्यक्षेणंवशुध्यति ।
विशुद्धभावेशुद्धाःस्युरशुद्धेतुसरागिणः ॥ १५ ॥
हविष्यान्प्रातराशांस्त्रीन्सायमाशांस्तथैवच ।
अयाचितंतथैवस्यादुपवासत्रयंभवेत् ॥ १६ ॥
अथचेत्त्वरतेकर्त्तुं दिवसंमारुताशनः ।

अन्न के खा लेने की शंका उत्पन्न हो कर ग्लानि हो जाने पर आहार शुद्धि का विचार कहते हैं सो तुम सुनो ॥१०॥ खार तथा लवण को छोड़ कर रूखी ब्राह्मी सुवर्चला ओषधि को और शंखाहूली ओषधि को दूध के साथ तीन दिन पीकर व्रत करे ॥११॥ अथवा ढांक, बिल्व (बेल) कमल और गूलरी के पत्तों का काढ़ा कर२ तीन दिन तक पीता हुआ व्रत करे तो शुद्ध होजाता है ॥१२॥ गोमूत्र, गोबर, गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत और कुशों का जल इन सबको एक दिन पीवे और एक दिन उपवास करे यह दो दिन का कृच्छ्र सान्तपन व्रत श्वपाक को भी शुद्ध कर सकता है। अर्थात् अत्यन्त शोधक है ॥ १३ ॥ और अभक्ष्य भक्षण की विशेष अपवित्रता की शंका हो तो गोमूत्र, गोबर, गोदुग्ध, गो दधि, गो घृत, इन पांच पदार्थों को पांच दिन एकर को एक २ दिन खाके व्रत करे तो इस पञ्चगव्य से सम्यक् शुद्धि होती है ॥ १४ ॥ विधि के साथ केवल जौ खाकर व्रत करे तो प्रत्यक्ष शुद्धि होती है। व्रत करनेवाले का मन शुद्ध हो मन में कुटिलता न हो तो शुद्धि होगी और अपवित्र भाव होगा तो राग सहित की शुद्धि न होगी ॥१५॥ तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल हविष्य अन्न, खार लवण रहित खावे, तीन दिन बिन मांगे जो मिले खावे और तीन दिन उपवास करे ॥ १६ ॥ अब यदि अति शीघ्र ही प्रायश्चित्त

रात्रौजलाशयेव्युष्ठः प्राजापत्येनतत्समम् ॥ १७ ॥
सावित्र्यष्टसहस्रंतु जपंकृत्वोत्थितेरवौ ।
मुच्यतेपातकैःसर्वैर्यदिनोब्रह्महाभवेत् ॥ १८ ॥
योवैस्तेनःसुरापोवा भ्रूणहागुरुतल्पगः ।
धर्मशास्त्रमधीत्यैव मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ १९ ॥
दुरितानांदुरिष्टानां पापानांमहतांतथा ।
कृच्छ्रंचान्द्रायणंचैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २० ॥
एकैकंवर्धयेत्पिण्डं शुक्लेकृष्णेचह्रासयेत् ।
अमावास्यांनभुञ्जीत एवंचान्द्रायणोविधिरेवं
चान्द्रायणोविधिः, इति ॥ २१ ॥
इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥
नस्त्रीदुष्यतिजारेण नविप्रोवेदकर्मणा ।

कर लेना चाहता हो तो दिन भर कुछ भी अन्न जल न ग्रहण कर वायुमात्र का भक्षण करे और रात्रि भर किसी जलाशय में भीगता रहे तो यह एक दिन रात का व्रत बारह दिन के कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत की बराबर माना जायगा ॥ १७ ॥ उस व्रत के एक दिन रात में आठ हजार गायत्री का जप भी करे तो अगले दिन सूर्योदय होते२ ब्रह्महत्या को छोड़के अन्य सब पातकों से एक ही दिन रात में मुक्त हो जाता है ॥ १८ ॥ जो सुवर्ण का चोर वा सुरापीने वाला, ब्रह्महत्यारा और गुरु स्त्री गामी ये सभी धर्म शास्त्रों के आद्योपान्त पढ़लेने पर सब पातकों से मुक्त हो जाते हैं ॥ १९ ॥ निकृष्टों को यज्ञ कराने सम्बन्धी पापों तथा महापातकादि सब पापों का कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत नाश करता है २० ॥ शुक्र पक्ष में चन्द्रमा की कलाओं के साथ प्रतिपदादि में एक२ ग्रास बढ़ावे अर्थात् शुक्र पक्ष की प्रतिपदा से चान्द्रायण व्रत का आरम्भ करके प्रतिपदा को एक द्वितीया को दो ऐसे एक २ ग्रास बढ़ाके पौर्णमासी को १५ ग्रास खावे फिर कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से एक२ ग्रास घटा के अमावास्या को निराहार उपवास करे यह कृच्छ्रचान्द्रायण का विधान जानो ॥ २१ ॥ यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में सत्ताईसवां अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

यदि किसी जार (व्यभिचारी) दुष्ट पुरुष ने बलात्कार आदि से वा धोखे में नशादि द्वारा बेहोश करके स्त्री से कुकर्म किया हो तो ऐसी स्त्री, वेदोक्त

नाऽऽपोमूत्रपुरीषेण नाग्निर्दहनकर्मणा ॥ १ ॥
स्वयंविप्रतिपन्नावा यदिवाविप्रवासिता ।
बलात्कारोपभुक्तावा चोरहस्तगताऽपिवा ॥ २ ॥
नत्याज्यादूषितानारी नास्यास्त्यागोविधीयते ।
पुष्पकालमुपासीत ऋतुकालेनशुध्यति ॥ ३ ॥
स्त्रियःपवित्रमतुलं नैतादुष्यन्तिकर्हिचित् ।
मासिमासिरजोह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥ ४ ॥
पूर्वंस्त्रियःसुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववन्हिभिः ।
गच्छन्तिमानुषान्पश्चान्नैतादुष्यन्तिधर्मतः ॥ ५ ॥
तासांसोमोऽददच्छौचं गन्धर्वःशिक्षितांगिरम् ।
अग्निश्चसर्वभक्षत्वं तस्मान्निष्कल्मषाःस्त्रियः ॥ ६ ॥
त्रीणिस्त्रियःपातकानि लोकेधर्मविदोविदुः ।

अभिचार (मारणप्रयोगादि) से ब्राह्मण, विष्ठा मूत्रादि से नद्यादि जलाशय, और अशुद्ध मुर्दादि को जलाने से अग्नि, दूषित नहीं होता है ॥ १ ॥ स्त्री यदि स्वयं विरुद्ध हो कर वा पति आदि के निकाल देने पर कहीं चली जाय उस से कोई दुष्ट वा चोर बलात्कार दुराचार करे ॥२॥ तो इस प्रकार दूषित हुई स्त्री त्याज्य नहीं ऐसी (निरपराध होने से) का त्याग शास्त्र में नहीं कहा है। ऐसी स्त्री रजोधर्म होने से शुद्ध हो जाती है (यह धर्मशास्त्रकार की राय है सो अब जहां लोकव्यवहार के विरुद्ध न हो वहां मान्य होगी और लोकव्यवहार से विरुद्ध होने पर (लोकविक्रुष्टमेवच । मनु० अ० ४ ।१७६) के अनुसार धर्मानुकूल विचार भी त्याज्य होगा। तदनुसार दूषित स्त्री का ग्रहण लोक विकुष्ट होने से संप्रति करना उचित नहीं है) ॥ ३ ॥ स्त्रियां अतुल पवित्र हैं इस से कदापि दूषित नहीं होतीं। क्योंकि प्रतिमास निकलने वाला रज उन के दोषों को नष्ट करता रहता है ॥ ४ ॥ पहिले स्त्रियों को सोम, गन्धर्व और अग्नि देवताओं ने भोगा और पीछे मनुष्यों के साथ विवाह हुआ इस से धर्मानुकूल दूषित नहीं होतीं ॥ ५ ॥ सोम देवता ने अपने समय में स्त्रियों को पवित्रता दी, गन्धर्वदेवता ने प्रिय तथा कोमल शिक्षित वाणी दी और अग्नि ने सब कुछ खाने पचाने की शक्ति दी है इस से स्त्रियां स्वाभाविक शुद्ध हैं ॥ ६ ॥ धर्मज्ञ विद्वानों ने स्त्रियों के तीन पातक मुख्यकर माने हैं। एक पति को स्वयं विषादि देके वा अन्यद्वारा मरवा डालना, किसी का गर्भ गिराना, वा अपना गर्भ गिराना (इन से भिन्न अन्य भी स्त्री के पाप

भर्तुर्वधोभ्रूणहत्या स्वस्यगर्भस्यपातनम् ॥ ७ ॥
वत्सःप्रस्रवणेमेध्यः शकुनिःफलपातने ।
स्त्रियश्चरतिसंसर्गे श्वामृगग्रहणेशुचिः ॥ ८ ॥
अजाश्वामुखतोमेध्या गावोमेध्यास्तुपृष्ठतः ।
ब्राह्मणाःपादतोमेध्याः स्त्रियोमेध्यास्तुसर्वतः ॥ ९ ॥
सर्ववेदपवित्राणि वक्ष्याम्यहमतःपरम् ॥
येषांजपैश्चहोमैश्च पूयन्तेनात्रसंशयः ॥ १० ॥
अघमर्षणंदेवकृतं शुद्धवत्यस्तरत्समाः ।
कूष्माण्डानिपावमान्यो दुर्गासावित्रिरेवच ॥ ११ ॥
अभीषङ्गाःपदस्तोमाः सामानिव्याहृतीस्तथा ।
भारुण्डानिचसामानि गायत्रंरैवतंतथा ॥ १२ ॥
पुरुषव्रतंन्यासंच तथावेदव्रतानिच ।

हैं जिन के प्रायश्चित्त पूर्व अ० २१ आदि में कहे हैं पर उन में ये तीन बड़े महापाप हैं) ॥ ७ ॥ गौ के थनों को चोंखने में बछड़े का मुख शुद्ध है, फल गिराने में पक्षी का मुख शुद्ध, शिकार पकड़ने में कुत्ते का मुख शुद्ध और रति सम्बन्ध में स्त्री शुद्ध है ॥ ८ ॥ बकरा बकरी घोड़ा का मुख, गौ के मल-मूत्र स्थान, तथा ब्राह्मणों के पग पवित्र हैं तथा स्त्रियों का सर्वाङ्ग शुद्ध है ॥ ९ ॥ (स्त्रियां निर्बल पराधीन होने से भी कम दूषित होती हैं बालकृत अपराध बालक को नहीं लगता है) सब वेदों के पवित्रांश आगे कहते हैं जिन के जप और होमों द्वारा निःसन्देह मनुष्य पवित्र होते हैं ॥१०॥ (ऋतं च सत्यं चा०) इत्यादि तीन मन्त्र, (देवकृतस्यैनमो०) इत्यादि छः मन्त्र, (एतो-न्विन्द्रं०) इत्यादि तीन शुद्धवती ऋचा, (तरत्समन्दी०) इत्यादि चार ऋचा, कूष्माण्ड सूक्त, ऋग्वेद का नवम मण्डल पवमान सूक्त, सविता देवता वाली, दुर्गा की ऋचा, अभीषङ्ग-पदस्तोम- ये साम, सातो व्याहृति, भारुण्ड-गायत्र और रैवत साम, ॥११। १२ ॥ पुरुषव्रत, न्यास, वेदव्रत ये साम, रूप शब्दवाले, बृहस्पति शब्दवाले मन्त्र वा सूक्त, (मधुवाता०) इत्यादि तीन ऋचा (नम-स्तेरुद्र०) इत्यादि शत रुद्रिय, अथर्वशिरः, त्रिसुपर्ण, महाव्रत, गोसूक्त, अश्व-

अछिद्रं गार्हस्पत्यं च वावसूक्तं मध्वृचस्तथा ॥ १३ ॥
शतरुद्रियमथर्वशिर-स्त्रिसुपर्णं महाव्रतम् ।
गोसूक्तं चाश्वसूक्तं च शुद्धः शुद्धेति सामनी ॥ १४ ॥
त्रीण्याज्यदोहानि रथन्तरञ्च अग्नेर्व्रतं वामदेव्यं बृहच्च ।
एतानि जप्तानि पुनन्ति जन्तून् जातिस्मरत्वं लभते यदीच्छेत् ॥ १५ ॥
अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ।
तासामनन्तं फलमश्नुवीत यः काञ्चनं गां च महीं च दद्यात् ॥ १६ ॥
उपरुन्धन्ति दातारं गौरश्वः कनकं क्षितिः ।
अश्रोत्रियस्य विप्रस्य हस्तं दृष्ट्वा निराकृतेः ॥ १७ ॥
वैशाख्यां पौर्णमास्यां च ब्राह्मणान्सप्त पञ्च वा ।
तिलान्क्षौद्रेण संयुक्तान् कृष्णान्वा यदि वेतरान् ॥ १८ ॥
प्रीयतां धर्मराजेति यद्वा मनसि वर्त्तते ।
यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ १९ ॥
सुवर्णनाभं कृत्वा तु सखुरं कृष्णमार्गणम् ।
तिलैः प्रच्छाद्य यो दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २० ॥
ससुवर्णगुहा तेन सशैलवनकानना ।

सूक्त, शुद्धः-शुद्धा, ये दोनों साम ॥ १३ । १४ ॥ त्रीर, आज्यदोह, रथन्तर, अग्निव्रत, वामदेव, वृहत, ये साम इन सब का जप करें तो ये जीवों को पवित्र करते हैं और चाहे तो पूर्व जन्म का स्मरण भी हो जाता है ॥ १५ ॥ अग्निदेवता का प्रथम सन्तान सुवर्ण, विष्णुदेव की पृथिवी, और सूर्यनारायण की पुत्री गौ इन तीनों का जो पुरुष दान करता है उस को अनन्त फल प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ गौ, घोड़े, सुवर्ण और भूमि ये सब वेदाध्ययन से शून्य ब्राह्मण के हाथ में अपने को जाते देख कर दाता पुरुष को रोकते हैं कि इसे मत दे यह सुपात्र नहीं है ॥ १७ ॥

वैशाख की पौर्णमासी के दिन सात वा पांच ब्राह्मणों को सहत से संयुक्त काले वा अन्य तिल (हे धर्मराज! प्रसन्न हूजिये ऐसा वा जो मनमें हो कहकर) दान करे तो जीवन भर में किया सब पाप क्षण भर में नष्ट होता है ॥ १८ । १९ ॥ ककून्दनी गन्ध द्रव्य सहित काले आम को मध्यमें सुवर्ण लगा के तिलों से ढांपकर जो पुरुष दान करता है उसके पुण्य फल को सुनो ॥ २० ॥ सुवर्ण, गुफा, पर्वत वन, जङ्गल और चारों दिशाओं सहित सब भूमि उसने दान की कि जिसने

चतुर्वर्षाभवेद्दत्ता पृथिवीनात्रसंशयः ॥ २१ ॥
कृष्णाजिनेतिलान्कृत्वा हिरण्यंमधुसर्पिषी ।
ददातियस्तुविप्राय सर्वंतरतिदुष्कृतमितिसर्वंतरतिदुष्कृतमिति२२
इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे ऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

दानेन सर्वकामानाप्नोति ॥१॥ चिरजीवित्वं ब्रह्मचारी रूपवान् ॥ २ ॥ अहिंस्युपपद्यते स्वर्गम् ॥ ३ ॥ अग्निप्रवेशाद् ब्रह्मलोकः ॥ ४ ॥ मौनात्सौभाग्यम् ॥ ५ ॥ नागाधिपतिरुदकवासात् ॥ ६ ॥ नीरुजः क्षीणकोशः ॥ ७ ॥ तोयदः सर्वकामसमृद्धः ॥ ८ ॥ अन्नप्रदाता सचक्षुः ॥ ९ ॥ स्मृतिमान्मेधावी सर्वतोऽभयदाता ॥ १० ॥ गोयुक्ते सर्वतीर्थोपस्पर्शनम् ॥ ११ ॥ शय्यासनदानादन्तःपुराधिपत्यम् ॥ १२ ॥ छत्र-

---

उक्त प्रकार वाण का दान किया इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥ काले मृग चर्म पर तिल धरके उन तिलों पर सुवर्ण, शहत और घी धर के जो ब्राह्मण को दान देता है वह सब दुष्कर्मों से पार हो जाता है ॥ २२ ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में अट्ठाईशवां अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

दान धर्म से मनुष्य की सब मनोकामना पूरी हो जाती है ॥ १ ॥ दान शील पुरुष चिरंजीवी ब्रह्मचारी तथा सुरूपवान् होता है ॥ २ ॥ दयालु हुआ स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ दान शील को अग्नि में प्रवेश करने (विधिपूर्वक मरणान्तदाह) से ब्रह्मलोक प्राप्त होता ॥ ४॥ मौन धारण करने से सौभाग्य प्राप्त होता ॥५॥ जलमें भींगते हुए जप करने से नागों का अधिपति अर्थात् नागलोक का राजा होता है ॥ ६ ॥ दान में जिसका धन चुक जाय वह नीरोग होता ॥७॥ प्याऊ आदि जलदान करनेवाला सब कामनाओं से युक्त होता ॥ ८ ॥ अन्न दाता चक्षु हीन नहीं होता ॥ ९ ॥ सब प्रकार से अभय देने वाला स्मरण शक्ति युक्त उत्तम बुद्धिवाला होता ॥ १० ॥ बैल युक्त रथ के दान में सब तीर्थों के स्नान का फल होता है ॥ ११ ॥ शय्या दान और उत्तमर आसनों के दान से स्त्री रणवास की महारानी होती है ॥ १२ ॥ छाता के दान

दानाद् गृहलाभः ॥ १३ ॥ गृहप्रदो नगरमाप्नोति ॥ १४ ॥
उपानत्प्रदाता यानमासादयति॥१५॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥१६॥

यत्किंचित्कुरुतेपापं पुरुषोवृत्तिकर्षितः ।
अपिगोचर्ममात्रेण भूमिदानेनशुध्यति ॥ १७ ॥
विप्रायाऽऽचमनार्थंतु दद्यात्पूर्णंकमण्डलुम् ।
प्रेत्यतृप्तिंपरांप्राप्य सोमपोजायतेपुनः ॥ १८ ॥
अनडुहांसहस्राणां दानानांधुर्यवाहिनाम् ।
सुपात्रेविधिदत्तानां कन्यादानेनतत्समम् ॥ १९ ॥
त्रीण्याहुरतिदानानि गावःपृथ्वीसरस्वती ।
आदिदानंहिरण्यानां विद्यादानंततोऽधिकम् ॥ २० ॥
आत्यन्तिकफलप्रदं मोक्षदंबन्धमोचनम् ।
योगिनांसंमतोविद्वानाचारमनुवर्तते ॥ २१ ॥
श्रद्दधानःशुचिर्दान्तो धारयेच्छृणुयादपि ।

से घर मिलता (घर एक प्रकार का बड़ा छाता जानो) ॥ १३॥ घर देनेवाला नगर का स्वामी होता है ॥ १४ ॥ जूतों का दान करनेवाले को सवारी प्राप्त होती है ॥ १५ ॥ और भी प्रश्नोकों का प्रमाण कहते हैं कि ॥ १६ ॥ जीविका (रोजगार) न मिलने से दुःखित हुआ मनुष्य जो कुछ पाप करता है वह गोचर्म मात्र भूमि के दान से शुद्ध हो जाता है ॥ १७ ॥ आचमन के लिये ब्राह्मण को जो जल से भरा कमण्डलु दान करे वह जन्मान्तर में परम तृप्ति को प्राप्त होकर अग्निष्टोमादि सोमयाग करने वाला होता है ॥ १८ ॥ बलवान् गाढ़ी में बोझा ले चलने में समर्थ एक हजार बैलों का दान सुपात्रों को विधिवत् देवे तो कन्यादान के तुल्य पुण्य होता है ॥ १९ ॥
गौ,पृथिवी और विद्या ये तीन दान बड़े हैं। इन में भी सुवर्ण का दान मुख्य है और विद्या का दान सुवर्ण से भी बड़ा है ॥ २० ॥ बन्धन से छुड़ा के मोक्ष देनेवाला होने से विद्या दान अत्यन्त फल देनेवाला है। जो विद्वान् होकर सदाचार पर चलता है वह योगियों का भी मान्य है ॥ २१ ॥ जो धर्म के विचारों को सुने और धारण (स्वीकार) करे आगे वैसा ही करने लगे, मनको

विहायसर्वपापानि नाकपृष्ठेमहीयत,इति ।
नाकपृष्ठेमहीयते । इति ॥ २२ ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

धर्मंचरतमाऽधर्मं सत्यंवदतनानृतम् ।
दीर्घंपश्यतमाह्रस्वं परंपश्यतमाऽपरम् ॥ १ ॥
ब्राह्मणोयज्ञो भवत्यग्निर्वै ब्राह्मणइति श्रुतेः ॥ २ ॥

तच्च कथम् ॥३॥ तत्र सतो ब्राह्मणस्य शरीरं वेदिः संकल्पो यज्ञः पशुरात्मा मनो रशना बुद्धिः सदो मुखमाहवनीयं नाभ्यामुदराऽग्निर्गार्हपत्यः प्राणोऽध्वर्युरपानो होता व्यानो ब्रह्मा समान उद्गाताऽऽत्मेन्द्रियाणि यज्ञपात्राणि यएवं विद्वानिन्द्रियैरिन्द्रियार्थं जुहोतीति ॥ ४ ॥ अपि च काठके विज्ञायते ॥ ५ ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ ६ ॥

पात्रिप्रतिचदातार-मात्मानंचैवकिल्बिषात् ।
वेदेन्धनसमृद्धेषु हुतंविप्रमुखाग्निषु ॥ ७ ॥

वश में रक्खे, पवित्रता से रहे, तथा श्रद्धालु हो वह सब पापों को त्याग के स्वर्ग के सिंहासन पर पूजा जाता है ॥ २२ ॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के भाषानुवाद में उनत्तीशवां अध्याय पूरा हुआ ॥२९॥

धर्म करो अधर्म नहीं, सत्य बोलो मिथ्या नहीं, दीर्घ दर्शी बनो संकुचित विचार वाले नहीं, परम अविनाशी सब अनित्य पदार्थों में नित्य परम तत्त्व रूप ईश्वर को देखो संसार को नहीं ॥ १ ॥ ब्राह्मण यज्ञ का ही रूप है। "अग्नि ही ब्राह्मण है" ऐसा श्रुति में लिखा है ॥ २ ॥ सो कैसे ? ॥ ३ ॥ उस में सत्पात्र ब्राह्मण का शरीर-वेदि, संकल्प-यज्ञ, पशु-आत्मा, मन-रस्सी, बुद्धि-सदःशाला, मुख-आहवनीय, नाभिस्थान में उदर का जाठराग्नि-गार्हपत्य, प्राण-अध्वर्यु, अपान-होता, व्यान-ब्रह्मा, समान-उद्गाता, इन्द्रियां यज्ञपात्र, जो ऐसा जानता है वह इन्द्रियों के साथ शब्द स्पर्शादि विषयों का होमकर देता है ॥ ४ ॥ और भी कठशाखास्थ श्रुति से जाना जाता है ॥ ५ ॥ और भी श्लोकों का प्रमाण कहते हैं कि ॥ ६ ॥ दान लेने वाले और दाता पुरुष को वह दान पाप से रक्षा करता है कि जो वेदरूप ईंधन से प्रज्वलित ब्राह्मणों के मुख रूप अग्नि में होम किया जाता है ॥ ७ ॥ न फैलता, न व्यर्थ हो-

नस्कन्दतेनव्यथते नैनमध्यापतेच्चयत् ।
वरिष्ठमग्निहोत्रात्तु ब्राह्मणस्यमुखेहुतम् ॥ ८ ॥
ध्यानाग्निः सत्योपचयनं क्षान्त्यापुष्टिस्रवं त्रिः पुरोडाशमहिंसा च सन्तोषो यूपः कृच्छ्रं भूतेभ्योऽभयदाक्षिण्यं स्मतिं कृत्वा क्रतुं मानसं याति क्षयं बुधः ॥९॥
जीर्यन्ति जीर्यतःकेशा दन्ताजीर्यन्तिजीर्यतः ।
जीवनाशाधनाशाच जोर्यतोऽपिनजीर्यति ॥१०॥
यादुस्त्यजादुर्मतिभिर्यानजोर्यतिजीर्यतः ।
योऽसौप्राणान्तिको व्याधिस्तांतृष्णांत्यजतः सुखमिति॥११॥
नमोस्तुमित्रावरुणयोरुर्वश्यात्मजाय शतयातवे वसिष्ठाय वसिष्ठायेति॥१२॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥
समाप्ताचेयं वसिष्ठस्मृतिः ॥

ता, और न किसी प्रकार के अनिष्ट का कारण होता है (अर्थात् अग्निहोत्र में ऐसी अनेक दिक्कतें होती हैं इस कारण) अग्नि होत्र से बहुत अच्छा यह है कि जो ब्राह्मण के मुख में होम किया गया है ॥ ८ ॥ ध्यान रूप अग्नि, सत्य का संचय, क्षमा से पुष्टि अन्न वा पुरोडाश, अहिंसा-दया, सन्तोष यूप-स्तम्भ, प्राणियों के लिये अभयदान रूप कृच्छ्रव्रत, ऐसा स्मरण करके विद्वान् पुरुष संसार के साथ संबन्ध का त्याग करता हुआ मानस यज्ञ को प्राप्त होता है ॥९॥ वृद्धावस्था में बाल श्वेत हो जाते,दांत गिर जाते हैं, परन्तु जीवन की और धन की तृष्णा जीर्ण (बुड्ढी) नहीं होती ॥१०॥ जो शरीर के जीर्ण होते हुए भी जीर्ण नहीं होती जो निकृष्ट बुद्धि वालों से कदापि त्यागी नहीं जा सकती तथा जो मरण पर्यन्त साथ में लगी पूरी व्याधि है उस तृष्णा को त्याग ने पर ही सुख हो सकता है ॥११॥ मित्रावरुण देवतों द्वारा उर्वशीदिव्याङ्गना से उत्पन्न हुए शतयातु नामक महर्षि वसिष्ठ को वारंवार नमस्कार प्राप्त हो ॥१२॥

यह वासिष्ठ धर्मशास्त्र के ब्राह्मणसर्वस्व सम्पादक पं० भीमसेन शर्म कृत भाषानुवाद में तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ और यह वसिष्ठस्मृति भी समाप्त हुई॥

ओम्-शान्तिः । शान्तिः । शान्तिः ॥